Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य और भाषा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

卐 दीपावली पर सारस्वत भेंट 卐

"अन्तर दीप जले जगमग हो मन का कोना-कोना।
सारस्वत निष्ठा का निखरे मंजुल रूप सलोना॥"
— 'सुमन'

प्रिय भाई रामस्वरूप जी आर्य को
हार्दिक स्नेह पूर्वक,
इस आस्था और विश्वास के साथ कि आप
सारस्वत निष्ठा इस कृति का अध्ययन
मनोयोग पूर्वक आदि से अन्त तक
करेंगे और यथावसर इसकी
चर्चा भी करेंगे।

(आपके नाम पत्र पृ० ३०१ से ३०३ तक)

दीपावली पर्व
सन् १९८० ई०

आपका भाई 'सुमन'
७. ११. ८० ई०
८/७ हरीनगर, अलीगढ़-२०२००१
(उ.प्र.)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२७।५।८०

इनमें ज्ञान की गंगा प्रवाहित हुई है। इनकी तुलना केवल डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्रों से की जा सकती है। साहित्य के क्षेत्र में जिज्ञासुजनों की समस्याओं का समाधान इतनी संलग्नतापूर्वक शायद ही किसी विद्वान ने किया होगा।

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी की निम्नलिखित उक्ति इस ग्रन्थ पर अक्षरशः चरितार्थ होती है—

अति विशाल जीवन-जीवन,
जिस ग्रन्थों में है नहीं समाता
वही किसी के एक पत्र में,
ज्यों का त्यों पूरा बंध जाता।

[illegible]

785465

डा० शिवकुमार शाण्डिल्य

सम्पादन-सहयोग

कुमारी मधु शर्मा

बिशनकुमार शर्मा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती-समर्चना का सत्तरहवाँ सुमन

संस्कृति, साहित्य और भाषा

[जिज्ञासा और समाधान]

लेखक

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन'
एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०

Central Library
185465
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

सम्पादक

डा० त्रिलोकीनाथ व्रजबाल
डा० (श्रीमती) शारदा शर्मा
डा० कमल सिंह

097
185465

प्रबन्ध-सम्पादक

डा० शिवकुमार शाण्डिल्य

सम्पादन-सहयोग

कुमारी मधु शर्मा
बिशनकुमार शर्मा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती-समर्चना का सत्तरहवाँ सुमन

संस्कृति, साहित्य और भाषा

[जिज्ञासा और समाधान]

लेखक
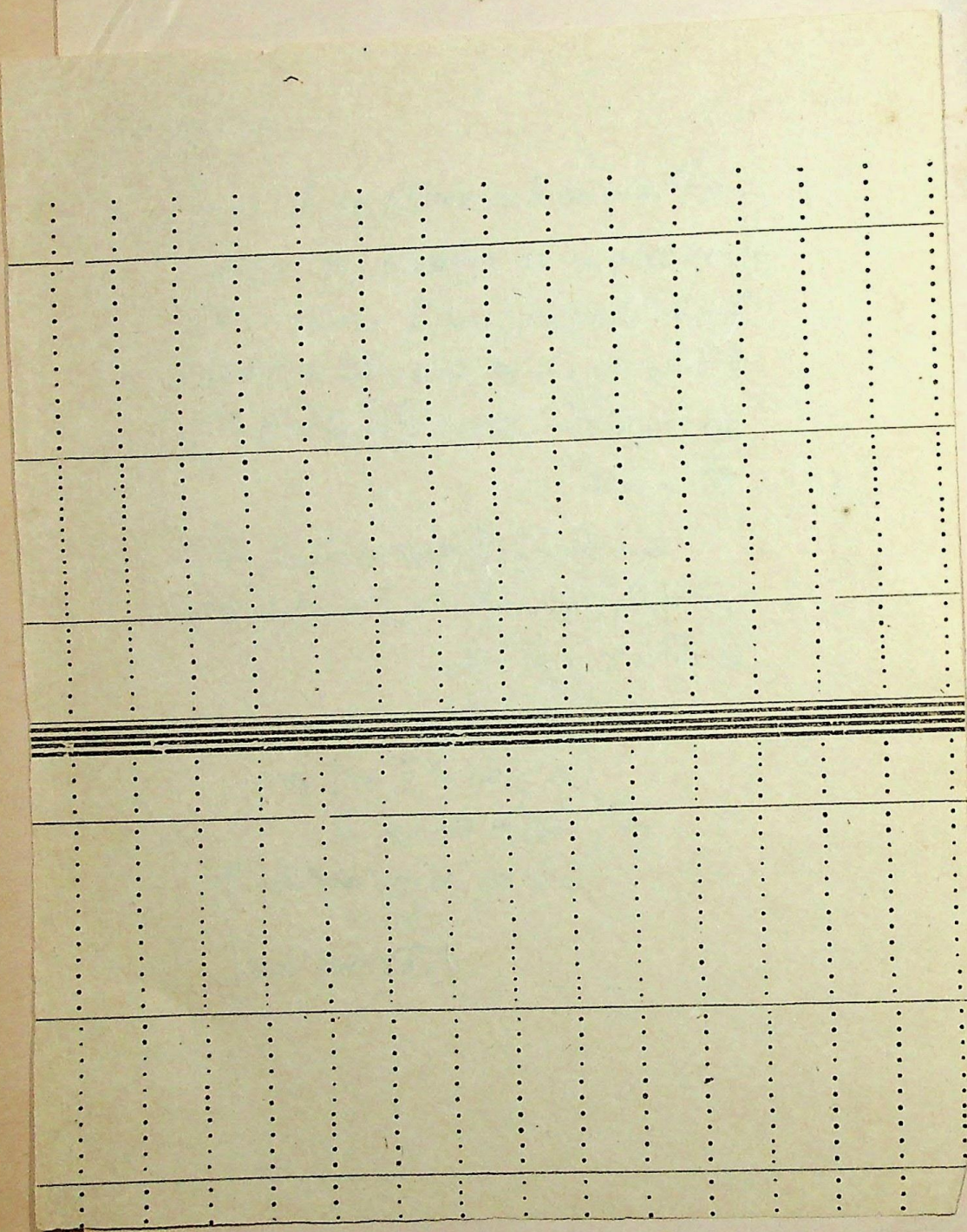
डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन'
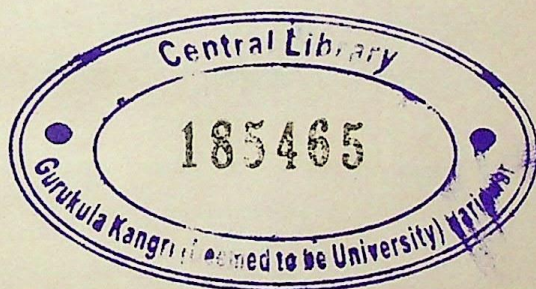
एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०

सम्पादक

डा० त्रिलोकीनाथ व्रजबाल

डा० (श्रीमती) शारदा शर्मा

डा० कमल सिंह

प्रबन्ध-सम्पादक

डा० शिवकुमार शाण्डिल्य

सम्पादन-सहयोग

कुमारी मधु शर्मा

बिशनकुमार शर्मा

097
185465

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
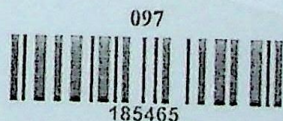
प्रकाशक :
(श्रीमती) वसन्तीदेवी शर्मा,
वासन्ती प्रकाशन, ८/७ हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१

© **लेखक :** डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' [सर्वाधिकार]

R.P.S
097
APY-S

संस्करण : प्रथम, सन् १९७९ ई०

मूल्य—रु० १२५·०० (एक सौ पच्चीस रुपये)

इस ग्रंथ के प्राप्ति-केन्द्र :
(१) (श्रीमती) वसन्तीदेवी शर्मा,
वासन्ती प्रकाशन, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१ (उ० प्र०)
(२) डा० (श्रीमती) शारदा शर्मा,
हिन्दी-विभाग,
मुन्नालाल एवं ज० ना० खेमका कन्या महाविद्यालय,
सहारनपुर (उ० प्र०)

आवरण-सज्जाकार :
डा० गोपालमधुकर चतुर्वेदी, श्री वार्ष्णेय कालेज, अलीगढ़

मुद्रक :
चित्रा प्रिंटिंग प्रेस, दुबे का पड़ाव, अलीगढ़

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक :
(श्रीमती) वसन्तीदेवी शर्मा,
वासन्ती प्रकाशन, ८/७ हरिनगर, अलीगढ़-

© **लेखक :** डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' [सर्वाधिकार

संस्करण : प्रथम, सन् १९७९ ई०

मूल्य—रु० १२५·०० (एक सौ पच्चीस रुपये)

इस ग्रंथ के प्राप्ति-केन्द्र :
(१) (श्रीमती) बसन्तीदेवी शर्मा,
वासन्ती प्रकाशन, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१ (
(२) डा० (श्रीमती) शारदा शर्मा,
हिन्दी-विभाग,
मुन्नालाल एवं ज० ना० खेमका कन्या महावि
सहारनपुर (उ० प्र०)

आवरण-सज्जाकार :
डा० गोपालमधुकर चतुर्वेदी, श्री वार्ष्णेय काले

मुद्रक :
चित्रा प्रिंटिंग प्रेस, दुबे का पड़ाव, अलीगढ़

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन'

संस्कृति, साहित्य और भाषा

वासन्ती प्रकाशन, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक के विशिष्ट पुरस्कृत एवं महनीय प्रकाशित ग्रंथ—

(१) कृषक जीवन सम्बन्धी ब्रजभाषा शब्दावली, भाग १ और २
हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद (उ० प्र०)

(२) हिन्दी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप,
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (इलाहाबाद) [उ० प्र०]

(३) रामचरितमानस ः वाग्वैभव,
विज्ञान-भारती, १४६७ वज़ीरनगर, नई दिल्ली—११०००३

(४) रामचरितमानस-भाषा-रहस्य,
बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना (बिहार)

भाषाशास्त्रीय विशिष्ट प्रकाशित ग्रथ—

(१) मानस-शब्दार्थ-तत्त्व,
विज्ञान-भारती, १४६७, वज़ीरनगर, नई दिल्ली—११०००३

(२) भाषाविज्ञान ः सिद्धान्त और प्रयोग
प्रवीण प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ॰ ... आर्य, बिजनौर
... सादर भेंट–
हरप्या... चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

डॉ॰ राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट–
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

समर्पण

卐

आदरणीय मित्रो एवं प्रिय शिष्याओ और शिष्यो!

आपके प्रश्नों को अपने उत्तरों के साथ आपको ही सादर-सप्रेम समर्पित कर रहा हूँ।

आप ही जानें कि मैं कहाँ तक आपको सन्तुष्ट कर सका हूँ।

आपका अपना ही

अम्बाप्रसाद 'सुमन'
(विश्वविद्यालय अनुदान आयोग-सेवान्तर्गत)
हिन्दी-विभाग,
अलीगढ़ मु॰ विश्वविद्यालय, अलीगढ़

५/८, हरिनगर,
अलीगढ़-२०२००१
(उ॰ प्र॰)

卐

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
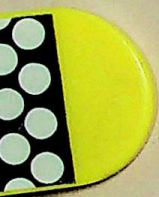
प्रकाशकीय

एक दिन मुझे अपने बक्स में एक पत्र मिला, जो सन् १९५० ई० में मेरे नाम **इनकी** लेखनी से लिखा गया था। उस पत्र में **'जीवन और जीवन-लक्ष्य'** की व्याख्या थी, गृहस्थाश्रम के आलोक में।

उस पत्र के सन्दर्भ में मैं एक दिन **इनसे** पूछ उठी कि क्या आपने इस प्रकार के पत्र और भी लिखे हैं? उत्तर में इन्होंने कहा—"मैंने समय-समय पर अपने मित्रों और शिष्यों के नाम **संस्कृति, साहित्य** और **भाषा** की समस्याओं के समाधान में अनेक पत्र लिखे हैं। सन् १९५१ ई० में मैं डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल के सम्पर्क में आया था। वे पी-एच०डी० के शोध-प्रबन्ध के मेरे निर्देशक भी थे। काशी विश्वविद्यालय के प्रांगण में उनके आवासीय बँगले में मैं महीनों रहा था और अपना शोध-कार्य सम्पन्न किया था। सन् १९५५ ई० तक मुझे गुरुवर डा० अग्रवाल जी से अनेक पत्र मिल चुके थे। उन पत्रों से मुझे बहुत प्रेरणा मिली थी, साहित्य सेवा के लिए। सन् १९५४ ई० के बाद मैंने भी अपने मित्रों और शिष्यों के नाम अनेक पत्र लिखे हैं, **सांस्कृतिक, साहित्यिक तथा भाषिक समस्याओं के समाधान में**। उनमें से अधिकांश पत्रों की प्रतिलिपियाँ भी मेरी फ़ाइलों में मौजूद हैं।"

तब अर्द्धांगिनी के रूप में अपना विशेष अधिकार समझते हुए मैंने एक दिन उनके प्रकाशन के लिए साग्रह निवेदन किया। उसी निवेदन का साकार रूप प्रस्तुत ग्रंथ है, अर्थात् '**संस्कृति, साहित्य** और **भाषा**'।

विश्व में तीन गंगाएँ हैं—(१) **स्वर्गंगा**, (२) **भू-गंगा** (३) **पाताल-गंगा**। इसी प्रकार तीन ही ज्ञान-गंगाएँ हैं—(१) **संस्कृति-गंगा**, जिसके दो कूल हैं—एक धर्म और दूसरा दर्शन। (२) **साहित्य-गंगा**, जो भाव और भाषा के कूलों के बीच प्रवाहित होती है। (३) **समाज-गंगा**, जो विज्ञान और इतिहास के किनारों के बीच बहती है। इन्हें हम ज्ञान की त्रिवेणी भी कह सकते हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ ऐसा स्थल हैं, जहाँ उपर्युक्त तीनों ज्ञान-गंगाएँ मिलकर एक सारस्वत तीर्थराज बनाती हैं।

आधुनिक-बोध के पाठकों के लिए भी इसमें सामग्री मिलेगी। आधुनिकता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के मूलाधार तत्त्व **तीन** हैं—(१) इस लोक में आस्था (२) इतिहास-विज्ञान-बोध (३) सामूहिक कल्याण की इच्छा और लक्ष्य।

इन तीनों तत्त्वों की व्याख्या से संबद्ध कुछ पत्र **संस्कृति खंड और साहित्य खंड** में मिल सकते हैं। **भाषा खंड** में हिन्दी भाषा तथा अन्य भारतीय भाषाओं का विवेचन है।

ग्रन्थ को उपादेय बनाने के लिए संपादक-मंडल (डा० त्रिलोकीनाथ व्रजबाल, डा० कमलसिंह, डा० (श्रीमती) शारदा शर्मा और डा० शिवकुमार शाण्डिल्य) ने संपादन के साथ-साथ प्रारम्भ में विषय-सूची और अन्त में व्यक्ति-नाम-अनुक्रमणी भी परिश्रम से प्रस्तुत की है। परामर्शदात्री-समिति और संपादक-मंडल के उदार स्नेह और सहायता के लिए मैं धन्यवादपूर्वक आभारी हूँ।

साहित्य-जगत् के विद्वान् कृपया देखें कि प्रस्तुत कृति कैसी बन पड़ी है ?

मेरे निवेदन की इस साकार सामग्री से यदि हिन्दी-जगत् कुछ लाभान्वित हो सका, तो मेरे हृदय और आत्मा को परम प्रसन्नता होगी। यों तो अपनी चीज़ सबको ही अच्छी लगती ही है; वास्तव में दूसरे जिसे सराहें, वही अच्छी होती है।

मैं अपनी बेटी शारदा, वीणा और कु० मधु को तथा पुत्रवत् प्रियवर बिशन को मन-भर आशीर्वाद देती हूँ कि वे खूब फूलें-फलें। प्रियवर बिशन ने तो स्वच्छ पाण्डुलिपि तैयार करने में, विषय-सूची और व्यक्ति-नाम-अनुक्रमणी बनाने में अथक परिश्रम किया है। माता सरस्वती प्रियवर बिशन का मंगल करें !

सरस्वती-समर्चना के रूप में डा० सुमन जी का यह सत्रहवाँ ग्रंथ-सुमन है; लेकिन व्रासन्ती प्रकाशन, अलीगढ़ का यह प्रथम ही पुष्प है, जो माता वीणा-पाणि के चरणों में सादर समर्पित है।

इसमें मुद्रण की भूलें हो सकती हैं। अपने अभावों की भावानुभूति के साथ वासन्ती-प्रकाशन यह अपना श्रद्धा-सुमन विद्वानों और पाठकों की सेवा में आदरपूर्वक प्रस्तुत कर रहा है। क्षमा-याचना के साथ,

वासन्ती प्रकाशन,
८/७ हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
पिन—२०२००१

बसन्तीदेवी शर्मा

तुलसी-जयन्ती, सन् १९७९ ई०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—ग्रंथ-लेखक : एक दृष्टि में—

(०) लेखक का राशि का नाम नौरंगीलाल, बचपन का नाम अम्बे, मिडिल की सनद में अम्बाप्रसाद, और हाईस्कूल की सनद में अम्बाप्रसाद सुमन'।

(१) **जन्म**——२१ मार्च, १९१६ ई०; गाँव——शेखूपुर (जि० अलीगढ़)

(२) **माता-पिता**——(स्व०) श्रीमती श्यामादेवी, (स्व०) पं० श्यामसुन्दर लाल शर्मा।

(३) **विद्याभूमि**—बुढ़ाँसी, जलाली; सांगवेद विद्यालय नरवर (जि० बुलन्द-शहर), धर्मसमाज कालेज, अलीगढ़; काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।[1]

(४) **उच्च परीक्षाएँ**—एम० ए० (हिन्दी), पी-एच० डी०, डी० लिट्०।

(५) **अध्यापन**——एन० आर० ई० सी० कालेज खुर्जा; अलीगढ़ मु० विश्व-विद्यालय, अलीगढ़; तथा हिन्दी स्नातकोत्तर अध्ययन एवं अनुसंधान-संस्थान, दक्षिण-भारत-हिन्दी प्रचार-सभा, मद्रास में (रीडर तथा अध्यक्ष के रूप में)।

(६) **हिन्दी-भाषा-सेवा**——सन् १९६० से १९७५ ई० तक केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय (शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली) में विशेषज्ञ-परामर्शदात्री समिति के भाषाविद्-सदस्य के रूप में, तकनीकी शब्दावली के निर्माणकर्ता (अंग्रेज़ी से हिन्दी में)

(७) **विशिष्ट भाषण-स्थल**——मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर; पूना विश्व-विद्यालय, पूना; बम्बई विश्वविद्यालय, बम्बई; कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र;

---

१ डा० सुमन जी से विदित हुआ कि उनकी शिक्षा की नाव विशेष रूप से निम्नांकित महानुभावों की कृपा की ठोकर से पार हुई थी—(१) पं० लक्ष्मीनारायण जी गौड़, (२) ब्रह्मचारी पं० जीवनदत्त जी महाराज, (३) पं० गोकुलचन्द्र जी शर्मा, (४) डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल। जिन महानुभावों ने डा० सुमन जी की जीविका लगाने में कृपामयी सहायता की, उनमें दो नाम सादर उल्लेखनीय हैं—
(१) पं० गोकुलचन्द्र जी शर्मा (२) डा० नगेन्द्र जी। —संपादक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ; आगरा विश्वविद्यालय, आगरा और नेहरू कृषि-विश्वविद्यालय जबलपुर।

(८/क) **प्रकाशित साहित्य-(लेख)**—विभिन्न संपादित ग्रंथों में **प्रकाशित लेख लगभग १५;** लगभग ३०० **लेख**[1] (विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित); **३०० महत्त्वपूर्ण पत्र** (मित्रों और शिष्यों के नाम)।

प्रकाशित पुस्तकें—(१) **वाङ्मयी** (२) **हरिजन और हम** (३) **आदर्श विभूतियाँ** (४) **साहित्यदिग्दर्शन** भाग १, २ व ३ (५) **कृषक-जीवन-सम्बन्धी ब्रजभाषा-शब्दावली** भाग १ व २ [हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद] उत्तर-प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत तथा सम्मानित) (६) **हिन्दी और उसकी उप-भाषाओं का स्वरूप** [हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग] (उत्तर प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत तथा सम्मानित) (७) **हिन्दी भाषा** (अतीत और वर्तमान) (८) **मानस-शब्दार्थतत्त्व** (९) **रामचरितमानस : वाग्वैभव** [विज्ञान भारती, १४६७ वज़ीरनगर, नई दिल्ली–३] (उत्तरप्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत तथा सम्मानित) (१०) **रामचरितमानस-भाषा रहस्य** [विहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना] (उत्तरप्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत तथा सम्मानित) (११) **संस्कृति, साहित्य और भाषा** [वासन्ती प्रकाशन, हरिनगर, अलीगढ़] (१२) **अंतर्धारा** [कविता-संग्रह] (प्रेस में)।

(८/ख) **वे ग्रंथ, जिनमें लेखक डा० सुमन** के **लेख संकलित हैं**—

(१) **समीक्षा की समीक्षा** (ले० प्रभाकर माचवे), साहनी प्रकाशन, दिल्ली सन् १९५३ ई० (२) **ब्रज और ब्रज-यात्रा** (संपादक, सेठ गोविन्ददास, रामनारायण अग्रवाल) भारतीय विश्व प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९५९ ई० (३) **साहित्यार्चन** (संपादक श्री सत्यप्रकाश मिलिन्द), फ्रैंक ब्रदर्स एण्ड, कम्पनी, दिल्ली–६, सन् १९६० ई० (४) **आधुनिक हिन्दी कवियों की काव्य-कला** (संपादक डा० प्रेमनारायण टंडन), हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ. सन् १९६१ ई० (५) **दिनकर** (संपादिका, डा० सावित्री सिन्हा), राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९६७ ई० (६) **निराला** (संपादक डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'), राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९६९ ई० (७) **बिहारी का काव्य** (संपादक श्री हरिमोहन मालवीय) सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद, संवत् २०२६ वि० (८) **लोक साहित्य की रूपरेखा** (संपादक डा० कृष्णचन्द्र शर्मा) अमित

१ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कुछ विशिष्ट लेखों की सूची आगामी पृष्ठों में देखने को मिल सकती है।

—संपादक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशन गाज़ियाबाद, सन् १९७२ ई० (९) **ज्ञानमूर्ति आचार्य वासुदेवशरण** (संपादक, कृष्णवल्लभ द्विवेदी), वासुदेव ज्ञानपीठ, १३ शिवाजी मार्ग, लखनऊ-१, सन् १९७४ ई० (१०) **डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र** (संपादक वृन्दावन-दास), साहित्यप्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली, सन् १९७४ ई०।

विशिष्ट **अभिनंदन-ग्रंथों** के नाम, जिनमें लेखक के लेख प्रकाशित हैं—

(११) अशोकवन : एक समीक्षा, गोकुलचन्द्र शर्मा अभिनंदन-ग्रंथ, सन् १९५७ ई० (१२) ब्रजभाषा : उद्गम और विकास, राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टंडन अभिनंदन-ग्रंथ, सन् १९६० ई० (१३) आचार्य वाजपेयी और उनका शब्द-चिन्तन, आचार्य किशोरीदास वाजपेयी : व्यक्तित्व और कृतित्व, सन् १९६१ ई० (१४) हिन्दी भाषा में लिंग-विधान, बम्बई हिन्दी विद्यापीठ : रजत जयन्ती-ग्रंथ, १९६३ ई० (१५) महादेवी वर्मा की भाषा का स्वरूप, महादेवी वर्मा अभिनंदन-ग्रन्थ, १९६४ ई० (१६) मेरे उपनामरासी, श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन': एक व्यक्ति एक संस्था, सन् १९६६ ई० (१७) दर्शन और जीवन-दर्शन एवं (१८) अपभ्रंश ब्रजी और अवधी में– एँ प्रत्यय : प्रयोग और अर्थ, स्वामी रामानन्द शास्त्री, अभिनंदन ग्रंथ, सन् १९७० ई० (१९) ब्रजभाषा काव्य की देन और दिशा, प्रेरक साधक : श्री बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनंदन-ग्रंथ, सन् १९७० ई० (२०) बाबू जी की भाषा-शैली, बाबू गुलाबराय-स्मृति ग्रंथ, सन् १९७० ई० (२१) साहित्यगत भावना-भूमि पर उत्तर-दक्षिण एक हैं, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास का स्वर्ण-जयन्ती ग्रंथ, सन् १९७१ ई० (२२) डा० सहल और भाषाशास्त्र, कन्हैयालाल सहल : व्यक्तित्व और कृतित्व सन् १९७२ ई० (२३) कारक और विभक्ति की संकल्पना, बाबू वृन्दावनदास अभिनंदन-ग्रंथ, सन् १९७५ ई० (२४) आचार्य वाजपेयी कृत राष्ट्रभाषा का प्रथम व्याकरण, आचार्य किशोरीदास वाजपेयी और हिन्दी शब्द-शास्त्र, सन् १९७८ ई०।

(९) **ग्रंथ, जिनका लेखक ने संशोधन किया**—(१) **हिन्दी-प्रयोग** (छठा संस्करण), ले० श्री रामचन्द्र वर्मा (काशी) (२) **सुबोध व्याकरण और रचना**, ले० श्री व्यथित हृदय (इलाहाबाद)।

(१०) **ग्रंथों और पत्रिकाओं में व्यक्त लेखक का अध्यापक-स्वरूप**—

"प्रेरणात्मक शिक्षण में **डा० सुमन सच्चे** अर्थों में प्रेरक शिक्षक हैं। **डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन'** के अध्यापन में ऐसा जादू है कि छात्रों को पता नहीं चलता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि कब घंटा शुरू हुआ और कब खत्म हुआ ? शिक्षण में ऐसा जादू तभी आया करता है, जब कोई अध्यापक स्वयं प्रेरित होकर पढ़ाता है।''

—संपा० डा० **प्रेमनारायण टंडन, संस्मरणीय शिक्षक और उनके शैक्षिक गुण,** पृ० २८५

"दक्षिण के विश्वविद्यालयों में होनेवाली हिन्दी-शिक्षण-संगोष्ठियों में उत्तर भारत से अनेक हिन्दी-विद्वान् आये हैं। भारत में अनेक विद्वान् **डा० सुमन जी से** ज्ञान में अधिक हैं और हो सकते हैं; लेकिन सुमन जी जैसा कुशल अध्यापक हमने आज तक नहीं देखा। हमारे विश्वविद्यालय में पंद्रह दिन तक हिन्दी-शिक्षण सं०गोष्ठी में डा० सुमन जी **'संदेशरासक'** के छन्दों की व्याख्या प्रतिदिन एक घंटे करते थे, और हम मंत्रमुग्ध बने सुनते थे। **डा० सुमन** का घंटा डा० भगीरथ मिश्र के बाद पड़ता था। डा० भगीरथ मिश्र **बिहारी सतसई** के दोहों की व्याख्या करते थे।'

—(**मैसूर विश्वविद्यालय-पत्रिका**, १९६५ ई०)

(११) **संप्रति**—[क] विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की अवकाश-प्राप्त-शोध-योजना के अन्तर्गत-सेवा-रत। [ख] हिन्दी-विद्यापीठ [आगरा विश्वविद्यालय, आगरा] की ब्रजभाषा-कोश-समिति में परामर्शदाता।

(१२) **जीवन की विशिष्ट अभिरुचि**—अध्ययन, अध्यापन, लेखन, शोधकार्य में, एवं तुलसी-साहित्य से संवद्ध प्रवचन तथा व्याख्यान में।

—**संपादक**

****

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० अम्बाप्रसाद सुमन' के
पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित विशिष्ट लेख

१. 'कामायनी के वे स्थल, जहाँ भावुकता में भाषा पथ भूल बैठी है'—सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग, पौष-ज्येष्ठ १८९० शक०।

२. 'आधुनिक हिन्दी-काव्य में राष्ट्रीय भावना का विकास'—सप्तसिन्धु, पटियाला, जुलाई, १९६५ ई०।

३. 'हम सब भाँति करब सेवकाई'—अभिनव भारती, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय, १९६७ ई०।

४. 'हिन्दी में अप्रकट सम्बन्ध-तत्त्व'—परिषद् पत्रिका पटना, अप्रैल, सन् १९६७ ई०।

५. 'ब्रजभाषा का शब्द-सामर्थ्य'—ब्रजभारती, मथुरा, ज्येष्ठ, सं० २०२६ वि०।

६. 'भाषाशास्त्री डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल'—सप्तसिन्धु पटियाला, दिसम्बर १९६७ ई०।

७. 'डा० नगेन्द्र : एक बहुरंगी व्यक्तित्व'—मधुमती, उदयपुर, मार्च १९६८ई०।

८. 'कामायनी' के शब्द-रूपों पर एक दृष्टि'—मधुमती, राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम), उदयपुर, अक्टूबर, १९६८ ई०।

९. 'साहित्य में दर्शन और जीवन-दर्शन—रसवंती, लखनऊ, नम्बवर १९६७ई०।

१०. 'रामचरितमानस के धातु-प्रत्यय'—मधुमती उदयपुर, अप्रैल १९६९ ई०।

११. 'पं० किशोरीदास वाजपेयीकृत हिन्दी-शब्दानुशासन पर एक समीक्षात्मक दृष्टि—साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली।

१२. 'पूर्वी हिन्दी और उसकी प्रमुख उपभाषाएँ'—हिन्दुस्तानी, इलाहाबाद, जुलाई-दिसम्बर, सन् १९६५ ई०।

१३. 'हिन्दी और भारत की अधिभाषाएँ—परिषद् पत्रिका (भाषा सर्वेक्षण अंक), पटना, अक्टूबर ६८, जनवरी ६९ ई०।

१४. 'पारिभाषिक शब्दावली भारतीय भाषाएँ और शिक्षा-माध्यम', (Terminology, Indian languages and Medium of Instruction)—विद्या, वैज्ञानिक तथा शब्दावली आयोग, शिक्षा तथा युवक सेवा मंत्रालय, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली—२२, जुलाई १९६९—मार्च १९७० ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५. "सूरसागर' और 'रामचरितमानस' की क्रियाओं में रूप-साम्य'–हिन्दुस्तानी इलाहाबाद, अक्टूबर-दिसम्बर, १९७२ ई०।
१६. 'हिन्दी और द्रविड़ भाषाओं के विशेषण पदों की तुलना'–हिन्दुस्तानी, इलाहाबाद, जनवरी-दिसम्बर १९६९ ई०।
१७. 'हिन्दी भाषा का शोध कार्य और भाषा-विज्ञान सम्बन्धी समस्याएँ'–अभिनव भारती, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय, १९५६ ई०
१८. 'वस्त्रकला से सम्बन्धित ब्रज-शब्दावली'–त्रिपथगा, लखनऊ।
१९. 'महाप्राण श्रीवर निराला' के विशाल हृदय की झाँकियाँ'–त्रिपथगा. लखनऊ मई १९६० ई०।
२०. 'कंजड़ जाति की व्यावसायिक (ब्रजभाषा) शब्दावली'–त्रिपथगा, लखनऊ मई, १९६० ई०।
२१. 'अपभ्रंश का जन्म और उसका हिन्दी पर प्रभाव'–सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग, पौष-फाल्गुन १८७९ शक०।
२२. 'हिन्दी-प्रदेशीय उपभाषाओं की कृषि-शब्दावली का तुलनात्मक अध्ययन'–हिन्दुस्तानी, इलाहाबाद, अप्रैल, १९५८ ई०।
२३. 'प्राकृत पैंगलम् की शब्दावली और वर्तमान ब्रजलोक-शब्दावली का तुलनात्मक अध्ययन'–हिन्दुस्तानी इलाहाबाद, मार्च, १९५९ ई०।
२४. 'अवधी के कुछ कृषि-सम्बन्धी शब्द तथा उनके ब्रज-पर्याय'–हिन्दुस्तानी इलाहाबाद।
२५. 'ब्रजभाषा के कुछ ग्रामीण शब्दों की निरुक्ति'–हिन्दुस्तानी, इलाहाबाद, दिसम्बर १९५८ ई०।
२३. 'पश्चिमी हिन्दी और उसकी विभिन्न उपभाषाओं का स्वरूप'–हिन्दुस्तानी, इलाहाबाद, सितंबर, १९५८ ई०
२७. 'हमारी भाषाओं तथा बोलियों की पारिभाषिक शब्दावली'–भारतीय साहित्य, हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा; जनवरी १९६१ ई०।
२८. 'उकार बहुला प्रवृत्ति की परंपरा और ब्रज की बोली'–भारतीय साहित्य, हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा, जनवरी, १९६१ ई०।
२९. 'जनपदीय शब्दावली'–'भारतीय साहित्य', हिन्दी विद्यापीठ आगरा, आगरा विश्वविद्यालय, १९५७ ई०।
३०. 'बादल, हवा और मौसम से सम्बद्ध शब्दावली'–भारतीय साहित्य, आगरा, मार्च १९५७ ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३१. 'चूना, कंकड़-पत्थर-जाली और नगों से सम्बन्धित शब्दावली'—नागरी प्रचारिणी पत्रिका, बाराणसी, संवत् २०१३, २३, वर्ष ६१ ।

३२. 'संस्कारों से सम्बन्धित शब्दावली'—हिन्दी अनुशीलन, भारतीय हिन्दी परिषद्, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, अक्टूबर-दिसम्बर, १९६७ ई० ।

३३. 'जन्म-संस्कार के लोकाचार और उनसे सम्बंधित शब्दावली'—हिन्दी अनुशीलन, भारतीय हिन्दी परिषद्, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद जुलाई-सितम्बर, १९५८ ई० ।

३४. 'हिन्दी की जनपदीय शब्दावली का तुलनात्मक अध्ययन'—हिन्दी अनुशीलन भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग, अप्रैल-जून, १९५७ ई० ।

३५. 'ब्रजभाषा में 'छल्लादार' या 'छल्लेदार'—अभिनव भारती, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़, सन् १९६१ ई० ।

३६; 'तुलसी की समन्वयात्मक भाषा का संदेश'—तुलसीदल, भोपाल, अगस्त, सन् १९६१ ई० ।

३७. 'हिन्दी भाषा का शब्द-समूह और कुछ तत्सम शब्द'—सप्तसिन्धु, पटियाला, अक्टूबर १९६३ ई० ।

३८. 'ग्रामीण गाड़ियाँ और उनसे सम्बंधित शब्दावली'—नागरी प्रचारिणी वाराणसी, संवत् २०१५ वि० अंक ३-४ ।

३९. 'अपभ्रंश और ब्रजभाषा'—सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग, चैत्र-भाद्रपद १८८६ शक ।

४०. 'प्रयत्न लाघव और भाषा-परिवर्तन'—सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग, पौष-ज्येष्ठ १८८७ शक ।

४१. 'हरियाणवी और उसकी प्रतिवेशिनी उपभाषाओं में 'ने' का प्रयोग'—सप्तसिन्धु, पटियाला, नवम्बर-जनवरी ६५-६६ ई० ।

४२. 'जायसी की अवधी में 'कीन्ह' और 'कीहेसि' कियाएँ'—सप्तसिन्धु, पटियाला, जुलाई, १९६६ ई० ।

४३. 'स्व० डा० वासुदेवशरण अग्रवालः जीवन और साहित्यिक उपलब्धियाँ'—सप्तसिन्धु, पटियाला, अक्टूबर, १९६६ ई० ।

४४. 'हेमचन्द्रीय व्याकरण की अपभ्रंश किसकी पुत्री है ?'—परिषद् पत्रिका, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना, वर्ष ४, अंक ३, अक्टूबर, १९६४ ई०

४५. 'हिन्दी और द्रविड़ भाषाओं में परसर्ग की स्थिति'—त्रिपथगा, लखनऊ, सितम्बर, १९६६ ई० ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४६. 'शब्द और अर्थ में अर्थ आत्मा या ब्रह्म है'–त्रिपथगा, लखनऊ, सितम्बर, १९६६ ई०।

४७. 'जन्म-संस्कार-सम्बन्धी शब्दावली'–प्राच्य-मानव-वैज्ञानिक, लखनऊ, विश्वविद्यालय, लखनऊ।

४८. 'कामायनी' के कुछ विशिष्ट शब्दार्थ, परिषद् पत्रिका, पटना, अक्टूबर, १९६६ ई०।

४९. 'आधुनिक ब्रजभाषा की ध्वनि-प्रक्रिया में नासिक्यीकरण'– भारतीय साहित्य, हिन्दी विद्यापीठ, आगरा सन् १९६३ ई०, वर्ष ८, अंक ३।

५०. 'ब्रजभाषा के लिंग-वचनीय-रूपग्राम'–हिन्दुस्तानी, इलाहाबाद, सन् १९६१ ई०।

५१. अलीगढ़ जनपद की मुस्लिम बंजारा जाति और उसकी बोली'–हिन्दुस्तानी, इलाहाबाद, जनवरी मार्च १९६२ ई०।

५२. 'अलीगढ़ जनपद की कंजड़ जाति और उसकी बोली'–हिन्दुस्तानी, इलाहाबाद, अक्टूबर, दिसम्बर, १९६० ई०

५३. 'अलीगढ़ जनपद की हाबूड़ा जाति और उसकी बोली, हिन्दुस्तानी, इलाहाबाद, अप्रैल-जून, १९५९ ई०।

५४. 'जनपदीय शब्दावली (पैट्रिक कारनेगीकृत कचहरी टेकनीकलिटीज़ का हिन्दी–अनुवाद)'–भारतीय साहित्य, हिन्दी विद्यापीठ, आगरा, जुलाई, १९५७ ई०।

५५. 'जन्म-संस्कार के लोकाचार और उनसे सम्बन्धित शब्दावली (यह शोध लेख ओरिएन्टल कान्फ्रेंस, दिल्ली में पढ़ा गया)'–भारतीय साहित्य, हिन्दी विद्यापीठ, आगरा, अक्टूबर १९५७ ई०।

५६. 'मेरी डायरी के कुछ पन्ने'–तीर्थंकर, इन्दौर, अप्रैल, १९७४ ई०।

५७. 'कबीर की 'उंन्मुनि' और 'सहज समाधि'–सरस्वती, इलाहाबाद, फरवरी, १९७४ ई०।

५८. 'कहारों-संबंधी-ब्रजभाषा–शब्दावली'— त्रिपथगा, लखनऊ, फरवरी, १९६४ ई०

५९. 'राष्ट्रभाषा हिन्दी और ब्रजभाषा में फ़ारसी से आये दो प्रत्ययों की तुलना' –परिषद्- पत्रिका, पटना, जून सन् १९६४ ई०।

६०. 'हिन्दी के क्रियारूपों में काल और अर्थ का स्पष्टीकरण'–सप्तसिन्धु, पटियाला, सितम्बर, १९६२ ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६१. 'संस्कारों से सम्बंधित शब्दावली'—हिन्दी अनुशीलन, भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग, दिसम्बर १९५७ ई० ।

६२. 'श्री रामचरित मानस की चौपाइयों में चरणान्त पद का अन्तिम स्वर' –अभिनव भारती, हिन्दी-विभाग अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़, वर्ष-६, सन् १९६५ ई० ।

६३. 'देवराज इन्द्र और ऐरावत हाथी'–अभिनव भारती, हिन्दी-विभाग अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़, सन् १९६६ ई० ।

६४. 'चित्रावली' में क़ुरान व हदीस तथा राम-कृष्ण-कथाओं के संकेत'–अभिनव भारती, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़, वर्ष-८, १९.० ई० ।

६५. 'हिन्दी और भारत की अधिभाषाएँ'–परिषद् पत्रिका, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना-४, वर्ष ८, अंक ३–४ ।

६६. ''रामचरितमानस' के कतिपय कूटोन्मुख शब्द'–परिषद् पत्रिका, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, जुलाई १९७१ ई० ।

६७. 'कृष्णभक्ति और सूरसागर'–ब्रजभारती, मथुरा, आषाढ़-भाद्रपद, सं० २००८ वि० ।

६८. 'संगीत कला और ब्रजकाव्य'–ब्रजभारती, मथुरा, आश्विन-मार्गशीर्ष, सं० २००८ वि० ।

६९. 'हिन्दी-मराठी के भिन्नार्थवाची समान शब्द'–परिषद् पत्रिका, बिहार राष्ट्रभाषा परि द्, पटना, जुलाई १९६७ ई० ।

७०. 'हिन्दी और मराठी भाषाओं के संज्ञा-रूपों की तुलना'—भाषा, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली, जून १९६४ ई० ।

७१. 'आधुनिक ब्रजभाषा में संयुक्त क्रियाओं का स्वरूप'-भाषा, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली, मार्च १९६५ ई० ।

७२. 'हिन्दी और तमिळ के कारकीय परसर्ग और विभक्तियाँ'-भाषा, केन्द्रीय निदेशालय, नई दिल्ली, मार्च १९६६ ई० ।

७३. 'हिन्दी और द्रविड़ भाषाओं में पर-प्रत्ययों की स्थिति'-भाषा, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली, दिसम्बर १९६७ ई० ।

७४. 'हिन्दी और मलयालम के पुरुषवाचक सर्वनाम'–भाषा, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली, जून १९६८ ई० ।

७५. 'हिन्दी में अनुस्वार–प्रयोग: सुझाव और समाधान'–भाषा, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली मार्च १९६८ ई० ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७६. 'हिन्दी और द्रविड़ भाषाओं में उद्देश्य एवं विधेय विशेषण'-भाषा, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली, दिसम्बर, १९६९ ई०

७७. 'ब्रजभाषा और गुजराती की शब्दात्मक एवं रूपात्मक तुलना'-भाषा, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालल, नई दिल्ली जून, १९७० ई० ।

७८. 'कारक और विभक्ति की संकल्पना'-केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली, दिसम्बर, १९७२ ई० ।

७९. 'हिन्दी और पंजाबी भाषाओं में अस्तित्ववाची क्रियापद'-भाषा, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली जून, १९७३ ई० ।

८०. 'हिन्दी और नैपाली भाषा की तुलना'-भाषा, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली, दिसंबर, १९७१ ई० ।

८१. 'हिन्दी. उड़िया, बंगाली एवं असमिया भाषाओं में अस्तित्ववाची क्रियाएँ'-भाषा, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली, सितम्बर, १९७४

८२. 'हिन्दी भाषा में व्याकरणीय श्लेष की समस्या और समाधान'-भाषा, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय नयी दिल्ली, मार्च-जून १९७५ ई० ।

८३. 'सन् १९७२ के शोध-प्रबन्धों की समीक्षा'-हिन्दी वार्षिकी, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली, शिक्षा तथा समाज मंत्रालय) में प्रकाशित, सन् १९७५ ई० ।

८४. ब्रजभाषा और उसका शब्द-स्वरूप'-साहित्य-संदेश, आगरा, जुलाई १९५७ ई०

८५ हिन्दी की यौगिक धातुओं पर वैज्ञानिक विचार'-सप्तसिन्धु, पटियाला, अगस्त, १९६१ ई० ।

८६. 'ब्रज के लोक गीतों का दिग्दर्शन'-सप्तसिन्धु, पटियाला, जून १९६२ ई०

८७. 'ब्रजभूमि और हमारे कवि'-त्रिपथगा, लखनऊ, मई, १९५९ ई० ।

८८. 'वस्त्रनिर्माण-कला-सम्बन्धी-ब्रजशब्दावली'-त्रिपथगा, लखनऊ, दिसम्बर, १९६१ ई० ।

८९. 'हिन्दी भाषा की पृष्ठभूमि'-अवन्तिका, पटना, मार्च १९५६ ई० ।

९०. 'मछेरों और मछलियों से सम्बन्धित शब्दावली'-हिन्दी अनुशीलन, भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग, वर्ष-८, अंक — १-२ ।

९१. 'हिन्दी में कारक और क्रियाएँ किधर' ?—अवन्तिका, पटना वर्ष-२, अंक-३ ।

९२. 'परिष्कृत भाषा'—सरस्वती, प्रयाग, वर्ष ५७, अंक ३ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९३. 'हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास'—साहित्य-संदेश, आगरा, वर्ष १७, अंक ६

९४. 'अवधी और ब्रजभाषा की उकारान्त संज्ञाएँ'—साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, १६ जनवरी, सन् १९५३ ई०।

९५. 'हिन्दी व्याकरण में कारक और क्रियाएँ'—साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, १३ दिसम्बर १९५३ ई०।

९६. 'ब्रजमाधुरी के चतुर चितेरे महाकवि सूर'—साप्ताहक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, ९ मई, १९५४ ई०।

९७. 'अहिन्दी प्रांतों के लिए हिन्दी व्याकरण'—साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, मई, १९५५ ई०।

९८. 'बहन जी आप कहती हैं कुछ, और पुस्तक कुछ और'—साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, ७ जुलाई, १९५५ ई०।

९९. 'जोर जबर्दस्ती से भाषाएँ लोकप्रिय नहीं होतीं'—साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, १९ अगस्त, १९५६ ई०।

१००. 'राष्ट्रभाषा हिन्दी की वर्तनी का स्थिरीकरण'—साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, २० जनवरी, १९५७ ई०।

१०१. 'काव्यजीवित वक्रोक्ति, वक्रोक्ति अलंकार और अभिव्यंजना'—हिन्दी अनुशीलन, भारतीय साहित्य परिषद्, प्रयाग, वर्ष ४, अंक ४।

१०२. 'काव्यवृत्ति'—अवंतका (काव्यालोचनांक), पटना, वर्ष २, अंक १, जनवरी १९५४ ई०।

१०३. 'क्या तुलसी सूर से प्रभावित न थे ?'—अवंतिका, पटना, वर्ष २, अंक ५।

१०४. 'कला और काव्य'—कल्पना, हैदराबाद, वर्ष ६, अंक २।

१०५. 'सूरकाव्य में रँगों की संयोजना'—मानवता, अकोला, वर्ष ३ अंक ४।

१०६. 'भारतीय आलोचना-पद्धति और उसकी गति-विधि'—साहित्य-संदेश, आगरा, वर्ष १४, अंक ६।

१०७. 'संस्मरण और श्रद्धांजलि'—रसवन्ती (स्व० पं० श्यामनारायण पाण्डेय-स्मृति अंक), लखनऊ, जुलाई-अगस्त १९५८ ई०।

१०८. 'शब्दमर्मी गद्यकार डा० नगेन्द्र की भाषा'—साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, ४ मार्च, १९६२ ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०९. 'खस और खसखस'–साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, ११ जुलाई, १९५४ ई० ।
११०. 'ब्रजभाषा के मूर्धन्य विद्वान् स्व० डा० धीरेन्द्र वर्मा'–ब्रजभारती, मथुरा, भाद्रपद, सं० २०३० वि० ।
१११. 'आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में फ़ारसी के बहुवचनीय प्रत्यय की छाया'–परिषद् पत्रिका, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, अक्टूबर १९७३ ई० ।
११२. 'आधुनिक युगबोध और रामचरितमानस–आकाशवाणी पत्रिका, नई दिल्ली, ७ जुलाई, १९७३ ई० ।
११३. 'युगपुरुष नेहरू' (कविता)–जनसाहित्य, पटियाला, नवम्बर-दिसम्बर, १९६४ ई० ।
११४. 'ब्रज-मन्दिरों की रासलीला और उसका उद्गम'–धर्म-मार्ग, जम्बू, मई, १९७१ ई० ।
११५. 'ब्रजभाषा और मराठी की ऋजुरूपीय संज्ञक-वचन-प्रक्रिया'–राष्ट्रवाणी, मई, १९६४ ई० ।
११६. 'आचार्य द्विवेदी जी के साथ साहित्यिक वार्तालाप'–सरस्वती-संवाद, आगरा, वर्ष ४-अंक ७
११७. 'काव्य की आत्मा और उसके विवेचक आचार्य'–साहित्य संदेश, आगरा, वर्ष १४, अंक ११, मई १९५३ ई० ।
११८. 'छायावाद और रहस्यवादः विभिन्न मत'—साहित्य संदेश, आगरा, (विशेषांक) वर्ष १५, अंक ७–८ जनवरी. १९५४ ई० ।
११९. 'हम काव्य-वृत्तियाँ किन्हें मानें ?'—साहित्य सन्देश, आगरा, वर्ष १५ अंक ११, मई, १९५४ ई० ।
१२०. 'तुलसी पर सूर का आलोक'–साहित्य संदेश, आगरा, वर्ष १६, अंक ११, मई, १९५४ ई० ।
१२१. 'डा० वासुदेवशरण अग्रवाल कृत 'पदमावत' की संजीवनी टीका'–साहित्य संदेश, आगरा, वर्ष १७, अंक ४ ।
१२२. 'सेनापति और बिहारी'–सरस्वती संवाद, आगरा, वर्ष १ अंक ७ ।
१२३. 'हिन्दी के कृष्ण भक्त मुसलमान कवियों की भक्ति भावना'–साहित्य संदेश, आगरा वर्ष १८, अंक २ ।
१२४. 'हिन्दी के उपन्यासः प्रेमचन्द से पूर्व और पश्चात्'–साहित्य संदेश, आगरा वर्ष १९, अंक १ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२५. 'कृषक जीवन सम्बन्धी-शब्दावली'–हिन्दी-अनुशीलन, भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग, वर्ष ६, अंक १–४।

१२६. 'हिन्दी के दस शब्दों की निरुक्ति'–अवंतिका, पटना, अप्रैल, १६५६ ई०।

१२७. 'राष्ट्रभाषा हिन्दी की वर्तनी का स्थिरीकरण'–साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, २० जनवरी, १६५३ ई०।

१२८. 'अशोकवन': एक समीक्षा गोकुलचन्द्र शर्मा–अभिनंदन ग्रंथ, संवत् २०१४ वि०।

१२६. हिन्दी-कारकों पर वैज्ञानिक विचार'–सप्तसिन्धु, पटियाला, सितंबर, १६३० ई०।

१३०. 'हिन्दी शब्दोच्चारण में अनुनासिकता जो लिखित रूप ग्रहण नहीं करती' –सप्तसिन्धु, पटियायाला, मार्च १६६१ ई०।

१३१. 'पाश्चात्त्य और भारतीय काव्यशास्त्री'–अवंतिका, पटना, अगस्त १६५३ ई०।

१३२. 'रसिया और ढोला'–संस्कृति, नई दिल्ली, पावस, १८८४।

१३३. 'वाल्मीकीय रामायण पर एक सांस्कृतिक दृष्टि'–संस्कृति, नई दिल्ली, हेमन्त, १८८४।

१३४. अष्टछाप के कवियों की सांस्कृतिक देन'–सांस्कृति, नई दिल्ली, ग्रीष्म १८८६ शक०।

१३५. ध्वनि और ध्वनिकाव्य –साहित्य-संदेश, आगरा, अक्टूबर १६५३

१३६. 'सूरकाव्य में रँगों की संयोजना'–मानवता, अकोला–दिसंबर १६५० ई०

१३७. 'हम काव्य-वृत्तियाँ किन्हें मानें'–साहित्य संदेश, आगरा, मई, १६५४ ई०।

१३८. 'तुलसी पर सूर का आलोक'–साहित्य संदेश, आगरा, जुलाई १६५४ ई०।

१३६. 'विरोध, विरोधाभास और विषम अलंकार की विवेचना'–साहित्य संदेश, जून, १६५४ ई०।

१४०. 'वैदिक साहित्य-स्रोत से प्राप्त कृषक-जीवन के कुछ शब्द'–साहित्य संदेश, जून, १६५७ ई०।

१४१. निवन्ध और गद्य-काव्य'–साहित्य सन्देश, आगरा, जुलाई-अगस्त, १६६२ ई०।

१४२. 'हिन्दी के दस शब्दों की निरुक्ति'–अवंतिका, पटना, अप्रैल १६५६ ई०।

१४३. 'संगीतकला और हिन्दी का गीतकाव्य'–कल्पना, हैदराबाद, फरवरी, १६५५ ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४४. 'काव्य की आत्मा और उसके विवेचक आचार्य'–साहित्य सन्देश, आगरा, मई, १९५३ ई० ।

१४५. 'हिन्दी भाषा और उसमें प्रयुक्त शब्दावली'–सरस्वती सवाद, आगरा, नवंबर, १९५५ ई०

१४६. 'हिन्दी भाषा का शब्द-कोश-साहित्य'–(प्रगति विशेषांक), साहित्य संदेश, आगरा, जनवरी-फरवरी १९५८ ई० ।

१४७. 'हिन्दी के शब्द-मर्मी रामचन्द्र वर्मा'–साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, ७ मई, १९६७ ई० ।

१४८. 'स्व० डा० विश्वनाथप्रसाद'—साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, १० दिसम्बर, १९६७ ई० ।

१४९. देश की सभी भाषाएँ एक सूत्र में आबद्ध'–साप्ताहिक, हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, ११ फरवरी, १९६८ ई० ।

१५०. 'हिन्दी के शब्दमर्मी'–साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, २७ मई, १९६७ ई० ।

१५१. 'अनुवाद समस्या का समाधान'–मधुमती, राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम), (विशेषांक) उदयपुर, जनवरी-फरवरी, सन् १९७५ ई० ।

१५२. 'मानस के भावस्रोत और उनका विस्तार'–हिन्दुस्तानी, इलाहाबाद अप्रैल-जून, १९७४ ई० ।

१५३. 'फ़ारसी-बहुवचनीय प्रत्यय की छाया'–परिषद् पत्रिका, पटना, अक्टूबर १९७३ ई० ।

१५४. 'सूरसागर' और 'रामचरितमानस' की क्रियाओं का रूप-साम्य'–हिन्दुस्तानी, इलाहाबाद, अंक ४, भाग ३३ ।

१५५. 'अनुवाद समस्या का समाधान'–मधुमती, राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम), उदयपुर जनवरी-फरवरी १९७५ ई० का विशेषांक ।

१५६. 'हिन्दी-उर्दू के छंद : शास्त्र की तुलना'–सप्तसिन्धु, पटियाला, दिसंबर, सन् १९६२ ई० ।

१५७. 'ब्रजभाषा में 'बाज़' का प्रयोग'–सप्तसिन्धु, पटियाला, अप्रैल, १९६२ ई०

१५८. 'ब्रजलोक-गीतों का दिग्दर्शन'–सप्तसिन्धु, पटियाला, जून, १९६२ ई० ।

१५९. 'राष्ट्रभाषा हिन्दी और ब्रजभाषा में फ़ारसी से आये दो प्रत्ययों की तुलना'–परिषद् पत्रिका, पटना, ४ जनवरी, १९६४ ई० ।

१६०. 'ब्रज संस्कृति के प्रमुख शृंगारः केस और गुदना'–त्रिपथगा, लखनऊ, जौलाई, १९३२ ई० ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६१. 'कहारों-सम्बन्धी ब्रजभाषा-शब्दावली'–त्रिपथगा, लखनऊ।

१६२. 'भाषाविज्ञान क्षेत्र में विख्यात भाषाविद् डा० धीरेन्द्र वर्मा का योगदान'–सप्तसिन्धु, पटियाला, जून, १९६३ ई०।

१६३. 'ब्रजभाषा के लिंग-वचनीय-रूपग्राम'–हिन्दुस्तानी, इलाहाबाद, सन् १९६१ ई०।

१६४. 'तुलसी की समन्वयात्मक भाषा का संदेश'–तुलसीदल, भोपाल, अगस्त, सन् १९६१ ई०।

१६५. 'हिन्दी भाषा का शब्द-समूह और कुछ तत्सम शब्द'–सप्तसिन्धु, पटियाला, अक्टूबर, १९६३ ई०।

१६६. 'तीन बलिदानी (कविता)'–जन साहित्य, पटियाला, मार्च. १९६४ ई०।

१६७. 'हिन्दी भाषा के 'का', 'की', 'के' और प्रादेशिक भाषाओं में उनके समानान्तर रूप'–हिन्दुस्तानी, इलाहाबाद, १९६२ ई० का तृतीय अंक।

१६८. 'छायावाद और रहस्यवादः विभिन्न मत', साहित्य संदेश, आगरा, जनवरी-फरवरी, १९५४।

१६९. 'काव्यशास्त्रीय आलोचना में बाबू जी का दृष्टिकोण'–सरस्वती-संवाद माघ, शुक्ल ४, सं० २०२२ वि०।

१७०. 'ब्रजभाषा के बीस शब्दों की निरुक्ति' अभिनव भारती, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, जनवरी, १९६०।

१७१. 'ब्रज मन्दिरों की रासलीला और उसका उद्‌गम'–धर्ममार्ग, जम्मू, मई, १९७१।

१७२. 'दर्शन और जीवन-दर्शन'–धर्ममार्ग, जम्मू, जून १९७२ ई०।

१७३. 'ऋषियों की आयुवाले ये शब्द'–कादम्बिनी, नई दिल्ली, फरवरी, १९६५ ई०

१७४. 'पाश्चात्य एवं भारतीय काव्यशास्त्री और काव्य का मूल तत्त्व'–सप्तसिन्धु, पटियाला, जून १९६४ ई०।

१७५. 'रामचरितमानस' की भाषा में चन्द्रबिन्दु (अनुनासिकता) के विभिन्न अर्थ'–कल्पना, हैदराबाद, वर्ष ७, अंक १।

१७६. 'ईश्वर' शब्द का महत्त्वपूर्ण इतिहास'–कल्पना, हैदराबाद, वर्ष ७ अंक १।

१७७. 'कृषि-सम्बन्धी-शब्दावली का तुलनात्मक अध्ययन'–आजकल, दिल्ली।

१७८. 'उर्दू', 'हिन्दी' से कोई पृथक् भाषा नहीं'–त्रिपथगा, सूचना विभाग, लखनऊ, मार्च, १९५८ ई०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१७९. 'ब्रजकोर–क्षेत्र के लोकाचार'–साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली।

१८०. 'राष्ट्रभाषा के कृषि सम्बन्धी कुछ शब्द'–साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली।

१८१. 'गुरु जी ! क्या तुलसीदास जी ने अरबी और अंग्रेज़ी भी पढ़ी थी ?'–साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली।

१८२. 'ब्रज में होलिकोत्सव पर गाये जानेवाले लोकगीत और उनकी शब्दावली'–साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली।

१८३. 'हिन्दी-शब्दोच्चारण में अनुनासिकता, जो लिखित रूप ग्रहण नहीं करती'–सप्तसिन्धु, पटियाला, मार्च, १९६१ ई०।

१८४. 'तुलसी की अवधी में 'मारहु' और 'मारहुँ' क्रियाएँ'–भाषा, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली, सितम्बर १९६६ ई०।

१८५. 'भाषाविज्ञान: नवीन दृष्टिकोण'–साहित्य परिचय (आधुनिक साहित्य विशेषांक), डा० रांगेय राघव मार्ग, आगरा, जनवरी १९६७ ई०।

१८६. 'हिन्दी की अकारान्त संज्ञाएँ और उनके विकल्प'–भाषा, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली, त्रैमासिक, नवम्बर, १९६१ ई०।

१८७. 'हिन्दी की वर्तनी में 'ऐ' और 'औ' ध्वनियों की समस्या का एक वैज्ञानिक अध्ययन'–भाषा (त्रैमासिकी), केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली, दिसम्बर १९६२ ई०।

१८८. 'हिन्दी के कुछ तत्सम शब्द और वर्तनी का स्थिरीकरण'–भाषा, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली, सितम्बर १९६३ ई०।

१८९. 'कृषि-सम्बन्धी-शब्दावली का तुलनात्मक अध्ययन'–साहित्य (त्रैमासिक), संपा० शिवपूजन सहाय एवं नलिनविलोचन शर्मा, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन और बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् का सम्मिलित शोध-समीक्षा-प्रधान त्रैमासिक मुखपत्र, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, जुलाई, १९५८ ई०।

१९०. 'अपभ्रंश का जन्म और उसका हिन्दी पर प्रभाव'–सम्मेलन पत्रिका, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पौष-फाल्गुन, १८७९ शक।

१९१. 'निबंध और गद्यकाव्य'–साहित्य-संदेश, आगरा, जुलाई-अगस्त, १९६२ ई०।

१९२. 'आलोचना की आस्था में डा० नगेन्द्र'–साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, ११ दिसम्बर, १९६६ ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९३. 'ब्रज, ब्रजेश और ब्रज-वैभव'–त्रिपथगा, लखनऊ, मई १९५९ ई० ।

१९४. 'जागृतिः जागर्ति'–कल्पना, हैदराबाद, सितम्बर, १९५५ ई० ।

१९५. 'आपकी आज्ञानुसार' बनाम 'आपके आज्ञानुसार'–साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, ४ फरवरी १९६८ ई० ।

१९६. 'हिन्दी भाषा के कवियों में रसखान का स्थान'–सरस्वती-संवाद, आगरा पृष्ठ ५५ से ५८ तक ।

१९७. 'शब्द और शब्द-शक्तियाँ'–सरस्वती संवाद, आगरा, पृष्ठ २२२ से २२६ तक ।

१९८. 'राह चलत गोपिन ते अटकै, बानि बुरी नागर नट की'–साप्ताहिक हिन्दुस्तान नई दिल्ली, ३० मार्च, १९५७ ई० ।

१९९. 'एकत्र' और 'एकत्रित', साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, ७ अप्रैल, १९५७ ई० ।

२००· 'काव्यशास्त्रीय आलोचना में डा० नगेन्द्र का योगदान'–साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, २२ दिसम्बर, १९५७ ई० ।

२०१. 'डा० नगेन्द्रकृत 'रससिद्धान्त' की समीक्षा'–सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग १९६५ ई० ।

२०२. 'हिन्दी कवियों में होली-फाग के चित्रण'–साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, २ मार्च, १९५८ ई० ।

२०३. 'गोस्वामी जी की भाषा और उसका संदेश'–साप्ताहिक हिन्दुन्तान, नई दिल्ली, २४ अगस्त, १९५८ ई०

२०४. 'पं० किशोरीदास वाजपेयी कृत हिन्दी शब्दानुशासन' पर एक समीक्षात्मक दृष्टि'–साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली ।

२०५. 'पै' तो पँवाड़ा बन गई;'–साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, ७ जून १९५८ ई० ।

२०६. 'सैकड़ों विद्यार्थियों के प्रेरणा-पुंज स्व० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल'–साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली. २८ अगस्त, १९६६ ई०

२०७. 'महान् शब्दमर्मी स्व० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल'-स्वतन्त्र भारत, लखनऊ, ७ अगस्त, १९७२ ई० ।

२०८. 'द्विवेदी युग के साहित्यकार 'स्व० पं० गोकुलचन्द्र शर्मा'–नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली (पुण्य तिथि पर) ।

२०९. 'डा० नगेन्द्र का व्यक्तित्व'–नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली, ९ मार्च, १९६६ ई० ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२१०. 'मानस चतुश्शती समारोह पर सोरों में भी सारस्वत पीठ बने'—नवभारत टाइम्स, २० सितम्बर, १९६९ ई० ।

२११. 'भावहीन अद्यतन हिन्दी-कविता का जीवनः एक प्रश्न चिह्न, नवभारत टाइम्स नई दिल्ली, ६ मार्च, १९७१ ई० ।

२१२. 'हमारे अस्त्र-शस्त्र और उनसे सम्बन्धित शब्दावली'—त्रिपथगा, लखनऊ, सितम्बर, १९५८ ई० ।

२१३. 'हिन्दी-गद्य में आचार्य शुक्ल और उनकी आलोचना-पद्धति'—सरस्वती संवाद, आगरा अगस्त-सितम्बर, १९५८ ई०

२१४. 'ब्रज के लोकगीत एवं उनसे सम्बद्ध शब्दावली', त्रिपथगा, लखनऊ, सितम्बर १९६५ ई०

२१५. 'स्व० वासुदेवशरण अग्रवालः एक मूल्यांकन'—माध्यम, हिन्दी साहित्य, सम्मेलन, प्रयाग, फरवरी, १९६७ ई०

२१६. 'ब्रजभाषा के जन्म-संस्कारों की शब्दावली'—त्रिपथगा, लखनऊ, मार्च १९६७ ई० ।

२१७. 'विभिन्न सगुण सम्प्रदाय और उनके तिलक'—त्रिपथगा, लखनऊ, जून, १९६७ ई० ।

२१८. 'हिन्दी और द्रविड़ भाषाओं में परसर्ग'—त्रिपथगा, लखनऊ, जून, १९६६ ई० ।

२१९. 'हिन्दी के 'वालम' और गुजराती के 'बालह' का पूर्व जन्म'—राष्ट्र-भारती, वर्धा, मार्च १९६८ ई०

२२०. 'भावहीन नयी कविता काल की कसौटी पर नहीं ठहर सकेगी'—राष्ट्रभारती वर्धा, जून, १९६८ ई० ।

२२१. 'मीराँबाई की भाषा का स्वरूप'—युग प्रभात, कालीकट, मई, १९६६ ई०

२२२ 'अपभ्रंश और कुछ भारतीय आर्य भाषाएँ'—कल्पना, हैदराबाद, दिसम्बर, १९६० ई०

२२३. 'वे सेतु थे—कादम्बिनी, नई दिल्ली, अक्टूबर १९६६ ई० ।

२२४. 'जीवन का अन्तिम स्वरूप (कविता)'—शाकंभरी, सहारनपुर, जून, १९६८ ई०

२२५. 'इस धरा के फूल और धून एक हैं (कविता)—शाकंभरी, सहारनपुर, जुलाई, १९६८ ई० ।

२२६. 'ऋषियों की आयुवाले ये शब्द'—कादम्बिनी, हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली, फरवरी, १९६५ ई० ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२२७. 'दो कविताएँ (मैं, तुम्हारा पराक्रम)'–हिमप्रस्थ, लोक संपर्क निदेशालय, हिमाचल प्रदेश, एलर्ज़ली, शिमला—१७१००२ (हि० प्र०), अक्टूबर, १९७७ ई० ।

२२८. 'आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में फ़ारसी के बहुवचनीय प्रत्यय'—परिषद् पत्रिका, अंक अक्टूबर, १९७३ ई०, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् पटना–४

२२९. 'मानस के भाव-स्रोत और उनका विस्तार'–हिन्दुस्तानी, अंक अप्रैल, जून, १९७४, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद ।

२३०. 'अनुवाद-समस्या का समाधान'–मधुमती, अंक जनवरी, फर्वरी, १९७५ ई०, राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम), उदयपुर ।

२३१. 'शब्द और उसकी संस्कृति'–मधुमती, अंक अप्रैल १९७६ ई०, राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम), उदयपुर ।

२३२. 'विचार और कर्म (कविता)'–जीवन साहित्य, अंक दिसम्बर १९७७ ई०; सस्ता साहित्य मंडल, एन ७७, कनाट सर्कस, नई दिल्ली—११०००१

२३३. 'आत्मरूप ज्येष्ठाय नमः'–मरु भारती, अंक जुलाई—अक्टूबर, १९७७ ई० बिड़ला एजूकेशन ट्रस्ट पिलानी, (राजस्थान) ।

२३४. 'प्रगति के चरण' (कविता)–जीवन साहित्य, फरवरी १९७८ ई०, सस्ता साहित्य मण्डल, एन ७७, कनाट सर्कस, नई दिल्ली ११००१

२३५. 'मेरी डायरी के कुछ पन्ने'–तीर्थंकर, (मुनि श्री विद्यानंद विशेषांक), अप्रैल, १९७४ ई०, १४ भोपाल कंपाउंड (सरवटे बस स्टेशन के सामने) इंदौर—४५२००१ (म० प्र०)

२३६. 'प्रगति के चरण' (कविता)–जीवन साहित्य, फरवरी, १९७८ ई०, सस्ता साहित्य मण्डल, एन-७७, कनाट सर्कस, नई दिल्ली—१

२३७. 'भाषाविज्ञान-कोश (संपादक डा० भोलानाथ तिवारी) की समीक्षा'–हिन्दी वार्षिकी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सन् १९६३–६४ ।

२३८. 'हिन्दी के शोध-प्रबंध (१९७२ ई०)'—हिन्दी वार्षिकी, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय (शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार), पश्चिमी ब्लॉक–७, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली—११००२२, सन् १९७२ ई० ।

२३९. हिन्दी-अनुवाद समस्या का समाधान'–हिमप्रस्थ, लोकसंपर्क निदेशालय, हिमाचल प्रदेश एलर्ज़ली, शिमला–१७१००२२, फरवरी, १९७८ (पृष्ठ २१ से २६ तक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२४०. 'शब्दार्थमर्मी मानसकार तुलसीदास'—हिमप्रस्थ, जनवरी, १९७८ ई०, लोक संपर्क निदेशालय, हिमाचल प्रदेश, एलर्ज़ली शिमला—१७१००२।

२४१. 'हिन्दी-अनुवाद-समस्या का समाधान (दूसरी किश्त), हिमप्रस्थ, लोक-संपर्क निदेशालय, हिमाचल प्रदेश, एलर्ज़ली शिमला—१७१००२, मार्च, १९७८ ई०।

२४२. 'हम शुद्ध एवं स्पष्ट हिन्दी कैसे लिखें ?'—(पहली किश्त), हिमप्रस्थ, लोकसंपर्क निदेशालय, हिमाचल प्रदेश, एलर्ज़ली, शिमला—१७१००२, जून, १९७८ ई०।

२४३. हम शुद्ध एवं स्पष्ट हिन्दी कैसे लिखें ?'—(दूसरी क़िश्त), हिमप्रस्थ, जुलाई, १९७८ ई० एलर्ज़ली शिमला।

२४४. अमूर्त के कुशल मूर्तिकार महाकवि तुलसी'—हिमप्रस्थ, लोकसंपर्क निदेशालय, हिमाचल प्रदेश, एलर्ज़ली, शिमला, सितम्बर १९७८ ई० (पृष्ठ ५ में)।

२४५. 'भाषा-बोध और काव्यानंद'—सम्मेलन पत्रिका, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, अंक पौष-फाल्गुन १८९८ शक० संवत्।

२४६. 'पिछले दशक में हिन्दी-कथा-साहित्य की दिशा'—हिमप्रस्थ (मासिक), जनवरी १९७९ ई०, लोक संपर्क निदेशालय, हिमाचल प्रदेश, शिमला—३।

२४७. 'रामचरितमानस में भूतकालिक क्रिया के कुछ विचित्र प्रयोग'—'हिन्दुस्तानी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद, जुलाई—दिसम्बर, १९७७ ई०, (पृष्ठ ५८ से ६३ तक)

२४८. 'भारतीय भाषाओं में श्लेषात्मक वाक्य'—भाषा (त्रैमासिक), सितंबर-दिसंबर, १९७८,, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, शिक्षा तथा समाज कल्याण, भारत सरकार, नई दिल्ली।

******

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक के नाम पत्र

(१) आचार्य पं० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी का पत्र

संपादक के नाम

हजारीप्रसाद द्विवेदी, **रवीन्द्रपुरी, वाराणसी–५**
कार्यवाहक उपाध्यक्ष, दिनांक २३–११–७८ ई०
हिन्दी-संस्थान, (उत्तरप्रदेश-राज्य-सरकार)
लखनऊ (उ० प्र०)

प्रिय डाक्टर साहब,

यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि भाषा-शास्त्र के सुप्रसिद्ध विद्वान् **डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन'** के महत्त्वपूर्ण पत्रों का एक संग्रह **'संस्कृति, साहित्य और भाषा'** शीर्षक से पुस्तकाकार के रूप में प्रकाशित हो रहा है। डा० सुमन जी वस्तुतः बहुत परिश्रमी और तपोनिष्ठ अध्यापक, लेखक तथा विद्वान् हैं। इस अवसर पर आप मेरी हार्दिक बधाई और शुभ कामनाएँ उन्हें दें!

आशा है आप स्वस्थ होंगे। सस्नेह—

डा० त्रिलोकीनाथ व्रजबाल, आपका
श्रीभवन, मंडी रामदास, मथुरा, (उ०प्र०) (ह०) **हजारीप्रसाद द्विवेदी**

(२) पं० श्रीनारायण जी चतुर्वेदो का पत्र

संपादक के नाम

५३, खुर्शेद, बाग
लखनऊ—४
२४-११-७८ ई०

प्रिय व्रजवाल जी,

डा० सुमन के पत्रों के प्रकाशन के सम्बन्ध में आपका पत्र मिला। यह योजना बहुत अच्छी है; किन्तु याद रहे पत्र विशुद्ध **साहित्यिक और स्तरीय** हों। मेरे पास उनका कोई पत्र नहीं है। वैसे भी इतने पत्र आते हैं कि उनका रखाव एक समस्या है। आपके आयोजन की सफलता की हार्दिक कामना!

श्री डा० त्रिलोकीनाथ व्रजबाल, आपका
श्रीभवन, मंडी रामदास, मथुरा (उ०प्र०) (ह०) **श्रीनारायण चतुर्वेदी**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) डा० बनारसीदास जी चतुर्वेदी का पत्र

संपादक के नाम

फीरोज़ाबाद, (उ०प्र०)
३/१२/७८

प्रिय भाई शाण्डिल्य जी,

प्रणाम।

कृपा-पत्र मिला।

खेद है कि मेरा पत्र-व्यवहार बन्धुवर **सुमन जी** से बहुत कम हुआ है। और जो भी एकाध पत्र उनके आये होंगे, वे पत्रों के समुद्र में गोता खा गये।

पर मैं **सुमन जी** की कठोर सतत साहित्यक साधना का क़ायल हूँ। मुझे पता है, डा० वासुदेवशरण जी ने उनसे बहुत परिश्रम कराया था। यद्यपि भाई वासुदेवशरण जी उम्र में मुझसे छोटे थे, पर मैं उन्हें गुरु-तुल्य मानता था।

मेरे जनपद-आन्दोलन को शास्त्रीय पृष्ठभूमि **आचार्य वासुदेवशरण** ने ही प्रदान की थी। इस प्रकार सुमन जी तथा मैं दोनों गुरु-भाई भी हैं। उनकी शक्ति से मैं परिचित हूँ।

संस्कृति, साहित्य और **भाषा** की भूमिका में ब्रजमंडल का—खास तौर पर अलीगढ़ का—उल्लेख होना ही चाहिए। 'शंकर' जी उसी जगह के थे, और सत्यनारायण जी 'कविरत्न' का जन्म भी वहीं हुआ था। स्व० हरिशंकर जी को भी श्रद्धांजलि अर्पित की जाए। सुमन जी का सम्बन्ध श्री हरिशंकर जी शर्मा से निश्चित ही होगा।

अलीगढ़ जनपद के लिए कोई साहित्यिक कार्यक्रम तैयार कीजिए। भाई सुमन जी के साथ दूसरों को भी स्मरण कर लिया जाए। ग्वालियर से 'मंगल प्रभात' का **टीकमगढ़-दर्शन**, मूल्य ४०), निकला है। **अलीगढ़-दर्शन**' भी निकाला जाए; पर वह कार्य बहुत अच्छा हो! सुमन जी के साथ-साथ अलीगढ़-जनपद की साहित्य-सेवाओं का स्वरूप भी हिन्दी-जगत् के समक्ष आ सके, तो सोने में सुगन्ध आ जाएगी।

डा० शिवकुमार शाण्डिल्य,
६/१३३ II, प्रेसकालोनी, अलीगढ़–२०२००१

भवदीय
(ह०) **बनारसीदास चतुर्वेदी**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक का आत्म-निवेदन

पत्र-लेखन-कला का भी साहित्य में विशिष्ट स्थान है। यह एक ऐसी कला है, जिसका सामाजिक तथा साहित्यिक—दोनों ही दृष्टियों से बहुत बड़ा महत्त्व है।

सामान्यत: पत्र तीन प्रकार के होते हैं—(१) **व्यक्तिगत पत्र** (२) **व्यावसायिक पत्र** (३) **सरकारी पत्र**।

मेरे ये पत्र इन तीनों से भिन्न हैं, जो 'साहित्यिक पत्र' कहे जा सकते है। हाँ, दो-चार वाक्य इन पत्रों में ऐसे अवश्य मिल जाएँगे, जिनसे व्यक्तिगत सम्बन्धों की झलक भी मिल जाएगी। इस तरह ये मेरे '**व्यक्तिपरक सहित्यिक-पत्र**' कहे जा सकते हैं।

साहित्य-सर्जना की मूल बीज-शक्तियाँ दो ही हैं—(१) **स्फुरणा-शक्ति**, जो स्वत: स्फुरित होती है। (२) **प्रेरणा-शक्ति**, जो किसी के द्वारा प्रेरित होकर सर्जना के लिए क्रियाशील बनती है। प्रस्तुत पत्र प्रेरणा-शक्ति के द्वारा ही साकार रूप ग्रहण कर सके हैं। इस पत्र-साहित्य की सर्जना के प्रेरक तत्त्व मेरे आदरणीय मित्र और प्रिय शिष्य ही रहे हैं। वास्तव में तो इस सर्जना के मूलत: प्रमुख-प्रेरक मेरे श्रद्धेय गुरुदेव (स्व०) डा० **वासुदेवशरण जी अग्रवाल** ही हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ के पत्रों को लिखने के लिए जो कलम मुझे श्रद्धेय गुरुवर से मिली थी और जिस आशा से उन्होंने मुझे दी थी, उसके सम्बन्ध में महाकवि ग़ालिब के एक शेर के आधार पर मैं यहाँ इतना ही निवेदन कर सकता हूँ—

"लिख तो दिये ये ख़त, जो क़लम उनसे मिला।
हक़ तो यह है, कि **हक़** अदा न हुआ॥"

—(ग़ालिब के शेर में उलट-फेर)

'**संस्कृति, साहित्य और भाषा**' [जिज्ञासा और समाधान] नाम का यह ग्रंथ मेरे उन्हीं पत्रों का संकलन है, जो मैंने सन् १९५५ ई० से १९७८ ई० तक समय-समय पर अपने मित्रों और शिष्यों के नाम उनकी जिज्ञासाओं के उत्तर में लिखे हैं। इन पत्रों में बहुसंख्यक पत्र वे हैं, जो मेरे एम० ए० (**हिन्दी**) तथा पी-एच० डी० के विद्यार्थियों के प्रश्नों के उत्तरों के रूप में लिखे गये हैं। सब प्रश्न **संस्कृति, साहित्य** या **भाषा** से ही सम्बद्ध हैं। इसीलिए इन्हें '**जिज्ञासा और समाधान**' कहा जाना भी उपयुक्त लगता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ पत्र ऐसे भी हैं, जो मैंने किसी व्याज से उन साहित्यकारों की साहित्य-सेवाओं के सम्बन्ध में लिखे हैं, जिनसे मैं प्रभावित हुआ हूँ। यदि मैं ऐसा न करता तो उन कृती साहित्यकारों के कृतित्व के प्रति मेरी कृतघ्नता ही मानी जाती।

सर्व प्रथम मैं अपने शत-शत प्रणाम स्व० गुरुवर **डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल** की आत्मा को अर्पित करता हूँ, जिनसे मुझे साहित्यिक पत्र लिखने की मूल प्रेरणा प्राप्त हुई थी। **डा० अग्रवाल जी** भी साहित्यकारों को प्रमुख विषयों पर बड़े विस्तार से साहित्यिक पत्र लिखा करते थे।

मेरे अध्यापक का जीवन विशेष रूप से **सासनी, मेरठ, अलीगढ़, खुर्जा** और **मद्रास,** में व्यतीत हुआ है। मैंने सन् १९४४ ई० से अध्यापन-कार्य प्रारम्भ कर दिया था। तभी से पत्र-पत्रिकाओं में लिखता भी रहा हूँ। **एन० आर० ई० सी० कालिज, खुर्जा** (उ० प्र०); अलीगढ़ **मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़** और **हिन्दी स्नातकोत्तर अध्ययन एवं अनुसंधान सस्थान,** **दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास** के एम० ए० (हिन्दी) के तथा हिन्दी-पी-एच० डी० शोध के विद्यार्थी **संस्कृति, साहित्य,** और **भाषा** से सम्बद्ध जो प्रश्न समय-समय पर मुझसे पूछते रहे हैं, उनके **उत्तर** पत्रों द्वारा मैं उन्हें प्रेषित करता रहा हूँ। अन्य मित्रों तथा सम्वन्धियों ने भी अपनी जिज्ञासाएँ मुझे यदा-कदा लिखी हैं। उनके भी उत्तर पत्रों के द्वारा दिये गये हें। वे भी इस संकलन में समाविष्ट हैं।

सन् १९६० ई० से सन् १९७५ ई० तक (लगभग १५ वर्ष) मैं **केन्द्रीय हिन्दी-निदेशालय (भारत सरकार), दिल्ली** में पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण हेतु एक **भाषाविद् सदस्य** के रूप में हिन्दी-सेवा करता रहा हूँ। वहाँ के कुछ मित्रों के प्रश्नों के उत्तर भी मेरे इस पत्र-संग्रह में मिलेंगे। वे प्रश्न प्राय: **भाषा** तथा **शब्दों** से ही सम्बद्ध हैं। भारतवर्ष के अन्य विश्वविद्यालयों के शोधार्थी तथा विदेशों के अधीती जिज्ञासु भी मुझसे अपनी शंकाओं को पूछते रहे हैं। पत्रों के द्वारा उनकी साहित्यिक तथा भाषिक शंकाओं का निवारण जैसा बन सका है, पत्रों द्वारा किया गया है।

कुछ प्रश्नात्मक जिज्ञासाएँ तो ऐसी थीं, जिनका समाधान बुद्धि की अपेक्षा हृदय से ही अधिक अच्छा किया जा सकता था। उनका उत्तर मैंने हृदय की वाणी में ही दिया है।

बुद्धि से हृदय सदैव बलवान् रहा है। बुद्धि अविश्वासिनी, अनिश्चयात्मक और तार्किक होती है। उसके निर्णय कुछ समय बाद बदल भी जाते हैं। श्रद्धा-आस्थाहीन होने के कारण बुद्धि द्वन्द्वों में ही पलती रहती है। हृदय सरल है,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धा-विश्वास का केन्द्र है। एक हृदय की बात दूसरे हृदय में तुरन्त समाती भी है और फिर जीवन में रस बनकर कर्म के सौन्दर्य को शक्ति प्रदान करती है।

मेरा अपना अनुभव यही है कि मानव के जीवन-पथ का पथप्रदर्शक जितना हृदय है, उतनी बुद्धि नहीं है। जीवन की विषम परिस्थितियों में बुद्धि केवल अनिश्चय के झूले पर झुलाती है, या झकझोरती है; किन्तु हृदय शान्ति तथा सुख की गोद में बिठाकर विश्वास के पंखें से धीरे-धीरे ठंडी हवा करता है। हृदय की आवाज़ जीवन की धरित्री पर सुरधुनी हैं। बुद्धि झंझावात है, वात्याचक्र है।

जिस आत्मविश्वास को स्वेट मार्टन ने मनुष्य का सबसे बड़ा मित्र बताया था, उसका निवास हृदय की भूमि पर ही तो है। ईश्वरानुभूति भी श्रद्धा-विश्वास पर ही आधृत है। इसीलिए गीता (१८/६१) में ईश्वर को हृदय-देश में स्थित बताया गया है।

बुद्धि जब ऊँची उठती है, तब अहं के गिरिशृंग पर चढ़कर शेष संसार को निम्नतम और हेय समझती है। हृदय जब विशाल बनता है, तब उसमें शेष संसार प्रेम से समाने लगता है। हृदय की विशालता बुद्धि का भी शिव-नेत्र खोल देती है।

वह विशाल हृदय संपूर्ण संसार को प्यार करता है। प्यार की मधुरिमा उस हृदय को तथा संसार को सुख-शान्ति प्रदान करती है और संपूर्ण मानव-जीवन में रस की मधुर धाराएँ प्रवाहित करती है। गीता (७/११) में श्रीकृष्ण ने अपने को धर्माविरुद्ध काम कहा है; वहीं प्रेम है। हृदय के प्यार और आत्मा की निष्कलंकता को लेकर प्रवहमान जीवन ही तो वास्तव में जीवन है। कविवर **दिनकर** ने कहा है—

"जीवन उनके लिए मधुरता की उज्ज्वल रसधार है।
जिनकी आत्मा निष्कलंक है और किसी से प्यार है।।"

जिनकी प्यारभरी निष्कलंक आत्मा है, वे ही तो महात्मा हैं। ऐसे ही तो इस दुनिया में **सन्त** नाम से विख्यात हुए हैं। ऐसे ही विशालहृदय सन्तों ने विश्व का कल्याण किया है। कहा भी है—

"नाल्पे सुखं अस्ति, भूमैव सुखम्" —(छन्दो० ७/२३/१)

विशालहृदयता ही मानव को सत्कर्म के लिए प्रेरित करती है। तभी मनुष्य **कर्म में अकर्म** और **अकर्म में कर्म** की अनुभूति करते हुए **कर्मयोगी** बनता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन पत्रों के माध्यम से मेरी लेखनी हिन्दी की कैसी सेवा कर सकी है, इसे तो अधिकारी विद्वान् ही ठीक समझेंगे, "निज कवित्त केहि लाग न नीका"।

किसी प्रश्न के उत्तर के मूल में उत्तरदाता के ज्ञान, अनुभव तथा मनोभूमि की प्रमुखता होती है। इसीलिए एक प्रश्न के उत्तर अनेक भी हो सकते हैं।

सुवेल पर्वत पर पूर्णिमा की रात्रि में पूर्व दिशा में चन्द्रमा को देखकर भगवान् **राम** ने **सुग्रीव, विभीषण, अंगद** और **हनूमान्** से प्रश्न (रामचरितमानस, लंका०, १२/४) किया कि "भाइयो ! बताइए कि इस चन्द्रमा में जो श्यामता है, वह क्या है ?"

भगवान् राम का प्रश्न एक था, लेकिन इसके उत्तर अलग-अलग थे—

(१) **सुग्रीव** ने बताया कि "चन्द्रमा में पृथ्वी की परछाईं प्रकट हो रही है"

सुग्रीव नये-नये राजा बने हैं। पृथ्वी के स्वामी अभी ही तो हुए हैं। इसीलिए उन्हें सदा पृथ्वी का ही ध्यान रहता है।

(२) **विभीषण** ने कहा कि "चन्द्रमा को राहु ने मारा है, चोट का वही काला निशान उसके हृदय पर दिखाई देता है।"

विभीषण रावण की लात खाकर भगवान् की शरण में आये हैं।

(३) **अंगद** ने कहा कि "ब्रह्मा ने रति-मुख के निर्माण के लिए चन्द्रमा का सार-भाग निकाल लिया है। उसी रिक्त स्थान में से आकाश की नीलिमा दृष्टिगोचर हो रही है।"

बाली को मारकर रामचन्द्र जी ने सुग्रीव को राजा बना दिया है। अंगद का प्राप्य छिन गया; इसीलिए अंगद वैसा कह रहे हैं।

(४) **हनूमान् जी** ने कहा कि "प्रभो ! चन्द्रमा आपका दास है। इसके हृदय में आपकी मूर्ति दिखायी दे रही है।"

हनूमान् रामचन्द्र जी के अनन्य दास हैं। नित्य ही भगवान् की मूर्ति उनके हृदय में रहती है।

उपर्युक्त उत्तर अपनी-अपनी मनोभूमि और वृत्तियों के अनुसार हैं।

मेरे मित्रों और शिष्यों ने **संस्कृति, साहित्य और भाषा** के सम्बन्ध में जितने जिज्ञासात्मक प्रश्न किये हैं, उनके उत्तर उत्तरदाताओं के ज्ञान, मनोभूमियों तथा वृत्तियों के अनुसार अलग-अलग हो सकते हैं। भगवान् राम के एक प्रश्न के उत्तर भी अलग-अलग दिये गये। चारों ने चार भिन्न-भिन्न बातें कहीं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक उसी प्रकार इस ग्रंथ के पाठकों की सेवा में मेरा निवेदन है कि मुझसे जो प्रश्न पूछा गया है, उसका उत्तर मैंने अपने अध्ययन और अपनी मनोभूमि के आधार पर ही दिया है। प्रत्येक निर्दिष्ट प्रश्न का उत्तर वास्तव में कितना उचित और उपयुक्त है—इसे तो मनीषी विद्वान् ही ठीक तरह समझेंगे। मैंने तो उत्तर देना अपना सारस्वत धर्म समझा, और जैसा बना, वैसा उत्तर दे दिया।

जैसा कुछ है, अच्छा या बुरा; विद्वानों के समक्ष है—**"स्वधर्मे निधनं श्रेयः।"**

हाँ, एक बात और है, जिसका सम्बन्ध हमारे धर्मग्रन्थों के निम्नांकित आख्यान से है :—

"प्रजापति की तीन सन्तानें थीं—(१) **देव** (२) **मनुष्य** (३) **दैत्य**। एक दिन प्रजापति ने अपनी तीनों सन्तानों को अलग-अलग भिन्न-भिन्न समय पर बुलाया। पहले देवों को बुलाया और कहा **'द'**। फिर मनुष्यों को बुलाया और कहा **'द'**। बाद में दैत्यों को बुलाया और कहा **'द'**।"

प्रजापति के प्रथम **'द'** का अर्थ था **'दमन'**, जिसकी आवश्यकता देवों के लिए थी। द्वितीय **'द'** का अर्थ था 'दान', जो मनुष्यों के लिए ज़रूरी था। तृतीय **'द'** का अर्थ था **'दया'**, जो दैत्यों के जीवन के लिए अनिवार्य थी।

मेरे कुछ शिष्यों ने **ज्ञान, कर्म, भक्ति, धर्म** आदि के संबंध में कुछ प्रश्न पूछे हैं और अपने लिए कुछ करणीय कर्मों की जिज्ञासाएँ भी व्यक्त की हैं। प्रजापति ने जिस तरह देवों, मनुष्यों और दैत्यों की प्रवृत्तियों को देखकर उनके करणीय कर्मों का संकेत किया था, कुछ-कुछ उसी प्रकार मैंने भी प्रश्नकर्ता की प्रवृत्ति और स्वभाव को दृष्टि-पथ में रखकर जिज्ञासाओं का समाधान किया है। **ज्ञान, कर्म, भक्ति, धर्म** आदि की व्याख्याएँ युग-धर्म तथा व्यक्ति-स्वरूप के अनुसार भी होती हैं और होती रही हैं। वैदिक काल से लेकर आज तक **मानव-समाज** के लिए, अथवा **मानव-व्यक्ति** के लिए धर्म के, अर्थात् करणीय कर्म के स्वरूप बदलते रहे हैं। वास्तव में कल्याणकारी करणीय कर्म का नाम ही **धर्म** है।

साहित्य-सर्जना के प्रमुखतः मूल कारण तीन माने जा सकते हैं—(१) **प्रतिभा** (२) **व्युत्पत्ति** (३) **अभ्यास**। प्रस्तुत पत्रों की सृष्टि के मूल कारण विशेष रूप से अन्तिम दो ही हैं; अर्थात् **व्युत्पत्ति** और **अभ्यास**। इन दोनों को मेरी **स्मृति** से बल मिला है। **'स्मृति'** को **प्रतिभा** की छोटी बहिन भी कहा जा सकता है।

प्रकृति की कोख से ही **'संस्कृति'** और **'विकृति'** का जन्म होता है। मानव समाज की उदात्त एवं उत्कर्षमयी प्रकृति का नाम ही **संस्कृति** है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त ।

'संस्कृति' से सम्बद्ध जो प्रश्न किये गये हैं, उनमें कुछ प्रश्न **भारतीय संस्कृति** से भी सम्बद्ध हैं। मेरी राय में **'भारतीय संस्कृति'** में निम्नांकित संस्कृतियाँ समाविष्ट हैं—(१) **वैदिक संस्कृति** (२) **पौराणिक संस्कृति** (३) **जैन-बौद्ध-संस्कृति** (४) **सन्त-संस्कृति** (५) **इस्लाम—ईसाइयत-संस्कृति**।

संस्कृति-खंड में कुछ ऐसे भी पत्र हैं, जो आधुनिक भारतीय जीवन की मूल्यहीनता को अनावृत करते हैं।

आज हमें उपाध्याय, आचार्य, पिता और माता के रूप में अपने-अपने दायित्व समझने हैं। मनुस्मृति (२/१४५) में "उपाध्याय से दस गुना आचार्य को, आचार्य से सौगुना पिता को और पिता से सहस्र गुना माता को गौरवशाली माना गया है।" इस गौरव के अधिकारी ये व्यक्ति किसी विशिष्टता के कारण ही बने थे। मनु स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—

> **"उपाध्यायात् दशाचार्यः आचार्याणां शतं पिता।**
> **सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते ।।"**
>
> —(मनु०, अ० २/श्लोक १४५)

साहित्य तथा **भाषा** से सम्बद्ध पत्रों के उपरान्त जो **'परिशिष्ट खंड'** है, वह वास्तव में आज के अध्यापक के लिए पठनीय है। श्रद्धेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', लाला भगवानदीन 'दीन', आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि की परम्परा में अपने को अध्यापक माननेवाला व्यक्ति जिस अस्मिता के दंभ-गिरि-शृंग पर आरूढ़ होकर छिछला ढोंग-ढकोसला दिखा रहा है और कूटनीतिमयी घटिया राजनीति से शिक्षा का सत्यानाश कर रहा है, उसने यदि **परिशिष्ट** के पत्रों को पढ़ लिया, तो वे पत्र उसे आत्मनिरीक्षण के लिए प्रेरित अवश्य करेंगे।

अपने शिष्यों के आग्रह पर मैंने अपने निर्देशन में अपने कुछ प्रिय शिष्यों को अपने पत्र-संकलन का संपादन करने की अनुमति दे दी थी। उनमें मेरे प्रिय बन्धु (डा०) **त्रिलोकीनाथ 'व्रजबाल'**; प्रिय शिष्य (डा०) **शिवकुमार शाण्डिल्य**; प्रिय शिष्य (डा०) **कमलसिंह** और मेरी बड़ी बेटी (डा०) **शारदा शर्मा** ने सम्पादन का कार्य-भार सँभाला है। मेरे एक और शिष्य प्रियवर **बिशनकुमार शर्मा** एम० ए० ने पत्रों की स्वच्छ प्रतिलिपियाँ की हैं। बेटी **मधु शर्मा** और प्रिय **बिशनकुमार शर्मा** ने ग्रन्थों से सम्बद्ध व्यक्ति नाम-अनुक्रमणी भी तैयार की है।

इन सबके परिश्रम का फल ही यह प्रस्तुत कृति है। माता वीणापाणि इन सबका कल्याण करें। सामग्री जैसी कुछ है, आपकी सेवा में प्रस्तुत है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र-प्रकाशन-परामर्शदात्री-समिति की स्नेहमयी सहायता एवं सद्भावना से ही यह पत्र-संकलन हिन्दी-जगत् के समक्ष इतनी जल्दी आ सका है। समिति के सदस्यों के नाम ग्रंथ के अंत में दिये गये हैं। समिति के सम्मानित सदस्यों के प्रति मैं आभारपूर्वक अपना हार्दिक धन्यवाद अर्पित करता हूँ।

मेरे अग्रजतुल्य समादरणीयवर **डा० नगेन्द्र जी ने** अपने व्यस्त जीवन में से समय निकालकर इस ग्रंथ की भूमिका लिखी है—इस कृपापूर्ण सहज स्नेह के लिए मैं उनका ऋणी हूँ, उपकृत हूँ, आभारी हूँ। उनके प्रति वाल्मीकि के श्रीराम के शब्दों में विनयपूर्वक यही निवेदन कर सकता हूँ—

"मदङ्गे जीर्णतां यातु
यत् त्वया उपकृतं 'सखे'!
नरः प्रत्युपकाराणां
आपत्सु आयाति पात्रताम् ॥"
—(वाल्मी० रामा०, उत्तर०, सर्ग ४०/२४)

(ये उपर्युक्त शब्द श्रीराम के द्वारा उपकारी मारुतनन्दन हनुमान् के प्रति कहे गये हैं।)

जिन देश-विदेश के संतों और सुप्रसिद्ध विद्वानों से मुझे समस्या-समाधान-मूलक पत्र प्राप्त हुए है, उनमें विशेष रूप से सर्वश्रीवर मुनि **एलाचार्य विद्यानन्द जी महाराज, पूज्य श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी महाराज; पं० श्रीनारायण जी चतुर्वेदी; पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी, डा० बाबूराम जी सक्सेना; आचार्य पं० किशोरी दास जी वाजपेयी; पं० अयोध्यानाथ जी शर्मा; पं० सीताराम जी चतुर्वेदी; डा० उदयनारायण जी तिवारी; पं० कन्हैयालाल जी मिश्र 'प्रभाकर', श्री भक्तदर्शन जी; डा० श्यामनारायण जी मेहरोत्रा,** आदि को मैं आभारपूर्वक प्राणामांजलि निवेदित करता हूँ।

जिन स्वर्गीय साहित्यकारों की लेखनी से लिखे हुए पत्रों से मुझे साहित्य-सेवा की प्रेरणा मिली है, उनमें **श्रद्धेयवर बाबू श्यामसुन्दरदास जी, पं० अयोध्यासिह जी उपाध्याय 'हरिऔध', पूज्य पं० जीवनदत्त जी ब्रह्मचारी महाराज, पं० गोकुलचन्द्र जी शर्मा, डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल, महापंडित राहुल सांकृत्यायन जी, डा० धीरेन्द्र जी वर्मा, डा० सुनीतिकुमार जी चाटुर्ज्या, पं० हरिशंकर जी शर्मा; आचार्य हजारीप्रसाद जी द्विवेदी** आदि मनीषियों की स्वर्गस्थ आत्माओं को मैं अपनी सविनय सप्रणाम श्रद्धांजलि सादर समर्पित करता हूँ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं उन सभी प्रश्नकर्ता आत्मीयजनों को धन्यवाद देता हूँ, जिनके प्रश्नों के उत्तरों का साकार रूप यह कृति है। मेरे आदरणीय मित्रों और प्रिय शिष्यों ने मुझसे प्रश्न करके उत्तरों के लिए मुझे प्रेरित किया, उसके लिए मैं उनका बहुत आभारी हूँ; क्योंकि पत्र-लेखन के माध्यम से मैं अकेला शून्य-एकान्त में भी अपने उन मित्रों और शिष्यों का मिलन-सुख प्राप्त करता रहा हूँ।

अपनी ओर से जिसे पत्र लिखा जाता है, उससे आधा मिलन तो हो ही जाता हैं। जब प्रश्न पूछनेवाले की जिज्ञासा-पूर्ति के लिए पत्र लिखा जाए, तब तो प्रश्नकर्त्ता से पूरा ही मिलन समझिए।

मेरे आदरणीय मित्र **डा० विजयेन्द्र स्नातक** का एक पत्र मुझे अभी मिला है। उसमें लिखा गया है—"पत्र-शैली में लिखा साहित्य तो मन के अधिक निकट होता है। पत्र आत्मीयता का पोषक अंग है। जब किसी मित्र का पत्र आता है, तो लगता है कि साक्षात् मित्र ही आकर अंक भर रहा हैं। यही पत्र की आत्मीयता है।' —(दिनांक २२-७-७६, स्नातक-सदन, ए-५/३, राणाप्रताप बाग, दिल्ली-११०००७)।

जिन मित्र को अधिक संख्या में पत्र लिखे गये हैं, वे हैं **डा० गोवर्धननाथ शुक्ल** (अलीगढ़) और जिन आदरणीय विद्वान् से अधिक पत्र मुझे मिले हैं, वे हैं **आचार्य पं० किशोरीदास जी वाजपेयी** (कनखल)। डा० शुक्ल के पत्रों ने साहित्य के अवगाहन में, और आचार्य पं० वाजपेयी जी के पत्रों ने भाषा के विवेचन में मुझे सर्वाधिक प्रवृत्त किया है।

गीता में तीन प्रकार के तपों का उल्लेख है—(१) **मानस तप** (२) **शारीर तप** (३) **वाङ्मय तप। 'स्वाध्याय'** को योगेश्वर श्रीकृष्ण ने **वाङ्मय तप** के अन्तर्गत माना है (गीता १७/१५)।

मेरे ये पत्र स्वाध्याय-प्रसूत तो हैं ही, साथ ही साथ मानसिक एवं शारीरिक साधना-समन्वित भी। इसलिए यदि मैं अपने इन पत्रों को उपर्युक्त तीनों तपों से प्रसूत माता **सरस्वती** का **प्रसाद** मान लूँ, तो विद्वान् मुझे कृपया क्षमा कर दें!

जिस त्रिगुणात्मिका तपश्चर्या के द्वारा मुझे जो यह सारस्वत-प्रसाद मिला है, उसका वास्तविक श्रेय श्रद्धेय गुरुवर, प्रिय मित्रों और शिष्यों को ही है। माता वीणापाणि मेरे उन शिष्यों का मंगल करें! गुरुवर को प्रणाम, मित्रों को नमस्कार।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी ग्रन्थ को अर्थावगति के साथ मनोयोगपूर्वक पढ़ना **'ज्ञानयज्ञ'** कहलाता है, गीता (४/३३; १८/७०) प्रमाण है। मेरा विश्वास है कि हिन्दी के प्रबुद्ध विद्यार्थी यदि इस ग्रंथ के पत्रों के द्वारा **ज्ञानयज्ञ** करते रहेंगे, तो उन्हें अनेक सारस्वत लोकों के दर्शन होंगे, और मुझे भी परम सन्तोष और सुख मिलेगा।

हिन्दी के उदीयमान विद्यार्थी और विद्याव्यासंगी पाठक इससे लाभान्वित हो सके, तो मैं अपने परिश्रम को सफल मानूँगा। ग्रंथ का अध्ययन करने के उपरान्त यदि वे मुझे मेरे अभावों और भूलों को बताने की कृपा करेंगे, तो मैं आभारी होऊँगा।

मित्रों को और शिष्यों को जो कभी जैसा कुछ लिखा गया था, आज वही हिन्दी-जगत् के समक्ष मुद्रित रूप में प्रस्तुत है। अभावों और त्रुटियों के लिए क्षमा !

वाल्ट ह्विटमैन ने अपनी एक पुस्तक के संबंध में कहा था—**"जो इस पुस्तक को छुएगा, वह एक मनुष्य का स्पर्श करेगा।"**

यदि मेरा दुरभिमान न माना जाए, तो मैं अपने संतोष और सुख की अनुभूति के साथ अपने पाठकों से विश्वासपूर्वक यह निवेदन करना चाहता हूँ कि यदि वे इस ग्रंथ के **संस्कृति-खंड** को नेत्रों से छुएँगे, तो वे एक सु-मानव के सु-मन का स्पर्श करेंगे।

संस्कृति-खंड में जहाँ **ज्ञान**, **कर्म**, और **भक्ति** की व्याख्याएँ पाठकों को पढ़ने के लिए मिलेंगी, वहाँ उन्हें **विज्ञान** की प्राचीन और आधुनिक अवधारणाएँ भी मालूम होंगी। अध्यात्म में **विज्ञान** का एक विशिष्ट अर्थ है—

अध्यात्मरामायण (अर०, सर्ग ४/३८, ३९) में बताया गया है कि "जब ऐसा बोध होता है कि मैं बुद्धि, प्राण, मन, देह, अहंकार आदि से पृथक् नित्य शुद्ध बुद्ध चेतन आत्मा हूँ, तब वह **ज्ञान** है। जब इसकी साक्षात् अनुभूति होती है, तब वह **विज्ञान** है।" आज Science के अर्थ में भी **विज्ञान** शब्द का प्रयोग हो रहा है। ऐसी अनेक बातों की जानकारी पाठकों **को संस्कृति-खंड** से प्राप्त होगी।

साहित्य-खंड में मेरा हृदय बुद्धि से कुछ आगे भी निकल गया है, **भाषा-खंड** में मनोविकार-सम्बन्धी मिलते-जुलते शब्दों के अन्तर को भी स्पष्ट किया गया है जैसे **क्रोध** और **मन्यु** में क्या अंतर है ? इनकी भेदक रेखाएँ क्या हैं ? ऐसी बातें इसी खंड में मिलेंगी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मन्यु' को मानव-जीवन के लिए आवश्यक माना गया है। अनौचित्य के प्रति क्रोध का नाम ही 'मन्यु' है। यजुर्वेद (अ० १९/मं०९) में उल्लेख है— "मन्युरसि मन्युं मयि धेहि।" क्रोध त्याज्य है; लेकिन मन्यु ग्रहणीय है।

मैं अपने आदरणीय मित्रों और प्रिय शिष्यों को कितना सन्तुष्ट कर सका हूँ, इसे अब हिन्दी-जगत् भी देखने की कृपा करे और मेरी भूलों को भी बताए; क्योंकि ये पत्र घरेलू बातों से सम्बद्ध, या केवल राज़ी-खुशी के नहीं हैं, कुछ पृथक् हैं; अपने में बिलकुल अलग-से।

प्रश्नों के पत्रोत्तरों की यात्रा में मैं अपने श्रद्धेय विद्वानों की जयन्तियाँ भी मनाते हुए चलता रहा हूँ। साहित्य की गंगा में स्नान के लिए की गई यात्रा के मार्ग में कृपया इसे मेरी 'डंडोती' भी समझिए।

मैंने अपने आदरणीय मित्रों, प्रिय शिष्यों तथा श्रद्धेय साहित्यकारों को किस तरह और कहाँ स्मरण किया है; इसका पता ग्रंथ के अन्त में दी हुई **व्यक्ति-नाम-अनुक्रमणी** से सुगमतापूर्वक लग सकता है।

अभावों और भूलों की क्षमा माँगते हुए आत्म-निवेदन के इन विनम्र शब्दों के साथ यह ग्रंथ हिन्दी-जगत् की सेवा में प्रस्तुत है।

हिन्दी-विभाग
अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय
अलीगढ़, (भारत)
पिन—२०२००१
तुलसी-जयन्ती, १९७२ ई०

विद्वज्जन—कृपाकांक्षी,
अम्बाप्रसाद 'सुमन'
(विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग-सेवा के अन्तर्गत)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका

[प्रो० नगेन्द्र, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली]

पत्र-साहित्य में स्रष्टा साहित्यकार जितनी वास्तविकता, ईमानदारी और सहज अभिव्यक्ति के साथ हमारे समक्ष उपस्थित होता है, उतना साहित्य की अन्य विधाओं में प्रायः नहीं हो पाता।

पत्र-साहित्य लेखक का ऐसा कृतित्व है, जिसके द्वारा उसके अंतःस्वरूप को सही रूप में आँका जा सकता है। कहा जाता है कि किसी लेखक की शैली उसके व्यक्तिगत निबन्धों के दर्पण में स्पष्टतः प्रतिबिम्बित होती है। इससे भी अधिक सही बात यह है कि पत्र-लेखक के व्यक्तित्व को हम उसके पत्रों की शैली में अधिक सहज रूप में देख सकते हैं। शैली यदि कृतिकार की मनोवृत्ति का बिम्ब है, तो पत्र-साहित्य उसे प्रतिबिम्बित करनेवाला निर्मल मुकुर है।

हिन्दी-पत्र-साहित्य के प्रवर्तकों में **शिवशंभु शर्मा** के चिट्ठों के लेखक **बा० बालमुकुन्द गुप्त** और **श्री नन्दकिशोर तिवारी** का नाम उल्लेखनीय है। **पं० पद्मसिंह शर्मा** ने भी इस विधा को प्राणवन्त बनाया था।

सन् १९४० ई० में **श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन** का पत्र-साहित्य '**भिक्षु के पत्र**' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। यह व्यक्तिगत पत्रों के स्वतंत्र संकलन के रूप में था।

हिन्दी साहित्य और हिन्दी भाषा के महत्त्व और मर्म को उद्घाटित करने वाले पत्र-लेखकों में **आचार्य पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी** और **डा० वासुदेवशरण अग्रवाल** भी अभिनन्दनीय हैं। कविवर **श्री सुमित्रानन्दन पंत** के पत्र भी हिन्दी के काव्य-साहित्य की दिशाओं को आलोकित करते हैं। डा० अग्रवाल ने पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम जो पत्र लिखे हैं, उनमें जनपदीय आन्दोलन को शास्त्रीय आधार प्रदान किया गया है। **पं० बनारसीदास चतुर्वेदी** ने हिन्दी-पत्र-साहित्य को व्यापक पीठिका प्रदान की है।

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' का प्रस्तुत पत्र-संग्रह जिज्ञासा-समाधान के रूप में '**संस्कृति, साहित्य और भाषा**' शीर्षक से प्रकाशित किया जा रहा है। इसमें चार खण्ड हैं—(१) **संस्कृति** (२) **साहित्य** (३) **भाषा** और (४) **परिशिष्ट**।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले तीन खण्डों में निर्दिष्ट विषयों से सम्बद्ध प्रमुख समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया गया है।

लगता है, पत्र-लेखन की प्रेरणा सुमन जी को डा० वासुदेवशरण अग्रवाल से प्राप्त हुई है। उन्हीं से प्रेरित होकर डा० सुमन ने सन् १९५५ से १९७८ ई० तक समय-समय पर जो पत्र अपने मित्रों और शिष्यों को लिखे हैं, वे ही इस संग्रह में संकलित हैं। प्रश्नकर्ता डा० सुमन के मित्र तथा शिष्य हैं; और उत्तरदाता डा० सुमन स्वयं हैं।

दिनांक-क्रम से संपूर्ण पत्र **तीन खण्डों** में समाविष्ट हैं। **चतुर्थ** खंड 'परिशिष्ट' शीर्षक से है, जिसमें देश-विदेश के उन मूर्धन्य विद्वानों के पत्र हैं, जो उनकी लेखनी से डा० 'सुमन' के नाम लिखे गये हैं। इस खंड के पत्र भी **संस्कृति, साहित्य और भाषा** के स्वरूप पर प्रकाश डालते हैं।

संस्कृति खंड के पत्र **संस्कृति, दर्शन, ज्ञान कर्म, भक्ति, नीति, समाज, व्यष्टि-धर्म, समष्टि-धर्म, राष्ट्र-धर्म विश्व-धर्म** आदि अनेक विषयों की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। इस खंड में अध्यात्म के गूढ़ विषयों को भी पत्रों द्वारा सरल एवं सरस शैली में प्रमाण-संदर्भपूर्वक अभिव्यक्त किया गया है। इनमें अनेक पत्रों की भाषा बड़ी ललित, प्रभावोत्पादक एवं चित्ताकर्षक है।

संस्कृति खंड में कुछ पत्र ऐसे भी हैं जिनमें **ज्ञान, कर्म** और **भक्ति** की तथा **कर्म, अकर्म** और **विकर्म** की व्याख्याएँ सरल, स्वच्छ, ललित, प्रभावी एवं तर्कपूर्ण शैली में सप्रमाण प्रस्तुत की गयी हैं।

डा० सुमन ने जिज्ञासाओं के समाधान में अपना अभिमत व्यक्त करते समय संदर्भ-प्रमाण के रूप में वेद, वेदांग, उपनिषद्, दर्शन, जैनागम, वाल्मीकिरामायण, महाभारत, गीता, मनुस्मृति, रामचरितमानस आदि अनेक ग्रन्थों से अभीष्ट उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। अतः ग्रन्थ के इस खंड (संस्कृति-खंड) को प्राचीन साहित्य के शोध-मार्ग का सफल निर्देशक भी कहा जा सकता है।

साहित्य खंड में हिन्दी साहित्य की **विधाओं** (निबंध, संस्मरण, रेखाचित्र आदि), **शिल्प, शैली** आदि से सम्बद्ध प्रश्नों का अच्छा समाधान प्रस्तुत किया गया है। **रस, लालित्य, सौन्दर्य, बिम्ब, प्रतीक, उपमान, यथार्थ, आदर्श, आधुनिकता, प्रमुख साहित्यिकवाद** आदि की स्पष्ट व्याख्याएँ भी पाठक को इसी खंड में प्राप्त होंगी। हिन्दी के विशिष्ट साहित्यकारों तथा शैलीकारों के सम्बन्ध में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी इस खंड में समीक्षात्मक संकेत यथास्थान मिलते हैं। यह खंड संक्षिप्त रूप में हिन्दी-साहित्य के स्वरूप की व्याख्या प्रस्तुत करता है।

भाषा खंड में प्रायः ऐसे पत्र संकलित हैं, जो **हिन्दी, ब्रजभाषा, गुजराती, मराठी**, पंजाबी तथा **अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं** के रूपात्मक स्वरूप का निर्वचन करते हैं। इस खंड को **'भाषा और भाषाविज्ञान'** नाम से भी अभिहित किया जा सकता है। इस खंड में कुछ पत्र ऐसे भी हैं, जो हिन्दी-शोध की प्रविधि और प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हैं। ऐसे पत्र शोधार्थियों के लिए निश्चय ही उपादेय सिद्ध होंगे।

भाषा-खंड में ही एक पत्र है, जो 'शब्द-अर्थ' के सम्बन्ध में डा० योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण' को लिखा गया है। वास्तव में वह पत्र विषय-विवेचन की दृष्टि से बहुत सारगर्भित एवं महत्त्वपूर्ण है।

डा० सुमन के इन पत्रों का कथ्य और शिल्प प्रभावी, प्रांजल, सरस, सुस्पष्ट, प्रमाणसंयुत एवं प्रवाहपूर्ण है। जिज्ञासु पाठक अपनी सारस्वत जिज्ञासाओं का समाधान जानने के लिए जब इन्हें पढ़ता है, तब उसे पर्याप्त संतोष मिलता है और मन भी रमता है।

सबसे अधिक बढ़िया बात इन पत्रों में यह है कि डा० सुमन ने अपनी युक्तियों और तर्कों को सबल एवं प्रामाणिक बनाने के लिए अपने कथन की संपुष्टि में उपयुक्त एवं अभीष्ट उदाहरण एवं उद्धरण पूर्ण संदर्भ के साथ प्रस्तुत किये हैं।

'संस्कृति, साहित्य और भाषा' नाम का यह ग्रंथ हिन्दी-पत्र-साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण एवं अभिनव योगदान है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी-जगत् डा० सुमन के इस ग्रन्थ का बहुत आदर करेगा। मैं उनके उज्ज्वलतर भविष्य की मंगल-कामना करता हूँ।

सूर-पंचशती-वर्ष,
१९७९ ई०

नगेन्द्र

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय

हिन्दी-पत्र साहित्य का उद्भव और विकास

पत्र और उसका महत्त्व—

'**पत्र**' शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है, जैसे—पत्ता, लिखा हुआ कागज़, चिट्ठी या ख़त, समाचारपत्र, पृष्ठ, अभिलेख, धातु की चद्दर आदि।[१] प्रस्तुत लेख में '**पत्र**' से हमारा तात्पर्य 'ख़त' या '**लैटर**' से है।

'**पत्र**' साहित्य की एक विशिष्ट विधा है। यह एक शैली भी है। पत्रात्मक शैली लेखन की कसौटी मानी जाती है।

जब लेखक अपने किसी मित्र, परिचित या अल्प परिचित व्यक्ति को अपने संबंध में या किसी महत्त्वपूर्ण समस्या के सम्बन्ध में उसके तथा अपने सांस्कृतिक, साहित्यिक अथवा भाषिक दृष्टिकोण से उचित आदर, सम्मान या स्नेह का भाव प्रकट करते हुए निजी तौर पर मात्र सूचना, जिज्ञासा या समाधान लिखकर भेजता है और उत्तर की अपेक्षा रखता है तो वह पत्र-साहित्य का सर्जन करता है।

समाचार-पत्र और ख़त (Letter) में समीप का संबंध है। "अखबारों—मैगज़ीनों के साथ '**पत्र**' शब्द जोड़ देने का कारण संभवतः यह होगा कि '**पत्र**' अर्थात् '**लैटर**' किसी बात को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक या एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने का माध्यम है।[२]

लोकगीतों में प्रेमिकाओं के पत्रों को उनके प्रेमियों के पास भेजे जाने के उल्लेख मिलते हैं। एक लोक-गीत में कथन है—"**ख़तु लै जा गंगाराम हमारे गौने कौ।**"

लक्ष्मण ने रावण के लिए एक पत्र लिखा था, जो शुक-सारण नाम के दूतों को दिया गया था। 'रामचरितमानस' में इसका उल्लेख है—"**रावन कर दीजहु यह पाती।**" (सुन्दर० ५२/८)

अंग्रेज़ी साहित्य के अधीती डा० फूलबिहारी शर्मा ने C. E. Vulliamy, 'English Letter Writers' 1945, R. W. Ramsay, 'Some English

---

१ संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर—सं० रामचन्द्र वर्मा, पृ० ५७६ (ष० सं०)

२ हिन्दी साहित्य कोश (भाग १)—सं० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ४७

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Letters Writers of 17th Century', 1936 और Alyall 'English Letter Writing in the 19th Century', 1915 के आधार पर हमें बताया है कि 'इंगलैंड के मध्यकालीन लेखकों में गद्यकार इरास्मस का पत्र-विषयक साहित्य ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यवान् है। सम्राट् जूलियस सीज़र के समकालीन राजनेता और समीक्षक सिसेरो का पत्रसंबद्ध-लेखन महत्त्व-पूर्ण है।

अंग्रेज़ी साहित्य में सत्रहवीं शताब्दी में पत्रों का महत्त्व इतना बढ़ गया था कि कथा-साहित्य में भी यथार्थ की भावना उत्पन्न करने के लिए पत्रों को माध्यम के रूप में अपनाया गया। उपन्यासकार रिचार्डसन ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'पामेला' (१७४० ई०) द्वारा पत्रों पर आधारित उपन्यासों की परंपरा चलायी।

अंग्रेज़ साहित्यकारों में कवि टामस ग्रे, लार्ड बाइरन, कवि शेली, निबन्धकार चार्ल्स लैम्ब और विचारक कार्लायल ऐसे ही पत्र-लेखकों में हैं।

गद्यकार स्विफ्ट द्वारा लिखित ड्रेपियर्स लैटर्स(१७२४ ई०) तथा लार्ड चैस्टर फ़ील्ड द्वारा अपने पुत्र को लिखे गये सज्जनोचित व्यवहार-सम्बन्धी पत्र शुद्ध साहित्यिक रचनाएँ हैं।''

नवम्बर १९६३ ई० में 'ज्ञानोदय' कलकत्ता ने अपना एक विशेषांक 'पत्रांक' नाम से प्रकाशित किया। सामग्री-संकलन की दृष्टि से यह असाधारण अंक था। विशेषांक की पृष्ठ संख्या ३१२ होते हुए भी उसका परिशिष्टांक दिसंबर १९६३ ई० में निकाला गया। उसमें ५० से अधिक देशी-विदेशी पत्र हैं।

पत्रों में एक अद्भुत रहस्य और अनूठा आकर्षण होता है। **'ज्ञानोदय'** के सम्पादक शरद देवड़ा के शब्द हैं—''यह आपका रोज़मर्रा का ही अनुभव होगा कि दफ्तर से लौटकर आप अपने घर की सीढ़ियों पर क़दम रखने के पहले अपने 'लैटर बक्स' पर एक उत्सुक नज़र डालना नहीं भूलते.....................उसे खाली पाकर भी आपके मन में यह आशा करवटें लेती रहती हैं कि शायद.... ....और इसी आशा के वशीभूत आप कमरे में पहुँचते ही एक खोजती-सी दृष्टि मेज़ पर डालते हैं............. और अगर आपको वहाँ एक बंद लिफ़ाफ़ा रखा दिख जाता है, तो तत्काल आपके दिल की धड़कनें कुछ तेज़ हो जाती हैं।''[3]

---

३ ज्ञानोदय (पत्र-अंक) नवम्बर, १९६३, पृ० ६

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रों के प्रति आकर्षण, पढ़ने की बेताब जिज्ञासा और पढ़ने में साधारणीकृत आनन्द का प्रमाण इस बात में भी निहित है कि लोग चोरी-छिपे दूसरों के भी पत्र खोलकर पढ़ने को उतारू हो जाते हैं।

सन् १९५६ ई० में **डा० वासुदेवशरण अग्रवाल** द्वारा बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखे गये एक पत्र में पत्रों का महत्त्व द्रष्टव्य है—"मुझे तो डाक का रोग है। पत्रों से रस चूसता हूँ। मेरी समझ में किसी व्यक्ति की भरकम साहित्यिक कृति आँधी के समान है। उसके साहित्यिक पत्र उन झोकों के समान हैं, जो धीरे से आते-जाते रहते हैं और वायु की थोड़ी मात्रा साथ लाने पर भी साँस बनकर जीवन देते हैं। अन्न की उत्पत्ति और मेघों की वृष्टि के लिए अंधड़ भी चाहिए, पर मंद वायु में जो फरहरी है, उसका भी कुछ अनूठा आनन्द हैं।"[४]

पत्र की सबसे बड़ी महत्ता उसके सहज-स्वाभाविक सत्य में निहित है। कोई व्यक्ति जिन तथ्यों का निरूपण अपनी बड़ी से बड़ी कृतियों में भी नहीं कर पाता, वे उसके पत्रों में अनायास ही उद्घटित हो जाते हैं। इसलिए अगर हम किसी व्यक्ति के वास्तविक स्वरूप को समझना चाहते हैं, तो उसके पत्रों को देख लें। **श्री हरिशंकर शर्मा** ने अपने एक लेख में इस विधा का निरूपण इस प्रकार किया है—"यों सब चिट्ठियाँ, चाहे वे कलात्मक न हों, हृदय की भाषा होने के कारण महत्त्वपूर्ण और उपयोगी होती हैं। उनसे निस्संदेह किसी का भाव, स्वभाव, प्रभाव और व्यक्तित्व जानने में बड़ी सहायता मिलती है।"[५]

वास्तविकता यह है कि पत्र की घनिष्टता, हार्दिकता, अनौपचारिकता एवं वैयक्तिकता के कारण लेखक की अनुभूति में सरलता और गहराई आ जाती है, उसकी कथनी में सत्यवत् यथार्थ की अनुभूति होती है।

अगर पत्र किसी विशिष्ट साहित्यकार के हैं, तब तो सोने में सुगन्ध की बात है। **डा० शिवनाथ शुक्ल** के अनुसार "साहित्यिक प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति के पत्रों में उसकी सहजात प्रतिभा स्पष्ट दर्शन होते हैं। उसकी विशिष्ट शैली, संप्रेषण-क्षमता, अनुभूति की सत्यता और गहनता, उसकी भाषा—सभी से उसके व्यक्तित्व की पृथक् विशेषताओं का आभास मिलता है।"[६]

सामान्यत: पत्रों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—एक तो **व्यक्तिगत** रूप से लिखे गये वे पत्र, जिन्हें प्रकाशित करने-कराने का

४ हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, काशी ना० प्र० स०, (चतुर्दश भाग), पृ० ५१९
५ आजकल, अप्रेल १९५४ ई० (चिट्ठियों का महत्त्व, हरिशंकर शर्मा)
६ हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, काशी ना० प्र० स० (चतुर्दश भाग), पृ० ५०७

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई उद्देश्य नहीं होता, और अगर प्रकाशित करा भी दिये जाएँ तो उनका कोई सार्वजनिक महत्त्व नहीं होता। दूसरे, वे पत्र जो व्यक्तिगत होते हुए भी **सार्वजनिक** रूप से महत्त्व के होते हैं और उनके लेखन में किसी न किसी रूप में उनके प्रकाशन का उद्देश्य निहित रहता है; अथवा बाद में हो जाता है। यहाँ दूसरे प्रकार के हिन्दी-पत्रों के उद्भव और विकास का विवेचन ही अभीष्ट है।

उद्भव और विकास—"पत्र-लेखन मानव समाज की अनिवार्य आवश्यकता है। मनुष्य ने जिस दिन कोई लिपि उपकल्पित कर लेखन-कला के विकास द्वारा पहले-पहल अपने हृद्गत भावों को व्यक्त किया होगा, संभवतः उसी दिन सबसे पहले पत्र भी बीज रूप में उसकी मानस-भूमि में जम आया होगा। इस पत्र का फलक तब कोई शिला-तल, वृक्ष का तना, भूर्जपत्र, तालपत्र या कमलपत्र जैसा सावकाश पदार्थ रहा होगा।"[७]

सबसे प्राचीन पत्र २००० ई० पू० में बेबीलोन के प्राप्त होते हैं। पाँचवी शती ई० पू० में पश्चिम की पत्र-लेखन-कला पर्याप्त विकसित हो गयी थी।[८] दूत द्वारा प्रेषित पत्रों की परंपरा भारत में भी बहुत पुरानी है; और हिन्दी में भी यह परम्परा उसकी उत्पत्ति के साथ ही साथ रही होगी; किन्तु प्रकाशित रूप में हिन्दी-पत्र-साहित्य बहुत पुराना नहीं है।

(क) द्विवेदी-युग—पत्रिकाओं में प्रकाशित सबसे पहले हिन्दी-पत्रों में **बालमुकुन्द गुप्त** के **'शिवशम्भु के चिट्ठे'** तथा 'चाँद' (१९२७ ई०) **में** प्रकाशित **विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक** के **'दुबेजी की चिट्ठी'** प्रमुख हैं। 'शिवशम्भु के चिट्ठे' तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्ज़न के निरंकुश शासन के विरोध में सन् १९०४ ई० से १९०५ ई० तक **'भारत मित्र'** और **'ज़माना'** में प्रकाशित होते रहे। चिट्ठे में आठ पत्र हैं **'बनाम लार्ड कर्ज़न'**, **'श्रीमान का स्वागत'**, **'बैसराय के कर्त्तव्य'**, **'पीछे मत फेंकिये'**, **'आशा का अंत'**, **'एक दुराशा'**, **'बिदाई संभाषण'**, **'बंग विच्छेद'**।

बालमुकुन्द जी ने 'शिवशम्भु शर्मा के कल्पित नाम से इन पत्रों में लार्ड कर्ज़न के अहंकार पर व्यंग्यपूर्ण प्रहार किया है। **ज्योतीन्द्रनाथ बैनर्जी** ने इनका अंग्रेज़ी अनुवाद करके पुस्तक रूप में प्रकाशित कराया था। "तत्कालीन

---

७ हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (चतुर्दश भाग), पृ० ५०५

८ मानविकी पारमाषिक कोश (साहित्य खण्ड), सं० डॉ० नगेन्द्र, पृ० १५८

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीतिक चेतना के सजीव इतिहास के रूप में, व्यंग्यपूर्ण चुटीली चुस्त और चलती हुई शैली में लिखे गये ये चिट्ठे हिन्दी साहित्य में सदैव अमर रहेंगे।'[९]

पुस्तक-रूप में प्रकाशित सबसे पहला हिन्दी-पत्र-संकलन सन् १९०४ ई० में **महात्मा मुंशीराम** द्वारा सम्पादित **'स्वामी दयानन्द सरस्वती के पत्र'** के नाम से उपलब्ध है। इसमें महर्षि दयानन्द जी के पत्रों की अपेक्षा अन्य व्यक्तियों के पत्रों का ही बाहुल्य है। इसके पश्चात् सन् १९०९ ई० में **पं० भगवद्दत्त** ने बड़े परिश्रम से **'ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार'** का संपादन किया। पत्रों का यह संग्रह स्वामी दयानन्द जी की दूरदर्शिता के साथ ही साथ तत्कालीन समाज की स्थिति पर भी पूर्ण प्रकाश डालता है।

द्विवेदी-युग का पत्र साहित्य परिमाण-अल्प होते हुए भी परिणाम में विपुल एवं विस्फोटक है।

(ख) छायावाद युग—सन् १९२२ ई० में **सतीशचन्द्र** द्वारा सम्पादित **'पत्रांजलि'** पत्र-संग्रह प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष **श्री रामकृष्ण आश्रम,** देहरादून से **'विवेकानन्द-पत्रावलि'** का प्रकाशन हुआ। १९१२ से १९३० ई० तक के सुभाषचन्द्र-बोस के, लगभग १५३ पत्रों का संग्रह तथा जवाहरलाल नेहरू द्वारा लिखित पत्रों का अनुवाद **प्रेमचन्द्र** द्वारा हिन्दी-अनुवाद **'पिता के पत्र पुत्री के नाम'** (१९३०) राजनीतिक एवं सामाजिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रकाशन हैं। १९३१ ई० में ही **शान्तिप्रिय आत्माराम** ने **'आलमगीर के पत्र'** नाम से औरंगज़ेब के ऐतिहासिक पत्रों का संपादन किया।

पत्र-साहित्य का प्रकाशन तो इस युग में भी अधिक नहीं हुआ; किन्तु द्विवेदी युग में उत्पन्न प्रस्तुत विधा की परम्परा को आगे बढ़ाने, स्वरूप को परिष्कृत करने एवं हिन्दी-साहित्य में पत्र साहित्य की महत्ता को प्रकट करने की दृष्टि से इस युग के कतिपय प्रकाशन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

छायावादी युग में एक परम महत्त्वपूर्ण उल्लेख, पत्र-साहित्य के सम्बन्ध में यह है कि सन् १९२५–२६ ई० के **'चाँद'** मासिक (इलाहाबाद) में **'स्मृतिकुंज'** उपन्यास धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास के लेखक थे बिहार के **श्री नन्दकिशोर तिवारी**। इस उपन्यास की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह थी कि सम्पूर्ण उपन्यास पत्रात्मक शैली में ही लिखा गया था। ख्यातनामा संस्मरण-रेखाचित्र-लेखक श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के शब्दों में यह कहा जा

९ हिन्दी साहित्य कोश (भाग २), सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ५६४

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है कि "स्मृतिकुंज में हिन्दी भाषा अपनी सादी साड़ी में ही मनोरम झलक दिखा रही थी।"

(ग) छायावादोत्तर युग इस युग के पत्र-साहित्य को प्रकाशन की दृष्टि से तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—(१) स्वतंत्र संकलन (२) किसी ग्रंथ में परिशिष्ट के रूप में तथा (३) पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।[१०]

नितान्त पत्र-संकलन के रूप में सन् १९४० ई० में **भदन्त आनन्द कौसल्यायन** ने **'भिक्षु के पत्र'**, भाग १, २ की रचना की। **डॉ० धीरेन्द्र वर्मा** कृत **'यूरोप के पत्र'** (१९४४ ई०) में यूरोप के दर्शनीय स्थानों का सजीव चित्रण है। **सत्यभक्त स्वामी** का **'अनमोल पत्र'** तथा **सूर्यबलीसिंह** का **'मनोहर पत्र'** क्रमशः १९५० तथा १९५२ ई० में प्रकाशित हुए। **ब्रजमोहनलाल** के **'लन्दन के पत्र'** (१९५४) में लन्दन के कुछ दृश्यों की अच्छी झाँकी प्रस्तुत की गयी है। इसी वर्ष **बैजनाथसिंह 'विनोद'** द्वारा संपादित **'द्विवेदी-पत्रावलि'** संग्रह प्रकाशित हुआ। **बनारसीदास चतुर्वेदी** तथा **हरिशंकर शर्मा** द्वारा संपादित **'पद्मसिंह शर्मा के पत्र'** (१९५६) नामक पत्र-संग्रह हिन्दी-साहित्य की अनेक समस्याओं पर प्रकाश डालता है। **पं० किशोरीदास वाजपेयी** के **'साहित्यिकों के पत्र'** (कनखल, १९५८) साहित्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। **डॉ० धीरेन्द्र वर्मा** तथा **डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय** द्वारा संपादित **'प्राचीन हिन्दी-पत्र-संग्रह'** (१९५९) से मराठा-इतिहास के संबंध में जानकारी मिलती है। **वियोगीहरि** द्वारा संपादित **'बड़ों के प्रेरणादायक कुछ पत्र'** (१९६०) संग्रह हिन्दी साहित्य की गतिविधि पर अच्छा प्रकाश डालता है। सन् १९६० ई० में ही संपादक **श्री जवाहरलाल नेहरू** ने **'कुछ पुरानी चिट्ठियाँ'** शीर्षक के पत्र प्रकाशित कराये, जो महात्मा गांधी और मोतीलाल नेहरू ने उनके नाम लिखे थे और सन् १९६२ ई० में सम्पादक **रामकृष्ण बजाज** ने **'विनोबा के पत्र'** शीर्षक से वे पत्र प्रकाशित कराये, जो बिनोवा द्वारा बजाज-परिवार के नाम लिखे गये थे। १९६२ ई० में **कमलापति त्रिपाठी** द्वारा लिखित **'बन्दी की चेतना'** प्रकाशित हुआ।

डा० जगदीशचन्द्र का **'सोवियत रूस से पिता के पत्र'** (१९६६) रूस के दर्शनीय स्थानों का विवरण प्रस्तुत करता है। **अमृतराय** द्वारा संपादित प्रेमचन्द के पत्रों का संग्रह **'चिट्ठी-पत्री'** (दो भाग, १९७०) हिन्दी-साहित्य में विषय, शैली और प्रेमचन्द के व्यक्तित्व की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। पहले भाग में वे पत्र हैं, जो अपने निकटतम मित्र मुंशी दयानरायन निगम को लिखे थे।

---

१० हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं० डॉ० नगेन्द्र, पृ० ७२२

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे भाग में अन्य सब उपलब्ध पत्र दिये गये हैं। **काका कालेलकर** द्वारा संपादित **'बापू के पत्र'** (१९७०) सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं धार्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। **गांधी स्मारक-निधि** द्वारा गांधी जी के लगभग २५००० पत्रों का संग्रह किया गया है। सूक्ष्म-वीक्षण-यंत्र से इनकी फिल्में और फोटो-प्रतियाँ तैयार की जा रही हैं। सन् १९७० ई० में **डॉ० काशिनाथ शंकर केलकर** द्वारा संपादित १८ वीं शती का 'हिन्दी-पत्र-संग्रह' एक ओर मराठा-इतिहास पर प्रकाश डालता है, तो दूसरी ओर खड़ीबोली के प्राचीन इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण अध्याय का काम करता है। सन् १९७० ई० में **हरि पाण्डेय, बेचन शर्मा 'उग्र'** द्वारा सम्पादित **'फ़ाइल और प्रोफ़ाइल'**, **जीवन प्रकाश जोशी** द्वारा सम्पादित **'बच्चन पत्रों में'**, तथा १९७१ ई० में **वृन्दावनदास** द्वारा सम्पादित **'बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र'**, **जानकीवल्लभ शास्त्री** द्वारा सम्पादित **'निराला के पत्र**, और **हरिबंशराय बच्चन** द्वारा सम्पादित **'पन्त के दो सौ पत्र बच्चन के नाम'** हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधियाँ हैं। इन संग्रहों में अनेक साहित्यिक समस्याओं पर समुचित प्रकाश पड़ता है।

इस युग में ग्रंथ के साथ परिशिष्ट रूप में प्रकाशित पत्रों का भी उतना ही महत्त्व है, जितना कि स्वतंत्र रूप से प्रकाशित पत्र-संकलनों का। **हरिबंशराय बच्चन** कृत **'कवियों में सौम्य सन्त'** (१९६०) के परिशिष्ट में सुमित्रानन्दन पन्त के १२६ पत्र संकलित हैं। ये हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि हैं। सन् १९४० ई० से १९६० ई० के बीच बच्चन को लिखे पन्त जी के इन पत्रों में साहित्यिक गतिविधियों के साथ-साथ उनके पारिवारिक जीवन का परिचय भी प्राप्त होता है।

डॉ० शिवप्रसाद सिंह द्वारा सम्पादित **'शान्तिनिकेतन से सिवालिक तक'** (१९६७) में आ० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी के पत्र संगृहीत हैं। अनेक साहित्यकारों को लिखे द्विवेदी जी के इन पत्रों से उनकी साहित्यिक-यात्रा के विभिन्न सोपानों का परिज्ञान होता है। सर्वत्र उनकी चुटीली, भावुक और खोजपूर्ण शैली दृष्टिगत होती है।

इस युग का तीसरे वर्ग का वह पत्र-साहित्य है, जो पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होता रहा है। यों तो पत्र-साहित्य की उत्पत्ति ही द्विवेदी युग में पत्रिकाओं के माध्यम से हुई थी; किन्तु आज अनेक पत्र ऐसे हैं, जिनमें स्थायी रूप से किसी न किसी पत्र-स्तम्भ में पत्रों का प्रकाशन होता रहता है; अथवा योजनाबद्ध रूप से पत्र-विशेषांक निकलते रहते हैं। आज पत्र-पत्रिकाओं का इस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर सुनियोजित प्रयास चल रहा है। इस क्षेत्र में **'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'**, **'सरस्वती'**, **'माधुरी'**, **'ज्ञानोदय'**, **'चाँद'**, **'धर्मयुग'**, **'साप्ताहिक हिन्दुस्तान'**, **'आजकल'**, **'अजंता'**, **'कल्पना'**, **'नवनीत'**, **'संगीत'**, **'राष्ट्रवाणी'** आदि पत्रिकाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। कुछ विशेषांक तो बड़े मनोमोहक बन पड़े हैं। नवम्बर १९६३ के **'ज्ञानोदय'** के **पत्र-अङ्क** में इतनी अधिक रोचकता है कि साहित्य की किसी अन्य विधा में नहीं मिलती। अगर आप पढ़ने लग गये, तो छोड़ नहीं सकते। **'चाँद'** का पत्रांक तो हिन्दी-जगत् में विख्यात है ही। १९४८ ई० में **प्रकाशचन्द्र गुप्त** ने **'हंस'** के अक्टूबर अंक में **प्रेमचन्द जी के कुछ पत्रों** का प्रकाशन किया था। **'सम्मेलन पत्रिका'** के भाग, ५२, संख्या ३, ४ तथा भाग ५३ संख्या १, २ में **'बनारसीदास चतुर्वेदी'** ने **वासुदेवशरण अग्रवाल के क्रमशः २७ तथा २९ पत्रों का प्रकाशन** कराया था।

इन पत्रों में वासुदेवशरण अग्रवाल की खोजपूर्ण एवं निर्णय-प्रदायिनी दृष्टि के दर्शन होते हैं। १९६५ ई० में **'राष्ट्रवाणी'** का **'मुक्तिबोध-स्मृति-अंक'** प्रकाशित हुआ। इससे गजानन माधव मुक्तिबोध के साहित्यिक एवं व्यक्तिगत उत्थान-पतन की कहानी प्रकट होती है।

हिन्दी-जगत् की पत्र-पत्रिकाओं में विपुल पत्र-साहित्य विकीर्ण है। "यदि हिन्दी की पुरानी पत्र-पत्रिकाओं में हिन्दी के पुराने लेखकों के इतस्ततः प्रकीर्ण रूप में प्रकाशित सहस्रों पत्रों को एकत्र करके वैज्ञानिक रीति से सम्पादित, प्रकाशित किया जाए, तो हिन्दी भाषा और साहित्य के अध्याय में बड़ी प्रामाणिकता का संचार हो सकता है।"[११]

आज की अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं में **'लोकवाणी'**, **'जनवाणी'**, **'आपका पत्र मिला'**, **'जवाब हाजिर है'**, **'नजर अपनी अपनी'**, **'चिट्ठी-पत्री'**, **'पत्र प्रसंग'** आदि स्तम्भों के अन्तर्गत साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक पत्र प्रकाशित होते रहते हैं।

स्वातंत्र्य-वीर विनायक **दामोदर सावरकर** द्वारा लिखित पुस्तक **'अंडमान की गूँज** अर्थात् **'क्रान्तिकारी चिट्ठियाँ'**, (मूल मराठी का हिन्दी अनुवाद) सन् १९७३ ई० में प्रकाशित हुई। श्री सावरकर जी ने ये पत्र अण्डमान (काला पानी) और लन्दन के कारावास से अपने परिवार के सदस्यों और निकट सहयोगियों को लिखे थे। इन पत्रों में क्रान्तिकारियों के हृदय सम्राट् ने अपना हृदय निकाल कर रख दिया है।

---

११ हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास (चतुर्दश भाग), पृ० ५२

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबू वृन्दावनदास द्वारा सम्पादित **'डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र'** (१९७४ ई०) हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। प्रस्तुत संग्रह में डॉ० वासुदेव-शरण अग्रवाल के प्रमुख रूप से उन पत्रों का संग्रह है, जो जनपदीय अध्ययन अथवा जनपदीय आन्दोलन से सम्बद्ध हैं। हिन्दी-पत्र-साहित्य के क्षेत्र में बाबू वृन्दावनदास का कार्य बहुत ही प्रेरणाप्रद एवं उल्लेखनीय है। **श्री रत्नशंकर-प्रसाद** तथा **डा० गिरीशचन्द्र त्रिपाठी** द्वारा सम्पादित **'प्रसाद के नाम पत्र'** (१९७६ ई०) हिन्दी-जगत् के लिए एक महत्त्वपूर्ण घटना है। महाकवि जयशंकरप्रसाद के नाम लिखे उनके समकालीन ६७ विशिष्ट जनों के पत्रों का यह संकलन, न केवल 'प्रसाद' जी के जीवन और उनके परिवेश की पहचान कराता है; वरन् मूल्य और महत्त्व की दृष्टि से यह हिन्दी-साहित्य के इतिहास का एक अनुपम दस्तावेज़ भी है। **बीरेन्द्र सिन्धु** द्वारा सम्पादित **'सरदार भगतसिंह : पत्र और दस्तावेज़'** (१९७७) में सरदार भगतसिंह के पत्रों और वक्तव्यों को दिया गया है। भगतसिंह के व्यक्तित्व को सीधे समझने में पुस्तक बहुत उपयोगी है। यह संकलन हमारे राष्ट्र की एक धरोहर है।

श्री रमण शाण्डिल्य ने **बाबू वृन्दावनदास (मथुरा)** के **पत्रों** का सम्पादन किया है। यह पत्र-संग्रह **'बाबू वृन्दावनदास के पत्र'** नाम से सन् १९७८ ई० में साहित्य प्रकाशन, नई सड़क, मालीवाड़ा, दिल्ली-६ से प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह से बाबू वृन्दावनदास जी की सामाजिक एवं साहित्यिक सेवाओं के विषय में तो जानकारी मिलती ही है; साथ में बाबू वृन्दावनदास जी के आदरणीय मित्रों और साथियों ने जनपदीय साहित्य, ब्रजभाषा-साहित्य, तथा खड़ीबोली हिन्दी-साहित्य के लिए क्या-क्या किया—इसका भी विवरण मिल जाता है। हिन्दी की बोलियों के उत्कर्ष के लिए किस-किसने क्या-क्या किया, हम इससे भी अवगत हो जाते हैं। ब्रज-साहित्य-मण्डल, मथुरा ने तथा अन्य हिन्दी की जनपदीय भाषा संस्थाओं ने क्या-क्या कार्य किये हैं···इसकी प्रामाणिक सूचनाएँ और संकेत हमें उन पत्रों से प्राप्त हो जाते हैं।

पत्र-लेखन-कला पर हिन्दी में **श्री बनारसीदास चतुर्वेदी** तथा **पं० हरिशंकर शर्मा** कृत **'पत्र लेखनकला'**, **यज्ञदत्त शर्मा** कृत **'आदर्श पत्र-लेखन'**, **कस्तूरमल बाँठिया** कृत **'व्यापारिक पत्र-व्यवहार'** उल्लेखनीय हैं।

इस युग में स्वतंत्र पत्र-संकलनों तथा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित पत्रों को देखकर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अब यह विधा हिन्दी-साहित्य में अपना स्वतंत्र एवं पृथक् अस्तित्व रखती है। अतः इसका समुचित विकास आवश्यक है। लक्षणों को देखते हुए भविष्य उज्ज्वल दीख पड़ता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत संकलन—

पत्र-साहित्य की इस पनपती हुई शृंखला में सार्वजनिक पत्रों के अन्तर्गत प्रस्तुत पत्र-संकलन 'संस्कृति, साहित्य और भाषा (डा० सुमन के समस्या समाधानमूलक पत्र, मित्रों और शिष्यों के नाम) एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

ये पत्र प्रश्नोत्तर रूप में लिखे गये हैं। पत्र-साहित्य-जगत् में इस संकलन के माध्यम से हमें एक व्यापक मौलिक, अमूल्य एवं प्रामाणिक, शास्त्रीय निधि प्राप्त हुई है। विषय वस्तु की दृष्टि से प्रस्तुत संकलन के पत्र चार खण्डों में विभाजित हैं।—(१) **संस्कृति** (२) **साहित्य** (३) **भाषा**। चतुर्थभाग **'परिशिष्ट'** है, जिसमें वे पत्र संकलित हैं, जो भारत के ही नहीं, अपितु विदेशों के भी कुछ मूर्धन्य विद्वानों की लेखनी से डॉ० सुमन जी के नाम लिखे गये हैं। उनमें भी संस्कृति, साहित्य और भाषा का स्वरूप-विवेचन प्रस्तुत किया गया है। ऐसे पत्रों में **डा० आर० एल० टर्नर, डा० बारान्निकोव, डा० सुनीतकुमार चटर्जी, म० पं० राहुल सांकृत्यायन, पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, पं० अयोध्यानाथ शर्मा, एलाचार्य मुनि श्री विद्यानन्द जी, डा० नगेन्द्र, आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, श्री महाराज प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी, डा० बाबूराम सक्सेना, डा० उदयनारायण तिवारी** आदि के पत्र विशेषरूपेण पठनीय तथा उल्लेखनीय हैं।

डा० नगेन्द्र जी की **'भूमिका'** पत्रों की माला में चमकता सुन्दर सुमेरु है। पिछली पीढ़ी के हिन्दी विद्वानों से जितने पत्र उनके हस्तलेखों में प्राप्त हुए हैं, उन सभी में **'अ'** अक्षर पुरानी लिपि (अ) में ही मिला है। अतः हमने भी **'अ'** की जगह **'अ'** ही मुद्रित कराया है।

परिशिष्ट के पत्रों की लेखन-विधि को देखकर पाठकों को यह विदित होगा कि सर्वश्री हरिऔध, राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त और डा० सुनीति-कुमार चाटुर्ज्या की भाँति आचार्य पं० किशोरीदास वाजपेयी भी परसर्गों को संज्ञा तथा सर्वनाम से अलग लिखते हैं; जैसे **लेख के लिए, आप के लिए**, आदि। पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी प्रथम परसर्ग को तो मिला देते हैं, बाद में शेष को अलग लिखते हैं; जैसे लेख के लिए, आपके लिए आदि।

पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, डा० बाबूराम सक्सेना, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० धीरेन्द्र वर्मा, पं० किशोरीदास वाजपेयी, पं० सीताराम चतुर्वेदी और पं० अयोध्यानाथ शर्मा के पत्रों में नागरी लिपि का प्राचीन 'अ' ही मिलता है—यह ध्यातव्य है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत के प्राचीन साहित्य के अध्येता और हिन्दी के मध्यकालीन काव्य-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् होने के कारण मूर्धन्य भाषाशास्त्री डा० सुमन जी के **संस्कृति, साहित्य** और **भाषा** से सम्बद्ध इन पत्रों में गम्भीर ज्ञान, व्याख्या, विश्लेषण और विवेचन समाविष्ट है।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार-सभा, मद्रास में दो वर्ष तक रीडर एवं हिन्दी-विभागाध्यक्ष के रूप में कार्य करते हुए उन्होंने दक्षिण में हिन्दी-भाषा की समस्याओं को ठीक तरह से समझा है। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली में भी डॉ० सुमन जी शब्दावली-आयोग के विशेषज्ञ भाषाविद्—सदस्य निरन्तर पंद्रह वर्ष तक रहे हैं। अपने शिष्यों एवं मित्रों के नाम लिखे हुए प्रस्तुत प्रश्नोत्तर रूप-पत्रों में विभिन्न विषयों से सम्बद्ध अमूल्य, महत्त्वपूर्ण एवं दुर्लभ सामग्री संगृहीत है। यह पत्र-संग्रह अपने में मौलिक और नितान्त नूतन है। पत्रों के माध्यम से यह कृति हमारी संस्कृति, साहित्य और भाषा की शास्त्रीय मीमांसा है। इसमें विषयों का वैविध्य है, जो सरल-सरस शैली में प्रस्तुत किया गया है।

आलोचक, शब्दमर्मी, बहुभाषाविद्, प्रसिद्ध भाषाशास्त्री, विद्यार्थियों के सम्मोहक, प्रसिद्ध लेखक, सुकवि, आदर्शयुक्त श्रद्धेय एवं सर्वप्रिय अध्यापक, सभा-सम्मेलनों के आकर्षक, एवं मनोरंजक भाषणकर्ता, भावुकता एवं उल्लास से परिपूर्ण सामाजिक-साहित्यिक-कार्यकर्ता, ब्रजलोक-संस्कृति तथा ब्रजभाषा शब्दावली के उन्नायक तथा सारस्वत-साधनारत डॉ० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन' के सारस्वत व्यक्तित्व की सम्पूर्ण विशेषताएँ इन पत्रों से झलकती हैं। आत्मीयता-प्रधान पत्रों में भावुकता के साथ-साथ चुम्बकीय तत्त्व निहित हैं।

"इस तरह के आत्मीयतापूर्ण शास्त्रीय पत्रों में लेखक का व्यक्तित्व अपने वास्तविक अनावृत एवं अनाविल रूप में (बिना किसी मुखौटे के) पाठक के सामने, जिस तरह स्पष्ट हो उठता है, वह केवल उसके व्यक्तित्व की जानकारी के लिए ही उपादेय नहीं, बल्कि पाठक के कृतित्व के अध्ययन में भी सहायक है।' [१२]

महापुरुषों की गहन व्यक्तिगत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति ही सार्वजनिक उपयोगिता में परिणत हो जाती है—यही सत्य और तथ्य डॉ० सुमन जी के पत्रों में उपलब्ध है। यह सत्य और तथ्य **संस्कृति, साहित्य** और **भाषा** की विश्लेषणात्मक मीमांसा के माध्यम से अभिव्यक्त है।

पत्रात्मक शैली में लिखे हुए प्रस्तुत ग्रंथ में दो पत्र भाषा की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। डा० महेन्द्रसागर प्रचंडिया के नाम एक पत्र लिखा गया है।

१२ 'ज्ञानोदय' (पत्र अंक), नवम्बर १९६३, पृ० ६

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो डा० सुमन जी ने अपभ्रंश भाषा में लिखा है। वह संस्कृति खंड के अंतर्गत है। दूसरा पत्र साहित्य-खंड में हैं, जो डा० गोवर्धननाथ शुक्ल के नाम ब्रजभाषा में लिखा गया है। एक तीसरा पत्र है, जो संस्कृति खंड में है, डा० नज़ीरमुहम्मद के नाम लिखा गया है—इस पत्र की गद्य कविता का रूप लेकर रमणीयता ग्रहण किये हुए है। इसकी भाषा-शैली परम आकर्षक, सरस और प्रभावी है।

अध्यापन के रूप में तो डा० सुमन जी ने **सासनी, मेरठ, अलीगढ़, खुर्जा, मद्रास** आदि की शिक्षा-संस्थाओं के विद्यार्थियों को लाभान्वित किया ही था; लेकिन इन पत्रों के माध्यम से तो वे अब भारत तथा भारत के बाहर के हिन्दी-पाठकों को भी लाभान्वित करेंगे। हिन्दी के जिस विद्यार्थी को डा० सुमन जी की कक्षाओं में बैठने का सौभाग्य न मिला हो, वह इस ग्रन्थ से बहुत कुछ पा सकता है।

संस्कृति, साहित्य और **भाषा**–संबंधी अनेक उलझी हुई समस्याओं को साधिकार एवं प्रामाणिक रूप से बोधगम्य, एवं ललित शैली में सुलझानेवाली डा० सुमन जी की प्रवृत्ति ने ही इस कृति को सफल बनाया है। पुस्तकों के आधार पर वर्षों के प्रयास से भी जिन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थियों को नहीं मिल सके, उन्हें डा० सुमन जी के शिष्य उनके साथ एक बैठक में ही सरलता से समझते रहे हैं। यही विशेषता उनके इन पत्रों में भी विद्यमान है।

साहित्य की प्रमुख विधाएँ-**कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, समालोचना, निबंध, संस्मरण, रेखाचित्र** आदि हैं। **शोध-प्रबन्ध** भी एक विधा ही है। प्रस्तुत ग्रंथ प्रायः सभी विधाओं की विवेचना प्रस्तुत करता है। सारांश यह है कि यह पत्र-संग्रह सम्पूर्ण हिन्दी-वाङ्मय का आख्यान, समीक्षा और व्याख्या है। हिन्दी और ब्रजभाषा के अतिरिक्त कुछ अन्य भारतीय प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण-विवेचन भी इसमें मिलेगा।

डा० सुमन जी हिन्दी-विभागाध्यक्ष के रूप में हिन्दी स्नातकोत्तर अध्ययन एवं अनुसंधान विभाग. द० भा० हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास में हिन्दी-सेवा कर चुके हैं। वहाँ उन्होंने हिन्दीतर प्रदेशों में हिन्दी की स्थिति और स्वरूप का अध्ययन किया था। साथ में दक्षिण की प्रादेशिक भाषाएँ भी सीखी थीं। इस ज्ञान और अनुभव ने **भाषा-खंड** को प्राणवन्त बनाया है।

प्रस्तुत पत्र-संग्रह **'संस्कृति, साहित्य और भाषा** शीर्षक से इसीलिए **प्रकाशित किया गया है** कि इसमें **संस्कृति,** (समाज, राजनीति, धर्म और दर्शन),

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य (संस्कृत, अपभ्रंश, उर्दू और हिन्दी भाषाओं का साहित्य) और **भाषा** (भारत की अनेक भाषाओं का विवेचन) से सम्बद्ध महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर प्रामाणिक रूप में सरस शैली के माध्यम से प्रस्तुत किये गये हैं। प्रश्न-कर्ता डा० सुमन जी के मित्र और शिष्य हैं; उत्तरदाता स्वयं डा० सुमन जी हैं।

जिस व्यक्ति ने **वेद, उपनिषद्, वाल्मीकिरामायण, महाभारत, गीता, श्रीमद्भागवत, योगवासिष्ठ, मनुस्मृति, रामचरितमानस** आदि ग्रंथों का गहन अध्ययन न किया हो और जिसने हिन्दी के आलोचनाशास्त्र, हिन्दी साहित्य के इतिहास तथा हिन्दी भाषा-शास्त्र को गहराई में उतरकर न पढ़ा हो, उस पाठक के लिए **प्रस्तुत पत्र-संग्रह** परमोपादेय सिद्ध होगा; ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।

हिन्दी में शोध की दिशा और शोध-स्वरूप की अवगति भी इस पत्र-संग्रह से पाठकों को हो जाती है। हिन्दी और भारत की प्रादेशिक भाषाओं की जानकारी के लिए भी यह कृति उपादेय है। कोई पत्र ऐसा नहीं, जिसमें कोई नया विचार, नया सन्देश या नयी दिशा न मिले। इन संग्रह से डा० सुमन जी का कुछ जीवन-परिचय भी पाठक को यत्र-तत्र मिल जाता है। **'शब्द'** की छवि और छटा को पहचानने और परखने की दृष्टि सरस्वती जी ने सुमन जी को कमाल की दी है।

'भाषाखंड' में प्रमुख रूप से भाषा-विवेचन से ही सम्बद्ध पत्र संकलित हैं; किन्तु उन पत्रों में कुछ पत्र ऐसे भी हैं, जिनमें साहित्य के किसी अंग या विषय पर भी कुछ प्रकाश डाला गया है।

एक लम्बी अवधि का अध्ययन, मनन और चिन्तन ही यह कृति (**संस्कृति, साहित्य और भाषा**) है। अनेक जटिल प्रश्नों एवं महत्त्वपूर्ण जिज्ञासाओं का समाधान इतने सरल, सुबोध और शास्त्रीय ढंग से अन्यत्र मिलना कठिन है। यह ग्रंथ वास्तव में **संस्कृति, साहित्य** और भाषा-विषयक ज्ञान का छोटा-सा **विश्वकोश** है।

एक विद्वान् का कथन है कि "जीवन के किसी भी क्षेत्र में कठोर तपश्चर्या, श्रम, सेवा, त्याग, बलिदान करनेवाले अथवा असाधारण प्रतिभा या सर्जक शक्ति के कारण लोक में विपुल ख्याति, कीर्ति अर्जित करनेवाले व्यक्तियों के पत्र भी समाज के लिए दुर्लभ, बहुमूल्य और संग्राह्य सम्पत्ति बन जाते हैं।"[१३] अतः अगर पाठक इस समस्या-समाधान-मूलक-परिपक्व-फल का आस्वादन करेंगे, तो उन्हें निश्चित ही तृप्ति होगी; ऐसी हमारी ध्रुव धारणा है।

---

१३ हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (चतुर्दश भाग), पृ० ५०७

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० सुमन जी के जिन परम प्रिय मित्रों और शिष्यों ने अपने संग्रह में से ढूँढ़कर, निकालकर तथा प्रतिलिपि करके हमारे पास उनके जो पत्र भेजे हैं, उनके कृपा-पूर्ण स्नेह के लिए हम हृदय से आभारी हैं। जिन महानुभावों ने समस्यामूलक प्रश्नों को प्रस्तुत करके उत्तर रूप में डा० सुमन जी की लेखनी को प्रेरित किया है, उन्हें हम हार्दिक धन्यवाद अर्पित करते हैं।

यदि वे साहित्यिक बन्धु डाक्टर साहब से प्रश्न न पूछते, तो यह ग्रन्थ इतने विशाल शास्त्रीय रूप में हिन्दी-जगत् के संमुख न आ सकता था। अतः प्रश्नकर्ता का मूल्य उत्तरदाता से कम नहीं हैं।

हिन्दी-साहित्य के परम प्रसिद्ध आलोचक एवं मूर्धन्य विद्वान् **प्रो० नगेन्द्र जी** ने अपने महा व्यस्त जीवन में से समय निकालकर इस ग्रंथ की भूमिका लिखने की कृपा की; और कई मूर्धन्य विद्वानों ने अपने आशीर्वाद भेजकर हमें उत्साहित किया; उन सब के प्रति हम धन्यवादपूर्वक आभारी हैं, कृतज्ञ हैं और उन्हें अपना प्रणाम निवेदित करते हैं।

हमारा श्रद्धामय अभिवादन उन मूर्धन्य, सम्मान्य एवं वयोवृद्ध विद्वानों के चरणों में सादर समर्पित है, जिनके आशीर्वाद का बल पाकर हम इस सारस्वत अनुष्ठान को सम्पन्न कर सके हैं। उन विद्यावृद्ध विद्वानों में आचार्यवर पंडित हजारीप्रसाद जी द्विवेदी, पं० श्रीनारायण जी चतुर्वेदी तथा पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

श्रद्धेय **डा० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन'** हमारे पूज्य गुरुवर हैं। हमारे सम्पादकीय निवेदन में पाठकों को श्रद्धामयी अतिरंजना की झलक आ सकती है; लेकिन हमारा दृढ़ विश्वास है कि **प्रस्तुत कृति** को आदि से अन्त तक पढ़ने के उपरान्त पाठक यह पूरी तरह जान लेंगे कि हमारा निवेदन तथ्य-सत्य से परिपूर्ण है या उसमें कोरी श्रद्धामयी अतिरंजना है। सुविज्ञ पाठक पढ़ने के उपरान्त जिन त्रुटियों और भूलों को हमें बताने की कृपा करेंगे, उन्हें हम आगामी संस्करण में सुधारने का प्रयत्न करेंगे।

प्रस्तुत **पत्र-संग्रह** को ग्रन्थ का व्यवस्थित रूप देने में हमें इस कारण भी विलम्ब हुआ है कि श्रद्धेय गुरुवर डा० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन' के प्रायः सभी परम प्रिय मित्रों और शिष्यों से पत्रों की प्रतिलिपियाँ मँगायी गयी थीं। उनको फिर सुवाच्य अक्षरों में उतरवाया गया था। तत्पश्चात् विषय-खंड एवं तिथि-क्रम से वर्गीकृत करके उनकी प्रेस-कापी तैयार की गयी थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अच्छी बात यह थी कि अनेक पत्रों की नक़लें हमें गुरु जी (डा० सुमन जी) की फाइलों में ही मिल गयीं। सब पत्रों में संनिहित विषयों को मालूम करके उनके शीर्षक भी निश्चित किये गये, ताकि वे ग्रंथ-सूची में दिये जा सकें।

तीनों खंडों (संस्कृति, साहित्य और भाषा) में कुल २७४ पत्र लिखे हुए हैं और उनके विषय-शीर्षक भी निर्धारित किये गये हैं, ताकि पाठकों को विषयावगति में सुगमता रहे।

विषय-शीर्षक-निर्णय के लिए हमने अपने गुरुवर डा० सुमन जी को भी पर्याप्त कष्ट दिया है। इसके लिए हम उनसे आभारपूर्वक क्षमा-प्रार्थी हैं। वास्तव में यह कार्य उनकी कृपामयी सहायता के बिना हो भी नहीं सकता था। जहाँ उद्धरणों के सन्दर्भ-प्रमाण कुछ पत्रों की प्रतिलिपियों में पढ़ने में न आते थे, उन्हें गुरुवर ही ठीक करते थे। पत्रों की प्रतिलिपि करने का कार्य हमारे मित्र और गुरु जी के प्रिय शिष्य श्री बिशनकुमार शर्मा ने किया है।

ग्रंथ के अंत में संलग्न मुद्रित **नामानुक्रमणी** डा० सुमन जी की तृतीय पुत्री कु० मधु जी शर्मा ने तथा उनके प्रिय शिष्य बिशनकुमार जी शर्मा ने तैयार की है। आवश्यकता पड़ने पर आदरणीया गुरुमाता जी (श्रीमती बसंती देवी जी शर्मा) ने भी आशीर्वादात्मक सहायता दी है। इस नामानुक्रमणी से सहज में ही विदित हो जाएगा कि प्रस्तुत ग्रंथ में किन-किन **संतों**, **आचार्यों**, **साहित्यकारों**, और **पौराणिक** एवं **ऐतिहासिक व्यक्तियों** का उल्लेख किया गया है।

सम्पादक-मण्डल उन सबको साभार हार्दिक धन्यवाद अर्पित करता है। हम डा० सुमन जी के उन मित्रों और शिष्यों से करबद्ध क्षमा-याचना करते हैं कि हम उनसे प्राप्त उन्हीं पत्र-प्रतिलिपियों का उपयोग कर सके हैं, जिनका सम्बन्ध **संस्कृति, साहित्य** या **भाषा** से था, शेष का नहीं; क्योंकि हमारे **विज्ञप्तिपरक निवेदन** में भी यही लिखा गया था कि प्रकाश्यमान ग्रन्थ में **वे ही पत्र छापे जाएँगे, जो संस्कृति, साहित्य या भाषा से सम्बद्ध होंगे।** इन तीनों शीर्षकों में हिन्दी-साहित्य का आकलन हो भी जाता है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन का वास्तविक श्रेय पत्र-प्रकाशन–परामर्शदात्री–समिति के सदस्यों को है, जिनके तत्त्वावधान, सहायता एवं परामर्श का सहारा पाकर हम इस सारस्वत अनुष्ठान में सफल हो सके हैं। संपादक-मंडल उन सबके प्रति धन्यवादपूर्वक कृतज्ञता ज्ञापित करता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत पत्र-संग्रह से यह सिद्ध है कि पूज्यवर डा० सुमन जी ने एक निष्ठावान् शिक्षक के रूप में केवल सासनी, खुर्जा, अलीगढ़ और मद्रास में ही हिन्दी-सेवा-कार्य नहीं किया, अपितु **संपूर्ण भारत, इँगलैंड, रूस, अमेरिका**, और **आस्ट्रेलिया** में भी अपनी ज्ञान-रश्मियों को विकीर्ण किया है; विशेषतः संस्कृति, साहित्य और भाषा के क्षेत्रों में, पत्रों के माध्यम से।

इन शब्दों के साथ हिन्दी-जगत् की सेवा में डा० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन' की यह पत्र स्वरूपा-शास्त्रीय-सारस्वत कृति प्रस्तुत की जा रही है। संपादन की भूलों तथा त्रुटियों के लिए हम क्षमा-प्रार्थी हैं। ऐसे विविध-विषय-संबद्ध-ग्रन्थ का संपादन हम जैसों के लिए असंभव-सा ही था। करोड़ों हंस मिलकर भी सुमेरु पर्वत को नहीं उठा सकते। हम तो केवल चार ही हैं। **गुरु-ऋण से** कुछ **उऋण** हो जाएँ, इसीलिए संपादन का भार उठाने का यह बाल-प्रयास किया गया है।

हमारे संपादन का यह बाल-प्रयास आज हिन्दी-जगत् के समक्ष प्रस्तुत है। गुरुवर डा० सुमन जी की लेखनी से लिखे हुए इन पत्रों में यदि भाषा या मुद्रण की अशुद्धि पाठकों को मिलती है, तो वह हमारी बुद्धि और आँखों की भूल है। सुविज्ञ पाठक और विद्वान् हमें क्षमा करें!

विद्वानों की स्नेहमयी सूचना मिलने पर ग्रन्थ के आगामी संस्करणों में भूलों को सुधारने का प्रयत्न किया जाएगा। अंत में हम सभी के धन्यवादपूर्वक आभारी हैं।

जय राष्ट्र ! जय राष्ट्रभाषा !!

—सम्पादक

****

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-अनुक्रम

पत्र-शीर्षक-अनुक्रम

[संस्कृति-खंड]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-शीर्षक	जिनके नाम पत्र लिखा गया	पृष्ठ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[परिशिष्ट]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

****

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री सोमदत्त शास्त्री के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक १५. १. १९६२ ई०

प्रियवर भाई सोमदत्त जी,

सप्रेम नमस्कार !

आपने मेरा व्यक्तिगत मत इस सम्बन्ध में जानना चाहा है कि ज्ञानी, कर्मयोगी और भक्त में कौन श्रेष्ठ है ?

आपके प्रश्न का जो उत्तर मैं दूँगा, उससे दो वर्ग तो मुझसे नाराज़ रहेंगे ही।

यद्यपि मैं हृदय से बहुत भावुक हूँ, भक्तों का मनोराज्य भी मुझे परम प्रिय है और कुछ क्षणों के लिए उस भाव-सुरसरी में स्नान करके मुझे अद्भुत आनन्द भी मिलता है। इतना ही नहीं भगवान् के गुण, स्वभाव आदि की अनुभूति के क्षणों में आँसू बहाने में मुझे दिव्य रसानुभूति भी हुई है। तो भी, संसार की कर्मभूमि में उतर आने पर मेरे मन और बुद्धि ने कर्मयोगी को ही श्रेष्ठ ठहराया है।

ज्ञानी विचार का उपासक होता है। वह सत्य की मौन उपासना करता है। विचारों के ऊहापोह में बहुत बारीकी तक पहुँचता है; किन्तु वह बारीकी बारीकी ही बनी रहती है; कभी कर्म रूप में साकार नहीं बनती। ज्ञानी इतिहास के रथ को आगे चला नहीं सकता। इतिहास के रथ को कर्मयोगी चलाता है। ज्ञानी वह है, जो केवल विचारता है। कर्मयोगी वह है, जो विचारे हुए को करता है। ज्ञानी करता नहीं है। विश्वविद्यालयों में ऐसे बहुत-से प्रोफ़ेसर मिल जाएँगे, जो बहुत अच्छा सोचते हैं और बहुत अधिक सोचते हैं; किन्तु केवल सोचते ही सोचते हैं; उसे कर्म में नहीं बदलते। वे विश्वविद्यालयों में स्थान न बना पाएँगे। छात्रों के हृदयों में वे ही आसन प्राप्त करेंगे, जिन्होंने सोचे हुए को कर्म में बदला है, अर्थात् उस विचार को अध्यापन अथवा ग्रंथ के द्वारा छात्रों को दिया है और विश्वविद्यालय के रथ-चक्र को आगे बढ़ाया है।

राग-द्वेष से रहित समत्व भाव से किया हुआ कर्म सैकड़ों राजसूयों और अश्वमेधों से बढ़कर है। वन-पर्वतों में की हुई तपस्या भी उसकी तुलना में बहुत छोटी है। समत्व भाव युक्त कर्मरत तुलाधार वैश्य तपस्वी जाजलि से बहुत ऊँचा था। सत्तूवाले दरिद्र ब्राह्मण के सत्तू-कणों से नेवला आधे शरीर से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तम स्वर्ण का हो गया था। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का दान उस सत्तू-दान से हीन सिद्ध हुआ। महाभारत प्रमाण है। वे सब कर्म-समर्थक उपाख्यान हैं।

कर्मयोगी सत्य को शिवत्व प्रदान करता है, ज्ञानी सत्य को सत्य के रूप में ही सदा लिये रहता है और उस पर ही विचारता रहता है। उसकी बुद्धि के जंगल में विचार का मोर नाचता रहता है; लेकिन किसी दूसरे को दिखाई नहीं पड़ता। यदि वह कभी वाणी के द्वारा उसे दिखा भी दे, तो उस मोर का या मोर के नाच का द्रष्टाओं पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता।

यदि गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाए, तो 'भक्ति' भी 'कर्म' का ही पर्याय है। सेवा करने के अर्थ में 'भज्' धातु से 'भक्ति' शब्द का निर्माण हुआ है। अनन्य भाव की भक्ति को ही गीता में सर्वोपरि माना गया है। 'रामचरितमानस' में इसे ही 'निर्भरा भक्ति' बतलाया गया है। अनन्य भक्त वही है, जो जन-जन की सेवा करता है। चराचर को भगवान् का रूप मानकर उसकी सेवा में अपने को पूर्णतः समर्पित करता है। भागवत के नवें स्कंध में भरद्वाज की शिष्य-परम्परा के एक संत रंतिदेव की कथा आयी है। वह प्राणिमात्र में ईश्वर के दर्शन करते थे। कुत्ते को भी ब्राह्मण की भाँति श्रद्धा और आदर से भोजन कराते थे। किष्किधा काण्ड में मानसकार तुलसी कहते हैं—

"सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत,
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ॥"

—(किष्कि० ३)

महाभारत काल में युधिष्ठिर सत्य के उपासक तो रहे, पर जुआ खेलते रहे। द्रौपदी को दाव पर रखकर उसको अपमानित रूप में देखते भी रहे। कर्मयोगी कृष्ण ने सत्य को शिव बनाया। शिवत्व को प्राप्त हुआ सत्य ही सुन्दर है, ग्राह्य है, वरणीय है—यही कर्मयोगी कृष्ण का सिद्धान्त है। इसीलिए महामुनि व्यास ने उन्हें अवतार घोषित किया। व्यास जी ने महाभारत में कथानक के द्वारा सिद्ध कर दिया कि कर्मयोगी ही इतिहास के रथ का सारथी बन सकता है। उसी की पूजा होती है। संसार के राजसूय यज्ञ में वही प्रधान पद पर आसीन हुआ करता है। करोड़ों भक्त उसके अनुचर और अनुगामी बनते हैं। जिधर कर्मयोगी, उधर ही विजय—महाभारतकार गीता के १८वें अध्याय में स्पष्ट कह गया।

अतः मेरी राय में कर्मयोगी ही सर्वश्रेष्ठ है। "छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठ" (गीता, ४/४२)। योगं आतिष्ठ = कर्मयोगं आतिष्ठ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर्ष है आप सपरिवार सानंद हैं।

श्री सोमदत्त जी शास्त्री,
संस्कृत विभाग,
माहेश्वरी इण्टर कालेज, अलीगढ़

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री च्यवन ऋषि झा के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' डी० लिट्० **८/७ हरिनगर, अलीगढ़**
दिनांक ५. २. १९६३ ई०

प्रियवर च्यवन ऋषि,

आशीर्वाद !

तुम फ्राइड, ऐडलर और युंग के मत संक्षेप में जानना चाहते हो। साथ में फ्राइड के मत को कुछ अधिक स्पष्टता से मालूम करने के भी इच्छुक हो।

भारत और पश्चिम में प्रमुख अंतर यह है कि भारत की मनीषा ने तो आत्मदर्शन किया है; लेकिन पश्चिम मन और बुद्धि तक की बात ही कह सका है। इसीलिए 'दर्शन' और 'फिलॉसोफ़ी' शब्द में अर्थ-भेद है।

ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप में तीन प्रसिद्ध मनस्-अध्येता हुए हैं— (१) फ्राइड (२) ऐडलर (३) युंग।

फ्राइड के मत को समझने से पूर्व तुम्हें यह भी जान लेना चाहिए कि फ्राइड का **'काम'** (Id) वह नहीं है, जिसे भारतीय लोग **'काम'** कहते हैं। फ्राइड का 'काम' बहुत व्यापक है। उस 'काम' की शक्ति का नाम 'लिबिडो' (Libido) है। लिबिडो शारीरिक भी है, और मानसिक भी। स्वप्रेम, सन्तान-प्रेम, पत्नी-प्रेम, माता-पिता-प्रेम आदि के मूल में 'लिबिडो' ही है—ऐसा फ्राइड मानते हैं। अर्थात् फ्राइड की 'लिबिडो' शरीरगत काम शक्ति और मनोगत काम शक्ति है। काव्य, कला आदि के मूल में भी यही शक्ति काम करती है।

ऐडलर कहते हैं कि हीन भावना की ग्रंथि को समाप्त करने के लिए ही मनुष्य जीवन में सब काम करता है।

युंग ने मूल प्रवृत्तियाँ दो बतायीं—(१) अन्तर्मुखिता (२) बहिर्मुखिता। इन्हीं में से किसी एक के वशीभूत होकर मनुष्य सारे काम किया करते हैं ?

बच्चों को प्यार। आज कल किस क्षेत्र में विशेष अध्ययन चल रहा है ?

श्री च्यवन ऋषि झा, एम. ए. आचार्य,
पक्की सराय, अलीगढ़ (उ० प्र०)

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री रामरूप अग्रवाल के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ॰ प्र॰)
दिनांक ८. ३. १९६३ ई॰

प्रियवर श्री अग्रवाल जी,

आपके पत्र में सूक्ष्म शरीर के सम्बन्ध में जिज्ञासात्मक प्रश्न पढ़ा। आपको उसका उत्तर लिख भेज रहा हूँ।

आपके प्रश्न का उत्तर केवल शास्त्रों के आधार पर ही दिया जा सकता है। अपनी अनुभूति तथा बुद्धि का पुट इसके उत्तर में मैं नहीं लगा सकता।

सूक्ष्म शरीर को 'लिंग-शरीर' भी कहते हैं। मृत्यु के उपरान्त जीवात्मा लिंग-शरीर में अधिष्ठित होकर स्थूल शरीर से निकल कर जाता है।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश नामक तत्त्वों से बना हुआ शरीर 'स्थूल शरीर' कहलाता है। हमारे प्राचीन ग्रंथों में 'जल' को एक तत्त्व माना गया है। उपर्युक्त पाँच तत्त्वों से हमारा स्थूल शरीर निर्मित है। आज भौतिक विज्ञान 'जल' को तत्त्व (Element) नहीं मानता; मिश्रण (Compound) मानता है, और कहता है कि दो भाग हाइड्रोजिन और एक भाग ऑक्सीजिन मिलकर पानी बनता है। अर्थात् $H_2O = W$

स्थूल शरीर में जीवात्मा के साथ सत्तरह अवयव और रहते हैं—पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, पंच प्राण (प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान), पंच तन्मात्राएँ (रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द), मन और बुद्धि। इन सत्तरह अवयवों के एकत्रीकृत रूप को 'सूक्ष्म शरीर' बताया गया है। इसी सूक्ष्म शरीर रूपी रथ में बैठकर आत्मा (जीवात्मा) रूपी रथी जाता है।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।

—(कठ॰ १/३/३)

मनुष्य के मर जाने पर स्थूल शरीर तो यहीं रह जाता है। सूक्ष्म शरीर जीव को साथ लेकर जाता है। उस सूक्ष्म शरीर को सुख-दुख की अनुभूति भी होती है; जैसे स्वप्नावस्था में हम बम्बई-कलकत्ता चले जाते हैं और प्रसन्नता या भय का अनुभव करते हैं; कुछ-कुछ वैसी ही अनुभूति सूक्ष्म शरीर को होती है। शेष फिर कभी।

हर्ष है आप सानन्द हैं।

श्री रामरूप जी अग्रवाल,
गली जोशियान, मानिक चौक, अलीगढ़ (उ॰ प्र॰)

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमती ओम्‌वती गौड़ के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक ८. ६. ६३ ई०

प्रिय शिष्या ओम्‌वती गौड़,

आशीर्वाद !

आपका पत्र एक सप्ताह हुआ, मिला था। उसे पढ़ने के बाद मैं आपको उत्तर लिखना चाहता था; लेकिन, ४-५ दिन के लिए बाहर चला गया था। लौटकर मेज़ पर पुनः पत्र के प्रश्न को पढ़ा और उत्तर लिखने के उपक्रम में लग गया। अब लिख रहा हूँ।

आपका प्रश्नात्मक कथन है कि हम जिस देश में रहते हैं, वह ऋषियों का देश है। इस देश में हमारे ऋषि-मुनियों ने उपनिषद्, रामायण, महाभारत, गीता आदि ग्रंथों की रचना की। उनमें उच्च कोटि का आध्यात्मिक ज्ञान भरा हुआ है। फिर भी हम जीवन में दुःखी और अशान्त क्यों हैं ?

आपके प्रश्न के उत्तर में अलग से एक पुस्तक लिखी जा सकती है। मैं संक्षेप में ही आपको उत्तर लिख भेज रहा हूँ। ऋषि-मुनि तो ग्रंथ लिख गये, अपना काम कर गये। लेकिन जिनके लिए ग्रंथ लिखे गये, यदि वे न पढ़ें; न गुनें, जीवन में न उतारें या उनमें आस्था न रखें, तो ऋषि-मुनियों का दोष क्या है ? सूर्य के प्रकाश को शीशा ही ग्रहण कर सकता है, मिट्टी का ढेला नहीं।

पश्चिमी हवा ने भी हमारी साँसों में बदबू भरी है। अर्थ-लोलुपता दिनों-दिन बढ़ रही है। देश की जनसंख्या बढ़ जाने के कारण देश के मनुष्य दैनिक जीवन में रोटी-कपड़े की कमी से अधिक दुःखी रहने लगे हैं। दिन-रात पेट भरने की समस्या में ही लगे रहते हैं। आध्यात्मिक ग्रंथों को पढ़ने तथा आध्यात्मिक प्रवचनों को सुनने के लिए किसे समय है ? परिणाम यह है कि हम दुःखी और अशान्त हैं। हमारी समझ, हमारे सोचने का ढँग तथा हमारे सांसारिक जीवन का दर्शन ही विचित्र-सा बन गया है।

कुछ लोग वास्तविक सुख और शान्ति की खोज करना तो चाहते हैं, किन्तु ऊपरी ढँग से। शब्दों में ही; मन से नहीं, आत्मा से नहीं। हमारे ऋषियों ने सब कुछ बता दिया है; तनिक जीवन और जगत् को देखने का दृष्टिकोण बदलिए, शान्ति और सुख अवश्य मिलेगा।

प्रायः मनुष्य जीवन में चार कारणों से दुःखी देखे जाते हैं—(१) प्रिय की मृत्यु के कारण (२) अभीष्ट धन न होने के कारण (३) परिचित व्यक्ति के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्कर्ष से उत्पन्न ईर्ष्या के कारण (४) दूसरे के द्वारा अपमानित किये जाने पर या गाली दिये जाने पर।

हमारा पुत्र मर गया। हम दुःखी हैं। हमें समझ लेना चाहिए कि दुनिया या यह संसार सदा संसरण करता है। गतिशील है। एक रेलगाड़ी है। हम सब यात्री हैं। जिस यात्री के पास जिस स्टेशन तक की टिकट है, उसे वहाँ उतरना पड़ेगा। पुत्र का स्टेशन आ गया। उतर गया। हमारा पहले आ जाता, हम भी उतर जाते। अलीगढ़ से दिल्ली जानेवाले यात्री को दिल्ली उतरना पड़ेगा। यदि कुछ यात्री खुरजा या गाजियाबाद पर उतर जाते हैं, तो दिल्लीवाला यात्री दुःखी नहीं होता। वे अपनी राह गये, दिल्लीवाला अपनी राह जाएगा।

संसार एक नाटक-मंच भी है। संसार के मनुष्य इस मंच पर अपना-अपना पार्ट अदा करके चले जाते हैं, पर्दे के पीछे। जिसका जितना पार्ट था, उसने उतना अदा किया। फिर चला गया, पर्दे के पीछे। नाटक के अभिनय में यदि बाप बेटे के प्रति प्यार-मुहब्बत दिखाता है या बेटा बाप के प्रति सेवा-श्रद्धा-भाव को व्यक्त करता है, तो क्या उसमें कुछ वास्तविकता है? बिलकुल सचाई नहीं है, केवल नाटक है। दुनिया के मनुष्य भी नाटक खेल रहे हैं। सबको अपने-अपने अभिनय की चिन्ता रखनी है। किसी को भी दूसरे के अभिनय से लेना-देना नहीं। ऐसी स्थिति में पुत्र के नाटक की समाप्ति पर बाप का रोना, विलाप करना और दुःखी होना व्यर्थ है, मूर्खता है। कर्मानुसार अपना-अपना पार्ट अदा करके मंच से सब पर्दे के पीछे चले जाएँगे।

अधिकांश में मनुष्य अभीष्ट धन के न होने पर अशान्त और दुःखी रहते हैं। वे समझते हैं कि उनकी इच्छा के अनुकूल धन प्राप्त हो जाने पर वे सुखी हो जाएँगे। सुख की स्थिति वे धन में मान बैठे हैं। सुख धन में नहीं है; मन में है। मन में धन की लोलुपता बनी हुई है, तो उतना धन मिलने पर भी आगे बनी रहेगी। फिर अशान्ति और दुःख ज्यों का त्यों। जीवन को विलासपूर्ण ढँग से, ऐयाशी के साथ बिताने में जिन्होंने सुख मान लिया है, उनकी समझ के लिए क्या कहा जाए? प्राचीन काल में ऐयाशी की ज़िन्दगी जीनेवाले नवाबों की तथा वेश्याओं की कितनी तारीफ़ की जाती है? उन्हें कितने लोग अच्छा कहते हैं? सामान्य सीमागत धन का जीवन संयत जीवन होता है, शान्त जीवन होता है। कबीर ने ठीक कहा है—

"साईं इतना दीजिए, जामें कुटुंब समाइ।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाइ।।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना ही नहीं, धन का आधिक्य मनुष्य के जीवन को पतित बना देता है। धन बढ़ा, मन गिरा। लक्ष्मी की निकटता सत्य और धर्म से दूर कर देती है। ईशावास्य उपनिषद् में ऋषि ने स्पष्ट कह दिया है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत् त्वं पूषन् ! अपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥

—(ईशावास्य उप०, मंत्र १५)

बड़े-बड़े धनपतियों के घरों के अन्दर की लीलाएँ आपको देखने का अवसर मिल गया हो, तो आपको ठीक पता चल जाएगा कि हमारे कवियों और चित्रकारों ने लक्ष्मी का वाहन उल्लू क्यों निश्चित किया था, और सरस्वती हंस पर क्यों विराजमान की गयी थी ? सारांश यह है कि जितना अधिक धन, उतने अधिक पाप।

ईर्ष्या का जन्म परिचित के उत्कर्ष को देखकर ही होता है। ईर्ष्यालु व्यक्ति मन में अपनी ईर्ष्या के आलम्बन से पराजित हो जाता है। पराजित बना हुआ अपने को ईर्ष्या की आग में जलाता रहता है। उसे यह पता नहीं कि इस विश्व को विश्वेश्वर ने कर्म-प्रधान बनाया है। सब कर्मानुसार पाते और खोते हैं। ईर्ष्यालु व्यक्ति कितना ही जले, उसे जो मिलना है, उतना ही मिलेगा। ईर्ष्या के आलम्बन व्यक्ति को तो उसके कर्मानुसार उतना अवश्य ही मिलेगा। ईर्ष्या की आग मनुष्य को निराश, दुर्बल और दुःखी ही करती रहती है; कुछ शुक्ल तो करती नहीं। इसलिए कर्मफल-सिद्धान्त को हमें समझ लेना चाहिए। व्यर्थ दुःखी और अशान्त न रहना चाहिए।

यदि कोई दुराचारी, चरित्रहीन या असभ्य व्यक्ति हमें गाली देता है या हमारा अपमान कर देता है, तो हम बड़े दुःखी हो जाते हैं। हमें नींद नहीं आती। अशान्त रहते हैं। भीषण रूप में उग्र बनकर उससे बदला लेने के लिए दूनी गालियाँ सुनाने लगते हैं। दूना अपमान भी करने पर उतारू हो जाते हैं। अर्थात् कीचड़ से कीचड़ को धोने का उपक्रम करते हैं। क्या कीचड़ से कभी कीचड़ साफ़ हुई है ? कीचड़ को तो स्वच्छ जल से ही साफ़ किया जा सकता है। हमारी सफ़ाई के कीचड़वाले साधन को कौन अच्छा कहेगा, जब आवेश में हम 'स्व' को ही भूल गये ?

फिर सोचिए, गाली देनेवाले ने क्रोध से स्वयं पहले अपने शरीर का खून जलाया, फिर अपनी ज़बान गन्दी की। अपने को, अपने परिवार को और अपने समाज को भी गिराया। प्रतिष्ठा में बट्टा लगाया। अपने खानदान और पुरखों की इज़्ज़त मिट्टी में मिलायी। अच्छा क्या किया ?

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलालुद्दीन रूमी को एक व्यक्ति गालियाँ देने लगा। रूमी साहब बड़े खुश होकर कहने लगे—"मेरे दोस्त, मुझे तुम ख़ूब गालियाँ दो। पेट भरकर दो। इतनी दो कि तुम्हारे पास एक भी गाली न बचे। तुम्हारे पास गालियाँ ख़त्म हो जाएँगी, तो तुम हल्के हो जाओगे। मुझे ये लग नहीं रहीं। तुम्हारे मुँह से निकलकर हवा के सहारे आसमान में चली जाती हैं। आसमान इन्हें चक्कर कटाता रहेगा। गालियाँ तुम्हें परेशान करती थीं, आसमान गालियों को परेशान करेगा। हम और तुम चैन से रहेंगे।" यह बात सुनकर वह व्यक्ति रूमी साहब से माफ़ी माँगने लगा और अपने को धिक्कारने लगा।

हम गाली सुनकर क्षुब्ध न हों और उलटकर गाली न दें, तो गाली देने वाला गाली देना बन्द कर देगा। गाली गाली को जन्म देती है।

गाली देनेवाला अपनी ज़ुबान बिगाड़ता है; अपना ख़ून जलाता है; आपका कुछ नहीं बिगाड़ता—इसे हमें समझ लेना चाहिए। यह बात समझ में आ गयी, तो हम गाली सुनकर दुखी न होंगे।

मैं समझता हूँ कि आपके प्रश्न का उत्तर मैं लिख चुका। कुशल-क्षेम देती रहा करो। आशा है आप सपरिवार सानंद होंगी। सस्नेह,

श्रीमती ओमवती गौड़ एम. ए., बी० ऐड० आपका

C/o श्री राजेन्द्र शर्मा गौड़ अम्बाप्रसाद 'सुमन'

689–गौड़ भवन, कबूलनगर, शाहदरा, दिल्ली–११००३२

श्री डोरीलाल शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर अलीगढ़

दिनांक १०. ११. १९६९ ई०

प्रियवर डोरीलाल शर्मा,

आशीर्वाद !

तुम्हारा प्रश्न है कि हम संसार में सच्ची प्रतिष्ठा किस तरह प्राप्त कर सकते है ?

'प्रतिष्ठा' शब्द का वर्तमान अर्थ 'इज़्ज़त' है। वाल्मीकि ने अपने ग्रंथ 'रामायण' में 'प्रतिष्ठा' शब्द का प्रयोग 'शान्ति' के अर्थ में किया है—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।

—(वाल्मीकीय रामा० बाल० सर्ग २/१५)

गीता में 'आश्रय' या 'आधार' के अर्थ में 'प्रतिष्ठा' शब्द प्रयुक्त हुआ है—

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।

—(गीता, अ० १४/२७)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त तीनों अर्थों में से कोई भी अर्थ तुम्हें अभीष्ट हो; उसे ग्रहण करें। मैं जिस मार्ग का संकेत इस पत्र में कर रहा हूँ, उससे तुमको सच्ची प्रतिष्ठा अवश्य प्राप्त होगी।

तुम पुरुष हो। पौरुषवान् हो। कर्म रूपी तप से मनुष्य संसार में प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है। यदि तुम शारीरिक तप, वाचिक तप और मानसिक तप करते हुए सच्चे तपस्वी बने रहे, तो निश्चित रूपेण सच्ची प्रतिष्ठा प्राप्त कर लोगे।

गीता के अनुसार प्राज्ञ-पूजन और ब्रह्मचर्य शारीरिक तप हैं। स्वाध्याय वाङ्मय तप है, और भाव-शुद्धि मानसिक तप है। इनसे तुमको जन-लोक में तथा साहित्य-लोक में अवश्य ही सच्ची प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। आज भी सच्चे गुरु शिष्यों के श्रद्धाभाजन बन रहे हैं। मेरा स्वयं का भी अनुभव यही है।

हर्ष है तुम सानन्द हो। इस मूल्यहीन समय में अकेले ही बढ़े चलो और दीप से दीपक बालते रहो।

श्री डोरीलाल शर्मा, प्रधानाचार्य, शुभैषी

सुभाषचन्द्र उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, अम्बाप्रसाद 'सुमन'

खैर रोड, अलीगढ़ (उ० प्र०)

श्री रोशनलाल शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)

दिनांक १२. १२. ६९ ई०

प्रियवर शर्मा जी,

सप्रेम नमस्कार !

आपका पत्र मिला। आपके पत्र में अंकित पूरे प्रश्न में से दो उपप्रश्न इस प्रकार बन सकते हैं—

(१) सारे भारतवर्ष में विष्णु और शंकर के उपासक ही क्यों अधिक पाये जाते हैं ? ब्रह्मा के क्यों नहीं ?

(२) शंकर एक ओर संहार के देवता हैं, फिर भी कल्याणकारी रूप में औढरदानी भी माने जाते हैं। ऐसा क्यों है ?

प्रथम उपप्रश्न के उत्तर में मुख्य बात मानव की मूल प्रवृत्तियों से सम्बद्ध है। जन्म की चिन्ता या इच्छा किसी को नहीं होती। जन्म लेने के बाद जीवन में सुरक्षा अर्थात् पालन की और मृत्यु से बचने की सभी को चिन्ता रहती है। इसीलिए पालनकर्ता, 'विष्णु' और संहारकर्ता 'महेश' संसार में सर्वाधिक पूजे गये और पूजे जाते हैं! पूजे जाते भी रहेंगे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय उपप्रश्न के सम्बन्ध में यह समझ लेना चाहिए कि 'महेश' ऐसी महाशक्ति के देव हैं, जो दो विरोधी तत्त्वों के मिलन-बिन्दु हैं। 'महेश' हैं अर्थात् महा + ईश। विष्णु भक्तों ने अपने आराध्य 'महाविष्णु' माने, जो 'विष्णु' से भी ऊपर हैं। शंकर के उपासकों ने 'महेश' माने, अर्थात् महाशंकर, जो शंकर से भी ऊपर हैं। वे महेश वज्रादपि कठोर और कुसुमादपि मृदु हैं। इसीलिए तो औघड़नाथ हैं। भस्मासुर पर तुरन्त महा प्रसन्न हुए। अन्य को भस्म करने का वरदान उसे दे दिया। क्रोध किया, तो तृतीय नेत्र की ज्वाला से कामदेव को तुरन्त भस्म कर दिया।

ऋग्वेद में एक मंत्र है जिसमें उस परमेश के लिए कहा गया है कि उसकी छाया अमृत भी है, और मृत्यु भी—**यस्यच्छायाऽमृत यस्यमृत्युः** —(ऋक्० १०/१२१/२)। महेश वास्तव में ऐसे ही देव हैं, जिनकी छाया मृत्यु भी है, और अमृत भी। सत्त्वगुण और तमोगुण का विचित्र सम्मेलन महेश में है। ब्रह्मा में अकेला सत्त्वगुण है; और विष्णु में अकेला रजोगुण है। महेश दोनों से बाज़ी मार ले गये।

दक्षतनया से ज़रा-सी बात पर नाराज़ हो गये; लेकिन प्राण-त्याग के पश्चात् दक्षसुता सती के शव को शिव कंधे पर लटकाये वर्षों फिरते रहे। कामारि होते हुए भी सदा पार्वती को साथ रखते हैं। प्रेम की मूर्ति तो शंकर हैं। पत्नी को आधा अंग ही बना लिया और अर्द्धनारीश्वर कहलाये। ऐसे तो केवल शंकर ही हैं, ब्रह्मा और विष्णु नहीं।

शंकर अकेले ही नहीं, पूरे परिवार के विरोधाभासों में मस्ती का जीवन बिताते हैं। मस्तक पर गंगा भी है और तृतीय नेत्र की प्रलयंकरी अग्नि-ज्वाला भी। ललाट पर सुधास्रोत चन्द्र भी है और गले में शेषनाग और विषधर भी। पूरा परिवार अपनी-अपनी सवारियों पर चलता है—कार्तिकेय मोर पर चलते हैं, गणेश मूषक पर, पार्वती सिंह पर चलती हैं, शंकर नादिया पर; गले में विषधर और शेषनाग लपेटे हुए हैं। क्या विचित्र सम्मेलन है ? मोर के पास साँप भी हैं। साँपों के पास चूहा भी है। नादिया सिंह के पास बैठा हुआ है। गजवदन गणेश भी सिंहवाहिनी पार्वती की गोद में सिंह की पीठ पर बैठे हुए आनन्दपूर्वक चले जा रहे हैं। ऐसा विरोधाभास महेश में और महेश के परिवार में ही देखा जा सकता है। वरदान लो, या किसी को शाप दिलवाओ; महेश को मनालो—सब ठीक हो जाएगा। एक महादेव को प्रसन्न कर लीजिए, सब कुछ मिल जाएगा। प्रसन्न भी आक-धतूरे से ही हो जाएँगे। कुछ खर्चा नहीं है। इसीलिए शंकर के मंदिर भारतवर्ष में संख्या में सबसे अधिक हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंदिर भी सस्ते में ही बन जाता है—एक पिंडी स्थापित कीजिए, मंदिर बन गया। न हर्रा लगा, न फिटकरी; रँग चोखा आ गया। फिर भक्त, पुजारी और उपासक संख्या में अधिक क्यों न होंगे ?

विष्णु को पूजनेवाले लक्ष्मी को अलग से पूजें, तब काम बने। शंकर को अकेले पूजने पर ही पार्वती का पूजन हो जाता है, क्योंकि अर्द्धनारीश्वर हैं। पार्वती सदा-सर्वदा साथ हैं।

विष्णु स्वयं लक्ष्मी-प्रेमी हैं। जो स्वयं ठाठ-बाट और संपत्ति के इच्छुक हैं, वे अन्य को क्या देंगे ? देंगे भी तो लेशमात्र, भीख-सी। शंकर दिगम्बर हैं। भस्म रमाये रहते हैं। वस्त्र तक भी नहीं—वस्त्रों में एक बाघम्बर और भोजन में आक-धतूरा। ऐसा व्यक्तित्व ही तो दूसरों को कुछ दे सकता है। आज तक कहीं घर बनाकर भी नहीं रहे। पार्वती जी ने हठ करके विश्वकर्मा से एक महल बनवा लिया। गृह-प्रवेश से पहले पूजन के लिए शंकर ने रावण को बुलवाया। पूजन कराने के बाद आचार्य-दक्षिणा का प्रश्न आया। रावण ने दक्षिणा में वह महल ही माँग लिया और शंकर ने सहर्ष दे दिया। पार्वती बहुत नाराज़ हुईं। उदारमना औढरदानी शंकर बोले—"देवि ! जब हम ही घर बनाकर रहेंगे, तब दुनिया के लोग घर कहाँ पाएँगे ?" जय हो ऐसे शिव शंकर की ! शंकर शिव अधिक हैं, रुद्र कम।

श्री रोशनलाल शर्मा, एम० ए० शुभैषी

प्रवक्ता अँग्रेज़ी, माहेश्वरी कालेज, अलीगढ़ अम्बाप्रसाद 'सुमन'

पं० सोनपाल शर्मा के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' **८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)**

डी० लिट्० २०. १. १९७० ई०

प्रियवर श्री शर्मा जी,

सप्रेम नमस्कार !

पत्र मिला, धन्यवाद ! हर्ष है आप सपरिवार सानंद हैं। पत्र में आपकी जिज्ञासा यह है कि "वैदिक साहित्य से क्या तात्पर्य है और उसके सोपानों में प्रमुख अंतर क्या है ? इसे संक्षेप में जानना चाहता हूँ।"

वेदों (ऋक्, यजु, साम और अथर्व) की संहिताएँ, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक ग्रंथ और उपनिषद् ग्रंथ मिलकर वैदिक साहित्य की संज्ञा प्राप्त करते हैं।

वैदिक साहित्य को समझने के लिए छह वेदांगों को जानना आवश्यक है—(१) शिक्षा (ध्वनिशास्त्र) (२) कल्प (३) व्याकरण (४) निरुक्त (५) छन्द (६) ज्योतिष।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण ग्रंथ वैदिक साहित्य के द्वितीय सोपान हैं। आरण्यक तृतीय और उपनिषद् चतुर्थ। ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञविधान अर्थात् कर्मकाण्ड पर विशेष विचार किया गया है। आरण्यकों में यज्ञों के रहस्य का उद्घाटन है।

हमारे ब्राह्मणों में ब्रह्म और आत्मा—दो तत्त्व–अलग-अलग माने गये हैं, किन्तु उपनिषदों में ब्रह्म और आत्मा एक तत्त्व के रूप में प्रतिपादित किये गये हैं। 'सोऽहं' उपनिषद्-वाक्य है। याज्ञवल्क्य ने जनक से कहा था—"आत्मा वै ब्रह्म इति।"

ब्राह्मण ग्रंथों में कर्मकाण्ड पर बल है। तपस्या और कर्म वास्तव में पर्यायवाची माने गये हैं। मनुष्य जन्म से ही अज्ञान से आवृत है। अज्ञान को हटाकर ज्ञान की प्राप्ति के लिए अन्तःकरण-शुद्धि की आवश्यकता है और अन्तःकरण की शुद्धि तपस्या कर्म से हो सकती है। अतः ज्ञान तथा परम सुख के लिए कर्म की आवश्यकता सर्वप्रथम है। कर्म से तात्पर्य है, शास्त्र-विहित कर्म। उदासीन कर्म तो सभी मनुष्य सहज रूप में करते ही रहते हैं। चलना, फिरना, उठना, बैठना, सोना, साँस लेना, मल-मूत्र त्यागना आदि उदासीन कर्म हैं। कर्मकाण्ड में इनसे कोई मतलब नहीं। उसका सम्बन्ध विहित कर्मों से है।

पं० सोनपाल शर्मा,
बहरौला (अलीगढ़)

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री जवाहरलाल शर्मा के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन'
डी० लिट्०

८/७, हरिनगर अलीगढ़ (उ. प्र.)
दिनांक २. १. १९७२ ई०

प्रियवर,

आशीर्वाद !

तुमने अपने पत्र में जो जिज्ञासाएँ व्यक्त की हैं, उनका प्रश्न यह बनता है—

'दर्शन' शब्द का क्या अर्थ है ? हमारे षड् दर्शनों में कौनसा दर्शन आज के विज्ञान के अधिक निकट है और कौनसा दर्शन सबसे अधिक प्राचीन है ?

'दर्शन' शब्द में दृश् धातु है, जिसका अर्थ 'देखना' है। स्थूल या सूक्ष्म का देखना ही 'दर्शन' है। चार्वाक, वैशेषिक और न्याय नामक दर्शन स्थूल को और सांख्य, योग, मीमांसा आदि सूक्ष्म को देखते हैं। 'दर्शन' देखने की विशिष्ट एवं व्यवस्थित प्रक्रिया है। वह प्रक्रिया शास्त्र का रूप ग्रहण कर चुकी है। अतः उन्हें 'शास्त्र' भी कहते हैं।

हमारे षड् दर्शनों में सबसे प्राचीन दर्शन कणाद कृत वैशेषिक है। कणाद का व्यक्तिगत नाम उलूक था। रात्रि में भिक्षा माँगने के कारण कणाद उलूक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहलाये। वैशेषिक दर्शन परमाणु-सिद्धान्त का प्रतिपादक है। यह आज के विज्ञान के अत्यन्त निकट है। प्रसिद्ध विज्ञान-वेत्ता प्रो० सी० बी० रमण के द्वारा कणाद के सिद्धान्त की प्रशंसा की गयी है।

कपिल का सांख्य दर्शन ईसापूर्व का माना जाता है। कपिल मुनि का उल्लेख 'मानस' में किया गया है। मनु के दो पुत्र और एक कन्या थी। मनु के बड़े पुत्र का नाम उत्तानपाद और छोटे का प्रियव्रत था। कन्या का नाम देवहूति था, जो कर्दम ऋषि को ब्याही थी। कपिल कर्दम ऋषि के पुत्र थे। वैशेषिक दर्शन सांख्य से भी प्राचीन है। क्रम की दृष्टि से प्रथम वैशेषिक, द्वितीय सांख्य और तृतीय वेदान्त दर्शन है। तदुपरान्त क्रम-व्यक्तिक्रम से योग, मीमांसा, न्याय के नाम लिये जा सकते हैं।

षड् दर्शनों के प्रणेता इस प्रकार हैं—(१) वैशेषिक—कणाद (२) सांख्य—कपिल (३) वेदान्त—बादरायण (४) योग—पतंजलि (५) मीमांसा—जैमिनि (६) न्याय—अक्षपाद गौतम।

बच्चों को प्यार। सौभा० बहू को असीस।

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री जे० एल० शर्मा, एम० ए०, बी० एड०,
श्री घनश्यामदास पोद्दार विद्यालय,
जमनालाल बजाज नगर, अँधेरी (पूर्व), बम्बई–59

डा० मलखानसिंह सिसोदिया के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक ३. २. १९७२ ई०

प्रिय भाई सिसोदिया जी,

सप्रेम नमस्कार !

आपका पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। 'दुर्गा-पूजा का रहस्य' आप जैसा पुरुष ही जानना चाहेगा, जो वंश-परम्परा से 'सिसोदिया' हो और 'सूली और शान्ति' जैसी काव्य-रचना का रचयिता हो।

'दुर्गा-पूजा' से सम्बद्ध प्रमुख ग्रंथ है—'दुर्गा-सप्तशती'। उसमें मेरी दृष्टि से प्राणतत्त्व एक यही श्लोक है।

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

दुर्गा-पूजा वस्तुतः शक्ति-पूजा है। पूजन, अर्चन, वंदन आदि के माध्यम से मार्कण्डेय ऋषि व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को शक्ति-संग्रह के लिए प्रेरित

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं। संसार की उत्पत्ति का मूल बीज-तत्त्व 'शक्ति-तत्त्व' है, जिसे तंत्रसाधना में 'दुर्गा' बताया गया है। उस तत्त्व तक पहुँचना बहुत कठिन है। उसके लिए शरीर, मन और आत्मा को सबल बनाना पड़ता है। इसीलिए उस आद्याशक्ति-अर्थात् महा प्रबल शक्ति को 'दुर्गा' नाम दिया गया। दुर्गा = जहाँ कठिनाई से गमन किया जा सके।

दुर्गा अनेक भुजाओं में तलवारें लेकर सिंह-वाहिनी के रूप में महिषासुर का नाश करती है। शारीरिक शक्ति तभी सफल हो सकती है, जब मनोबल और और आत्मबल से वह संयुक्त हो। मनोबल और आत्मबल को सिंह के रूप में चित्रित किया गया है। जो व्यक्ति या राष्ट्र मनोबल और आत्म-बल में सिंह तुल्य है, दुर्गा सदा उसके साथ रहती है।

शारीरिक, मानसिक और आत्मिक—ये तीन शक्तियाँ ही त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) हैं। त्रिदेवों की नेत्र-ज्वाला से महिषासुर का विनाश हुआ था। जब तक कोई राष्ट्र तीनों प्रकार की शक्तियों का एकत्रीकरण नहीं करेगा, तब तक आततायी तत्त्वों को विनष्ट नहीं किया जा सकता। दुर्गा-पूजा का यही रहस्य है।

आपसे मिलन-भेंट और वार्तालाप का सुयोग बा० वृन्दावनदास जी (मथुरा) के यहाँ ही मिला था। इसके बाद वैसा सुख नहीं मिला। बच्चों को असीस।

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० मलखानसिंह सिसोदिया
कल्पना-कुटीर, एटा (उ० प्र०)

श्री सत्यदेव शर्मा के नाम

८/७, हरीनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक ४. ३. १९७२ ई०

मित्रवर सत्यदेव जी,

सप्रेम नमस्ते!

आपके पत्र से विद्यार्थी-जीवन की पुरानी बातें एक साथ मानस-पटल पर एक-एक करके आने लगीं। आपने तो आर्यसमाज और समाजवादी कांग्रेस-पार्टी में बहुत दिन सक्रिय रहकर काम किया है। सन् १९३०-३१ ई० में जब मैं तहसीली स्कूल, जलाली में आपके साथ मिडिल में पढ़ता था, तब आर्यसमाज के कार्यकलापों में मैं भी रुचि लेता था। आर्यसमाज में तब एक ऐसी चेतना थी, जिसने हिन्दुओं को जाग्रत् बनाया। अंधविश्वासों को भगाया और गिरती हुई हिन्दू जाति को उठाया। हिन्दू जाति को जिस समय ज्ञान, जागरूकता और चेतना की आवश्यकता थी, उसे ठीक समय पर महर्षि दयानंद ने उसे प्रदान

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। हिन्दुओं को आत्म-निरीक्षण के लिए बुद्धि का तीसरा नेत्र दिया और अधोगामिनी रूढ़ियों को तर्क की तलवार से काटने का ढँग बताया।

अब भी उक्त सभी बातों में मेरी बुद्धि अपना वोट आर्यसमाज के पक्ष में ही देती है। इतने पर भी आपने मुझसे यह प्रश्न किया है कि आप फिर सनातन धर्म की ओर झुके हुए क्यों दिखाई पड़ते हैं?

मित्रवर! जीवन में मनुष्य को तीन के संकेतों पर चलना पड़ता है—(१) हृदय (२) बुद्धि (३) आत्मा। आत्मा की बात आप इस समय रहने दें; क्योंकि मुझ-जैसा सांसारिक मनुष्य आत्मा के स्वरूप से अवगत नहीं, और न उसकी अनुभूति ही है। हाँ, मेरा जीवन बुद्धि तथा हृदय के संकेतों पर चला है और चल रहा है। जन्म से मेरे संस्कार कुछ ऐसे थे कि मैं संस्कृत और हिन्दी के काव्य-साहित्य के पढ़ने में रुचि लेता था। बचपन में मेरी दादी ने मुझे रामायण और महाभारत की कथाएँ सुना दी थीं। हाईस्कूल कक्षाओं में पढ़ते समय अर्थात् १९३६ ई० के आस-पास मैं स्वाध्याय के आँगन में काव्य-प्रेमी, और समाज-सेवा के मंच पर आर्यसमाज-प्रेमी बना रहा। तब मैं अन्दर हृदय से बात करता था और बाहर बुद्धि और तर्क से नाता जोड़े रखता था। तब मेरे आर्यसमाजी मित्र कई थे। उनसे बातें करते समय मुझे लगने लगा था कि यदि मैं आर्यसमाज में अधिक दिन रहा, तो हृदय की सरसता से अर्थात् जीवन के अमृत से हाथ धो बैठूँगा और आर्य समाज में रहकर मैं काव्य के मर्म को समझने वाली क्षमता समाप्त-सी कर दूँगा। इसलिए मैं हृदय के भाव-सागर में डूबने के लिए सनातन धर्म की ओर पुनः आ गया। सस्नेह,

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री सत्यदेव शर्मा
शेखा की नगलिया, पो० जलाली, (अलीगढ़)

श्री कृष्णकुमार चतुर्वेदी के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन'
डी० लिट्०

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक २. ८. १९७२ ई०

प्रियवर चतुर्वेदी,

आशीर्वाद!

तुम्हारे पत्र में जो बात पूछी गयी है, उससे यह प्रश्न बनता है—

"संसार के मनुष्यों को ज्ञान, कर्म और भक्ति में से किस मार्ग को अपनाना चाहिए? आपके मत से कौनसा मार्ग अधिक श्रेयस्कर है?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर रूप में मैं अपनी बात तुम्हें लिख रहा हूँ। संसार में दो प्रकार के मनुष्य होते हैं—(१) अन्तर्मुखी (२) बहिर्मुखी। अन्तर्मुखी वृत्ति के मनुष्यों के लिए ज्ञान मार्ग ठीक है और बहिर्मुखी वृत्तिवालों के लिए कर्म मार्ग या भक्ति मार्ग ठीक है। शंकर अंतर्मुखी थे, ज्ञानवादी थे। रामानुज, निम्बार्क, वल्लभ आदि बहिर्मुखी थे, भक्तिवादी थे।

कर्म योग का तात्पर्य है, कर्मठता, कठोरता अर्थात् तपश्चर्या। इस मार्ग को वही बहिर्मुखी मनुष्य अपनाता है, जो अंगारों पर चलने में और आग से खेलने में उल्लास और सुख का अनुभव करता है। कर्मयोगी में पौरुष होता है। पौरुषमय पुरुषों के लिए कर्म योग का मार्ग उचित है।

कुछ मनुष्य स्त्री-स्वभाव के होते हैं; प्रेमभाव से परिपूर्ण कोमल निष्कपट हृदय रखते हैं। प्रह्लाद भक्त था। भगवान् नृसिंह के चरणों को छाती से लगा कर रोमांचित हो गया। हृदय द्रवित हो गया और उसके नेत्रों से अश्रुपात होने लगा। भागवत के सातवें स्कन्ध में इसका वर्णन किया गया है—

तत् पादपद्मं हृदि निर्वृतो दधौ। हृष्यत्तनुः क्लिन्नहृदश्रुलोचनः॥

(भागवत ७/९/६)

रामचरितमानस के उत्तर काण्ड में शंकर जी की दशा भी राम के दर्शन के समय ऐसी ही हो गयी है—

बिनय करत गदगद गिरा, पूरित पुलक सरीर।

(रामचरितमानस, उत्तर० १३/–)

ऐसे मनुष्य परमेश के प्रति सहज प्रेम रखते हैं। उनके लिए भक्ति ठीक है। भक्ति राग का मार्ग है। कर्म विराग और आग का मार्ग है।

भक्ति को हम दो प्रमुख भेदों में देखते हैं—(१) अकारण या सहजा भक्ति जैसे—ध्रुव, प्रह्लाद, आदि की भक्ति (२) सकारण भक्ति जैसे—कामजा भक्ति गोपियों की; द्वेषजा शिशुपाल की; भयजा कंस की; स्नेहजा वार्ष्णेयों की।

अपने-अपने स्वभाव और वृत्तियों के अनुसार मनुष्य ज्ञान, कर्म और भवित को अपना सकते हैं। वैसे कर्म से समाज का कल्याण शीघ्र हो सकता है। बच्चों को प्यार सबको आशीर्वाद।

हर्ष है सपरिवार सानंद हो। सस्नेह,

श्री कृष्णकुमार चतुर्वेदी, एम० ए०
९/८५ मदारगेट, अलीगढ़

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० राजेन्द्रप्रसाद वर्मा के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' **८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)**
डी० लिट्० दिनांक ५. ८. १९७२ ई०

प्रियवर राजेन्द्र,

आशीर्वाद !

तुम्हारे पत्र से विदित हुआ कि तुम यह जानना चाहते हो कि 'रामचरितमानस' में कौनसा दार्शनिक सिद्धान्त अनुस्यूत है ?

शंकर के अद्वैतवाद के विरोध में प्रमुख रूप से चार वैष्णव सिद्धान्त प्रचलित हुए—(१) विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त (श्री सम्प्रदाय अर्थात् रामानुज संप्रदाय) (२) द्वैताद्वैत सिद्धान्त (हंस संप्रदाय अर्थात् निम्बार्क संप्रदाय) (३) द्वैत सिद्धान्त (ब्रह्म संप्रदाय अर्थात् मध्व संप्रदाय (४) शुद्धाद्वैत सिद्धान्त (रुद्र संप्रदाय अर्थात् वल्लभ संप्रदाय) ।

शंकर का दार्शनिक सिद्धान्त निराकार निर्गुणवादी है, जिसमें एक मात्र ब्रह्म की सत्ता स्वीकार की गयी है—

एकं ब्रह्म द्वितीयो नास्ति, ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः ।

तुलसीदास जी कुछ स्थलों पर शंकर के अद्वैतवाद का समर्थन करते हुए भी पाये जाते हैं—

रज्जौ यथा हेर्भ्रमः (मानस, बाल० श्लोक ६)

रजत सीप महुँ भास जिमि, जथा भानु कर बारि ।

(मानस, बाल० ११७/–)

जगत् वास्तव में है नहीं; वह मिथ्याभास है । शंकर के मत में मुझे एक कमजोरी यह लगी कि शंकर ने माया का अस्तित्व न मानते हुए भी अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन में माया का सहारा लिया । अज्ञान के कारण ब्रह्म जगत् रूप में दिखता है; पर अज्ञान आया कैसे और कहाँ से, जब एक ब्रह्म ही है ?

शंकर ने जिस शक्ति को एक और निर्गुण बताया, उसे मध्वाचार्य ने दो और सगुण कहा । मध्वाचार्य का दार्शनिक सिद्धान्त द्वैत कहलाया । इसमें ईश्वर और उसकी शक्ति (माया) अनादि है । विष्णु ईश्वर है और लक्ष्मी उसकी शक्ति है । ईश्वर के आदेश से माया (शक्ति) विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और लय करती है । शक्तिमान् ईश्वर आज्ञा देता है, उसकी शक्ति उसकी आज्ञा का पालन करती है । इस सिद्धान्त का प्रतिपादन 'रामचरितमानस' के अयोध्याकाण्ड में वाल्मीकि के इन शब्दों से हो रहा है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी ।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपा निधान की ।।
(अयो० १२६/छंद)

निम्बार्काचार्य ने उस अनंत शक्ति (ब्रह्म) को द्वैत भी बताया और अद्वैत भी। उनका सिद्धान्त द्वैताद्वैत कहलाया।

उनका कहना है कि संसार के धरातल पर जीव और जगत् दो भिन्न तत्त्व दिखाई पड़ते हैं। ये दो तत्त्व उसी एक ब्रह्म के रूप हैं। अतः वह ब्रह्म अद्वैत है, और द्वैत भी। जल और तरंग रूपतः दो, किन्तु तत्त्वतः एक; अर्थात् जल। इसीलिए इसे द्वैताद्वैत या भेदाभेद सिद्धान्त भी कहते हैं। तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' के बालकाण्ड में लिखा भी है—

गिरा अरथ जल बीचि सम, कहिअत भिन्न न भिन्न ।
बंदउँ सीता राम पद, जिन्हहि परम प्रिय खिन्न ।।
—(बाल० १८/—)

ब्रह्म को रामानुजाचार्य विशिष्ट अद्वैत कहते हैं। उनका कथन है कि जैसे मनुष्य होता तो एक ही है; लेकिन उसकी देह और उस देह में आत्मा, इस तरह दो तत्त्व हुए। अर्थात् वह ऐसा एक है, जिसमें दो तत्त्व हैं। उस ईश्वर का अचित् (जड़) रूप जगत् है और चित् (चेतन) रूप आत्मा है। उस ईश्वर में चित्-अचित् की विशिष्टता है। इसीलिए विशिष्टाद्वैत ही उसे कहना चाहिए। आत्मा चित् तत्त्व है और इन्द्रियाँ, मन, प्राण, बुद्धि आदि अचित् तत्त्व हैं। चित्-अचित् रूप में वही एक ईश्वर है। संसार के चर और अचर उसी के रूप हैं। सारांश यह है कि चित् जीव और अचित् जगत्——दोनों उस ईश्वर के शरीर हैं। फिर भी ईश्वर इन दोनों से विशिष्ट है। इसलिए ईश्वर विशिष्ट अद्वैत है। वह लौकिक गुणों से रहित है—यही उसकी विशिष्टता है। लयावस्था में रामानुज ईश्वर को एक तथा अद्वितीय मानते हैं; लेकिन कार्य रूप में जीव-जगत् को उसका अंश मानते हैं। जीव-जगत् सगुण ब्रह्म का रूप है। मन्दोदरी के शब्दों से तुलसीदास जी ने इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है——

अहंकार सिव बुद्धि अज, मन ससि चित्त महान ।
मनुज बास सचराचर, रूप राम भगवान ।।
—(लंका० १५/——)

उत्तरकाण्ड में तुलसी ने लिखा है कि "**सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिअ उरगारि।**" इसमें भी रामानुज के 'तत्त्वमसि' (=तस्य त्वं दासः असि) का प्रतिपादन है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R.P.S
097
ARY-S
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
185465
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

शंकर ने माया को गर्हित तथा आच्छादन-रूप में बताया। वल्लभाचार्य ने उसे परमात्मा की शक्ति बताया; नितान्त शुद्ध। ब्रह्म की दो शक्तियाँ हैं— (१) विद्या माया (२) अविद्या माया। ये शुद्ध शक्तियाँ शुद्ध शक्तिमान् में व्याप्त हैं। अतः शक्तिमान् ब्रह्म शुद्ध अद्वैत है। इसीलिए यह सिद्धान्त शुद्धाद्वैत कहलाया। बद्ध अवस्था में पुरुष 'जीव' कहलाता है। बद्धावस्था में जीव भोक्ता है। वह संसारी जीव एक प्रकार से मूलतः ईश्वर का अंश ही है। अविद्या माया के बंधन में पड़कर वह चक्कर काटता रहता है। शुद्धाद्वैत आदि वैष्णव मतों के अनुसार भक्त कभी भगवान् नहीं बनता—सारूप्य और सायुज्य मुक्ति में भी नहीं; सदा दो का अस्तित्व है।

महात्मा तुलसीदास जी ने 'मानस' के अयोध्याकाण्ड में वाल्मीकि मुनि के द्वारा भगवान् राम के प्रति निम्नांकित शब्दों में निवेदन कराया है। मुनि वाल्मीकि भगवान् रामचन्द्र जी से कहते हैं—

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।।

(अयो० १२७/३)

उपर्युक्त अर्द्धाली में 'तुम्हइ होइ जाई' का अर्थ है कि तुम्हारा स्वरूप हो जाता है अर्थात् उसकी सारूप्य मुक्ति हो जाती है। वैष्णव भक्ति में भक्त और भगवान् सदा द्वैत स्थिति में रहते हैं।

परमात्मा की विद्या माया सृष्टि की रचना करती है। वह ब्रह्म की आज्ञा से सारे कार्य करती है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन तुलसीदास जी की उस शब्दावली से हो जाता है, जो अरण्यकाण्ड में रामचन्द्र जी के मुख से लक्ष्मण के प्रति व्यक्त की गयी है।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिद्या अपर अबिद्या दोऊ।।
एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा। जा बस जीव परा भवकूपा।।

—(अरण्य० १५/३, ४, ५,)

"माया ईस न आप कहुँ, जान कहिअ सो जीव।
बंध मोच्छप्रद सर्वपर, माया प्रेरक सीव।।"

—(अरण्य० १५/—)

उत्तरकाण्ड में काकभुशुण्डि जी गरुड़ से कहते हैं—

ईस्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।
सो मायाबस भएउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं।।

—(उत्तर० ११७/ २, ३)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा अपना मत यह है कि 'मानस' में कोई एक दार्शनिक मत अनुस्यूत नहीं। तुलसीदास को जहाँ जो वैष्णव सिद्धान्त रुचा, वही प्रतिपादित कर दिया। गोस्वामी जी तो पूर्णतः समन्वयवादी थे। उन्होंने तो शंकर के निर्गुण अद्वैतवाद को भी सगुण के साथ अपना लिया और लिखा विशिष्ट अद्वैत का प्रतिपादन करते हुए—

ब्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस, कौसल्या कें गोद॥

—(बाल० १९८/—)

हर्ष है तुम सपरिवार सानंद हो। बच्चों को प्यार।

श्री राजेन्द्रप्रसाद वर्मा, एम० ए०
बी० २२, नवीन शाहदरा, दिल्ली ३२

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री दुर्गादास के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक १२. ९. १९७४ ई०

प्रियवर दुर्गादास,

आशीर्वाद !

आपके पत्र में मिलते हुए-से लगनेवाले शब्दों के तीन युग्मक मिले। आप उनकी स्पष्ट भेदक-रेखाओं के साथ अर्थ जानना चाहते हैं। वे हैं—(१) **योगी** और **भक्त** (२) **दानी** और **त्यागी**। (३) **अहंकारी** और **स्वाभिमानी**।

(१) **योगी** और **भक्त**—दोनों का लक्ष्य परमात्मा की प्राप्ति है; किन्तु साधन दोनों के अलग-अलग हैं। **योगी** शरीर और मन पर नियंत्रण करते हुए ध्यान के द्वारा परमात्मा की प्राप्ति करता है। **भक्त** परम प्रेम (भक्ति) के सहारे एक दम परमात्मा को प्राप्त करता है। योगी बाहर होश में और अन्दर बेहोश रहता है, लेकिन भक्त बाहर बेहोश और अन्दर होश में रहता है। योगी को धारणा से ध्यान और ध्यान से समाधि में क्रमशः पहुँचना पड़ता है, किन्तु भक्त सीधा एक दम समाधि में पहुँच जाता है। रामकृष्ण परम हंस भक्त थे, एक दम समाधि में पहुँचते थे। अन्दर होश में रहते और माँ दुर्गा से बातें करते थे। योगी विराग से परमात्मा को पाता है, भक्त अनुराग से परमात्मा को पाता है। योगी संसार को त्यागकर अंदर परमात्मा के दर्शन करता है; भक्त संसार में रहकर संसार में ही, अर्थात् बाहर ही परमात्मा के दर्शन करता है। योगी पौरुषमय तथा कठोर होता है, भक्त स्त्री-स्वभावमय तथा कोमल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। योगी कर्म से होता है, भक्त जन्म से होता है। यदि किसी के पास जन्म से परमप्रेममय हृदय नहीं है, तो वह कर्म से भक्त बन नहीं सकता।

(२) **दान** की प्रक्रिया में तीन का अस्तित्व सदा रहता है—(१) **दाता** (२) **ग्रहीता** (३) **देय वस्तु**। दानी में **कर्तृत्व, कर्म** और **क्रिया**—तीनों की अनुभूति रहती है। दानी कर्म और कर्म-फल को त्याग नहीं पाता। त्यागी कर्म और कर्म-फल पर कभी विचारता ही नहीं। **दानी** में दान-भाव रहता है और उस भाव में देय और ग्रहीता किसी फल-प्राप्ति की भावना से समाविष्ट रहते हैं।

एक दानी श्री रामकृष्ण परमहंस को कुछ अशर्फियाँ भेंट करने गया था। परमहंस जी ने कहा, मैंने भेंट स्वीकार करली, अब तुम इन्हें गंगा में फेंक आओ। वह दानी व्यक्ति गंगा के किनारे बैठा-बैठा उन अशर्फियों को गिनता रहा। उन्हें गंगा में नहीं फेंका। निश्चित है, वह व्यक्ति परमहंस को दे रहा था; कुछ लेने की भावना से। **त्यागी** में ऐसा कुछ नहीं होता। त्यागी की दृष्टि में न देय होता है, और न देय-पात्र (ग्रहीता)। उसके सब कर्म सहज होते हैं, और कर्म-फल-रहित। इसीलिए गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा—

यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते।

—(गीता अ० १८/११)

सारांश यह है कि त्याग जीवन की एक सहज वृत्ति है।

(३) **अहंकार** में सत्ता की शक्ति की गहरी अनुभूति होती है। अहंकार अपने **पद** और पद की शक्ति को विध्वंस की भावना से सर्वोपरि रखना चाहता है। **अहंकारी** में सत्ता और सत्ता के मद का अस्तित्व रहता है। लेकिन **स्वाभिमानी** में आत्मा की स्वाधीनता का बोध होता है। वह अनौचित्य के आगे झुकता नहीं। वह विचार और कर्म में रचनात्मक होता है। स्वाभिमानी में आत्माभिमान होता है; देहाभिमान नहीं।

महाभारत के आदि पर्व में राजा ययाति और औशीनर शिवि की कथाएँ वर्णित हैं। जीवन के अन्तिम चरण में ययाति ने बड़ी तपस्या की थी। उस महती तपस्या के फलस्वरूप ययाति को स्वर्ग भी मिला; किन्तु अहंकार के कारण वे स्वर्ग से च्युत किये गये। चन्द्रवंशीय शिवि ने कबूतर की रक्षा में अपना शरीर तक काट-काट कर तुला पर चढ़ा दिया। स्वयं को समाप्त किया और जीवन भर सत्पात्रों को दान दिया और सर्वस्व अर्पण किया; किन्तु सदा अहंकार से दूर रहे। निरहंकार शिवि का रथ स्वर्ग जानेवालों में सब से आगे था। उन्हें स्वर्ग में सर्वोच्च श्रेणी मिली। अहंकार को 'मद' भी कहते हैं। यह पाप का मूल है।'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशा है उपर्युक्त विवेचन से तुम्हें योगी और भक्त; दानी और त्यागी तथा अहंकारी और स्वाभिमानी के अर्थों का अन्तर मालूम हो गया होगा।

सस्नेह,

श्री दुर्गादास, प्रधानाचार्य,
आदर्श भारती उच्चतर माध्यमिक विद्यालय,
कलवा, (अलीगढ)

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री माणकचन्द नाहर के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन'
डी० लिट्०

८/७ हरिनगर अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक २२. २. ७६ ई०

प्रियवर,

आशीर्वाद !

तुम्हारे पत्र में **इन्सान** की पहचान की जिज्ञासा व्यक्त की गयी है।

'इन्सान' हम हैं या नहीं—इसके विषय में किसी से पूछने की ज़रूरत नहीं। एकान्त में हमारा मन हमें स्वयं साफ़-साफ़ बता देगा।

कुछ प्रश्न कीजिए और मन से उनके उत्तर लीजिए। 'हाँ' या 'ना' में ही **'इंसान'** और **'हैवान'** का पता लग जाएगा।

(१) किसी परिचित या साथी को उच्च परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण सुनकर अथवा उसकी उच्च पद-प्राप्ति पर हमें प्रसन्नता होती है?

(२) हमारा साथी सामाजिक, राजनीतिक या साहित्यिक क्षेत्र में पुरस्कृत होता है, तो हमें हार्दिक उल्लास होता है?

(३) हमारे पड़ोसी के यहाँ सगाई में अच्छे वस्त्राभूषण आते हैं, तो हमें आनन्द की अनुभूति होती है?

(४) एक साथी से किसी बात पर कुछ वर्ष पहले हमारी भारी कहन-सुनन हो गयी थी, क्या उसकी गाँस आज हमारे मन से पूर्णतः समाप्त है?

यदि चारों का उत्तर 'हाँ' है, तो हम इन्सान बनते जा रहे हैं।

श्री माणकचन्द नाहर, एम. ए., साहित्यरत्न,
सेठ बख्तावरचन्द नाहर पोस्टग्रेजुएट कालेज,
१/१२ बाज़ार रोड, मइलापुर, मद्रास—४

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री रमेशप्रसाद शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक १०. ५. १९७६ ई०

प्रियवर रमेश,

आशीर्वाद !

तुम्हारा यह प्रश्न बहुत स्वाभाविक और सूझ-बूझ का है कि राजा धृतराष्ट्र का बड़ा पुत्र **दुर्योधन** जब क्रूर, कपटी, छली, दंभी और अतिशय धनलोलुप था, तब उसे **सुयोधन** क्यों कहा गया ? दुर्गुणों के कारण दुर्योधन नाम तो ठीक है।

दुर्योधन में भले ही अनेक अवगुण थे; किन्तु वह साहस और वीरता में विख्यात था। गदा-युद्ध में उसका कौशल बलशाली भीम के कौशल से बढ़कर था। दुर्योधन में सच्चे और उत्तम वीर का-सा एक लक्षण यह था कि महाभारत के युद्ध में वह अपने जोड़ीदार भीम से ही लड़ा था, यद्यपि युधिष्ठिर ने दुर्योधन से कह दिया था कि तुम पाँचों पाण्डवों में से किसी एक से लड़ सकते हो। यदि वह पाण्डव (पाण्डु-पुत्र) तुमसे युद्ध में हार गया, तो हम सब पाण्डव सदा को राज्य-प्राप्ति की आशा छोड़कर वन को चले जाएँगे। दुःशासन, कर्ण और शल्य के मरने के उपरान्त की घटना है यह, जो महाभारत में वर्णित है।

देखिए, दुर्योधन की सच्ची युद्ध-वीरता। एक सच्चे युद्धवीर का चरित्र उसमें था। यदि वह चाहता तो नकुल और सहदेव में से किसी एक से युद्ध माँग लेता और उसे मारकर सदा को राजा बन जाता। लेकिन नहीं, उसने अपने जोड़ीदार भीम से ही युद्ध करना स्वीकार किया। यह उसका सुयोधन-रूप था। वह सुयोद्धा था। अतः उसे **सुयोधन** भी कहते थे। उस दुर्योधन में ऐसी कुछ अच्छाई भी थीं। बच्चों को आशीर्वाद ! सस्नेह,

श्री रमेशप्रसाद शर्मा, शुभैषी
१३१० पूर्वी रोहतास नगर, शाहदरा, दिल्ली—११००३२ अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री उजियारीलाल सक्सेना 'लाठ साहब' के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक ३. ८. १९७६ ई०

प्रिय श्री लाठ साहब,

सप्रेम नमस्कार।

आपने स्वामी श्रीराम-नत्थीलाल की मंडली की कृष्ण-लीला और चैतन्य-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लीला देखी। आपकी प्रमुख जिज्ञासा है कि वृन्दावन में आज-कल जो प्रमुख रास-मंडलियाँ लीलाएँ करती हैं, उनकी परम्परा और इतिहास क्या है ?

आप मथुरा-वृन्दावन तो जाते ही रहते हैं। आपने वहाँ तीन रास-मंडलियाँ ही सर्वोच्च पायी होंगी—(१) स्वामी **रामस्वरूप** की मंडली (२) स्वामी **हरगोविन्द** की मंडली (३) स्वामी **श्रीराम-नत्थीलाल** की मंडली।

उपर्युक्त मंडलियों की बीजरूप-परम्परा लगभग १४७६ ई० में प्रारम्भ हुई थी। करहला ग्राम के स्वामी घमंडदेव जी व्यक्तिगत रूप में रास कराया करते थे। वे कृष्ण-भक्त थे। उनकी शिष्य-परम्परा में स्वामी केशवदेव जी हुए। उसी शिष्य-परम्परा में आगे चलकर सन् १९०० ई० में वल्लभ और निम्बार्क संप्रदायों के आधार पर दो पृथक्-पृथक् रास-मंडलियाँ बनीं। स्वामी **लाड़ली जी** ने वल्लभ संप्रदाय के अनुसार जो मंडली बनायी, उसमें श्रीकृष्ण जी का मुकुट दाहिनी ओर झुका हुआ रहता था। इसे ब्रज-रास नाम मिला। इसमें स्वामी **कृष्णलाल** और स्वामी **मेघश्याम** प्रसिद्ध मंडलीकार हुए। स्वामी कृष्णलाल की शिष्य परम्परा में स्वामी **हरगोविन्द** हैं, जो आज-कल कृष्ण-लीला और चैतन्य-लीला करते हैं। स्वामी हरगोविन्द ने सन् १९५१ ई० में अपनी मंडली बनायी थी। सन् १९४३ ई० में स्वामी प्रेमानन्द जी ने 'चैतन्य-लीला' रची थी। उनकी रचना के आधार पर ही स्वामी **हरगोविन्द जी** और स्वामी **श्रीराम जी** आज-कल चैतन्य-लीला किया करते हैं। प्रेमानन्द जी की रचना प्रायः ब्रजभाषा में है। कहीं-कहीं छन्द खड़ी बोली में भी हैं। स्वामी मेघश्याम जी की शिष्य-परम्परा में स्वामी **रामस्वरूप** आते हैं, जो कृष्ण-लीला करने में पर्याप्त प्रसिद्धि पा चुके हैं। स्वामी रामस्वरूप जी सन् १९४९ई० से कृष्ण-लीला करते आरहे हैं।

निम्बार्क सम्प्रदाय के स्वरूप को तो आप समझते ही हैं; क्योंकि निम्बार्क मत के अन्तर्गत टट्टी संप्रदाय है, जिसमें आप दीक्षित हैं। **टट्टी संप्रदाय** के प्रवर्तक **श्री स्वामी हरिदास जी** थे। उनकी शिष्य-परम्परा में ही श्री १०८ **स्वामी राधाचरणदास जी** आते हैं। वृन्दावन के टट्टी स्थान में आज भी तपोभूमि की-सी सात्विकता पायी जाती है।

निम्बार्क संप्रदाय के रासधारियों के श्रीकृष्ण जी का मुकुट बाईं ओर झुका हुआ रहता है। इनके रास को निकुंज-रास कहते हैं। बौहरे ब्रजलाल की शिष्य-परंपरा में हरलाल-बाबूलाल की मंडली प्रसिद्ध हुई। फिर सन् १९२० ई० में चेतराम जी ने मंडली बनायी। तदुपरान्त सन् १९४९ ई० में स्वामी श्रीराम ने नत्थीलाल के साथ में मंडली बनायी। स्वामी श्रीराम की मंडली भी चैतन्य-लीला और कृष्ण-लीला करती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे विश्वास है कि रास-मंडलियों की परंपरा का संक्षिप्त इतिहास आपको ज्ञात हो गया होगा।

श्री उजियारीलाल सक्सेना 'लाठ साहब', आपका
पटेलनगर, अलीगढ़। अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री चन्द्रपाल शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक ११. ६. १९७६ ई०

प्रियवर चन्द्रपाल,

आशीर्वाद !

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने पत्र में मुझसे वर्तमान के सन्दर्भ में मानव-कर्तव्य जानना चाहा है और पूछा है कि हमारे प्राचीन ग्रंथों में जीवन का लक्ष्य मोक्ष या ब्रह्म-प्राप्ति बताया गया है। क्या आज के मनुष्य को जीवन का लक्ष्य ब्रह्म-प्राप्ति बनाना चाहिए ?

प्रियवर चन्द्रपाल ! क्या तुमने 'महाभारत' में राजा ययाति की जीवन गाथा पढ़ी है ? राजा ययाति राजा नहुष के पुत्र थे। ययाति की पत्नी देवयानी थी, जो शुक्राचार्य की पुत्री थी। राजा वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा देवयानी की सेविका थी, जिसे बाद में ययाति ने अपनी पत्नी बना लिया था। राजा ययाति बड़े कामी और भोगविलासी थे। वे लगभग एक हज़ार वर्ष तक भोग-विलास में बुरी तरह लिप्त रहे। सारी इन्द्रियाँ क्षीण हो गयीं। शरीर रोगी हो गया। बुद्धि भी जवाब दे गयी। उन्होंने अन्त में अपने अनुभव के आधार पर दो बातें कही हैं—(१) काम के भोग से काम शान्त नहीं होता, उलटा बढ़ता है, जैसे घी से अग्नि बढ़ती है।

(२) जिसने मन, वचन और कर्म से किसी प्राणी का बुरा नहीं किया, वही ब्रह्म के निकट है।

गीता में भी योगेश्वर कृष्ण ने कहा है कि विषयों के संग से काम उत्पन्न होता है। काम से क्रोध जन्म लेता है। इतना ही नहीं; गीता के १६वें अध्याय में काम, क्रोध और लोभ को नरक का द्वार बताया गया है—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत् ॥
—(गीता अ० १६/२१)।

मैं समझता हूँ कि ययाति ने ब्रह्म के नैकट्य के सम्बन्ध में जो बात कही है, वही आज के मनुष्य को करनी चाहिए। गीता (अ० १७) में भी मानसिक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तप, वाचिक तप और शारीरिक तप की बात कही गयी है। आज का मनुष्य इन तीनों तपों से अपना और समाज का सच्चा कल्याण कर सकता है। यही वर्तमान में मनुष्य का परम धर्म है, करणीय कर्म है; और यही जनता-जनार्दन की सेवामयी भक्ति है। यही ब्रह्म-प्राप्ति है।

आजकल तुम्हारे विद्यालय का कार्य कैसा चल रहा है? बच्चों को असीस। सस्नेह,

श्री चन्द्रपाल शर्मा, एम० ए०, शुभैषी
प्रवक्ता, हिन्दी, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
श्री रतन मुनि जैन इण्टर कालेज, लोहामंडी, आगरा।

श्री पूरनसिंह भाकुनी के नाम

८/७, **हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)**
दिनांक १४-१०-१९७६ ई०

प्रियवर भाकुनी जी,

आशीर्वाद !

आपने अपने पत्र में एक ऐसा प्रश्न पूछा है जिसका उत्तर देना खतरे से खाली नहीं है। फिर भी मैं अपने विचार स्पष्टतः आपको लिख रहा हूँ। आपने पूछा है कि वैदिक काल में आर्य लोग मांस खाते थे, अथवा नहीं?

प्रियवर भाकुनी जी! आप तो इतिहास, भूगोल और साहित्य के विद्यार्थी रहे हैं। अब शिक्षा के क्षेत्र में काम भी कर रहे हैं। समाज में आचार, व्यवहार, भोजनादि और रहन-सहन की दृष्टि से मनुष्यों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—उच्च श्रेणी, मध्य श्रेणी और निम्न श्रेणी।

वैदिक साहित्य में तीन प्रकार का साहित्य समाविष्ट है—(१) **वैदिक संहिताएँ** (२) **ब्राह्मण-आरण्यक** (३) **उपनिषद्**। इन तीनों के अध्ययन से पता लगता है कि हमारे वैदिक ऋषियों ने मांस-भक्षण को अच्छा नहीं माना था। उसके लिए निषेध किया गया है। निश्चित रूपेण मनुष्यों की उच्च श्रेणी मांस नहीं खाती थी; परन्तु निम्न श्रेणी अवश्य खाती होगी। उसे खाते देखा गया होगा; इसीलिए ऋषियों ने आचार और खान-पान की संहिता बनायी होगी। आज भी हिन्दू लोगों में कुछ शराब पीते हैं, अंडे खाते हैं और मांस भी भक्षण करते हैं। लेकिन उनका निषेध अवश्य है। हम सिद्धान्ततः उसे वर्जित और हेय मानते हैं।

अथर्ववेद (९/६/९) में मांस का स्पष्टतः निषेध है—**अविगवं क्षीरं वा मांसं**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वा तदेव नाश्नीयात् । वैदिक ऋषियों ने पशुओं की जाति का उल्लेख करते हुए मांस का निषेध किया है—

पशून् पाहि, गां मा हिंसीः, अजां मा हिंसीः ।
अविं मा हिंसीः, द्विपादं पशुं मा हिंसीः ॥

जिस आग पर मांस भूना गया हो, उस अग्नि को भी हमारे ऋषि अशुद्ध मानते थे—

क्रव्यादग्निं प्राहिणोमि दूरम् । (ऋक्० १०/१६/६)

अतः सिद्ध है कि वैदिक काल में मांस-भक्षण वर्जित था । ऋषियों ने उसका स्पष्टतः निषेध किया है । परन्तु साथ-साथ यह भी समझ लेना चाहिए कि समाज में कोई काम जब ग़लत देखा जाता है, तभी सदाचारी या धर्मात्मा आचार्य उसका निषेध करते हैं । यदि कोई भी व्यक्ति मांस न खाता होता, तो ऋषियों को निषेध करने की आवश्यकता न पड़ती ।

भाकुनी जी ! अन्त में मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि यदि संसार के आदिम मानव-जीवन में कुछ मनुष्य पशु-मांस खाते भी हों, तो क्या हुआ ? आज जब अपने को परम सुसंस्कृत और परम सुसभ्य माननेवाला मानव-समाज अपने 'विचार' और 'कर्म' से मनुष्यों का खून चूस रहा है और खून चूसने के बाद हड्डियों की ठठरियों में मनुष्यों को बदल रहा हो, तब पशु-मांस खानेवाले आपकी राय में कितने दोषी माने जाने चाहिए ?'

आशा है आप सपरिवार सानंद होंगे । बच्चों को आशीर्वाद !

श्री पूरनसिंह भाकुनी, प्रिंसिपल शुभैषी
4236/I, दरियागंज, दिल्ली–6 अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री ओ३म्प्रकाश वार्ष्णेय के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' **८/७, हरिनगर अलीगढ़ (उ. प्र.)**
डी० लिट्० दिनांक १. २. १९७७ ई०

प्रियवर ओ३म्प्रकाश जी,

आप कर्मवादी और भाग्यवादी में अन्तर जानना चाहते हैं । कर्मवादिता और भाग्यवादिता का अन्तर संक्षेप में इस प्रकार बतलाया जा सकता है ।

कर्मवाद कहता है कि मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है; किन्तु उस कर्म का फल भोगने में परतंत्र है । मनुष्य ने जैसा भी कर्म किया है, उसका फल उसे अवश्य मिलेगा । परमात्मा भी उस कर्म के फल-भोग में परिवर्तन नहीं कर सकता । परमात्मा ने कर्मानुसार जो हमें बुद्धि-बल और शरीर-बल दिया है,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके अनुसार हमें पूरी तरह सत्कर्म करना चाहिए। जीवन में कर्म और फल-भोग—दोनों साथ-साथ चलते रहते हैं।

कर्म प्रायः तीन प्रकार के हैं—(१) **प्रारब्ध कर्म** (२) **संचित कर्म** (३) **क्रियमाण कर्म**।

प्रारब्ध कर्म वे हैं जिनका फल मिलना प्रारम्भ हो गया है। संचित कर्म वे हैं, जो पिछले जन्मों में तथा वर्तमान जन्म में संचित होते रहे हैं। संचित कर्मों में से जिनका फल मिलना प्रारम्भ हो जाता है, वे प्रारब्ध संज्ञा प्राप्त कर लेते हैं। इसी प्रकार क्रियमाण कर्म (वर्तमान में किये जाते हुए कर्म) का फल जब तक हम नहीं भोगते, तब तक वह क्रियमाण कर्म है। यदि फल मिलने लगा, तो उसकी संज्ञा भी प्रारब्ध हो जाती है।

इस तरह चाहे संचित कर्म हो, चाहे क्रियमाण कर्म, फल-भोग के समय उसे प्रारब्ध कहने लगते हैं। संचित कर्म का पूर्ण फल-भोग प्रारम्भ होता है, तो मनुष्य एक साथ कहीं से कहीं पहुँच जाता है। महान् योगी या महान् सम्राट् बन सकता है। दुष्कर्मों का सामूहिक फल-भोग होगा, तो वह बहुत निकृष्ट व्यक्ति बनेगा।

कभी-कभी देखा जाता है कि वर्तमान में मनुष्य क्रियमाण कर्म अच्छे करता है, किन्तु फिर भी कष्ट भोगता है। उस कष्ट का कारण संचित दुष्कर्म का उदय है। बुरे क्रियमाण कर्म करते हुए यदि कोई सुख भोग कर रहा है, तो उसे संचित सत् कर्म का फल-भोग मानना चाहिए।

भाग्यवादी की आस्था कर्मवादी से बिलकुल भिन्न है। भाग्यवादी अपने बुद्धि बल और शरीर-बल पर भरोसा नहीं करता। भाग्यवादी मानता है कि भाग्य का नियन्ता कोई पृथक् है। वह सर्वशक्तिमान् है। वही जब कुछ कराता है, तब हम करते हैं। जब वह चाहेगा, हम से करा लेगा। हम करने न करनेवाले कोई-कुछ नहीं। भाग्यवादी पौरुष और कर्म में विश्वास नहीं करता। वह मानता है कि उस सर्वशक्तिमान् ने जैसा जिसके लिए कर्म-फल लिख दिया, वह होता रहता है। हम उसमें कुछ नहीं कर सकते। न अपनी ओर से कोई कर्म कर सकते हैं, और न उसका फल ही भोग सकते हैं। वह सर्वशक्तिमान् परमेश्वर चाहे तो हमारे जीवन में सुख दे सकता है; चाहे तो दुःख दे सकता है। अकर्मण्य, आलसी तथा विवेकहीन मनुष्यों की आस्था भाग्यवाद के निकट है। सबको आशीर्वाद ! सस्नेह,

श्री ओ३म्प्रकाश वार्ष्णेय, एम. ए., एल-एल. बी.
मास्टर भवन, द्वारकापुरी, अलीगढ़ (उ० प्र०)

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० (श्रीमती) वीणा शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक ३. २. १९७७ ई०

प्रिय पुत्री वीणा,

आशीर्वाद !

तुमने अपने पत्र में जर्मनी के सुप्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता आइन्स्टीन के एक सिद्धान्त के विषय में लिखा है कि आइन्स्टीन का यह मत है कि गतिशील वस्तु में स्थिर वस्तु से द्रव्य अधिक होता है—यह बात मेरी समझ में पूरी तरह से नहीं आयी। दूसरे पत्र में स्पष्ट करना।

मैंने एक पुस्तक में आइन्स्टीन के मत के सम्बन्ध में दो बातें इस तरह पढ़ी थीं—

(१) **आइन्स्टीन** मानता है कि समय की नाप अपने में कुछ नहीं होती। समय सापेक्षिक है। किसी व्यक्ति के लिए जो समय एक घंटा हो, उतना समय परम मित्र से बात करनेवाले व्यक्ति के लिए पन्द्रह मिनट का हो सकता है।

(२) **आइन्स्टीन** ने यह भी सिद्धान्त बताया है कि पदार्थ ऊर्जा में और ऊर्जा पदार्थ में परिवर्तित हो सकती है। आज विज्ञानवेत्ता पदार्थ को ऊर्जा में परिवर्तित कर भी रहे हैं। हायल और गोल्ड नाम के वैज्ञानिकों का कहना है कि ब्रह्माण्ड में आकाश-गंगाएँ हम से दूर भागती जा रही हैं और उनके रिक्त स्थानों में नये द्रव्य बनते जा रहे हैं। इससे आइन्स्टीन के मत की पुष्टि होती है।

विज्ञान की इन बातों से मैं यह कह सकता हूँ कि विज्ञान इतने बड़े अथक परिश्रम और अनुसंधान के बाद भी वहीं आ पाया है, जहाँ हमारे औपनिषदिक ऋषियों ने प्रारम्भ में ही उद्‌घोष कर दिया था। तैत्तिरीय उपनिषद् में ऊर्जा के पदार्थ में परिवर्तित होने की बात इन शब्दों में संकेत से कही गयी है—

असद् वा इदमग्र आसीत् । ततो वै सदजायत ॥

—(तैत्तिरीय उप०, वल्ली २/अनुवाक ७)

बम्बई की जलवायु तुम्हें अनुकूल पड़ी कि नहीं ? अपने गुरुवर प्रो० कुरैशी साहब को पत्र लिखती रहा करो। उनके आर्शीर्वाद का ही सुफल तुम्हें मिला है।

डा० (श्रीमती) वीणा शर्मा, पी-एच० डी०
I/26/662 आर. सी. एफ. कालोनी,
माहूल रोड, बम्बई–७४

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० सुरेन्द्रसिंह अत्रीश के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)

प्रियवर अत्रीश, दिनांक ४. २. १९७७ ई०

आशीर्वाद !

तुमने पूछा है कि '**संकल्प**' और **विकल्प**' में क्या अन्तर है ?

'मन' की भूमि पर '**संकल्प**' और '**विकल्प**' के पौधे उगते हैं। चंचल मन ही 'विकल्पी मन' कहलाता है। विचार गणनातीत हैं। युधिष्ठिर ने यक्ष के प्रश्न के उत्तर में कहा था कि संसार में तिनकों की संख्या से भी कहीं अधिक मन के विचारों की संख्या है। अतः विचारों के अन्तर्द्वन्द्व में जीवन बितानेवाला व्यक्ति सदा दुखी रहता है। अन्तर्द्वन्द्व का ही दूसरा नाम 'विकल्प' है। विकल्पी मन प्रत्येक क्षण किसी विचार के उद्बुद्ध होने पर अनुकूल-प्रतिकूल दिशा में सोचने लगता है। विकल्पी मनवाले व्यक्ति को कहीं जाना है, तो वह तुरन्त सोचेगा कि जाऊँ; फिर एक क्षण बाद सोचेगा, न जाऊँ। सारांश यह कि विकल्पों में जीनेवाला आदमी कभी किसी काम के करने, न करने का निर्णय नहीं कर सकता। शौच जाऊँ, न जाऊँ; स्नान करूँ, न करूँ; भोजन करूँ, न करूँ आदि में फँसकर विचारते रहना **विकल्प** की स्थिति है। ऐसे प्राणी समय पर कोई काम नहीं कर पाते और अवसर निकल जाने पर पछताते भी हैं। अतः विकल्प का जीवन दुःख का जीवन है।

मन के विचार को निर्णय की स्थिति पर पहुँचाकर उसे दृढ़ बनाना और तुरन्त कर्म में बदलना **संकल्प** है। विचार कर्म का रूप तभी लेता है, जब वह संकल्प बन जाता है। हिन्दू-संस्कृति में 'संकल्प' का बहुत महत्त्व है। यज्ञ में संकल्प का विधान पग-पग पर है। वास्तव में संकल्प का जीवन ही जीवन है। विकल्प का जीवन तो जीवन ही नहीं। विकल्पी आलसी और दीर्घसूत्री होता है। वह धनात्मक-ऋणात्मक रूप में सोचता ही सोचता है, करता कुछ नहीं।

मानव-जीवन की त्रिवेणी में स्नान करने से ही जीवन पवित्र और उच्च बन सकता है। वह त्रिवेणी-संगम यह है—(१) भूत पर विचार (२) वर्तमान का विश्लेषण (३) भविष्य का चित्र।

प्रसन्नता है कि तुम सानन्द हो।

श्री सुरेन्द्रसिंह अत्रीश, एम. ए.
हिन्दी विभाग,
जनता डिग्री कालेज, पतला, (गाजियाबाद)

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री प्रेमनारायण गुप्त के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक ३. ३. १६७७ ई०

प्रियवर श्री गुप्त जी,

आपके पत्र में कुछ तो सामान्य-से प्रश्न हैं, जिनका उत्तर आप भी शान्त क्षणों में अपने मन से पा लेंगे। हाँ, एक प्रश्न अवश्य महत्त्वपूर्ण है। वह है—"**सामान्य पुरुष और साधु पुरुष** में क्या अन्तर है? क्या कल्याणकारी सामाजिक कार्य करनेवाला सामान्य पुरुष **साधु** नहीं कहलाएगा?"

आपके प्रश्न के पूर्वाशीय उपप्रश्न का उत्तर पहले लिख रहा हूँ। आप पहले 'आचरण' और 'चरित्र' की अर्थ-भेदक रेखाएँ समझ लें। जीवन में प्रत्येक कार्य 'आचरण' है। शुभ आचरण या सदाचरण दो-एक तो सामान्य पुरुष भी जीवन में कर लेते हैं। डाकू भी मंदिर बनवा देते हैं। चोर और लुटेरे भी कभी-कभी निर्धन विधवा की कन्या के विवाह में रुपयों से सहायता कर देते हैं। ऐसे चार-छह सत्कार्य कर देने पर वे साधु नहीं कहे जाएँगे।

जीवन के संपूर्ण आचरणों की समष्टि का नाम **'चरित्र'** है। संपूर्ण सदाचरणों की समष्टि 'सच्चरित्र' कही जाती है। जीवन में चार-छह सदाचरण करनेवाला सामान्य पुरुष ही कहलाएगा। जब मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन में प्रत्येक आचरण शुभ होता है, तब उनका पुंजीभूत स्वरूप सम्यक् सच्चरित्र कहलाता है। इसे ही 'सम्यक् चारित्र्य' कहते हैं। **साधु** में सम्यक् चारित्र्य होता है। **साधु** प्रति क्षण सत् विचारता है, सत् करता है। यहाँ तक कि उसका प्रति चरण, उसकी प्रति साँस सत् से समन्वित होती है। जीवन-भर के सम्पूर्ण सत्कर्म ही 'साधु कर्म' हैं। साधु पुरुष बनना जीवन की महती तपश्चर्या है। साधु का प्रत्येक आचरण सदाचरण होता है। सामान्य पुरुष दस-बीस कल्याण-कारी सामाजिक कार्य कर भी दे, तो साधु की पदवी वह नहीं पा सकता। कबीर ने इसीलिए स्पष्ट शब्दों में घोषित किया था कि **'साधु'** कहलाना बहुत मुश्किल बात है। **जहँ तहँ डोलूँ सो परिकरमा जो कछु करौं सो पूजा**—साधु जिस प्रकार चलता है, वह देव-परिक्रमा बन जाती है। साधु जहाँ बैठता है, वह देव-स्थान बन जाता है और साधु जो कुछ करता है, वे सभी कर्म पूजा बन जाते हैं। **साधवो नहि सर्वत्र, चंदनं न वने वने**—ऐसे साधु संसार में विरले ही होते हैं।

साधु के लिए मुख्य शर्त यही है कि वह जीवन में प्रत्येक कार्य शुभ तथा कल्याणकारी करता रहे, और वह इसीलिए करता है कि वैसा करना वह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना सहज धर्म मानता है। उसमें कोई यशोलिप्सा या देने-लेने की भावना नहीं होती। इसलिए दस-बीस कल्याणकारी सामाजिक कार्य करनेवाला सामान्य पुरुष 'साधु' नहीं कहलाएगा। **साधुकर्म = सम्यक् चारित्र्य। सम्यक् शुभ आचरण = साधु आचरण; अर्थात् जीवन-भर शुभाचरण।**

आप तुलसी विषयक साहित्य और अन्य सामग्री की खोज में लगे हैं, इससे परम प्रसन्नता है।

श्री प्रेमनारायण गुप्त,
बड़ा बाज़ार, सोरों, (सूकर क्षेत्र), जि० एटा

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री राजमहेशपाल सिंह के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक ६. ३. १९७७ ई०

प्रियवर राजमहेश,

आशीर्वाद !

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे पत्र में यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि भगवान् की भक्ति करने पर हम किस प्रकार समझें कि हम सच्चे भक्त हैं और हमारी भक्ति सफल है ?

भक्ति परम प्रेम-रूपा है, जो भक्त को भगवान् से जोड़ती है। **भक्त** सदा भगवान् के साथ रहता है। जब भक्त नित्य भगवान् के साथ है, तब भक्त के मन में काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या आदि विकार कभी ठहर नहीं सकते। किसी मामूली-से महमान के घर में आने से पहले हम अपना घर कितना साफ, सुथरा और सुन्दर बनाते हैं। तब भगवान् को विराजमान करने पर क्या मन रूपी घर को कामादि से गंदा रखेंगे ? कदापि नहीं। यदि भक्ति करने पर भी मन में काम, क्रोध, ईर्ष्या आदि बने रहते हैं, तो समझ लेना चाहिए कि हमारी भक्ति सच्ची भक्ति नहीं है, ढोंग है, छल है, धोखा है। हमारा यदि ध्रुव विश्वास होता कि हम भगवान् की शरण में हैं और प्रभु हमारे कपटी मन को देख रहे हैं, तो हम अवश्य अपने को शुद्ध-स्वच्छ रखते। यदि भगवान् के सान्निध्य में भी हमारे मन में कामादि बने रहे, तो निश्चित रूप से हम सच्चे भक्त नहीं। हमारी भक्ति सफल नहीं। कामादि के वशीभूत मन को हम स्वयं भी समझ सकते हैं।

यदि मन कामादि दोषरहित नहीं है, तो भक्ति सफल नहीं है—इसका समर्थन तुलसीदास जी ने भी किया है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव ! निर्भरां मे,
कामादि दोषरहितं कुरु मानसं च । (रामच०, सुन्दर०, श्लो. २)

× × × ×

खल कामादि निकट नहिं जाहीं । बसइ भगति जाके उर माहीं ।।
(उत्तर० १२०/६)

भक्ति जिस मन में वास करती है, उस मन के निकट काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य नहीं जा सकते । इन छहों रिपुओं को तुलसीदास जी **'खल'** कहते हैं । अर्थात् ये षट् रिपु मन वचन और कर्म से इतने दुष्ट, क्रूर और आततायी होते हैं कि कभी नीचता और दुष्टता को त्याग नहीं सकते । तुलसी के मत से **'खल'** '**शठ**' से बढ़कर होता है । **'शठ'** की शठता तो सत्संग से दूर हो सकती है; लेकिन खल की खलता लाइलाज है ।

अतः मन की शुद्धि पर ही भक्ति की सफलता निर्भर है । शान्त-एकान्त क्षणों में तुम अपने मन को पहचान सकते हो । हर्ष है तुम स्वस्थ और सानंद हो ।

श्री राजमहेशपाल सिंह, एम० ए०
ब्लॉक सी–१, क्वार्टर ६३ बी., डी. डी. ए. लारेंस रोड, शुभैषी
नई दिल्ली–११००३५ अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री भगवान्सहाय शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१
दिनांक ८. ८. १९७७ ई०

प्रियवर भगवान्सहाय,
आशीर्वाद ।

तुम्हारा पत्र मिला । प्रसन्नता हुई कि तुम आज कल 'महाभारत' का अध्ययन मनोयोग से कर रहे हो । तुम्हारी जिज्ञासा **क्षेपण** की अर्थावगति के सम्बन्ध में है । तुमने लिखा है कि—"मैंने महाभारत में पढ़ा है कि महाबली भीम ने **क्षेपण** चलाकर हिडिम्ब राक्षस को मार दिया । यह **क्षेपण** क्या वस्तु है ?"

प्रियवर भगवान्सहाय ! **क्षेपण** वस्तु नहीं है । मल्लविद्या का सम्बन्ध दावों (पेचों) से है । मल्ल (पहलवान) मल्लयुद्ध के समय दावों के द्वारा ही हार-जीत प्राप्त करते हैं । तुमने दंगलों में कुश्तियाँ लड़नेवाले पहलवानों की कुश्तियाँ देखी होंगी । प्रत्येक पहलवान को दो-तीन दाव बहुत अच्छी तरह रवाँ होते हैं । अपने प्रतिद्वन्द्वी को वह उन्हीं दावों से पछाड़ता है । भारत केसरी चन्दगीराम को हाथ का एक दाव ग़ज़ब का रवाँ है । हिन्दुस्तान के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसिद्ध और विशालकाय पहलवान मेहरुद्दीन को चंदगीराम ने **पंजाकस** दाव के द्वारा ही परास्त किया था। विश्वविजयी गामा को **एड़ीपकड़** दाव पर कमाल हासिल था। यूरोप के शीर्षस्थ पहलवान जेबिस्को को गामा ने **एड़ीपकड़** दाव चलाकर पछाड़ा था और 'विश्वविजयी' की उपाधि प्राप्त की थी।

मैंने अपने बाल्यकाल में शाहगढ़ (अलीगढ़) के पहलवान दुर्जनसिंह को देखा था। उनकी एक कुश्ती भी देखी थी। दुर्जनसिंह छोटे कद के गठीले और छरैरे पहलवान थे। उन्हें **'पटे'** नाम का दाव ऐसा रवाँ था कि अपने से दूने भारी पहलवान को भी आनन-फानन में तारे दिखा देते थे।

बंगली, सवारी, कलाजंग, धोबियापाट, लुकान, चपरास आदि दाव आजकल पहलवानों की बोली में सम्भवतः तुमने सुने होंगे। ठीक उसी तरह का एक दाव **क्षेपण** है, जो भीम को अच्छी तरह रवाँ था। अपने प्रतिपक्षी को मल्लयुद्ध में परास्त करने अथवा प्राणान्त करने के लिए पाण्डु-पुत्र भीम प्रायः **क्षेपण** दाव चलाते थे। इस दाव में प्रतिद्वन्द्वी को सिर से ऊपर उठाकर काफी दूर फेंका जाता है। हिडिम्ब राक्षस को **क्षेपण** दाव द्वारा ही भीम ने पछाड़ा और मारा था।

इसके अतिरिक्त भीम **प्रकर्षण** नामक दाव के चलाने में भी बड़ा प्रवीण था। इसमें प्रतिपक्षी को अपनी ओर खींचकर बाहुपाश में बाँधा जाता है और फिर प्राणायाम का बल लगाकर तथा दोनों भुजाओं में पूरी तरह प्रतिद्वन्द्वी को कसकर उसकी पसलियाँ तोड़ी जाती हैं। यह प्राणान्तक दाव है। द्रौपदी पर कुदृष्टि रखनेवाले कीचक को विराट नगरी में भीम ने **प्रकर्षण** दाव चलाकर ही मारा था।

मगधराज जरासंध से भीम का मल्लयुद्ध हुआ था। उस मल्लयुद्ध में दोनों मल्लों ने एक दूसरे पर **तृणपीड, पूर्णयोग** और **समुष्टिक** दाव चलाये थे। **समुष्टिक** दोनों हाथों की मुट्ठियों से चलाया जाता है और **मुष्टि** एक हाथ की मुट्ठी से।

'महाभारत' में मल्लविद्या से सम्बद्ध और भी अनेक दावों के नाम तुम्हें मिलेंगे। **प्रमाथ, मुष्टि, वराहोद्धूत, करसम्पीड** आदि दावों के नामों का उल्लेख भी व्यास जी 'महाभारत' में किया है। **करसंपीड** और **मुष्टि** को ऐसा समझिए जैसा वर्तमान में **बौक्सिंग**। **वराहोद्धूत** में प्रतिपक्षी की टाँगें पकड़कर उसे सिर के बल लटका दिया जाता था और फिर चारों ओर घुमाया जाता था। **प्रमाथ** में प्रतिपक्षी का खूब मर्दन किया जाता था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत में आये हुए दावों के नामों का अध्ययन आज-कल की कुश्ती की नाम-शब्दावली के साथ यदि प्रस्तुत किया जाए, तो एक नई चीज़ हिन्दी के साहित्य में आएगी। अध्ययन करते रहिए।

प्रसन्नता है कि तुम स्वस्थ हो और अपने कार्य में संलग्न हो। सस्नेह,

श्री भगवान्‌सहाय शर्मा, एम० ए०, शुभैषी
के. ई. एम. वी. इण्टर कालेज, अतरौली, जि० अलीगढ़। अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री त्रिलोकीनाथ 'व्रजबाल' के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' **८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)**
डी० लिट्० दिनांक ११. ८. १९७७ ई०

प्रिय भाई व्रजबाल जी,

आपने **काम**, **प्रेम** और **भक्ति** में अन्तर जानने की इच्छा व्यक्त की है। निश्चय ही इनमें शरीर, मन और आत्मा के धरातल पर अन्तर है।

मानव-जीवन की ऊर्जा तीन रूपों में दृष्टिगत होती है—(१) **बीज** (२) **वृक्ष** (३) **फल**। अथवा (१) **बर्फ़** (२) **पानी** (३) **भाप**। मानव जैसे-जैसे उदात्त भूमियों पर उठता जाता है, वैसे-वैसे उसका मन भी इन्द्रिय-लोक से आत्मा के लोक में पहुँचता है। इस ऊर्ध्व-गमन की यात्रा के स्थल **काम**, **प्रेम** और **भक्ति** हैं। **काम** बीज है, **प्रेम** वृक्ष है, **भक्ति** फल है। बर्फ से बर्फ़ का मिलना **काम** है, पानी से पानी का मिलना प्रेम है और भाप से भाप का मिलना **भक्ति** है।

श्री त्रिलोकीनाथ 'व्रजबाल', एम. ए., साहित्याचार्य, शुभैषी
श्रीभवन, गली कसेरान, मंडी रामदास, मथुरा (उ० प्र०) अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री ज्ञानचन्द्र जैन के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक ८. ९. १९७७ ई०

प्रियवर ज्ञानचन्द्र,

आशीर्वाद !

तुम्हारे प्रश्न में एक प्रकार से जैन धर्म की साधना-प्रणाली का सार निहित है। तुमने मुझे शब्द-शास्त्री समझकर **श्रावक**, **छुल्लक**, **ऐलक**, **मुनि**, **उपाध्याय**, **आचार्य**, **अरहन्त**, और **सिद्ध** शब्दों के अर्थ मालूम करने की इच्छा प्रकट की है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियवर, उपर्युक्त शब्दों की व्युत्पत्ति तथा शब्दार्थ मात्र बतलाने भर से काम नहीं चलेगा। उपर्युक्त शब्दावली तो जैन धर्म एवं जैन संस्कृति की आचार-संहिता के आलोक में विशिष्ट अर्थ रखती होगी। ये श्रमण-परम्परा के पारिभाषिक शब्द हैं। इनकी वास्तविक अर्थमयी अवधारणा को तो कोई जैन-उपाध्याय या जैन-पंडित ही बता सकते हैं। मैं तो जैन-दर्शन की प्रथम कक्षा का भी विद्यार्थी नहीं रहा। हाँ, हिन्दू-दर्शन के साथ-साथ बहुत थोड़ा-सा बौद्ध-दर्शन और जैन-दर्शन पढ़ा था। उसी के आधार पर अपनी बात तुम्हें लिख रहा हूँ। कह नहीं सकता कि जैन-पंडितों के गले मेरी बात कितनी उतरेगी ? वैसे यह उक्त प्रश्न तुम्हें **महाराज श्री उपाध्याय विद्यानन्द जी** से पूछना चाहिए था। भारतवर्ष में मैं उन्हें जैन-धर्म और जैन-दर्शन का मूर्धन्य विद्वान् मानता हूँ। वे वास्तविक रूप में सच्चे विद्वान् हैं, तथा तथ्य और सत्य के सच्चे खोजी भी। दिनांक २२ जून, १९७३ ई० को अलीगढ़ के खिरनीगेट के जैन बाग (जैन मंदिर) में मैंने उनके दर्शन किये थे और कुछ समय वार्तालाप करने का भी सौभाग्य मुझे मिला था। जिस समय मुनिश्री अलीगढ़ पधारे थे, तब अलीगढ़ में तुम्हारे पिता जी (श्री सेठ प्रकाशचन्द्र जी जैन) भी सासनी से यहाँ आये थे, मुनिश्री विद्यानन्द जी उपाध्याय के दर्शनों के लिए। मुनिश्री के तब कई भाषण हुए थे। महावीर स्वामी पर तथा राम-कृष्ण पर भी उनके सारगर्भित भाषण हुए थे। मैं उनकी विद्वत्ता से प्रभावित हूँ। उनमें मेरी श्रद्धा भी है। उनका बहुत व्यापक दृष्टिकोण है। उन्होंने जैन-शास्त्रों के साथ हिन्दू-शास्त्रों को भी पढ़ा हैं।

ख़ैर, तुम्हारा मन रखने के लिए मैं प्रश्न का उत्तर जैन-पंडितों से क्षमा माँगते हुए लिख रहा हूँ। मैं यह मानता हूँ कि किसी शब्द का अर्थ किसी शास्त्र विशेष में कुछ भी हो, किन्तु वह अपने व्युत्पत्तिमूलक अभिधेय अर्थ से थोड़ा-बहुत अवश्य चिपका रहता है। उसी दृष्टि से मैं अर्थों पर प्रकाश डाल रहा हूँ।

तुम्हारा प्रथम शब्द '**श्रावक**' संज्ञा से संबद्ध है। ये शब्द क्रमशः जैन-धर्म की साधना-सरणि की कोटियाँ व्यक्त करते हैं। अन्तिम कोटि '**सिद्ध**' की है, अर्थात् इस अन्तिम कोटि पर साधक की साधना पूर्ण हो जाती है और वह आत्म-स्वरूप प्राप्त करके 'सिद्ध' हो जाता है। यही साधक की सिद्धि-प्राप्ति (आत्म रूप प्राप्ति) की अन्तिम स्थिति है, जिसे मोक्ष कहते हैं। सांसारिकता यहाँ पूर्णतः समाप्त है। सिद्ध को मुक्त जीव (मुक्त आत्मा) समझना चाहिए।

कनिंघम ने एक पुस्तक लिखी है, 'ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया'। उसमें 'पडरौना' (जि० देवरिया) नामक स्थान को 'पावापुरी' बताया है। पडरौना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के देवरहा नामक टीले पर भगवान् महावीर की एक मूर्ति है, जिसके ऊपर तीन छत्र हैं, जो क्रमशः छोटे (लघु आकार के) होते गये हैं। ऊपर का तीसरा लघुतम छत्र आत्मा का सूचक है। यही सिद्धत्व है।

पतंजलि के योग दर्शन में आठ अंग है, जिनमें प्रथम पाँच शरीर के नियंत्रण से और अन्तिम तीन मन के नियंत्रण से सम्बन्ध रखते है। असंप्रज्ञात समाधि में योगी की जो स्थिति हो जाती है, वही स्थिति जैन-दर्शन के अनुसार 'सिद्ध' की हो जाती है ।अन्तर इतना है कि योगी की आत्मस्थ अवस्था समाधि में तो कुछ काल के लिए ही होती है, लेकिन 'सिद्ध' की शाश्वत रूप से होती है; अर्थात् शाश्वत (नित्य) आत्मावस्था। पातंजल योगदर्शन के समाधिस्थ 'योगी' और जैन दर्शन के 'सिद्ध' में यही अन्तर है।

पातंजल योग दर्शन में **यम, नियम, आसन, प्राणायाम** और **प्रत्याहार** बहिरंग साधन (शारीरिक साधन) हैं, और **ध्यान, धारणा** और **समाधि** आभ्यंतर साधन हैं। गीता में ध्यान, धारणा और समाधि के लिए 'अभ्यास' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसी से मन को वश में किया जा सकता है—
"**अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते**"—(गीता ६/३५)। इसी प्रकार जैन-दर्शन की साधना में भी शारीरिक और मानसिक साधनाएँ क्रमशः समानान्तर चलती हैं। शरीर और मन से उठकर साधक जैसे-जैसे आत्म-भाव की ओर बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उसकी कोटियाँ ऊँची बनती जाती हैं। शारीरिक तप के साथ सांसारिकता का त्याग और आध्यात्मिकता का ग्रहण ही इस साधना-यात्रा का लक्ष्य है। गीता में ब्रह्मचर्य और अहिंसा को शारीरिक तप बताया गया है—

"**ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते**" —(गीता १७/१४)

श्रावक, क्षुल्लक और **ऐलक** तक कुछ न कुछ सांसारिकता बनी रहती है। 'ऐलक' पर लँगोटी का रहना भी तो सांसारिकता का ही अंश माना जायगा। इसलिए आद्याचार्य ने णमोकार मंत्र में **श्रावक, क्षुल्लक** और **ऐलक** को प्रणाम निवेदन की व्यवस्था नहीं दी। प्रणम्यों में पहली श्रेणी **साधु** अर्थात् मुनि को ही मिली, क्योंकि उसकी सांसारिकता समाप्त—लँगोटी भी नहीं। पूर्ण रूपेणा दिगम्बरत्व की प्राप्ति।

आध्यात्मिकता और ज्ञान की वृद्धि के कारण **उपाध्याय** और फिर **आचार्य** प्रणम्य बने। मोक्ष की स्थिति पर पहुँचनेवालों में सर्वोच्च कोटि **अरहन्त** की है। '**अरहन्त**' को गुरु समझिए और '**सिद्ध**' को परमात्मा; अर्थात् गुरु और गोविन्द की उपस्थिति में प्रथम प्रणम्य गुरु है; क्योंकि गोविन्द के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शन गुरु ने ही कराये। कबीर ने भी गोविन्द से पहले गुरु को प्रणाम करने के लिए कहा। इसीलिए **णमो अरहंताणं,** फिर **णमो सिद्धाणं**। फिर तो श्रेणियाँ ठीक। जैसा पद, वैसा प्रणम्यासन। सांसारिकता को पूर्णतः त्यागनेवाले आध्यात्मिक मार्ग के यात्री पाँच हैं—(१) **साधु** (२) **उपाध्याय** (३) **आचार्य** (४) **अरहंत** (५) **सिद्ध**। इसलिए ये पंचपरमेष्ठी भी कहलाए। इन्हीं को प्रणाम; सांसारिकों को नहीं। जैन-दर्शन की आचार-संहिता में प्रणाम व्यक्ति विशेष को नहीं है।

'श्रावक' शब्द के मूल में **श्रू धातु** है, जिसका अर्थ 'सुनना' है। श्रावक = (श्रू + ण्वुल्) = सुननेवाला। श्रावक में आध्यात्मिक ज्ञान को सुनने की निष्ठा होती है। जैसे-जैसे निष्ठा बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे श्रावक की कोटियाँ भी ऊँची होती जाती हैं। सर्वोच्च श्रावक-कोटि 'नैष्टिक श्रावक' की है। श्रावकों की तीन श्रेणियां हैं—(१) पाक्षिक (२) साधक (३) नैष्टिक। श्रावक गृहस्थ भी हो सकते हैं। श्रावक श्रमणोपासक होते हैं। जैन-गृहस्थ श्रावकों के लिए 'उवासगदसाओ' ग्रंथ में 'समणोपासक' शब्द लिखा गया है। निर्ग्रन्थ साधु, उपाध्याय आदि श्रमण संज्ञा में आते हैं।

जब नैष्टिक श्रावक गृहस्थाश्रम त्यागकर तथा अपरिग्रही बनकर एक चादर और लँगोटी को ही रखता है, तब उसकी संज्ञा **छुल्लक** ('क्षुल्लक' भी) हो जाती है। संस्कृत 'क्षुद्रक' शब्द का अर्थ 'छोटा' है। आध्यात्मिकता में 'छुल्लक' और 'ऐलक' समान होते हैं। 'छुल्लक' का दर्जा 'मुनि' (साधु) से छोटा होता है; उसे इसीलिए 'छुल्लक' नाम दिया गया—सं० क्षुद्रक = छुल्लक। छोटे या लघु के अर्थ में 'छुल्ल' शब्द का प्रयोग प्राकृत के ग्रंथ 'सुपासनाहचरिय' में किया गया है। लघु के अर्थ में प्राकृत में दो शब्द मिलते हैं—(१) छुल्ल (२) छुड्ड। 'छुल्ल' में स्वार्थे 'कन्' प्रत्यय के योग से 'छुल्लक' शब्द बना है। 'एल' शब्द का अर्थ है 'निपुण'। निपुणता रखने वाले को **ऐलक** कहते हैं। आध्यात्मिक ज्ञान में तो 'ऐलक' छुल्लक के समान ही होते हैं। किन्तु सांसारिकता के त्याग में 'ऐलक' छुल्लक से कुछ आगे होते हैं; क्योंकि केवल एक लँगोटी रखते हैं। यही ऐलक की निर्ग्रंथता है। 'मुनि' शब्द मन् धातु से निर्मित है। आत्मिक ज्ञान पर मनन करनेवाला 'मुनि' है। प्रायः शान्त और मौन रहकर चिन्तन-मनन में ही जीवन बितानेवाला 'मुनि' कहलाता है। 'उपाध्याय' में मुनि से आध्यात्मिक ज्ञान बहुत अधिक होता है, उप + अधि + इ + घञ् = **उपाध्याय**। जिसके पास गृहस्थ, श्रावक, ब्रह्मचारी, छुल्लक, ऐलक, मुनि आदि आध्यात्मिक ज्ञान के लिए

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाते हैं, वह 'उपाध्याय' कहलाता है। **उपाध्याय** आध्यात्मिक ज्ञान की यूनीवर्सिटी का प्रोफ़ेसर होता है। ज्ञान में एक प्रकार से दर्जा 'उपाध्याय' का ही ऊँचा होता है। लेकिन प्रबन्ध और व्यवस्था के कारण **'आचार्य'** को उपाध्याय से ऊँचा माना गया है।

'अरहंत' को प्राकृत में **'अरिहंत'** भी कहते हैं। इसका विकास संस्कृत के चार शब्दों से संभव है—(१) अरहंत (सं० अर्हत्) = पूज्य (२) अरहंत (सं० अरहोन्तर्) = सर्वज्ञ (३) अरहंत (सं० अरथान्त) = निस्पृह (४) अरहंत (सं० अरहयत्) = आत्मभाव में लीन। **सिद्ध** तो आत्मरूप की सिद्धि प्राप्त करने पर ही कहे जाते हैं। तुम अपने पिता जी (सेठ प्रकाशचन्द्र जी जैन) से मेरी जय-जिनेन्द्र कहना। सस्नेह,

श्री ज्ञानचन्द्र जैन,
प्रो०, खंडेलवाल ग्लास वर्क्स,
सासनी, (अलीगढ़)

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

शुभश्री कृष्णा माँ 'श्रीमयी' के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन'
डी० लिट्०

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक १०. ९. ७७ ई०

प्रिय बहिन कृष्णा जी 'श्रीमयी',

सन्तों एवं भक्त आचार्यों ने भक्ति के चार भाव ही प्रमुख माने हैं—(१) **दास्य** (२) **सख्य** (३) **वात्सल्य** (४) **माधुर्य**। माधुर्य भाव में भी दो उत्तम कोटियाँ हैं—**गोपी-भाव** और **राधा-भाव**। **गोपी-भाव** परम भाव है और **राधा-भाव** महाभाव है। इस भाव की आत्मरमणता जिसे प्राप्त हो गयी, वह तो अमर है। मुझे तो लगता है 'नारद भक्ति-सूत्र' में भक्ति की व्याख्या में जो उसे **अमृत-स्वरूपा** बताया है, उसका संकेत राधा-भाव की भक्ति की ही ओर है। यह भाव सर्वतोभावेन पूर्ण-समर्पण-भाव है। श्री जी के व्यक्तित्व की कल्पना ही मानव को दिव्यलोक में पहुँचा देती है, उस भाव में डूबने पर तो कहा ही क्या जाएगा?

शुभश्री कृष्णा माँ 'श्रीमयी'
श्रीभवन, गली कसेरान,
मंडी रामदास, मथुरा (उ० प्र०)

तुम्हारा एक भाई
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री सेठ प्रकाशचन्द्र के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन'
डी० लिट्०

८/७ हरिनगर, अलीगढ़ २०२००१
दिनाङ्क, भाद्रपद शुक्ला, पर्युषणपर्व
१२. ९. ७७. ई०

श्री प्रकाशचन्द्र जी जैन,

जय जिनेन्द्र ।

आपका पत्र मिला। हार्दिक धन्यवाद ! आपने मुझे लिखा है कि मैं **पज्जुखन पव्व** और **उत्तम** विशेषण पर प्रकाश डालूँ।

श्रमण-परंपरा और ब्राह्मण-परंपरा में धर्म के लक्षणों की गणना समान है; थोड़ा-सा नाम भेद है। जैनधर्म में दस लक्षण इस प्रकार हैं।

(१) उत्तम क्षमा (२) उत्तम मार्दव (३) उत्तम आर्जव (४) उत्तम सत्य (५) उत्तम शौच (६) उत्तम संयम (७) उत्तम तप (८) उत्तम त्याग (९) उत्तम आकिंचन्य (१०) उत्तम ब्रह्मचर्य ।

मनुस्मृति (६/९२) में भी दस धर्म–लक्षण इस प्रकार हैं—(१) **धृति** (२) **क्षमा** (३) **दम** (४) **अस्तेय** (५) **शौच** (६) **इन्द्रियनिग्रह** (७) **धीः** (८) **विद्या** (९) **सत्य** (१०) **अक्रोध** ।

सारांश यह कि मानव जब उक्त दसों को अपने मन, वचन और कर्म में उतार लेता है, तब धर्मात्मा कहलाता है। आचार अर्थात् चरित्र ही धर्म है–"चरितं खलु धम्मो"।

हिन्दुओं के संस्कारों में पंडित प्रायः इस वाक्य से वस्तु-शुद्धि और व्यक्ति-शुद्धि किया करते हैं—

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थांगतोऽपि वा अर्थात् अपवित्र पवित्र हो जाए, सर्वावस्थागत अपवित्र भी पवित्र हो जाए। 'सर्वावस्था' शब्द इसलिए जोड़ना पड़ा कि कहीं ऐसी अपवित्र वस्तु या उसका कोई अंग ऐसा न रह जाए, जो पवित्र होने से बच जाए।

ठीक ऐसा ही भाव जैन आचार्यों का 'उत्तम' शब्द के लिए रहा होगा। 'क्षमा' की तीन कोटियाँ हो सकती हैं (१) उत् कोटि (२) उत्तर कोटि (३) उत्तम कोटि। शरीर, मन और आत्मा के स्तर पर पहुँच कर **उत्तम** शब्द सार्थक होता है। शरीरगत सत्य, मनोगत सत्य क्रमशः उत् सत्य और उत्तर सत्य हैं; लेकिन आत्मा का सत्य उत्तम सत्य है। जिस सत्य को आत्मा स्वीकारती है, या जिसे आत्मा कहती है, वही उत्तम सत्य है। सुपरलेटिव डिग्री का सत्य आत्मानुमोदित सत्य है; वही उत्तम सत्य है। जैन आचार्य यदि 'उत्तम'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेषण न लगाते, तो मनुष्य शरीर और मन के सत्य पर ही रुक जाते और उसे ही लक्ष्य (अंतिम लक्ष्य) मान लेते।

'पज्जुखण पव्व' शब्द प्राकृत भाषा का है। इसके लिए संस्कृत भाषा में 'पर्युषण पर्व' शब्द है। परि + उष् + ल्युट् = पर्युषण = पूजन, अर्चन, 'पर्युषण' शब्द में 'उष्' धातु का अर्थ बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसका अर्थ है जलाना, मार डालना। हम लोग इस पर्व के माध्यम से अपने कषायों को जलाते हैं अर्थात् मार डालते हैं। यह बात अलग है कि हम काम, क्रोध, लोभ आदि कषायों को जला पाते हैं, या नहीं। पर्व का लक्ष्य वह अवश्य है।

मैंने जैन धर्म के ग्रंथों का गहरा अवलोकन नहीं किया। बहुत ऊपरी पल्लव-ग्राही ज्ञान है। आपके आदेश का पालन भर किया है। जैसा समझता हूँ, वैसा लिख दिया है। भूल या भ्रान्ति को कृपया सुधार लीजिए।

हर्ष है आप सपरिवार सानंद हैं। बच्चों को आशीर्वाद। प्रियवर ज्ञानचन्द्र को विशेष आशीर्वाद। प्रियवर निर्मल और ज्ञान की याद इस समय बहुत आयी। वे दोनों सासनी में मेरे परम प्रिय शिष्य रहे थे। बेटी इंदो और सुर्री भी उनके साथ पढ़ती थीं। वे आज कल कहाँ हैं ? उन्हें मेरी मंगलकामनाएँ

श्री सेठ प्रकाशचन्द्र जी जैन, आपका
(स्वामी, खंडेलवाल ग्लास वर्क्स), सासनी (अलीगढ़) अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० महेन्द्रसागर प्रचंडिया के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ २०२००१

ममि पिअ भाइ पचंडिया अज्जय, दिनांक ३०. ९. ७७ ई०

सपेम णमोक्कार।

णेह-पत्तं पत्तं। धण्णवादो ! 'पज्जुखण पव्व'[1] उवलक्खि खमा-भावो लोअ-जीवस्स महाभावो अत्थि। हउँ अणुगिहीओ। खमावंत पुरिसो महापुरिसो। हउँ तु अस्सि लोए णिअट्ठ जणो।

सेस किवाभावो ! राम-लखण-भरत-सत्तुहणं ममि सुहवयणं। 'पज्जुखण पव्वो' मंगलकारि हूओ।

णेहसहिअ

डा० महेन्द्रसागर प्रचंडिया भावत्तओ भाइ
डी० लिट्० अम्बाप्रसाद 'सुमन'
पीली कोठी, हाथरस का अड्डा, आगरा रोड, अलीगढ़ (उ० प्र०)

---

१ जैन-समाज में 'पर्युषण पर्व' प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण पर्व है। इस पर जैन भाई अपने मिलने-वालों तथा परिवारियों से क्षमा-याचना करते हैं। यह पत्र पर्युषण पर्व पर प्राप्त क्षमा-याचना-पत्र के उत्तर में लिखा गया है, जो अपभ्रंश भाषा में है। —(सम्पादक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० गोपालकृष्ण शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक ११. १०. १९७७ ई०

प्रियवर गोपाल,

आशीर्वाद !

आपके पत्र में आपकी जिज्ञासा कुछ ऐसे ढँग से लिखी गयी है कि प्रश्न पूरे पत्र में फैला हुआ है। मैं पहले उसे संक्षिप्त रूप में यहाँ लिख रहा हूँ, ताकि उसी के आलोक में उत्तर लिख सकूँ और उत्तर भी सहज बोधगम्य हो सके।

प्रश्न—"आज-कल हिन्दुओं में भाँवरों से पहले विवाह के अवसर पर लड़कीवाले के द्वार पर कन्या वर के गले में माला डालती है और पति-रूप में उसे स्वीकारती है। यदि वरमाला (जयमाला) पड़ने के उपरान्त और भाँवरों से पहले वह वर दैवयोग से मर जाए, तो वह लड़की विधवा मानी जाएगी अथवा नहीं ?

उत्तर—आपका प्रश्न बहुत बढ़िया और समझदारी का है। मनुस्मृति के अनुसार विवाह आठ प्रकार के हैं—(१) **ब्राह्म विवाह**=वेदपाठी वर को बुलाकर और उसकी पूजा करके विवाह करना। (२) **दैव विवाह**=यज्ञ करनेवाले ऋत्विक् को कन्या-दान करना। (३) **आर्ष विवाह**=धर्म-शास्त्र के अनुसार विधिपूर्वक कन्यादान करना। (४) **प्राजापत्य विवाह**=वर-वधू को धर्माचरण का उपदेश करके तथा पूजन कराके कन्यादान करना। (५) **आसुर विवाह**=कन्या के पिता, चाचा आदि को धन देकर बदले में कन्या को स्वीकार करना। (इसी को कन्या बेचना भी कहते हैं)। (६) **गांधर्व विवाह**=कन्या और वर का विवाह से पूर्व संयोग, मैथुनादि होना। तदुपरान्त साथ-साथ जीवन बिताने की वचनबद्धता सामाजिक रूप में स्वीकारना। (७) **राक्षस विवाह**=कन्या के पक्षवालों को मारकर और बलात्कार करके विवाह करना। (८) **पैशाच विवाह**=कन्या को शराब आदि मादक द्रव्य खिला-पिलाकर अथवा उसकी सुप्तावस्था में भोग करना और फिर कुछ समय बाद छोड़ देना।

उपर्युक्त आठ प्रकार के विवाहों में आज-कल हिन्दुओं में प्रायः आर्ष विवाह ही होते हैं। वरमाला की प्रथा द्वार पर की जाती है। वास्तव में यह नयी प्रथा है।

आर्ष विवाह में वधू जब वर के वामांग आ जाती है और वर जब उसकी माँग में सिन्दूर भर देता है, तब विवाह पूर्ण माना जाता है। तब वह बीसों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिस्वे विवाह है। तभी कन्या वास्तव में वर की पत्नी बनती है। इससे पहले विवाह अपूर्ण है।

इसलिए वर-माला (जय-माला) की रस्म के बाद यदि वर की मृत्यु हो जाती है, तो आर्ष विवाह के अनुसार वह विधवा नहीं मानी जाएगी; क्योंकि सुमंगली कृत्य से पहले तक वह पत्नी नहीं, कन्या ही है। सुमंगली से ही कन्या सौभाग्यवती बनती है। सिन्दूर-दान के समय का मंत्र इस बात की पुष्टि करता है—"सौभाग्यमस्यै दत्त्वा" ॥

जब तक कन्या को सुहाग मिला ही नहीं, तब तक सुहाग की समाप्ति कैसी ? अतः वह विधवा नहीं मानी जाएगी; कन्या है। उसका विवाह हो सकता है। होना चाहिए। शास्त्र कहता है; विवेक कहता है।

लगता है आज-कल सामाजिक रीति-रिवाजों का अध्ययन चल रहा है। सबको यथा योग्य।

श्री गोपालकृष्ण शर्मा, एम० ए०
हिन्दी विभाग,
अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय, (अलीगढ़)

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री शिवशंकर सारस्वत के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१
दिनांक २. ११. १९७७ ई०

प्रियवर, सारस्वत जी,

सप्रेम नमस्कार।

आपने अपने पत्र में मुझसे पूछा है कि भारत की **प्राचीन सभ्यता** और वर्तमान **नवीन सभ्यता** में से आप किसे अच्छी मानते हैं ?

प्रिय बन्धु, **सभ्यता** का सम्बध मुख्य रूप से खान-पान, पहनाव-उढ़ाव, रहन-सहन और वार्तालाप के तौर-तरीके से है। ये बातें भी तो विचार-धारा से सम्बन्ध रखती ही हैं। खान-पान और पहनाव-उढ़ाव का मन पर प्रभाव अवश्य पड़ता है। हमारा जैसा भोजन होगा, उसी के अनुसार मन भी बनेगा—लोकोक्ति प्रचलित है "जैसा खाए अन्न, वैसा बने मन"।

औरों की बात नहीं कहता, अपने मन की स्थिति बताता हूँ—जब कभी मैं कार में बैठकर चलता था, तब मन के राज्य में अपने को सामान्य मनुष्यों से ऊँचा मानता था। जीवन में एक दिन पैन्ट, कोट, हैट और टाई के साथ भी बाहर निकला था, उस समय भी मेरा मनोराज्य कुछ अजब ही बन गया

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। इतना तो मुझे अब भी याद है कि कुर्ता, धोती और टोपी पहननेवाले मन से मेरा वह मन बिलकुल भिन्न था। आज-कल जब कुर्ता, धोती और दुपट्टे में व्यास गद्दी पर बैठकर 'मानस'—प्रवचन करता हूँ, तब मन में एक पवित्रतामयी सुखद अनुभूति होती है। मेरा अपना अनुभव है कि खान-पान और वेष-भूषा मन को किन्हीं अंशों में प्रभावित अवश्य करते हैं।

महाभारत के वन पर्व में **अगस्त्य** और उनकी पत्नी **लोपामुद्रा** का वार्तालाप वर्णित है। लोपामुद्रा राजा विदर्भराज की कन्या थी। अगस्त्य की पत्नी बनने पर उसने राजसी वस्त्राभूषण उतारकर ऋषियों के-से वल्कल वसन धारण किये थे। वे ही सात्विक वस्त्र लोपामुद्रा पहना करती थी। उनके पहनने से उसमें सात्विक पवित्र भाव आ गये थे। सन्तान के लिए संभोगेच्छा प्रकट करने से पहले लोपामुद्रा ने . अगस्त्य मुनि से राजसी वस्त्रालंकारों के लिए याचना की थी, ताकि उन्हें पहनकर उसमें राजसिक विलास-भाव उत्पन्न हो सके।

आधुनिक सभ्यता ने सुरा, सुन्दरी और तामसिक पदार्थों को स्वीकृति प्रदान की है। आदमी मनुष्यों से मोहब्बत छोड़ता जा रहा है और कुत्तों-बिल्लियों से जुड़ता जा रहा है। बाबू साहब के घर का बीमार नौकर अपनी दवा के लिए पैसे नहीं पाता; लेकिन उनके झब्बू कुत्ते को प्रति दिन दूध, डबलरोटी और गोश्त खिलाया जाता है। नौकर को अपनी रुग्णावस्था में भी झब्बू को पूरी तरह साबुन से नहलाना पड़ता है और ताज़ा बढ़िया खाना खिलाना पड़ता है। कराहते-कराहते भी नौकर को झब्बू के लिए सब कुछ वैसा ही करना पड़ता है। यदि झब्बू बीमार हो जाए, तो तुरन्त उसके बीस-पच्चीस रुपयों का इंजैक्शन लगवाया जाता है।

आज की नयी सभ्यता की महिलाएँ मन से माता बनना कम पसंद करती हैं। सदा आकर्षक सुन्दरी और युवती बनी रहें, इसलिए अपनी सन्तान को अपने स्तनों का दुग्ध-पान नहीं करातीं। बच्चे को डिब्बे का दूध पिलवाती हैं। सन्तान को स्वयं गोद में न खिलाकर, नौकरानी से खिलवाती हैं। परिणाम यह होता है कि सन्तान के मन में माता के प्रति प्रेम नहीं होता। पुत्र को मातृत्व की अनुभूति नहीं हो पाती।

ऐसी स्थिति में सन्तान माता-पिता के संस्कारों से बहुत-कुछ वंचित रह जाती है। डाक्टरों का यह भी कहना है कि जो महिलाएँ ३३ वर्ष की अवस्था तक अपनी सन्तान को अपने स्तनों का दूध नहीं पिलातीं, उनके स्तनों में कैंसर हो सकता है। ऐसी घटनाएँ हुई भी हैं। नयी सभ्यता की महिलाएँ वस्त्रों पर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक खर्च करती हैं, शुद्ध दूध, दही, घी, फल आदि पौष्टिक भोजन पर नहीं। परिणाम यह होता है कि उनका स्वास्थ्य शून्य पर पहुँच जाता है। ऐसी माताओं की सन्तान कैसी होगी—इसे आप स्वयं जान सकते हैं।

दिनांक २३ अक्टूबर, १९७७ ई० को राज्यीय बालरोग-विज्ञान-कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था। उसमें मूर्धन्य एवं सुविख्यात डाक्टरों का निर्णय था कि सन्तान और माता को स्वस्थ रखने के लिए स्वस्थ माता द्वारा अपने स्तन का दूध शिशु को पिलाया जाना परम आवश्यक है।

ऐसी ही कुछ बातें हैं, जिनके कारण आज की नयी सभ्यता को मेरा मन पसंद नहीं करता।

अपनी संतान के माध्यम से हम अपने **ज्ञान, विचार, संस्कृति** आदि की निरन्तरता रख सकते हैं; लेकिन यह तभी संभव है, जब हम विज्ञानोन्मुखी प्राचीन सभ्यता को अपनाएँ। इसीलिए मैं प्राचीन सभ्यता का पक्षधर हूँ। हर्ष है आप सपरिवार सानंद हैं।

आप अपनी बेटी के अध्ययन के सम्बन्ध में **डा० विजयेन्द्र जी स्नातक** से परामर्श करें। वे उचित और कल्याणकारी मार्ग बता सकेंगे। ब्रजभाषा साहित्य में उनकी पैठ अच्छी है।

श्री शिवशंकर सारस्वत, शुभैषी

१४६७, वज़ीरनगर, नई दिल्ली—११०००३ अम्बाप्रसाद 'सुमन'।

श्री परीक्षित् शर्मा 'आशु' के नाम

८/७ हरिनगर अलीगढ़ (उ प्र०)

दिनांक ११. ११. १९७७ ई०

चि० आशु,

आशीर्वाद !

तुमने पूछा है कि **विदुर जी** कौन थे ? श्री कृष्ण जी ने राजा दुर्योधन के षट् रस व्यंजनों को छोड़कर विदुर जी के यहाँ रूखा-सूखा भोजन करना क्यों स्वीकार किया था ?

बेटे आशु ! महामुनि वेदव्यास ने एक बहुत बड़े ग्रंथ की रचना की है, जिसे **महाभारत** कहते हैं। तुम्हारे प्रश्न का उत्तर **महाभारत** में मिल जाएगा। हिन्दी का महाभारत तुम्हें पढ़ना चाहिए। इंडियन प्रेस, इलाहाबाद या गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित 'महाभारत' तुम्हें शनैः शनैः नियमित रूप से पढ़ना चाहिए। उससे तुम्हें कौरवों, पाण्डवों, और श्रीकृष्ण का पूरा जीवन, और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास भी मालूम हो जाएगा। 'महाभारत' हमारी संस्कृति, सामाजिकता, युद्ध-नीति, पाप-पुण्य; धर्म, कर्म आदि के ज्ञान का विश्वकोश है। विश्व में जहाँ जो कुछ है, वह सब 'महाभारत' में है। महाभारत में राजा शान्तनु और शान्तनु के वंशजों की कथा है। कथा संक्षेप में इस प्रकार है—

हस्तिनापुर के चन्द्रवंशी क्षत्रिय राजा शान्तनु के दो रानियाँ थीं, बड़ी रानी **गंगा** से देवव्रत अर्थात् भीष्म पैदा हुए थे। दूसरी छोटी रानी **सत्यवती** थी, जो दाशराज नाम के मल्लाह की पुत्री थी। सत्यवती से **चित्रांगद** और **विचित्रवीर्य** नाम के दो पुत्र हुए थे। विचित्रवीर्य की दो रानियाँ थीं—**अम्बिका** और **अम्बालिका**। आम्बिका और अम्बालिका काशिराज की कन्याएँ थीं। इन्हें भीष्म युद्ध में जीतकर लाये थे और उनका विवाह अपने छोटे भाई विचित्र-वीर्य के साथ किया था। अम्बिका से धृतराष्ट्र पैदा हुए; जिनकी रानी गांधारी थी। गांधारी गंधार प्रदेश की थी, जिसे आज-कल कंधार कहते हैं। यह अफ-गानिस्तान का प्रसिद्ध नगर है। गांधारी के सौ पुत्र थे, जिन्हें महाभारत में कौरव कहा गया है। कौरवों में सबसे बड़ा दुर्योधन था।

अम्बालिका से पाण्डु पैदा हुए थे। राजा पाण्डु की दो रानियाँ थीं—(१) **कुन्ती** (२) **माद्री**। बड़ी रानी कुन्ती के तीन पुत्र थे, युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन। छोटी रानी माद्री के पुत्र दो थे, नकुल और सहदेव। इस तरह राजा पाण्डु के पाँच पुत्र थे, जो पाण्डव कहलाते थे। कौरव-पाण्डव तयेरे-चचेरे भाई थे।

राजा पाण्डु रोगी थे। अतः जल्दी ही मर गये थे। उनके देहावसान के बाद राजा धृतराष्ट्र हस्तिनापुर राज्य का काम चलाते थे। दुर्योधन धृतराष्ट्र का बड़ा पुत्र था। वह बड़ा अभिमानी और क्रूर था। धृतराष्ट्र उसकी क्रूरता और हठीपन से डरते भी थे और पुत्र-मोह के कारण कुछ अधिक कह भी न पाते थे।

पाण्डु की माता अम्बालिका के साथ काशी से एक दासी भी आयी थी। देवव्रत अर्थात् भीष्म पितामह ने उस दासी को भी वही दर्जा दिया था, जो अम्बालिका को प्राप्त था अर्थात् वह दासी भी विचित्रवीर्य की पत्नी के रूप में स्वीकार की गयी थी। दासी स्वभाव से विनय, शील और भक्ति भाव से संयुक्त थी। विदुर जी उसी दासी के पुत्र थे। विदुर जी में भी माता के गुण आये थे। वे भी सन्त और भगवान् के भक्त थे।

दुर्योधन के पास श्रीकृष्ण यह प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर गये थे कि कौरवों को कम से कम पाँच गाँव पाँचों पाण्डवों के लिए दे देने चाहिए। दुर्योधन ने बिना युद्ध के सुई की नोंक के बराबर भी भूमि देनी स्वीकार न की। अन्त में कौरव-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाण्डवों के बीच घोर युद्ध हुआ, जो महाभारत नाम का युद्ध कहलाया। सन्धि के दूत बनकर जब श्रीकृष्ण हस्तिनापुर गये थे, तब उन्होंने अभिमानी और क्रूर दुर्योधन के यहाँ भोजन नहीं किया था। सन्त और भगवद्भक्त विदुर जी के घर साग खाया था। विदुर जी की यही कथा है।

तुम रामायण और महाभारत जरूर पढ़ना। तुम्हारे गुरु जी भी विदुर जी के सम्बन्ध में और बताएँगे। सस्नेह,

चि० परीक्षित् शर्मा 'आशु', शुभैषी
द्वारा, डा० जगदीशचन्द्र शर्मा, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
जैनबाग, चिलकाना रोड, सहारनपुर (उ० प्र०)

डा० रामेश्वरदयालु अग्रवाल के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक १५–११–७७ ई०

प्रियवर श्री अग्रवाल जी,

आपके पत्र को पढ़कर यह भी विदित हुआ कि आप केवल कम्बन् और तुलसी के काव्य के प्रेमी ही नहीं हैं, अपितु लोकतत्त्व के प्रति भी निष्ठामयी अभिरुचि रखते हैं। आपने ब्रज में **ढोला** की परम्परा के सम्बन्ध में अपनी जिज्ञासा पत्र में व्यक्त की है।

अग्रवाल जी! **ढोला** ब्रज का लोक-महाकाव्य है, जो मौखिक रूप में ही अब तक चला आ रहा है। 'ढोला' गानेवाले को **ढुलैया** और ढुलैया के पीछे लम्बे हेकरा के साथ सुर देनेवाले को **सुरैया** कहते हैं। 'सुरैया' 'ढुलैया' की गायी हुई पंक्ति को दुहराकर पीछे से "ए......" की लम्बी आवाज़ में सुर देता है। सामवेद के मंत्रों की गायन-शैली में मंत्रोच्चार के ठीक बाद में कुछ स्वर-सूचक शब्दों का उच्चारण किया जाता था; जैसे—'ओ', 'हो', 'होई', 'हाऊ' आदि। इन्हें **स्तोभ** कहते हैं। सुरैया की 'ए...' को एक प्रकार से लोक-गीत का 'स्तोभ' समझिए।

ढोला में ३६० पहरियाँ बतायी जाती हैं। एक पहरी तीन घंटे में समाप्त होती है। तीन घंटे के समय को 'एक पहर' कहते भी हैं।

ढोला नामक लोक-महाकाव्य में मूल कथा नल-दमयंती की है, जिसका प्रथम उल्लेख हमें 'महाभारत' के वन पर्व में मिलता है। महर्षि बृहदश्व ने विपन्न युधिष्ठिर को वन में सान्त्वना और धैर्य धारण कराने के लिए राज्यहीन एवं संकट-ग्रस्त निषध देश के राजा नल की कथा सुनायी है। जिसे आज-कल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सिंध' कहते हैं, उसे ही 'निषध' कहते थे। निषध के राजा नल को "नैषध' कहते थे।

सब से पहले लोहवन के **मदारी जी** ने राजा नल की कथा कथी और उनसे **गढ़पति** ने सुनी। गढ़पति केवल चिकाड़े पर ही ढोला गाया करते थे। उसी परम्परा में **पटमल**, **टीकाराम पुजारी** और पुजारी के शिष्य **शिवचरनलाल** हुए। गढ़पति के ढोले में गज-मोतिनी का शृङ्गार-वर्णन न था। पटमल ने ढोला में शृङ्गार रस का पुट देने के लिए 'गजमोतिनी' (दाने की एक सुन्दरी कन्या) के प्रेम और शृङ्गार की कल्पना की थी। ब्रज के ढोले में अब नल के पुत्र और पुत्र-वधू तक का वर्णन सुना जा सकता है। शेष फिर कभी।

आपने कम्बन् की आत्मा के दर्शन करने के लिए तमिल भाषा का ज्ञान कहाँ प्राप्त किया था? क्या कम्बन् की रामायण का अच्छा हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित हो चुका है? कृपया प्राप्ति-स्थान का पूरा पता लिखें।

बच्चों को आशीर्वाद ! सस्नेह,

डा० रामेश्वरदयालु अग्रवाल, पी-एच० डी० आपका
हिन्दी-विभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
मेरठ कालेज, मेरठ (उ० प्र०)

डा० सत्यप्रकाश सिंह के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक १०. १२. १९७७ ई०

प्रियवर भाई सत्यप्रकाश सिंह जी,

आपने अपने पत्र द्वारा मुझसे जानना चाहा है कि **गीता** के **विश्वरूप श्रीकृष्ण** और **रामचरितमानस** के **चराचररूप श्रीराम** में कोई तात्विक भेद है, अथवा नहीं?

श्रीकृष्ण और **श्रीराम**—दोनों ही चराचर व्यापी अनन्त शक्ति के रूप में चित्रित किये गये हैं। जहाँ तक सर्वोपरि परम शक्ति का प्रश्न है, वह परम शक्ति गीताकार के अनुसार श्री विष्णु हैं। ये विष्णु ही ब्रह्मा और शिव के भी अधिपति हैं। लेकिन मानसकार के राम ऐसी परम शक्ति हैं, जो ब्रह्मा, विष्णु और महेश से भी ऊपर है। इस अन्तर की अवगति गीता के ग्यारहवें अध्याय और रामचरितमानस के बालकाण्ड तथा लंकाकाण्ड के अध्ययन से हो जाती है।

भगवान् श्रीकृष्ण जब दिव्य चक्षु अर्जुन को देकर उसे विश्वरूप दिखाते हैं, तब अर्जुन उनमें सारे देवता, भूत-समुदाय, ऋषि, सर्प, ब्रह्मा और महादेव

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि सब कुछ देखता है। गीताकार जहाँ ब्रह्मा और शंकर की बात कहते हैं, वहाँ विष्णु को श्रीकृष्ण के विश्वरूप में नहीं दिखाते। अतः सिद्ध है कि गीताकार की दृष्टि में स्वयं श्रीकृष्ण ही विष्णु हैं। लेकिन तुलसीकृत 'रामचरितमानस' में मनु और शतरूपा निरंतर सत्ताईस हज़ार वर्ष तपस्या करने के बाद केवल यह वर माँगते हैं कि हम उस परम प्रभु को अपनी आँखों से देखें, जिनसे शम्भु, ब्रह्मा और विष्णु उत्पन्न होते हैं। लंकाकाण्ड में मंदोदरी भी श्रीरामचन्द्र जी को ऐसा ही व्यक्त करती है। मनु-शतरूपा की इच्छा इस प्रकार है--

संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना।
उपजहिं जासु अंस तें नाना॥ (बाल० १४४/६)

मंदोदरी का कथन रावण से इस प्रकार है—

अहंकार सिव बुद्धि अज, मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर, रूप राम भगवान॥

--(लंका० दो० १५/--)

उपर्युक्त दोहे से प्रकट है कि श्रीरामचन्द्र जी में ब्रह्मा, विष्णु और महादेव समाविष्ट हैं। श्रीराम त्रिदेवों से भी अधिक सुप्रीम पावर हैं। लेकिन गीताकार के श्रीकृष्ण वास्तव में विष्णु ही हैं; और वे ब्रह्मा और शंकर से ऊपर सुप्रीम पावर हैं। तभी उस सुप्रीम पावर में अर्जुन ब्रह्मा और शंकर को तो देखता है, विष्णु को नहीं। क्योंकि विष्णु स्वयं श्रीकृष्ण ही हैं। अर्जुन कहता है--

पश्यामि देवांस्तव देव देहे,
सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्॥

(गीता, ११/१५)

'मानस' के दोहे (लंका०, १५) में विष्णु-अर्थवाची 'महान्' शब्द है; किन्तु गीता (११/१५) में 'ब्रह्माणं' और 'ईशं' पद तो हैं, 'विष्णु' जैसा पद नहीं है।

मेरी राय में गीता के विश्वरूप श्रीकृष्ण और मानस के विश्वरूप श्रीराम में यही तात्विक अंतर है। मानस के श्रीराम तात्विक रूप से लगभग वे ही हैं, जो वेद के पुरुषसूक्त का पुरुष और यजुर्वेद के निम्नांकित मंत्र का भूतपति है–

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमि ँ सर्वतः पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम्॥

--(यजुर्वेद, पुरषसूक्त)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम — (यजु० अ० १३/मं० ४)

महात्मा तुलसी भी लिखते हैं—

ब्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन बिगत बिनोद ।
सो अज प्रेम भगति बस, कौसल्या कें गोद ।।

—(बाल० १९८/—)

आप दर्शन से सम्बद्ध ग्रंथों की सर्जना योजनाबद्ध रूप में करते रहें । सारा भारत जाने कि अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग में भी कुछ काम हो रहा है ।

हर्ष है कि परमेश की दया से आप सपरिवार सानंद हैं । सस्नेह,

डा० सत्यप्रकाश सिंह, पी-एच० डी० शुभैषी
संस्कृत विभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ० प्र०)

श्री संजीव प्रचंडिया एवं श्री सोमेन्द्र प्रचंडिया के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक १२. १२. १९७७ ई०

प्रियवर संजीव एवं सोमेन्द्र,

आशीर्वाद !

तुम्हारा पत्र मिला । तुमने लिखा है कि कबीर, सूर, तुलसी आदि कवियों के काव्यों को पढ़ाते समय हमारे गुरु अध्यापक प्रायः **परमात्मा, आत्मा, जीव, जीवात्मा** और **प्रकृति** शब्दों का प्रयोग करते हैं । हमें इनकी अवधारणाएँ स्पष्ट नहीं हैं । कृपया इनकी अवधारणाएँ स्पष्ट करके अनुगृहीत करें ।

परमात्मा वास्तव में देश-काल से परे एक अनादि, अनन्त तथा सर्वशक्तिमान् महत्तम चेतन अस्तित्व है । इसी परमात्मा में से अनेक चेतन शक्तियाँ उत्पन्न हुई हैं, जिन्हें आत्माएँ कहते हैं । सांख्य दर्शन तथा जैन दर्शन के अनुसार आत्माएँ अगणित हैं । सांख्य 'आत्मा' को 'पुरुष' नाम से पुकारता है । प्रकृति जड़ है । प्रकृति और पुरुष के योग से संसार की सृष्टि होती है । जैन दर्शन के अनुसार जड़ प्रकृति को **पुद्गल** कहते हैं । सांख्य और जैन दर्शन के अनुसार **'मन'** भी जड़ है । **आत्मा** को 'जीव' भी कह देते हैं । जब आत्मा शरीराबद्ध हो जाती है, तब उसकी संज्ञा **'जीवात्मा'** हो जाती है । **मायाबद्ध आत्मा = जीवात्मा ।**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श, मन, बुद्धि, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी आदि सब अचेतन पदार्थ **प्रकृति** नाम से पुकारे जाते हैं। सारांश यह कि 'प्रकृति' अचेतन पदार्थ है। चेतन शक्तियाँ आत्माएँ हैं। उन चेतन शक्तियों के ऊपर (सर्वोपरि) एक परम चेतन दिव्य शक्ति है, जो **परमात्मा** है। वेदान्त दर्शन में 'परमात्मा' कर्ता है, दृष्टा है, चर-अचर व्यापी है। बौद्ध दर्शन और जैन दर्शन परमात्मा को नहीं मानते; केवल आत्माएँ मानते हैं। सगुणवादी कवियों की कविताओं से स्पष्ट है कि परमात्मा अवतार लेता है। परमात्मा का किसी योनि में अवतरित होना **अवतार** कहलाता है। जैन और बौद्ध दर्शनों में अवतार-वाद की मान्यता नहीं है। वहाँ तो असंख्य आत्माएँ ही हैं। सूरदास और तुलसी-दास की कविताओं से तुम्हें मालूम हो जाएगा कि श्रीकृष्ण जी और श्रीरामचन्द्र जी मनुष्य रूप में परमात्मा के अवतार थे। तुलसीदास जी के 'रामचरितमानस' के अनुसार तो श्रीरामचन्द्र जी सर्वोपरि महान् अनन्त शक्ति-रूप हैं, जिन्हें परब्रह्म कहा जा सकता है। वे सर्वोच्च दिव्य शक्ति हैं, ब्रह्मा, विष्णु और महादेव उनके अधीन हैं। गीता के श्रीकृष्ण भी सुप्रीम पावर हैं। परात्पर ब्रह्म अर्थात् परमात्मा ने अपना काम चलाने के लिए तीन शक्तियों को जन्म दिया है— संसार में जन्म देने के लिए **ब्रह्मा**, पालन करने के लिए **विष्णु** और संहार करने के लिए **महेश** को बनाया। ये तीनों शक्तियाँ उस अनादि महान् शक्ति की आज्ञा में रहती हैं। यही सब कुछ सूरदास, तुलसीदास आदि की कविताओं में तुम्हें मिलेगा।

आशा है कि **परमात्मा, आत्मा** और **प्रकृति** की अवधारणाएँ तुम्हें स्पष्ट हो गयी होंगी।

तुम दोनों को अध्ययन में गहरा उतरना सीखना चाहिए। प्रत्येक प्रकार के ज्ञान को ईमानदारी से प्राप्त करो। अधीती वही है, जो ज्ञान और अपने के बीच ईमानदारी और सचाई को साक्षी बनाता है। जब तक किसी समस्या का पूरा समाधान न मिले, तब तक चैन से न बैठो; विश्राम मत करो। सस्नेह,

श्री संजीव प्रचंडिया एवं श्री सोमेन्द्र प्रचंडिया
द्वारा—डा० महेन्द्रसागर प्रचंडिया,
पीलीकोठी, जैन शोध-अकादमी, आगरा रोड,
अलीगढ़ (उ० प्र०)

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री आदित्य प्रचंडिया 'दीति' के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' ८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ. प्र.)
डी० लिट्० दिनांक १०-१-१९७८ ई०

प्रियवर राम,

आशीर्वाद !

तुम्हारे पत्र से यह जानकर प्रसन्नता हुई कि तुम अपनी अध्ययन-तपश्चर्या में संलग्न हो, शोध-मार्ग पर अग्रसर हो और छन्दों का कार्य पूर्ण करके अब काव्य के भाव-पक्ष का विवेचन कर रहे हो। यदि ऐसी ही लगन और साधना बनी रही तो मेरा विश्वास है कि तीन वर्ष में शोध का काम पूरा कर लोगे। जैन धर्म तो कर्मवादी है। सच्चा जैन वही है, जो कर्मठ है, साधक है, आचार-वान् है। 'आचार और धर्म, पर्यायवाची हैं। **आचारः परमो धर्मः**। **सम्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान** और **सम्यक् चारित्र्य** उसी एक धर्म की तीन कोटियाँ हैं। तत्वार्थसूत्र के प्रणेता आचार्य उमास्वामी ने धर्म की व्याख्या-यात्रा में सम्यक् चारित्र्य पर आकर ही विश्राम लिया है। अतः सिद्ध है कि चारित्र्य अर्थात् आचरण (कर्म) ही जीवन है, धर्म है। 'कर्म' सचर एवं चेतन धर्म है। कर्मठ रहना ही धर्मात्मा बना रहना है। कर्मठता अर्थात् सच्चरित्रता।

तुमने अपने पत्र में बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछा है। **अवतार** और **तीर्थंकर** में अन्तर कम से कम शब्दों में इस प्रकार बताया जा सकता है—

"ईश्वर जब मनुष्य रूप में आता है, तब **अवतार** कहलाता है और मनुष्य जब ईश्वर रूप में पहुँच जाता है, तब **तीर्थंकर** कहलाता है।"

हिन्दुओं के धर्म ग्रंथों में कहा गया है कि परमेश ने इच्छा की कि मैं एक हूँ, बहुत हो जाऊँ—**एकोऽहं बहुः स्याम्**।

जैन धर्म के ग्रंथों में उसे उलट कर कहा—**बहुरहं एकः स्याम्** अर्थात् मैं बहुत हूँ, एक हो जाऊँ—यह श्रमण-सिद्धान्त का वाक्य है।

उपनिषद् के परमात्मा को अकेला रहना अच्छा न लगा। वह अनेक प्राणियों में रूपायित हुआ। कभी किसी एक विशिष्ट व्यक्ति में भी रूपायित हुआ, तब **अवतार** कहलाया। 'अवतरति इति अवतारः'।

श्रमण-दर्शन कहता है कि मनुष्य जब सत् कर्मों के बल से शुद्ध आत्मतत्त्व में रूपायित हो जाता, तब वह 'सिद्ध' हो जाता है। सिद्ध-अवस्था ही तीर्थंकर की अवस्था है। जब तक मनुष्य साधक है, तब तक तो साधु, उपाध्याय, आचार्य और अर्हन्त में से कोई एक बना रहता है। ये मनुष्य की साधना-कोटियाँ हैं। मनुष्य से ऊपर उठा तो 'सिद्ध' अर्थात् **तीर्थंकर** बन गया। सारांश

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कि **ईश्वर** बन गया—परमात्मा (परम आत्मा) बन गया। हिन्दुओं के उपनिषदों में **आत्मा** शब्द परमेश्वरवाची भी है।

कठोपनिषद् में **आत्मा** शब्द का प्रयोग **परमात्मा** के अर्थ में करते हुए कहा गया है कि संपूर्ण भूतों में छिपा हुआ यह आत्मा दिखाई नहीं देता। यह तो सूक्ष्मदर्शी पुरुषों द्वारा तीव्र और सूक्ष्म बुद्धि से ही देखा जा सकता है—

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥

—(कठ० अ० १/व० ३/१२)

श्री महावीर स्वामी जी के पाँच नाम हैं—

(१) **वर्धमान** (२) **सन्मति** (३) **वीर** (४) **महावीर** (५) **अतिवीर**। 'अतिवीर' का तात्पर्य 'तीर्थंकर' से है। 'महावीर' का अर्थ 'अरहंत' जैसा समझिए। हम 'महावीर' नाम ही अधिक लेते हैं। उसी प्रकार णमोकार मंत्र में सर्व प्रथम 'अरहन्त' को ही प्रणाम किया गया है। 'महावीर' और 'अरहन्त' मनुष्य या साधक की कोटि है। 'अतिवीर' और 'सिद्ध' तीर्थंकर की कोटि है। हमारी पूजा और प्रणाम 'महावीर' या 'अरहन्त' ही ग्रहण कर सकते हैं, क्योंकि वे हमारी पहुँच की सीमा में हैं। तीर्थंकर ईश्वर बन गये। मनुष्य की सीमा से परे हो गये। 'विद इन रीच' नहीं रहे।

अपने पिता जी (डा० महेन्द्रसागर प्रचंडिया) से मेरा नमस्कार कहना।

तुम **दीति** का अर्थ समझते हो? यह शब्द सं० **आदित्य** (=सूर्य) से विकसित है। इसमें प्यार, स्नेह और वात्सल्य का रस भरा हुआ है।

श्री आदित्य प्रचंडिया 'दीति', एम. ए., रिसर्च स्कालर शुभैषी
पीलीकोठी, आगरा रोड, अलीगढ़—२०२००१ अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री दुर्गादास के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' **८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)**
डी० लिट्० दिनांक २—२—७८ ई०

प्रियवर दुर्गादास,

आशीर्वाद !

मेरे विचार से गीता का प्रतिपाद्य तो **कर्म** ही है। कर्म से विमुख होने पर ही श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन को जो कर्म-रत होने के लिए उपदेश दिया, वही गीता है। किसी कर्म की सम्पन्नता में तीन ही प्रमुख अंग हैं—(१) **कर्ता** (२) **कर्म** (३) **क्रिया**। **कर्ता** कर्म की सम्पन्नता के लिए जो साधन अपनाता है,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह साधन **क्रिया** है। एक कर्म के लिए कर्ता विभिन्न क्रियाएँ अपना सकता है। प्रारंभ में भगवान् ने कर्ता अर्जुन को मनोनिग्रह के साधन बताये। अर्जुन को वे कठिनतम और दीर्घकालीन लगे। अन्त में उसे भक्ति साधन (गुह्यतम साधन) बताया। गीता में **कर्म** साध्य और **भक्ति** साधन है।

श्री दुर्गादास, एम. ए., एम. एड्,
प्रधानाचार्य,
आदर्श भारती उच्चतर मा० विद्यालय,
कलवा (अलीगढ़)

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री बाबूलाल के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन'
डी० लिट्०

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक ५–२–१९७८ ई०

प्रियवर बाबूलाल,

आशीर्वाद !

तुमने पूछा है कि किसी देश का आदर्श नागरिक कौन है ? आदर्श नागरिक वही कहलाएगा, जिसके तीनों प्रकार के चरित्र उत्तम हैं (१) **व्यक्तिगत चरित्र** (२) **सामाजिक चरित्र** (३) **राष्ट्रीय चरित्र**।

व्यक्तिगत चरित्र में यह देखा जाता है कि वह व्यक्ति अपने घर में किस तरह जीवन बिताता है ? उसके घर में सामान, पुस्तकें, सफ़ाई आदि किस प्रकार की हैं ? अपने घरवालों के साथ उसका व्यवहार किस तरह का है ? यदि ये सारी बातें ठीक हैं, तो उसका व्यक्तिगत चरित्र उत्तम माना जाएगा।

भारतवर्ष में सामाजिक चरित्र और राष्ट्रीय चरित्र बहुत गिर गया है। यदि सड़क पर चलते हुए कोई व्यक्ति बीच सड़क पर केले का छिलका डाल देता है, सड़क पर ही रास्ते में थूक देता है, चुंगी के नल को खुला हुआ छोड़ देता है, रेलगाड़ी के डिब्बे में बैठने की गद्दियों को पाँवों से गन्दी करता है, अथवा दूसरे से तुरन्त अख़बार माँगकर स्वयं पढ़ने लगता है, तो हम उस व्यक्ति में सामाजिक चरित्र और राष्ट्रीय चरित्र का अभाव मानेंगे। वह अपने देश का आदर्श नागरिक नहीं माना जाएगा।

जिस नागरिक का सामाजिक चरित्र और राष्ट्रीय चरित्र उच्च होता है, वह समाज और राष्ट्र की हानि को अपनी हानि मानता है।

लोकमान्य पं० बालगंगाधर तिलक जब युवक थे, तब एक दिन बम्बई से पूना जा रहे थे, रेलगाड़ी से प्रातः में। प्लेटफार्म पर उन्होंने एक दैनिक पत्र का प्रातः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्करण खरीदा। उसकी दस-पन्द्रह पंक्तियाँ ही पढ़ पाये होंगे कि तुरन्त उनके पास बैठे एक सज्जन ने उसका पन्ना पढ़ने के लिए माँगा। तिलक जी ने तुरन्त एक इकन्नी निकाल कर उन सज्जन को दी, और कहा कि आप कृपया दूसरी प्रति खरीद लीजिए। कृपा करके मुझे इस अखबार को पूरा पढ़ लेने दीजिए। **तिलक** जैसे महान् पुरुषों के व्यवहार और आचरण भी देश के सामाजिक एवं राष्ट्रीय चरित्र को उठाने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

अतः जो व्यक्ति व्यक्तिगत चरित्र, सामाजिक चरित्र और राष्ट्रीय चरित्र के आदर्शों का पालन करता है, वही आदर्श नागरिक है।

तुम्हें याद है, जब मैं सासनी में था, तब तुम्हारे परिवार के सदस्य मेरे प्रवचनों में नियमपूर्वक आया करते थे। **पं० पुरुषोत्तमदास जी वैद्य** (व्यौंहीवाले), **लाला देवीदास आर्य** और सुकवि **श्री वल्लभ जी** उस मंडली के नेता थे। दोनों सज्जन साहित्यिक रुचि रखते थे। उन परिवारों में अब कौन-कौन हैं? सस्नेह,

श्री बाबूलाल वार्ष्णेय, शुभैषी
श्याम ग्लास वर्क्स, सासनी (अलीगढ़) अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री सत्यप्रकाश शर्मा के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन', **८/७, हरिनगर, अलीगढ़ २०२००१**
डी० लिट्०, दिनांक १४–२–७८ ई०

प्रिय श्री शर्मा जी,

सप्रेम नमस्ते!

आपने '**प्राचीन भारत में स्त्री-शिक्षा की स्थिति**' के विषय में मेरा विचार जानना चाहा है।

प्राचीन भारत में प्रायः सभी मुनि-पत्नियाँ सुशिक्षित और विदुषी थीं। उनमें कई तो उच्चकोटि की ब्रह्मवादिनी भी थीं।

अगस्त्य-पत्नी **लोपामुद्रा**, अत्रि-पत्नी **अनसूया**, वशिष्ठ-पत्नी **अरुन्धती**, गौतम-पत्नी **अहल्या**, ऋष्यशृंग-पत्नी **शान्ता** और याज्ञवल्क्य-पत्नी **मैत्रेयी** परम विदुषी नारियाँ थीं। गर्ग-पुत्री **गार्गी** तो उपनिषदों में परम प्रसिद्ध ब्रह्म-वादिनी नारी मानी गयी है।

सुलभा तो वैदिक काल में ऐसी विख्यात ब्रह्मवादिनी नारी हुई है, जिससे जनक ने ब्रह्मविद्या प्राप्त की थी। **कहोल** के पुत्र **अष्टावक्र** ने जनक के यज्ञ में प्रधान ऋत्विक् का आसन प्राप्त किया था। उन अष्टावक्र को ऐसा विद्वान् उनकी माता **सुजाता** के उपदेश ने ही बनाया था। सुजाता ऋषि **उद्दालक** की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुत्री थी। माता **विदुला** के उपदेशों ने पुत्र संजय को परम उत्साही और वीर बना दिया था। माता **गंगा** अपने पुत्र देवव्रत को २५ वर्ष तक जो शिक्षा देती रही, उसी के कारण देवव्रत भीष्म के रूप में अपना तेजस्वी व्यक्तित्व बना सके थे। यह देवी गंगा के ही उपदेशों का सुपरिणाम था।

लगता है संस्कृत-काल के उपरान्त प्राकृत-काल में हमारा समाज नारी-शिक्षा के प्रति उदासीन हो गया था।

अब तो राष्ट्रसेवा, समाजसेवा और साहित्यसेवा आदि सभी क्षेत्रों में नारियाँ महत्त्वपूर्ण कार्य करके कीर्तिमान स्थापित कर रही हैं। नारियों में जागृति लाने के दृष्टिकोण से ही मनु ने कहा था—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:।

हर्ष है आप सपरिवार प्रसन्न हैं ? किसी रविवार को वैदिक मंत्रों की स्वरप्रक्रिया पर अपने विचार व्यक्त करके आपकी इच्छा की पूर्ति करूँगा। दिल्ली के प्रसंग में जो बात मैंने आपसे कही थी, उसकी सम्पन्नता यथासमय शीघ्र करनी हैं, आपको। आशा है आप उसकी स्वयं याद रखेंगे। सस्नेह,

श्री सत्यप्रकाश शर्मा, आपका

विकास मैटल इण्डस्ट्रीज़, मानसिंह की सराय, अलीगढ़। अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री राजेश मीतल के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक १५. २. १९७८ ई०

प्रियवर चि० राजेश,

आशीर्वाद !

तुमने अपने पत्र में लिखा है कि राजा दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ में **शृंगी ऋषि** ही क्यों बुलाये गये थे ?

बेटे राजेश ! पहले तो तुम्हें अपने दिमाग़ में से यह निकाल देना चाहिए कि दशरथ जी के पुत्रेष्टि यज्ञ के लिए **शृंगी ऋषि** नहीं बुलाये गये थे। उसमें **ऋष्यशृंग** बुलाये गये थे। यह **ऋष्यशृंग** महामुनि विभाण्डक के पुत्र थे। ऋष्यशृंग बहुत ऊँचे ऋषि, नैष्ठिक ब्रह्मचारी और प्रसिद्ध एवं मूर्धन्य याजक थे। अंगदेश के राजा रोमपाद ने सर्व प्रथम ऋष्यशृंग को ही अपने देश के अकाल को दूर कराने के लिए यज्ञार्थ बुलाया था। राजा रोमपाद और राजा दशरथ मित्र थे। राजा रोमपाद की पुत्री शान्ता ऋष्यशृंग को ब्याही गयी थी। राजा दशरथ भी शान्ता को अपनी पुत्री मानते थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि विभाण्डक के पुत्र **ऋष्यशृंग** जिस यज्ञ में प्रधान आचार्य रहते थे, वह यज्ञ निश्चित रूप से सफल होता था और अभीष्ट फल देता था। इसलिए राजा दशरथ ने ऋष्यशृंग को ही पुत्रेष्टि यज्ञ के लिए बुलाया था।

एक दूसरे प्रसिद्ध व्यक्ति **शृंगी ऋषि** थे, जो शमीक के पुत्र थे। शृंगी ऋषि के शाप के ही कारण राजा परीक्षत् को तक्षक नाग ने डसा था और फिर उनकी मृत्यु हो गयी थी। श्री **शुकदेव** जी (मुनिश्री वेदव्यास के पुत्र) ने अभिमन्यु के पुत्र राजा परीक्षित् को 'भागवत' सुनायी थी। यही शुकदेव जी महर्षि पराशर जी के पौत्र थे। अर्थात् व्यास जी और शुकदेव जी का गोत्र पाराशर था। वेदव्यास जी को महाभारत में पाराशर्य भी कहा गया है।

तुम अब **ऋष्यशृंग** और **शृंगी ऋषि** में अन्तर समझ गये होगे। सबको आशीर्वाद। अपने पिताजी के कुशल समाचार देते रहा करो। तुम्हें वाल्मीकीय रामायण और महाभारत अवश्य पढ़ने चाहिए। स्नेहमय आशीर्वाद सहित,

चि० राजेश मीतल, शुभैषी
द्वारा—**श्री वेदप्रकाश, एम० ए०** अम्बाप्रसाद 'सुमन'
१६५४, लक्ष्मीबाईनगर, नई दिल्ली–११००२३

श्री शिवचरनलाल सिंहल के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक २०–२–१९७८ ई०

प्रिय बंधु श्री सिंहल जी,
सप्रेम नमस्कार !

आपने अपने पत्र में लिखा है कि "विगत तीस वर्षों में हमारे देश के पारिवारिक जीवन में **मर्यादाहीनता** बहुत बढ़ी है—इसका मूल कारण आपकी दृष्टि में क्या है ?"

सन् १९४७ ई० से पहले हमारा देश परतंत्र था। देश का सौभाग्य था कि एक ही समय में कवीन्द्र रवीन्द्र, महामना मालवीय और महात्मा गांधी जैसी महान् विभूतियाँ देश की जनता को मार्ग-दर्शक एवं प्रेरक के रूप में मिलीं। इन तीनों सन्तों ने देश की विद्या, समाज, धर्म और राजनीति आदि को जागरण प्रदान किया। सम्पूर्ण देश जाग उठा और एक साथ कृतसंकल्प होकर स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए बलिदानी बना। जब समाज या देश के आगे प्रमुख लक्ष्य होता है और लक्ष्य के लिए देश संकल्पी होता है, तब आचरण और मर्यादाएँ सब कुछ शुक्ल और शुभ्र बन जाती हैं। भीतर के संकल्प के आगे गर्हित वासनाएँ चुप हो जाती हैं। चुप ही नहीं, निष्प्राण हो जाती हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश के तत्कालीन नेताओं एवं धर्माचार्यों के उपदेश और कर्म भी जीवन-मूल्यों के उदात्त स्वरूप को समाज के जीवन में सक्रिय बनाते रहते हैं। अतः परिवार और समाज मर्यादित रहते हैं।

सन् १९४७ ई० के बाद गुलाम और निर्धन देश को आज़ादी मिली। सत्ता मिली, पद मिला, सुख मिला और वैभव मिला। लक्ष्मी और वैभव का मद भी हुआ। बहुत दिनों का भूखा षट् रस व्यंजनों की थाली पर बुरी तरह से टूटता है। इस भूखे देश की दशा स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद ऐसी ही कुछ हो गयी। विदेशों की भोगवादी संस्कृति के संपर्क से एवं उसके प्रभाव से हमारे शासक (स्वतंत्र भारत के शासक) भी भोगवादी बने। कर्तव्यच्युत हुए। कोई प्रमुख लक्ष्य उनके सामने न रहा। यथा राजा तथा प्रजा होती है; अतः देश का सामाजिक जीवन भी बिखरने लगा। संकल्प न होने के कारण वासनाएँ पुनः जन्म लेने लगीं, और तीस वर्ष में जवान हो गयीं। उपर्युक्त तीनों विभूतियाँ भी समाप्त हो गयीं। सम्पूर्ण देश के आगे कोई महान् धर्माचार्य भी नहीं रहा। परिणाम यह हुआ कि समाज और परिवार आचरणों में अमर्यादित बनते गये। शासित स्वतंत्र होने पर पूर्व शासक की तरह रहना भी चाहता है। हम अँग्रेज़ी सभ्यता की नक़ल भी करने लगे। हमारी आश्रम-परम्परा समाप्त हुई। गुरुओं ने अपने पद के गौरव को समाप्त कर दिया।

गुरु और शिष्य आज एक-सी उम्र के हैं। दोनों साथ-साथ सिनेमा देखते हैं, सिगरेट पीते और पान खाते हैं।

पहले बाप २५ वर्ष के बाद गृहस्थ बनता था; पच्चीस वर्ष के बाद पिता के पुत्र होता था और पुत्र पच्चीस वर्ष तक गुरुकुल में विद्या पढ़ता था। पुत्र विद्या पढ़कर घर आता था और गृहस्थ बनता था; तब पिता वानप्रस्थ ग्रहण कर लेता था। तदुपरान्त सन्यास-ग्रहण। कितनी सुन्दर पारिवारिक आचार-संहिता थी! मार्ग से इधर-उधर होने की आशंका भी होती थी, तो धर्माचार्य सन्त भी गृहस्थों को साधते रहने का प्रयत्न करते रहते थे। सन्त आचार्य गृहस्थों के यहाँ आते भी रहते थे, भले ही कहते कुछ न थे। उनका आना ही मर्यादाओं की रक्षा किया करता था।

सन्तों के शरीरों से भी दिव्य तरंगें उठा करती हैं। वे तरंगें मौन रूप से मानव के मन को जगाती हैं, उठाती हैं। जिस प्रकार संगीत की तरंगें पौधों और फूलों को प्रभावित करती हैं, उसी प्रकार सन्तों के शरीरों से निकलनेवाली तरंगें भी प्रभावित करती हैं। वे मानव की मनोवाटिका के भाव-पुष्पों पर प्रभाव डाला करती हैं। हमारे शास्त्रों में सत्संग को इसीलिए तो महत्त्व दिया गया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवारों में महिलाओं की भी विचित्र स्थिति है। सास बनाव-श्रृङ्गार में बहू से कम नहीं है। ससुराल में सास और बहू के साथ-साथ बच्चे हो रहे हैं। मायके में बेटी का बेटा आठ साल का है, तब माँ ने एक पूत को जन्म दिया है। धेवता मामा को गोद खिलाता फिरता है। माता-पिता की काम-वासना के साकार दर्शन पुत्री कर रही है।

बड़े-बड़े धनपतियों के सैकड़ों लड़के विलासी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। कोई विशेष काम उन्हें नहीं होता। खाली दिमाग़ शैतान का घर बन जाता है। पिछले सप्ताह में कलकत्ते के डाक्टरों ने अपनी रिपोर्ट दी है कि उन्नीस-बीस वर्षीय लड़कियों के गर्भपात के मामले लगभग दो सौ की संख्या में मिले हैं। ये लड़कियाँ हाईस्कूल और इन्टर कक्षाओं में पढ़ रही हैं। इनके यौन साथी प्रायः प्रतिष्ठित परिवारों के सफ़ेद-पोश लड़के हैं, जिनकी अवस्थाएँ २६ वर्ष के लगभग हैं।

ये ही सब कुछ कारण हैं, जो हमारे देश के पारिवारिक जीवन को अमर्यादित बना रहे हैं। आपका खैर कब आना होगा? बच्चों को असीस। एक दिन श्री लक्ष्मी नंबरदार मिले थे। उनसे ही आपके विषय में मालूम हुआ था।

हर्ष है आप सानंद हैं।

श्री शिवचरनलाल सिंहल,
चौधरी निवास (न्यू अलका लॉज के पास),
गोल बाज़ार, राइट टाउन, जबलपुर (म० प्र०)

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री सुरेशचन्द्र शर्मा के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन',
डी० लिट्०

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक ३. ३. १९७८ ई०

प्रियवर सुरेशचन्द्र,
आशीर्वाद !

तुम्हारा पत्र मिला। प्रसन्नता है तुम परमेश की दया से आनन्द पूर्वक हो। तुमने पूछा है कि "मनुस्मृति में **ब्राह्मण** का कैसा स्वरूप वर्णित है? मनु **ब्राह्मण को सर्वाधिक महत्व** क्यों देते हैं?

मनु महाराज के मतानुसार **ब्राह्मण** मानव-समाज में ज्ञान, आचरण और त्याग का एक ऐसा उदात्त उच्च आसन है, जिस पर बैठने की जिस मनुष्य ने पात्रता प्राप्त कर ली, वही **ब्राह्मण** कहा जाने लगा।

मनु से पहले तथा मनु के काल में भी ब्राह्मण ज्ञान और सदाचरण में सर्वोच्च थे। इसीलिए वे अग्रजन्मा कहलाए। ज्ञान और सदाचरण की धरित्री

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर ब्राह्मणों ने सब से पहले जन्म लिया था। समष्टि के लिए वे सब कुछ त्याग चुके थे। उनका अपना तन, मन और धन समष्टि को अर्पित था। इतने महान् अद्‌भुत त्याग के कारण ही मनु लिखते हैं कि इस जगती पर जो कुछ भी है, वह सब ब्राह्मण का है—

सर्वस्वं ब्राह्मणस्येदं यत् किंचित् जगतीगतम् ।

—(मनु० १/१००)

ब्राह्मण का आचरण ही धर्म था। यदि किसी ने धर्म को न देखा हो, तो मनु कहते है कि वह ब्राह्मण को देख ले—

उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिः धर्मस्य शाश्वती —(मनु० १/९८)

ब्राह्मण का आचार ही **धर्म** था। वह आचार वेद-स्मृतियों के अनुसार था। मनु कहते हैं—

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च —(मनु० १/१०८)

अपनी कर्मठता और तपश्चर्या से ब्राह्मणों ने आदर और श्रद्धा प्राप्ति की थी। ज्ञान, सदाचरण और त्याग के कारण ही वे जगद्‌गुरु बने थे। उनका सदाचरण केवल भारत के लिए ही अनुकरणीय न था, अपितु संपूर्ण विश्व के लिए ग्राह्य था। इसीलिए मनु महाराज ने पृथ्वी भर के मनुष्यों के लिए कहा था कि विश्व-भर के मनुष्यों को ब्रह्मर्षि देश के ब्राह्मणों से अपने-अपने चरित्र की शिक्षा लेनी चाहिए।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

—(मनु० २/२०)

जो मनुष्य **ब्राह्मण** शब्द से चौंकते हैं, उन्हें उसकी गरिमा और महत्त्व को समझना होगा। ब्राह्मण ज्ञान, सदाचरण और त्याग में सर्वोपरि था; इसलिए भूल से या किसी कारण से कभी उससे कोई घोर अपराध हो भी जाता था, तो उसे प्राणदंड नहीं दिया जाता था। यह छूट ब्राह्मण को आसानी से नहीं मिली थी। वह समाज के लिए अपने को अकिंचन-भिखारी बना चुका था। यदि राजा दशरथ वशिष्ठ जी को पूजते थे, और उनके चरण-स्पर्श करते थे, तो वशिष्ठ को बहुत बड़ी चीज़ नहीं मिल गयी थी। वशिष्ठ के ज्ञान, त्याग, सच्चरित्र की तोल में राजा दशरथ से प्राप्त सम्मान पासंग भी न था। सदाचरण अर्थात् धर्म कहीं पृथ्वी पर देखा जा सकता था, तो ब्राह्मण के शरीर में। इसलिए ब्राह्मण पृथ्वी पर श्रेष्ठ था। ज्ञानमय सदाचरण से ब्राह्मण संज्ञा मिलती थी। वेद-शास्त्रों का सदाचारी अध्येता विद्वान् **ब्राह्मण** कहलाता था। ब्रह्मज्ञानी विद्वान् ब्राह्मण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्व श्रेष्ठ और सर्वाग्र प्रणम्य माना जाता था। आचार्य ब्राह्मण अपने शिष्यों को अपने घर पर रखते थे और निःशुल्क पढ़ाते थे। तब ब्राह्मण आचार्य 'फ्री एजूकेशन' देते थे। आज सरकार भी 'फ्रीएजूकेशन' नहीं कर पायी। सस्नेह,

प्रो० सुरेशचन्द्र शर्मा, शुभैषी
अध्यक्ष, शिक्षा-विभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
कोठीवाल आढ़तियान महाविद्यालय, कासगंज (एटा)

डा० नज़ीर मुहम्मद के नाम

८/७ हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक १२. ३. १९७८ ई०

प्रियवर भाई नज़ीर मुहम्मद जी,

नमस्कार !

आपने अपने पत्र में मेरे और **पास-पड़ोस के हाल-चाल** पूछे हैं। मित्र ! हालत दोनों की ही ख़राब है।

सन् १९४७ ई० के बाद मैं एक स्वर्ण-समय की कल्पना करने लगा था। कुछ वर्ष तो प्रतीक्षा और प्रारम्भ में ही बीत गये—मन ने समझाया कि तसल्ली रखिए, अभी इब्तिदा है। हथेली पर सरसों नहीं जमा करती।

सूरज की किरण आयी, लेकिन धाटी में न उतरी। राष्ट्र-पिता की अहिंसा ने आजादी दिलायी, लेकिन राष्ट्र-पिता को ही गोली से मारा गया। भारत को 'योग' मिला, 'क्षेम' नहीं। राजनीतिक स्वतंत्रता मिली, सामाजिक और आर्थिक नहीं। राष्ट्र जय-जयकार तो बोला, किन्तु अपनी राष्ट्र-भाषा में नहीं। नेता **कहना** सीखते गये, **करना** भूलते गये। दिन घटते गये, रातें बढ़ती गयीं। परमार्थ गिरता गया, स्वार्थ उठता गया। विज्ञान जागा है, दर्शन सो गया है।

भूतकाल देखा था, फिर वर्तमान काल भी देखा है। उसी में आपात काल भी देखा। अब तात्कालिक वर्तमान भी देख रहा हूँ। **कोई उम्मीद बर नहीं आती, कोई सूरत नज़र नहीं आती।** और न कोई निकटतम भविष्य में नजर आएगी, मेरे दोस्त ! क्योंकि इस देश का भला न अकेले गांधीवाद से होगा और न अकेले मार्क्सवाद से। गांधीवाद और मार्क्सवाद का समन्वय ही भारत में सच्चा सुराज्य स्थापित कर सकता है।

कहीं बिजली कहीं गुलचीं कहीं सैयाद का ख़तरा
फले फूलेगी गुलशन में ये शाख़े आशियाँ क्यों कर ?

पिछले तीस वर्षों से हिन्दी को देख रहा हूँ, हिन्दीवालों को देख रहा हूँ। आचार्यों को देख रहा हूँ, और आचार्यों के आचरणों को देख रहा हूँ; देखते-देखते

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँखें ही पथरा गयीं। मेरी और पास-पड़ोस की हालत जैसी है, उसे पूछिए मत। क्षमा !

बच्चों को आशीर्वाद ! बेटी रुबीना नज़ीर का अध्ययन कैसा चल रहा है ?

डा० नज़ीर मुहम्मद, डी० लिट्० आपका
रीडर, हिन्दी-विभाग, अलीगढ़ मु० वि० वि० अलीगढ़। अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० जगदीशनारायण बंसल के नाम

८/७ हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक २. ४. १९७८ ई०

प्रियवर बंसल जी,

सप्रेम आशीर्वाद !

आपके पत्र को पढ़कर मालूम हुआ कि आप **ज्ञान**, **कर्म** और **भक्ति** में अन्तर जानना चाहते हैं और अपने लिए ग्राह्य मार्ग के सम्बन्ध में मेरी राय भी जानने के इच्छुक हैं।

ज्ञान-मार्ग का सम्बन्ध विशेष रूपेण बुद्धि से है। जिसकी बुद्धि तीव्र हो और स्वभावतः बुद्धि में आस्था हो, उसके लिए ज्ञान-मार्ग ग्राह्य है। ज्ञान-मार्ग के व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि शरीर और मन को अपने से पृथक् मानकर उसे संसार के पदार्थों तथा परम शक्तिमान् अनन्त शक्ति का ध्यान करना चाहिए।

भक्ति-मार्ग का सम्बन्ध विशेष रूपेण हृदय से है। भावुक, सरल, निष्कपट तथा कोमल हृदय के प्राणियों के लिए भक्ति मार्ग उचित है। यह मार्ग स्त्री-स्वभाववाले प्राणियों के लिए ही ठीक रहता है। माधुर्यभाव (कान्ताभाव) की भक्ति का वास्तविक आनन्द नारियाँ ही प्राप्त कर सकती हैं, क्योंकि स्वभावतः समर्पण भाववाली होने के कारण भगवान् को वे प्रियतम के रूप में आलम्बन मान सकती हैं और सर्वतोभावेन समर्पण भी कर सकती हैं। श्रद्धामयी नारियाँ श्रद्धेय भगवान् को अपने को सहज भाव से समर्पित भी कर सकती हैं। पुरुषों के लिए उस प्रकार के भाव का आलम्बन भगवान् को बनाना मेरे विचार से कठिन होगा। समर्पणभाव और भावुकतापूर्ण श्रद्धाभाव नारी में सहज होता है। **प्रसाद जी** का यह कथन सत्य है—

नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पद-तल में। (कामायनी)

गोपियों और राधा की भक्ति माधुर्यभाव की भक्ति है जिसमें स्वतः सहज समर्पण-भाव है। वहाँ सर्वस्व समर्पण है। भगवान् के सुख के हेतु भक्ताएँ उस समर्पण में अपार दुःख उठाने को भी तत्पर रहती हैं। अर्जुन ने तो भगवान् श्री कृष्ण को तब समर्पित किया, जब श्रीकृष्ण ने (गीता० १८/६६) पूर्ण विश्वास

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिलाते हुए वचन दिया कि तुझे सब पापों से मुक्त कर दूँगा; लेकिन गोपियों का समर्पण स्वतः था। सहज था, बिना शर्त के था। गोपी-समर्पण ऊँचा समर्पण है। इस उच्च समर्पण का कारण नारी-स्वभाव समझना चाहिए।

यदि पुरुष अपने को पिता या सखा माने, और परम शक्तिमान् एवं अपार ऐश्वर्यवान् परमात्मा को पुत्र या सखा माने, तो मुझे लगता है कि वैसा भाव रखने में पुरुष का मन कुछ डरेगा। वह वात्सल्य या सख्य भाव का आलम्बन भगवान् को पूरी तरह बना न सकेगा। हाँ, दास्य भाव तो संभव लगता है। लेकिन दास्य में स्वामी (भगवान्) की ओर से आदेश, आज्ञा आदि का मिलना भी आवश्यक है। दास भक्त उनका ही पालन करता है। भगवान् कब आज्ञा देंगे ? कब सेवक भक्त उसका पालन करेगा ? यह समस्या भी मुझे कठिन-सी लगती है। यदि नित्य चरण-वंदन ही दास करता रहेगा, तो संपूर्ण दास्य-भाव परिपक्व न होगा।

यदि जनार्दन रूप में जनता की ही सेवा करना अभीष्ट है, तो तब भी सेवक की सेवा का आधार कर्म ही रहेगा। इस तरह सेवा-भाव में कर्म ही प्रमुख है। हनुमान् जी ने सेवा-कर्म से ही भगवान् राम को अपना ऋणी बनाया था। तुलसीदास जी ने भी 'मानस' में सेवक-सेव्य-भाव को प्रमुख माना है—

सेवक-सेव्य-भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि। (उत्तर० ११९/—)

अब आती है बात **कर्म-मार्ग** की। **कर्म-मार्ग** का सम्बन्ध विशेष रूप से हाथों से है। जो पुरुषार्थी है, कर्मठ है और सत् कर्म में आस्थावान् है, उसे कर्म-मार्ग पर चलना चाहिए; और प्रत्येक कर्म को कर्तव्य बनाना चाहिए। वही उसके लिए श्रेयस्कर भी है। कर्म-योग शरीर की क्रियाओं में निवास करता है, अतः सबको प्रत्यक्ष भी दीखता है। नेत्रों का स्पष्ट विषय होने के कारण समाज पर शीघ्र प्रभाव भी डालता है। ज्ञान बुद्धि में, और भक्ति हृदय में निवास करती है, अतः वे नेत्रों के विषय भी नहीं हैं। नेत्रों का विषय होने के कारण ही तो नाटक काव्यों में रम्यतम बने।

कर्ममार्गी कर्मवीर की ओर भगवान् स्वयं आकृष्ट होते हैं। कर्मवीर अर्जुन की सहायता श्रीकृष्ण जी ने स्वयं की थी। लेकिन उसी अर्जुन की सहायता योगेश्वर कृष्ण ने की थी, जिसकी प्रतिज्ञा थी—**न दैन्यं, न पलायनम्।** ग्राह से पूरी शक्ति से अन्त तक युद्ध करनेवाले गज की रक्षा के लिए ही प्रभु गरुड़ छोड़कर नंगे पाँवों दौड़कर पहुँचे थे। पुरुष वह है, जिसमें पौरुष है और पौरुष वह है, जिसमें कर्तव्य के लिए कर्मठता है। इसलिए पुरुषत्व और कर्मत्व पर्यायवाची हैं। मेरी राय में समाज-हित की दृष्टि से तथा पुरुष-स्वभाव की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि से पुरुष के लिए मैं कर्म-मार्ग को ही उचित मानता हूँ। कर्मवीर पार्थ के लिए श्रीकृष्ण ने स्वयं वचन दिया—

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः। (गीता० १८/६६)

कर्मयोगी को लक्ष्य करके महाभारतकार ने भी कहा है कि कर्मवीर के दाहिने हाथ में कर्म और बाँये हाथ में विजय होती है—

कृतं मे दक्षिणे हस्ते, जयो मे सव्य आहितः। —(महाभारत)

अतः आप जैसे पुरुषार्थी के लिए **कर्म-मार्ग** ग्राह्य है। **भक्ति** तो विशेष रूप से नारी हृदयवालों के लिए ही अधिक उपयुक्त रहती है। आप तो मेरठ ज़िले में रहते हैं। **मेरठ** का प्राचीन नाम **मयराष्ट्** है। यहाँ **मय** का राज्य था। रावण की पत्नी **मंदोदरी** मय की पुत्री थी। उसे **मयतनया** कहा भी गया है। वह नारी थी। भगवान् राम की भक्त थी। "स्वधर्मे निधनं श्रेयः"–(गीता)

डा० जगदीशनारायण बंसल शुभैषी
हिन्दी-विभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
दिगंबर जैन कालेज, बड़ौत (मेरठ)।

श्री ओ३म्प्रकाश वार्ष्णेय के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ २०२००१

प्रियवर ओ३म्प्रकाश जी, दिनांक ६. ४. ७८ ई०

सस्नेह आशीर्वाद !

आपका प्रमुख प्रश्न यह है कि **भक्ति के द्वारा व्यक्ति और समाज का कल्याण किस तरह संभव है ?**

आज के स्त्री-पुरुष **भक्ति** का तात्पर्य केवल मंदिर में जाकर पत्र-पुष्प चढ़ाना और इष्टदेव को भोग लगाना भर मानते हैं। यह **भक्ति** नहीं, **छल** है, **धोखा** है, और **आत्मप्रवंचना** है। इसके मूल में सांसारिक स्वार्थ है।

भक्ति में भगवान् के प्रति भक्त का सर्वतोभावेन पूर्ण समर्पण होता है। भक्ति (भगवत् प्रेम) में चित्त की वृत्तियों का निरोध नहीं करना पड़ता, अपितु उन्हें भगवान् की ओर मोड़ देना पड़ता है। बिहारी ने एक दोहा लिखा है—

मनमोहन सौं मोह करि, तू घनस्याम निहारि।
कुंजबिहारी सौं बिहरि, गिरिधारी उर धारि॥
—(वि० र०, दो० ६४१)

भक्त प्रतिपल अपने प्रभु में समाविष्ट रहता है; सर्वतोभावेन समर्पित रहता है; एक क्षण भी अलग नहीं रहता। भक्त के भगवान् सदा ही उसके साथ हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब भक्ति में भगवान् की उपस्थिति सदा भक्त के ही निकट है, तब असद्-वृत्तियों, अपावन भावों तथा क्रूर कर्मों का तो प्रश्न उठता ही नहीं। व्यक्ति तब विचार और कर्म में परम पवित्र बन जाता है। भक्त परमानंद लाभ करता है; ब्रह्मानन्द नहीं। भक्त को भगवान् की शरण में जाकर जो आनन्द मिलता है, वही परमानन्द है। यही भक्त का सर्वस्व है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने एक दिन नारद जी को भक्त का अनन्य-भाव अपनी लीला करके दिखा दिया। उदरशूल का बहाना करके भगवान् शय्या पर पड़ गये और कराहने लगे। नारद के पूछने पर बताया कि "नारद जी ! यदि पतिव्रता नारी अपने पाँव के अँगूठे को जल से धोकर उस जल को दे, तो मेरा उदरशूल शान्त हो। मेरा उदरशूल तो शान्त हो जाएगा, लेकिन वह पतिव्रता नारी नरक को जाएगी। नारद ! ऐसा श्री ब्रह्मा जी ने मुझे बताया है।"

नारद तुरन्त श्रीकृष्ण जी की आठों पटरानियों के पास गये और उदरशूल की घटना सुनायी। आठों पटरानियों में से नरक के भय से किसी एक ने भी चरणोदक न दिया। अन्त में नारद राधा जी के पास बरसाने गये। उन्होंने तुरन्त चरणोदक दे दिया, और कहा "नारद जी भगवान् के उदरशूल-निवारण के लिए मुझे जन्म-जन्मान्तर सदा के लिए नरक स्वीकार हैं।" यही राधा-भाव भक्ति का अनन्य समर्पित महाभाव है।

सभी भक्त जब पवित्र जीवन बिताएँगे, तब भक्तिमय जीवन में कभी विकृत जीवन बिताने की बात पैदा ही न होगी, और सम्पूर्ण समाज उत्तम, सदाचारी और सत्कर्मी बन जाएगा। भक्त के सब कर्म सत्कर्म होंगे। दुराचार और मिथ्याचार का उन्मूलन करके सदाचार का जीवन बितानेवाला ही **सत्कर्मी** कहलाता है। गीता के तीसरे अध्याय में बताया गया है कि कर्मेन्द्रियों को वश में रखकर जो मन से भोग करता है, वह **मिथ्याचारी** है। **दुराचारी** मिथ्याचारी से भी नीची कोटि का होता है।

भक्त तो विश्व को भगवद्मय देखता है। अतः भक्त के लिए प्रत्येक जन आदरणीय और प्रिय है। भक्तों के हृदयों में तो, प्रेम की गंगा सदा प्रवाहित होती रहती है। वह सर्वभूतहितेरत रहता है। कीर्तन, श्रवण, जप, ध्यान आदि भक्ति के प्रमुख साधन हैं।

सबको आशीर्वाद और मंगलकामनाएँ ! चि० ज्ञानविनोद का अध्ययन तो ठीक चल रहा होगा ! उसे मेरी असीस कहिए।

श्री ओ३म्प्रकाश वार्ष्णेय, एम. ए., एल-एल. बी. शुभैषी
मास्टर-भवन, द्वारकापुरी, अलीगढ़ (उ० प्र०) अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य श्री मुरारीलाल के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ २०२००१
दिनांक १५. ४. १९७८ ई०

मान्यवर श्री मुरारीलाल जी,

सादर नमस्ते !

आशा है परमेश की दया से आप सपरिवार सानंद होंगे। **पं० सोनपाल शर्मा-अभिनंदनी** के लिए आपका लेख **कालजयी हिन्दू धर्म** यथा समय मिल गया था। तदर्थ हार्दिक धन्यवाद ! लेख वस्तुतः सारगर्भित और सुविवेचित है। पढ़कर प्रसन्नता हुई। आपकी ऐतिहासिक दृष्टि पैनी है।

आपको स्मरण होगा कि दिनांक १०. ४. ७८ को रामनवमी के उपलक्ष्य में समायोजित व्याख्यानमाला के अन्तर्गत मैं श्री विन्ध्यवासिनी प्रसाद उर्फ़ 'गुरु जी' के यहाँ विष्णुपुरी में पहुँचा था। मेरे व्याख्यान से पूर्व आपका प्रवचन भूमिका रूप में चल रहा था। आपके विचार-बिन्दुओं से प्रेरणा लेकर मैंने भी कुछ समय समागन्तुकों की सेवा की थी। मेरे प्रवचन के मार्ग में एक शब्द **अशरफ़ुलमख़लूक़ात** आया था। उसकी व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या के लिए आपने अपनी इच्छा व्यक्त की थी।

आज उसी शब्द की व्याख्या इस पत्र के माध्यम से आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूँ।

'शराफ़त' (कुलीनता) के लिए एक शब्द अरबी में '**शरफ़**' है। 'शरीफ़' शब्द 'अच्छा' या 'सुन्दर' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इससे उत्तम कोटि का विशेषण शब्द **अशरफ़** बनता है, जिसका अर्थ है 'सर्वोत्तम' या 'श्रेष्ठ'।' मख़्लूक़' (दुनिया) का बहुवचन 'मख़्लूक़ात' है। **अशरफ़ुलमख़्लक़ात** का अर्थ हुआ 'दुनिया में सबसे श्रेष्ठ'। सारांश यह है कि दुनिया में जितने प्राणी हैं, मनुष्य उनमें सर्वश्रेष्ठ है। बुद्धि, विवेक और कर्मोच्चता के कारण ही मनुष्य को यह उपाधि मिली है। महाभारत में भी लिखा गया है—**नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्।** कविवर **पंत** ने भी लिखा है—**मानव तुम सबसे सुन्दरतम**।

दुनिया में जितने चर-अचर हैं, उनमें मनुष्य में क्या विशेषता है ? यह यहाँ विचारणीय है। धर्म (सदाचरण) ही मनुष्य में पशुओं से विशेष है। सदाचरण के कारण ही मनुष्य पशु से ऊँचा माना गया है। महाभारत के शान्ति पर्व में व्यास जी ने बताया है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ।।

(शान्ति पर्व २९४/२९)

एक के सदाचरण को देखकर दूसरा भी वैसा ही सदाचरण करता है । इस तरह समाज में धर्म रक्षित रहता है । इसीलिए शान्ति पर्व में ही कहा गया—**धर्मो धारयते प्रजाः** ।

'पत्थर' में शक्ति है, वृक्ष में शक्ति और जीवन है और पशु में शक्ति, जीवन और चेतना है । लेकिन मनुष्य में शक्ति, जीवन और चेतना तो हैं ही, इसके साथ-साथ विवेक और आत्मचेतना भी है । इसी आत्मचेतना के कारण मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ है । मनुष्य की श्रेष्ठता जब चरम कोटि पर पहुँच जाती है, तब देवत्व को प्राप्त कर लेती है । देवत्व के लिए मनुजत्व प्राप्त करना परमावश्यक है ।

'आत्मभाव' को ही 'स्वभाव' कहते हैं । मनुष्य 'आत्मभाव' को जानता है । वह 'आत्मभाव' (स्वभाव) में रह सकता है । भूतकाल में अनेक मनुष्य 'स्वभाव' में जीवन-भर रहे हैं । सांसारिक मन के वशीभूत न होकर जो आत्मा की आवाज़ के अनुसार कार्य करते हैं, वे **स्वभाव** में जीनेवाले माने जाएँगे; और जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि से भरे हुए मन के वश में होकर काम करते है, वे **विभाव** में जीनेवाले माने जाएँगे । वास्तव में इन्सान सदा 'स्वभाव में ही जीते हैं, विभाव में नहीं । इसीलिए इंसान को **'अशरफ़ुलमख्लूक़ात** कहा गया ।

मनुष्य को विश्व का सर्वश्रेष्ठ प्राणी अपने सदाचरणमय उच्च कर्म के कारण ही तो माना गया । गीता (३/२०) में भी श्रीकृष्ण ने कहा कि कर्म से ही जनक आदि पूर्णतत्व (Perfecion) को प्राप्त हुए । गीता का पाँचवें अध्याय का चौथा श्लोक तो कर्मयोग में ही ज्ञान को समाविष्ट कर लेता है और फिर साधना के मार्ग को बताते हुए श्रीकृष्ण ने कहा कि इस संसार में साधना के मार्ग दो ही हैं (गीता ३/३)—(१) ज्ञानयोग (२) कर्मयोग । साधन तो साधना का एक सहयोगी अंग है । साधक द्वारा साध्य-प्राप्ति के लिए जो प्रयत्न है, वह साधना है । साधना का सहायक तत्त्व साधन है । गीता में 'भक्ति' साधन है, कर्म साधना है । उसी साधना से मनुष्य को पूर्ण की प्राप्ति हो सकती है । कर्म में समत्व बुद्धि आत्मभाव से आती हैं । समत्व बुद्धि से किया हुआ निष्काम कर्म ही **कर्मयोग** है ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री वाचस्पति मिश्र सदा 'आत्मभाव' अर्थात् 'स्वभाव' में ही रहे। विद्यार्थी-जीवन के उपरान्त सरस्वती-आराधन में लग गये। माता की इच्छा पूरी करने के लिए विवाह तो कर लिया; किन्तु बारह वर्ष तक 'उपनिषदों और ब्रह्मसूत्र' पर भाष्य लिखते रहे। उनकी पतिव्रता पत्नी **भामती** शान्त और मौन बनी चुपचाप उनके पास बैठी रहती थी। बारह वर्ष की समाप्ति से एक दिन पहले, दीपक पर गुल आ जाने से वाचस्पति की लेखनी रुक गयी और ऊपर को आँखें उठ गयीं। तब एक नारी का हाथ दीपक का गुल ठीक करते हुए दिखायी दिया। वाचस्पति के पूछने पर भामती ने बताया कि—"मैं आपकी पत्नी भामती हूँ। आपकी सारस्वत साधना की सफलता के लिए मैं भी चुपचाप आपके आसन के पास बैठी हुई प्रभु से प्रार्थना किया करती हूँ।"

"तुमने मुझे अब तक कभी बताया क्यों नहीं? आज भाष्य पूरा होने को है, कल से सन्यास लेने का व्रत कर चुका हूँ भामती!" वाचस्पति बड़े करुण विस्मय से भरे स्वर में पत्नी से कहने लगे।

"आपने मुझसे पूछा, मुझे अपनी समझा—इसमें ही मुझे सब कुछ मिल गया, पतिदेव!; इतना ही नहीं, आपकी ज्ञान-साधना से संसार का उपकार होगा—इससे मेरी आत्मा परम प्रसन्न रहेगी। मेरा पातिव्रत सफल हुआ।"

"अच्छा, इस भाष्य का नाम **भामती** रख दिया मैंने, भामती!" वाचस्पति मिश्र शान्त भाव से बस इतना ही कह सके और दूसरे दिन संसार को ज्ञान-दान करने के लिए सन्यास लेकर घर से विदा हुए। भामती आत्मा में सुख अनुभव करती हुई गार्हस्थ्य जीवन बिताती रही; परिवार मुहल्ले और समाज की सेवा करती रही। वह जनक के कर्म-मार्ग पर चलती रही।

वाचस्पति और **भामती**—दोनों ने स्वभाव में रहकर जीवन जिया था। वे दोनों सच्चे **अशरफ़ुलमख़्लूक़ात** थे।

शेष सबको यथायोग्य। आज-कल दैनिक कार्यक्रम क्या रहता है? कभी-कभी इस 'सुमन' की कुटिया को भी पवित्र किया करें। काव्यशास्त्र का विनोद-सुख आपसे मुझे भी तो मिलना चाहिए। सस्नेह,

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री मुरारीलाल जी,
प्राचार्य (सेवानिवृत्त)
मायालय, विष्णुपुरी, अलीगढ़–२०२००१

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री सत्यप्रकाश शर्मा के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन',
डी० लिट्०

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक २०. ४. ७८ ई०

प्रियवर श्री शर्मा जी,

आपकी जिज्ञासा **यज्ञों के सम्बन्ध** में है। साथ में आप यह भी जानना चाहते हैं कि प्राचीनकाल में कितने प्रकार के यज्ञ किये जाते थे ?

मैं आपके प्रश्न के उत्तरांश का उत्तर पहले लिख रहा हूँ ।

यज्ञों का विधान तो वैदिक काल में ही कर्म के रूप में गृहीत हो गया था। तदुपरान्त रामायण-काल और महाभारत-काल में भी बहुत यज्ञ हुआ करते थे। क्षत्रिय अर्थात् क्षत्रिय राजा **अश्वमेध, राजसूय** और **पौण्डरीक** नामक यज्ञ किया करते थे। रामायण-काल में रामचन्द्र जी ने अश्वमेध यज्ञ कराया था। यज्ञ कराने के लिए जो ब्राह्मण आते थे, वे ऋत्विक् कहलाते थे।

राजा युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ में राजसूय यज्ञ का समायोजन किया था। उस राजसूय यज्ञ में ब्रह्मा के ऋत्विक् पद पर कृष्ण द्वैपायन व्यास अधिष्ठित हुए थे। सामवेद के उद्गाता का पद सुसामा ने ग्रहण किया था। ब्रह्मज्ञानी याज्ञ-वल्क्य अध्वर्यु बनाये गये थे। ऋषि पैल और कुलगुरु धौम्य होता बने थे। इसका उल्लेख महाभारत के सभापर्व में है।

एक यज्ञ **वाजपेय** नाम का भी था, जिसे प्रायः ब्राह्मण किया करते थे। वाजपेय नामक यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण वाजपेयी कहलाते थे ।

यज्ञ में प्रमुख रूप से चार ऋत्विक् होते हैं। (१) **ब्रह्मा** जो यज्ञ कर्म का जागरूक द्रष्टा होना है और देखता है कि यजमान का यज्ञ विधि-विधान पूर्वक सम्पन्न किया जा रहा है अथवा नहीं ? ब्रह्मा अन्य ऋत्विकों के मंत्र-पाठ पर भी ध्यान रखता है कि मंत्रों का उच्चारण उदात्त, अनुदात्त, स्वरित और प्रचय के अनुसार ठीक हो रहा है या नहीं ? ब्रह्मा नाम का ऋत्विक् ऋक्, यजु और साम—तीनों ही वेदों का ज्ञाता होता है। (२) **अध्वर्यु** यजुर्वेद के मंत्रों का तो पाठ करता ही है, किन्तु वह यज्ञ की सम्पूर्ण सामग्री और व्यवस्था का व्यवस्थापक भी होता है। अधिकार की दृष्टि से ब्रह्मा को प्रिंसिपल और अध्वर्यु को वाइस प्रिंसिपल समझ लीजिए। (३) **होता** नामक ऋत्विक् ऋग्वेदपाठी होता है। (४) **उद्गाता** सामवेद के मंत्रों का पाठ करता है। ज्ञान की दृष्टि से ब्रह्मा और प्रबन्ध की दृष्टि से अध्वर्यु ऋत्विकों में प्रमुख माने जाते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त चारों ऋत्विकों में से प्रत्येक के तीन-तीन सहायक हुआ करते थे, जो अपने-अपने प्रधान ऋत्विक् की आज्ञा और अनुमति से यज्ञ के कार्य किया करते थे।

इस तरह चार ऋत्विक् और उनके बारह सहायक मिलकर एक यज्ञ में कम से कम सोलह ब्राह्मण यज्ञ-कर्त्ता हुआ करते थे।

ब्रह्मा को छोड़कर तीनों ऋत्विक् (अध्वर्यु, होता और उद्गाता) वैदिक स्वर-प्रक्रिया (उदात्त, अनुदात्त स्वरित और प्रचय) के अनुसार वेद-मंत्रों का उच्चारण किया करते थे। वैदिक संहिताओं की भाषा में सुराघात का बड़ा महत्त्व है। वहाँ उदात्त आदि के स्थान-परिवर्तन से अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। त्वष्टा ने 'इन्द्र शत्रो' के उच्चारण में उदात्त स्वर बदल दिया था। इसलिए उसका पुत्र इन्द्र ने मार दिया।

पाणिनि के शिक्षा ग्रन्थ (श्लोक ५२) में उच्चारण के महत्व के सम्बन्ध में लिखा गया है कि जो आचार्य यज्ञ में मंत्रोच्चारण में स्वर-त्रुटि (सुर-अशुद्धि) कर देता है, तो उससे यजमान का नाश हो जाता है।

हमारा पूर्व मीमांसा दर्शन बतलाता है कि यज्ञ प्राचीन काल में कर्मकाण्ड के अन्तर्गत समाविष्ट था। **कर्मकाण्ड**=यज्ञ कर्म।
मैं समझता हूँ कि आपके प्रश्न के दोनों अंशों का उत्तर हो चुका।

सब बच्चों को आशीर्वाद। प्रसन्नता है कि आप सपरिवार आनन्दपूर्वक हैं। विकास इण्डस्ट्रीज़ की कर्म-प्रणाली व्यक्तिगत कल्याण के साथ समाज और राष्ट्र के हित में भी सिद्ध होती रहे, तो आप सच्चे कर्मवादी ब्राह्मणों में एक सम्मान्य ब्राह्मण सिद्ध होंगे। मुझे आशा और विश्वास है कि आपकी वणिग्-वृत्ति आपके ब्राह्मण-भाव को न दबा सकेगी। ब्राह्मण-धर्म आपका 'स्वधर्म' है। गीता में कर्तव्य कर्म ही **'धर्म'** कहा गया है—

स्वधर्मे निधनं श्रेयः, परधर्मो भयावहः —(गीता ३/३५)

सस्नेह,

श्री सत्यप्रकाश शर्मा,
विकास मैटिल इण्डस्ट्रीज़,
मानसिंह की सराय, आगरा रोड, अलीगढ़ (उ० प्र०)

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० राजेन्द्र 'रंजन' के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक २८. ४. १९७८ ई०

प्रियवर रंजन,

आशीर्वाद !

तुम्हारा पत्र मिला। इस प्राप्त पत्र के प्रश्न का उत्तर देने से पहले तुम्हारे प्रश्नात्मक वाक्यों को लिख रहा हूँ, ताकि प्रश्न के साथ क्रमशः उत्तर भी स्पष्ट हो सके। तुम्हारा प्रश्न है––

"गुरु जी ! मैं एक धर्म-सम्मेलन में व्याख्यान सुनने गया था। उसमें एक व्याख्याता ने अपने व्याख्यान में कहा था कि शरीर दो होते हैं—(१) **स्थूल शरीर** (२) **सूक्ष्म शरीर**। एक श्रोता ने बीच में उठकर बहस करनी प्रारंभ कर दी और तर्क दिया कि शरीर तो केवल एक होता है और वह है हमारा स्थूल शरीर। इस पर व्याख्यानदाता ने कहा कि चुप रहो; **वितण्डा** मत करो आप में वाद करने की सामर्थ्य नहीं है। व्याख्याता महोदय के उस व्याख्यान में और उस बहस में आये हुए तीन शब्दों के अर्थ मैं नहीं समझ सका। वे हैं—(१) **स्थूल शरीर** (२) **सूक्ष्म शरीर** (३) **वितंडा**"।

प्रियवर ! धर्म-सम्मेलन के वे व्याख्याता महोदय अपने व्याख्यान में विषय का प्रतिपादन सांख्य दर्शन के आधार पर कर रहे होंगे। सांख्य दर्शन अनेक **पुरुष** अर्थात् अनेक चेतन आत्माएँ मानता है। **प्रकृति** में बुद्धि, अहंकार, मन, दस इन्द्रियाँ, पंच तन्मात्राएँ और पंच भूत मानता है। इस तरह पुरुष और प्रकृति को मिलाकर २५ संख्या हुई। संख्या के कारण ही 'सांख्य' दर्शन नाम पड़ा। बुद्धि, अहंकार, मन, दस इन्द्रियाँ, और पाँच तन्मात्राएँ (शब्द, रूप, स्पर्श, रस, गंध)—इन १८ की समष्टि को **सूक्ष्म शरीर** कहते हैं। आकाश, अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी के समष्टिगत रूप को **स्थूल शरीर** कहते हैं। **वाचस्पति मिश्र** ने इन दोनों प्रकारों के शरीरों का समर्थन किया है। **विज्ञानभिक्षु** ने तो एक तीसरा शरीर भी माना है, जिसे **अधिष्ठान शरीर** कहते हैं। जब एक सूक्ष्म शरीर दूसरे स्थूल शरीर में जाने लगता है, तब वह अधिष्ठान शरीर का आलंबन ग्रहण करता है।

अब रहा तुम्हारा 'वितंडा' शब्द। अक्षपाद गौतम के न्याय दर्शन की पारिभाषिक शब्दावली में तुम्हें तीन शब्द मिल जाएँगे—(१) **वाद** (२) **जल्प** (३) **वितंडा**।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाद में यथार्थ ज्ञान की दृष्टि से जो तर्कशास्त्र सम्मत मत प्रस्तुत किया जाता है, उसे **'वाद'** कहते हैं। सच्ची जिज्ञासा के साथ वाद हुआ करता है।

लेकिन वादी-प्रतिवादी जब कोरे विवाद और झगड़े की दृष्टि से अपनी विजय के लिए बातें करते हैं, तब वे कथन, **जल्प** कहे जाते हैं।

'वितंडा' भी कुछ-कुछ 'जल्प' से मिलता-जुलता ही है। इसमें वादी केवल प्रतिवादी के मत के खंडन में जीत की दृष्टि से ऊल-जलूल बकता रहता है। **वितंडा** हो, या **जल्प** हो—इनमें यथार्थ ज्ञान-लाभ का कोई दृष्टिकोण नहीं होता। वादी या प्रतिवादी केवल अपनी जीत दिखाने की दृष्टि से कुतर्क उपस्थित किया करते हैं। अपनी कुतर्कों के मार्ग में **हेत्वाभास** (Falacy) और **छल** (शब्द के विवक्षित अर्थ को जान कर भी भिन्न अर्थ ग्रहण करना) का भी प्रयोग करते हैं।

व्याख्याता महोदय ने 'वितंडा' शब्द का प्रयोग न्याय दर्शन की भूमि पर खड़े होकर किया होगा; ऐसा मैं समझता हूँ।

'आशा' के 'शैक्षिक क्रान्ति अंक' में तुम्हारा परिश्रम श्लाघ्य है। सम्पादन अच्छा लगा।

सासनी अंचल का दिग्दर्शन भी पहले 'आशा' का विशेषांक निकाल कर आप लोगों ने कराया था। वह श्लाघनीय कार्य किया था। डा० बनारसीदास जी चतुर्वेदी (फीरोज़ाबाद) हृदय से उसकी प्रशंसा कर रहे थे। मैं तुमको, श्री सेठ छेदीलाल जी जैन को और श्री उपाध्याय जी (प्रधानाचार्य) को हार्दिक बधाई देता हूँ। जनपदीय अनुष्ठान करते रहो!

आशा है सानंद होगे। सस्नेह,

डा० राजेन्द्र रंजन, पी-एच० डी० शुभैषी
के० एल० जैन इण्टर कालेज, सासनी (अलीगढ़) अम्बाप्रसाद 'सुमन'

कु० अर्चना गर्ग के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ २०२००१

वेटी अर्चना, दिनांक १२. ५. ७८ ई०

आशीर्वाद!

तुम **दर्शन, धर्म, संस्कृति और सभ्यता शब्दों के अर्थ और उनकी अर्थ-भेदक रेखाएँ जानना चाहती हो**—ऐसा तुम्हारे पत्र को पढ़कर मुझे अनुभव हुआ है।

जगत् के मूल तत्त्व को ऋषियों और विद्वानों ने जैसा देखा और समझा वह **दर्शन** है। किसी ने स्थूल देखा और किसी ने सूक्ष्म देखा। जगत् में पदार्थ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊर्जा या चेतन शक्ति किस प्रकार कार्य करती है—इसकी विवेचना का नाम **दर्शन** है। इसे अंग्रेज़ी में **फिलॉसोफी** नाम दिया गया। सारांश यह है कि हम कौन हैं, कैसे बने और क्यों बने ? इसका विवेचन **दर्शन** है।

जीवन बिताने में जो सुविचार और सुव्यवहार मानव-समाज सार्वजनिक रूप में स्वीकारता है, वे धर्म हैं। धर्म धर्मशास्त्रों द्वारा बताया हुआ आचार है, जिसे किसी देश का मानव-समाज व्यवहार में लाता है। हिन्दुओं के लिए वेद-स्मृतियों में बताया हुआ आचार 'धर्म' है—

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च। (मनु० १/१०८)।

धर्मशास्त्रों में बताये हुए आचारों के अतिरिक्त कुछ आचार और आस्थाएँ ऐसी भी होती हैं, जिनका पालन मानव-समाज करता तो है, किन्तु वे लोक में ही परम्परा से चली आती हैं, कहीं लेखबद्ध नहीं होतीं। 'संस्कृति' उन्हें भी मानती है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि धर्मशास्त्रानुमोदित आचार और लोकानुमोदित आचार, विश्वास तथा आस्थाएँ आदि की समष्टि **संस्कृति** है। हिन्दू-संस्कृति प्रायः ईश्वर में, जन्मान्तरवाद में, और आत्मा के अस्तित्व में विश्वास रखती है। **सत्य, दया, अहिंसा** आदि को स्वीकारती है। यह सब कुछ संस्कृति के तत्त्व हैं। देवी-देवताओं को पूजना, उनकी अद्भुत शक्ति में विश्वास रखना आदि हिन्दू संस्कृति के चिह्न हैं।

अब प्रश्न उठता है किसी देश में ग्रीष्म, शीत, वर्षा के अनुसार घर बनाकर रहने का, कपड़े पहनने का, आभूषण धारण करने और भोजन करने का; यह सब कुछ सभ्यता के अन्तर्गत माना जाएगा।

आज-कल हमारे देश के हिन्दुओं में जिस आर्ष प्रणाली से विवाह होता है, उसे देखकर हम कह सकते हैं कि हमारी संस्कृति भारतीय है अर्थात् हिन्दू-संस्कृति है। किन्तु हम लोग बरात में प्रायः कोट-पतलून पहनकर जाते हैं। प्लेट-प्यालों में काँटे-छुरी से खड़े-खड़े खाते हैं। इसे देखकर कहा जा सकता है कि हमारी सभ्यता अब अंग्रेजी सभ्यता-जैसी बन गयी है, जो काम, अर्थ, फैशन और जीवन-अवमूल्यों पर आधृत है। सभ्यता का सम्बन्ध, वस्त्राभूषण, साज-सज्जा, खान-पान, रहन-सहन आदि से है। संस्कृति का सम्बन्ध, विचारों, आस्थाओं और विश्वासों से है।

अतः सभ्यता का सम्बन्ध शरीर से, और संस्कृति का सम्बन्ध मन से है। **धर्माचार + लोकाचार = संस्कृति। खान-पान + वस्त्राभूषण + रहन-सहन = सभ्यता।**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर्ष है परमेश की दया से तुम सपरिवार सानंद हो। सच्ची निष्ठा से मन लगाकर अपना शोध-कार्य तीन वर्षों में पूरा कर लो। यही 'अर्चना' की अपनी माता शारदा के प्रति सच्ची अर्चना मानी जाएगी। **अध्ययनं परमं तपः।** शेष सबको आशीर्वाद।

कु० अर्चना गर्ग, **एम० ए०** (**रिसर्च स्कालर**) शुभैषी
हिन्दी विभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
मुन्नालाल एवं ज० ना० कन्या महाविद्यालय, **सहारनपुर** (**उ० प्र०**)

डा० गिरिधारीलाल शास्त्री के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१
दिनांक १९–५–७८ ई०

प्रिय भाई गिरिधारीलाल जी,

आपके पत्र दिनांक १६. ५. ७८ को पढ़कर परम प्रसन्नता हुई। उसे पढ़ने के बाद लगभग पन्द्रह-बीस मिनट तक मैं ऐसे दिव्य लोक में पहुँच गया कि उसकी आनन्दानुभूति को लिख नहीं सकता। पूज्य गुरुवर **पं० गोकुलचन्द्र जी शर्मा** का शुभ नाम पत्र में पढ़ते ही मैं अपने विद्यार्थी-जीवन से आत्मसात् कर गया। धन्य थे वे गुरु, और धन्य है उनकी वात्सल्यमयी अनुकम्पा। जीवन के अन्तिम दिनों में पूज्य पंडित जी के सिर में एक विकट फोड़ा हो गया था। तब मैं प्रायः सप्ताह में दो दिन उन्हें देखने के लिए विष्णुपुरी जाया करता था। अपने शिष्यों में जिस-जिस को उन्होंने वात्सल्य से प्रसंगवशात् स्मरण किया, उनमें **आपका नाम** ऊपर था। परमपिता परमात्मा की यह महती अनुकम्पा ही थी कि हम दोनों उस दिव्य वट वृक्ष की छाँव में छमियाये और अमृतमयी शीतलता प्राप्त की। आज मैं अपनी अवस्था का ६२वाँ वर्ष पूरा कर रहा हूँ— मैंने **पंडित गोकुलचन्द्र जी शर्मा** जैसा स्वाभिमानी हिन्दी-प्रोफ़ेसर दूसरा नहीं देखा। आज-कल तो सुपरलेटिव डिग्री के आत्महीन चाटुकार हिन्दी-प्रोफ़ेसर संख्या में बढ़ते जा रहे हैं।

आपके पत्र में कई प्रश्न हैं। उनमें प्रथम प्रश्न है कि **किस महापुरुष ने तथा किस ग्रंथ ने आपको सबसे अधिक प्रभावित किया है ?**

मैं अपने जीवन में जिन महापुरुषों के अति निकट रहा हूँ, उनमें तीन नाम ही चिरस्मरणीय रहेंगे—पूज्यवर **पं० गोकुलचन्द्र शर्मा**, परमपूज्य **डा० वासुदेव-शरण अग्रवाल** और समादरणीवर **डा० नगेन्द्र**। उनके उपकारों से मैं उऋण नहीं हो सकता। विषम परिस्थितियों की भीषण ज्वालाओं से पीड़ित, व्यथित

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालेज, अलीगढ़) को नहीं भूल सकता। उनमें एक आचार्य और प्राचार्य के सच्चे गुण हैं। सन् १९५६ ई० में पी-एच० डी० करने के बाद मैं एन० आर० ई० सी० कालेज, खुर्जा (उ० प्र०) में हिन्दी-प्राध्यापक होकर चला गया था। सन्-१९५७ ई० में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में हिन्दी-प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हुआ। जिस चयन-समिति ने मेरी नियुक्ति की थी, उसके प्रमुख सदस्य थे **सर्वश्री कर्नल ज़ैदी** (तत्कालीन वाइसचांसलर), **डा० नगेन्द्र** और **डा० हरवंश लाल शर्मा**। मै सन् १९५७ ई० से १९७६ ई० तक अलीगढ़ विश्वविद्यालय की सेवा करता रहा। इस जीवन में जैसे अनुभव हुए; उनमें मीठे कम हैं, कड़वे अधिक हैं। मैं समझता हूँ कि जो नाविक प्रचंड प्रभंजन में नदी की धारा पर नाव को वहाँ की वहीं थामे रहता है, वह सफल नाविक ही माना जाएगा। मुझे यह कहते हर्षात्मक गौरव की अनुभूति होती है कि मेरे अंतस् के अध्यापक ने निष्ठा-पूर्वक विश्वविद्यालय की सेवा की है, भले ही मैं किसी व्यक्ति की सेवा न कर सका होऊँ। मैं व्यष्टि-सेवा से समष्टि-सेवा को अधिक मानता हूँ। इसी अवधि में मैंने मनुष्य की ऊँचाई-नीचाई को भी आँखों से अच्छी तरह देखा, और महा-भारत की इस पंक्ति को दिन-रात दुहराता रहा—**अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे, न दैन्यं न पलायनम्**। उतार-चढ़ाव के सम्बन्ध में अश्वघोष के शब्दों में इतना ही निवेदन कर सकता हूँ कि तरंगों के चढ़ाव की ओर तैरने वाला हंस जिस प्रकार न ठह-रता है और न आगे चल पाता है। ठीक मेरी दशा वैसी ही बनी रही। मेरा मन प्रसन्न है कि मैंने विष पीते हुए अपने शिष्यों को अमृत दिया है।

मेरे जीवन में जब-जब दुःखों का प्रकोप हुआ, तब-तब इस भावना ने ही मुझे बल दिया कि यह भी न रहेगा, और कालिदासकृत मेघदूत के इस श्लोक को गुनगुनाता रहा—

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा।
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण॥

(मेघदूत, उत्तरमेघ, श्लोक ४९)

मैंने अपना सारस्वत कर्म-क्षेत्र अलीगढ़ विश्वविद्यालय के बाहर संपूर्ण भारत को माना और अब भी मानता हूँ। उन विद्वानों को साभार प्रणाम निवे-दन करता हूँ, जिन्होंने मेरी सारस्वत सेवाओं को पुरस्कृत किया है। भारत के मूर्धन्य भाषाविदों के प्रेम और कृपा से मुझे निरन्तर १५ वर्ष तक केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, भारत सरकार में हिन्दी-सेवा का सुयोग मिला। जिस समय उत्तर प्रदेश शासन में चौधरी चरणसिंह कृषि मंत्री थे, तब मैं वहाँ के कृषिमंत्रालय से प्रकाश्यमान एक कृषिशास्त्र-ग्रंथ का परामर्शदाता भी रहा था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री लालबहादुर शास्त्री (तत्कालीन प्रधान मंत्री) ने मुझे सन् १९६४ ई० में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास के हिन्दी स्नातकोत्तर एवं अनुसंधान विभाग का रीडर एवं अध्यक्ष बनाकर भी भेजा। यह सर्वश्री आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० नगेन्द्र और डा० विश्वनाथ प्रसाद की कृपा का फल था।

अब मैं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की योजना के अन्तर्गत शोध-कार्य में रत हूँ और माता वीणापाणि के चरणों में अर्चना के दो-एक पुष्प और चढ़ाना चाहता हूँ।

जिन्होंने मुझसे स्वार्थ-सिद्ध न होने के कारण मेरा घर जलाया है, उनके लिए भी मैं प्रभु से यही प्रार्थना करता हूँ कि प्रभु उनका मंगल करें, किन्तु वे परम प्रभु उन्हें वह बुद्धि अवश्य प्रदान करें कि मेरे घर की तरह किसी दूसरे निर्दोष का घर वे न जलाएँ। **सर्वे सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः**

मुझे आपके आदेश का पालन करने लिए लिखना पड़ा है, अन्यथा चाहता न था कि शान्त पीड़ा को फिर जगाऊँ। दुखती नस को दुबारा छुआ है। शेष फिर कभी। सस्नेह,

डा० गिरिधारीलाल शास्त्री आपका
(रीडर, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ विश्वविद्यालय) अम्बाप्रसाद 'सुमन'
शास्त्री भवन, मैरिस रोड, अलीगढ़।

पं० चिरंजीलाल उपाध्याय के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ २०२००१
दिनांक २८. ५. ७८. ई०

मान्यवर मामाजी,

सादर नमस्कार!

आपके भवन पर पिछले सप्ताह में जब रविवार को मैंने **रामचरितमानस पर प्रवचन** किया था, तब आपने और आपके एक मित्र ने '**मन**' का अर्थ जानना चाहा था और यह भी जानना चाहा था कि क्या **दर्शन का 'मन' और मनोविज्ञान** (Psychology) **का मन एक ही है, या अलग-अलग**?

उस दिन समय अधिक हो जाने के कारण बात पूरी न हो सकी थी, क्योंकि प्रवचन में ही लगभग पौने दो घंटे लग गये थे।

सांख्य दर्शन और वेदान्त दर्शन के अनुसार '**मन**' चेतन नहीं, जड़ **है**। वह एक इन्द्रिय है। वेदान्त मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को **अन्तःकरण** (अन्दर की इन्द्रिय) मानता है। मनोविज्ञान (Psychology) में 'मन' की अवधारणा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिन्न है। वह वास्तव में मस्तिष्क की क्रियाशीलता है। मस्तिष्क में करोड़ों कोशिकाएँ हैं। उन कोशिकाओं में जो गति, क्रिया या प्रवाह होता हैं उसे **मन** कहते है। मनोविज्ञान को एक प्रकार से 'मस्तिष्कविज्ञान' के अर्थ में समझना चाहिए। मनोविज्ञान में 'मन' एक तरह से 'मस्तिष्क' का पर्याय है। 'मनोविज्ञान वास्तव में 'मस्तिष्कविज्ञान है।'

योग दर्शन का 'चित्त' और सांख्य दर्शन का 'मन' कुछ-कुछ एक ही बात है—अर्थात् इन्द्रिय। "**योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः**" में **चित्त** से तात्पर्य **मन** है। वैसे बारीकी में जाने पर तो यह कहना पड़ेगा कि पतंजलि के अनुसार चित्त ५ हैं:—(१) **मूढ चित्त** (२) **क्षिप्त चित्त** (३) **विक्षिप्त चित्त** (४) **एकाग्र चित्त** (५) **निरुद्ध चित्त**। योग में सफलता **एकाग्र** और **निरुद्ध** चित्त ही प्राप्त कर सकते हैं।

आपके यहाँ मंगलवार को होनेवाला संगीत-आयोजन वस्तुतः आनन्दप्रद होता है। उसमें संगीत के माध्यम से भक्ति का रस प्राप्त होता है।

यह कम विचित्र और कम महत्त्वपूर्ण नहीं है कि गत १५ वर्षों से आपकी संगीत-ज्योति अखंड रूप से प्रति मंगलवार को जग रही है। खिरनीगेट में **शास्त्रीय संगीत** के लिए आपको, और द्वारकापुरी में **मानस-प्रवचन** के लिए श्री ओ३म्प्रकाश वार्ष्णेय को श्रेय है। आपकी संगीत-सभा में श्री किशनपाल का तबला-वादन, तथा सर्वश्री मंगलसेन जी, रमन जी और सुरेश जी की गायन-शैली श्रोताओं को मुग्ध करती है। हर्ष है कि आप स्वामी हरिदास जी के अनुयायी हैं।

पं० चिरंजीलाल उपाध्याय (मुनीम जी) आपका
खिरनी गेट, अलीगढ़ अम्बाप्रसाद 'सुमन'

कु० वीणा अग्रवाल के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ २०२००१
दिनांक ४. ६. १९७८ ई०

प्रिय बेटी वीणा अग्रवाल,

सानंद रहो!

तुम्हारा पत्र दिनांक २–६–७८ प्राप्त हुआ। आदरणीय प्रभाकर जी की अस्वस्थता के समाचार से चिन्ता हुई। प्रभु से प्रार्थना है कि वे उन्हें शीघ्र स्वस्थ करें।

तुम्हारे पत्र में मुझसे पूछा गया है कि—"**कृपया अपने जीवन की कोई ऐसी घटना बताइए, जिसने आपके आचरण, स्वभाव या आदत को प्रभावित किया हो और जीवन-निर्माण में योग-दान भी किया हो।**"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं यहाँ एक ऐसी **घटना** लिख रहा हूँ, जिससे मुझमें सारस्वत ईमानदारी पैदा हुई।

घटना सन् १९५४ ई० के जून मास की है। मैं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में **डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल** के निर्देशन में हिन्दी में पी-एच० डी० का शोध-कार्य कर रहा था। तब मैं श्रद्धेय अग्रवाल जी के आवासीय बँगले के एक कमरे में रहा करता था और उनके निजी पुस्तकालय के ग्रंथों से शोध-कार्य में सहायता लेता था। रसोई-घर को छोड़कर उनका सारा बँगला ग्रंथों से भरा हुआ था। उस बँगले के बड़े हॉल में डा० अग्रवाल जी एक तख्त पर बैठकर **जायसीकृत 'पदमावत'** का भाष्य लिखा करते थे; और दिन में जितना लिख लेते थे, उसे सायंकाल में मुझे सुनाते थे। उससे मेरा ज्ञान-वर्धन होता था। तत्पश्चात् मैं अपनी कुछ शोध-शंकाओं का भी निवारण डाक्टर साहब से कर लिया करता था।

मेरा शोध-कार्य ब्रजभाषा के जनपदीय शब्दों से सम्बद्ध था। डा० अग्रवाल जी ने भी **'पदमावत'** के भाष्य में शब्दों का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया था।

उस समय मेरी अवस्था ३८ वर्ष की थी। हिन्दी में दो-तीन पुस्तकें भी लिख चुका था और मासिक पत्रिकाओं में २०–२५ से अधिक लेख भी प्रकाशित करा चुका था। इतने-भर से ही मैं अपने को बृहस्पति मानता था और बड़े-बड़े प्रकाण्ड-पंडितों तथा शीर्षस्थ विद्वानों के विचारों की चोरी किया करता था। अर्थात् पराया माल अपना बनाया करता था। दूसरों के विचारों को लेकर अपनी मेधा का डंका पीटता था, जो बेईमानी थी। साहित्य में वह बेईमानी मेरे दम्भ के रथ पर बैठकर पिछले कई वर्षों से यात्रा कर रही थी। बेईमान मन आत्मा की आवाज़ को सुनकर भी अनसुनी कर दिया करता था और समझता था कि विद्वान् भी ऐसा ही किया करते हैं। इसी तरह से विद्वान् बना जाता है।

एक सन्ध्या को श्रद्धेय डाक्टर साहब ने जायसीकृत 'पदमावत' के एक स्थल की व्याख्या में **दुआली** शब्द का अर्थ एक विशेष वस्तु के लिए किया था (वह अर्थ मुझे इस समय स्मरण नहीं रहा)। मैंने निवेदन किया कि "मैंने तो अपने शब्द संकलन में **दुआली** शब्द तबले की डोरी के अर्थ में लिखा है, जो चमड़े की होती है।"

डाक्टर साहब ने मेरी बात सुन ली और 'अच्छा' कहकर भाष्य का अगला अंश सुनाने लगे। प्रसंग समाप्त हुआ और मैं रात्रि के दस बजने पर सोने के लिए चला आया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रातः ३.३० वजे के लगभग डाक्टर साहब ने मुझे आकर जगाया और कहा—"सुमन जी ! आप ठीक कहते हैं। **दुआली** का अर्थ मुझे मिल गया। आपकी बात सही है; मैं ठीक अर्थ न समझा था।"

डाक्टर साहब बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे कि "आपसे ही प्रेरित होकर मैं रात भर **दुआली** शब्द के अर्थ टटोलता रहा। अब इतनी प्रसन्नता है, मानो रंक को रत्न मिल गया हो।" इतना कहते-कहते उन्होंने अपने दोनों हाथ मेरे दोनों कन्धों पर रख दिये, मानो मुझे सच्ची सारस्वत सेवा के लिए प्रेरणा दे रहे हों।

मैंने अपने जीवन में आज तक ऐसा अधीती नहीं देखा, जिसने एक शब्द के लिए निरंतर ५ घंटे अर्थ टटोलने में लगाये हों और अर्थ की अवगति पर इतनी प्रभूत प्रसन्नता की अनुभूति जिसे हुई हो।

बात आयी-गयी हुई। दिन बीते; शनैः शनैः महीने बीते और दो साल भी बीत गये। 'पदमावत' का भाष्य साहित्यसदन, चिरगाँव (झाँसी) से प्रकाशित हुआ। उसकी एक प्रति मेरे पास भी भेजी गयी। मैंने उसकी भूमिका में पढ़ा— "**दुआली** शब्द का सही अर्थ मुझे श्री अम्बाप्रसाद 'सुमन' से मालूम हुआ।"—इस वाक्य को पढ़कर मैं विद्वान् का लक्षण समझा। विद्वान् के व्यक्तित्व को समझा। मेरा बेईमान ज्ञान-दंभ चूर-चूर हुआ। मैं उस घटना को कभी भूल नहीं सकता। उस स्वर्गगत मेधा को मैं प्रत्येक प्रातः वेला में प्रणामांजलि अर्पित करता हूँ। तब से ही मैं सरस्वती-पूजन में पूजा के पुष्प चढ़ाने का कुछ ढँग सीख पाया हूँ और ईमानदारी की झलक दिखाई देने लगी है। **तस्मै श्री गुरवे नमः।**

प्रसन्नता है कि तुम लेखन-कार्य में संलग्न रहती हो। माननीय श्री प्रभाकर जी को मेरा सादर नमस्कार कहना। श्री प्रभाकर जी के आशीर्वाद से तुम्हें साहित्य के मर्म को देखने तथा परखने की दृष्टि मिलेगी। कुछ मिल भी चुकी है—ऐसा आभास मुझे तुम्हारे पत्रों से मिल चुका हैं। पत्र-प्राप्ति की सूचना भी देना। सस्नेह,

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

कु० वीणा अग्रवाल
द्वारा—श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'
हाथी बिल्डिंग, सहारनपुर (उ० प्र०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री ईश्वरचन्द्र के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)

प्रिय श्री ईश्वरचन्द्र जी, दिनांक ६. ६. १९७८ ई०

सप्रेम नमस्कार !

आपका पत्र दिनांक ७ जून, प्राप्त हुआ। आपके पत्र में प्रमुख रूप से आज के मनुष्य के सम्बन्ध में दो बातों की ओर संकेत किया गया है--

(१) आज का मनुष्य आस्थारहित है और उसके जीवन-मूल्य गिरते जा रहे हैं। (२) आज के मनुष्य में किसी के प्रति हमदर्दी नहीं है और स्वार्थ-सिद्धि के लिए वह तलवे चाटने में भी परहेज़ नहीं करता—इसका क्या कारण है ?

भाई ईश्वरचन्द्र जी, आपका अनुभव जैसा है, ठीक वैसा ही आज के मनुष्य के सम्बन्ध में मेरा भी है। मेरी आयु इस समय ६२ वर्ष की है। जब मैं १४-१५ वर्ष का था, तब हमारे समाज की ऐसी स्थिति न थी, यद्यपि हम परतंत्र थे। अंग्रेज़ों के शासन और पूँजीवादी नीति के दो पाटोंवाली चक्की में पिसते हुए भी हम जीवन-मूल्यों के प्रति आस्थावान् थे।

मेरा अपना विचार है कि सन् १९३० के आस-पास हमारे देश में संस्कृत के पढ़ने-पढ़ाने का पर्याप्त प्रचार था। संस्कृत के कारण हम आचारवान् और आस्थावान् थे। हमारे देश का सम्बन्ध किसी अन्य देश से नहीं था। तब हम अपनी संस्कृति और सभ्यता के ही प्रति निष्ठावान् थे। काम और अर्थ को हेय मानते थे, धर्म को जीवन में प्रमुख और शीर्षस्थ मानते थे। आचार्य और व्यास आदि भी कथा-प्रवचनों के माध्यम से हमें हमारे ऋषियों के आचरणों की बातें बताते रहते थे। ऋषियों का जीवन हमें बताता है कि सर्जना के लिए जीवन का बीज धरती में उगता है; मख़मली कालीन पर नहीं। जीवन के अंकुर को जब स्वच्छ जलवायु मिलेगी, तभी वह फूलेगा, फलेगा। गान्धी जी आदि राष्ट्रीय नेताओं ने हमें स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए प्रेरित कर दिया था। हमारी सारी शक्ति सामूहिक रूप से देश की आज़ादी के लिए लग गयी थी। पूरी तरह से हम उच्च लक्ष्य की ओर ही उन्मुख थे।

सन् १९४७ ई० में देश स्वतंत्र हुआ। हमें सत्ता मिली। अन्य स्वतंत्र और भौतिकवादी देशों से संपर्क हुआ। हमारे देश के शासक भारतीय आदर्शमयी राजनीति भूल गये। प्रजा को न देखा, स्वसुख देखा। कौटिल्य को भूल बैठे। कौटिल्य ने कहा था—प्रजा-सुखं सुखं राज्ञः, प्रजानां च हितं हितम्। नात्मप्रियं प्रियं राज्ञः, प्रजानां तु प्रियं प्रियम्॥ (कौटिल्य अर्थशास्त्र १/१९) विदेशियों की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोगवादी संस्कृति और सभ्यता से हमारा नया परिचय हुआ। भूखा व्यक्ति जैसे षट् रस व्यंजनों की थाली पर टूटता है, हम भी टूटे। विदेशों की सभ्यता को उच्च मानकर उसे अपनाने में गौरव अनुभव करने लगे। विदेशियों की भाँति जीवन का चरम लक्ष्य पैसा बन गया। पश्चिम की वायु से चार प्रकार के झोंके भारत को मिले हैं—(१) **विलासिता** (२) **स्वार्थपरता** (३) **अहंवादिता** (४) **भौतिकवादिता**। भौतिकवादी दृष्टि ने जीवनमूल्य समाप्त-से कर दिये। पद और पैसे के लिए हम बिकने लगे और चमचागीरी करने लगे। हमारे समाज ने भी धनपति को बहुत आदर-सम्मान देना प्रारम्भ कर दिया। हम धनपति के धन की ओर देखकर धनपति को प्रतिष्ठा देने लगे। यह न देखा कि उसने वह धन कितने और कैसे घृणित एवं पापपूर्ण शोषक साधनों से कमाया है? ज्ञानी, सच्चे तथा सदाचारी व्यक्ति उपेक्षित हो गये। उनकी कोई पूछ न रही। शिक्षा की विदेशी पद्धति में आचार और कर्तव्य के लिए कोई स्थान नहीं है। अतः हमारा समाज पथ-भ्रष्ट हो गया। समाज और साहित्य में आदर्शवाद के स्थान पर यथार्थ का बोलबाला हो गया। सिनेमा ने आचार-संहिता पर पानी फेर रखा है।

भारतवर्ष की जनसंख्या बहुत बढ़ गयी है। रोज़गार लोगों को मिल नहीं पाता। मनुष्यों की तो बात ही क्या है, स्त्रियाँ भी चोरी करने लगी हैं। चोरी और सेंधमारी में महाराष्ट्र की स्त्रियाँ सबसे अधिक प्रतिशत में गिरफ्तार हुई हैं। दरिद्रता तथा साधनहीनता भी चरित्रहीनता का कारण बनी है। बेरोज़गारी का कुपरिणाम यह हो रहा है कि स्त्रियों में भी धोखा-धड़ी और विश्वासघात बढ़ रहा है। अब स्त्रियाँ भी डकैती में हिस्सा ले रही हैं। विलासवेशिनी कॉल-गर्ल्स तो ख़ूब हैं।

अब प्रत्येक मनुष्य ने यह दृष्टिकोण अपनाया है कि येन-केन प्रकारेण धन कमाना चाहिए। यदि धन होगा, तो हमें प्रतिष्ठा भी मिलेगी और जीवन का सुख-भोग भी प्राप्त होगा। कुत्तों और बिल्लियों से प्यार करनेवाला आज का मनुष्य अपने साथी मनुष्य से क्या हमदर्दी रखेगा?

मैंने तो आज के समाज में ऐसे मनुष्य भी देखे हैं, जो अपनी पदोन्नति के लिए अपनी पत्नियों को अपने अधिकारियों के घर भेजते हैं और समाज में अपने को **अत्याधुनिक** और सफल कहते हैं। अफसर लोग बड़े आदमी कहलाये जाने के लिए ख़ूब रिश्वत लेते हैं, शराब पीते हैं और जुआ भी खेलते हैं। आज बड़ा प्रोफ़ेसर वह है, जो पढ़ता बिलकुल नहीं, जो राजनीति का सक्रिय पंडित है और जिसके सैकड़ों शिष्य व्यक्तिगत सेवा-शुश्रूषा के लिए सदैव उसके सामने खड़े रहते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके वे शिष्य बिना पढ़े-लिखे ही प्रथम श्रेणी भी प्राप्त कर लेते हैं; और अधीती एकान्त सेवी शिष्य द्वितीय श्रेणी में भी मुश्किल से उत्तीर्ण हो पाते हैं। ऐसी स्थिति में भावी शिष्य अपने जीवन में क्या सिद्धान्त अपनाएँगे—यह आप स्वयं समझ सकते हैं। मैं अधिक क्या कहूँ ?

अकर्मण्य और बेईमान लोगो को दण्डित भी नहीं किया जाता। कर्मठ और ईमानदार को उचित सम्मान भी नहीं दिया जाता। सच्चरित्र एवं कर्तव्य-निष्ठ का कोई समुचित मूल्यांकन भी नहीं करता। चाटुकारी पुरस्कृत हो रही है, इसलिए बढ़ रही है।

जब तक भौतिकवाद और भौतिकवादी का आदर समाज में होता रहेगा, तब तक यही दशा रहेगी। अर्थोन्मुखी दृष्टि हमें सदा गिराती रहेगी। सदाचार ही धर्म है। धर्मोन्मुखी दृष्टि ही हमें उठा सकती है।

चाटुकारी और अनास्था के जीवन का मूल कारण मैंने निवेदन कर दिया। आप दिल्ली जैसी महानगरी में रहते हैं। मनुष्यों के रूपों को देखते भी होंगे। मेरी राय में यह वर्तमान सामाजिक स्थिति शीघ्र न बदल पाएगी। हर्ष है आप सानन्द हैं। सस्नेह,

श्री ईश्वरचन्द्र जी, आपका
राजपाल एण्ड संस, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
पो०, ब० १०६४, कश्मीरीगेट, दिल्ली–११०००६

श्री सोनपाल शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक १४. ६. १९७८ ई०

प्रिय श्री शर्मा जी,

आपने लिखा है कि प्राचीन काल में राजाओं का यशोगान करने वाले **बंदी**, **मागध** और **सूत** होते थे। उनमें क्या अन्तर था ?

बंदी, **मागध** और **सूत** तीनों प्रकार के यशोगायक वर्णसंकर होते थे।

बंदी का पिता क्षत्रिय और माता शूद्र होती है। **मागध** का पिता वैश्य और माता क्षत्रिय होती है। **सूत** का पिता क्षत्रिय और माता ब्राह्मण होती है। सारांश यह है कि बंदी को अनुलोम विवाह का परिणाम, और मागध तथा सूत को प्रतिलोम विवाह का परिणाम समझना चाहिए। कुन्ती के पुत्र कर्ण का पालक पिता **अधिरथ** जाति से सूत था। कर्ण को **'अधिरथ-सुत'** भी कहा गया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ण-व्यवस्था की दृष्टि से सूत का दर्जा ऊँचा होता है। आज-कल राय-भाट नाम की जातियाँ उत्तर भारत में पायी जाती हैं। इन्हें सूतों के वंशज समझना चाहिए। राय-भाट भी ब्याह-शादियों में वर-पक्ष का गुण-गान किया करते हैं। ये जातियाँ अब अपना वर्ण ब्राह्मण बतलाती हैं।

जनकपुरी में पिनाक नामक धनुष के टूटने पर बंदी, मागध और सूत यशोगान करने लगे थे—इसका उल्लेख तुलसीदास जी ने किया है—

बंदी मागध सूत गन, बिरुद बर्दाहं मतिधीर।
करहिं निछावरि लोग सब, हय गय धन मनि चीर।।

—(रामचरितमानस, बाल० २६२/—)

हर्ष है आप सानंद हैं। बच्चों को प्यार। आप बम्बई जाने का पुरोगम कब बना रहे हैं? सस्नेह,

श्री सोनपाल शर्मा, एम० ए०
प्रवक्ता, भूगोल,
गोपीराम पालीवाल इन्टर कालेज, अलीगढ़।

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री मुंशीलाल जैन के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१
दिनांक २४-६-७८ई०

प्रिय बन्धु मुन्शीलाल जी,

जय जिनेन्द्र !

आपका पत्र पढ़कर प्रसन्नता हुई। आपने **'धर्म'** को बहुत व्यापक रूप से जानने की जो इच्छा प्रकट की है, उससे आपके सुविस्तृत मानवीय दृष्टिकोण की झलक मिली। आपका मूल प्रश्न है कि **वह 'मानव-धर्म' क्या है, जिसे विश्व भर के मनुष्य स्वीकार कर सकें और जिसमें किसी के लिए अमान्य तत्त्व न हो?**

भाई! प्रायः आज-कल मनुष्य **धर्म** को परलोक, आत्मा तथा परमात्मा से जोड़े रहते हैं। परलोक में आनन्द कैसे मिलेगा, मोक्ष की प्राप्ति कैसे होगी, आत्मा एवं परमात्मा का स्वरूप क्या है और कैसा है, संसारी जीव शुद्धात्मा कैसे बन सकता है, आदि बातों पर कुछ समय विचार कर लेना ही मनुष्यों ने धर्म-पालन मान लिया है। इतना ही नहीं, धर्म एक प्रदर्शन भी बनता जा रहा है। आर्यसमाजी अपना हवन और सनातन धर्मी अपना मानस-पाठ लाउडस्पीकर लगाकर करता है। मुहल्ले को अपनी धर्म-भावना दिखाता है; दिखावा करता है; विज्ञापन करता है और दूसरों की नींद हराम करता है। हम लोग धर्म का सम्बन्ध

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने दैनिक विचार और कर्म से नहीं मानते। हम नौकरी में किसी तरह भी पैसा कमाएँ, व्यापार में किसी प्रकार की चोर-बाज़ारी करें, वकालत में कैसा भी असत्य व्यवहार करें, डाक्टरी में रोगी से कितना भी पैसा ऐंठते रहें और किसी ग़रीब का कितना भी शोषण करें; लेकिन मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर, गुरुद्वारे आदि में जाकर कुछ समय प्रार्थना, अर्चन, वंदन आदि ऊपरी मन से कर लें, तो हम धर्म का पालन करते हैं; हम धर्मात्मा हैं। यह धारणा प्रायः लोगों के मन में घर कर गयी है।

मंदिर, मस्जिद, गिरिजा, गुरुद्वारा आदि में जो धर्म दृष्टिगोचर होता है, वह धर्म नहीं, धर्म का दिखावा है, रस्म-अदायगी है। हम लोभी, लालची, कामी बने हुए धर्मात्मा का नाटक खेलते हैं। आज जिस धनाढ्यता की ओर हम दौड़ रहे हैं, उसकी चौंध से हमें धर्म दिखाई नहीं पड़ता। उपनिषद्कार ने कहा भी है कि सत्य का मुँह सोने के ढक्कन से बंद है—**हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्**—(ईशावास्य उपनिषत्, मं० १५)

प्रिय भाई मुन्शीलाल जी! उपर्युक्त क्रियाकलापों में यदि मन, वचन और कर्म की शुद्धता-पवित्रता नहीं है, तो निश्चित ही वे क्रियाकलाप 'धर्म' नहीं, 'पाप' हैं। धर्म वस्तुतः शुद्धाचरण का ही दूसरा नाम है। जो वैद्य या डाक्टर ईमानदारी से अर्थात् सच्ची निष्ठा से रोगी का इलाज करता है, रोग के निदान में सच्ची राय देता है और रोगी को अपने-जैसा मानते हुए रोग-निवारण में संलग्न रहता है, वह भजन-पूजन न करने पर भी धर्मात्मा है। जो किसान अपने कृषि-कर्म में सत्य, निष्ठा और ईमानदारी से परिश्रम करता है; जो किसान अन्न उगाने में प्रचण्ड मार्तण्ड की तपन की, और शीत, वर्षा, आँधी और ओलों की परवाह न करते हुए खेत में अन्न उगाता रहता है और पशुओं को अपनी प्यारी सन्तान-सा समझता है, वह शास्त्रहीन या निरक्षर होते हुए भी **धर्मात्मा** है। उसका वह कृषि-कर्म सामान्य कर्म नहीं है; वह वास्तव में हवन है, यज्ञ है, पूजा है, नमाज़ है, प्रार्थना है और आरती है। वह किसी भी युधिष्ठिर से धर्माचरण में कम नहीं है। आप उस किसान में ईश्वर या शुद्धात्मा के दर्शन कर सकते हैं।

सच्चे मन और सच्ची वाणी से संयुक्त सच्चा कर्म ही **धर्म** है। इसीलिए **सत्य, सेवा, दया, प्रेम** आदि **मानव-धर्म** के मूल तत्व माने गये हैं। जो मनुष्य इन तत्त्वों को कर्म द्वारा साकारता प्रदान करता है, वही सच्चा धर्मात्मा है। उसी के क्रियाकलाप **विश्वधर्म** हैं या **मानवधर्म** हैं। इस मानवधर्म को सभी स्वीकार करेंगे, चाहे कोई ईश्वरवादी हो, या अनीश्वरवादी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप जैन हैं। जैन धर्म में जीवन के लिए तीन ही रत्न हैं। (१) **सम्यक् दर्शन** (२) **सम्यक् ज्ञान** (३) **सम्यक् चारित्र्य**। इन तीनों में तीसरा ही प्रमुख है। **चारित्र्य** का अर्थ है **कर्म** अर्थात् जीवन भर सत्कर्म करना। इसी में सच्चे मानवधर्म का बीज संनिहित है। पहले दो तो तीसरे की पृष्ठभूमि मात्र समझिए; क्योंकि इच्छा होने पर ही हम कुछ सीखेंगे और सीख जाने पर ही उसे करेंगे। इसीलिए पहला **दर्शन** = Wish, दूसरा **ज्ञान** = Konowledge और तीसरा **चारित्र्य** = Action।

मेरी दृष्टि में सत्य, सेवा, दया, प्रेम आदि के साथ सत्कर्म करना ही **मानवधर्म** है। इसीसे मानव का, देश का और विश्व का कल्याण हो सकता है।

जब आप कभी जैन मन्दिर के प्रांगण में अहिंसा भाव से, सच्चे और सहज मन से साफ़ बात करते हैं, तो तब वह वाणी **मानवधर्म** का एक अंग ही होती है। उससे प्रायः सभी का मन प्रसन्न होता है। **मानवधर्म** सबको ग्राह्य है और होगा। हर्ष है आप सानंद हैं।

श्री मुंशीलाल जी जैन, आपका
दर्शन भवन, अचलताल, अलीगढ़। अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री दामोदरदास जैन के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ २०२००१

प्रिय श्री दामोदरदास जी जैन, दिनांक १२. ७. १९७७ ई०

जय जिनेन्द्र !

आपका जिज्ञासात्मक प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। आपके पत्र की भाषा से यह मालूम पड़ता है कि आप मुख्य रूप से यह जानना चाहते हैं कि **आत्मा के सम्बन्ध में जिस प्रकार की अवधारणा जैन-दर्शन में है, वैसी अवधारणा हिन्दू-दर्शनों में कहाँ मिलती है? अनन्त संख्या में आत्माओं को कौनसा दर्शन मानता है?**

बन्धुवर जैन साहब, **जैन-दर्शन** के अनुसार अस्तित्वकाय (द्रव्य) दो प्रकार के हैं—(१) **जीव** (२) **अजीव**। जीवों के दो मुख्य भेद हैं—(१) **मुक्त जीव** (२) **बद्धजीव**। लेश्याओं (कर्मबन्धनों) के कारण जीव बद्धावस्था में रहता है। जीव का पुद्गल में निवास करना ही, उसकी बद्धावस्था का सूचक है। मुक्तजीव को आत्मा समझना चाहिए। आत्माएँ अनन्त संख्यक हैं। जीव-अजीव असंख्य हैं। आत्माओं का गुण (नित्य धर्म) चैतन्य है। आत्माओं का पर्याय (अनित्य धर्म) विचार विशेष तथा इच्छाएँ हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा और प्रकृति की अवधारणा में जैन-दर्शन हिन्दुओं के सांख्य दर्शन से मेल खाता है। सांख्य दर्शन में पुरुष और प्रकृत्ति अनादि हैं। **पुरुष** को आत्मा समझना चाहिए। **सांख्य** के अनुसार अनेक पुरुष अर्थात् आत्माएँ हैं। प्रकृति अर्थात् साम्यावस्थावाली प्रकृति से उत्पन्न विकृति (बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ, पंच-तन्मात्राएँ, पंचमहाभूत आदि) संसार की सृष्टि एवं आविर्भाव ही है। सृष्टि निराकार प्रकृति की विकृति है। आत्माएँ असंख्य हैं और निराकार-साकार प्रकृति भी अनादि है। गीता कहती है—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः —(गीता अ० २/१६)

अतः यह निश्चित रूपेण कहा जा सकता है कि आत्मा और अजीव के सम्बन्ध में जैन दर्शन और सांख्य दर्शन बहुत मिलते-जुलते हैं। आपकी श्रीमती जी तो जैन धर्म और जैन दर्शन में बहुत रुचि रखती हैं। महिलाओं में नेतृत्व भी करती हैं। हर्ष है आप सपरिवार सानंद हैं।

श्रीं दामोदरदास जी जैन शुभैषी
राजेन्द्र मैटल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़ अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री श्यामसुन्दर वार्ष्णेय के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ २०२००१

प्रियवर श्यामसुन्दर वार्ष्णेय, दिनांक १८. ७. ७८ ई०

आशीर्वाद !

पत्र में तुमने मुझसे **मेरे जीवन की परम करुणाजनक घटना जानने के लिए लिखा है**। मैं उस घटना को संक्षेप में तुम्हें लिखकर भेज रहा हूँ।

बात लगभग सन् १९२७ ई० की हैं, जब मैं ११ वर्ष का बालक था और अपनी जन्मभूमि **शेखूपुर** गाँव के पास के बुढ़ाँसी नाम के कस्बे में दर्जा ४ में पढ़ा करता था। ज़िला अलीगढ़ का बुढ़ाँसी नाम का कस्बा मेरे गाँव से एक कोस की दूरी पर था। वहाँ के प्राइमरी स्कूल के प्रधान अध्यापक मुन्शी **नन्नू खाँ** थे, जो दर्जा ४ में हमें पढ़ाते थे। हमारे गाँव के दो साथी मेरे साथ ही दर्जा ४ में पढ़ा करते थे। उनमें बड़े साथी का नाम **शंकरपालसिंह** और छोटे का **पीतमसिंह** था। शंकरपाल के साथ मेरी गहरी दोस्ती थी। शंकरपाल, पीतम और मैं प्रायः साथ-साथ अंकगणित के सवाल हल किया करते थे। हम तीनों के साथ एक मित्र और थे, जिनका नाम राजबहादुर था, जो जाति के कायस्थ थे, और **खरई** गाँव (**शेखूपुर** के निकट) में अपने फूफीजात बड़े भाई ज्वालाप्रसाद जी के पास रहा करते थे। **श्री ज्वालाप्रसाद** के दो सहोदर भाई थे,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनके नाम **बद्रीप्रसाद** और **कामताप्रसाद** थे। ये दोनों भाई भी पटवारी थे। ज्वालाप्रसाद खरई और उसके आस-पास के गाँवों के पटवारी थे। उन दिनों गाँव में पटवारी का बड़ा रुतबा होता था। बड़े-बड़े ज़मीदारों को उसकी बात सरकारी हुक्म की तरह माननी पड़ती थी। **श्री ज्वालाप्रसाद** और उनके दोनों भाई अंकगणित में होशियार थे। हमारे हेडमास्टर मुंशी नन्नू खाँ अंकगणित की जितनी प्रश्नावलियाँ हमें घर पर हल करने के लिए देते थे, उन्हें हम खरई जाकर अपने साथी राजबहादुर के साथ हल किया करते थे। जो सवाल हमसे नहीं आते थे, उन्हें **श्री कामताप्रसाद** जी हल करके हमें समझाते थे। शंकरपालसिंह और पीतमसिंह भी मेरे साथ सवाल हल करने के लिए छुट्टियों में खरई जाया करते थे।

हम तीनों (शंकरपाल, पीतम और मैं) सहपाठी छुट्टी के दिन प्रायः ८ बजे खरई चले जाते थे और दोपहर के बाद ३-४ बजे तक अंकगणित के सवाल हल किया करते थे। कामताप्रसाद हमारी सहायता सवाल निकलवाने में बहुत किया करते थे। लम्बी प्रश्नावली होती थी, तो हम प्रातः लगभग ७ बजे ही 'खरई' चले जाते थे। दोपहर हो जाने पर दो-एक दिन तो कामताप्रसाद जी ने हम तीनों सहपाठियों को दोपहर का भोजन अपने घर ही कराया था।

दर्जा ४ पास करने के बाद हम लोगों का 'खरई' जाना बन्द-सा हो गया। शिक्षा की नाव जीवन-सागर में चलती रही। सन् १९५७ ई० में मैं हिन्दी-अध्यापक होकर अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग में सेवा-कार्य करने लगा। तब मैं कृष्णापुरी, अलीगढ़ में श्री बाबूलाल जैन के छोटे भाई मा० रामस्वरूप जैन के एक मकान में किरायेदार के रूप में रहा करता था। मोहल्ला कृष्णापुरी खिरनीगेट के पास है और उसके पास ही हाथरस का अड्डा है।

एक दिन मैं प्रातः की जनता गाड़ी से दिल्ली जानेवाला था। अतः प्रातःकाल के अँधेरे-से में मैं छोटी-सी अटैची लेकर खिरनीगेट आया और अलीगढ़ रेलवे स्टेशन के लिए रिक्शा तलाशने लगा। थोड़ी देर में एक रिक्शा हाथरस के अड्डे से खिरनीगेट की ओर आता हुआ मुझे दिखायी दिया। उस रिक्शे का चालक मैला और कुछ फटा-सा पायजामा पहने हुए था, और शरीर पर मैली फटी हुई कमीज़ थी। रिक्शापुलर का मुँह अँधेरे के कारण मुझे साफ़-साफ़ नहीं दीखा था। रिक्शा चालक ने बड़े अदब से विनयभरी वाणी में मुझसे कहा "चलिए, हुज़ूर ! मैं आपको अभी स्टेशन पहुँचाता हूँ। आपकी ही बोहनी कर रहा हूँ। आप जी चाहे, वह दे दीजिए; कोई हुज्जत न होगी। आप जो कुछ देंगे, उसे सिर-माथे लूँगा। ज़िन्दगी के बुरे दिन तो इन्सान को काटने ही पड़ते हैं। राजा नल पर तो बुरे दिन १२ साल तक रहे थे।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने किसी हिन्दू रिक्शाचालक की वाणी में ऐसी मिठास, विनय और शील न देखा था। मैं प्रभावित हुआ और नाम तथा गाँव पूछने लगा। प्रश्न के उत्तर में चालक ने बताया—"हुज़ूर, मुझे **कामता** कहते हैं। मैं बुढ़ाँसी के पास के एक गाँव खरई का रहनेवाला हूँ।"

कामता नाम और **खरई** गाँव सुनकर मैं रिक्शा चालक के मुँह को बहुत ग़ौर से देखने लगा। बड़ी-बड़ी मूँछों और दाढ़ी में ढके हुए मुँह को एक मिनट देखने पर मुझे मालूम हुआ कि वह 'कामता' नहीं था। वह हमें अंकगणित के सवालों में सहायता पहुँचानेवाले और हमें स्नेह प्रदान करनेवाले श्री ज्वालाप्रसाद पटवारी के छोटे भाई **श्री कामताप्रसाद** थे, जिन्हें बड़े सम्मान से सारी 'खरई' **लाला कामताप्रसाद जी** कहती थी और आस-पास के अच्छे-अच्छे ज़मीदार पटवारीपन के रुतबे के कारण जिनकी चौखट पर सिजदा किया करते थे।

तब एक क्षण में मेरे मानस-पटल पर सन् १९२७ ई० के खरई गाँव का पूरा दृश्य घूम गया। मैं अपना बचपन का नाम **अम्बे** और गाँव का नाम **शेखूपुर** बताते हुए **श्री कामताप्रसाद** जी से लिपट गया, और फूट-फूट कर रोने लगा। मैंने हाथ जोड़कर क्षमा माँगी और निवेदन किया कि "बाबू कामता-प्रसाद जी ! मैं आपके रिक्शे में नहीं जाऊँगा। चूँकि मैंने आपके रिक्शे में सामान रख दिया है; मेरे द्वारा बोहनी हुई है आपकी; इसलिए मेरे ऊपर कृपा करके यह दस रुपये आप मुझसे ले लीजिए। इससे किंचित् संतोष-सा मुझे हो जाएगा; वैसे मैं आपके कृपापूर्ण स्नेह से तथा अंकगणित के प्रश्नों में की हुई सहायता से कभी उऋण नहीं हो सकता।"

बाद में प्रभु ने श्री कामताप्रसाद जी की सुन ली। औखा के दिन बीते और फिर उन्हें एक चुंगी में मुंशीगीरी मिल गई।

मैं अपने जीवन की इस दर्दभरी घटना को, जो खिरनी गेट पर प्रातः ४ बजे घटी थी, और श्री कामताप्रसाद जी के मुख से जो 'कामता' नाम सुना था, उसे कभी नहीं भूल सकता। जीवन के उत्थान-पतन पर विचार करते-करते जब वह घटना मुझे याद आ जाती है, तब कुछ क्षणों के लिए मेरा अश्रुपात अब भी होने लगता है।

विधि का विधान विचित्र है। भविष्य भावी के गर्भ में निहित है। सुख के दिनों में मदोन्मत्त न होना चाहिए। **चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च।** सुख के दिनों में गर्व, मद आदि इसलिए व्यर्थ है कि आगे दुःख ही आएगा। दुःख में दुःखी और निराश भी इसलिए नहीं होना चाहिए कि आगे सुख आएगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियवर, तुम्हारा व्यापार कैसा चल रहा है ? सदा "सीयराम मय सब जग जानी" का पारायण करते हुए सच्चे मन से तुम्हें जनता-जनार्दन की सेवा करनी चाहिए ।

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचन-द्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ।।

मानस में तुलसीदास जी ने भी लिखा है—

परहित सरिस धर्म नहिं भाई ।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ।। (उत्तर० ४१/१)

प्रसन्नता है कि तुम सपरिवार सानंद हो । बच्चों को प्यार तथा आशीर्वाद !
मंगलायतनं हरिः

यदि तुम अपने भाई साहब **डा० रामावतार वार्ष्णेय** को बगदाद निकटतम भविष्य में पत्र लिखो, तो उन्हें और सौभा० बेटी मीना को मेरा आशीर्वाद लिख देना । बच्चों को प्यार ।

श्री श्यामसुन्दर वार्ष्णेय,
द्वारा—श्री हजारीलाल वार्ष्णेय, शुभैषी
गली कालिया (सत्यनारायण का मंदिर) अम्बाप्रसाद 'सुमन'
मानिक चौक, अलीगढ़—२०२००१

श्री पदमचन्द जैन 'भगत जी' के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक १. ८. ७८ ई०

बन्धुवर श्री भगत जी,

सप्रेम जय जिनेन्द्र !

खिरनीगेट मोहल्ले के जैन-मंदिर के प्रांगण में कल रात्रि (लगभग आठ बजे) को जब हम लोग बैठे वार्तालाप कर रहे थे; तब भक्ति, आत्मा और ब्रह्म के सम्बन्ध में आपसे काफ़ी विचार–विनिमय हुआ था । तब मैंने आपसे निवेदन किया था कि आत्माओं की अनन्त संख्या के सम्बन्ध में जैनदर्शन और सांख्यदर्शन मिलते हैं । दोनों ही आत्मा और प्रकृति को अनादि मानते हैं । उसी वार्तालाप-श्रृंखला में आपने **शून्यवाद** की अवधारणा जानने की इच्छा से मुझसे प्रश्न किया था कि **शून्यवाद** क्या है ?

जहाँ तक मैं थोड़ा-बहुत समझा हूँ, उसके अनुसार आपको पत्र के माध्यम से लिख भेज रहा हूँ । यदि बात स्पष्ट न हो, तो फिर कभी बैठकर विचार करेंगे—"वादे वादे जायते तत्त्व-बोधः ।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शून्यवाद बौद्ध दर्शन का दार्शनिक वाद है। **शून्यवाद** के प्रवर्तक नागार्जुन थे और 'बुद्धचरित' के प्रणेता अश्वघोष भी **शून्यवाद** के समर्थक थे। नागार्जुन ने अपने ग्रंथ 'माध्यमिक शास्त्र' में 'शून्यवाद' का पाण्डित्यपूर्ण विवेचन किया है।

शून्यवाद में शून्य का अर्थ है सूना, रिक्त, अस्तित्वरहित आदि। प्रत्यक्ष जगत् जो हमें दिखलाई पड़ता है, वह वास्तव में कुछ नहीं है। यह सब असत्य है, क्षणिक है, परिवर्तनशील है और नाशवान् है। यदि कोई व्यक्ति रस्सी को साँप समझ लेता है, तो तब वहाँ (उसके मन में) साँप का अस्तित्व बिलकुल असत्य है। ठीक उसी प्रकार दृष्टिगत जगत् साँप की भाँति अस्तित्वहीन है, सर्पाभास शून्यता है। बौद्ध दर्शन की यह शून्यता शंकर के अद्वैतवाद के मिथ्या जगत् से कुछ-कुछ हल्का-सा मेल खाती है।

बौद्ध दर्शन के प्रसिद्ध पंडित **नागार्जुन** यह मानते हैं कि जगत् से परे पारमार्थिक सत्ता अवश्य है। वह साधारण लौकिक विचारों के द्वारा अवर्णनीय है। अतः वह पारमार्थिक सत्ता भी शून्य है। पारमार्थिक सत्ता वर्णनातीत होने के कारण शून्य मानी गयी और संसार की वस्तुएँ भ्रान्तिमूलक आभास-मात्र होने के कारण शून्य हैं। अतः प्रत्यक्ष जगत् भी शून्य, और पारमार्थिक सत्ता भी शून्य। अर्थात् प्रत्यक्ष और परोक्ष—दोनों ही शून्य। यह सिद्धान्त बौद्ध दर्शन में **शून्यवाद** कहलाया।

पारमार्थिक सत्ता (शून्यरूप सत्ता) सत्य है। उस सत्य की प्राप्ति निर्वाण में ही हो सकती है। निर्वाण की अवस्था साधारण व्यावहारिक अवस्था से बिलकुल भिन्न है। निर्वाण प्राप्त करने पर मनुष्य साधारण व्यावहारिक अवस्था से मुक्त हो जाते हैं। उन मनुष्यों का हम नकारात्मक वर्णन ही कर सकते हैं। निर्वाण वह अवस्था है, जिसका विनाश नहीं है, जो विरुद्ध नहीं है और जो उत्पन्न भी नहीं है। निर्वाणावस्था में जो सत्यानुभूति होती है, वह केवल अनुभव है। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उस अनुभूति को प्राप्त करनेवाला 'तथागत' कहलाता है। बुद्ध जी से पूछा गया था कि निर्वाण-प्राप्ति के समय अथवा निर्वाण-प्राप्ति के बाद 'तथागत' की क्या गति होती है? इसके उत्तर में बुद्ध जी मौन रहे; बोले नहीं। सारांश यह कि पारमार्थिक सत्य की अनुभूति वर्णनातीत है; शून्यवत् है। यही सब कुछ 'शून्यवाद' है।

जितना मैंने बुद्धि से समझा, आपसे निवेदन कर दिया। यदि और अधिक विवेचन और व्याख्या अभीष्ट हो, तो कभी पूज्यवर **महाराजश्री उपाध्याय मुनि विद्यानंद जी** से भी मालूम करें। सुयोग मिला, तो कभी मैं भी उनसे 'शून्यवाद' पर विचार-विनिमय करूँगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी कुछ कविताएँ तो बड़ी सुन्दर बन पड़ी हैं। वास्तव में वे आपने बनायी नहीं; आपसे बन गई हैं। लोक-धुनों में आपकी आरतियाँ मन को बरबस अपनी ओर खींच लेती हैं। इस अवस्था में भी आपके कंठ में बहुत माधुर्य है। हार्दिक बधाई ! शेष फिर कभी सम्मिलन के क्षणों में। सस्नेह,

श्री पदमचन्द जैन 'भगत जी', आपका
पी० पी० प्रोडक्ट्स, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
खिरनी गेट, आगरा रोड, अलीगढ़—२०२००१

डा० राजेन्द्रप्रसाद वर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ २०२००१
प्रियवर राजेन्द्र, दिनांक ५–८–१९७८ ई०

आशीर्वाद !

तुम्हारा दिनांक ३–८–७८ का पत्र मिला। प्रिय भाई श्यामसिंह जी 'शशि' तो आजकल अपने भवन-निर्माण में व्यस्त होंगे। तुम्हारे पत्र का आशय यह प्रतीत होता है कि **मृत्यु के बाद आत्मा का अस्तित्व रहता है या नहीं ? और आत्मा के अस्तित्व में विश्वास रखने, या न रखने से व्यक्ति के लौकिक आचरण पर क्या प्रभाव पड़ता है ?** इसका उत्तर देकर कृपया अनुगृहीत करें।

'**आत्मा**' के सम्बन्ध में मैं यहाँ जो कुछ भी लिख रहा हूँ, उसका आधार हमारा औपनिषदिक साहित्य है। गीता जन्मान्तरवाद का समर्थन करती है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन ! पहले मेरे और तेरे अनेक जन्म हो चुके हैं। भगवान् कहते हैं—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन !
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ।। (गीता ४/५)

'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि···' कहकर गीता आत्मा का अस्तित्व एवं अमरत्व व्यक्त करती है।

एक प्रसिद्ध उपनिषद् है, जिसका नाम है **छान्दोग्य उपनिषद्**। इसमें राजा **प्रवारण जैबलि ने उद्दालक मुनि** से ठीक वैसा ही प्रश्न किया है, जैसा तुमने मुझसे किया है। मुनि **उद्दालक** ने **जैबलि** को मृत्यु के पश्चात् आत्मा के सम्बन्ध में जो कुछ बताया है, उसका सार मैं तुम्हें लिख रहा हूँ।

निष्काम सत् कर्म करनेवाले जीव ऊर्ध्व लोकों को देवयान मार्ग से जाते हैं और मुक्ति के अधिकारी होते हैं। वे (आत्मा के रूप में) आवागमन के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः—गीता ३/२० ।

जो जीव सकाम सत्कर्म करते हैं, वे पितृयान मार्ग से दिव्य लोकों में आनन्द का उपभोग करते हैं ।

जो सत्कर्मों का परित्याग कर देते हैं और क्रूर कर्म करते हैं, वे अधोमार्ग पर अग्रसर होते हैं और इसी पृथ्वी पर कीट, पतंगे आदि बने फिरते हैं ।

गीता (१४/१८) में भी कहा गया है कि सत्त्वस्थ ऊर्ध्व लोकों को जाते है, राजस् मध्यलोक अर्थात् मनुष्य-योनि में रहते हैं और तामस अधोगति (पशु, कीट आदि की योनि) पाते हैं—**अधो गच्छन्ति तामसाः** (गीता १४/१८) ।

सकाम सत्कर्मवाले प्राणियों की आत्मा मृत्यु के पश्चात् सूक्ष्म शरीर से धूम में, और धूम से रात्रि में जाती है। रात्रि से कृष्णपक्ष में, फिर दक्षिणायन सूर्य के मार्ग से मास में, मास से फिर लोक में और तत्पश्चात् लोक से चन्द्रलोक में जाती है। फिर नियत समय तक फलभोग करके आकाश में चली जाती है। आकाश से वायु में, वायु से धूम में, धूम से मेघ में और मेघ से वनस्पति में चली जाती हैं। वनस्पति (अन्नादि) से मनुष्यों के वीर्य में और फिर वीर्य से माता के गर्भ में प्रवेश करके फिर संसार में लौट आती हैं। जन्म-जन्मान्तर में ऐसा ही चक्र चलता रहता है ।

छान्दोग्य उपनिषद् का उपर्युक्त जन्मान्तर-विवरण एक प्रकार से गीता के निम्नांकित श्लोक की ही व्याख्या है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा न्यन्यानि संयाति नवानि देही ।।
—(गीता २/२२)

आत्मा के इस उक्त चक्र से उसका अमरत्व सिद्ध हो जाता है । छान्दोग्य उपनिषद् में उद्दालक मुनि ने जो कहा है, उसमें कुछ पारिभाषिक शब्द आये हैं—जैसे 'रात्रि', 'मास', 'कृष्णपक्ष' आदि । इनका वास्तविक अर्थ क्या है ? इसे मैं फिर कभी दूसरे पत्र में बताऊँगा । इस समय इतना ही ।

आज-कल तुमने ऐसे बालकों को देखा होगा, जो अपने पूर्व जन्म की बातें बताते हैं । वे सत्य भी निकलती हैं। यह जन्मान्तरवाद को सिद्ध करता है । मृत्यु के बाद आत्मा ही दूसरे स्थान में जाती है। उसे पूर्व जन्मकी की कथा कभी-कभी स्मरण रह जाती है ।

कुछ लोग ऐसे भी हैं जो आत्मा का अस्तित्व नहीं मानते, जैसे चार्वाक के अनुयायी। आत्मा का अस्तित्व न मानने से जीवन के आचरण और व्यवहार पर भी प्रभाव पड़ता है। आत्मा का अनस्तित्व मानने से कर्म-फल का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धान्त व्यर्थ हो जाता है। फिर तो मनुष्य भ्रष्टाचार, दुराचार, अत्याचार, हिंसा, असत्य, चोरी, बलात्कार आदि निर्भय होकर करता रहेगा और संसार पाप-पंकिल बन जाएगा।

हर्ष है तुम सपरिवार सानंद हो, कमलेश को आशीर्वाद। बच्चों को प्यार।

सस्नेह,

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० राजेन्द्रप्रसाद वर्मा,
डी-९५, विवेक विहार, दिल्ली–३२

डा० श्यामसिंह 'शशि' के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१ (उ० प्र०)

दिनांक ९. ८. १९७८ ई०

प्रिय भाई शशि जी,

सप्रेम मंगल कामना !

आपका दिनांक ५. ८. ७८ का पत्र मिला। प्रसन्नता है कि विवेक विहार (दिल्ली) में आपके विशाल भवन का निर्माण सम्पन्न हो गया। विवेक विहार में ही अब मैं तीन स्थानों में से कहीं भी ठहर सकता हूँ—(१) **डा० बाँकेलाल उपाध्याय** (२) **डा० राजेन्द्रप्रसाद वर्मा** (३) **डा० श्यामसिंह 'शशि'**।

आप शौक से **शशि** लिखें। यदि मैं कभी आपको **शशी** लिख जाऊँ, तो क्षमा कर दीजिए। हिन्दी की पुरानी परंपरा में उदाहरण मिलता है—

सूर सूर तुलसी ससी (सं० 'शशी' का ब्रजभाषा-रूप 'ससी'।)

आपका प्रश्न इन वाक्यों में है—"भारतीय संस्कृति में अनेक संस्कृतियों का समावेश हो गया है और कुछ समाजशास्त्रियों की धारणा है कि विशुद्ध भारतीय संस्कृति अब भारत में कहीं दिखाई नहीं पड़ती। क्या भारतीय संस्कृति को किसी सीमा-रेखा में बाँधा जा सकता है ? अथवा हम किसी 'हिपोक्रिसी' में जी रहे हैं ?"

किसी देश की **संस्कृति** से तात्पर्य है, उस देश के विचार और व्यवहार। हम ईश्वरवादी हैं। पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं। आत्मा का अस्तित्व स्वीकारते हैं। मानते हैं कि मनुष्य को कर्म का फल भोगना पड़ता है। यह बातें भारतीय संस्कृति में समाविष्ट हैं।

भारतीय संस्कृति को यदि उपमा के रूप में बतलाया जाए, तो उसे कदली-दंड (कदली-काण्ड) के समान समझना चाहिए। केले का तना एक नहीं होता, उसका निर्माण अनेक पतों से होता है। पर्त पर पर्त चढ़े रहते हैं। ठीक उसी प्रकार भारतीय संस्कृति भी कई संस्कृतियों के सम्मिलन से बनी है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय संस्कृति में वैदिक आर्य-संस्कृति, पौराणिक संस्कृति, आर्येतर संस्कृति आदि अनेक संस्कृतियों का सम्मेलन दृष्टिगोचर होता है।

महाभारत काल में **आर्य-संस्कृति** और **आर्येतर संस्कृतियों** का समागम हो गया था। पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन के विवाह आर्येतर जातियों की कन्याओं के साथ हुए थे। भीम की अन्य दो पत्नियाँ थीं—(१) **बलंधरा** (२) **हिडिम्बा**। वलंधरा से सर्वग, और हिडिम्बा से घटोत्कच नाम के पुत्रों का जन्म हुआ था।

अर्जुन की एक पत्नी **उलूपी** का पुत्र **इडावान्** और दूसरी पत्नी **चित्रांगदा** का पुत्र बभ्रुवाहन था। इतना ही नहीं; **पाण्डु** और **धृतराष्ट्र कृष्णद्वैपायन** (वेदव्यास) के वीर्य से उत्पन्न थे। **कृष्णद्वैपायन** वर्ण से ब्राह्मण थे। वे **पराशर** के पुत्र थे, अतः **पाराशर्य** कहलाते थे। **शुक्राचार्य** ब्राह्मण थे। उनकी पुत्री **देवयानी** का विवाह क्षत्रिय राजा **ययाति** के साथ हुआ था। उस समय अनेक ब्रह्मर्षियों ने क्षत्रिय-कन्याओं से विवाह किये थे। राजा **शान्तनु** ने तो एक मल्लाह की कन्या से भी विवाह किया था।

आपको यह जानकर आश्चर्य न होना चाहिए कि **जरासंध** के पिता **वृहद्रथ** नागवंशी वैश्य थे और उनके वैवाहिक सम्बन्ध **उग्रसेन** के पुत्र **कंस** से थे। **हरिवंश पुराण** इसका साक्षी है।

इससे सिद्ध है कि आज हम वर्ण-संकरता के साथ जीवन व्यतीत कर रहे हैं। हमारी भारतीय संस्कृति में द्रविड़-संस्कृति, नाग-संस्कृति, कोल-भील-संस्कृति आदि का समावेश है। विष्णु वैदिक देवता हैं, लेकिन शिव द्रविड़-संस्कृति के देवता हैं। आज हम विष्णु, शिव, शक्ति आदि सभी को मानते हैं और पूजते हैं। सिन्दूर नाग जाति की नारियों का शृङ्गार था। आज सिन्दूर हिन्दू जाति की नारियों का सौभाग्य-चिह्न बना हुआ है। सधवा हिन्दू नारियाँ माँगों में सिन्दूर लगाती हैं।

भारतीय संस्कृति कोई एक संस्कृति (इकाई के रूप में) नहीं है। अनेक संस्कृतियों का पुंजीभूत रूप है। इसे समझने के लिए केले के तने को अथवा इन्द्रधनुष को देख लेना चाहिए; बात समझ में आजाएगी। हाँ, इतना अवश्य है कि संतरे में अन्दर कई फाँके होने पर भी ऊपर से संतरा एक ही फल है। अनेक संस्कृतियों का सम्मेलन होने पर भी भारतीय संस्कृति की कुछ प्रमुख बातें (विचार, व्यवहार तथा आस्थाएँ) सर्वत्र समान हैं। वे हैं ईश्वरवादिता, आत्मा के अस्तित्व में विश्वास, कर्म-फल-भोग तथा जन्मान्तरवाद। यही विचार धारा भारतीय संस्कृति का प्राणतत्त्व है। इसे अनेकत्व में एकत्व भी कह सकते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर्ष है कि आप सपरिवार सानंद हैं। बच्चों को प्यार तथा आशीर्वाद। नव निर्मित भवन का गृह-प्रवेश-उत्सव हो गया? गृह-प्रवेश के उपलक्ष्य में 'मानस-पाठ' और 'कविता-पाठ' भी होना चाहिए। सस्नेह,

डा० श्यामसिंह 'शशि' आपका
ई-५१, विवेक विहार, दिल्ली-११००३२ अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० (श्रीमती) किरणकुमारी गुप्ता के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१
दिनांक ११. ८. ७८ ई०

प्रिय बहिन जी,

सादर सप्रेम नमस्ते।

आपका यह प्रश्न वर्तमान में मथुरा-वृन्दावन की रास-लीला को देखने के उपरान्त सहज-सा ही है कि **आज जिस रूप में रास-लीला का आधुनिकीकरण हो चुका है, वह कहाँ तक उचित एवं उपयुक्त है?**

आपके प्रश्न के उत्तर से पहले वर्तमान काल की **रास-लीला** के मूल और विकास पर संक्षिप्त रूपेण प्रकाश डालना आवश्यक है। वर्तमान रास-लीला एक प्रकार से **सांगीत, लीलानाटक** और **नाट्यरासक** परम्परा का समन्वयात्मक स्वरूप है, जो शनैः शनैः काल के प्रभाव से परिवर्तित एवं विकसित होता रहा है।

सांगीत परम्परा में आगरा की भगत-परम्परा, हाथरस की स्वाँग-परम्परा, कानपुर की नौटंकी-परम्परा, और हरियाणा-मेरठ की साँग-परम्परा समाविष्ट है। सांगीत की भाषा जनपदीय बोलियों पर आधृत है।

लोकधर्मी नाटकों में लीला-नाटक संभवतः प्राचीनतम हैं। **कंस-वध** और **बलि-बंध** नाम के नाटकों का उल्लेख हमारे नाट्यशास्त्रों में मिलता है। भागवत महापुराण में ब्रज की गोपियों द्वारा कृष्ण की लीलाओं के प्रदर्शन का उल्लेख हुआ है।

महारास करते समय श्रीकृष्ण जब गोपियों के बीच से अंतर्धान हो गये, तब कृष्ण-विरह के ताप को कम करने के लिए गोपियों ने कृष्ण-लीलाओं का अभिनय वृन्दावन में यमुनातट पर खुले मैदान में किया था। उस लीला-अभिनय में किसी प्रकार के नाटकीय उपकरण का उपयोग नहीं किया गया था। वह अभिनय इतना सहज और स्वाभाविक था कि गोवर्धन-लीला में एक गोपी की ओढ़नी से ही गिरिराज पर्वत का दृश्य प्रस्तुत किया गया था। इन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लीला-नाटकों में १५-१६वीं शताब्दियों में सगुणभक्ति के आन्दोलन के प्रभाव **से** 'रासलीला' एक मंच का रूप लेकर आयी। फिर भगवान् कृष्ण की लीलाओं का माध्यम रास-मंच बना।

अब रासक और नाट्य-रासक परम्परा पर भी विचार कर लेना चाहिए। **रासक** वास्तव में नृत्य-प्रधान और नाट्य-रासक अभिनय-प्रधान होते थे। आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में उपरूपकों की चर्चा के अन्तर्गत रासक और नाट्यरासक का उल्लेख किया है। अपभ्रंश में 'रासक' बहुत मिलते हैं। अब्दुर्रहमान के 'संदेशरासक' का 'रासक' शब्द उस आदि 'रासक'-परम्परा का सूचक है! मूलतः रासक एक नृत्य ही था। शंकर ने 'रासक' के सम्बन्ध में लिखा है कि जब आठ, सोलह या बत्तीस स्त्रियाँ मंडलाकार रूप में नृत्य करें, तब वह नृत्य '**रासक**' कहलाता है। शंकर अपने श्लोक में जान-बूझकर **नृत्त** शब्द लिखते हैं, **नृत्य** नहीं; **नृत्त** ताल-लय पर आश्रित था।

अष्टौ षोडश द्वात्रिंशद् यत्र नृत्यन्ति नायिकाः।
पिंडीबद्धानुसारेण तन्नृत्तं रासकं स्मृतम्॥ (शंकर)

इस सम्बन्ध में डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल ने पर्याप्त प्रकाश डाला है। 'हर्षचरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन' उसके लिए उत्तम, सारगर्भित एवं पंडित-पठनीय ग्रंथ है। वह शोध रूपी वृक्ष का **सार** है। **सार** शब्द को मैं यहाँ जान-बूझकर प्रयुक्त कर रहा हूँ।

यही **रासक** संस्कृत-ग्रंथों में **रास** नाम से भी व्यक्त किया गया। भागवत में कहा गया है कि दो-दो गोपियों के बीच में एक कृष्ण का नाचना 'रास' है—

रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमंडलमंडितः।
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः॥

—(भागवत १०/३३/३)

'सरस्वती कंठाभरण' में भोज ने भी 'रास' का उल्लेख किया है। उसने तालबन्ध के साथ विशेष नृत्य को 'रास' कहा है, जिसमें एक पुरुष नेता के रूप में स्त्री-मंडल के मध्य नाचता है। अतएव 'रास' में नृत्य के साथ गीत भी समाविष्ट हो गया।

रूपगोस्वामी ने 'उज्ज्वलनीलमणि, (निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, सन् १९३२ ई०, पृष्ठ ५६८) में दो गोपियों के बीच एक कृष्ण को नाचते हुए देखने को लिखा है। वह नृत्य रासोत्सव ही है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वधूश्च तडिदुज्ज्वला प्रतिहरिद्वयं मध्यतः ।
सखीधृत कराम्बुजा नटति पश्य रासोत्सवे ।।

—(रूपगोस्वामी, उज्ज्वलनीलमणि)

आज की रास-लीलाएँ स्वाँग, साँग, भगत, नौटंकी आदि से, रासक से और नाट्य रासक से प्रभावित हैं। इन रास-लीलाओं का मंच आज नाट्य-मंचों से भी प्रभावित हो गया है।

भाषा वास्तव में पूर्णतः ब्रजभाषा होनी चाहिए, किन्तु खड़ी बोली के अधिक प्रचलन ने इनकी भाषा को भी प्रभावित किया है। **नौटंकियों** में खड़ी बोली घर कर गयी थी। रासलीला करनेवाले भी उसी खड़ी बोली में बहुत-कुछ **रासलीलाएँ** भी जहाँ-तहाँ प्रदर्शित करने लगे हैं। ब्रज की संस्कृति और ब्रजेश्वर की लीलाएँ जब खड़ी बोली के माध्यम से प्रस्तुत की जाती हैं, तब नितान्त बेतुका और अस्वाभाविक लगता है। नन्द, यशोदा, कृष्ण, गोपियों आदि के मुख से खड़ी बोली में गीत या संवाद सुनकर दर्शक रास के आनन्द से वंचित हो जाते हैं। **ब्रज-संस्कृति** से कोसों दूर की अजनबी आधुनिक वेश-भूषा बेढ़ंगी लगती है। आधुनिक ढंग की वेश-भूषा हमें ब्रज और ब्रजेश्वर से बिलकुल अलग कर देती है। रास नये ढँग का स्वाँग या आधुनिक नाटक-सा बन जाता है। दर्शकों का कृष्ण की लीलाओं में आत्मरमण नहीं होता; और न वास्तविक रास-रस मिलता है। उन रास-लीलाओं को कुछ धर्मांध बेसमझ भक्त अवश्य देखते रहते हैं।

नये ढँग तथा नयी तर्ज़ के गीतों का समावेश भी रास के अपने स्वरूप को नष्ट कर देता है। उन्हें सुनकर हम अपनी सांस्कृतिक झाँकी से कोसों दूर हो जाते हैं। इसलिए मेरी राय में रास-लीलाओं में रासधारियों को **ब्रज-संस्कृति, ब्रजभाषा** और **ब्रज-लोक-जीवन** के स्वरूप की प्राचीन-मूल-थाती की रक्षा करनी चाहिए। आधुनिकीकरण अनौचित्यपूर्ण है। रास-लीला में तो **पुराण-मित्येव साधु** है।

हर्ष है कि आप सपरिवार सानंद हैं। डा० बाबूलाल जी गुप्त को सप्रेम नमस्ते। चि० मुन्ना को आशीर्वाद। आज़-कल क्या सारस्वत अनुष्ठान चल रहा है? कृपया पत्र से सूचित करें। सस्नेह,

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० (श्रीमती) किरणकुमारी गुप्ता,
डी० लिट्०
५–सी, महात्मा गांधी मार्ग, आगरा–२ (उ० प्र०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० (श्रीमती) शकुन्तलादेवी सिंह के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़-२०२००१

प्रिय शिष्या शकुन्तला जी; दिनांक १४-८-७८ ई०

सानन्द रहो।

आपका पत्र तीन दिन हुए, तभी मिला था। उसे शान्ति से पढ़ा और विचार करने लगा। आपका मुख्य प्रश्न है कि "आज मध्यम वर्गीय शिक्षित समाज के परिवारों की स्त्रियों में मानसिक रोग बहुत बड़ी संख्या में पाये जाते हैं। **मैं देखती हूँ कि उन घरों में खान-पान तथा भोजन तो सब को पौष्टिक ही मिलता है; फिर भी रोग क्यों बढ़ रहे हैं** ?

आज महिलाएँ जो अधिक संख्या में मानसिक रोगों से पीड़ित पायी जाती हैं, उसका कारण हमारे परिवारों की भावनात्मक स्थिति है। उस भावनात्मक स्थिति को तनाव ने बुरी तरह जकड़ लिया है। तनाव का कारण है, प्राचीन परंपरागत भावना और वर्तमान में अस्मिता-रक्षा की भावना। परिवारों में इन्हीं दोनों भावनाओं की रस्साकशी से तनाव बढ़ जाता है और बरदाश्त की हद को पार कर जाने पर वह तनाव मानसिक रोग उत्पन्न कर देता है।

आज-कल के शिक्षित मध्यम वर्ग के परिवारों में महिलाएँ प्रातः से रात तक खूब काम करती हैं, घर का और बाज़ार का। किसी-किसी परिवार में तो महिला नौकरी के साथ-साथ पूरा घर का काम भी करती है। पत्नी गृहस्थी का पूरा धंधा भी पेलती है और नौकरी भी करती है, पति केवल नौकरी ही करता है, फिर भी दफ्तर से आकर यह चाहता है कि उसके शरीर पर का कोट उसकी पत्नी ही उतारे और हैंगर पर टाँगे। तुरन्त उसे पानी पिलाये और फिर चाय बनाकर दे। पति को यह अहसास नहीं कि पत्नी भी आठ घंटे दफ्तर में काम करके आयी है। पति सदैव अपना अपर हैंड समझता है। क्योंकि वह पुरुष है, और पत्नी स्त्री है। प्राचीन परंपरा की किताब में वह पति से हेठी अर्थात् नीची मानी गयी है न। आज के आधुनिकतावादी पति के दिमाग़ में विचार पुराना ही है, भले ही वह डाइनिंग टेबिल पर छुरी-काँटे का इस्तैमाल करता हो और क्लब-लाइफ़ बिताता हो।

जो महिलाएँ नौकरी नहीं करतीं, वे दिन-रात घर के काम-काज में जी-जान एक करने पर भी अपनी छोटी-मोटी ख़ाहिशें पूरी नहीं कर पातीं। यदि कोई स्त्री ड्राइंग रूम के दर्वाज़े का पर्दा बदलने के लिए अपने पति से पैसे माँगती है, तो पतिदेव तुरन्त कहते हैं; क्या हुआ पहले पर्दों का ? कुछ दिन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए, तभी तो पर्दे आये थे। उस महिला का ज़रा-सा मुँह निकल आता है, पति का उत्तर सुनकर। तीसरे दिन वह महिला अपनी सहेली को सही बात नहीं बता पाती, जब उसकी सहेली ड्राइंग रूम के दर्वाज़े पर पुराना फटा पर्दा ही देखती है। वह महिला अपनी सहेली से तीन दिन पहले पर्दा बदल देने का वायदा कर चुकी थी। उस महिला के मन में एक तनाव ने जन्म ले लिया। वह यही सोचती रहती है कि मैं अपने पति की जीवन-संगिनी हूँ, पूर्णतः सर्मपित हूँ; फिर भी मेरी ज़रा-सी बात ठुकरा दी गयी।

वही महिला प्रति दिन प्रातः ५ बजे उठती है। सबसे पहले शौचादि से निवृत्त होकर हाउसकोट पहने हुए घर के काम में जुट जाती हैं। सास, ससुर, पति, बच्चों आदि सब को चाय बनाकर पिलाती है और नाश्ता तैयार करती है। इतना अवश्य है कि घूँघट नहीं काढ़ती। उसका घूँघट न काढ़ना, उसकी सास और ननद को अच्छा नहीं लगता। वे अवसर पाकर बहू पर ताने कसती रहती हैं। उन तानों को पति भी सुनता है; किन्तु यों ही टाल जाता है। कभी मन को सन्तोष देने की बात भी नहीं कहता। नाम को दिलजोई भी नहीं करता। पत्नी सोचती है और घुटती रहती है कि इनके बल-भरोसे पर ही तो माँ-बाप ने मुझे इस घर में दिया। ये ही ऐसे बने रहेंगे, तो जीवन कैसे कटेगा ? मेरा भी तो उन पर कुछ अधिकार है। उनका भी तो मेरे लिए कुछ फर्ज़ है।

बस दबाव और बरदाश्त के संघर्ष में दिनों-दिन तनाव बढ़ता रहता है। पत्नी को मानसिक रोग हो जाना स्वाभाविक है। ऐसी घटनाएँ हमारे वर्तमान शिक्षित मध्यम वर्गीय परिवारों में आये दिन होती रहती हैं। इनके द्वारा उत्पन्न तनाव के कारण स्त्रियों को अनेक प्रकार के मानसिक रोग हो जाते हैं। जब तक प्राचीन परंपरा नयी वर्तमान अस्मिता से सामंजस्य स्थापित नहीं करेगी, तब तक मध्यम वर्ग के परिवारों में स्त्रियों को मानसिक रोग होते रहेंगे। इस सामंजस्य को सुखद तभी बनाया जा सकता है, जब परिवारों में उभयपक्षीय सहानुभूति, सम्मान और बरदाश्त की विचारधारा पल्लवित और पुष्पित हो जाए। हम एडजस्ट करना सीखें, इस परंपरा और अस्मिता के द्वन्द्वात्मक संक्रान्ति काल में।

हर्ष है कि आप सपरिवार सानंद हैं। बच्चों को प्यार तथा आशीर्वाद ! आज-कल आपका अध्ययन कैसा चल रहा है ? अपनी माताजी और ननद के समाचार लिखिए।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियवर श्री डी० पी० यादव से मेरी ओर से कहना कि वीणा तभी ठीक बजती है, जब उसके तार न अधिक ढीले हों और न अधिक कसे हुए।

डा० (श्रीमती) शकुन्तलादेवी सिंह, पी-एच० डी०
द्वारा, श्री डी० पी० यादव, शुभैषी
कमरा नं० ५०४, मंजिल ५, अम्बा प्रसाद 'सुमन'
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नई दिल्ली–११०००२

श्रीमती कुसुमलता शर्मा के नाम

८/७ हरिनगर, अलीगढ़-२०२००१

प्रिय बेटी कुसुमलता शर्मा, दिनांक १६. ८. ७८ ई०

आशीर्वाद !

तुम्हारे पत्र में तुम्हारी जिज्ञासा के मूल में हमारे समाज के गार्हस्थ्य जीवन की प्रमुख स्थिति अंतर्निहित है। तुम्हारे बिखरे हुए प्रश्नात्मक वाक्यों को यदि एक वाक्य में लिखूँ तो यह प्रश्न बन सकता है—

"आज-कल जो लड़के अपने से अधिक शिक्षित लड़कियों के साथ विवाह कर लेते हैं, गार्हस्थ्य जीवन की दृष्टि से वे कहाँ तक ठीक हैं ?"

यदि कोई हाई स्कूल पास लड़का एम० ए० पास लड़की से विवाह कर लेता है, तो निश्चित रूप से वह मानसिक धरातल पर उस लड़की से हेठा या हीन रहेगा। उस हीनता को छिपाने के लिए वह लड़का प्रतिक्षण असामान्य बना रहेगा। प्रत्येक बात में अपनी पत्नी को दबाएगा। उसकी बातों को काटेगा। उसे हर समय काम-काज और लेन-देन में बेवकूफ़ या मन्दबुद्धि सिद्ध करेगा, ताकि पत्नी उसे योग्य तथा बुद्धिमान् समझे। परिणाम यह होगा कि पत्नी में तनाव उत्पन्न हो जाएगा। उसमें पति के प्रति प्रेम-भाव समाप्त हो जाएगा। बहुत संभव है कि पति की असामान्य एवं क्रूर कार्य-प्रणाली पत्नी को मानसिक रोग का शिकार बना दे, या पत्नी जीवन से तंग आकर आत्म-घात कर ले।

दूसरी स्थिति परिवारों में यह भी देखी गयी है कि कम पढ़े-लिखे लड़के अपने से अधिक शिक्षित लड़कियों के साथ विवाह करके उन्हें अपने गार्हस्थ्य जीवन की आर्थिक सहायता में प्रमुख साधन समझते हैं। प्रायः अधिक शिक्षित पत्नी कम शिक्षित पति से अधिक वेतन पाती भी है। ऐसी स्थिति में पति आत्महीन और दब्बू बन जाता है। उसमें हीन भावना की ग्रंथि 'घुर्रगाँठ' का रूप ग्रहण कर लेती है। गृहस्थी के कामों में पति सदा पत्नी का अनुमोदन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही करता रहता है। उसे प्रसन्न रखने की आशा और लालसा में कभी सही सलाह भी नहीं दे पाता। ऐसे पति से पत्नी खीज जाती है। पति के प्रति जो श्रद्धा और समर्पण का भाव पत्नी के मन में होना चाहिए, वह समाप्त हो जाता है। पत्नी समझती है कि मेरा पति पति नहीं, मानसिक रूप से मेरा गुलाम बन गया है, और कर्तव्य कर्म-हीन बनकर निठल्लू का-सा जीवन बिताना चाहता है। जीवन के सारे उत्तरदायित्व मुझ पर ही डाल दिये हैं। स्वयं को कुछ न करना पड़े, इसलिए दब्बू बनकर सदा मेरी 'हाँ' में 'हाँ' मिलाता रहता है।

ऐसी स्थिति में पत्नी मानसिक भूमि में विधवा-सी बनी अपना जीवन बिताती है और सामाजिक जीवन में अपनी सखी-सहेलियों में अपमानित-सी भी रहती है; क्योंकि समाज में उसका पति वास्तव में उसके पति के रूप में अपने अस्तित्व को सिद्ध नहीं कर पाता। वह केवल नाम का पति है।

इसलिए मेरी राय में लड़कों को अपने से अधिक शिक्षित लड़कियों के साथ विवाह नहीं करना चाहिए।

हर्ष है कि तुम सपरिवार सानंद हो। आज-कल बेटी सुधा, कुक्कू और पिंटू कहाँ हैं? उन तीनों को आशीर्वाद।

तुम बहुत दिनों से इधर नहीं आयीं। वीणा और वीणा की माताजी शिकायत-सी कर रहीं हैं कि कुसुमलता तो हमें भूल-सी गयी हैं। लिखना, इधर का प्रोग्राम कब बना रही हो? सस्नेह,

श्रीमती कुसुमलता शर्मा शुभैषी

२५ सी, छोटा मिशन कम्पाउण्ड, मेरठ। अम्बा प्रसाद 'सुमन'

श्री शान्तिस्वरूप गुप्त के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१

दिनांक २. ९. ७८ ई०

बन्धुवर श्री गुप्त जी,

सादर सप्रेम नमस्ते!

आपका दिनांक ३१. ८. ७८ का कार्ड मिला। एतदर्थ हार्दिक धन्यवाद। आपने लिखा है "आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया"—इसमें मैं अपने लिए 'गुरु' शब्द का प्रयोग स्वीकार नहीं करता। मैं आपका भाई हूँ। यदि आप मित्र कहें, तो भी स्वीकार है। आपके प्रश्न में 'सांसारिक' शब्द कुछ अधिक व्याख्या चाहता है, किन्तु मैं जैसा समझता हूँ, उसी दृष्टि से आपके प्रश्न—**आकण्ठ सांसारिक होते हुए भी क्या आध्यात्मिक साधना संभव है?**—का उत्तर लिख

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा हूँ। कह नहीं सकता कि मेरा उत्तर आपकी कितनी संतुष्टि कर सकेगा ? पंडित का प्रश्न है, सामान्य मनुष्य का नहीं।

गुप्त जी ! सांसारिक मनुष्य संसार के कर्म दो रूपों में करते हुए पाये जाते हैं—प्रथम तो वे मनुष्य हैं, जो संसार में रहते हैं और संसार के सभी कर्म अनासक्ति से करते हैं। संसार रूपी सरोवर में कमल की भाँति रहते हैं। जल में रहते हुए भी जल से ऊपर रहते हैं। संसार के कषाय (काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि) उन्हें नहीं व्यापते। सारांश यह कि गीतानुसार समत्व बुद्धि से संसार के कार्य करते रहते हैं। "लाभालाभौ जयाजयौ" में उनकी तटस्थ एवं समान स्थिति रहती है। ऐसे कर्मयोगस्थ पुरुष संसार में रहते हुए ब्राह्मीस्थिति में ही निवास करते पाये जाते हैं। यही 'कर्मसु कौशल' है। सांसारिक अर्जुन को श्रीकृष्ण जी ने आध्यात्मिक साधना की ही तो शिक्षा दी थी, और कहा था—

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥

—(गीता २/४८)

योगस्थ के लिए तथा भगवान् में अनन्य शरणागति का भाव रखनेवाले सांसारिक मनुष्य के लिए आध्यात्मिक साधना सम्भव है। जनक आदि उसके उदाहरण हैं। आज के मूल्यहीन अर्थवादी युग में भी ऐसे मनुष्य मिल सकते हैं; भले ही उँगलियों पर गिनी जानेवाली संख्या में हों। कवीन्द्र रवीन्द्र, पं० मदन-मोहन मालवीय, महात्मा गांधी, रामकृष्ण परमहंस आदि ऐसे ही महापुरुषों में थे, जिन्होंने सांसारिक जीवन बिताते हुए भी आध्यात्मिकता की रक्षा की थी।

न आसक्ति हो, न विरक्ति हो; अपितु अनासक्ति हो सांसारिकता में। इससे हम संसार में रहते हुए भी आध्यात्मिक बने रहेंगे। हममें राग है, हममें द्वेष है—इस विचार को हटाना पड़ेगा। हमें निर्विचार होकर राग-द्वेष का द्रष्टा मात्र बनना पड़ेगा।

संसार में वे मनुष्य अधिक हैं, जो ऊपरी ढंग से कपट-छल की आध्यात्मिकता का दिखावा करते हैं; लेकिन वास्तव में संसार के सारे कार्य आसक्तिमय होकर करते हैं। काम, क्रोध, लोभ आदि में बुरी तरह से फँसे रहते हैं और चौबीस घंटे फँसे रहते हैं। कामिनी और कांचन ही जिनके लिए जीवन के साध्य हैं। ऐसे मनुष्यों के लिए आध्यात्मिक साधना सम्भव नहीं। सम्भव इसलिए नहीं है, क्योंकि उनमें आध्यात्मिक साधना के लिए इच्छा ही नहीं होती और न उनमें उसके प्रति आस्था होती है। जो राग को अलग मानते हुए

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके द्रष्टा हैं, द्वेष को अलग मानते हुए उससे दूर हैं; उन्हें न राग सताएगा, न द्वेष ।

अर्जुन सीधा था, सरल था, निष्कपट था और आत्मा से सच्चा था। ऐसे सांसारिक जीव आध्यात्मिक आस्था के प्रति सच्चे और श्रद्धालु होने पर भी संसार के कार्य करते रहते हैं। वे जगत् में रहते हैं, लेकिन जगत्-गति उन्हें नहीं व्यापती। वे संसार के कार्यों में आकंठ मग्न दिखायी देने पर भी वास्तव में कमल के सदृश निर्लेप रहते हैं, क्योंकि द्रष्टा मात्र हैं, समाविष्ट नहीं। वे आकंठ मग्न होने पर भी, नहीं होते।

संसार के प्राणियों के लिए तीन मार्ग हैं—(१) शरीर से शरीर में जाने का मार्ग—ऐसे मनुष्य राममूर्ति बन सकते हैं। (२) मन से मन में जाने का मार्ग—ऐसे मनुष्य बुद्धि और मन को कुछ शान्त रख सकते हैं। (३) आत्मा से आत्मा या परमात्मा में जाने का मार्ग—ऐसे मनुष्य आध्यात्मिक बन सकते हैं। राग-द्वेष के द्रष्टा एवं आत्मा में ही अवस्थित मनुष्य संसार में रहकर भी परमात्मा में रह सकते हैं।

आपकी निम्नांकित तीन पुस्तकों की कुछ प्रतियाँ आचार्य पं० सीताराम जी चतुर्वेदी ने वाराणसी से मेरे पास भिजवायी थीं—(१) **चिन्तन और चंक्रमण** (२) **दर्शन, साहित्य और इतिहास** (३) **यह दुनिया एक कहानी है**। ये अधिकारी विद्वानों को भेंट कर दी गयी हैं। उनसे आपको समय पर आपकी कृतियों पर सम्मतियाँ मिलेंगी। अपनी सम्मति भी मैं आपकी अन्तिम दो कृतियों पर शीघ्र प्रेषित करूँगा। **चिन्तन और चंक्रमण** पर तो भेज ही चुका हूँ।

कविता के क्षेत्र में भाषा-शैली के वैविध्य के लिए श्री हरिऔध जी और गद्य के क्षेत्र में भाषा-शैली की अनेक रूपता के लिए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का नाम उल्लेखनीय है। इन साहित्यकारों में शैली-वैविध्य कई ग्रंथों में ही व्यक्त हो पाया है; लेकिन **चिंतन और चंक्रमण** का लेखक तो एक ही पुस्तक में दो शैलियों के साथ है। पुस्तक के पूर्वांश (चिंतन) और उत्तरांश (चंक्रमण) में अलग-अलग दो भिन्न शैलियाँ दृष्टिगोचर होती है। व्यक्ति एक, शैलियाँ दो। लेखक का यही तो वैशिष्ट्य है।

हर्ष है परमेश की दया से आप सपरिवार सानंद हैं। विदेश-यात्राओं से आपने हिन्दी साहित्य को भी कुछ दे दिया है। हार्दिक बधाई! आप पर लक्ष्मी और सरस्वती—दोनों—कैसे दयालु हो गयीं?

श्री शान्तिस्वरूप गुप्त, आपका
६ए, आउट्रम स्ट्रीट, कलकत्ता–१७ अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री जगदीश के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़-२०२००१

प्रियवर, दिनांक ५-६-७८ ई०

आपके ये दोनों प्रश्न बड़े महत्त्वपूर्ण और बारीक हैं—(१) **हिन्दूधर्मानुयायी की क्या प्रमुख पहचान और कसौटी है ?** (२) **दया और अहिंसा में क्या अंतर है ?**

आपके **पहले प्रश्न** के उत्तर में मैं निवेदन कर सकता हूँ कि जो व्यक्ति निम्नांकित बातों पर पूर्ण आस्था और विश्वास रखता है, उसे हम हिन्दू धर्मानुयायी कह सकते हैं—

(१) **ईश्वर और आत्मा के अस्तित्व में विश्वास ।**

(२) **जनमान्तरवाद में आस्था ।**

(३) **वेदों को मानना तथा उनके प्रति श्रद्धा-भाव ।**

हिन्दू कौन है—इसे एक श्लोक में किसी विद्वान् ने इस तरह बताया है कि ओंकार जिसका मूल मंत्र हो, पुनर्जन्म में विश्वास रखता हो, गाय को पूज्य मानता हो, भारत जिसका गुरू हो, और धर्मभ्रष्टों एवं राष्ट्रद्रोहियों को जो जातिच्युत करनेवाला हो, उसे 'हिन्दू' कहते हैं—

ओङ्कार मूलमंत्राढ्यः, पुनर्जन्मदृढाशयः ।
गोभक्तो भारत गुर्रुहिन्दु र्हीनत्वदूषकः ॥

आपका **दूसरा प्रश्न 'दया'** और **'अहिंसा'** की अर्थभेदक रेखाओं से सम्बन्ध रखता है ।

संक्षेप में यदि एक वाक्य में आप 'दया' और 'अहिंसा' का अन्तर जानना चाहते हैं, तो यह कहा जा सकता है कि मन का द्रवीभूत होना **दया** है और दया का विस्तृत शाश्वत रूप **अहिंसा** है ।

किसी प्राणी को दुःखी देखकर जो करुणा हमारे मन में जगती है और उसके प्रति जो सहायता का भाव उद्बुद्ध होता है, वह **दया** है । दया का भाव करुणा-स्थिति को देखकर कुछ समय के लिए ही जागता है । वह सदा जाग्रत् नहीं रहता । यदि सदा जाग्रत् रहेगा, और सबके प्रति सामान्य रूप से मन, बचन और कर्म में रहेगा, तो वही दया फिर **अहिंसा** कही जाएगी । अहिंसा शाश्वत भाव है; सार्वकालिक है, सार्वदेशिक है । विश्व के प्राणिमात्र के लिए है ।

कभी-कभी दया तो एक क्रूर कसाई में भी उद्बुद्ध हो सकती है । हज़रत मुहम्मद और खलीफ़ा उमर के जीवन-चरित हमें बतलाते हैं कि उनमें दया भाव जगता था; काफ़ी जगता था । वे वास्तव में दयावान् थे ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बार ख़लीफ़ा उमर वेश बदल कर रात्रि में अपनी प्रजा का दुख-सुख जानने के लिए एक गाँव में घूम रहे थे। देखा कि एक स्त्री एक घर में बालक को गोद में लिये बैठी है; बालक बहुत देर से रो रहा है। स्त्री के पास एक हाँड़ी में कुछ पकाया भी जा रहा था। ख़लीफ़ा उमर के पूछने पर पता चला कि स्त्री का पति परदेस में था। घर में दाना तक न था। स्त्री भी भूखी थी; बच्चा भी भूखा था। भूखी स्त्री के स्तनों में दूध भी न था। इसलिए भूखा बच्चा बुरी तरह रो रहा था। उमर ने स्त्री से कहा कि "तुम इस हाँड़ी में जो पक रहा है, उसमें से कुछ बच्चे को खिला दो। बच्चा भूख से बहुत परेशान है।" स्त्री ने ख़लीफ़ा से कहा—"हाँड़ी में सिर्फ पानी खौल रहा है। मैंने बच्चे को इसे दिखाकर कुछ तसल्ली बँधायी थी; लेकिन वह तसल्ली कब तक रहती? अब इन्तज़ार की हद गुज़र जाने पर बच्चा फिर रोने लगा है।"

ख़लीफ़ा दया से द्रवीभूत हुए और बोले—"तुमने ख़लीफ़ा के दरबार में जाकर अपनी बात क्यों नहीं कही? स्त्री कहने लगी—"जिस ख़लीफ़ा ने मुझसे बिना पूछे मेरे खाविन्द को फौज में भेज दिया, उस ख़लीफ़ा का क्या यह फर्ज़ न था कि उसकी घरवाली और बच्चों के दुख-दर्द का ख़याल भी रखता।"

इसे सुनकर ख़लीफ़ा उमर के आँसू निकल आये। फौरन् शाही भंडार से उस स्त्री के घर में पूरे एक साल का खाने का इन्तज़ाम कराया और उस स्त्री से क्षमा माँगी।

खलीफा उमर का वह भाव दया था। जब दया भाव संसार के प्राणिमात्र के प्रति सर्व सामान्य रूप से सदा जाग्रत् रहता है, तब 'अहिंसा' कहलाने लगता है अहिंसा का पुजारी मन, वचन और कर्म से शाश्वत दयावान् होता है। उसकी यह भावना सदा-सर्वदा रहती है कि—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥

मैं और मेरा अर्थात् अहं और ममत्व से हिंसा जन्म लेती है। जहाँ हमने किसी प्राणी को विशेष रूप से अपना समझा, उसी क्षण शेष प्राणी हमारे लिए ग़ैर अर्थात् दुश्मन हो जाएँगे। किसी को अपना समझते ही हम अपने को संकुचित बना लेते हैं। किसी व्यक्ति को अपना समझना उस पर अपना विशेष अधिकार करना है। तब उसकी आत्मा का हनन करना हम प्रारम्भ कर देते हैं। अतः अहिंसा का पालन ममत्व से दूर रहकर ही हो सकता है। अहिंसक के लिए अपना-पराया कुछ नहीं होता; सब कुछ समान और तटस्थ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर्ष है कि आप सानन्द हैं। आज-कल आपके विद्यालय में कैसा पठन-पाठन चल रहा है ? मुझे यह जानकर परम प्रसन्नता हुई कि आपके विद्यालय में एक भी अध्यापक धूम-पान नहीं करता।

श्री जगदीश एम० एस-सी०, एम० ए० शुभैषी
प्रवक्ता गणित, बाबूलाल जैन इंटर कालेज, अलीगढ़। अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री रामप्रसाद माहेश्वरी, एडवोकेट के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक १०–६–१६७८ ई०

मान्यवर श्री वकील साहब,

सप्रेम नमस्ते !

उस दिन आपसे वार्तालाप करके परम प्रसन्नता हुई। आपने अपना सामाजिक धर्म, स्वकर्तव्य पालन करते हुए, सुन्दरता से निभा दिया। आप जीवन में **आशावादी** रहे हैं। आशावादी व्यक्ति जीवन में स्वयं प्रसन्न रहता है और दूसरों को भी प्रसन्न रखता है। आशा के प्रकाश से मन स्वयं तो प्रकाशित होता ही है, साथ ही साथ वह दूसरों को भी प्रकाशित करता रहता है। आशावाद जीवन बिताने का शुक्ल एवं शुभ दृष्टिकोण है। यदि आधा गिलास दूध से भरा हुआ है तो आशावादी उसे आधा भरा कहेगा, निराशावादी उसे आधा ख़ाली बताएगा—आशावाद और निराशावाद में यही अन्तर है।

कठोपनिषद् के ऋषि ने परमात्मा के सम्बन्ध में कहा है—**तमेव भान्तमनुभाति सर्वं** (कठ० अ० २/व०२/१५)—इसका भाष्य करते हुए जगद्गुरु श्री शंकराचार्य ने लिखा है "जो स्वतः प्रकाशित नहीं है वह अन्य को प्रकाशित नहीं कर सकता।" आशा-ज्योति जीवन की ऊषा का पर्याय हैं, जिसमें आमोद के विहंग कूजा करते हैं।

आप में गुणग्राहकता, कृतज्ञता, सदाशयता तथा मित्रता की भावनाएँ निवास करती हैं। तभी उन विषमताओं को समताओं में परिवर्तित करके आपने **श्री गणेशीलाल जी माहेश्वरी** जैसे कर्मठ और शिक्षानिष्ठ प्रिंसिपल महोदय का सफल अभिनंदन-समारोह सानद सम्पन्न करा लिया। आपके प्रकाशित मन ने हम सबके मनों को भी प्रकाशित कर दिया। यदि वह समारोह और देर से होता, तो निश्चित ही संपूर्ण माहेश्वरी समाज और हम लोग कृपण और कृतघ्न घोषित कर दिये जाते। श्री गणेशीलाल माहेश्वरी का सम्मान करके हमने एक प्रकार से शिक्षा की देवी का ही अर्चन-वंदन किया है;

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माहेश्वर इण्टर कालेज का सम्मान किया है। अथवा कहिए कि सरस्वती का पूजन करके हम एक ऋण से उऋण हुए हैं।

मैंने अपने अध्यापन-काल में (सन् १९५० से १९५६ तक) जो अनुभव किया था; उसी के आधार पर निवेदन कर रहा हूँ कि श्री गणेशीलाल जी माहेश्वरी व्यक्ति से स्नेह नहीं करते; व्यक्ति के गुण के प्रति आदर और स्नेह रखते हैं। उनके मन में सच्चे और कर्तव्य परायण अध्यापक-साथी के लिए सदा मैत्रीमय सहायता का भाव रहा है। जो अध्यापक मन से संस्था का था, वह उनका भी मन से था। प्रिंसिपल श्री गणेशीलाल ने गृहस्थ होते हुए आपकी संस्था के लिए वानप्रस्थ ले लिया था। एक प्रकार से विद्यालय ही उनका घर बन गया था। माहेश्वर विद्यालय के कण-कण से उन्हें प्यार था। उपवन-वाटिका-प्रेमी श्री गणेशीलाल जी ने आपके मरुस्थल को मरुद्यान बनाकर उसे पूर्णतः पुष्पित और सुगंधित किया है। विद्यालय की वाटिका के फूलों से उन्हें कितना प्रेम था—इसे मेरे मन की आँखों ने प्रत्यक्ष देखा है। इस 'सुमन' के मन ने श्री गणेशीलाल माहेश्वरी के सुमन सदृश मन की सुगंध को पहचाना है।

जब आपका विद्यालय मदार दरवाज़ेवाली इमारत में था, तब एक दिन संध्या समय छुट्टी के बाद एक सज्जन अपने बालक को लेकर विद्यालय में आये उनका बालक वाटिका के खिले फूल तोड़ने की इच्छा कर रहा था। प्रिंसिपल माहेश्वरी साहब ने तुरन्त समझ लिया कि यह बालक क्या चाहता है? उन्होंने चपरासी के द्वारा फूल चौराहे से कुछ फूल मोल मँगाये और उस बालक की तबीयत रख दी। उस समय मैं समझा था, श्री गणेशीलाल जी के सुमन-स्नेह को।

आपकी संस्था का सौभाग्य था कि आपको श्री गणेशीलाल माहेश्वरी जैसा प्रधानाचार्य मिला। संस्थाओं में कहने के हैडमास्टर और नौकरीवाले मास्टर बहुत मिल जाएँगे; लेकिन सच्चे आचार्य बड़ी कठिनाई से मिला करते हैं। आपको मिल गये, आप भाग्यशाली हैं।

मैं अपनी कृतज्ञता और आभार स्वीकृति कहाँ तक लिखूँ? इस समय मेरे पास जो कुछ है, उसमें बहुत कुछ श्री गणेशीलाल जी का है। परमात्मा उन्हें आजीवन सुखी रखे। वे फूलें–फलें और उनके प्रेमी आप अपने परिवार सहित फूलें-फलें। "मंगलायतनं हरिः"।

आपको तथा सब अध्यापकों सहित आपकी कार्यकारिणी को धन्यवाद! सस्नेह,

श्री रामप्रसाद माहेश्वरी, एडवोकेट, आपका
(अध्यक्ष कार्यकारिणी समिति, माहेश्वर इण्टर कालेज) अम्बाप्रसाद 'सुमन'
१५/११५, ब्राह्मणपुरी, अलीगढ़।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री भगवतीप्रसाद भारद्वाज के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१

बन्धुवर भारद्वाज जी, दिनांक १५. ६. ७८

सप्रेम नमस्कार।

आपका दिनांक १४. ६. ७८ का पत्र मिला। हार्दिक धन्यवाद! आपकी जिज्ञासा **जन्मान्तरवाद** से सम्बद्ध है। आपके द्वारा पूछे हुए प्रश्न को मैं पहले दो वाक्यों में यहाँ लिख रहा हूँ, ताकि उसके अनुसार उत्तर को क्रमशः प्रस्तुत किया जा सके; और आप ठीक समझ भी लें।

प्रश्न—"मृत्यु के उपरान्त क्या अनन्त काल तक **पुरुष की आत्मा पुरुष-योनि का शरीर ही धारण करती चलती है; या बदल कर स्त्री-योनि भी ग्रहण करती है? इसी प्रकार स्त्री की आत्मा किस योनि का शरीर प्राप्त करती रहती है?**

उत्तर—आत्मा की नित्यता और शरीर की अनित्यता के सम्बन्ध में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से गीता में स्पष्ट कह दिया है कि हे अर्जुन! मेरे और तेरे अनेक जन्म हुए हैं। उन सबके बारे में मैं तो जानता हूँ, लेकिन तू नहीं जानता—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप॥ —गीता (४/५)

अनासक्ति भाव सहित समत्व बुद्धि से कर्म करनेवाले सर्वभूत हितेरत कर्मयोगी की आत्मा पुनर्जन्म धारण नहीं करती।

संनियम्य इन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहितेरताः॥ —गीता (१२/४)

जो कर्मयोग तो पूरी तरह न कर पाया हो; लेकिन सत्कर्म शुद्ध मन से करता रहा हो, वह अनन्तकाल तक पवित्र और श्रीमानों के घरों में जन्म लेता रहता है। इसे श्रीकृष्ण ने गीता के छठे अध्याय के इकतालीसवें श्लोक में स्पष्ट कर दिया है।

गीता के आठवें अध्याय के छठे श्लोक के आधार पर यह भी कहा जासकता है कि मरण-काल में प्राणी जिस भाव में डूबा होगा, उसकी आत्मा उसी प्रकार का जन्म ग्रहण करेगी। स्त्री-भाव में डूबा व्यक्ति स्त्री की योनि प्राप्त करेगा।

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यज्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भाव भवितः॥ —(गीता ८/६)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब प्रश्न यह है कि पुरुष-योनिवाले और स्त्री-योनिवाले प्राणी आगामी जन्मों में किस-किस योनि में शरीर धारण करते रहते हैं ? उनकी योनियाँ यदि बदल जाती हैं, तो किन-किन कारणों से ? इसे समझ लेना चाहिए ।

भारद्वाज जी ! आपने कर्मफल-भोग के सम्बन्ध में यह सूक्ति सुनी होगी–

साहब के दरबार में बदले कहूँ न जायँ ।

इसमें जन्मान्तरवाद का बहुत बड़ा सत्य छिपा हुआ है । सत्कर्म या दुष्कर्म का फल भोगना पड़ता है । चाहे प्रारब्ध रूप में, चाहे संचित रूप में और चाहे क्रियमाण रूप में ।

मान लीजिए कि कोई पुरुष इस जन्म में किसी निर्दोष एवं निरपराध दुखी विधवा स्त्री को सताता है । उस पर अत्याचार करता है, छल-कपट से उसके एक मात्र पुत्र को ज़हर देकर मार देता है, विधवा की ज़मीन और मकान भी हड़प लेता है और फिर उस विधवा को भी मरवा देता है, तो वह पुरुष अपनी मृत्यु के बाद आगामी जन्म में स्त्री-योनि पाएगा और उसी प्रकार विधवा बनकर संसार की यातनाएँ भोगेगा । पूर्व संचित सत् कर्म-फल की समाप्ति पर आगामी जन्म में उसे स्त्री-योनि अवश्य मिलेगी ।

मान लीजिए कि किसी स्त्री ने किसी दीन-दुखी जन्मान्ध पुरुष को बहुत सताया है । उसके मकान में से उसके बर्तन-भाँड़ों, कपड़ों-लत्तों और अन्नादि की चोरी भी करा दी और उस अन्धे को ज़हर दिलवाकर मरवा भी डाला । उस स्त्री के पहले संचित सत्कर्म भी समाप्त हो चुके हों, तो निश्चित रूपेण उस स्त्री की आत्मा आगामी जन्म में पुरुष-योनि प्राप्त करेगी और वह एक अन्धा पुरुष बनकर वैसा ही दुःख उठाएगी ।

गीता के पंद्रहवें अध्याय के पहले और दूसरे श्लोक में संसार को पीपल का वृक्ष बताकर श्रीकृष्ण ने मनुष्यों को उसकी शाखाएँ बताया है **कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके** (गीता १५/२) के अनुसार मनुष्य-योनि के प्राणी ऊँची-नीची योनियों में जाते हैं । अर्थात् उनकी योनियाँ बदल जाती हैं । मनुष्य-योनि में नवीन कर्म करके योनि-परिवर्तन किया जा सकता है; गीता प्रमाण है ।

छान्दोग्य उपनिषद् में उद्दालक मुनि ने राजा प्रवारण जैबलि के प्रश्न के उत्तर में मृत्यु के पश्चात् आत्मा कहाँ जाती हैं और कैसे जाती है ? इसका उत्तर विस्तार से दिया है । मैं उसे सार रूप में यहाँ लिख रहा हूँ—

उद्दालक मुनि ने बताया है कि मृत्यु के बाद आत्मा (सूक्ष्म शरीर के साथ) द्युलोक में जाती है । तत्पश्चात् मेघ रूप में बरसती है और पृथ्वी पर वनस्पति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के रूप में उगती है। वे वनस्पतियाँ अपने-अपने कर्मानुसार जीवों द्वारा खायी जाती हैं। पशु, पक्षी, पुरुष आदि द्वारा खायी जाकर जठराग्नि के विधान द्वारा वनस्पति वीर्य में परिणत हो जाती है। फिर नारी के गर्भाशय में जाकर कर्मानुसार नारी या नर का शरीर धारण करती है। यही क्रम कर्मानुसार चलता रहता है!

हर्ष है आप सानंद हैं। आज-कल कैसा पठन-पाठन चलता रहता है? सस्नेह,

श्री भगवतीप्रसाद भारद्वाज, आपका
१३/१६३, (ताँगा स्टेंड के सामने), अम्बाप्रसाद 'सुमन'
सुभाष रोड, अलीगढ़, २०२००१

श्री ओम्प्रकाश गौड़ के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१

प्रियवर ओम्प्रकाश, दिनांक १८. ६. ७८ ई०

आशीर्वाद!

तुम्हारा प्रश्न बड़ा सामयिक है और समाज तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र से प्रमुख रूपेण सम्बद्ध है। मैं पहले तुम्हारी जिज्ञासा को अपने शब्दों में लिखकर तदुपरान्त उसका उत्तर दे रहा हूँ, ताकि तुम प्रश्न के प्रकाश में उत्तर को ठीक तरह से समझ सको।

प्रश्न—आज सरकार ने अपनी नीति तथा नियमों के अनुसार समाज में मानव मात्र के प्रति सद्भावना तथा समान व्यवहार के स्वरूप को स्थापित किया है। फिर भी **हरिजनों और सवर्ण हिन्दुओं के बीच में कलह और लड़ाई-झगड़े देखे-सुने जाते हैं—क्यों? क्या सरकारी कानून के ज़ोर से हार्दिक सद्भाव सम्भव है?**

उत्तर—सरकार का कानून शरीर पर नियंत्रण कर सकता है; मन या आत्मा पर नहीं। हम सरकार के कानून के दबाव में आकर दिखावा कर सकते हैं। मन से किसी के हो जाएँ—ऐसा संभव नहीं। मानव-धर्म कहता है कि मानव-मात्र के प्रति हमें प्रेम और समानता का व्यवहार करना चाहिए। धन, वर्ण, जाति या व्यवसाय के अन्तर से मनुष्य-मनुष्य में भेद नहीं मानना चाहिए—इसमें किसी की दो रायें नहीं हो सकतीं; किन्तु प्रश्न सिद्धान्त को व्यवहार में बदलने का है। दो के मिलन में गहराई और सचाई तभी आ सकती है, जब दोनों मनुष्य एक दूसरे की ओर मन से मिलने के लिए बढ़ें। प्राचीन परम्परा ने जो वर्णगत या व्यवसायगत ऊँच-नीच की भावनाएँ हमारे अन्दर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जमा दी हैं, वे शनैः शनैः तभी समाप्त हो सकती हैं, जब प्रत्येक वर्ण या जाति का मनुष्य अपने से छोटी या हेठी मानी जानेवाली जाति के मनुष्य के साथ सच्चे मन से वैसा ही व्यवहार करे, जैसा कि वह अपने से उच्च वर्ण या उच्च जाति के मनुष्य से अपने प्रति चाहता है ।

सरकार से कानून का बल मिल जाने के कारण कुछ ऐसी घटनाएँ हरिजन भाइयों में देखी गयी हैं कि वे सवर्ण हिन्दुओं को अपमानित और दुखी करना चाहते हैं, झूठे दोष लगाकर । पीढ़ियों से पीड़ित हरिजन भाइयों के झूठे कथनों पर सरकार के व्यक्ति जल्दी विश्वास भी कर लेते हैं । धनाभाव और दरिद्रता के आधार पर सवर्ण हिन्दुओं में पाये जानेवाले स्त्री-पुरुषों की शिक्षा, नौकरी आदि की सुविधा से संबद्ध भी सरकार को नियम बनाने चाहिए । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जातियों में भी अत्यन्त निर्धन और दरिद्र बालक सहस्रों हैं । सहस्रों अनाथ विधवाएँ हैं । उनका कोई पुरसाँ हाल नहीं । सरकार के यहाँ भी उनकी कोई सुनवायी नहीं । उनकी परवाह न करके सरकार यदि हरिजनों की ही सहायता केवल 'हरिजन' के कारण निरन्तर करती रहेगी, तो समाज में ईर्ष्या और द्वेष पनपता रहेगा । सरकार को सहायता का आधार जाति या वर्ण न बनाकर, **ज्ञान** और **अर्थ** बनाना चाहिए । यदि कोई हरिजन बहुत संपन्न है, अच्छा व्यवसायी है, तो उसके बालक को शिक्षा के लिए छात्रवृत्ति अब नहीं मिलनी चाहिए । हरिजन भाइयों से भी अधिक दयनीय और दरिद्रतापूर्ण स्थिति सैकड़ों हरिजनेतर भाइयों की है । सवर्ण हिन्दुओं में भी ऐसे अनेक हैं, जो अर्थाभाव से दुखी हैं । उनकी सन्तानें कुशाग्रबुद्धि भी हैं; लेकिन वे उन्हें पढ़ा नहीं सकते । वे नितान्त साधनहीन हैं । सन् १९४७ ई० में देश स्वतंत्र हुआ । अब १९७८ ई० है । सरकार को अब देश में प्रत्येक मनुष्य की स्थिति पर अर्थ के आधार पर विचारना चाहिए । समाजवाद यही कहता है ।

मैंने अपने जीवन में जाटव भाइयों के साथ कई बार जल-पान किया है; लेकिन जब ऐसा अवसर आया कि महतर भाइयों ने जाटव भाइयों को जल-पान पर आमंत्रित किया, तब जाटवों ने महतरों के साथ जल-पान नहीं किया । यदि ऐसी भावनाएँ बनी रहीं, तो समाज में से जातिवाद का कोढ़ दूर न होगा । हम अपने से छोटे के साथ सच्चे दिल से मिलना नहीं चाहते । प्रश्न का हल राजनीति पूरी तरह नहीं कर सकेगी; अपितु मन की सच्ची भावनाएँ ही इसे हल कर सकती हैं—हमें इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए । आवश्यकता है कि मानव, मानव से निर्मल तथा सच्चे हृदय के साथ मिले । भावों का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंगाजल ही कल्याण कर सकेगा; विकृत वृत्तियों की बदबूदार कीचड़ नहीं। कीचड़ से कीचड़ को साफ़ भी नहीं किया जा सकता। कीचड़ को धोने के लिए स्वच्छ जल चाहिए। आज मानव, मानव को केवल मानव के नाते से ही प्यार करे, तब हमारा, हमारे समाज का और हमारे राष्ट्र का कल्याण होगा।

प्रसन्नता है कि तुम सानंद हो। सौभा० बहू और बच्चों को आशीर्वाद।

श्री ओम्प्रकाश गौड़, वेदपाठी शुभैषी
रामचन्द्र गोयनका–धर्मशाला, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
वैद्यनाथ धाम (देवघर), [बिहार]

श्रीमती राजवतीदेवी शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)

प्रिय बहिन राजवती देवी, दिनांक २०. ६. ७८ ई०

सानंद रहो !

आपका पत्र मिला। आपका प्रश्न निश्चित रूपेण **आज के हिन्दू-परिवारों की एक विकट समस्या से सम्बन्ध रखता है।** बहुत-से पुरुष हिन्दू-समाज में ऐसे हैं, जिनकी पत्नियों से यदि ८–१० वर्ष में कोई पुत्र उत्पन्न न हो, तो वे अपनी पत्नी को फुसलाकर, बहकाकर या दबाव डालकर अपना दूसरा **विवाह** कर लेते हैं, ताकि पुत्र की प्राप्ति हो जाए। वे पूर्व पत्नी को पुत्रोत्पत्ति के लिए अयोग्य भी घोषित कर देते हैं। चूँकि वे पुरुष हैं, घर की जीविका चलाते हैं और परंपरा के कारण अपर हैण्ड भी रखते हैं—इसलिए अपने शरीर में कोई कमी या दोष नहीं मानते। सब कुछ कमी या दोष पत्नी के शरीर में ही मानते हैं।

आपका यह पूछना बहुत बड़ी सीमा तक उचित है, कि क्या ऐसी स्थिति में नारी को ही अयोग्य ठहराकर दूसरा विवाह करना नर का, नारी के प्रति अत्याचार नहीं है ?

राजवती जी ! मैंने परिवार की इस समस्या के समाधान के तल में पहुँचने की खोज में बड़े-बड़े वैज्ञानिकों तथा डाक्टरों से भी बातें की हैं। मैं पुत्रोत्पत्ति न होनेवाली स्थिति में पुरुष को भी दोषी और अपराधी मान सकता हूँ, और मानूँगा भी; यदि उसने अपने शरीर की डाक्टरी नहीं करायी है।

आज साइंस बहुत ऊँचाई पर पहुँच गयी है। प्रकृति के अनेक रहस्यों का पता लगा चुकी है। विश्व के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० तेरासाकी बालक के ऊतकों (टिशूज़) का मिलान पिता के ऊतकों (टिशूज़) से करके यह बता देते हैं कि अपने को पिता घोषित करनेवाला वह पुरुष उस बालक का पिता वास्तव में है, या नहीं। जनक-जनित-सम्बन्ध विज्ञान से अब ओझल नहीं है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल एवं प्रमुख बात यह है कि जब तक नारी की बच्चेदानी के **अण्डाणु** में पुरुष के वीर्य का **बाई क्रोमोसोम** (शुक्राणु) न पहुँचेगा, तब तक नर-संतान की उत्पत्ति न होगी। जिस पुरुष के वीर्य में 'बाई क्रोमोसोम' शुक्राणु नहीं है, वह चाहे कितने ही विवाह करले, उससे पुत्र-उत्पत्ति न होगी। ऐसी स्थिति में पुरुषों को अपनी ओर अवश्य देखना चाहिए। अपने शरीर की पूरी डाक्टरी कराये बिना जो पुरुष अन्य स्त्री से विवाह कर लेते हैं, वे निश्चित ही ग़लती पर हैं। वे दोषी माने जाएँगे।

हर्ष है कि आप कुशल पूर्वक हैं। सस्नेह,

श्रीमती राजवतीदेवी शर्मा, शुभैषी

क० जू० हाईस्कूल, खैर, (अलीगढ़) अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री जयप्रकाश मीतल के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़-२०२००१

प्रिय श्री मीतल जी, दिनांक २६. ६. ७८ ई०

आशीर्वाद !

आपका दिनांक २२. ६. ७८. का पत्र मिला। धन्यवाद ! आपके पत्र की की भाषा में मुख्य जिज्ञासा यह छिपी हुई हैं कि परमेश का ध्यान करते समय मन एकाग्र नहीं रहने पाता। प्रयत्न करने पर भी मन इधर-उधर की बातों पर चला जाता है। क्या किया जाए ?

आपका प्रश्न बहुत स्वाभाविक है। सांसारिक माया, मोह, लोभ आदि में फँसे हुए मन को ईश्वर के ध्यान में लगाने के लिए अभ्यास करना पड़ता है। ईश्वर के प्रति आस्था, विश्वास आदि दृढ़ करना चाहिए। संसार के प्राणियों तथा पदार्थों से बढ़कर ईश्वर को मानना चाहिए। परमेश को ही सर्वव्यापक तथा सर्वशक्तिमान् समझना चाहिए। लगता है आपका मन परमेश्र को उन वस्तुओं तथा प्राणियों से छोटा तथा हेठा मानता है। उन पदार्थों तथा मनुष्यों को आप ईश्वर से अधिक महत्त्वपूर्ण और शक्तिशाली मानते हैं। जिन मनुष्यों के प्रति, ध्यान के समय आपका मन खिंच जाता है; उन्हें आप यह मान बैठे हैं कि ईश्वर हमारे कार्य न कर सकेगा; वे मनुष्य ही हमारे अभीष्ट कार्य सम्पन्न करेंगे। आपका मन ईश्वर को मूलकर्ता अर्थात् कर्तृ-कारण नहीं मानता। आपको गीता के इस वाक्य को न भूलना चहिए कि मनुष्य निमित्त मात्र है। मूल कर्ता तो सर्व शक्तिमान् अखिल ब्रह्माण्ड नायक एवं सर्वव्यापक वास्तव में एक ईश्वर ही है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन के सम्बन्ध में ऐसा ही प्रश्न गीता में अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण से किया था—**चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्** (गीता ६/३४)

इसके उत्तर में (गीता ६/३५) भगवान् ने यही कहा था कि अभ्यास और वैराग्य से मन को नियंत्रित किया जा सकता है; और फिर मन को सर्वतोभावेन प्रभु को समर्पित कर देना चाहिए। उनमें ही पूर्ण आस्था और विश्वास होना चाहिए। इसे सदा याद रखिये कि गीतेश्वर ने यही अंत में कहा कि—

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शणं व्रज ।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः (गीता १८/६६)

मन को स्थिर करने की एक विधि और है—वह है ध्यान के समय मंत्र, श्लोक या कविता-पंक्तियों को पूर्ण अर्थ और उसके अर्थात्मक बिम्बों पर ध्यान देते हुए शान्ति से शनैः शनैः निष्ठापूर्वक उच्चरित करना। इससे आपका मन आपके 'पाठ' की शब्दावली से बनानेवाले अर्थात्मक बिम्बों के देखने में लगा रहेगा। मन की आँखें जब भगवान् की शक्ति तथा भगवान् की उस सृष्टि के दिव्य—स्वरूप का दर्शन करती रहेंगी, तो मन इधर-उधर न भटकेगा। वास्तव में मन को आकर्षक आलंबन चाहिए।

प्रायः मनुष्य स्तुति, प्रार्थना, भजन, पूजन, अर्चन, वंदन, यज्ञ, हवन आदि केवल शब्दों के माध्यम से करते हैं। 'प्रार्थना' के शब्दों में जो अर्थ है, उसके बिम्बों के दर्शन वे नहीं करते। ऐसी दशा में जिह्वा ही 'प्रार्थना' करती है; मन 'प्रार्थना' नहीं करता। यदि आप भगवान् राम के भक्त हैं और उनसे सम्बद्ध 'रामचरितमानस' के निम्नांकित श्लोक का प्रतिदिन अपनी पूजा में पाठ करते हैं, तो प्रत्येक शब्द के अर्थात्मक बिम्ब को बारीकी से मानस चक्षुओं से देखिए—

नीलाम्बुजश्यामलकोमलांगं, सीतासमारोपित वामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापं, नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥
(रामचरितमानस, अयो०, श्लोक ३)

प्रत्येक शब्द से उत्पन्न चाक्षुष बिम्बों को देखते हुए आप ऐसे ही दत्तचित्त बने रहेंगे, जैसे सिनेमा घर में चित्रपट पर दिखाये जानेवाले दृश्यों में दत्तचित्त रहते हैं। 'रामायण' या 'महाभारत' की किसी फिल्म को देखते समय क्या आपका मन इधर-उधर भटका है? यदि इसका उत्तर है, नहीं भटका; तो 'प्रार्थना' के समय शब्दोभूत अर्थात्मक बिम्बों के देखते समय भी मन इधर-उधर न जाएगा यह निश्चित है। हर्ष है आप सपरिवार सानंद हैं।

श्री जयप्रकाश मीतल, शुभैषी
मकान नं० ६/६ दुबे की सराय, अलीगढ़-२०२००१ अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री जयप्रकाश चन्द्रा के नाम

८/७, हरिनगर अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक २९. ९. ७८

बालापन के मीत भैया जयप्रकाश,

सप्रेम हरिस्मरण।

तुम्हारा दिनांक २७. ९. ७८ का स्नेहसिक्त पत्र पढ़कर परम प्रसन्नता हुई। पूज्यवर श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी महाराज के पत्र से तुम्हारे विषय में कुछ संकेत-से मिले थे, किन्तु मन को सन्तोष न हुआ था।

तुम १ अगस्त, १९७८ ई० को सेवानिवृत हुए हो; मैं दिनांक १६ अगस्त, १९७६ ई० को हो गया था। माता वीणापाणि की अनुकम्पा से यू० जी० सी० ने मुझे पुनः अलीगढ़ विश्वविद्यालय में शोध के लिए नियुक्त कर दिया है।

इस समय वे सारी बातें याद आ रही हैं, जब हम—तुम दोनों ने त्रिवेणी-स्नान किया था, श्री महाराज प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी जी के साथ। तब झूसी में उनके आश्रम में 'मानस' पर कथा-प्रवचन भी हुआ था मेरा। मेरा सौभाग्य था कि मेरे उस कथा-प्रवचन में राजर्षि टंडन जी भी पधारे थे।

तुमने अपने पत्र में जिस समाज-सेवा और हरिस्मरण के प्रति अपने मन की भावनाओं को व्यक्त किया है, उसकी विस्तृत व्याख्या तुम मेरे पत्र-संग्रह के '**संस्कृति**' खंड में पा सकोगे—ऐसा मेरा विश्वास है। इससे मिलते-जुलते प्रश्न अन्य महानुभावों ने भी किये हैं।

तुम्हारा प्रश्न **'हिन्दू-संस्कृति' की स्वरूपांकना** से सम्बद्ध है। हिन्दू-संस्कृति वास्तव में एक विशाल एवं उदार संस्कृति है। इसने अपने में बहुत-कुछ समाविष्ट किया है। महाभारत-काल में हिन्दू-संस्कृति ने अपने हृदय को इतना विशाल बनाया था कि **नाग, किन्नर, कोल** आदि अनेक जातियों के साथ आर्य-जाति ने विवाह आदि सम्बन्ध स्थापित करके 'हिन्दू-संस्कृति' को परम विस्तृत विशाल एवं उदार बनाया था। क्षत्रिय-वंश के अर्जुन ने जहाँ एक ओर राजा द्रुपद की पुत्री **द्रौपदी** से विवाह किया था; वहाँ दूसरी ओर **सुभद्रा** और **नागकन्या उलूपी** को भी पत्नी बनाया था।

इतना ही नहीं नाग-जाति का सौभाग्य-चिह्न **सिन्दूर** कालान्तर में हिन्दू-नारियों का सौभाग्य-चिह्न बन गया। हिन्दू-संस्कृति वर्णाश्रम-धर्म तो मानती ही है; लेकिन **वेद** और **ईश्वर** में आस्था रखना तथा **जन्मान्तरवाद** को आत्मा के माध्यम से स्वीकारना, हिन्दू-संस्कृति का प्रमुख लक्षण है। अन्य मित्रों ने भी ऐसे ही प्रश्न किये हैं। उनको दिये गये उत्तरों में भी प्रस्तुत प्रश्न को हल करने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रयत्न कर चुका हूँ। द्विरुक्ति दोष न आये, इसलिए विस्तार नहीं किया। हर्ष है प्रभु की दया से तुम सपरिवार सानंद हो। बच्चों को आशीर्वाद। सस्नेह,

श्री जयप्रकाश चन्द्रा, तुम्हारा अपना
डिप्टी ट्रांसपोर्ट कमिश्नर (सेवा निवृत), अम्बाप्रसाद 'सुमन'
२१ स्टेशन रोड, लखनऊ (उ० प्र०)

श्री सेठ छेदीलाल जैन के नाम

८/७, हरिनगर अलीगढ़–२०२००१

श्री सेठ जैन जी, दिनांक ३०. ९. ७८ ई०

सादर सप्रेम जय जिनेन्द्र !

आपका स्नेहसिक्त पत्र मिला। उसमें आपका प्रश्न पढ़ा। आपने अपनी जिज्ञासा इन शब्दों में व्यक्त की है—

"हमारे मुनि, आचार्य, पंडित आदि कहते हैं कि संसार एक स्वप्न हैं। आपके मतानुसार इस कथन में कहाँ तक सत्यता है ? इसे मानने से समाज और व्यक्ति का कल्याण किस प्रकार हो सकता है ?"

जिस मुनि या आचार्य ने **संसार को स्वप्नवत् बताया है,** वह निश्चय ही मनोविज्ञान का मूर्धन्य पंडितप्रवर है। उसे यदि सारी दुनिया का अनुभव न हो, तो न हो; लेकिन भारत के मनुष्यों के जीवन का अनुभव उसे पूरी तरह से है।

हमारे देश के स्त्री-पुरुषों अर्थात् अधिकांश मनुष्यों को आप समझना और पूरी तरह जानना चाहते हैं, तो उन्हें तब देखिए और समझिए; जब वे स्वप्न में होते हैं। जाग्रत् अवस्था में तो हम प्रायः वही कहते हैं और करते हैं, जो हम में नहीं होता। हम प्रायः जिस व्यक्ति की चोरी हो जाने पर दुःख-भरे शब्दों में अपनी संवेदना प्रकट करते हैं, तब वास्तव में हम उसके धन की चोरी हो जाने पर प्रसन्न होते हैं। हमारे मन की प्रसन्नता हमारे शब्दों में दुःख की अभिव्यक्ति के रूप में बनावटी ढंग से प्रकट होती है। अधिक शिक्षित लोग तो ऐसा नाटक खेलने में और भी अधिक प्रवीण होते हैं।

स्वप्न की स्थिति हमें सच्चे रूप में चित्रित करती है। जागरण की स्थिति में तो हम नितान्त छलावा बने हुए रहते हैं; और उस छलावापने को ही कर्म-कौशल तथा जीवन का उत्तम रूप मानते हैं। हम उस भूमि पर रह रहे हैं, जो ऋषियों की कही जाती है। धन्य है हमें !

जाग्रत् अवस्था में जो पुत्र नित्य प्रति प्रातः पिता के चरण-स्पर्श करता है, वही रात्रि में स्वप्न की स्थिति में पिता की गर्दन पर तलवार चलाता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन में जागरण की स्थिति में जो युवक किसी युवती से बहिन कहता है, वही रात्रि में स्वप्न की स्थिति में उस युवती को लेकर भाग जाता है। जागरण की 'बहिन', स्वप्न की 'प्रेयसी' के रूप में आती है। वास्तव में उपर्युक्त पुत्र का और युवक का असली संसार वही है, जो स्वप्न में घटित हुआ है।

इस संसार को या अपने को यदि आप समझना चाहते हैं, तो उसकी और अपनी स्वप्नावस्था में देखिए। मनुष्यों के वास्तविक मन का संसार स्वप्न की स्थिति में ही दिखाई पड़ सकता है। स्वप्न में जैसे हम हैं, वास्तव में हम वैसे ही हैं। हमें उन दोषों को दूर करना चाहिए।

जिस मुनि या आचार्य ने संसार को स्वप्नवत् बताया है, उसका कथन मेरी राय में अक्षरशः सत्य है। शेष फिर कभी इस संदर्भ में निवेदन करूँगा।

आप अपने को तथा संसार में अपने साथियों को बहुत शान्ति और धैर्य से देखा करें। यदि आप अपने को राग-द्वेष से पृथक् रखकर उसका एक द्रष्टा या साक्षी मात्र समझेंगे, तो राग-द्वेष आप पर प्रभाव न डाल सकेंगे। क्रोध के समय यदि आप क्रोध को पृथक् व्यक्ति मानकर उसका गहरा अवलोकन करने लगेंगे, कि देखो यह क्रोध शरीर पर आक्रमण करते हुए इस शरीर को कैसा बना रहा है? अब यह शरीर को कँपाने भी लगा; होठों को फड़काने भी लगा; आँखों को लाल भी बनाने लगा और दाँतों को पिसवाने भी लगा—ऐसा निरीक्षण करेंगे, तो क्रोध हम पर हावी न हो सकेगा; क्योंकि हम क्रोध के द्रष्टा हैं, उससे अलग हैं।

हर्ष है आप सानन्द हैं। आज-कल बेटी इन्दो कहाँ हैं? उसे मंगलकामनाएँ! प्रियवर निर्मलकुमार आदि सब को असीस। आशा है जिनेन्द्र की दया से आप सपरिवार सानंद होंगे।

श्री सेठ छेदीलाल जैन, शुभैषी

स्पेक लाइट इंडस्ट्रीज, अम्बाप्रसाद 'सुमन'

४४–इंडस्ट्रियल एस्टेट, नुनिहाई, आगरा (उ० प्र०)

डा० एल० आर० व्यास के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)

प्रिय श्री व्यास जी, दिनांक ४–१०–७८

मंगलकामना!

आपका दिनांक ३.१०.७८ का पत्र पढ़कर परम प्रसन्नता हुई। आपका प्रश्न आज के समाज के मनुष्य के लिए एक सच्ची दिशा का संकेत करता है।

आपने उस असाध्य रोग को जानने की इच्छा प्रकट की है, जिसका

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपचार चिकित्साशास्त्र पर भी नहीं है, और जिससे बहुत-से विद्वान् और मुनि भी नहीं बच सके।

व्यास जी ! रोग दो प्रकार के होते हैं—(१) **आधि** (मानसिक रोग), (२) **व्याधि** (शारीरिक रोग)।

वैद्य या डाक्टर शारीरिक रोग अर्थात् व्याधि के उपचार में तो कुछ सफल हो सकते हैं; लेकिन मानसिक रोग अर्थात् आधि को ठीक करने में प्रायः सफल नहीं हो पाते। फिर भी कुछ मानस-रोग तो ऐसे हैं जो मुनि, विद्वान् आदि को भी नहीं छोड़ते। उनके विषय में विस्तार से तुलसीकृत **रामचरित-मानस** के उत्तरकाण्ड में काकभुशुण्डि जी ने गरुड़ को बताया है। काकभुशुण्डि जी कहते हैं कि संसार में **मोह** ही संपूर्ण रोगों का मूल है। इसी से अन्य सभी जैसे **क्रोध, कपट,** छल, **अहंकार** आदि बीसियों बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। गीता (अ०२/६२) में विषयों के संग से काम और काम से क्रोध आदि के उत्पन्न होने की बात कही गयी है। तुलसीदास कहते हैं—

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला।
तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥

(रामचरित० उत्तर० १२१/२९)

भगवत्-प्रेम और मन के संयम के द्वारा ही उपर्युक्त असाध्य रोगों से बचा जा सकता है। तुलसी संपूर्ण विश्व को सीता-राममय मानते हैं। अतः सच्चे मन से जनता-जनार्दन की सेवा, भक्ति, प्रेम ही उक्त रोगों से मुक्ति दिला सकते हैं। संसार के प्रत्येक प्राणी को जो भगवान् समझेगा, वह किसी के प्रति दुर्व्यवहार नहीं कर सकता, और न द्वेष-भाव रखेगा। वह स्वयं आत्मा-रूप और अन्य को परमात्मा-रूप समझेगा। तब विकार उत्पन्न ही न होगा; अर्थात् रोग होगा ही नहीं। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के भाव में रोग का प्रश्न ही नहीं।

हम ईश्वर को वास्तव में मन से स्वीकारते नहीं हैं। हम झूठे हैं, ढोंगी हैं, छली हैं और नित्य मुखौटा लगाये रहते हैं। अन्दर कुछ होते हैं, बाहर कुछ दिखाते हैं। जिस स्त्री को हम 'बहिन' सम्बोधन करते हैं वाणी में; उसे मन में 'प्रेयसी' बनाये रहते हैं, और उसे लेकर भाग जाना चाहते हैं। यदि हमें भारत की इस पवित्र भूमि पर रहने का गर्व है, यदि हमें ऋषियों की संतान होने का स्वाभिमान है, तो अन्दर की गंदगी को हमें निकालना होगा। इसी गंदगी से तो असाध्य रोग होते हैं। हमारा मन जब आत्मा में तथा परमात्मा में प्रवेश करेगा, तभी मानस-रोगों से मुक्ति मिलेगी। विद्वान् ग्रंथ पढ़-भर लेते हैं; मुनि तपस्या से शरीर को सुखा-भर लेते हैं। मन को आत्मा में या परमात्मा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में मिलाने की आवश्यकता है। क्रोध को जीतने के लिए विष्णु जैसा मन बनाना पड़ेगा। भृगु ने छाती पर लात मारी, किन्तु शील और सहन-शक्ति-स्वरूप भगवान् विष्णु भृगु के पाँव का तलवा सहलाने लगे और विनय पूर्वक बोले—"प्रभो ! मेरी वज्र जैसी छाती से आपके चरण-कमलों में बहुत चोट लगी होगी। मैं अपराधी हूँ भगवन् !"

ऐसे मन को कभी असाध्य रोग पीड़ित न कर पाएँगे। विष्णु के उपासक विष्णु के मन के दर्शन करें।

प्रसन्नता है कि आपके परिश्रम और ब्रह्मनिष्ठा के फलस्वरूप अलीगढ़ में **विश्वब्रह्म-तेज-परिषद्** की स्थापना हो गयी। अब आप इसकी प्रगति के लिए तन-मन-धन से योग देते रहें। मुझे विश्वास है कि आपकी अध्यक्षता में परिषद् उत्कर्ष प्राप्त करेगी। 'ब्रह्मतेज' वास्तव में 'राष्ट्रतेज' का पर्याय ही है। **ब्रह्मवर्चस्व** पत्र उस राष्ट्रतेज को जगाएगा—ऐसा मेरा विश्वास है।

हर्ष हैं आप सपरिवार सानंद हैं। 'गीता' और 'रामचरितमानस' में आपके प्रश्न का उत्तर और भी विस्तार से मिल जाएगा। सस्नेह,

डा० एल० आर० व्यास,
परामर्श चिकित्सक
८/३६, हरिनगर, अलीगढ़-२०२००१

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री ओम्प्रकाश परमार के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन',
डी० लिट्०

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक ६. १०. ७८ ई०

प्रियवर,

आशीर्वाद !

आपका दिनांक १. १०. ७८ ई० का पत्र मिला। आपके पत्र में दो प्रश्न हैं—**एक सती-प्रथा के औचित्य के सम्बन्ध में, और दूसरा ईश्वर के निराकारत्व और साकारत्व के सम्बन्ध में।**

प्रथम प्रश्न के सम्बन्ध में मैं आपको यह स्पष्ट कर दूँ कि यदि कोई बहुत ऊँचा योगी है, तो वह योगाग्नि अपने शरीर से स्वतः उत्पन्न करके अपने को भस्मीभूत कर सकता है। योग में इतनी शक्ति अवश्य है। इस शक्ति के सम्बन्ध में हमारे शास्त्रों में पर्याप्त उल्लेख मिलता है। आध्यात्मिकता के विषय में यदि मन में बात न समाती हो, तो भौतिक विज्ञान के आधार पर समझी जा सकती है। दो काष्ठ-खंडों, दो प्रस्तर-खंडों या दो लौह-खंडों के आघात एवं घर्षण से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्युत् उत्पन्न होती हुई तो आपने देखी होगी। योगी का शरीर भी तो भौतिक तत्त्वों से निर्मित है। यौगिक क्रियाओं से उन भौतिक अंगों में घर्षण द्वारा विद्युत् उत्पन्न की जा सकती है। योगी ऐसा कर लेते थे। बिजली को जब काष्ठादि का योग मिलता है, तब वह अग्नि के रूप में परिवर्तित हो जाती है। काष्ठ की चिता पर बैठकर जब योगी अपने शरीर से विद्युत् उत्पन्न कर लेगा, तब काष्ठ-चिता के सहयोग से अग्नि पैदा होगी। वही योगाग्नि है।

प्रारम्भ में कोई एक निष्ठावती पति-प्रेम-समर्पिता एवं महती पतिव्रता योगिनी काष्ठ-चिता पर बैठकर स्वतः अग्नि उत्पन्न करके पति के शव के साथ भस्म हुई होगी। कालान्तर में उसे प्रथा का रूप दे दिया गया और फिर ज़बरदस्ती विधवाओं को 'सती' किया गया। वास्तव में यह नर-समाज का नारी-समाज के प्रति घोर अत्याचार, अपराध और जघन्य पाप है। अब सती-प्रथा सरकारी कानून द्वारा समाप्त हो चुकी है।

योगाग्नि की बात सही है। रावण के हाथों से वेदवती का शरीर छू गया था। तब वेदवती ने अपने शरीर को योगाग्नि से भस्म कर दिया था। मुनि शरभंग ने भी शरीर को योगाग्नि से भस्म किया था। तुलसी ने भी 'मानस' के अरण्य काण्ड में इसका उल्लेख किया है—

एहि बिधि सर रचि मुनि सरभंगा। बैठे हृदयँ छाड़ि सब संगा।

—(मानस, अर० ८/८)

अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। राम कृपाँ बैकुंठ सिधारा।

—(मानस, अर० ९/१)

आपके दूसरे प्रश्न के उत्तर में मेरा निवेदन है कि ईश्वर निराकार तथा निर्गुण है; किन्तु साकार और सगुण भी होता है, और हुआ है। ईश्वर ने ही अपने को साकार-सगुण जगत् में बदला। **एकोऽहं बहुः स्याम्** कथन इसे प्रमाणित करता है। तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है कि पहले यह जगत् असत् (अव्यक्त ब्रह्मरूप) ही था, उसी से सत् (नामरूपात्मक व्यक्त) की उत्पत्ति हुई। उस असत् ने स्वयं अपने को ही नामरूपात्मक जगत् के रूप में रचा—

असद् वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत। तदात्मानँ स्वयमकुरुत।

—(तैत्तिरीयोपनिषद्, वल्ली २। अनुवाक ७)

ऋग्वेद के नासदीय सूक्त (१०/१२९) में तो परमेश को **नासदासीन्नो सदासीत्** कहा गया है।

विश्व का प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइंस्टीन भी सिद्ध कर चुका है कि ऊर्जा पदार्थ में, और पदार्थ ऊर्जा में परिवर्तित हो सकते हैं। जब जल नामक पदार्थ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ऊर्जा है, और ऊर्जा में आस्था रखनेवाला जल में आस्थावान् है, तब क्या बुराई है ? जल में घुसकर खोज करनेवाला ऊर्जा को अवश्य पा लेगा ।

मूर्ति प्रतीक है, ईश्वर प्रतीयमान है । मूर्ति-पदार्थ-तुल्य, ईश्वर ऊर्जा-तुल्य है । मूर्ति ईश्वर-प्राप्ति का माध्यम है । बृहदारण्यक उपनिषद (२/१) में गार्ग्य ने अजातशत्रु से कहा—"यह जो आदित्य है, इसकी मैं ब्रह्म-रूप से उपासना करता हूँ ।" ऊर्जा को बिना पदार्थ के देखा भी नहीं जा सकता । बिना पदार्थ के ऊर्जा स्वयं अपने में दृश्यगत अस्तित्व भी नहीं रख सकती । निराकार-निर्गुण का ध्यान भी नहीं किया जा सकता । वह निष्क्रिय भी है । इसीलिए ध्यान की दृष्टि से साकार, सगुण एवं सक्रिय ईश्वर को मानव-हृदय ने स्वीकार किया । इस मान्यता से समाज का कल्याण भी हुआ । यदि ईश्वर में साकार, सगुण होने की शक्ति न मानी जाएगी, तो वह सर्वशक्तिमान् भी न रहेगा । वह सदा निराकार, निर्गुण ही रहता है और रह सकता है—ऐसा कहना अध्यात्म और भौतिक विज्ञान को झुठलाना है । जीवन की कर्म-भूमि तथा भाव-भूमि पर कल्याण की दृष्टि-से साकार-सगुण ईश्वर में आस्था सहज, सरल और अधिक उपादेय है ।

श्री ओम्प्रकाश परमार, ए० पी० ओ०, आपका
१४२/२६, द्वारकापुरी, अलीगढ़ । अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री रवेन्द्रकुमार मिश्र के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१

प्रियवर रवेन्द्रकुमार मिश्र, दिनांक ८. १०. ७८ ई०

आशीर्वाद !

आपका पत्र मिला । आपका प्रश्न है कि "हम गीता के अनुसार समत्व-बुद्धि संयुक्त जीवन कैसे बिता सकते हैं ? अर्थात् मैं यह जानना चाहता हूँ कि **संसार में राग-द्वेष से अलग रहते हुए जीवन बिताना कैसे सम्भव है ?** गीता हमारे समक्ष एक आदर्श मात्र है, या उसमें कुछ **यथार्थ** भी है ।"

जिस प्रकार **राग** की अनेक सन्तानें हैं, उसी प्रकार 'द्वेष' की भी अनेक संतानें हैं । **राग** की संतानों में **मोह** और **लोभ** प्रमुख हैं । **द्वेष** की सन्तानों में **ईर्ष्या** और **क्रोध** बढ़े-चढ़े हैं ।

मैं अलीगढ़ के 'हरिनगर' नाम के मोहल्ले में रहता हूँ । मेरे घर के पास में एक छोटा सा कारखाना है, जिसमें बिजली के बल्बों की टोपियाँ (कैप) बनती हैं । मुझे बस इतना ही मालूम है कि उसमें टोपियाँ बनती हैं । उन टोपियों को मैंने देखा भी है ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक समागन्तुक साहित्यकार ने मेरे घर आने पर मुझसे कहा कि आपके घर के पास यह 'खट-खट' होती रहती है। ऐसी स्थिति में आप पढ़ने-लिखने का काम कैसे कर लेते हैं ? मैंने उनसे निवेदन किया कि साहित्य-सर्जना के क्षणों में मुझे तो कारखाने की 'खट-खट' कभी महसूस ही नहीं हुई। इसने कभी बाधा भी नहीं डाली। इस समय आपसे साहित्यिक चर्चा करते हुए भी मुझे 'खट-खट' का पता न था। जब आप कहने लगे, तब कुछ जान रहा हूँ कि 'खट-खट' हो रही है।

प्रिय भाई ! मैं कारखाने में बनी हुई टोपियाँ देख चुका हूँ; लेकिन उनकी 'खट-खट' ने मुझे कभी बाधा नहीं पहुँचायी। कारण कि मैं अपने कार्य में ऐसा डूबा रहता हूँ कि 'खट-खट' होने पर भी मेरे लिए न होने के समान है। मेरे लिए कारखाना है भी, और नहीं भी। मुझे उस कारखाने से कुछ लेना-देना भी नहीं है। मैं उसका केवल द्रष्टा या साक्षी मात्र हूँ। कर्म करते हुए हम प्रत्येक कर्म को देखें और समझें। किये जानेवाले कर्म को हमने करने से पहले ठीक तरह से न समझा, तो हम महामूर्ख हैं। बुद्ध जी ने कहा है—

पापानि कम्मानि करं बालो न बुज्झति।

इसी तरह यदि हम राग या द्वेष के द्रष्टा मात्र बने रहेंगे, तो संसार में रहते हुए राग या द्वेष हमें सता न पाएँगे।

मान लीजिए, हम नदी के किनारे पर खड़े हुए उसके पानी के भँवर में एक तिनके को देख रहे हैं कि तिनका भँवर में पड़कर चक्कर काट रहा है। हम देख-भर रहे हैं; कोई बात नहीं—कोई असर नहीं हम पर। थोड़ी देर बाद मछलियाँ और कछुए देखने लगे। फिर नाव आती हुई देखने लगे। यह सब देखकर अपने घर वापस चले आये और अपने कामों में लग गये। नदी के दृश्यों ने कोई सुप्रभाव या कुप्रभाव हम पर नहीं डाला। क्यों ? क्योंकि हमने देखा भर था उन्हें। उनसे हमारा कोई राग-द्वेष न था। उनके हम **द्रष्टा मात्र** थे। हम उनसे अलग थे। वे अपने में थे; हम अपने में थे।

इसी तरह यदि संसार में हम राग और द्वेष को पृथक् मानकर उनके **द्रष्टा मात्र** बने रहेंगे, तो उनका कोई प्रभाव हम पर न पड़ेगा। हमारी आत्मा का अस्तित्व है भी अलग।

काम या क्रोध आत्मा से पृथक् हैं। **मैं क्रोधित हो रहा हूँ**—यह आत्मा की भाषा नहीं है; शरीर या मन की हो सकती है। आत्मा की भाषा है—**मुझे (मेरी ओर) क्रोध आ रहा है**। अर्थात् क्रोध का अस्तित्व मुझसे पृथक् है। मैं क्रोध का द्रष्टा हूँ। जब वह आने लगे, तो मैं बहुत सावधान होकर उस पाप-रूप क्रोध का निरीक्षण करूँ। उसके दाव-पेचों को भी देखूँ। देखो, क्रोध आया

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इसने मेरे शरीर को किस तरह परेशान करना शुरू किया ? जब हम पृथक् द्रष्टा बने हुए यह सब कुछ देखते रहेंगे, तो क्रोध शरीर पर आक्रमण करने पर भी हम से पृथक् ही रहेगा। यही बात काम, मोह और लोभ के समय भी समझनी चाहिए। यही अनासक्ति है। इसे ही भगवान् कृष्ण ने गीता (२/४८) में '**समत्वबुद्धि का योग**' कहा है। राग-द्वेष के तटस्थ द्रष्टा के लिए राग-द्वेष हैं भी, और नहीं भी। तब हम राग-द्वेष को न पकड़े हुए हैं और न छोड़े हुए। पकड़ना-छोड़ना समझ का एक फेर है। जब हम अलग हैं, द्रष्टा मात्र हैं; तब पकड़ना-छोड़ना क्या ?

संसार की वस्तुएँ हम से अलग अस्तित्व रखती हैं। हमसे सदा ही वे पृथक् रहेंगी। हमारी आँखों के माध्यम से हमारा मन किसी वस्तु को तीन तरह से देख सकता है—

(१) रागाविष्ट होकर देखना (२) द्वेषाविष्ट होकर देखना (३) केवल देखने के लिए देखना।

तीसरी तरह का देखना ही वास्तव में सच्चे साक्षी या द्रष्टा की दृष्टि-प्रक्रिया है। इस दृष्टि के मनुष्य हो चुके हैं और अब भी हैं। गीता के अनुसार तीसरे प्रकार की दृष्टि रखनेवाला ही **योगी** है। वही योग-साधक भी है। उसे ही गीता के अनुसार समत्व बुद्धिसंयुत **कर्म- योगी** कहा जाना चाहिए। अतः भगवान् ने अर्जुन से कहा—

सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते। (गीता २/४८)

राग हमें तभी अपने में फाँसे रख सकता है, जब हम राग के आकर्षण को सत्य समझते हों; किसी एक ही विशिष्ट वस्तु को आकर्षक समझते हों।

मान लीजिए कि आपने किसी युवती की आँखें, नाक और मुख देखा और उसकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर जीवन को पागलों का-सा बना बैठे; न दिन को चैन, न रात को तसल्ली।

आप समझ लीजिए कि जिस मुख को आपने सौन्दर्य का आधार या अधिष्ठान माना है, वह चीन के निवासी के लिए बेकार की वस्तु है। चीन के निवासी के लिए सौन्दर्य का अधिष्ठान नारी के छोटे-छोटे पाँवों (अंघ्रि) में हैं। अतः सौन्दर्य किसी एक मुख्य वस्तु में नहीं है। आपने जिसे सुन्दर समझा, चीनी ने उसे असुन्दर। सुन्दरता स्वयं कुछ नहीं है।

पंडितराज जगन्नाथ ने कहा है कि संस्कारों के सहारे ही सौन्दर्य-बोध होता है। हमारे मन की आँख यदि तटस्थ द्रष्टा है, तो वस्तु या प्राणी के प्रति न राग होगा, न द्वेष।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी वस्तु को हम इसलिए सुन्दर मानते हैं कि उसे हमारा संस्कारी मन चाहता है; वास्तव में वस्तुएँ अपने में कभी सुन्दर-असुन्दर नहीं होती। सौन्दर्य तो द्रष्टा की वस्तु के प्रति रागाविष्ट दृष्टि से ही उत्पन्न होता है।

हमारे शरीर में तीन प्रमुख अस्तित्व हैं–(१) **शरीर** (२) **मन** (३) **आत्मा।**

हम वास्तव में 'आत्मा' हैं। राग और द्वेष की स्थिति शरीर और मन में हो सकती है; आत्मा में नहीं––इसे समझ लेना ही आत्मस्वरूपावगति है। यही आत्मस्थ अवस्था है। हमारा मन जब शरीर तथा इन्द्रियों का अनुगामी बन जाता है, तब हम राग-द्वेष में फँस जाते हैं। यदि मन आत्मा का अनुगामी बन गया और आत्मा में लीन हो गया, तो राग-द्वेष का झंझट समाप्त। हम आत्मस्थ बनें, साक्षी बनें—यही आवश्यक है।

संसार में रहते हुए भी हम शान्ति से जीवन बिता सकते हैं। राग-द्वेष रहें भी, परवाह मत करिए। वे अलग हैं, आप स्वयं अलग हैं। आप उनके द्रष्टा मात्र हैं। उनके क्रिया-कलापों को तटस्थ होकर देखिए। तब आप देह होने पर भी विदेह बने रहेंगे। संसार में रहकर भी आप संसार से ऊपर रहेंगे। शुद्ध द्रष्टा की दृष्टि बनाना सम्भव है; असम्भव नहीं। गीता कोरा आदर्श नहीं, यथार्थ भी है। शेष फिर कभी।

तुम्हारा कभी सखीट जाना भी हुआ है क्या? वहाँ के एक प्रसिद्ध रईस थे, राय इन्द्रनारायण जी। उनकी उदारता मुझे सदा याद रहेगी।

प्रभु उनके परिवार को सुखी रखें। सस्नेह,

श्री रवेन्द्रकुमार मिश्र शुभैषी

गाँव, नगला भजुआ; पो०, चपरई, (एटा)। अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री राजेन्द्रपाल शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ. प्र.)

१४. १०. ७८ ई०

प्रियवर राजेन्द्र,

आशीर्वाद!

तुम्हारा पत्र, दस दिन हुए, मिला था। तुम्हारे प्रश्न पर विचार करता रहा, अब तक। तुमने **महाभारत-संग्राम** के समय के सम्बन्ध में मेरा मत जानना चाहा है और यह भी जानने की इच्छा प्रकट की है कि **वास्तव में वेदव्यासकृत महाभारत ग्रन्थ इतिहास है अथवा कल्पना मात्र।**

महाभारत-संग्राम के **काल-निर्णय** के सम्बन्ध में चिन्तामणि विनायक वैद्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का मत अब तक प्रामाणिक माना जाता था। उनके अनुसार महाभारत संग्राम ईसा से ३१०२ वर्ष पूर्व ११ दिसम्बर को प्रारम्भ हुआ था। अब एक मत यह भी प्रामाणिक होता जा रहा है कि महाभारत का युद्ध ईसा से ३१४८ वर्ष पूर्व हुआ था। यह मत सप्तर्षि-काल-गणना के आधार पर है। इस समय ईसवी सन् १९७८ है। अतः हम कह सकते हैं कि महाभारत का युद्ध आज से ५१२६ वर्ष पूर्व हुआ था। महाभारत के युद्ध के बाद श्रीकृष्ण ३७ वर्ष और जीवित रहे थे। अर्थात् श्रीकृष्ण का शरीर-त्याग ३१११ वर्ष ईसवी पूर्व हुआ था। तभी युधिष्ठिर ने राज्य-शासन प्रारम्भ किया था। श्रीकृष्ण ने अधिकांश जीवन द्वापर में बिताया था। ३१०१ वर्ष ईसवी पूर्व कलियुग का प्रारम्भ हो गया था। अब तक कलियुग के ५०७९ वर्ष व्यतीत हो गये। कलियुग की कुल अवधि ४ लाख ३२ हज़ार वर्ष है। अभी कलियुग का समय लगभग ४ लाख २७ हज़ार वर्ष और शेष है। सप्तर्षि-काल-गणनानुसार कलियुग लगभग ४ लाख वर्ष और रहेगा।

सारांश यह कि मूल **महाभारत** ग्रंथ आज से लगभग ५००० वर्ष पहले रचा गया था। वाल्मीकीय 'रामायण' की रचना महाभारत ग्रंथ से भी पहले हुई थी। ग्रन्थ-रचना का काल लिपिगत अवस्था से नहीं आँकना चाहिए। लिपि का जन्म तो सैकड़ों वर्ष बाद हुआ था। वैदिक ऋचाएँ तो वाल्मीकीय रामायण से भी हजारों वर्ष पूर्व रची गयी होंगी।

'महाभारत' एक ऐतिहासिक काव्य-ग्रंथ है। महाभारत का कथानक बिलकुल मनगढ़न्त नहीं है। शुद्ध इतिहास ग्रंथ और ऐतिहासिक काव्य-ग्रंथ में अंतर होता ही है। पुरातात्त्विक सामग्री सिद्ध करती है कि महाभारत की घटनाएँ सत्य हैं। उसके नगर आदि आज भी अभी मौजूद हैं। भाषा-विकास के कारण कुछ नाम बदल-से गये हैं। जिन्हें आज हम **पानीपत, सोनीपत, बागपत, इन्द्रपत,** और **तिलपत** कहते हैं, वे महाभारत ग्रंथ में **पाणीप्रस्थ, श्रोणीप्रस्थ, वृकप्रस्थ, इंद्रप्रस्थ** और **तिलप्रस्थ** नाम से वर्णित हैं। **हस्तिनापुर** तो आज भी **हस्तिनापुर** ही पुकारा जाता है। महाभारत का **काम्पिल्य** नगर आज **कंपिल** बोला जाता है। राजा विराट की राजधानी **विराट** नगरी थी—इसे आज **बैराट** कहते हैं। यह स्थान जयपुर से लगभग ५० मील पूर्व की ओर है।

मेरी राय में 'महाभारत' ग्रंथ कोरी कल्पना नहीं है। सस्नेह,

श्री आर० पी० शर्मा, शुभैषी

इंजीनियर, अम्बाप्रसाद 'सुमन'

राष्ट्रीय कैमीकल्स एण्ड फर्टिलाइज़र्स लिमि०,

ट्राम्बे, बम्बई—७४

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री पं० भूदेव शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़-(उ०प्र०)
दिनांक १६. १०. ७८

आदरणीय पंडित जी,

सादर नमस्कार ।

आप मेरी कुटिया पर प्रश्न लेकर पधारे। मैं बाहर गया था । मेरा दुर्भाग्य; दर्शन न मिले; परन्तु कुटिया मंगलमयी बन गई ।

आपका प्रश्न है कि **सुखी जन्म किस तरह प्राप्त हो सकता है ? मोक्ष का साधन क्या है ?**

आपको अपने प्रश्न का उत्तर श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध के तृतीय अध्याय के ४३, ४४ वें श्लोक में मिल सकता है । उन श्लोकों में महर्षि आविर्होत्र ने राजा निमि को **कर्म**, **अकर्म** और **विकर्म** के सम्बन्ध में बताया है

शास्त्रविहित कर्म को **कर्म** कहते हैं । अर्थात् वेद-शास्त्र जिन्हें करणीय कर्म बताते हैं, वे ही 'कर्म' हैं । जो कर्म शास्त्रों द्वारा निषिद्ध हैं, वे **अकर्म** हैं । शास्त्र-विहित कर्मों का उल्लंघन **विकर्म** कहलाता है ।

कर्माकर्म विकर्मेति वेदवादो न लौकिकः—(भागवत, ११/३/४३) ।

मान लीजिए कि शास्त्र कहता है कि प्यासे को पानी पिलाना चाहिए, तो पानी पिलाना विहित कर्म है । यह **कर्म** भी कहलाता है । शास्त्र हिंसा का निषेध करता है । अतः हिंसा **अकर्म** है । शास्त्रनिषिद्ध कर्म का नाम 'अकर्म' है । 'झूठ बोलना' अकर्म है ।

मान लीजिए, शास्त्र कहता है कि गुरु के सामने सच बोलना चाहिए । यदि कोई शिष्य गुरु के सामने झूठ नहीं बोलता; लेकिन सच भी नहीं बोलता; अर्थात् बात पूछने पर चुप हो जाता है । 'चुप होना' **विकर्म** माना जाएगा । चुप्पी शास्त्रविहित कर्म का उल्लंघन है ।

हिन्दू-धर्म या हिन्दू-संस्कृति का लक्ष्य सदा उच्चता और उदात्तता (धर्म-मोक्षमूला उदात्तता) रहा है । उसकी दृष्टि में 'कर्म' और 'निष्काम कर्म' ही जीवन में मानव के लिए करणीय कर्म घोषित किये गये हैं । मानव-मूल्यों को जीवन में उतारते हुए सामाजिक उन्नयन करना ही हिन्दू-संस्कृति का उद्देश्य रहा है, जिसके प्रमुख स्तम्भ सर्वश्री केशवचन्द्र सेन, महर्षि दयानंद, रामकृष्ण, परमहंस, विवेकानंद, रामतीर्थ आदि रहे हैं । हिन्दू-संस्कृति संयम की संस्कृति है, काम और भोग की विकृति नहीं ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्म अर्थात् शास्त्र विहित कर्म करने से सुखी जन्म मिलेगा। **अकर्म** (निषिद्ध कर्म) से दुखी जन्म मिलेगा। यदि कोई मोक्ष चाहता है, तो उसे **निष्काम कर्म** करना चाहिए; अर्थात् फलासक्ति-रहित शास्त्र-विहित कर्म। 'गीता' में निष्काम कर्म पर ही बल है। संसार के प्रति न राग, न द्वेष; कर्म करना केवल कर्म के लिए—यही निष्काम कर्म है। मध्य की स्थिति में ही जीवन-वीणा के तार ठीक बज सकते हैं।

बच्चों को असीस। हर्ष है कि परमेश की दया से अब आप स्वस्थ हैं।

श्री पं० भूदेव शर्मा, शुभैषी
प्रधानाचार्य (सेवा निवृत्त) अम्बाप्रसाद 'सुमन'
जनकपुरी, रामघाट रोड, अलीगढ़।

डा० (श्रीमती) सरोजिनी कुलश्रेष्ठ के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१ (उ० प्र०)
दिनांक १९. १०. १९७८ ई०

प्रिय बहिन सरोजिनी जी,

आपका पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। पत्रांकित जिज्ञासा से विदित हुआ कि आप आज-कल अध्यात्म एवं दर्शन से सम्बद्ध ग्रंथों को मनोयोग से पढ़ रही हैं। आपकी जिज्ञासा को संक्षेप में इन शब्दों में बाँधा जा सकता है—

योग का प्रमुख अर्थ क्या है? गीता में कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, सांख्ययोग आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। इनकी अवधारणाएँ क्या-क्या हैं? कृपया सरल भाषा में स्पष्ट करें।

संस्कृत में एक धातु युज् है। इससे संज्ञा शब्द दो बनते हैं—(१) **योग** (२) **युक्ति**। **योग** शब्द के प्रमुख अर्थ तीन हैं—(१) **युक्ति** (२) **मिलन** (३) **निरोध**।

जीवात्मा जिस युक्ति से परमात्मा से मिले, उस युक्ति को **योग** कहते हैं। अथवा जीवात्मा और परमात्मा के मिलन का नाम **'योग'** है। इस मिलन के लिए हमारे ऋषि-मुनियों ने दो मार्ग बताये हैं—पहला लम्बा मार्ग, जिसे **पिपीलिका-मार्ग** कहते हैं। चींटी धीरे-धीरे चलती है, देर में गन्तव्य पर पहुँचती है। दूसरा छोटा मार्ग, जिसे **विहंगम-मार्ग** कहते हैं। पक्षी उड़कर शीघ्र गन्तव्य पर पहुँच जाता है। प्राय: भक्तजन विहंगम मार्ग से परमात्मा को शीघ्र पा लेते हैं। भक्ति के कारण शीघ्र ही वे समाधि की अवस्था में पहुँच जाते हैं। श्री शुकदेव, चैतन्य, मीरा आदि एक दम समाधि में पहुँचते थे। वे विहंगम-मार्ग के अनुयायी थे। **हठयोगी, राजयोगी, ध्यानयोगी**, आदि वर्षों की योग-साधना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के उपरान्त परमात्मा से मिलन की स्थिति प्राप्त कर सकते हैं। यह पिपीलिका-मार्ग है। इसमें बहुत समय तक चित्तवृत्तियों का निरोध भी करना पड़ता है। इसलिए निरोध को भी 'योग' नाम दिया गया, जैसा कि पातंजल योगदर्शन में कहा गया है—**योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। योग**=चित्तवृत्तिनिरोध।

'योगवासिष्ठ' में वसिष्ठ जी ने रामचन्द्र जी को संसार-सागर से पार होने की युक्ति बतायी है। उस युक्ति को भी **योग** कहा गया है। **योग**=युक्ति।

जीवात्मा का मिलन परमात्मा से निष्काम कर्म द्वारा, ज्ञान द्वारा या भक्ति द्वारा हो सकता है। इसलिए साध्य-साधन लक्षणा के आधार पर **कर्म, ज्ञान** और **भक्ति** को भी 'योग' नाम दिया गया है। **योग**=मिलन, जोड़।

किसी दृश्य को यदि हम देख रहे हों, तो हम उस दृश्य के द्रष्टा हुए। हमारा अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, और अहंकार का चतुष्टय) दृश्य है और हम द्रष्टा हैं। इस तरह आत्मा द्रष्टा है और अन्तःकरण दृश्य है। आत्मा और अन्तः-करण के मिलने पर सृष्टि उत्पन्न होती है। इस तरह आत्मा और अन्तःकरण का मिलन कारण है और सृष्टि कार्य है। इस सृष्टि में ही जीवात्मा की स्थिति विकृत तथा कष्टमय बन जाती है। उस कष्ट से छुटकारा पाना ही जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रारंभ में तीन साधन बताये गये थे—(१) **कर्म काण्ड** (२) **उपासना काण्ड** (३) **ज्ञान काण्ड।**

निष्काम कर्म द्वारा लक्ष्य-प्राप्ति का साधन कर्म काण्ड; चित्तवृत्तिनिरोध सहित भावमयी लक्ष्य-प्राप्ति का साधन उपासना काण्ड; और अज्ञान-नाश और ज्ञान द्वारा लक्ष्य-प्राप्ति का साधन ज्ञानकाण्ड कहलाता है।

योग के अनेक प्रकार हैं। कुछ प्रकार यहाँ लिख रहा हूँ—(१) **हठयोग** (२) **राजयोग** (३) **अष्टांगयोग** (४) **लययोग** (५) **ध्यानयोग** (६) **कर्मयोग** (७) **भक्तियोग** (८) **सांख्ययोग** (९) **ज्ञानयोग** (१०) **मंत्रयोग** इत्यादि।

उपर्युक्त योग-भेदों में से यहाँ विशेषतः पूछे गये आपके योग-भेदों की अवधारणाएँ संक्षेप में लिख रहा हूँ—

(१) **कर्मयोग**=समत्व भाव से निष्काम कर्म करना।

(२) **भक्तियोग**=साकार परमात्मा को स्वामी समझकर अनन्य भाव से चित्त में भगवान् को लाना तथा उन्हीं के लिए अपने को पूर्णतः समर्पित करना।

(३) **सांख्ययोग**=अहंता, ममता आदि को समूल नष्ट करके सर्वव्यापक निरा-कार परमात्मा में एकीभाव से स्थित होना।

(४) **ज्ञानयोग**=हठयोग, राजयोग, समाधि आदि के द्वारा अज्ञान-नाश करके पूर्ण ज्ञान के माध्यम से परमात्मा में लीन होना। स्थूल शरीर को नियंत्रित

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं स्वस्थ रखने के साधन का नाम **हठयोग** और मन को नियंत्रित रखने के साधन का नाम **राजयोग** है।

राजयोगी की प्रमुख चार भूमियाँ होती हैं— (१) प्रथम कल्पित भूमिका (२) मधुमती भूमिका (३) प्रज्ञाज्योति भूमिका (४) अतिक्रान्त भावनीय भूमिका। प्रथम कल्पित भूमिका में सवितर्क समाधि, और मधुमती भूमिका में निर्वितर्क समाधि लगती है। मधुमती द्वितीय कोटि की भूमिका है। सांख्य योग और ज्ञानयोग बहुत-कुछ पर्याय-से ही समझिए। सांख्ययोग एक प्रकार से पूर्ववर्ती सीढ़ी है।

मैं संक्षेप में आपकी जिज्ञासा इस समय इतनी ही शान्त कर सकता हूँ। शेष फिर कभी। हर्ष है आप सानन्द हैं। इस 'सूरपंचशती' वर्ष में एक साहित्य-समारोह भी कराइए। सस्नेह,

डा० (श्रीमती) सरोजिनी कुलश्रेष्ठ आपका
प्राचार्या, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
किशोरीरमण कन्या महाविद्यालय, मथुरा

श्री रामजीलाल शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक २५. १०. ७८ ई०

प्रियवर,

आशीर्वाद !

आपके पत्र में **ईशावास्योपनिषद्** का निम्नांकित मंत्र पढ़ा और उसके अर्थ के सम्बन्ध में आपकी जिज्ञासा भी विदित हुई :—

ॐपूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।। (ईशावास्योपनिषद्)

उपनिषद् के ऋषि का कथन है कि **वह** (परमात्मा) पूर्ण है और यह (विश्व) भी पूर्ण है, जो उसी पूर्ण परमात्मा में से निकला है। उस पूर्ण में से यह पूर्ण निकल जाता है; फिर भी पूर्ण ही बच रहता है। इस विचित्र स्थिति के सम्बन्ध में आपकी जिज्ञासा है। होनी भी चाहिए, क्योंकि हमारा व्यावहारिक अंकगणित ऋषि के कथन को सत्य प्रमाणित नहीं कर सकता। किसी पूर्ण संख्या में से उसका कोई अंश निकाल दिया जाएगा, तो उस पूर्ण संख्या की पूर्णता में कमी आजाएगी; लेकिन ऋषि का कहना है कि पूर्ण में से पूर्ण के निकल जाने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है।

निर्दिष्ट मंत्र में पूर्ण का पूर्णत्व **शून्य** का सूचक भी है। वृत्त (गोल घेरा) पूर्ण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, चाप अपूर्ण है। वृत्त अर्थात् शून्य को पूर्ण समझिए। शून्य में से शून्य निकल जाने पर शून्य ही शेष रह जाता है।

ईशावास्य के ऋषिप्रवर प्रतीकात्मक भाषा में बोल रहे हैं। शून्य अर्थात् संख्यातीत अर्थात् अमापीय–Immeasurable धनात्मक संख्यातीतता भी शून्य और ऋणात्मक संख्यातीतता भी शून्य अर्थात् पूर्ण। **पूर्ण**=अपरमित, अथाह, कथ्य, शून्य।

आचार्य रजनीश ने भी इस मंत्र की व्याख्या की है। वह भी मुझे अच्छी लगी। उस व्याख्या के आलोक में मैं यहाँ अपने शब्दों में आचार्य रजनीश की ही बात दुहरा रहा हूँ।

भारतीय तर्क में **पहले निष्कर्ष, फिर प्रक्रिया** रहती है; लेकिन यूनानी तर्क में **पहले प्रक्रिया**, फिर **निष्कर्ष** रहता है। ईशावास्य का ऋषि पहले निष्कर्ष कह देता है कि **वह** पूर्ण है। हमारे ऋषि शाश्वत सत्य अर्थात् ऋत के दर्शन कर चुके थे। जो **है** है, वह सदैव ही है; भले ही हम उसे बाद में जान सकें। **वह** आदि में, मध्य में और अन्त में रहता है। **वह** सदा शाश्वत है। न्यूटन ने जिस दिन पृथ्वी के गुरुत्त्वाकर्षण की बात कही थी, उस दिन से पहले भी पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण था। उस गुरुत्वाकर्षण के सत्य को जिस दिन न्यूटन ने जाना, वह न्यूटन के ज्ञान में नूतनता मानी जा सकती है; गुरुत्त्वाकर्षण नूतन नहीं है। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण का जो सिद्धान्त ढका हुआ था, उसे न्यूटन ने उघाड़ भर दिया। लोग नहीं जानते थे, न्यूटन ने उन्हें जता दिया—न्यूटन को इतना ही श्रेय है। यूनानी लाजिक तो प्रक्रिया के बाद में ही निष्कर्ष प्रस्तुत करती है। उसमें सत्य के उद्‌घाटन की नूतनता समझनी चाहिए; सत्य के सिद्धान्त या सत्य के अस्तित्व की नहीं।

ईशावास्य के ऋषि का अंकगणित एक दम ऊँचा अंकगणित है, जिसमें असंख्य में से असंख्य निकलकर असंख्य ही रहता है।

आपने मंत्रों में परमात्मा के लिए दो शब्द पढ़े होंगे—(१) **ऋत** (२) **सत्य** **वह** सत्य-स्वरूप है। अंग्रेजी में भी कहा जाता है—Love is God and Truth is God.

परमात्मा को **प्रेम या सत्य** का पर्याय समझना चाहिए। प्रेम को कोई नाप-तोल नहीं सकता। प्रेम मापरहित (Immeasurable) है। यदि आप किसी को अपार प्रेम देते हैं, तो आपका प्रेम कम नहीं होता। आपके हृदय का प्रेम आपके हृदय में सदा उतना ही बना रहता है। अपार प्रेम में से अपार प्रेम निकल जाने पर भी आप में अपार प्रेम ज्यों का त्यों बना रहता है। अपार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अर्थ 'पूर्ण' है। इसलिए यह कथन सत्य है कि पूर्ण में से पूर्ण निकल जाने पर शेष पूर्ण ही रहता है। आप में सत्य का अस्तित्व है। आप संसार को सत्य देते हैं अर्थात् संसार से सदा सत्य का व्यवहार करते हैं; तब आपके सत्य में कुछ कमी आजाती है क्या ? नहीं आती। परमात्मा सत्य-स्वरूप है। वह सत्य 'पूर्ण' ही है। इसीलिए ऋषि कहता है कि पूर्ण में से पूर्ण के निकल जाने पर पूर्ण ही बच रहता है। **नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः** (गीता २/१६)। परमात्मा **सत्**, संसार **सत्** अर्थात् **सत्** का भाव **सत्य**। परमात्मा पूर्ण, संसार भी पूर्ण। फिर पूर्ण में से पूर्ण निकला, तो शेष रहा पूर्ण। शेष फिर कभी।

ईशावास्य में अन्य मंत्र भी ऐसे विचित्र कथनों से संयुक्त हैं। सस्नेह,

श्री रामजीलाल शर्मा, एम० ए० आपका
८/२८ द्वारकापुरी, अलीगढ़-२०२००१ अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री हरिशंकर वार्ष्णेय (मुनीम जी) के नाम

शिविर मथुरा (उ० प्र०)
दिनांक २८. १०. ७८ ई०

प्रिय श्री मुनीम जी !

सप्रेम जय रामजी की।

आपने प्रश्न ऐसा पूछा है, जो पुरातनता और आधुनिकता का समन्वयात्मक स्वरूप है। आपका मुख्य प्रश्न है कि **क्या यज्ञोपवीत धारण करना हमारा अनिवार्य धर्म है ? यदि न धारण करें, तो क्या हम पापी माने जाएँगे ?**

धर्म शब्द के अर्थ को लोग प्रायः पारलौकिकता से जोड़ देते हैं। वास्तव में **धर्म** मानव का सदाचार है। श्रुति-स्मृति आदि शास्त्र हमें मानव का सदाचार बताते हैं। यह बात अवश्य है कि शास्त्र देश-काल के अनुसार ही अपनी व्यवस्था देते हैं। इसलिए धर्म भी बदलता रहता है। व्यक्ति तथा समाज के कल्याणकारी करणीय कर्म का नाम धर्म है। **संप्रदाय, मजहब** या **रिलीजन** शब्द कभी भी **धर्म** का पर्यायवाची नहीं हो सकता।

यदि कोई मनुष्य यज्ञोपवीत को केवल तीन धागे मानकर शरीर पर लटका लेता है, आवश्यकता पड़ने पर उसमें चाबियों का गुच्छा भी बाँध लेता है, और देखा-देखी शौच, लघुशंका आदि के समय कानों पर लपेट लेता है, तो उसके लिए यज्ञोपवीत व्यर्थ है; कोई अर्थ नहीं। पहने तो कोई धर्म नहीं, और न पहने तो कोई पाप नहीं।

जो यज्ञोपवीत के तीनों सूत्रों (तीनों धागों) का अर्थ समझता है और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके अंतर्भूत अर्थ को जीवन में सचाई के साथ उतारता है, वह निश्चित रूपेण धर्मात्मा है।

यज्ञोपवीत के तीन धागे, और उसकी एक गाँठ बड़ा गहरा अर्थ रखती है। उस अर्थ को शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट किया गया है।

तीन धागे तीन ऋणों के सूचक हैं उन तीनों ऋणों से उऋण होना ही सच्चे यज्ञोपवीत को सच्चे अर्थों में धारण करना माना जाएगा। वे तीन ऋण हैं—(१) **ऋषिऋण** (२) **देवऋण** (३) **पितृऋण**।

ऋषिऋण का सम्बन्ध ज्ञान लेने तथा देने से है। गुरु ज्ञान देता है अपने शिष्य को। वह शिष्य फिर गुरु बनकर दूसरे शिष्य को ज्ञान देता है। इस तरह देने-लेने का क्रम चलता रहता है। समाज में इस क्रम को चलाते रहना ऋषिऋण से उऋण होना माना जाएगा।

हम देवों का आराधन, पूजन, ध्यान आदि करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि हम विचार और कर्म की भूमि पर देवों का अनुसरण करते हैं। देवों की भाँति विचार और कर्म में उठना **देवऋण** से उऋण होना माना जाता है।

पितृऋण से उऋण होने का अर्थ है विवाह करके गृहस्थ-आश्रम का पालन करना और सन्तान उत्पन्न करना। मनुष्य स्वयं सुपुत्र रूप में गृहस्थाश्रम भोगता है और अपने सुविचार तथा सुकर्म की थाती अपने पुत्र को सौंपता है और उसे सुपुत्र बनाता है। मनुष्य इसी विचार और कर्म से पितृऋण से उऋण होता है। विवाह जीवन-यात्रा में स्वाभाविक मार्ग से चलने की सुन्दर विधि है।

यज्ञोपवीत के तीनों धागे हमें उपर्युक्त तीनों ऋणों से उऋण होने का संकेत देते हैं। जो उन संकेतों को मानता है, वह वास्तव में धर्मातमा है। जो नहीं मानता है, वह पापी है।

यज्ञोपवीत की गाँठ **भूतऋण** को सूचित करती है। इसे **मनुष्यऋण** या **प्राणिऋण** भी कह सकते हैं। जब व्यक्ति समाज के लिए अपने को समर्पित कर देता है, तब उसे भूतऋण से उऋण मान सकते हैं। इससे प्राणिमात्र के प्रति उदात्त एवं शिव दृष्टि उत्पन्न होती है। भूतऋण से उऋण होनेवाला समष्टि के प्रति व्यष्टि का बलिदान कर देता है। यज्ञोपवीत की गाँठ भूतऋण का प्रतीक है। हमें उस ऋण से उऋण होना चाहिए।

आज हमारे देश के नेता और उच्च शासक भूतऋण नहीं चुका रहे। उनकी करनी और कथनी में आकाश-पाताल का अन्तर है। जीवन असत्य, ढोंग और छल से परिपूर्ण है। अतः आज इस आस्थावादी देश के हृदय पर निराशा और अनास्था छायी हुई है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त चारों ऋणों से उऋण होनेवाला मनुष्य सच्चा यज्ञोपवीत धारण करता है। मनुष्य यदि यज्ञोपवीत (जनेऊ) बिना पहने उक्त चारों ऋणों से उऋण होता रहे, तो वह यज्ञोपवीत धारण करे या न करे; कोई अन्तर नहीं पड़ता। शेष फिर कभी धर्म पर बातें करेंगे।

आप दिल्ली से प्रकाशित चारों वेदों को मँगाना चाहते हैं, बहुत उत्तम विचार है। घर में सत् साहित्य सद् विचार का अंकुर उगाता है। अवश्य मँगा लीजिए। कारखाने के काम से जब थोड़ा-सा समय मिले, तब कुछ देर आपको ऋषियों के पास भी बैठना चाहिए। इससे संतान के भी संस्कार बनेंगे। सस्नेह,

श्री हरिशंकर वार्ष्णेय (मुनीम जी), आपका
विकास कौरपोरेशन, हरिनगर, अलीगढ़। अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री राधेश्याम शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ. प्र.)

मान्य बन्धु शर्मा जी, दिनांक २०. ११. ७८

सादर सप्रेम नमस्कार।

आपने बड़ी पेचीदा बात पूछी है। लगभग १० दिन तक उठते-बैठते, सोते-जागते, चलते-फिरते—सभी अवस्थाओं में मस्तिष्क उसी प्रश्न पर लगा रहा। आपने **ईशावास्योपनिषद् के मंत्र में आये हुए निम्नांकित वाक्यों की व्याख्या जानने की इच्छा प्रकट की है—**

तदेजति तन्नैजति—(ईशावास्योपनिषद्)

ऋषि उस परमात्मतत्त्व के संबंध में कहता है कि **तत् एजति, तत् न एजति।** अर्थात् वह चलता है और नहीं भी चलता।

वह ऐसा अस्तित्व है, जो गतिमान् है; और गतिहीन भी। कुछ लोग कह सकते हैं कि उपनिषदों में पागलों के-से कथन हैं या कुछ गप्पें-सी उड़ाई गयी हैं—भला जो गतिमान् है, वह गतिहीन कैसे हो सकता है? चर अचर नहीं हो सकता; अचर चर नहीं हो सकता। सृष्टि में दो प्रकार के अस्तित्व हैं—(१) **तरंग** (२) **कण**। **तरंग** गतिमान् है; **कण** गतिहीन अर्थात् स्थिर है। **तरंग** क्रियाशीलता है और **कण** स्थिति (ठहराव) है। ऐसा अस्तित्व जो एक ही क्षण में क्रिया और स्थिति—दोनों हो, क्या है? क्या ऐसा कभी संभव है?

आज की साइंस प्रत्यक्ष में विश्वास करती है; परोक्ष या कल्पना में नहीं। इसलिए साइंस का माइंड रखनेवाला कहेगा कि उपनिषदों की बातें साइंस की कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात ऐसी नहीं है। यदि आज के भौतिक विज्ञान ने उपनिषद् के कथन को न स्वीकारा, तो फिर हमारे ऋषियों की मेधा की सराहना कौन करेगा ?

एकोऽहं बहुः स्याम् के आधार पर कहें, अथवा **तैत्तिरीय उपनिषद्** (ब्रह्मानंद-वल्ली, अनुवाक ७) के आधार पर कहें कि **असद् वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत**—बात एक ही है। एक निराकार तत्त्व ही साकार बना है। अव्यक्त ही व्यक्त में बदला है। इसलिए व्यक्त में भी वही गुण होना चाहिए। निश्चित रूपेण **असत्** में जो है, जैसा है, **सत्** (व्यक्त) में भी वही और वैसा ही है। **सत्** अर्थात् **व्यक्त** भी गतिमान् तथा गतिहीन है।

संसार के मूर्धन्य वैज्ञानिकों ने जब इलैक्ट्रोन को देखा तो हैरान हो गये। अब तक तरंग और कण ही सृष्टि में देखे गये थे। अर्थात् तरंग गतिमान् थी; कण गतिहीन था। जब परमाणु से भी आगे बढ़े, तो **इलैक्ट्रोन** और **प्रोक्टोन** पर आये। **इलैक्ट्रोन** को देखकर साइंटिस्ट कहने लगे कि वह एक ही क्षण में कण और तरंग-दोनों रूपों में मालूम पड़ता है, अर्थात् वह चलता है और नहीं चलता। ऐसे विरोधी गुण देखकर उसे न तरंग कहा और न कण; अर्थात् **तरंगकण** नाम दिया गया। साइंटिस्टों की भाषा में उसे **क्वांटा** कहा गया। **क्वांटा** उस अस्तित्व को कहते हैं जो एक साथ तरंग और कण दोनों हो; अर्थात् चलता हो और न चलता हो।

युगों के बाद आज साइंस जिस तथ्य पर पहुँची है, उसके सम्बन्ध में ईशावास्योपनिषद् के ऋषि ने ईसा से ढाई हज़ार वर्ष पहले ही कह दिया था कि वह परमात्व तत्त्व **क्वांटा** है अर्थात् चलता है और नहीं भी चलता—"तत् एजति, तत् न एजति।" **आत्मा** शब्द उपनिषदों में ब्रह्मवाची भी है।

कठोपनिषद् (१/३/१२) में कहा गया है कि संपूर्ण भूतों में छिपा हुआ वह आत्मा (ब्रह्म) प्रकाशित नहीं होता—**एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।**

—(कठ० १/३/१२)।

ऋषियों ने जिस विराट् शाश्वत सत्य (भूमा) को दिव्य दृष्टि और दिव्य ज्ञान से जान लिया था, उसके खंडों या अंशों का पता वैज्ञानिक आज शनैः शनैः लगाते जा रहे हैं। वे अभी मार्ग में हैं, मंज़िल पर नहीं पहुँचे।

मुझे विश्वास कि आप **तत् एजति, तत् न एजति** का अर्थ समझ गये होंगे। बच्चों को आशीर्वाद। श्री रामसिंह जी शर्मा (पोस्टमास्टर) से आपकी कुशल-क्षेम मिलती रहती है। ब्राह्मण को सरस्वती का पूजन भी जब-तब करते रहना चाहिए।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशा है आप सपरिवार सानंद होंगे । सस्नेह,

श्री राधेश्याम जी शर्मा, आपका
अलीगढ़ डेरी फार्म, मालीवाड़ा गली, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
नई सड़क, दिल्ली ।

श्री उदयराम शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़-२०२००१

प्रियवर उदयराम शर्मा, दिनांक २०. ११. ७८ ई०

आशीर्वाद !

तुम्हारा प्रश्न सामयिक है । तुम्हारा मूल प्रश्न इन शब्दों में आबद्ध किया जा सकता है—

आज की युवा-पीढ़ी अपनी पहली पीढ़ी से अलगाव क्यों रखती है ? इस अलगाव के लिए कौन-सी पीढ़ी दोषी मानी जा सकती है ?

जिस अलगाव की स्थिति के सम्बन्ध में तुमने प्रश्न किया है, भारत में वह स्थिति सन् १९४७ ई० के उपरान्त ही अधिक उग्र बनी है । बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में हमारे देश में ऐसी स्थिति न थी । देश जिस समय स्वतन्त्र हुआ, उस समय राजनीतिक परिस्थितियों ने स्वतन्त्रता तो दिला दी; किन्तु हमारे देश की जनता ज्ञान, शिक्षा, स्वातंत्र्य-बोध तथा प्रजातंत्रात्मक राष्ट्र-धर्म के प्रति निष्ठावान् और जागरूक नहीं बन पायी थी । इसलिए **स्वतंत्रता** को **उच्छृंखलता** के अर्थ में ग्रहण किया गया । जो जनता 'एकतंत्र' की आदी थी, उसे 'प्रजातंत्र' मिल गया; इसलिए उसे वह सँभाल न सकी । राष्ट्र की स्वतंत्रता को सँभालने के लिए संयम और चरित्र की जो ऊँचाई जनता में होनी चाहिए, वह तब तक आ न पायी थी । इसलिए सर्व प्रथम पहली पीढ़ी अर्थात् पुरानी पीढ़ी में गिरावट आयी, धर्म, अर्थ और काम के क्षेत्र में ।

पिताओं की पीढ़ी पुत्रों की पीढ़ी से जैसा चाहती थी, वैसा वह पीढ़ी स्वयं करती न थी—उपदेश अधिक था, आचरण कम था । बुढ़िया बादलों को देखकर दूसरों को शिक्षा दे रही थी कि मेह नहीं पड़ेगा; चिन्ता मत करो; लेकिन अपनी खाट छप्पर के नीचे खिसका रही थी । बुढ़िया का थोड़ा-सा जो कुछ भी था, दिखावा ही था । उस दिखावे और ढोंग से युवा-पीढ़ी परिचित भी होने लगी थी ।

युवा-पीढ़ी पुरानी पीढ़ी के प्रति जो अवज्ञामय बन गयी है, उसका बीज महात्मा गांधी के समय में ही हमारे विद्यार्थि-समाज की भूमि में बो दिया गया

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। महात्मा गांधी ने अँग्रेज़ी शासन-काल में छात्र-आंदोलन चला दिया था। छात्रों ने विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों तक का बायकाट किया था। उस समय महामना पं० मदनमोहन मालवीय ने महात्मा गांधी जी से साग्रह निवेदन किया था कि "आप स्वतंत्रता-संग्राम के लिए छात्रों को न लें; शिक्षा से छात्रों को विमुख न करें। छात्र-आन्दोलन से अंग्रेज़ों की हानि कुछ न होगी। हमारे देश का छात्र विद्याहीन रहकर उद्दंड और उच्छृंखल बन जाएगा। स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए जिस ट्रेनिंग, संयम और सूझ-बूझ-भरी ज़िम्मेदारी का अहसास अनिवार्य है; वह इन कच्चे दिमाग़ों में नहीं है?" लेकिन महात्मा जी नहीं माने।

कुछ समय बाद फिर राष्ट्रीय स्वयं-सेवक संघ तथा जनसंघ का जन्म हुआ। उसके स्वयं-सेवकों में राष्ट्र-सेवा के लिए ऐसी भावनाएँ भरी गयीं कि वे माता-पिता, गुरु, भाई आदि की अवज्ञा करके अपनी ज़िद पूरी करने लगे। माता-पिता का विरोध करना ही 'राष्ट्र सेवा' मानने लगे।

जिन्होंने जीवन में सामान्य मनुष्य की भाँति जीवन जिया था, वे स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद नेता बने, एम० एल० ए० बने, मंत्री बने अर्थात् जीवन को भोगने लगे और अपने साथियों के साथ साँठ-गाँठ तथा गँठ-बंधन करके भ्रष्टाचार करने लगे। उनके मुख में राम-नाम था, बगल में छुरी थी। वे बाहरी रूप से सन्यासी थे; अन्दर मन के महल में पूर्ण व्यभिचार में सराबोर थे। शरीर संन्यासी और मन वेश्या था। स्वयं राष्ट्रधर्म से पराङ्‌मुख थे; किन्तु युवा-पीढ़ी को राष्ट्रधर्म का उपदेश करते थे। जो देश ३०-४० राजाओं-महाराजाओं से पीड़ित था, उस पर सैकड़ों मंत्री; और उपमंत्री महाराजा बनकर शासन करने लगे।

युवा-पीढ़ी यह सब कुछ जान गयी और समझ गयी। पुरानी पीढ़ी से विद्रोह करने लगी। युवा-पीढ़ी विद्रोह तो करने लगी है; किन्तु वह विद्रोह के ढँग, प्रणाली या सांगोपांग विधि नहीं जानती। अबोध है, अपरिपक्व है और असंयमित है। मनमाना करती रहती है। विभिन्न राजनीतिक दल उसे भटकाते भी रहते हैं। अतः देश की हानि, समाज का अहित और परिवार का पतन हो रहा है।

युवा-पीढ़ी कच्ची पीढ़ी तो है ही; जीवन के अनुभवों से भी दूर है। दोषों, त्रुटियों और अभावों को समझती तो है, किन्तु उसके पास संयम, बोध और सच्ची कर्मनिष्ठा नहीं। उसके पास संतोष के लिए केवल एक तर्क है—वह यह है कि हमारी प्रौढ़ और वृद्ध पीढ़ी जब अपने कर्तव्य का पालन नहीं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती, तब हम भी न करें, तो हमारा कोई दोष नहीं। इस तर्क से युवा-पीढ़ी अपने को बरी नहीं कर सकती। वह दोषी मानी जाएगी।

आज विद्यार्थी उच्छृंखल है, भ्रष्ट है, उद्दंड है और व्यभिचारी है। वह विद्यार्थि-धर्म का पालन नहीं कर रहा। वह गुरु के प्रति आदर भाव नहीं रखता।

मैं मानता हूँ कि आज के विद्यार्थी में ये सब दोष हैं; किन्तु मैं यह भी जानना चाहता हूँ कि उन विद्यार्थियों को दोषी बतानेवाले गुरुजन अपने चरित्र, आचरण तथा कर्तव्य-पालन में कैसे हैं ? उस्ताद लोग ज़रा अपने दामन को भी देखें, और निहारें अपने गरेबान को। ख़राबी दोनों ओर है और ख़राबी की शुरूआत **पुरानी-पीढ़ी** से ही हुई है।

युवा-पीढ़ी का अलगाव दूर होगा, पुरानी पीढ़ी के सदाचरण, कर्तव्य पालन और ईमानदारी के क्रियात्मक आदर्श से। सच्चा नेता अपने अनुगामियों को भी सच्चा बना लेता है। आज पुरातन पीढ़ी के पुरातन पुरुष भ्रष्ट हैं।

आशा है तुम सपरिवार कुशलपूर्वक होगे। अपनी माता जी तथा पिता जी से मेरा नमस्कार कहना। बच्चों को प्यार। सस्नेह,

श्री उदयराम शर्मा, शुभैषी

कृषि-निरीक्षक अम्बाप्रसाद 'सुमन'

स्थान व पो०, सुरजावली (वाया बुलंदशहर)

जि०—बुलन्दशहर

कु० कुसुमलता माहेश्वरी के नाम

शिविर, मथुरा (उ० प्र०)

दिनांक २२. ११. ७८

बेटी कुसुम,

आशीर्वाद !

तुमने अपने विषय (वनस्पति-विज्ञान) के सम्बन्ध में यह चिन्ता और परेशानी व्यक्त की है कि एम० एस-सी० में **वनस्पति-विज्ञान** लेकर मैंने भूल की। हिन्दी लेती और हिन्दी में एम० ए० करती तो कम से कम देश, विदेश की महान् विभूतियों से तथा प्राचीन ऋषि-मुनियों से तो बातें करती। अब तो दिन-रात फूल-पत्तियों आदि से मूड़ मारना पड़ता है। अध्ययन में नीरसता-सी अनुभव होती है।

प्रिय बेटी कुसुम ! तुम **वनस्पति-विज्ञान** की विद्यार्थिनी होकर भी ऐसी बातें करती हो। मानव-समाज और वनस्पति-समाज में अन्तर ही क्या है ?

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कण्व ऋषि की पालिता कन्या शकुन्तला भी आश्रम के पौधों से बातें किया करती थी। आश्रम के पौधे शकुन्तला के परिवारी थे; आत्मीय थे और प्राणों के समान प्रिय थे। तुम यदि ध्यान से पौधों की बात सुनोगी, तो तुम्हें वही रस मिलेगा, जो किसी काव्य के पात्र से प्राप्त होता है। पौधे मनुष्यों की भाँति ही सुख-दुख का अनुभव करते हैं। वे हँसते हैं; रोते भी हैं।

मेरी दादी मुझसे कहा करती थी कि नीम का पेड़ रोता है। उसके आँसुओं को यदि छाजन पर लगा दिया जाए, तो छाजन जैसा भीषण चर्म रोग दस-पंद्रह दिन में दूर हो जाता है। देखिए, नीम के आँसू भी मानव का कितना भला करते हैं? क्रौञ्ची के रोदन ने वाल्मीकि को कवि बना दिया था। आदि महाकाव्य की सर्जना का श्रेय वाल्मीकि को नहीं, क्रौञ्ची को है।

रूस के **विज्ञानवेत्ताओं** ने शोध करने के बाद घोषित किया है कि गेहूँ के पौधे को यदि १० मिनट तक कर्णप्रिय ध्वनि सुनायी जाए, तो उसमें पाले का प्रतिरोध करने की क्षमता बढ़ जाती है। संगीत की मधुर ध्वनि सुनकर गेहूँ में अंकुरण अपेक्षाकृत जल्दी होता है। अब अधिक अनाज पैदा करने की संभावना बढ़ जाएगी।

तुम्हें मानव-समाज और वनस्पति-समाज में कोई अन्तर नहीं मानना चाहिए। जैसे मनुष्य; वैसे ही वृक्ष, पौधे, बेलें आदि।

तुम उनके समाज में प्रेमपूर्वक रहो। उनके साथ उनके क्रिया कलापों को देखो। उनकी हँसी के साथ अपनी हँसी मिलाओ। शीतल, मन्द और सुगंध वायु में जब वे झूमें, तब तुम भी झूमो। वे नाचें, तो तुम भी अपने मन को नचाओ। तब तुम देखोगी कि कविता या उपन्यास से कम आनन्द तुम्हें नहीं मिलेगा। वनस्पतियों के साथ जीवन बिताना नन्दनकानन के आनन्द से किसी प्रकार कम नहीं हैं। लेकिन मन की वे आँखें खोलनी पड़ेंगी, जिनसे वनस्पतियों की वे अठखेलियाँ दिखायी दिया करती हैं। वे आँखें तुम्हारे पास हैं तो; किन्तु उन्हें खोलने की ज़रूरत है।

यदि हृदय की वे आँखें खोल लीं तुमने, तो फिर तुम भविष्य में मुझे ऐसा निराशा-भरा पत्र न लिखोगी।

फिर तो तुम्हें वनस्पतियों के साथ वैसा ही आनन्द आया करेगा, जैसा तुम्हें चैतन्य महाप्रभु की लीला में तथा हरि-कीर्तन में आया करता है। सस्नेह,

कु० कुसुमलता माहेश्वरी एम० एस-सी० शुभैषी

C/O डा० योगेश माहेश्वरी, एम० बी० बी० एस० अम्बाप्रसाद 'सुमन'

खिरनीगेट, अलीगढ़ (उ० प्र०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री रामस्वरूप केला के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़-२०२००१

मान्यवर श्री केला जी, २७. १२. ७८

जय श्रीकृष्ण !

आपका दिनांक २६. १२. ७८ का कृपा-पत्र आज मिला। हार्दिक धन्यवाद ! प्रश्न वास्तव में कुछ क्षणों के लिए मानव-बुद्धि को पकड़कर बैठानेवाला है।

आपने **पुरुषार्थ** और **भाग्य** के सम्बन्ध में प्रश्न उठाया है कि परमेश्वर का किया हुआ ही होता है, मनुष्य कुछ नहीं कर सकता; वह नितान्त असमर्थ है। मनुष्य की असमर्थता के समर्थन में आपने कुछ ग्रंथों के उद्धरण भी प्रस्तुत किये हैं।

केला जी ! आपका प्रश्न तो वास्तव में ऐसा है जिसके पक्ष और विपक्ष में बहुत-कुछ संतों और विद्वानों ने कहा है, और आज भी कहते हैं।

मैं अपनी समझ के अनुसार आपके प्रश्न का उत्तर यहाँ लिख रहा हूँ।

संसार में प्राय: तीन प्रकार के सत्पुरुष मिलते हैं—(१) **ज्ञानी** (२) **कर्मयोगी** (३) **भक्त**।

भक्ति में ही सदा निमग्न रहनेवाला भक्त अपने को भगवान् के प्रति सर्वतो भावेन समर्पित रहता है। वहाँ स्वामी, पति, सखा, माता-पिता जो कुछ हैं, वे सब भगवान् ही हैं। यदि भक्त कर्तृत्व-भावना मन में लाकर कुछ कहता है, तो अहं प्रकट होगा। **अहं** और **नाम** दोनों अंधकार हैं। **अहं** अन्दर का अंधकार है और **नाम** बाहर का। **अहं कर्तृत्व** का पर्याय भी है। महाविराट् की अनुभूति **अहं** को मिटा देती है। **तू** को समर्पण करने से **मैं** समाप्त हो जाता है। इसीलिए भक्तों में समर्पण की प्रधानता है। तभी तो सूर, तुलसी आदि भक्त कवियों की वाणी कर्तृत्व-शक्ति को भगवान् में ही प्रतिष्ठापित कर देती है। अत: भाग्य सर्वत्र फलता है, प्रभु ही सब कुछ कराते हैं और करते हैं—ऐसे कथन आपको प्राय: भक्तों के ही मिलेंगे। कर्मण्य तथा कर्मवीर मनुष्य शक्ति-भर सत्कर्म करे और उसका फल अनुकूल-प्रतिकूल मिले—इसकी परवाह न करे। तुलसीदास जी ने भी विश्व को कर्मप्रधान ही बताया है—

करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा।।

(मानस, अयो० २१९/४)

सर्व सामान्य के लिए यही सिद्धान्त मान्य है और होना भी चाहिए। भगवान् के उच्चतम कोटि के भक्तों का केस **स्पेशल** है। मैं अपनी बात सांसारिक मनुष्यों के विषय में कह रहा हूँ। गीता के अनुसार हमारा कर्म करने का अधि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार है, तात्पर्य यह है कि हमें पुरुषार्थी के रूप में कर्म अवश्य करना चाहिए ।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि —(गीता, २/४७)

करणीय कर्म आत्मानुमोदित होते हैं । समष्टि के कल्याण के लिए होते हैं । इस प्रकार के करणीय कर्म **सर्वभूत हितेरत** (गीता, १२/४) की भावना से किये जाते हैं—गीता प्रमाण है ।

इतना ही नहीं, गीता तो भक्त के लिए भी कर्म करना आवश्यक बताती है। हाँ वह भक्त कर्म-फल में शुभाशुभ परित्यागी हो–**शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः** (गीता,१२/१७) । वह भक्त कर्मों में कर्तापन के अभिमान का त्यागी हो, जिसे गीता में **सर्वारम्भपरित्यागी** (गीता १२/१६) कहा गया है ।

संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण कर्म-फल का सिद्धान्त हमें बतलाता है कि सत्कर्म का फल हमें शुभ ही मिलेगा ।

कभी-कभी जीवन में ऐसा होता है कि पूर्वकृत असत् कर्म का अशुभ फल हमें मिलता है और हम वर्तमान में सत्कर्म करते हुए उस अशुभ फल की प्राप्ति से यह निर्णय निकाल लेते हैं कि मनुष्य का कर्म करना व्यर्थ है; ईश्वर जो चाहता है, वही होता है । लेकिन परम महिष्ठ न्यायकारी परमेश्वर कर्मानुसार ही फल देता है । **मन, बुद्धि, शरीर** आदि की रचना भी कर्म अर्थात् पुरुषार्थ के लिए ही हुई है । बिना कर्म-विचार के ईश्वर मनुष्यों से कर्म कराता होता, तो संसार के सब प्राणी एक-से ही दृष्टिगोचर होते—ऐसा नहीं है । इस भिन्नता का कारण कर्म ही है । इसलिए पुरुषार्थ करना आवश्यक है । 'वर्तमान' **कर्म का फूल**, और 'भविष्य' **कर्म का फल** है ।

गीता के छठे अध्याय के पाँचवें श्लोक को आपने अपने पत्र में उद्धृत किया ही है । छठे श्लोक के साथ इस पाँचवें श्लोक की आत्मा के दर्शन करने के लिए तीन की स्थिति ठीक तरह से समझ लेनी चाहिए—(१) **इन्द्रियाँ** (२) **मन** (३) **आत्मा** ।

मनुष्य की इन्द्रियाँ **घोड़े**, मन **लगाम**, बुद्धि **सारथि** और आत्मा **रथी** है । ये प्रतीक के माध्यम से कठोपनिषद् में अभिव्यक्त किये गये हैं—

आत्मान ँ रथिनं विद्धि, शरीर ँ रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि, मनः प्रग्रहमेव च ।। (कठ० १/३/३)

सारा झगड़ा मन का है । यदि मन इंद्रियों का अनुगामी है, तो मनुष्य दुष्कर्म करेगा और दुःख पायेगा । यदि मन आत्मानुगामी है, तो मनुष्य सत्कर्म करेगा और सुख पायेगा, आनन्द प्राप्त करेगा । बिना कर्म के तो कोई रह ही

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं सकता। बुद्धि और हाथोंवाला मनुष्य कर्म तो करेगा ही। मनुष्य जड़ नहीं, जंगम है। कर्म करना जंगम का एक स्वभाव है। प्रश्न तो सत्-असत् कर्म का है। कर्म-फल को न विचारते हुए कर्म करने की बात गीता कहती है। गीता में यह भी कहा गया है कि मनुष्य-योनि में कर्म अवश्य करना चाहिए, अनिवार्य है—**कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके** (गीता, १५/२)

हाँ, एक द्वन्द्व कर्म के मार्ग में उत्पन्न हो सकता है। वह यह कि बुद्धि और शास्त्र के परे की स्थिति होने पर मनुष्य क्या करे? तब बस एक ही मार्ग है, जो गीता के १८ वें अध्याय के ६६ वें श्लोक में कहा गया है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। (गीता १८/६६)

परन्तु यह स्थिति अन्त की है। गजेन्द्र पहले ग्राह से पूरी शक्ति से लड़ा था, जौ-भर सूँड़ जल के ऊपर रहने पर ही उसने भगवान् को पुकारा था; पहले नहीं। पहले तो पूरी शक्ति से **पुरुषार्थ** करता रहा था। उस सच्चे पुरुषार्थी को भगवान् ने आकर बचाया—यह कथा भी पुरुषार्थ के समर्थन में ही है।

कर्मयोगी के पसीने की एक बूंद पर अनेक गंगाएँ निछावर की जा सकती हैं। ईमानदारी से जीवन बितानेवाला परिश्रमी किसान जो चिलचिलाती धूप में हल चलाता है, वह किसी ज्ञानी या **भक्त** से कम नहीं हैं।

मुझे आशा और विश्वास है कि आप मेरा अभिमत समझ गये होंगे। पता नहीं आपको कितना भाएगा? अपनी बात आपसे अपनी बुद्धि के अनुसार कह दी है।

बच्चों को आशीर्वाद! नव वर्ष का वर्धापन और मंगल कामना। हर्ष है आप सपरिवार सानंद हैं।

श्री रामस्वरूप जी केला,
केलानगर, अलीगढ़—२०२००१

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० श्यामकिशोर शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर अलीगढ़ २०२००१
दिनांक २९. १२ .७८ ई०

प्रियवर श्यामकिशोर जी शर्मा,

आपका प्रश्न शंकराचार्य से पूर्वापर की भारतीय दर्शनधारा से सम्बद्ध है।

दर्शन की उत्पत्ति मेधा (उत्तम बुद्धि) और प्रकृति के सम्बन्ध से होती है। धर्म देश-काल के प्रभाव से अलग-अलग बन जाते हैं। धर्म के अनेकत्व से दर्शन के सिद्धान्तों में भी अनेकत्व आ जाता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रिय शर्मा जी ! ऋग्वेद का नासदीय सूक्त ब्रह्म-कल्पना का प्रथम निदर्शन है, जो निराकार-निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादक है ।

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।

(ऋक्० १०/१२९ सूक्त)

पुरुषसूक्त ब्रह्म के साकारत्व का संकेत देता है ।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।।

(ऋक् १०/९० सूक्त)

ब्रह्म को **सहस्रशीर्ष, सहस्राक्ष** और **सहस्रपाद** बताकर ऋषि ने उसे पुरुष की साकारता प्रदान की है । ब्रह्म का निदर्शन वास्तव में सत्य के अनुसंधान की दृष्टि है । जीवन के लिए सत्य और शिव को हमारे ऋषियों ने अनिवार्य माना था । वेद में कहा गया है—**ओ३म् भूः पुनातु शिरसि । ओ३म् सत्यं पुनातु पुनः शिरसि ।**

उपनिषद्-साहित्य में भी ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन मिलता है । याज्ञवल्क्य गार्गी से कहते हैं कि ब्रह्म के शासन में द्यौ, पृथ्वी, दिन, रात्रि आदि हैं । सूर्य, चन्द्र आदि सब उसके शरीर के अंग हैं । मैत्रायणीय उपनिषद् में ब्रह्म की उपमा गोलाकार फुलझड़ी से दी गयी है । मुण्डक उपनिषद् में ब्रह्म एक दिव्यतम प्रकाश-स्वरूप है—**तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति**

(मुण्डक० २/२/१०)

यह मंत्र कठ उपनिषद् (२/२/१५) में भी आया है ।

भारतीय दर्शन-धारा के प्रवाह को चार खंडों में विभक्त किया जा सकता है—(१) **वैदिक-दर्शन-धारा** (ई० पू० १५००से ई० पू० ६०० तक) (२) **ऐतिहासिक महाकाव्य-दर्शन-धारा** (ई० पू० ६०० से २०० तक) (३) **सूत्र-दर्शन-धारा** (२०० ई० से ५०० ई० तक) (४) **टीका-दर्शन-धारा** (५०० ई० से शंकराचार्य तक तथा आगे भी)

शंकराचार्य अद्वैतवादी तथा निर्गुणवादी हैं । शंकराचार्य मूलतः एक **ब्रह्म** का ही अस्तित्व मानते हैं । **जगत्** उनके लिए मिथ्या है । **माया** के कारण ही ब्रह्म का जीव रूप में बोध होता है—यही **शंकराचार्य** का मत है ।

माया के बन्धन में जीव जन्म से पकड़ने-छोड़ने में ही लगा रहता है । ब्रह्मरूप अटारी में नहीं बैठ पाता । ज़ीने की नसेनी पर जो जब तक चढ़ता रहेगा, तब तक एक डंडे का छोड़ना और दूसरे का पकड़ना बना रहेगा । अटारी में पहुँचने पर पकड़-छूट का झगड़ा समाप्त । राग-द्वेष का निर्विचार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही माया से मुक्ति है। पकड़ना-छोड़ना—यह ताँता माया का ही है। पकड़-छूट का विचार समाप्त हुआ, तो निर्विचार की स्थिति आयी; तभी माया से मुक्ति है।

रामानुजाचार्य साकार-सगुण ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं। उनके मत में 'जगत्' ब्रह्म का शरीर है। ब्रह्म गंध है, तो जगत् पुष्प है। ब्रह्म पीतिमा है, तो जगत् स्वर्ण है। **निम्बार्काचार्य** जीव और जगत् को ईश्वर की शक्ति मानते हैं। उनके मत में ईश्वर अंशी और जीव अंश रूप है। साकार सगुणवादी आचार्यों के मत में भक्त जीव और ईश्वर का अभेद्य ऐक्य संभव नहीं। माया की समाप्ति पर जीव ब्रह्म हो जाता है—यह केवल शंकराचार्य मानते हैं। शंकराचार्य ऋग्वेद के नासदीय सूक्तवाले ब्रह्म को स्वीकारते हुए और अपने मत की स्थापना करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। रामानुज और निम्बार्क पुरुषसूक्त के ब्रह्म की विकसित कल्पना के पक्षधर हैं।

आशा है आप सानंद होंगे। प्रियवर कमलसिंह से आपका कुशल-क्षेम मिलता रहता है। बेटी शारदा शर्मा को पत्र लिख दीजिए। सस्नेह,

डा० श्यामकिशोर शर्मा,
हिन्दी विभाग,
डी० ए० वी० कालेज, मुजफ्फरनगर (उ० प्र०)

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

कु० प्रतिभारानी शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर अलीगढ़–२०२००१
दिनांक ३०. १२. ७८. ई०

प्रिय बेटी प्रतिभा,

आशीर्वाद !

तुमने यह जिज्ञासा प्रकट की है कि कबीर आदि कुछ साधु-सन्तों ने नारी के प्रति जो हीन दृष्टिकोण व्यक्त किया है, क्या हमारे वैदिक काल में भी ऐसा ही था ? अथवा उस समय नारी के प्रति मानव-समाज की कुछ भिन्न भावना थी ? प्राचीन भारत में नारी-स्वरूप का क्या विकास-ह्रास रहा है ?

प्रिय बेटी प्रतिभा ! वैदिक साहित्य में नारी के प्रति हमारी भावनाएँ बड़ी श्रद्धा, स्नेह, आदर आदि से परिपूर्ण एवं परम उदात्त थीं। कन्याओं तथा पत्नियों का समाज में बहुत बड़ा आदर था। मनु तक ने मुक्तकंठ से उद्घोष किया है कि **यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः**—(मनु०३/५६) कोई भी यज्ञ बिना पत्नी के सफल नहीं माना जाता था। यजमान और यजमान की पत्नी यज्ञ में साथ-साथ बैठते थे। राम के अश्वमेध यज्ञ में उनके साथ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्णमयी सीता विराजमान की गयी थीं। पुत्री हमारे परिवार में पुत्र के समान ही प्रिय थी, वांछनीय थी। वैदिक शब्दों के प्रसिद्ध व्याख्याकार यास्क ने निरुक्त (४/२) में **कन्या** शब्द की व्युत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुए कहा है—**कन्या कमनीया भवति**। कमनीया = वांछनीया।

मनुस्मृति (६/१३०) में पुत्र और पुत्री को समान बताया गया है—

यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा।

भ्राता और **भगिनी** हमारे साहित्य के प्राचीनतम शब्द हैं। **भग** शब्द के अर्थ यश, शोभा, श्री, धन आदि हैं। बहिन का अर्थवाची शब्द **भगिनी** है। इसमें मूल शब्द **भग** ही है। भाई के समान ही जिसमें **श्री, यश, शोभा** आदि का अस्तित्व माना जाता था, वह **भगिनी** थी।

मेरा अपना विचार और अनुभव यह है कि आज के युग में भी पुत्रियाँ पुत्रों की अपेक्षा माता-पिता के प्रति अधिक श्रद्धालु, विनयशील और ईमानदार सिद्ध हो रही हैं।

वैदिक काल में तो अनेक नारियाँ परम विदुषी एवं दार्शनिक थीं, ब्रह्मवादिनी भी थीं। याज्ञवल्क्य के साथ गार्गी और मैत्रेयी के संवाद इसके प्रमाण हैं।

नारी की दुर्गति तो मुग़लकालीन भारत में हुई है। जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब के समय में नारी को समाज द्वारा बहुत पतित बनाया गया। उसे एक मात्र भोगविलास की सामग्री ही समझा गया। उस काल में मुसलमानों के कारण हिन्दुओं में भी बहुपत्नीत्व की प्रथा चालू हो गयी थी।

प्रो० ए० बी० पाण्डे ने एक पुस्तक लिखी है, जिसका नाम है—लेटर मैडीवल इंडिया। उसमें लिखा है कि मानसिंह कछवाहा की १५०० पत्नियाँ थीं। उनसे ४००० सन्तानें हुई थीं।

पुरुषों का इतना पतन हो गया था, कि पिता-पुत्री के अवैध सम्बन्ध से भी सन्तानें उत्पन्न होती थीं। Crime and Punishment in Moghal India में इसका उल्लेख है। मनूची की एक पुस्तक है—Storia do Moger; इसकी प्रथम जिल्द में लिखा गया है कि शाहजहाँ की पुत्री ने अपनी रिश्तेदारी की एक बहिन को अपने यहाँ आमन्त्रित किया था। उससे बादशाह शाहजहाँ ने बलात् भोग किया था। इस अमानुषिक व्यवहार से उस महिला को इतना अधिक और भीषण मानसिक आघात हुआ कि वह अपने घर पहुँचते ही मर गयी थी। नारियों के प्रति पुरुषों की इस नीचता और पापवृत्ति का सूत्रात्मक वर्णन तुलसी ने भी 'मानस' के उत्तरकाण्ड में किया है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलिकाल बिहाल किए मनुजा।
नहिं मानत क्वौ अनुजा तनुजा ॥ —(उत्तर१०२/५)

आशा है, तुम और तुम्हारी सहेली विदुला सानन्द होगी। बेटी विदुला की तरह तुम भी एक अच्छी-सी पुस्तक लिखो, अपनी रुचि के क्षेत्र में। तुम्हारा शोध-कार्य कब पूरा हो रहा है? मैं दो वर्ष के अंदर तुम्हें 'डाक्टर' देखना चाहता हूँ। संकल्प, सिद्धि-प्रदाता है—इसे गाँठ बाँध लो। सस्नेह,

कु० प्रतिभारानी शर्मा, एम० ए० शुभैषी
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
जे० बी० जैन डिग्री कालेज, सहारनपुर।

श्री दुर्गाशरण एडवोकेट नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़-(उ०प्र०)
दिनांक ३१. १२. ७८

मान्यवर श्री वकील साहब,

सादर-सप्रेम जय श्रीकृष्ण !

आशा है परमेश की दया से आप सपरिवार सानन्द होंगे। कुछ दिन पूर्व श्री रामस्वरूप जी केला से मुझे आपका कुशल-क्षेम मिला था। स्मरण हो कि उस दर्शनपरक-व्याख्यान-समारोह में आपसे हुई बात-चीत के प्रसंग में आये हुए आपके निर्दिष्ट प्रश्न का उत्तर देने की यहाँ मैं अब चेष्टा कर रहा हूँ। कह नहीं सकता कि आपका हृदय और बुद्धि उसे कितना स्वीकारेगी?

मैं जगत् की उत्पत्ति और ईश्वर की सर्वव्यापकता के सम्बन्ध में अपनी बात आपसे आपका आदेश पालन करने की भावना से कह रहा हूँ।

आज का विज्ञान द्रव्य, ऊर्जा और जीवन का अस्तित्व स्वीकार करता है। भौतिक विज्ञान पत्थर में जीवन नहीं मानता; वृक्ष, कीट, पतंग, पशु, मनुष्य आदि में तो जीवन मानता है,

जहाँ जीवन, वहाँ चेतना—यह विज्ञान स्वीकारता है। घास में जीवन है, जल में ऊर्जा है; विज्ञान इसे स्वीकार कर चुका है। जल में से काई और वनस्पति उत्पन्न हो जाती है। जल और वनस्पति में से कीड़े-मकोड़े पैदा हो जाते हैं। द्रव्य और ऊर्जा में से जीवन कैसे उत्पन्न हुआ? द्रव्य और ऊर्जा में चेतना कहाँ से आ गयी? चेतना की उद्भूति या विकास तो तभी होगा, जब मूल में चेतना का अस्तित्व होगा। अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं हो सकती। गीता में स्पष्ट कहा गया है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सतः । —(गीता २/१६)

इसलिए विज्ञान से आगे आध्यात्मिक ज्ञान के क्षेत्र में उतरकर ही वास्तविकता का पता लग सकता है। **परम चेतन महाशक्ति** सर्वत्र है। यह बात अलग है कि उसकी अभिव्यक्ति हमें किसी में दीख जाती है; किसी में नहीं दीखती। गति और अनुभूति का अस्तित्व हम जहाँ पाते हैं, वहाँ विज्ञानवेत्ता जीवन का अस्तित्व मान लेते हैं; अन्यत्र नहीं मानते।

जब तक जगदीशचन्द्र वसु ने अनुसंधान नहीं किया था, तब तक साइंटिस्ट वृक्षों में जीवन नहीं मानते थे। विज्ञानवेत्ताओं को जिन-जिन में पता लगता जाएगा, उन-उनमें द्रव्य और ऊर्जा के साथ जीवन मानते जाएँगे।

जो **है** विज्ञान उसे नहीं कहता; अपितु **उसे** कहता है, जिसका उसे पता लग जाता है। अर्थात् जिसे उसकी बुद्धि जान लेती है। हमारे दार्शनिक ऋषि-मुनि आत्मज्ञान से जान लेते थे। आज का विज्ञानवेत्ता बुद्धि से जितना जान पाता है, उसे ही ठीक कहता है।

आज विज्ञानवेत्ता परमाणु से आगे बढ़कर प्रोटोन और इलैक्ट्रोन की बात पर आ गया है। अब कण की लघुतम इकाई परमाणु नहीं है, बल्कि प्रोटोन + इलैक्ट्रोन है; अर्थात् द्विकण + तरंग का युग्मक। इलैक्ट्रोन प्रोटोन के चारों ओर प्रतिक्षण घूमता ही रहता है। एक समय था, जब विज्ञान ऊर्जामय द्रव्य की सबसे लघुतम इकाई **परमाणु** को मानता था और कहता था कि परमाणु (ऐटम) लघुतम तत्त्व (एलीमेण्ट) है। लेकिन अब आधुनिक वैज्ञानिक कहते हैं कि **परमाणु** तत्त्व नहीं, मिश्रण है। अब **परमाणु** में कई तत्त्व मिश्रित हैं—**प्रोटोन + न्यूट्रोन + इलैक्ट्रोन। द्विकण + तरंग** से युक्त ये त्रिक-पुञ्ज प्राणी में असंख्य हैं। अर्थात् प्रत्येक प्राणी संख्यातीत **न्यूट्रोन**, **प्रोटोन** और **इलैक्ट्रोन** का पुंजीभूत रूप है। विज्ञान की इस शोध के सम्बन्ध में भगवद्गीता ने तो बहुत पहले ही बता दिया था। गीता की भाषा अवश्य भिन्न है। हमारे दर्शन-ग्रन्थों में ऋषियों की आत्मा बोली है, बुद्धि नहीं। विज्ञान की बुद्धि तो सीमित शक्ति रखती है। **विज्ञान** का मूल-आधार बुद्धि है, **अध्यात्म** का मूल-आधार आत्म-ज्ञान है। **आत्मा** महत्तम चेतन अस्तित्व है।

आज विज्ञान इन शब्दों में कहता है कि प्रोटोन-न्यूट्रोन अपने चारों ओर इलैक्ट्रोनों को घुमाते रहते हैं। एक तरह से **कण + कण + तरंग** का त्रिकपुंज ही जगत् है। अर्थात् प्रोटोन इस द्रव्य जगत् के अन्तस् में समाविष्ट है।

गीता (४/६) में श्रीकृष्ण भी अर्जुन से कहते हैं कि मैं अपनी प्रकृति को

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधीन करके अपनी योगमाया से अपने को उत्पन्न करता हूँ। साइंस की भाषा का **प्रोटोन** अध्यात्म की भाषा में **ईश्वर** कहा गया है। ईश्वर ही सबको चक्कर लगवाता है। गीता में स्पष्ट कहा गया है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया॥ (गीता १८/६१)

ईश्वर + योगमाया = प्रोटोन + न्यूट्रोन। सर्वभूत = इलैक्ट्रोन।

मकड़ी का जाला मकड़ी से ही उत्पन्न है। उसी प्रकार यह जगत् उसी परम चेतन सत्ता से उद्‌भूत है; अथवा कहिए कि उसी का साकार विस्तार है। इस तरह वह परम चेतन सर्वव्यापक भी है। जगत् की उत्पत्ति और ईश्वर की सर्वव्यापकता का यही प्रमाण है।

परम चेतन सत्ता अर्थात् **परमात्मा** से ही सब द्रव्य भासमान दृष्टिगत होते हैं। वही **परमात्मा** परम ऊर्जा और परम चेतना है। उस प्रकाशपुञ्ज से ही अन्य प्राणी और वस्तुएँ प्रकाशित होती हैं—

तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्। (मुण्डक २/२/२०)

हर्ष है आप सानंद हैं। सस्नेह,

श्री दुर्गाशरण जी, (एडवोकेट, दीवानी) आपका
सुभाष रोड, अलीगढ़-२०२००१ अम्बाप्रसाद 'सुमन'

(श्रीमती) सरोजकुमारी शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़-२०२००१
दिनांक ३१. १२. ६८ ई०

प्रिय बेटी सरोज,

आशीर्वाद !

तुम्हारे पत्र से तुम्हारी जिज्ञासा का पता लगा। तुम्हारा प्रश्न सामयिक है। तुम्हारी यह जिज्ञासा बहुत स्वाभाविक है कि **आज हमारे सामाजिक जीवन से धार्मिक भावना और सच्चरित्रता दिनों-दिन समाप्त होती जा रही है। इसका क्या कारण है ?**

बेटी सरोज ! धार्मिक भावना और सच्चरित्रता व्यक्ति अपने घर से, मोहल्ले से, विद्यालय से और अपने कार्य-क्षेत्र के समाज से सीखता है। समाज का वातावरण और परिवेश जैसा होगा, उसके बालक-बालिकाएँ उसी प्रकार के आचार-व्यवहार में ढलेंगे। आज पश्चिम की भौतिकवादिता ने अर्थ की ओर मनुष्य की ललक बहुत बढ़ा दी है, और अनीश्वरवादी विचारों का प्रवाह तेज़ी से आगे बढ़ रहा है। ईश्वर और धर्म को ढोंग बतानेवाले देशों का प्रभाव हमारे देश पर भी पड़ गया है। हमारे देश तथा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज में करणीय कर्म का नाम **धर्म** था। एक तरह से यहाँ **धर्म** सदाचार का पर्याय था। आज उसकी व्याख्याएँ बदल दी गयीं। अत्याधुनिकतावादी और भौतिकवादी व्यक्ति **धर्म** को केवल परलोक से जोड़ने लगे हैं और उसे संप्रदाय का पर्याय बताने लगे हैं। अपने को धर्मात्मा कहनेवालों ने भी बाहरी आडम्बर और दिखावा अधिक कर दिया। हमारे समाज में **मॉडर्न गर्ल्स** के वेश में वेश्याओं की संख्या भी बढ़ने लगी है। **नयी रोशनी** की चमक में प्रायः घर-घर में वेश्यावृत्ति मुँह चमकाने लगी है। अल्ट्रा माडर्न कहे जानेवाले वासना के घोर लोलुप मनुष्य व्यभिचारों को **सभ्यता** के आचरण कहते हैं। येन-केन प्रकारेण अर्थ (धन) कमाना जीवन का चरम लक्ष्य बन गया है।

सच्चरित्र व्यक्ति हमारे समाज में बहुत कम हैं। जो हैं, वे बिखरे हुए हैं और पलायनवादी बनकर समाज से हट गये हैं। अन्तर्मुखी जीवन बिताते हैं। समाज भाड़ में जाए, उनकी बला से—यह विचारधारा उन्हें वश में किये हुए है।

एक पाश्चात्य विद्वान् हुआ है **बर्ट्रेण्ड रसल**। उसने एक पुस्तक लिखी है, जिसका नाम है, **दि हार्म गुड मैन डू** (वह हानि जिसे नेक आदमी करते हैं)। इस पुस्तक में लिखा है कि प्रायः नेक और सच्चरित्र मनुष्य समाज की बुराइयों को देखकर उनके प्रति उपेक्षा भाव रखने लगते हैं। समाज से हट जाते हैं। सच्चरित्र व्यक्ति संगठित भी नहीं रहते। अपनी-अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग-अलग पकाते हैं। परिणाम यह होता है कि समाज की बाग-डोर निकम्मे और चरित्रहीन लोगों के हाथ में आ जाती है। वे फिर मनमानी करते रहते हैं। जनता में भय, त्रास, संकट, भ्रष्टाचार, व्यभिचार आदि बढ़ते रहते हैं।

यदि हम समाज के भ्रष्टाचार और व्यभिचार को रोकना चाहते हैं, तो नेक मनुष्यों को संगठित होकर समाज की बाग-डोर अपने हाथों में लेनी चाहिए।

तुम **धर्म** को **सच्चरित्रता** का पर्याय मानती हो। यह मान्यता वस्तुतः श्लाघनीय है। मन्दिर आदि का निर्माण भी सच्ची भावना से हो, तो अच्छा ही है। तुमने मन्दिर बनवाकर शकरौली गाँव में भजन-पूजन तथा सदाचार की भावनाओं को उत्कर्ष प्रदान करने का साधन प्रस्तुत किया है।

आशा है, तुम सपरिवार सानंद होगी। प्रियवर बिशनकुमार से तुम्हारा कुशल-क्षेम मिलता रहता है। सस्नेह,

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

(श्रीमती) सरोजकुमारी शर्मा,
द्वारा—श्री राधेलाल शर्मा, प्रिंसिपल,
स्थान व पो० शकरौली, जि० एटा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
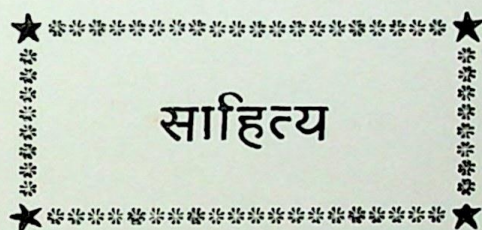
श्री महावीरलाल गौड़ के नाम

कृष्णापुरी, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक २-१-१९५५ ई०

प्रियवर महावीर,

आशीर्वाद !

तुम **भवभूति** कृत **उत्तररामचरित नाटक** के प्रथम अंक के निम्न श्लोक का अर्थ जानना चाहते हो और साथ में **कुशिकनन्दन** शब्द की व्याख्या भी—

जनकानां रघूणां च सम्बन्धः कस्य न प्रियः ।
यत्र दाता ग्रहीता च स्वयं कुशिकनन्दनः ।।

प्रस्तुत श्लोक का प्रसंग यह है कि राम और लक्ष्मण सीता जी को विवाहादि के समय के चित्र दिखा रहे हैं। रामचन्द्र जी सीता जी से कहते हैं, कि जनक और रघुवंश के राजाओं का सम्बन्ध किसे प्रिय नहीं ? सबको प्रिय है; क्योंकि इस विवाह-सम्बन्ध में दाता और ग्रहीता स्वयं विश्वामित्र जी हैं।

सप्तर्षियों में से एक ऋषि विश्वामित्र भी हैं। सप्तर्षि—(१) **वशिष्ठ** (२) **विश्वामित्र** (३) **अत्रि** (४) **गौतम** (५) **जमदग्नि** (६) **भरद्वाज** (७) **कश्यप** ।

विश्वामित्र जी ने ही राजा जनक को, सीता का विवाह राम के साथ करने के लिए, प्रेरित किया था और विश्वामित्र जी ने ही राम को धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने के लिए प्रेरित किया था। अतः विश्वामित्र ही राम-सीता-विवाह में दाता और ग्रहीता थे।

कुशिकनन्दनः सामासिक पद है। इसमें 'नन्दन' शब्द का अर्थ 'पुत्र' नहीं है, अपितु 'आनन्द प्रदान करनेवाला' है। **कुशिक** की आत्मा विश्वामित्र के कार्यों से तथा गुणों से बहुत प्रसन्न थी। अतः विश्वामित्र **कुशिकनन्दन** कहलाए। कुशिक का नाम **कुशनाभ** भी था। कुशनाभ के पुत्र गाधि थे। गाधि के पुत्र का नाम विश्वामित्र था। अतः विश्वामित्र, कौशिक या कुशिकनन्दन भी पुकारे जाते थे। कुशिक के वंशज कौशिक, जैसे **रघु** के वंशज **राघव** (=रामचन्द्र)। विश्वामित्र कुशिक के पौत्र थे। **वाल्मीकीय रामायण** और **महाभारत** इसके लिए प्रमाण हैं।

विश्वास है कि तुम्हारा अध्ययन ठीक तरह चल रहा होगा।

श्री महावीरलाल गौड़,
स्थान—शेख़ूपुर, डा० रहसूपुर, (अलीगढ़)

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री भोजराज शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़-२०२००१

मान्यवर भाई साहब,   दिनांक ६. २. १९५५ ई०

सादर सप्रेम नमस्कार !

आपने जब 'रामचरितमानस' (सुंदर० ५५/३) में पढ़ा था कि **पदुम अठारह जूथप बंदर**, तब आपको बड़ा आश्चर्य हुआ था, और आप कहने लगे थे कि जब यूथपति ही अठारह पद्म थे, तब कुल सेना कितनी होगी ? वह सेना रामचन्द्र जी के साथ लंका से अयोध्या को पुष्पक विमान में बैठकर कैसे आयी होगी ? यह तो गप्प-सी लगती है।

भाई साहब ! आपके जीवन को मैंने विद्यार्थि-अवस्था से देखा है। आप जब धर्मसमाज कालेज में पढ़ते थे, तब मैं भी वहीं पढ़ता था। आप और श्री भूदेव शर्मा मुझसे आगे थे—ऊँची कक्षाओं में थे। आप जीवन के प्रथम चरण में कवि भी थे; काव्य-प्रेमी भी। आपने अपने गाँव ल्हौसरा में एक कवि-सम्मेलन का संयोजन भी किया था। गुरुवर पं० गोकुलचन्द जी शर्मा उसके सभापति थे। मैं एक कवि के रूप में वहाँ गया था।

आपके कवि-हृदय पर अब एक एडवोकेट की बुद्धि सवार हो गयी है। नीरस **बुद्धि** मस्तिष्क में ही विचरण करती है। उसके दो पाँव हैं—(१) **विचार** (२) **तर्क**। लेकिन सरस **हृदय** सदा भाव-भूमि पर ही विचरण करता है। महाकवि तुलसी उक्त अर्धाली को हृदय की वाणी द्वारा व्यक्त कर रहे हैं। आप उस अर्धाली को एडवोकेट की शुष्क बुद्धि से नापना चाहते हैं। पैमाना उपयुक्त नहीं है। इसलिए बुद्धि के पैमाने से वह ठीक नपेगी नहीं। जीवन के प्रथम चरण की-सी हृदय-भाव-भावना जगाने के उपरान्त ही **पदुम अठारह जूथप बन्दर** का अर्थ समझ में आएगा। सोने को सर्राफ़ के धर्म-काँटे पर तोलिए, अनाज की मंडी के काँटे पर नहीं।

उपर्युक्त अर्द्धाली-चरण का कथन शुक-सारण (रावण-दूत) का है, जो राम चन्द्र जी की विशाल बलशालिनी सेना को देखने के बाद भयभीत हैं। डरे हुए दुर्बल व्यक्ति को दस आदमी भी दस हज़ार जैसे लगते हैं। इस पर भी वह सेना तुलसी के भगवान् रामचन्द्र जी की है, जो अखिल ब्रह्माण्ड-नायक हैं और जिनकी भृकुटि के तनिक विलास मात्र से ही अखिल सृष्टि प्रलय में बदल जाती है। ऐसे अखिल ब्रह्माण्ड-नायक सर्वशक्तिमान् रामचन्द्र जी की सेना में वानरों के यूथपति अठारह पद्म की संख्या में यदि शुक-सारण को दिखायी दिये हों, तो आश्चर्य क्या है ? काव्य में तो भावना-सत्य होता है, ऐतिहासिक या वैज्ञानिक सत्य नहीं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास की दृष्टि से भले ही अठारह पद्म यूथपति न हों; किन्तु तुलसीदास की भावना में उतनी संख्या अवश्य थी। काव्य में आदर्श और भावनाधिक्य होता है। अपने स्वामी तथा आराध्य रामचन्द्र जी की सेना में अठारह पद्म यूथपति तुलसी न लिखते, तो उनके मन को सन्तोष न होता। तुलसी के प्रभु सर्वशक्तिमान् हैं; महायोद्धाधिपति हैं। अपार ऋक्ष-वानर-वाहिनी के अधिनायक हैं। उस सेना को संख्यातीत तभी बताया जा सकता है, जब उसके यूथपतियों की संख्या पद्मों में गिनायी जाए।

यदि मामूली राजाओं की-सी युद्ध-वाहिनी भगवान् राम की भी बता दी जाती, तो उसमें तुलसी की हेठी ही मानी जाती। उनके सर्वस्व एवं परमाराध्य योद्धा रामचन्द्र जी पाठकों को टटपूँजिये लगते। तुलसी को यह स्वप्न में भी स्वीकार नहीं। वह तो सेना की संख्या को गणनानीत रूप में बताना चाहते हैं— इसलिए सेना की संख्या न बताकर यूथपतियों की संख्या बताना उचित और उपयुक्त मानते हैं। जिसमें यूथपति ही अठारह पद्म हैं, उस सेना में सैनिक कितने होंगे? गणितशास्त्र इसमें फ़ेल है; गणना नहीं कर सकता। हज़ारों सैनिकों पर एक यूथपति होता है, कोई क्या हिसाब लगाएगा?

अब रही, पुष्पक विमान में सेना के बैठने की बात। 'रामचरितमानस' के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रामचन्द्र जी जब लंका से अयोध्या को चले थे, तब पुष्पक विमान में उनके साथ निम्नांकित नौ व्यक्ति ही थे। शेष सब सैनिक युद्ध के उपरान्त ही विदा कर दिये गये थे। उत्तरकाण्ड के प्रमाण के आधार पर राम के साथ के उन व्यक्तियों (पुष्पक विमान की सवारियों) के नाम इस प्रकार हैं—(१) **लक्ष्मण** (२) **सीता जी** (३) **सुग्रीव** (४) **विभीषण** (५) **अंगद** (६) **जाम्बवान्** (७) **हनुमान्** (८) **नल** (९) **नील**।

भगवान् राम के साथ उपर्युक्त नौ व्यक्ति ही पुष्पक विमान में बैठकर लंका से अयोध्या आये थे। शेष न यूथपति आये, न सैनिक। वे सब पहले ही विदा कर दिये गये थे। उत्तर काण्ड (दो० १६ से दो० १७ तक) में उनका उल्लेख है। राज्याभिषेक के बाद भगवान् राम ने उन नौ का ही प्रेमपूर्वक हार्दिक सम्मान करते हुए, उन्हें वस्त्राभूषण पहनाये हैं।

आशा है परमेश की दया से आप सपरिवार सानंद होंगे। बड़े भाई साहब (पं० बद्रीप्रसाद जी शर्मा) से मेरा सादर नमस्कार कहें। शेष सब बच्चों को आशीर्वाद!

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

पं० भोजराज शर्मा, एडवोकेट,
चन्द्र-निकेत,
रघुवीरपुरी, अलीगढ़-२०२००१

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० प्रभाकर माचवे के नाम

काव्य-कुटीर,
कृष्णापुरी, अलीगढ़
दिनांक ८–१०–१९५७ ई०

बन्धुवर माचवे जी,

सादर सप्रेम नमस्कार।

आपकी पुस्तक **समीक्षा की समीक्षा** देखी, जो साहनी प्रकाशन, दिल्ली से से प्रकाशित हुई है। पुस्तक पढ़ी और उस पुस्तक की भूमिका भी पढ़ी। भूमिका के पृष्ठ १८ पर आपने लिखा है—

"अन्त में मैं उन सब लेखकों का आभारी हूँ, जिनकी रचनाओं से मैंने उद्धरण लिये हैं। कहीं-कहीं उद्धरण लम्बे भी हो गये हैं। वहाँ मैंने मूल लेखकों की अनुमति विशेष रूप से ले ली है।"

आपने **समीक्षा की समीक्षा** पुस्तक में बाबू गुलाबराय जी की पुस्तक **सिद्धान्त और अध्ययन** पर अनेक समीक्षात्मक विचार पृष्ठ ४९ से ८७ तक व्यक्त किये हैं। इसी अध्याय में पृष्ठ ७६ से ८२ तक मेरा लेख **साधारणीकरण क्या और किसका** ? उद्धृत किया गया है। पूरे सात पृष्ठों का लेख आपकी पुस्तक में ज्यों का त्यों उतार दिया गया है। क्या इतना लम्बा भी कहीं उद्धरण लिया जाता है ? लेख ज्यों का त्यों ऐसे ढँग से मुद्रित किया गया है कि मूल लेखक का नाम आसानी से पुस्तक में मालूम नहीं पड़ता। उक्त लेख अखिल भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग की त्रैमासिक शोध-पत्रिका 'अनुशीलन' में प्रकासित हो चुका था। संभवतः आपकी किताब में वहीं से उद्धृत किया गया होगा। जहाँ तक स्मरण है, लेख के सम्बन्ध में आपने मुझसे अनुमति नहीं माँगी। यदि माँगी है, तो कृपया बताएँ, कब आपको अनुमति दी गयी थी ? आप जैसे सुविज्ञ तथा विख्यात लेखक से मुझे ऐसी आशा न थी।

आशा है आप इसका स्पष्टीकरण शीघ्र देने की कृपा करेंगे। साहित्यिकों की बिरादरी में ऐसी दिन-दहाड़े सीनाज़ोरी क्या आपकी राय में ठीक है ?

उत्तर की प्रतीक्षा में हूँ। आशा है आप सानंद होंगे।

श्री प्रभाकर माचवे,
सी–२३०, विनयनगर,
नई दिल्ली–३

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' के नाम

काव्य कुटीर
कृष्णापुरी, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दि० १२. २. ६० ई०

प्रिय बन्धुवर श्री सुमन जी,
सप्रेम नमस्कार !

आपका दिनांक ६-२-६० का पत्र मिला। भाई! आपका यह लिखना, कि आप ही कुछ भूले मालूम होते हैं, मेरे मन ने स्वीकार नहीं किया। जिस व्यक्ति ने आपसे, आपकी जन्म-भूमि से और आपके परिवार से आत्मीयता प्राप्त की हो, वह क्या कभी भूल सकता है? आपके नाम-स्मरण के साथ **मंडी धनौरा, हापुड़** और **बाबूगढ़** का वातावरण एक साथ आँखों के आगे घूम जाता है—**ते हि नो दिवसा गताः।**

'ब्रजभाषा-शब्दावली' से सम्बन्धित मेरे शोध-प्रबन्ध का प्रथम खंड ही अभी हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद से मुद्रित हुआ है—इसी मास में। सम्भवतः जिल्द बँधकर पुस्तक मार्च मास में प्रकाशित हो सकेगी। अभी मुझे भी कोई प्रति नहीं मिली। अतः क्षमा-प्रार्थी हूँ।

मेरे शोध-ग्रंथ 'कृषक जीवन-सम्बन्धी ब्रजभाषा शब्दावली' में ब्रज-क्षेत्र के शब्दों को संकलित करके उनकी व्युत्पत्तियाँ प्रस्तुत की गयी हैं। मानिए, जनपदीय ब्रजभाषा का एक शब्द **दराँत** है। दराँत से किसान अपने खेतों की फसल भी काटते हैं। यह शब्द वैदिकी भाषा के **दात्र** शब्द से विकसित है। **ऋग्वेद** के एक मंत्र में **दात्र** का उल्लेख है—**हस्ते दात्रं च नाददे**। (ऋक्० ८/७८/१०)

भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़ से मेरा कोई ललित निबन्ध-संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ। हाँ, **वाङ्मयी** नाम की एक पुस्तक अवश्य प्रकाशित हुई है। यहाँ मैं अपने निबन्धों की एक तालिका आपको लिखकर भेज रहा हूँ। इसे पढ़कर आप मुझे अपनी सम्मति देने की कृपा करें कि किन-किन निबन्धों को संग्रह में रखना अधिक उपयुक्त रहेगा। प्रकाशक ईमानदार-सा टटोलिए। मैं काफ़ी लुटा हूँ।

निबन्धों के शीर्षक—● (१) ब्रज, ब्रजेश-भक्ति और ब्रज-वैभव (२) ब्रज-भाषा और उसका शब्द-स्वरूप (३) संगीत कला और ब्रज-काव्य (४) अष्टछाप के कवियों की सांस्कृतिक देन (५) ब्रज में जन्मोत्सव के लोकाचार और नेगचार (६) ब्रज में श्रावण मास के त्यौहार और गीत (७) ब्रज के होली-गीत और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी शब्दावली (८) ब्रज के लोक-जीवन में वसन्त ऋतु (९) ब्रज में देवर-भाभी (१०) ब्रज में बट-सावित्री-पूजन।

●(१) भारतीय आलोचना-पद्धति और उसकी गति-विधि (२) काव्य की आत्मा और उसके विवेचक आचार्य (३) पाश्चात्य और भारतीय काव्य-शास्त्री। (४) साधारणीकरण और रस-निष्पत्ति (५) काव्य-वृत्तियाँ (६) ध्वनि और ध्वनिकाव्य (७) शब्द और उसकी शक्तियाँ (८) विरोध, विरोधाभास और विषम अलंकारों की विवेचना (९) हिन्दी-उर्दू-काव्यशास्त्र की तुलना (१०) उर्दू हिन्दी से पृथक् भाषा नहीं (११) सूरकाव्य में रँगों की संयोजना (१२) तुलसी पर सूर का आलोक (१३) मीराँ की भक्ति-भावना (१४) ब्रजभाषा कवियों में रसखान का स्थान (१५) हिन्दी साहित्य में रीति-काल का प्रारम्भ और परम्परा (१६) विहारी की वाग्विभूति और बहुज्ञता (१७) सेनापति और विहारी (१८) हिन्दी-कविता : भारतेन्दु से दिनकर तक (१९) हिन्दी-साहित्य में प्रगतिवाद (२०) हिन्दी उपन्यास : प्रेमचन्द से पूर्व और पश्चात् (२१) छायावाद और रहस्यवाद—विभिन्न मत (२२) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और उनकी आलोचना-पद्धति (२३) हिन्दी भाषा का शब्दकोश-साहित्य (२४) संगीत कला और हिन्दी का गीत-काव्य।

बाबूगढ़ के उस घर की क्या स्थिति है, जिसके चौके (रसोईघर) में बैठ-कर हम दोनों ने भोजन किया था ? अब वहाँ कौन-कौन हैं ?

हर्ष है कि परमेश की दया से आप सपरिवार आनन्दपूर्वक हैं। बच्चों को प्यार तथा आशीर्वाद। सदैव स्नेह एवं मैत्री-भाव का अभिलाषी हूँ।

शेष फिर कभी !

श्री क्षेमचंद्र 'सुमन', आपका बन्धु
साहित्य-अकादमी, नई दिल्ली। अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० इन्दरराज बैद 'अधीर' के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' **८/७, हरिनगर, अलीगढ़**
डी० लिट्० दिनांक २. ३. १९६५ ई०

प्रियवर इन्दरराज,

आशीर्वाद !

"आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्ध **'साधारणीकरण और व्यक्तिवैचित्र्यवाद'** के अन्तर्गत **रसानुभूति** में जो **मध्यम कोटि** मानी है, वह क्या भारतीय रसशास्त्र से मेल खाती है ?" मेरी इस शंका का समाधान कृपया लौटती डाक से करें; **काव्य** और **कला** के सम्बन्ध में भी आभारी होऊँगा—यह लिखा है, तुम्हारे पत्र में।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाधान—मुख्य बात यह है कि रस के चार अवयव होते हैं—(१) **विभाव** (२) **अनुभाव** (३) **संचारी भाव** (४) **स्थायी भाव ।**

यदि काव्य में पक्ष की बात कहेंगे तो दो ही पक्ष हैं—(१) भाव पक्ष अर्थात् आश्रय (२) विभाव पक्ष अर्थात् आलम्बन ।

आश्रय से सम्बन्ध रखते हैं स्थायीभाव, संचारीभाव और अनुभाव। आलम्बन से सम्बन्ध रखते हैं उद्दीपन विभाव ।

रसानुभूति की प्रक्रिया में विभाव, अनुभाव, संचारी और स्थायीभाव—चारों का ही साधारणीकरण होना चाहिए। आचार्य शुक्ल जी के निबन्ध में विभाव के साधारणीकरण पर ही विशेष बल है। साधारणीकरण वास्तव में तभी साधारणीकरण है, जब रसानुभूति में सहायक है। रसानुभूति अर्थात् रसात्मकता का निर्णय दर्शक या पाठक किया करता है ।

काव्यान्तर्गत तीन ही तत्त्व हैं—(१) **आश्रय** (२) **आलम्बन** (३) **आलम्बन-आश्रय** से सम्बद्ध भाव, साधारणीकरण का निर्णय तो दर्शक या पाठक पर निर्भर है।

रसप्रक्रिया में कभी **रसानुभूति** होती है और कभी **रसाभास** की अनुभूति होती है। रावण यदि सीता जी पर क्रोध करता है, तो भारतीय काव्यशास्त्र की दृष्टि से रावण के क्रोध-भाव का आलम्बन (सीता) अनुचित है। अतः ऐसी स्थिति में पाठक को रसाभास की ही अनुभूति होगी। रसाभास में साधारणीकरण कहाँ ? आचार्य शुक्ल जी ने ऐसी अवस्था में उसे मध्यम कोटि की रसानुभूति कहा है। रसानुभूति में कोटियाँ नहीं होतीं। शुक्ल जी भारतीय काव्यशास्त्र के मूल सिद्धान्त से हटकर कुछ विचित्र-सी बात कह गये हैं। बस इतना ही मैं कह सकता हूँ ।

तुम्हारा दूसरा प्रश्न यह है कि आचार्य शुक्ल के मतानुसार काव्य एक कला है या नहीं ?

पाश्चात्य विद्वान् काव्य को कला के अन्तर्गत मानते हैं। शुक्ल जी का मत उनसे भिन्न है। शुक्ल जी काव्य को कला से ऊँचा मानते हैं। उनका कहना है कि **काव्य** आत्मरमण कराता है, रसानुभूति कराता है, सत्त्वोद्रेक कराता है। **कला** केवल मनोरंजन कराती है, सौन्दर्यानुभूति (रसात्मक प्रतीति) कराती है, रजोगुण जगाती है और बौद्धिक सुख देती है। अतः कला सदा काव्य से नीची है। भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार काव्य आत्मानन्द प्रदान करता है। कला तो केवल बौद्धिक सुख देती है। **साहित्य संगीत कला विहीनः** में **साहित्य** शब्द, **काव्य** का पर्याय बनकर आया है ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर्ष है, तुम सपरिवार सानंद हो। बच्चों को आशीर्वाद तथा प्यार। मैं मद्रास के हवाई अड्डे से वायुयान द्वारा दिल्ली आया और फिर वहाँ से अलीगढ़ को रेलगाड़ी से आया। यहाँ सपरिवार कुशल-क्षेम से हैं सब। तुम्हारी माता जी के हाथ का भोजन तो यहाँ बच्चों ने भी पाया।

श्री इन्दरराज बैद 'अधीर' शुभैषी

एम० ए०, पी-एच० डी० (शोध-छात्र) अम्बाप्रसाद 'सुमन'

हिन्दी स्नातकोत्तर अध्ययन एवं अनुसंधान विभाग,

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास।

डा० श्रीराम शर्मा के नाम

शिविर, मथुरा (उ० प्र०)

दिनांक १०. ६. १९६७ ई०

प्रियवर श्रीराम,

आशीर्वाद।

'लोक' का अध्ययन शिष्ट साहित्य के दिव्य दर्शनों का सोपान-पथ है। महाभारतकार कहता है—**प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः** (महाभारत, उद्योग पर्व, ५/४३/३६, पूना संस्करण) आचार्य **वामन** ने काव्य के हेतु तीन मानें हैं। उनमें लोक का स्थान प्रथम है।

लोकगीतों में **जिकड़ी भजन** लोकसाहित्य की एक ऐसी विधा है, जो शिष्ट साहित्य के प्रवन्धकाव्यों के साथ अधिक मेल खाती है। जिकड़ी भजनों का **जिकड़ी** शब्द उसकी ओर संकेत भी कर रहा है। अरबी भाषा में **ज़िकर** एक संज्ञा शब्द है, जिसका अर्थ **चर्चा** या **वर्णन** है। **जिकड़ी भजनों** में किसी घटना या विशिष्ट प्रसंग का पद्यात्मक वर्णन रहता है। अ० **ज़िकर** से विशेषण **जिकरी**, **जिकड़ी**—यह विकास-क्रम संभव है।

लोकगीतों के अनेक छन्द शिष्ट काव्य में भी मिलते हैं। जिकड़ी भजन में प्रारम्भ में छह चरणों का एक 'गाह्या' होता है, जिसमें चार चरण रोला के और दो चरण उल्लाला के होते हैं; अर्थात् **रोला + उल्लाला = गाह्या**। ग्यारह मात्राओं का **रोला** और तेरह मात्राओं का **उल्लाला** होता है—इसे तुम जानते ही हो।

गाहे के बाद एक **टेक** और फिर चौदह मात्राओं की एक **साखी** होती है। उसके बाद अन्तरे के रूप में दो चरणों की **झड़ावन** होती है। झड़ावन प्रायः तीस या बत्तीस मात्राओं की होती है। **झड़ावन** को 'दंडकला' छन्द के निकट

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझना चाहिए। यह छन्द बत्तीस मात्राओं का होता है। **स्व० पं० राधेश्याम कथावाचक** बरेली ने भी अपनी 'रामायण' इसी छन्द में लिखी थी। अधिकतर **झड़ावनें** ३० मात्राओं की हुआ करती हैं।

लोकगीतों में **लावनी** बहुत प्रसिद्ध है। मैंने अपनी दादी से कई बार निम्नांकित यह लावनी सुनी थी—**दुख हरौ द्वारिकानाथ सरन मैं तेरी।**

तुम्हें मालूम होना चाहिए कि इसी छन्द को कविवर **मैथिलीशरण गुप्त** ने अपने **साकेत** में भी लिखा है—

युग-युग तक चलती रहे कठोर कहानी। –(साकेत)

ख्याल (लावनी) भी **लावनी** छन्द में रचे जाते हैं। खुर्जा के प्रसिद्ध लोक-गीतकार हरबंसलाल हैं। लोक का यह लावनी छन्द इतना अधिक लोकप्रिय और सुप्रसिद्ध हुआ कि पंचवटी में कविवर गुप्त जी ने भी इसे अपनाया। यह तीस मात्राओं का होता है।

लोक-जीवन के संस्कारों तथा लोक के सहज वातावरण से लोकमानस की सहज सृष्टि होती है। उस सहज अनलंकृत मानस की वीणा से लोकगीतों के स्वर उत्पन्न होते हैं। उन स्वरों में ही लोक की वीणापाणि गाती है। वही गायन लोकगीत है। उन गीतों में सहज रस, सहज लालित्य और सहज सौन्दर्य होता है। उस सौन्दर्य को कालिदास की सहज मधुर शकुन्तला के समान समझना चाहिए। कालिदास ने आश्रमवासिनी शकुन्तला के अनलंकृत सहज मधुर सौन्दर्य के सम्बन्ध में कहा कि सहज मधुर व्यक्तियों के लिए अलंकारों की आवश्यकता नहीं—

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं; मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी; किमिव हि मधुराणां मंडनं नाकृतीनाम्॥

—(अभि० शाकु० अंक १/१७)

कालिदास ने अभि० शा० नाटक (६/१७) में दुष्यन्त के द्वारा सहज वातावरण में सहज मधुर शकुन्तला का चित्र बनवाया है। वह चित्र बताता है कि कला और सौन्दर्य का जन्म कब सफल होता है?

प्रियवर श्रीराम! लोकगीतों में लोककवि की अपनी निजी भावना नहीं होती; अपितु सम्पूर्ण लोक-संस्कृति की वाणी ही उनमें मुखरित होती है। समस्त लोक-मानस सहज रूप में लोकगीतों में रूपायित होता है। लोकगीत सर्व सामान्य जनता के हृदय के भावगीत हैं। लोकगीत लोककवि के अवचेतन मन की स्वर-लहरी के सहज उद्रेक हैं। उनमें बुद्धि का बनावटी अलंकरण नहीं। उनमें समाज की परंपराएँ और रूढ़ियाँ भी निश्छल भाव से गृहीत हैं। निश्छलता और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहजता ही लोकगीतों का असली सौन्दर्य है। लोकगीत पिंगलशास्त्र को नहीं देखते; वे तो स्वयं पिंगलशास्त्र को जन्म देते हैं।

मानव-जीवन के आदि लोकगीतों में नयी गति, नयी लय, नयी ताल, नया छन्द, और नया स्वर था; जिन्हें हम मौलिक कह सकते हैं।

लय का जन्म **गति** से होता है। **प्राण** जब भाव को सँजोये हुए, कंठ से लय बनकर बाहर निकलता है, तब **गीत** का जन्म होता है।

विश्वास है कि तुम जिकड़ी भजनों पर शीघ्र अपना शोध-ग्रंथ प्रस्तुत करोगे। सस्नेह,

श्री श्रीराम शर्मा,
हिन्दी-विभाग,
धर्मसमाज कालेज, अलीगढ़

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़
दिनांक १४. २. ६६ ई०

प्रिय भाई दिनेश जी,

सप्रेम नमस्कार।

आपकी नूतन कृति **अहं मेरा गेय** की कविताओं को पढ़कर जीवन और जगत् की सरस आदर्शमयी दिव्यानुभूति प्राप्त हुई।

आपने तो इन कविताओं की सर्जना में 'सुख' और 'आनन्द' ही लिया होगा; मैंने तो 'रसास्वाद' लिया है। 'रसास्वाद' की ऊँचाई को 'आनन्द' नहीं छू सकता। आप स्रष्टा कवि हैं, और मैं द्रष्टा कवि हूँ। आपने साधना की है; रस मुझे मिला है।

भगवान् राम की लीला को बखानते तो सरस्वती, शेष और वेद हैं, किन्तु उसका रस शंकर ही जानते हैं। तुलसी ने स्पष्ट कहा है—

बरनहिं सारद सेस श्रुति, सो रस जान महेस।

(रामचरितमानस, उत्तर० १२/–)

'कवि' नाम स्रष्टा का भी है, और आलोचक का भी। इसी लिए कहा गया–

कवितारसमाधुर्यं कविर्वेत्ति, न तत् कविः।
भवानी-भृकुटी-भंगं भवो वेत्ति, न भूधरः।

कवि = सहृदय स्रष्टा। **कवि** = सहृदय पाठक।

बन्धुवर दिनेश जी! **अहं** दो प्रकार के होते हैं—एक **व्यक्ति का अहं** और दूसरा **समाज का अहं**। कवि का अहं व्यक्ति का अहं नहीं, अपितु समाज का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अहं' है। कवि के काव्य में कवि का जो 'गेय अहं' होता है, वह समाज के अहं का अंग होता है। इसी लिए तो वह अहं वंदनीय है; और होना भी चाहिए। वह वाणीमय क्रियाशील अहं मानवत्व के धरातल से उठकर देवत्व के पद पर आसीन होता है। इसीलिए हमारे ऋषियों ने कवि को मनीषी, परिभू और स्वयंभू कहा था।

आपकी सारस्वत भेंट ने ही मुझे दिव्य रसास्वाद प्रदान किया, अतः मैं आपको धन्यवाद देते हुए आभारी हूँ। माता वीणापाणि से प्रार्थना है कि आपका ब्राह्मसरोवर दिव्य सुषमा के साथ सदा ऊर्मिल रहे ! सस्नेह,

डा० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश', आपका
१५६, अशोकनगर, उदयपुर (राजस्थान) अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० रामरजपाल द्विवेदी के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' **८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)**
डी० लिट्० दिनांक २. २. १९७० ई०

प्रियवर रामरजपाल द्विवेदी,

आपने पूछा है कि विश्व-कल्याण की दृष्टि से **मानववाद** और **मानवतावाद** में कौन-सा वाद अच्छा है ?

मानववाद, मानवतावाद की अपेक्षा संकुचित दृष्टिवाला है। **मानववाद** सृष्टि के अन्य प्राणियों की उपेक्षा करता है। वह केवल मनुष्य का हिमायती है।

सृष्टि के अन्य प्राणियों को त्यागकर केवल मनुष्य को ऊपर उठाना, शेष प्राणि-जगत् के साथ अन्याय और अत्याचार माना जाएगा। अतः मानववाद संकीर्ण है।

मानववाद विज्ञान के बल पर मनुष्य का पक्षधर है। विज्ञान ने ऊर्जा और पदार्थ का ज्ञान तो करा दिया; किन्तु मनुष्य को क्रूर भी बना दिया। बुद्धि में मनुष्य उठ गया; किन्तु हृदय से बहुत छोटा और घटिया बन गया। ज्ञान जब भाव-भावना का विरोधी बन जाता है, तब मनुष्य में संकीर्णता और क्रूरता आ जाती है।

मनुष्य सुखी रहे, सृष्टि के अन्य प्राणी भी सुखी रहें। संसार के सुख को ध्यान में रखते हुए मानव उठे, चले और आगे बढ़े; तभी **मानवतावाद** अपना प्रकाश फैला सकता है। समष्टि के ज्ञान और भाव का मंगलमय मधुर मिलन मानवतावाद है। मानववाद मनुष्य के अकेले ज्ञान और अहं को लेकर चलता है। इसलिए मानववाद बौना है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चित रूपेण **मानववाद** से **मानवतावाद** ऊँचा है। राष्ट्रवाद से ऊँचा मानववाद, और मानववाद से ऊँचा मानवतावाद है।

हर्ष है आप आनन्दपूर्वक हैं।

डा० रामरजपाल द्विवेदी, आपका
पी-एच० डी०, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
२६८ के, रामनगर, गाजियाबाद (उ० प्र०)

डा० रामसिंह अत्री के नाम

शिविर मथुरा
प्रियवर रामसिंह, दिनांक ३. ३. १९७२ ई०
आशीर्वाद !

तुमने **सूफी-साधना** के स्वरूप को संक्षेप में जानने की इच्छा प्रकट की है।

सूफी-साधना के सिद्धान्त-पक्ष को समझने के बाद ही जायसीकृत 'पद्मावत' के भाव-जगत् को तुम ठीक तरह से जान सकते हो।

सूफी-साधना का सामान्य और सरल अर्थ है 'ईश्वर के प्रति प्रेममूला साधना'। सूफियों के दो स्कूल हैं—(१) **इलहामिया स्कूल**—इसके लोग भगवत् प्रेरणा में विश्वास रखते हैं। उनका कहना है कि प्रभु के प्रति प्रेम बन्दे में तभी होता है, जब प्रभु की कृपामयी प्रेरणा होती है। यह भावना सगुण भक्तों की पुष्टिमार्गी भक्ति से मेल खाती है। (२) **इत्तहादिया स्कूल**—इसके मानने वाले भगवान् में तल्लीनता प्राप्त कर एक हो जाने में विश्वास रखते हैं। ये 'मारिफ़त' की अवस्था में आस्थावान् हैं। 'मारिफ़त' की श्रेणी पर पहुँचने से पहले उन्हें शरीअत, तरीक़त और हक़ीक़त को भी पार करना पड़ता है। पुष्टि-मार्गी भक्ति में जीव परमात्मा नहीं बनता, अद्वैत वेदान्त में तो बन जाता है।

प्रेम-साधना-पथ पर बढ़नेवाले प्रेमी साधक खुदा की ओर बढ़ते हैं। उनके क्रमशः नाम इस प्रकार हैं—(१) **तालिब**=जो रास्ते पर चलने की तलब (इच्छा) रखते हैं। (२) **मुरीद**=जो मार्ग पर चलते रहते हैं। (३) **सलीक**=गुरु के उपदेश से जिन्होंने सही मंज़िल पा ली हो। (४) **वस्ली**=जिन्होंने ख़ुदा का वस्ल हासिल कर लिया हो।

प्रभु में लय हो जाना ही समर्पण है। 'मारिफ़त' को लय की स्थिति समझना चाहिए।

साधक का अपना अस्तित्व जब तक रहता है और जब तक वह उस स्थिति में परमात्मा में अखंड श्रद्धा रखते हुए सदा उसी में ध्यानावस्थित रहता है, तब तक वह **बक़ा** की स्थिति है; लेकिन जब उसकी आत्मा परमात्मा में लय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर परमात्मा ही बन जाती है और 'अनलहक़' (अहं ब्रह्मास्मि) सिद्ध हो जाता है, तब 'फ़ना' की स्थिति होती है। सुक्र प्रथम सीढ़ी, फकद द्वितीय सीढ़ी, और फ़ना अंतिम मंज़िल है। यही **अधिदैवत** और **अध्यात्म** विद्या है।

सर्वप्रथम सूफी मत का आविर्भाव ८०० ई० में फिलस्तीन में हुआ था। रबिया, हल्लाज, मंसूर, जलालुद्दीन रूमी आदि प्रसिद्ध सूफी सन्त हुए हैं। रबिया आजीवन कुमारी रही थी। उसने अपना शरीर ईश्वर को अर्पित कर दिया था। जलालुद्दीन रूमी ने अपनी एक 'मसनवी' में बताया है कि **मैं** जब तू बन जाता है तब खुदा का द्वार खुलता है।

कान्ताभाव (माधुर्यभाव) की भक्ति में आश्रय प्रेयसी; और आलम्बन पुरुष रूप प्रियतम परमात्मा होता है। सूफ़ी लोग ख़ुदा की कल्पना नारी रूप में भी करते हैं। जायसीकृत 'पदमावत' में रतनसेन बंदा है, और पद्मिनी ख़ुदा के रूप में चित्रित की गयी है। रतनसेन उसे पाने के लिए जंगल, नदियाँ पर्वत आदि पार करते हुए यात्रा करता है। वे ही शरीअत, तरीक़त और हक़ीक़त नाम की यात्रा-मंज़िलें हैं।

मैं समझता हूँ तुम्हारी समझ में सूफ़ी-प्रेम-साधना का स्वरूप कुछ-कुछ आ गया होगा।

मेवलाना रूमी का एक ग्रंथ है **'मसनवी-ए-मानवी'**। यह छह जिल्दों में है। इसे प्रारम्भ में हसन ने तैयार किया था। इसमें लगभग ४० हज़ार शेरें हैं। हसन १२५८ ई० में मौजूद थे। उन शेरों में सूफी-साधना का पूरा स्वरूप अभिव्यक्त है। सस्नेह,

श्री रामसिंह अत्री, एम० ए० शुभैषी
हिन्दी विभाग अम्बाप्रसाद 'सुमन'
अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय, अलीगढ़

डा० त्रिलोकीनाथ 'व्रजबाल' के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)

प्रियवर, व्रजबाल जी, दिनांक ७. ९. १९७२ ई०

आपका पत्र मिला। पढ़कर प्रसन्नता हुई कि आपकी सारस्वत साधना चल रही है। आपका मूल प्रश्न यही है न, कि सच्ची कविता के **आदर्श चित्रण** और **यथार्थ चित्रण** में क्या अन्तर है?

आप यह तो जानते ही हैं कि **कविता** कवि की मानसी सृष्टि है। वह सृष्टि इस लोक की होते हुए भी इस लोक से ऊपर और अति दिव्य होती है। इस लोक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के दुख-सुख उस दिव्यतम लोक में पहुँचकर केवल आनन्द रूप बन जाते हैं। **अनु-भूति, चिन्तन** और **कल्पना** आदि कवि की **अभिव्यंजना** की मनोरमता पाकर पूर्णतः आदर्श ही बन जाते हैं। कवि के संसार में इस संसार के यथार्थ-जैसा कुछ नहीं होता। कवि के मानस-लोक में सब कुछ अलौकिक होता है, आदर्शमय होता है।

कवि का मानस-लोक और उस लोक की प्रकृत्ति एवं समाज ही निराला, दिव्य और अपूर्व होता है। उस लोक की नदियाँ, पर्वत, वृक्ष, पत्र-पुष्प आदि बिल्कुल पृथक् होते हैं। मानव और मानवीय गुण—सौन्दर्य नितान्त पृथक् होते हैं। ब्रह्मा की सृष्टि से भी अधिक सुषमा-परमामयी सृष्टि कवि की होती है। इसी-लिए तो कवि को अनन्वय अलंकार, उल्लास अलंकार आदि के माध्यम से अपने मानस-लोक की छटा बतानी पड़ती है। कवि भिन्न-भिन्न, तो कवियों के मानस-लोक भी भिन्न-भिन्न। वाल्मीकि के राम अलग, और तुलसी के राम अलग। महाभारत और भागवत के कृष्णों से अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के कृष्ण अलग हैं। वैसे द्वापर में इस धरती पर जन्म लेने वाले कृष्ण एक ही थे।

अतः मेरे विचार से कविता में केवल **आदर्श** चित्रण होता है, **यथार्थ** नहीं।

हर्ष है आप सानन्द हैं। सस्नेह,

श्री त्रिलोकीनाथ व्रजबाल, आपका
श्रीभवन, गली कसेरान, मंडी रामदास, मथुरा। अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री आनन्दपाल सिंह 'एकलव्य' के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़

प्रियवर श्री एकलव्य जी, दिनांक २. १०. १९७२ ई०

आपके पत्र में निम्नांकित तीन प्रश्न हैं—

(१) **कैकेयी** राजा दशरथ की कौनसी (किस नम्बर की) रानी थी? (२) जब राम वन को गये थे, तब **रामचन्द्र जी** और **सीता जी** की क्या-क्या **अवस्थाएँ** थीं? (३) **राम-वन-गमन** के समय क्या सीता जी भी तपस्विनी वेश में वन को गयी थीं?

(१) वाल्मीकीय रामायण के अनुसार कैकेयी राजा दशरथ की बीच की (दूसरे नम्बर की) रानी थी। बड़ी कौशल्या, और सबसे छोटी सुमित्रा थी। राजा दशरथ को मँझली रानी कैकेयी बहुत प्रिय थी।

(२) वाल्मीकि के मतानुसार रामचन्द्र जी के वनवास के समय रामचन्द्र जी की अवस्था सत्ताईस वर्ष की, और सीता जी की अवस्था अठारह वर्ष की थी;

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामचन्द्र जी और सीता जी विवाहोपरान्त अयोध्या में बारह वर्ष रहे थे। विवाह के समय रामचन्द्र जी की अवस्था पन्द्रह वर्ष की और सीता जी की छह वर्ष की थी। गुप्त जी ने **जयद्रथ वध** में राम की अवस्था को 'ऊनषोडश वर्ष' लिखकर बता दिया है।

पन्द्रह वर्ष के राम के साथ सीता जी (छह वर्ष की) ब्याही गयी थीं। इसे बाल-विवाह न मानना चाहिए। तब छह वर्ष की अवस्था में ही आज की सोलह वर्ष की अवस्थावाली कन्या के समान ही यौवनागम हो जाता था। पन्द्रह वर्ष के बालकों में भी आज के २५ वर्षीय बालकों का-सा पौरुष, बल आदि आ जाता था। रामायण-काल से आज तक हम शरीर और शक्ति में शनैः शनैः क्रमशः ह्रास को प्राप्त होते रहे हैं। हम पहले विराट् थे, अब वामन हैं।

वाल्मीकीय रामायण के आधार पर कहा जा सकता है कि सीता जी अयोध्या से जब राम के साथ वन को चली थीं, तब उनके शरीर पर वस्त्रा-भूषण थे। उनमें से कई आभूषण और एक उत्तरीय सीता जी ने किष्किन्धापुरी में पृथ्वी पर डाल दिये थे, जिन्हें पहचानने के लिए राम ने लक्ष्मण से पूछा था। तब लक्ष्मण ने रामचन्द्र जी से कहा था—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरेत्वभिजानामि नित्यं पादाभिवंदनात् ॥

—(वाल्मी० रामा०, किष्किं० सर्ग ६/श्लोक २२,२३)

हर्ष है, आप सपरिवार आनन्दपूर्वक हैं। निरंतर अभ्यास से आपकी पत्नी श्रीमती राजेश्वरीदेवी भी ब्रजभाषा में अच्छे लोकगीत लिखने लगेंगी। जो गीत आपने मुझे दिखाया था, वह अच्छा था। उन्हें मेरी असीस कहें।

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री आनन्दपाल सिंह 'एकलव्य',
ग्राम–इनायतपुर बझेड़ा, डा० अहमदपुर,
जि० अलीगढ़

ठा० गजेन्द्रपालसिंह के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ०प्र०)
दिनांक १८. ७. ७३ ई०

बन्धुवर श्री वकील साहब,

सप्रेम नमस्ते।

आपकी मुक्तक कविताओं का संकलन टंकित रूप में **नीलाम्बर पट की चादर पर** शीर्षक से मिला। मनोयोग से पढ़ा और आनन्द लिया। यह संकलन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चित रूप से भेरी से बाज़ी मार ले गया गया है। अपनी बात भी आपने बेलाग कही है।

सन् १९५४ से ६४ ई० तक हमारे देश की समष्टि और व्यष्टि ने जैसा विचारा और अनुभव किया है, उसे आपने मुक्त कंठ से इन कविताओं में स्पष्ट कर दिया है। संकलन की १७ कविताएँ राष्ट्र की जनता से बहुत साफ़-साफ़ निर्भीकता पूर्वक कह रही हैं। कुछ कविताओं में तो करारा व्यंग्य भी है, जो हमारे राष्ट्र के शासकों को झकझोरता है और उनपर करारी चोट भी करता है। अभी हिन्दी-कविता में उत्तम कोटि के व्यंग्य की कमी है। आपमें उसके तत्त्व मुझे आशाप्रद मिले। विश्वास है कि भविष्य में आपका यह तत्त्व और भी समुज्ज्वल रूप में हिन्दी-जगत् के समक्ष आएगा। इन कविताओं को रचकर आपने सिद्ध कर दिया है कि आप कविवर **गुरुभक्तसिंह** के सच्चे जामाता हैं। शेष पुस्तक की भूमिका में ही कहूँगा। अब सीधे हिन्दी-जगत् से कहूँगा, आपसे क्या कहूँ ?

प्रियवर योगेन्द्र, बेटी गीता, दीपा आदि को आशीर्वाद। आप अपने स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखें। परहेज़ करके तथा नियम से औषधि सेवन करके रोग से मुक्ति पाने का पूरा प्रयास करें। प्रभु आपका मंगल करें ! सस्नेह,

ठा० गजेन्द्रपाल सिंह, एडवोकेट,   आपका
स्थान व पो०—लोधा, जि०—अलीगढ़   अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री चन्द्रप्रभाकर पाठक के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक २०. ८. ७३

प्रिय भाई पाठक जी,

सप्रेम नमस्कार !

दिनांक १२. ८. ७३ का कार्ड आज मिला। डाक में पर्याप्त विलम्ब हुआ ख़ैर, देर आयद, दुरुस्त आयद। पत्र के लिए धन्यवाद।

आप सोरों निवासियों को मेरी सेवा से कुछ प्रेरणा मिली; इसके लिए महात्मा तुलसी और माता वीणापाणि को ही श्रेय दिया जा सकता है। समाज-सेवक-संघ के कुछ सदस्य मेरे व्याख्यान के लिए अगहन मास में योजना बनाना चाहते हैं। संभव हो सका तो सेवा करने का प्रयत्न करूँगा। आपको उस संगोष्ठी के भाषणों का सार समाचार पत्रों में अवश्य देना चाहिए था। उस दिन आपकी ओर से टेपरिकार्डिंग का भी प्रबन्ध न था। होता तो अच्छा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता। आगे जागरूक रहना चाहिए। हम सब तुलसी के सेवकों को कटिबद्ध होकर कार्य करना चाहिए। **महाकवि तुलसी विजयतेतराम्।**

अब आपके मूल प्रश्न का उत्तर लिख रहा हूँ। **पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी** ५३, खुर्शेद बाग, लखनऊ–४ को आप जानते होंगे। वे **सरस्वती** मासिक के संपादक भी हैं। उनके पितामह स्वामी श्रीमन्नारायण जी थे। वे १८ वीं शती के अन्त में हुए थे। वे भारद्वाज गोत्रीय सामवेदी माथुर ब्राह्मण थे। उनके वंश में **श्री हरगोबिन्द** हुए थे। वे १८वर्ष की अवस्था में घर से भाग गये थे। तिरुपति बाला जी के जिमर स्वामी के शिष्य हुए और संस्कृत के उद्भट विद्वान् बने। उनके गुरु ने उनका नाम **गोविन्ददास** रख दिया। गोविन्ददास का विवाह तो तभी हो गया था, जब वे **हरगोविन्द** नामधारी थे। गोविन्ददास के श्वसुर को उनका पता चल गया और वे गुरु से प्रार्थना करके गोविन्ददास जी को इटावा ले आये। इटावा में गोविन्ददास की ससुराल थी। वे इटावा में ही रहने लगे। श्री **गोविन्ददास** जी ने ब्रजभाषा में 'प्रपत्ति वैभव' नामक काव्य की रचना भी की थी। उनका हिन्दी के प्रति अगाध प्रेम और श्रद्धा थी। उन्होंने (श्री गोविंद-दास ने) अपने शिष्य श्री मधुसूदनदास को 'रामाश्वमेध' लिखने को प्रेरित किया। श्री गोविन्द दास जी 'रामचरितमानस' से इतने प्रभावित थे कि उनके पौत्र **श्रीमन्नारायण जी** में भी उनके द्वारा इतनी भक्ति-भावना 'मानस' के प्रति जगादी गयी कि उन्होंने (श्रीमन्नारायण ने) भी **रामचरितमानस** का एक संस्कृत-अनुवाद कर डाला, जो भारतवासी प्रकाशन, ६०० दारागंज, इलाहाबाद–६ से प्रकाशित है। संपादक हैं पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी।

श्री मधुसूदनदास कृत **रामाश्वमेध** अवधी भाषा में है। उसकी एक प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी में है। उसका सम्पादन **श्री मन्नालाल द्विज** ने किया है। 'रामाश्वमेघ' बनारस लाइट मंत्रालय से संवत् १९३९ वि० में छपा था। हमारे विश्वविद्यालय के एक शोध-छात्र ने उसकी भाषा-शैली पर शोध-कार्य किया है। पुस्तक की एक ही प्रति है, जो काशी नागरी प्रचारिणी सभा में ही देखने को मिल सकती है। शेष फिर कभी। पत्रोत्तर की प्रतीक्षा है। हर्ष है आप सानन्द हैं।

श्री चन्द्रप्रभाकर पाठक, एम० ए०
२/३१, चंदनचौक, सोरों (एटा)

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री चन्द्रप्रभाकर पाठक के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)

प्रिय श्री पाठक जी, दिनांक २०. ६. ७३

आपका दिनांक १४. ६. ७३ का अन्तर्देशीय पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। आप तुलसी और उनसे सम्बद्ध साहित्य के लिए अपनी सेवाएँ निष्ठापूर्वक अर्पित कर रहे हैं, इससे मुझे आन्तरिक प्रसन्नता है। सोरों की सामग्री अब व्यापक-रूप में प्रचारित होनी चाहिए। आप पहले एटा, मैनपुरी और मथुरा के ज़िलों में अपना प्रचार करें। अलीगढ़ में कब ठीक रहेगा, इसे मैं बाद में लिखूँगा ? मथुरा में आप **बा० वृन्दावनदास जी**, प्रकाश-भवन, डोरी बाज़ार, मथुरा और **ज्यो० राधेश्याम द्विवेदी**, भारती अनुसंधान भवन, स्वामी घाट, मथुरा को मेरे नाम का उल्लेख करते हुए पत्र लिखें। वे आपकी व्यवस्था अवश्य करेंगे। **श्री प्रेमनारायण गुप्त** को मैंने यह भी लिखा था कि उक्त दोनों व्यक्तियों को तुलसी-साहित्य-परिषद्, सोरों का सदस्य भी बना लेना चाहिए।

डा० मलखानसिंह सिसोदिया निष्ठावान् साहित्यकार हैं। उनसे आपको निश्चित ही अपने मिशन में बल मिलेगा। मैनपुरी में भी प्रदर्शन होना चाहिए। वहाँ आप **एकरसानंद आश्रम** के अध्यक्ष श्री १०८ स्वामी भजनानन्द जी महाराज को मेरे सन्दर्भ के साथ पत्र लिख सकते हैं। वे आपके मिशन में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। मैनपुरी में उनका विशाल-विस्तृत आश्रम है और उसी से संबद्ध एक इंटर कालेज है। इण्टर कालेज में सब प्रबन्ध किया जा सकता है।

सोरों में आप दोनों पुस्तकालयों के लिए मेरे ग्रंथ मँगा रहे हैं—इससे मन को मोद है। पुस्तक विक्रेता—जी० सी० अग्रवाल एण्ड कंपनी, मदार दरवाजा, अलीगढ़ से मेरा प्रकाशित साहित्य मिल सकता है। मेरी १५ पुस्तकें प्रकाशित हैं। आप तो तुलसी से सम्बद्ध साहित्य मँगाना चाहते हैं। वे उन्हें भेज सकते हैं।

यदि समाज-सेवक-संघ भी तुलसी और मानस के प्रति श्रद्धालु एवं कर्मठ बना हुआ है, तो यह शुभ लक्षण ही है। सोरों की सारस्वत चेतना कल्याण-कारिणी सिद्ध होती रहे, उसी तरह आप सबको मिल-जुलकर अनुष्ठान में लगना चाहिए। **मंगलायतनं हरिः**

मधुसूदनदास मथुरा-निवासी चौबे थे—ऐसा श्री त्रिवेदी ने अपने इतिहास में लिखा। जन्मभूमि मथुरा थी, ऐसा तो उससे भी सिद्ध नहीं होता। जन्म-स्थान और निवास-स्थान में तो अंतर है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरित मानस' के अरण्यकाण्ड और सुन्दरकाण्ड का **संस्कृत काव्यान्तर** (स्वामी श्रीमन्नारायणाचार्य) प्रकाशक, भारतवासी प्रकाशन, ५३ खुर्शेद बाग, लखनऊ-४ (उ० प्र०) के पृष्ठ १८ पर लिखा है कि—"जब इटावे से बाहर न जानेवाले मधुसूदनदास 'रामाश्वमेध' जैसा बृहत् काव्य अवधी में लिख सकते थे तब....."।

इस कथन से यही सिद्ध होता है कि इटावा **श्री मधुसूदन दास** की निवास-भूमि थी। मैंने सोरों के अपने भाषण में निवासी की बात ही कही थी कि मधुसूदनदास इटावे के निवासी थे। जन्मभूमि उनकी कहाँ थी? इसके संबंध में खोज की जानी चाहिए। **पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी**, ५३ खुर्शेद बाग, लखनऊ से भी पता लगाया जा सकता है; किन्तु आजकल वे अस्वस्थ चल रहे हैं। स्वस्थ हो जाने पर उनसे पत्र-व्यवहार किया जा सकता है। शेष बातें कभी सोरों आने पर होंगी। आपको तुलसी-साहित्य के किसी अंग को लेकर शोध-कार्य (पी-एच० डी०) में लग जाना चाहिए।

हर्ष है आप तथा श्री प्रेमनारायण गुप्त सानंद हैं। **डा० रामदत्त भारद्वाज जी** का भी पिछले सप्ताह में एक पत्र आया था।

श्री चंद्रप्रभाकर पाठक, एम० ए० आपका
२/३१, चंदनचौक, सोरों (एटा) अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० विष्णुदत्त भारद्वाज के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक १०. १०. १९७३ ई०

प्रियवर विष्णुदत्त जी,

आपका प्रश्न है—"रस को आनन्दस्वरूप माना गया है। क्या **करुण, बीभत्स** और **भयानक** रस भी पाठक को आनन्द प्रदान करते हैं? यदि करते हैं तो कैसे?"

विधाता की सृष्टि में भी आश्रय और आलम्बन होते हैं। आश्रय के किसी न किसी भाव का आलम्बन कोई न कोई व्यक्ति या वस्तु इस विधातृ-सृष्टि में हुआ करती है। किन्तु इस सृष्टि में आश्रय-आलम्बन का भाव-सम्बन्ध मोह-जन्य या स्वार्थपरक हुआ करता है। इसलिए सांसारिक सम्बन्धों के कारण दुख-सुख की अनुभूति होना स्वाभाविक है। संसार में पुत्र की मृत्यु पर माता को महान् दुःख होगा ही। वह शोक माता के हृदय को विदीर्ण कर देगा। किन्तु काव्य की सृष्टि में सब कुछ साधारणीकृत और अलौकिक होता है। किसी काव्य की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शैव्या और रोहिताश्व को कवि की मानसी सृष्टि समझना चाहिए। रोहिताश्व की मृत्यु पर हरिश्चन्द्र की रानी शैव्या जो विलाप करती है, उसकी अनुभूति पाठक को होती तो है, किन्तु पाठक का उनसे कोई सांसारिक संबंध नहीं। इसके साथ-साथ कवि की काव्य-कला के प्रभाव से उस शोकानुभूति में दिव्यता तथा अलौकिकता भी आ जाती है। उसमें अपने-पराये की भावना नहीं रहती। वह **करुण रस** पाठक को आनंद प्रदान करता है। तब पाठक को आँसू बहाने में भी रसानुभूति होती है। यही बात **बीभत्स रस** और **भयानक रस** के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। सस्नेह,

डा० विष्णुदत्त भारद्वाज, शुभैषी
२९/१९ शक्ति नगर, दिल्ली–७ अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री रामकृष्ण शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक ११–११–१९७३ ई०

प्रियवर रामकृष्ण शर्मा,

आशीर्वाद !

तुम्हारा पत्र मिला। पत्र को आदि से अन्त तक पढ़ने के उपरान्त मैं तुम्हारी प्रमुख जिज्ञासा को समझ गया हूँ। तुम मेरी स्पष्ट राय इस सम्बन्ध में जानना चाहते हो कि **क्या रावण कामी, दुश्चरित्र, घमंडी और अत्याचारी ही था, या उसमें कुछ जीवन का शुक्ल पक्ष भी था ?**

प्रियवर ! इतिहास और ऐतिहासिक काव्य में बहुत अंतर होता है। ऐतिहासिक काव्य का रचयिता कवि अपने काव्य का प्रासाद निश्चित रूपेण इतिहास की नींव पर खड़ा करता है; लेकिन वह अपने प्रासाद का स्वरूप बिल्कुल अपनी धारणाओं एवं भाव-भावनाओं के अनुकूल प्रस्तुत करता है। कविता वास्तव में कवि की मानसी सृष्टि है। कवि का जैसा मानस होगा, वैसी ही उसकी काव्य-सृष्टि होगी। इसीलिए वाल्मीकि के 'राम' से तुलसी के 'राम' भिन्न हैं।

काव्य में वैज्ञानिक सत्य नहीं देखा जाता, केवल भावना-सत्य देखा जाता है। सहृदय पाठक काव्य के भाव-लोक के भावना-सत्य पर ही मुग्ध होते हैं। भावना-सत्य ही काव्य का सत्य होता है। इसीलिए तो राम का लक्ष्मण के लिए **निज जननी के एक कुमारा** (मानस, लंका० ६१/१४) कहना सत्य है। इस पंक्ति में राम के हृदय का सत्य भाव बोल रहा है, वैसे तो लक्ष्मण जी की माता सुमित्रा के दो पुत्र थे—१–लक्ष्मण २–शत्रुघ्न।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धहस्त महाकवि अपने भाव-लोक में पाठकों को हठात् खींच लेते हैं और अपनी बात के लिए स्वीकृति का सिर हिलवा लेते हैं। तब पाठक काव्य के राजमार्ग पर प्रेमपूर्वक कवि के साथ-साथ चलते हैं। कवि के पीछे पाठक-समुदाय कवि की जय-जयकार करते हुए चलता है। **डा० नगेन्द्र जी** ने 'साधारणीकरण' के सम्बन्ध में एक स्थल पर लिखा है कि कवि के भावों का ही साधारणीकरण होता है—यह बात सिद्धकवि के काव्य के सम्बन्ध में अक्षरशः सत्य प्रतीत होती है। जब मैंने **माइकेल मधुसूदनदत्त** के काव्य **मेघनाद वध** (हिन्दी में अनूदित) को पढ़ा, तो मेरी भावना मेघनाद के सम्बन्ध में वही थी, जो माइकेल मधुसूदनदत्त की थी। भावुक कवि भावक पाठक को अपना अनुगामी बना लेता है।

तुलसीदास राम के परम भक्त थे। उनके लिए रामचन्द्र जी मात्र दशरथ-पुत्र न थे। वे वास्तव में चराचरव्यापी अखिल ब्रह्माण्डनायक परमेश्वर थे, जो लीला करने आये थे। राम के प्रति तुलसीदास इतने आकृष्ट थे कि रावण के उदात्त पक्ष को चित्रित करने का न उन्हें अवकाश मिला, और न उसके प्रति तुलसी की रुचि ही थी। जगन्माता जानकी को चुरानेवाले रावण के सम्बन्ध में तुलसी अधिक शुक्लपक्षीय तथ्य प्रस्तुत करना भी नहीं चाहते थे। फिर भी 'रामचरितमानस' के अरण्यकाण्ड में एक अर्धाली में तुलसी की लेखनी रावण की उदात्तता का संकेत कर गयी है—पंचवटी की कुटी में सीता जी को एकाकिनी देखकर जब रावण उनका अपहरण करने जाता है, तब वह सीता जी के चरणों में मन ही मन प्रणाम करके सुख का अनुभव करता है—**मन महुँ चरन बंदि सुख माना**। (रामचरितमानस, अर० २८/१६)

याज्ञवल्क्य ने चरण-वंदन के भाव को विस्तार दिया है। रावण सीता जी से कहता है—"हे देवि ! लौकिक दृष्टि से तुम रामचन्द्र की पत्नी हो; किन्तु तुम वास्तव में जगज्जननी हो। राम और रावण दोनों ही तुम्हारी सन्तानें हैं। **राम** तुम्हारे योग्य पुत्र हैं; **रावण** तुम्हारा अयोग्य पुत्र है। मेरी रक्षा करो, मेरा उद्धार करो माँ !"

अध्यात्मरामायण (अर० सर्ग ७/श्लोक, ५१, ५२) में भी रावण पंचवटी से हरण की हुई सीता जी के शरीर का स्पर्श नहीं करता। वह अपने नखों से सीताजी के पाँवों के नीचे की धरती को खोदकर भूमि सहित सीताजी को अपने हाथों पर उठा लेता है और फिर उन्हें रथ में डालकर आकाश मार्ग से चला जाता है।

तमिल भाषा में **कम्बन्** ने रामायण (१२ वीं शती) लिखी है। इसकी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचना स्वयंभू कृत **पउमचरिउ** (८-९ वीं शती) के बाद हुई थी। आधुनिक भारतीय प्रादेशिक भाषाओं में जितनी रामायणें मिलती हैं, उनमें कम्बन् की **रामायण** प्रथम रचना है। इसके बाद १३–१४वीं शती में संस्कृत में **अध्यात्म-रामायण** और तेलुगु में **रंगनाथ रामायण** की रचना हुई है। तुलसीकृत 'राम-चरितमानस' तो ईसवी **१६** वीं शती की रचना है।

रंगनाथ ने तेलुगु में रामायण की रचना १३–१४ वीं शती में की थी। इसके बाद **एषुतच्छन** ने १६ वीं शती में मलयालम में **अध्यात्म रामायणम्** लिखी। दोनों में वास्तविक सीता जी ही रावण द्वारा अपहृत हुई हैं। इसलिए उक्त दोनों रामायणों में राम की विरह-वेदना स्वाभाविक बन गई है।

मराठी कवि एकनाथ ने भी १६ वीं शती में **भावार्थ रामायण** की रचना की थी। इसमें रावण द्वारा अपहरण तो नकली सीता का ही होता है; किन्तु देवताओं ने सीता को अग्नि में प्रविष्ट कराया है; राम को उसका पता नहीं। इसलिए उसमें राम की विरह-वेदना स्वाभाविक है। एकनाथ ने जयन्त द्वारा सीता जी के प्रति माता के स्तन-पान की बात कहलवाकर'जयन्त का पाप-प्रक्षालन करा दिया है। वह स्थल **भावार्थ रामायण** में ग़ज़ब का है।

ऐसे ही कम्बन् की रामायण में **रावण के चरित्र** की उच्चता एवं उदात्तता तुम देखोगे तो रावण को मन में प्रणाम निवेदित करोगे। पंचवटी में सीताजी को अपहृत करने के लिए रावण जाता तो है, क्योंकि उसे बहिन के अपमान का बदला लेना है; लेकिन पर-स्त्री का स्पर्श करना भी नहीं चाहता। इसलिए ज़मीन को खोदकर कुटी सहित सीता जी को उठाकर ले जाता है। कुटी में बैठी हुई सीता जी को रावण सम्मान के साथ सिर पर उठाकर लंका को ले जाता है।

अध्यात्म रामायण में अगस्त्य मुनि रामचन्द्र जी से कहते हैं—"मैंने तुम्हें अस्त्र-शस्त्र और आदित्य-स्तोत्र दिये हैं, ताकि तुम रावण पर विजय प्राप्त कर सको; किन्तु मैं तुम्हें यह बता देना चाहता हूँ कि **रावण** ने सीता जी की सेवा और पालन उस तरह किया है, जिस तरह कि कोई पुत्र अपनी बूढ़ी माँ का पालन करता है।"

संस्कृत के प्रसिद्ध आचार्य और कवि श्री रविषेण ने एक रामायण लिखी है, जिसे **पद्मपुराण** कहते हैं। यह **वाल्मीकीय रामायण** से बाद की रचना है। इसका रचना-काल ६७६ ई० माना जाता है। इसमें कविता को नदी का रूपक दिया गया है। इसका अनुगमन स्वयंभू ने अपने **पउमचरिउ** (८–९ शती) में और फिर तुलसीदास ने अपने **मानस** में किया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रावण शारीरिक बल में वास्तव में अद्वितीय था। उससे सब भयभीत थे। रामायणों में रावण से अधिक बलशाली दो व्यक्ति ही बताये गये हैं—(१) किष्किंधा का राजा **बाली** (२) माहिष्मती का राजा **सहस्रार्जुन**। आज जिस जगह **महेश्वर** (नर्मदा के तट पर) है, वही क्षेत्र माहिष्मती का क्षेत्र कहलाता था। वहाँ हैहय वंश का राज्य था। **सहस्रार्जुन** हैहयवंशी क्षत्रिय था। इस वंश के क्षत्रियों को परशुराम ने परास्त किया था। महेश्वर में ही द्वैतवादी मंडनमिश्र की पत्नी भारती ने शंकराचार्य से शास्त्रार्थ किया था। भारती के प्रश्नों की तैयारी करके जब शंकराचार्य आये, तब तक भारती संसार त्याग चुकी थी।

पद्मपुराण में एक वर्णन आता है। एक बार **रावण** ने वरुण को कैद कर लिया था। वरुण की नगरी राजा से रहित हो गयी। वरुण की रानियों को अकेली और असहाय जानकर **कुम्भकर्ण** उसकी सब रानियों को ले आया और उन्हें जेलखाने में डाल दिया। रावण को यह पता चला तो वह कुम्भकर्ण पर बहुत क्रुद्ध हुआ और कहने लगा—"कुम्भकर्ण ! यह तुमने बहुत बुरा काम किया। वरुण की सब रानियों को वरुण की नगरी में पहुँचाओ और उनकी सुख-सुविधा की पूरी व्यवस्था करो। हमारी दुश्मनी किसी पैज पर केवल वरुण से है। तुम रावण के चरित्र को तथा रावण की मर्यादाओं को समझते नहीं हो क्या ? याद रखो कुम्भकर्ण ! रावण **स्वाभिमानी** है, **आनवाला** है, दुराचारी या व्यभिचारी नहीं। रावण अपने भाइयों को भी अपना-सा देखना चाहता है।"

रावण की वीरता और तेजस्विता का वर्णन वाल्मीकि ने भी किया है। रावण की पैज की भाँति ही राम की भी पैज है। राम का पैज-भरा बैर रावण के प्रति उस दिन ही समाप्त हो जाता है, जिस दिन युद्ध में रावण का प्राणांत हो गया है, दाह-कर्म के समय राम विभीषण से कहते हैं—

मरणान्तानि वैराणि, निवृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव॥

—(वा० रामा०, युद्ध० १०९/२५)

यदि तुम रावण के शुक्ल पक्ष के विषय में खड़ीबोली हिन्दी के काव्यों से भी कुछ जानना चाहते हो, तो **श्री रघुवीरशरण मित्र** की कृति **भूमिजा** और **श्री त्रिभुवननाथ शर्मा 'मधु'** की कृति **रावण का विक्षोभ** पढ़ सकते हो। मुझे ये कृतियाँ अच्छी लगी हैं।

भारतीय साहित्य में रावण के जीवन का शुक्ल पक्ष तुम्हें पर्याप्त रूप में मिल जाएगा। मैं स्वयं भी **रावण** को इतना बुरा नहीं मानता कि प्रति वर्ष

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका पुतला बनाकर जलाया जाए। माना कि वह **कैकसी** नाम की राक्षसी का पुत्र था; किन्तु **विश्रवा** ऋषि का भी तो आत्मज था। उसमें चरित्र की अच्छाइयाँ भी थीं।

सार-सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाइ।

तुम अपने पिताजी से मेरा नमस्कार कहना। हर्ष है सानंद हो। सस्नेह,

श्री रामकृष्ण शर्मा, एम० ए०, शुभैषी

हनुमानगली, सोरों (सूकरक्षेत्र), जि० एटा। अम्बाप्रसाद 'सुमन'

प्रो० त्रिभुवनराय के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)

प्रियवर, दिनांक १८. १. १९७४ ई०

आपसे मिलन-भेंट का आनंद लेकर मैं यहाँ कुशलपूर्वक आगया था। आज आपके प्रश्न का उत्तर लिख भेज रहा हूँ।

आपका प्रश्न है कि उपन्यास-साहित्य मनोरंजन के अतिरिक्त और हमारा क्या सामाजिक हित करता है?

किसी देश या जाति के सामाजिक चरित्र को उठाने तथा गिराने में उपन्यास साहित्य का बहुत बड़ा हाथ रहता है। आदर्शवादी उपन्यास ही नहीं, यथार्थ-वादी उपन्यास भी व्यक्ति, समाज और देश के चरित्र को उठा सकते हैं। उपन्यास की शैली जितना अधिक पाठक के मन को खींचती और प्रभावित करती है, उतनी सबलता और बोधगम्यता के साथ दूसरी साहित्यिक विधा, कविता के सिवा, प्रभावित नहीं कर पाती।

जो ढोंग, छल, शोषण, दंभ, अनीति आदि समाज को विकृत और पतित बनाये रहते हैं, उनसे उपन्यासकार हमारी रक्षा बहुत कुछ अंशों में कर सकता है; लेकिन शर्त यह है कि उपन्यासकार के हृदय में देश और समाज के शुभ्र रूप के प्रति सच्ची लगन और निष्ठा हो। मनुष्य का चरित्र जो बड़ा गाँठ-गठीला, मरीचिकामय, जटिल और दुर्बोध है, उसे उपन्यासकार उपन्यास के माध्यम से स्पष्ट कर देता हैं। उपन्यास के कल्पित पात्र समाज के मनुष्यों का कच्चा चिट्ठा खोलकर रख देते है। उपन्यास के पात्रों के चरित्र हमारे समाज के मनुष्यों के चरित्र होते हैं। उपन्यासकार अपने पात्रों के माध्यम से मानव-मन की जितनी गहराइयों और सूक्ष्मताओं में उतारता है, उतना कोई राजनीतिक-पंडित या मनोविज्ञानी क्या उतारेगा? उपन्यास के कल्पित पात्र हमारे सामने हमारे समाज का जितना वास्तविक एवं प्राणवंत स्वरूप प्रस्तुत कर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते हैं, उतना दूसरा कोई व्यक्ति नहीं कर सकता। यथार्थ के नाम पर जो उपन्यास अनैतिकता, यौनलिप्सा, नग्नवासना आदि के पक्षधर बने हुए हैं, उन्हें मैं सच्चे उपन्यास नहीं मानता। इधर कुछ उपन्यास-लेखिकाओं ने नग्न वासना को खुलकर व्यक्त करने का बीड़ा-सा उठाया है, यथार्थवाद के नाम पर। इसे मैं वाग्मैथुन या लेखन-मैथुन मानता हूँ। उपन्यास-लेखिकाओं में मेरे देखने में केवल शुभश्री **दीप्ति खंडेवाल** ऐसी लेखिका आयीं, जो भारतीय उदात्तता और उच्च जीवनमूल्यों की प्रबल पक्षधर हैं। उनकी कहानियों और उपन्यासों का मैं आदर करता हूँ। इस देश में ऋषियों के आश्रम भी हैं और वेश्यालय भी। उपन्यासकार को चाहिए कि वह आश्रमीय भावना का प्रकाश समाज को प्रदान करे। वह औदात्यमयी प्रेरणा और प्रभाव दे। गंगाजल दे, दुर्गन्ध से भरी कीचड़ को न दिखाए। कीचड़ को कुछ देर दिखाये भी, तो पाठक को अन्त में गंगा-तट पर लाकर ही खड़ा करे। बदबू तो बहुत से फैलाते हैं; उपन्यासकार को तो बेला, चमेली, गुलाब, कमल आदि पुष्पों की सुगन्धि फैलानी चाहिए। हित करने पर ही तो 'साहित्य' संज्ञा प्राप्त हो सकती है। उपन्यास जब व्यक्ति और समाज का हित करेगा, तभी साहित्य की परिधि में आ सकेगा।

आपकी पुस्तक **मनुष्य के रूप : अध्ययन की दिशाएँ** मनोयोग से पढ़ी। आपने इसमें गहरे पैठकर विवेचन किया है। आपने 'मनुष्य के रूप' में श्री यशपाल के उपन्यासकार को गहराई से समझा है। वास्तव में उपन्यासकार यशपाल मार्क्सवाद और आधुनिकता के उद्घोष के लिए 'लिविंगफ़ोर्स' हैं।

संप्रदाय, जाति, वर्ण आदि से ऊपर उठकर यशपाल के उपन्यासों में राष्ट्र-हित का स्वर गूँजता है। पन्त, महादेवी आदि की पीढ़ी जब साहित्य-रचना में व्यस्त थी, तब यशपाल देश को अंग्रेज़ों की गुलामी से मुक्ति दिलाने के लिए सरदार भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव और चन्द्रशेखर आज़ाद जैसे क्रान्तिकारियों के दल में देश-सेवा में तल्लीन थे; और देश की आज़ादी के लिए बम बनाने में व्यस्त थे। उनका **झूठा सच** उपन्यास संप्रदाय अर्थात् मज़हब का भंडाफोड़ करता है। यशपाल ने धार्मिक अंधविश्वासों पर करारी चोटें की हैं। **हार की जीत** कहानी भी उसी ओर आवाज़ फेंकती है, ताकि अंधविश्वास डरकर भाग जाएँ।

आपका पुस्तक रूप में यह सारस्वत परिश्रम श्लाघनीय है। मेरी बधाई स्वीकार करें! विस्तार से फिर लिखूँगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियवर जवाहरलाल शर्मा के कुशल-समाचार देने का कष्ट करें। बच्चों को असीस। हर्ष है आप सपरिवार सानंद हैं। बम्बई के मेरे भाषणों में मुझे जो सफलता मिली, उसके लिए आप और प्रियवर जवाहरलाल शर्मा मेरी प्रशंसा और आशीर्वाद के पात्र हैं। सस्नेह,

प्रो० त्रिभुवनराय आपका
हिन्दी-विभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
खालसा कालेज, बम्बई–१९

डा० बनवारीलाल द्विवेदी के नाम

शिविर, मथुरा (उ० प्र०)
प्रियवर द्विवेदी, दिनांक ६. ३. १९७४ ई०

आशीर्वाद !

तुम्हारा पत्र मिला। प्रसन्नता है कि तुम एक नये विषय पर शोध-कार्य कर रहे हो, जो साहित्य-शास्त्र और मनोविज्ञान से सम्बद्ध है। तुमने **संवेदन** और **संवेदना** तथा **वाङ्मय** और **साहित्य** शब्दों में अन्तर जानने के लिएप्रमुख जिज्ञासा व्यक्त की है।

संवेदना शब्द साहित्य में 'अनुभूति' का पर्यायवाची बनकर आता है। अंग्रेज़ी में इसके लिए 'Feeling' शब्द है। 'अनुभूति' और 'अनुभव' में अर्थ-भेद है। 'अनुभव' को अंग्रेज़ी में Experience कहते हैं। अनुभव वह ज्ञान हैं जो देखने और प्रयोग से किसी व्यक्ति को प्राप्त होता है। 'अनुभव' का आधार भूत है। 'अनुभूति' वर्तमान में होती है।

काव्य में **संवेदना** और '**संवेदन**' समानार्थी-से हैं; किन्तु अब इन दोनों में पूर्णतः अर्थ-भेद है। 'संवेदन' वास्तव में गुणी के गुण को कहते हैं। तुम्हारी आँखों ने 'सेब' नाम का फल देखा, तब उस सेब फल का देखना 'प्रत्यक्ष' (Perception) कहलाएगा। उस सेब का रँग, जो उस सेब वस्तु पर आधृत है, सेब का गुण है। सेब गुणी है, रँग गुण है। इस रंग को ही **संवेदन** कहेंगे। यह मनोविज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली का शब्द है। अक्षपाद गौतम के न्याय दर्शन में **संवेदन** के लिए 'निर्विकल्प प्रत्यक्ष' और 'प्रत्यक्ष' (Perception) के लिए 'सविकल्प प्रत्यक्ष' शब्द का प्रयोग किया गया है। मनोविज्ञान में Sensation को **संवेदन** कहते हैं।

चाहे रसायन शास्त्र की पुस्तक हो, चाहे टाइपराइटिंग या बैंकिंग की, और चाहे कविता की—सभी प्रकार की ज्ञानराशि 'वाङ्मय' कही जाएगी;

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि की पुस्तकों को 'साहित्य' कहेंगे। वाङ्मय का क्षेत्र 'साहित्य' के क्षेत्र से बड़ा होता है। 'साहित्य' एक प्रकार से 'वाङ्मय' में समाविष्ट है। केवल सुभावात्मक वाङ्मय ही 'साहित्य' कहलाता है। अंग्रेज़ी में प्रायः 'वाङ्मय' और 'साहित्य' दोनों के लिए ही 'Literature' शब्द का प्रयोग कर देते हैं। हिन्दी में हमें **वाङ्मय** और **साहित्य** को भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त करना चाहिए।

वाङ्मय का संसार बहुत बड़ा है। किसी भी भाषा की समग्र-भाव-विचार-सामग्री जो लिखित या मुद्रित अवस्था में पायी जाती है, **वाङ्मय** कहलाती है। **साहित्य** उस वाङ्मय का वह अंग है, जो ललित, उत्कृष्ट तथा भाव-प्रधान होता है। हृदय-प्रधान बुद्धिजीवी मनुष्य ही साहित्यस्रष्टा बन सकता है। 'वाङ्मयकार', साहित्यकार नहीं होता। पत्रकारिता आदि कर्म शुद्ध साहित्य के आँगन में नहीं लिये जा सकते। उन्हें वाङ्मय के क्षेत्र में ही रखा जा सकता हैं।

जो लोग **पत्रकार** को 'साहित्यकार' मानते हैं, वे ग़लती पर हैं। **पत्रकार** वर्तमान से सम्बद्ध है, लेकिन **साहित्यकार** भूत, वर्तमान और भविष्य—तीनों से सम्बद्ध है। पत्रकार वर्तमान की घटना से तुरन्त प्रभावित होकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है; साहित्यकार ऐसा नहीं करता। वह तो वर्तमान की अनेक घटनाएँ देखता रहता है और अपने उपचेतन तथा अचेतन में उन्हें भेजता रहता है। फिर उन सब घटनाओं को समष्टि रूप में अपनी स्मृति में लाकर भूत, वर्तमान और भविष्य के सन्दर्भ के साथ ऐसे ढँग से भावात्मक रूप में व्यक्त करता है, कि राष्ट्र या समाज की धारा में एक शाश्वत गति और क्रान्ति उत्पन्न हो जाती है। देश और समाज़ की सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना को जगाना तथा उठाना साहित्यकार का ही कार्य है। उसी में ऐसी सामर्थ्य भी हैं। सच्चे, स्वाभिमानी और ईमानदार साहित्यकार ही किसी देश के समाज, साहित्य और शिक्षा को शुक्ल-शुभ्र-स्वरूप प्रदान कर सकते हैं।

बड़े दुःख का विषय है कि आज हमारे देश के साहित्यकारों का अच्छा खासा बड़ा वर्ग राजनीति के क्षेत्र में या तो थानेदारी करने लगा है या राजनीतिक स्तम्भों की परिक्रमा लगा कर चरण–वंदन करने लगा है। सारांश यह कि हमारे देश का साहित्यकार भ्रष्ट होता चला जा रहा है।

साहित्य के सागर में गहरा गोता लगानेवाला ही मोती निकालकर ला सकता है—इस बात को तुम्हें गाँठ बाँध लेना चाहिए।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर्ष है तुम सानन्द हो ! सस्नेह,

श्री बनवारीलाल द्विवेदी, एम० ए०, शुभैषी
द्वारा—डा० गिरिधारीलाल शास्त्री, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
हिन्दी विभाग,
अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय, अलीगढ़

डा० छैलबिहारीलाल गुप्त 'राकेश' के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़-(उ०प्र०)
दिनांक २. ५. १९७४ ई०

संमान्य बन्धुवर,

सादर सप्रेम नमस्ते ।

आपने **नयी समीक्षा** के सम्बन्ध में मेरे विचार जानने के लिए लिखा है। नये समीक्षकों की कुछ सैद्धान्तिक पुस्तकें पढ़कर मैंने जैसा अनुभव किया है, उसके आधार पर ही निवेदन कर रहा हूँ ।

प्रमुख रूप से नयी समीक्षा विचार को ही पकड़ने की शक्ति रखती है, भाव को नहीं । गद्यात्मक सपाटबयानी को **नयी समीक्षा** कविता की अभिव्यक्ति में ऊँचा दर्जा देती है । आयाम, संत्रास, ऊब, घुटन, अनास्था, निराशा, अकेलापन, तनाव आदि को महत्त्व देती है और उस प्रकार की अभिव्यंजना को कविता की उत्तमता भी मानती है । **नयी समीक्षा** आधुनिकता के नाम पर प्राचीनता को नकारती है । नयी समीक्षा के पाँव रेतीली ज़मीन पर हैं । वह आन्दोलन, गुटबाज़ी और नारेबाज़ी पर ही बहुत कुछ चल रही है । नयी कविता के कुछ नये समीक्षक कहते हैं कि न हम रसवादी हैं, न हम अभिव्यंजनावादी हैं और न हम मार्क्सवादी है; इन सबसे अलग हैं । लेकिन अलग रहकर कहते क्या हैं ? यह ठीक पता नहीं चला । इसके सिद्धान्त सर्वमान्य रूप में अभी स्थिर नहीं हुए। स्वयं नये समीक्षक एक दूसरे की काट भी कर रहे हैं और कीचड़ उछाल रहे हैं । अपनी बात शेर रहे, यही फ़िक्र है उन्हें ।

नयी समीक्षा का कोई एक मान्य शास्त्र है ही नहीं; तब क्षणिक ऑक्सीजिन पर वह क्या जीवित रह सकेगी ? इसे अभी तक **आचार्य शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी** अथवा **डा० नगेन्द्र** जैसा भारी-भरकम समीक्षक भी नहीं मिला । वर्तमान में नयी समीक्षा अपने ढँग से **कथ्य** को ही अधिक कहती है, **शिल्प** और **शिल्प के प्राण** को नहीं । काव्य की सूक्ष्म भावात्मकता को उद्‌घाटित करनेवाला हृदय और मस्तिष्क **नयी समीक्षा** के पास नहीं है ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने मन की सही और सच्ची बात भी कह दूँ--मैंने **डा० नामवरसिंह** की पुस्तक **कविता के नये प्रतिमान** मनोयोग से पढ़ी और पूरी निगाह रखी कि ऐसे नये प्रतिमान उसमें मिल जाएँ, जिनके निकष पर हिन्दी के पूरे कविता-साहित्य को परखा जा सके। मुझे तो निराशा ही हाथ लगी। उस पुस्तक को पढ़कर ऐसा लगा कि लेखक के मन की आँखें उतनी नये प्रतिमानों की खोज में नहीं, जितनी कि **डा० नगेन्द्र** पर लगी हुई हैं। श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा की **नई कविता के प्रतिमान** में भी प्रतिमानों की कोई थाह न मिली। नामवर जी तो वर्मा जी की भी धज्जी उड़ाते हुए नज़र पड़े।

नयी कविता में जीवन-मूल्य नहीं; उदात्त गरिमा नहीं। उसमें न प्रसाद पैदा हुए, न दिनकर। कविता ही जब ऊँची नहीं, तो समीक्षा कैसे ऊँची हो सकती है ?

इन बातों से मैं समझता हूँ कि **नयी समीक्षा** वर्तमान में नयेपन की ललक में बचपन की खिलवाड़-सी है।

हर्ष है परमेश की दया से आप सपरिवार सानंद हैं। आशा है आलोचना-शास्त्र से सम्बद्ध आपका वह ग्रंथ प्रकाशक को दे दिया गया होगा। सस्नेह,

डा० छैलबिहारीलाल गुप्त 'राकेश' डी० लिट्०, आपका
प्राचार्य, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
गवर्नमेंट कालेज, नैनीताल (उ० प्र०)

श्री रामचन्द्रसिंह के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१
दिनांक ३. ३. १९७५ ई०

प्रियवर,

आपके प्रश्न से यह स्पष्ट होता है कि आपकी **रामचरितमानस** में बड़ी रुचि और श्रद्धा है। आप गहरे पैठकर अध्ययन कर रहे हैं।

आपके इस प्रश्न—**मानस के आधार पर रामचन्द्रजी को कौन-कौन व्यक्ति परम प्रिय हैं ?**—का उत्तर देना आसान नहीं है। फिर भी जैसा मैं समझता हूँ, लिख रहा हूँ।

परम प्रेम किसके प्रति अधिक है ? इसकी पहचान हृदय की भावना के आधार पर ही की जा सकती है। जिसके लिए हृदय द्रवित हो जाए; जो प्रेमी को गलदश्रु बना दे; जिसकी याद प्रेमी को व्याकुल कर दे और जिसका वियोग असह्य हो; वही व्यक्ति परम प्रिय माना जाएगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस कसौटी पर कसे जाने पर तुलसीकृत **रामचरितमानस** में पाँच व्यक्ति ही राम जी के परम प्रिय सिद्ध होते हैं—(१) **भरत** (२) **हनूमान्** (३) **सीताजी** (४) **लक्ष्मण** (५) **अंगद** । इनके लिए रामचन्द्र जी फूट-फूट कर रोये हैं—

(१) **भरत के लिए अश्रुपात** (चित्रकूट पर्वत से भरत जी की विदाई के समय—

बारिज लोचन मोचत बारी ।
देखि दसा सुर सभा दुखारी ।। (अयो० ३१७/६)

× × × ×

बरनत रघुबर भरत बियोगू ।
सुनि कठोर कबि जानिहि लोगू ।। (अयो०३१८/२)

लंका से अयोध्या लौट आने पर भरत जी से मिलते समय राम का अश्रुपात—

परे भूमि नहिं उठत उठाए ।
बर करि कृपासिंधु उर लाए ।।
स्यामल गात रोम भए ठाढ़े ।
नव राजीव नयन जल बाढ़े ।। (उत्तर० ५/७, ८)

(२) **हनूमान् के प्रेम में रामचन्द्र जी के अश्रुपात** (किष्किन्धापुरी के निकट हनूमान से मिलते समय)—

सेवक सुत पति मातु भरोसें ।
रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें ।।
अस कहि परेउ चरन अकुलाई ।
निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई ।।
तब रघुपति उठाइ उर लावा ।
निज लोचन जल सींचि जुड़ावा (किष्कि०३/४,५,६)

सीता जी का समाचार मिलने पर हनूमान् के उपकार की याद करके रामचन्द्रजी के नेत्रों से अश्रुपात—

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं ।
देखेउँ करि बिचार मन माहीं ।।
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता ।
लोचन नीर पुलक अति गाता ।। (सुन्दर०३२/७,८)

(३) **सीता जी के लिए अश्रुपात** (हनुमान् के मुख से लंकेश के यहाँ बंदिनी सीता की दशा सुनकर)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना ।
भरि आए जल राजिव नयना ।। (सुन्दर० ३२/१)

(४) **लक्ष्मण के लिए अश्रुपात** (मेघनाद की शक्ति से लक्ष्मण के मूर्च्छित हो जाने पर)

बहु बिधि सोचत सोचबिमोचन ।
स्रवत सलिल राजिवदललोचन ।। (लंका० ६१/१७)

(५) अंगद के लिए अश्रुपात (अयोध्या से अंगद को बिदा करते समय)

नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ ।
पद पंकज बिलोकि भव तरिहउँ ।।
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही ।
अब जनि नाथ कहहु गृह जाही ।। (उत्तर० १८/७,८)
अंगद बचन बिनीत सुनि, रघुपति करुनासीव ।
प्रभु उठाइ उर लायउ, सजल नयन राजीव ।। (उत्तर० १८(क)/-)

इतना ही नहीं, रामचन्द्र जी के प्रेम में सीताजी, भरतजी और हनूमान् जी के भी अश्रुपात हुए हैं—

(१) सीता जी के अश्रुपात—

बचन न आव नयन भरे बारी ।
अहह नाथ हौं निपट बिसारी ।। (सुन्दर० १४/७)

(२) भरत जी के अश्रुपात—

बैठे देखि कुसासन, जटा मुकुट कृस गात
राम नाम रघुपति जपत, स्रवत नयन जल जात ।। (उत्तर० १ (ख)/–)

(३) हनूमान् जी के अश्रुपात—

मारुत सुत तब मारुत करई । पुलक बपुष लोचन जल भरई ।।
(उत्तर० ५०/७)

शंकर जी (लंका० ११४/–) और निषादराज गुह (उत्तर० २०/८) ने भी राम जी के प्रेम में आँसू बहाये हैं।

गोसाईं तुलसीदास जी अपने आराध्य भगवान् रामचन्द्र जी को राजीव-नयन, राजीवलोचन, राजीवदललोचन आदि नामों से व्यक्त करते हैं। **राजीव** और **इन्दीवर** नीले कमल को कहते हैं। राम जी के नेत्र नीले कमल के समान सुन्दर हैं। लाल कमल **कोकनद** और श्वेत कमल **पुंडरीक** कहलाता है। तुलसीदास जी के लिए रामचन्द्र जी का शरीर भी नीलाम्बुज सदृश है। नेत्र भी राजीव, अर्थात् नीलाम्बुज। भगवान् का जो रंग है, उसी रँग का कमल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी तुलसीदास जी को प्रिय है। राम प्रिय, तो राम का नीला रंग भी प्रिय। **नीलाम्बुजश्यामलकोमलांगम्** (रामच०, अयो०, श्लो० ३)

राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं।

(कविता०, अयो०, छंद १)

आप तो तुलसी के काव्यों में आये हुए मुख्य-मुख्य शब्दों का संकलन कर रहे थे। क्या हुआ उसका? शनैः शनैः तुलसी के संपूर्ण काव्यों के शब्दों का संकलन कर लीजिए। कौन छापेगा, कौन न छापेगा—इस उधेड़-बुन में न पड़िए। वीणापाणि सब मंगल करेंगी।

कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी (भवभूति)

कमल के प्रमुख पर्यायवाची हैं—**पुंडरीक, पुष्कर, कमल, अब्ज, जलज, अंभोज; पंकज, सारस, तामरस, कुवलय, कंज, सरोज** आदि।

आप 'रामचरितमानस' का मंथन करके देखें कि तुलसी ने कौनसा पर्यायवाची शब्द कब और क्यों प्रयुक्त किया है? पर्याय शब्दों का ऐसा अध्ययन शब्दार्थ-जगत् को नयी संपदा प्रदान करेगा।

आशा है आप सपरिवार सानन्द होंगे। हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद से तुलसी का शब्द-कोश भी मँगा लीजिए; श्री भोलानाथ तिवारी ने संपादित किया है।

श्री रामचन्द्र सिंह,   शुभैषी
ग्राम—रामचन्द्रा,   अम्बा प्रसाद 'सुमन'
पो०—बेलौंचा (बाया मधेपुर), जि० मधुबनी (बिहार)

श्री वेदप्रकाश के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)

प्रियवर वेदप्रकाश,   दिनांक १४–३–७६ ई०

आशीर्वाद !

तुमने तुलसीकृत **रामचरिमानस** के बालकाण्ड से दो उद्धरण (बाल०, २५३/५; २५६/४) प्रस्तुत करते हुए पूछा है कि "गोस्वामी जी ने जो **मेरु** और **मंदर** पर्वतों का उल्लेख किया है, वे पर्वत इस पृथ्वी पर कहीं हैं, अथवा यह कोरी कवि-कल्पना है?"

वेदप्रकाश जी, भारतीय साहित्य में पर्वतों तथा नदियों का वर्णन बहुत प्राचीन है। **मेरु** (सुमेरु पर्वत) और **मंदर** नाम के पर्वतों का उल्लेख महाभारत में भी मिलता है। महाभारत में भारत और भारत से बाहर का भूगोल प्रस्तुत

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया गया है। आज की शब्दावली के साथ-साथ उस भूगोल से जानकारी प्राप्त करने के लिए तुम्हें मेरे श्रद्धेय गुरुवर डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल द्वारा लिखित **भारत सावित्री** ग्रन्थ के तीनों भाग पढ़ने चाहिए। बात स्पष्ट हो जाएगी।

मेरु और **मंदर** पर्वत काल्पनिक नहीं हैं। ये भारत के उत्तर में अर्थात् मध्य एशिया में अवस्थित हैं। जिसे आज पामीर का पर्वत कहते हैं, वही सुमेरु (मेरु) पर्वत है, और अल्टाई पर्वत को ही मंदराचल लिखा गया है। मंदराचल के पास ही मैनाक पर्वत है।

'मेरु' अर्थात् 'पामीर' पर्वत बहुत ऊँचा है। ऊँचाई अर्थात् ऊपर की ओर लम्बाई में मूली की भाँति है, इसीलिए तुलसीदास जी ने लक्ष्मण जी के शब्दों में लिखा है—

सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी। —(बाल० २५३/५)

मंदर और **मेरु** दोनों ही विशाल और भारी पर्वत हैं। तुलसीदास जी ने एक ही अर्धाली में दोनों पर्वतों का उल्लेख किया है।

रामचन्द्र जी जब लक्ष्मण जी से अयोध्या में ही रहने के लिए कहने लगे, तब राज्य-भार उठाने की असमर्थता प्रकट करते हुए लक्ष्मण जी ने रामचन्द्र जी से कहा था—

मंदरु मेरु कि लेहिं मराला —(रामचरितमा० ७२/३)

सस्नेह,

श्री वेदप्रकाश, एम० ए०
९६, एण्ड्रयूस गंज, नयी दिल्ली

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री राजीवलोचन शुक्ल के नाम

शिविर, नयी दिल्ली
दिनांक १५. ४. ७६ ई०

प्रियवर राजीव,

आशीर्वाद !

मैं तुम्हारे चुटुकुले **धर्मयुग** में **व्यंग्य-परिहास** स्तम्भ के अन्तर्गत पढ़ता रहता हूँ। "इमारत की जिस ऊँचाई से बन्दर गिरता हुआ ज़मीन पर आया और ज़मीन पर आते-आते आदमी बन गया", उस ऊँचाई का हिसाब लगाना मेरे लिए असम्भव है। मेरा अंकगणित वैसे ही कमज़ोर रहा था। यही हालत तुम्हारे पिताजी की भी रही थी। लगता है 'गणित' और 'साहित्य' ३६ के ३ और ६ की भाँति हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझसे भले ही तुम्हारे चुटकुले में वर्णित इमारत की ऊँचाई नहीं नापी गई; किन्तु चुटकुले ने मेरे मन की गहराई को अवश्य नाप लिया। वह मन की तली में अब भी मौजूद है। उसके लिए तुम्हें प्रेमपूर्वक आशीर्वाद ! मंगलकामना !

क्या तुम **व्यंग्य** और **परिहास** में अन्तर समझते हो ? इसका अन्तर तुम्हें जानना चाहिए। **व्यंग्य** तीखा होता है; गहरी और पैनी मार करता है। इसकी चोट खाकर मनुष्य तिलमिला जाता है। व्यंग्य करनेवाला मन में प्रसन्नता अनुभव करता है, लेकिन जिस पर व्यंग्य-बाण चलाया जाता है, उसे बहुत बेचेनी और छटपटाहट होती है। लेकिन वह बेचैन व्यक्ति, व्यंग्य करने वाले का कुछ बिगाड़ नहीं सकता, क्योंकि व्यंग्य के आलंबन का व्यंग्य में नाम नहीं होता; सब कुछ उसकी करतूत के सम्बन्ध में ही कहा जाता है।

परिहास का अर्थ है 'हँसी' या 'मज़ाक'। **परिहास** दोनों पक्षों को प्रसन्नता प्रदान करता है। परिहास करनेवाला और परिहास सुननेवाला—दोनों-प्रसन्न होते हैं; अर्थात् **परिहास** उभयपक्षीय आनन्द देता है। इस दृष्टि से, अर्थात् वक्ता–श्रोता के आनन्द की दृष्टि से **परिहास, व्यंग्य** से अच्छा माना जा सकता है। तुम्हारे चुटकुले '**परिहास**' के ही क्षेत्र में आते हैं।

प्रियवर राजीव ! तुम्हारे अन्दर विनोद, हास्य और व्यंग्य के बीज-तत्त्व हैं। तुम उन्हें साहित्य के रूप में अंकुरित और पल्लवित करते रहो। हिन्दी में शिष्ट हास्य और शिष्ट व्यंग्य की कमी भी है। मुझे विश्वास है कि तुम इस क्षेत्र में साधनारत रहोगे और आगे बढ़ोगे। हास-परिहास के बीज तुम्हारे पिताजी में भी हैं; किन्तु उनके अंकुर उनके पाण्डित्य के बोझ से कुछ दब-से गये हैं।

आशा है तुम सपरिवार सानंद होगे। चि० बाबा को तथा बेबी को आशीर्वाद ! अपने पिताजी (डा० गोवर्धननाथ जी शुक्ल) से मेरा नमस्कार कहिए।

वात्सल्य पूर्वक,

श्री राजीवलोचन शुक्ल, एम० एस-सी० शुभैषी
द्वारा—डा० गोवर्धननाथ शुक्ल, अम्बाप्रसाद 'सुमन,
शुक्ल-सदन, खाईढोरा, अलीगढ़।

श्रीमती सरोजिनी देवी के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़

प्रिय बहिन सरोजिनी जी, ४-८-१९७६ ई०

आपका प्रश्न था कि "तुलसीदास जी ने **रामचरितमानस** (बालकाण्ड, दो० २०९/११) में गौतम-पत्नी को शिला-रूप में एक ऐसे आश्रम में बताया है,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ पशु, पक्षी आदि कोई जीव-जन्तु नहीं था। **वह आश्रम भारत में किस जगह है ? या यह कथन यों ही काल्पनिक है ?"**

अहल्या गौतम ऋषि के शाप से शिला बनी थी। गौतम ऋषि का आश्रम मिथिला-राज्य में था। मुनि विश्वामित्र धनुष-यज्ञ दिखाने के लिए रामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी को मिथिलापुरी ले गये थे। मिथिला नगरी में पहुँचने से पहले गौतम के आश्रम में शिला पड़ी हुई देखी गयी। उस जगह आज भी **अहल्या-मंदिर** पर्णकुटी के रूप में बना हुआ है। उस मंदिर में अहल्या की मूर्ति मिट्टी की बनी हुई है। अहल्या-स्थान दरभंगा के कमतौल स्टेशन से तीन किलोमीटर दूरी पर है। अहल्या तीर्थ से कुछ कोसों पर **ब्रह्मपुर** नामक गाँव भी है। वेदव्यास जी ने महाभारत में गौतम-स्थली को **ब्रह्मपुरी** बताया है। वाल्मीकीय रामायण में भी मिथिला के उपवन में गौतम ऋषि का आश्रम बताया गया है—

मिथिलोपवने तत्र आश्रमं दृश्य राघवः।
पुराणं निर्जनं रम्यं पप्रच्छ मुनिपुङ्गवम् ।।

—(वाल्मीकीय रामा०, बाल०, सर्ग ४८/श्लोक ११)

वाल्मीकि ने भी **गौतम ऋषि** के आश्रम को पुराना और निर्जन बताया है। उसी तरह से तुलसीदास ने भी 'रामचरित मानस' में लिखा है—

आश्रम एक दीख मग माहीं।
खग मृग जीव जन्तु तहँ नाहीं ।।

(बाल०, दो० २०६/११)

तुलसीदास का कथन कल्पित नहीं है; इतिहास-भूगोल-सम्मत है।

दरभंगा (बिहार प्रान्तमें) मुजफ़्फ़रपुर के पास है और जनकपुर नैपाल राज्य में है। कभी उधर जाना हो, तो दरभंगा के कमतौल स्टेशन के पास उस अहल्या-स्थान को देखकर आइए। बात स्पष्ट हो जाएगी।

आशा है आप सपरिवार कुशल-पूर्वक होंगी।

आपका भाई
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्रीमती सरोजिनीदेवी,
प्रधानाचार्या,
आर्य कन्या इंटर कालेज, सहारनपुर (उ० प्र०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० भगवानसहाय पचौरी के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक १. १. १६७७ ई०

प्रिय बन्धु पचौरी जी

सप्रेम नमस्कार !

आपकी **हिन्दी प्रचार सभा**, (**मथुरा**) में जब मैं भाषण के लिए गया था, तब आपने एक प्रश्न मुझसे ऐसा पूछा था, जिसका उत्तर देने में मुझे कुछ सोचना पड़ा है। आपने पूछा था कि **आपके पूरे सेवा-काल में आपके शिक्षा-स्थलों में हिन्दी-शिक्षा और हिन्दी-साहित्य-सेवा का स्वरूप कैसा रहा ?**

मित्रवर, मैं जब सेवा के लिए, अथवा कहिए कि हिन्दी के सहारे शिक्षा-संस्थाओं में नौकरी के लिए निकला, तब मैंने कई संस्थाएँ देखीं। कई जगह चक्कर काटे और कई हिन्दी-विद्या-केन्द्रों में भी पहुँचा। जब एक हिन्दी-केन्द्र में नौकरी करने गया, तब वहाँ एक वरिष्ठ हिन्दी-शिक्षक की हिन्दी भाषा और हिन्दी-साहित्य-ज्ञान का परिचय मिला। जिन ग्रंथों को वे शिक्षक पढ़ाते थे, उन्हें पहले कभी पढ़ते न थे; केवल पढ़ाते समय ही उन्हें पढ़ते थे। वे 'अल्पज्ञता' का पर्याय 'बहुज्ञता' मान बैठे थे। उनकी अल्पज्ञता की रक्षा उनकी ड्रैस तथा रूप-सज्जा ही किया करती थी। अनिष्ट करने का भयप्रद रौब दिखाकर ही वे अपना पांडित्य तथा अनुशासन-प्रशासन जमाया करते थे। उन्हें अपनी ईर्ष्यालु वृत्ति, अनिष्टकारिणी प्रवृत्ति और चाटुकार-कृत्य पर ही पूरा-पूरा भरोसा था। वे तुलसी के 'बिन काज दाहिने बाँयों' की मंडली के नेता थे। उन्हें देखकर मुझे तुलसी की यह अर्द्धाली स्मरण हो आती थी—

काहू कै जो सुनहिं बड़ाई। स्वाँस लेहिं जनु जूड़ी आई ॥ (उत्तर० ४०/२) वे **ब्रह्मा, विष्णु, महेश** या **सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती** आदि में से किसी की भी आराधना नहीं करते थे। उनके मनोमन्दिर में एक मात्र **ईर्ष्या देवी** की मूर्ति थी। उसी की वे नित्य पूजा किया करते थे। अपने बॉस की चाटुकारी करके तथा बनावटी श्रद्धा दिखाकर ही वे सेवा-सरिता की धारा में अपनी जीवन-नौका खे रहे थे; वैसे परोक्ष में वे अपने बॉस को गाली भी देते थे। वे दुरूपिया ही नहीं, बहुरूपिया थे।

हिन्दी भाषा और शब्दार्थ-ज्ञान उनका जिस स्तर का था, उसका पता इस बात से चल जाएगा कि एक दिन उन्होंने मुझसे कहा था कि "कुछ लेखक जो **मानवीकरण** शब्द का प्रयोग करते हैं, वे ग़लती पर हैं। **मानवी** शब्द तो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव शब्द का स्त्रीलिंग है। **मानवीकरण** के स्थान पर उन्हें **मानवकरण** लिखना चाहिए।" यह सुनकर मैं आश्चर्य के सागर में डूब गया। कुछ देर बाद ऊपर उछला और संकेतात्मक रूप में **च्वि** प्रत्यय की बात बतायी; लेकिन व्यर्थ रही।

अंग्रेज़ी में एक शब्द है **सैंडिस्ट**। इसके लिए समान्यतया संस्कृत में कोई शब्द नहीं है, क्योंकि हमारी संस्कृति उस विचार से ऊपर थी। आज हिन्दी में उसके लिए एक शब्द गढ़ा गया है, **परपीडनानंदी**। वे सज्जन स्वभाव से **सैंडिस्ट** थे।

मैंने एक घटना का वर्णन सुना था, इस प्रकार—एक बाप ने मरने से कुछ समय पहले अपने बेटों को बुला कर कहा, "मेरे बेटो! यदि तुम मेरी आत्मा को सुख पहुँचाना चाहते हो, तो मेरी लाश के छोटे-छोटे टुकड़े करके मेरे पड़ोसियों के घर में फेंक देना। जब वे पड़ोसी भय और दुःख से परेशान होंगे, तब मुझे शान्ति मिलेगी।"

बाप को सुख मिलता था, दूसरों को दुखी देखने में। वह बाप स्वभाव से **सैंडिस्ट** था।

मेरा अपना विचार है कि विद्या के क्षेत्र में चापलूस वृत्तियों के मनुष्य जब सत्ता में आ जाते हैं, तब विद्या का ह्रास अवश्यंभावी है। यदि ऐसे मनुष्य उत्कर्ष प्राप्त कर जाते हैं, तो अन्य साथी भी विचारने लगते हैं कि हमें भी ऐसा ही मार्ग और साधन अपनाना चाहिए। आज की दुनिया में सफलता की यही कुञ्जी है। आदमी जन्म से घटिया नहीं होता; संगति उसे घटिया बना देती है। चाटुकार और ऊँचे चापलूस लोग अपने बॉस को भी संस्कृत-पाठ की **चाटुकारता** और फ़ारसी-सबक़ की **चापलूसी** पढ़ा देते हैं।

वहाँ एक **श्रीवर महोदय** भी थे। उनकी कुछ ऐसी स्थिति कालान्तर में बन गयी थी कि ईमानदार तथा साहित्य-सेवी उन्हें प्रिय नहीं लगते थे। चापलूस और गुलामटाइप व्यक्ति ही उन्हें बहुत भाते थे। संस्था की सेवा कराने से उन्हें मतलब न था; उन्हें मतलब अपनी व्यक्तिगत सेवा कराने से।

जो व्यक्ति उनके नाम पर भाषण तैयार करते थे: किताबें लिखते थे, या उनके घर पर सभी प्रकार के घरेलू कार्य करते थे, वे ही उनकी दृष्टि में कर्तव्यपरायण और उत्तम व्यक्ति थे। जो व्यक्ति उनके चरण न छूता था, वह उनके लिए उद्दण्ड, घमंडी और नगण्य था; बेकार-सा था। क्षण-क्षण पर श्रीवर महोदय उस व्यक्ति को सताने का, या अपमानित करने का अवसर भी देखा करते थे। संभवतः विष ने विषत्व उनसे ही प्राप्त किया होगा। इस दृष्टि से उनका आंतरिक व्यक्तित्व उल्लासालंकार से अलंकृत था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस संस्था के उच्चाधिकारी भी वास्तव में यह न जान सके थे कि वहाँ किस स्तर का हिन्दी-सेवा-कार्य हो रहा है ?

श्रीवर महोदय दुनियादार तो कमाल के थे। वे अपनी कार्य-सिद्धि के लिए दूसरे के पेट में घुस जाते थे और तुरन्त आत्मीय सम्बन्ध स्थापित कर लेते थे। उनकी आत्मा और मन का ऐसा विराट् विस्तार था कि सभी व्यक्तियों से उनके आध्यात्मिक और पारिवारिक संबंध थे।

कमाल यह था कि आत्मीय संबंध वाले व्यक्ति का परिचय देते समय उसका नाम तक वे ठीक तरह न बता पाते थे। 'रामेश्वरलाल खंडेलवाल' को वे रामेश्वरलाल 'अंचल' कहते थे। उदयशंकर भट्ट के उपन्यास **सागर, लहरें और मनुष्य** का नाम वे 'सागर, मनुष्य और लहरें' बताया करते थे।

परम विशिष्ट गुण श्रीवर महोदय में एक यह था कि अपने सहयोगी के मन की धरती में वासना के बीज अपनी बातों का खाद-पानी देकर वे बहुत जल्दी उगा देते थे, और फिर उन्हें पत्थर के नीचे दबाकर उस साथी को असीमित आशा-प्रतीक्षा में लटकाये रखते थे; तथा महीनों चड्डी लेते थे। लम्बी डोर में बाँधना और लटकाना भी उनसे बहुत अच्छी तरह आता था।

उस बँधी हुई तथा लटकी हुई स्थिति में ही वे अपने कार्यों के लिए उससे **हाँ** करा लेते थे, और उस कार्य को पूरी तरह सम्पन्न भी करवाते थे। वैसे अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए उन्हें किसी भी स्तर पर उतर जाने में कोई हिचक न थी। कार्य साधने के समय उनकी वाणी की मिठास और आत्मीयता से परिपूर्ण भावोद्रेक नोट करने की चीजें थीं।

दुनियादारी की परीक्षा में प्रथम श्रेणी के अभिलाषी को उन्हें अपना गुरु बनाना चाहिए। इस क्षेत्र में वे गुरुर्गरीयान् थे।

जहाँ आलोचना-साहित्य में एक स्कूल आचार्य शुक्ल का है, और भाषा-शोध में एक स्कूल डा० धीरेन्द्र वर्मा का है; ठीक उसी प्रकार अपने ढँग का, श्रीवर महोदय का भी एक स्कूल चल रहा है।

न मालूम किस महा वृहस्पति से दुनियादारी की वह विद्या उन्होंने सीखी थी।

एक बार श्रीवर महोदय एक उच्च परीक्षा के परीक्षक बने। प्रश्न-पत्र में वाक्यों को निषेधात्मक बनाने का एक प्रश्न था। उन्हें यह पता न था कि हिन्दी में रूपपरक और अर्थपरक निषेधात्मक वाक्य भी होते हैं। फिर भी श्रीवर महोदय ने उस प्रश्न को जाँच दिया था।

किसी भूखे को छत्तीस प्रकार के व्यंजनों की थाली मिल जाए, तो वह उस पर वह बुरी तरह से टूटेगा। **श्रीवर महोदय** की भी कुछ वही दशा हुई, बाद में। वे अपने स्वार्थ अर्थात् व्यक्तिगत सेवा और अर्थ-प्राप्ति के लोभ में शनैः-शनैः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अल्पज्ञ तथा बहुत मामूली-से लोगों की नियुक्तियाँ करने लगे। वे व्यक्ति भले ही अपना दायित्व पूरा न कर सकें, किन्तु यदि श्रीवर के व्यक्तिगत कार्यों में जी-जान से लगे रहें, तो श्रीवर को परम सन्तोष था, प्रसन्नता थी। इसका परिणाम यह हुआ कि वहाँ हिन्दी का स्तर उठ नहीं सका। अब तो उसके उठने की आशा भी समाप्त हो चुकी है।

वहाँ पहुँचने से पहले मैं समझता था कि—"ऐसे उच्च स्थानों पर बड़े विद्याव्यासंगी और तपस्वी ही पहुँच पाते होंगे। ऐसे तपोवनों के तपस्वियों की तपश्चर्या कितनी दिव्य एवं उच्च होती होगी—प्रभो ! मुझ जैसा अल्पज्ञ वहाँ कैसे सफलता प्राप्त करेगा ?" लेकिन उस चहारदीवारी के अन्दर जो नज़ारा मैंने देखा, वह महा विचित्र था। वहाँ हाथी के दाँत खाने के और थे, और दिखाने के और। हाँ, एक लाभ वहाँ मुझे अवश्य हुआ, शब्दों की व्युत्पत्ति और विकास के सम्बन्ध में। मैंने पहली बार वहीं पर यह जाना था कि सं० **कृष्ण** शब्द **क्राइस्ट** शब्द से विकसित है। कितनी ऊँची रिसर्च हाथ लगी थी मेरे ?

मैंने वहाँ देखा कि **श्रीवर महोदय** लिखित भाषण भी देते थे। वे भाषण लिखते न थे; किन्तु लिख जाते थे। वे अपने ग्रन्थ रचते न थे; पर रच जाते थे।

सारस्वतस्तेय सामासिक शब्द है। इसमें कर्मधारय समास क्यों है, और इसका विग्रह और अर्थ क्या है ? यह मैं उन महोदय के कार्य-कलापों से ही जान सका था।

श्रीवर महोदय परीक्षा की उत्तर-पुस्तिकाएँ जाँचते न थे; लेकिन जँच जाती थीं। उनके रिश्तेदार अथवा परिवारी पढ़ते न थे; किन्तु प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हो जाते थे। आवश्यकता के समय रिक्त स्थानों पर उनकी नियुक्तियाँ भी हो जाती थीं। शिष्यों से वे पाँव अवश्य पुजवाते थे, बड़े और दिव्य पुरुष बनने के लिए। यह सत्य है कि दिव्य पुरुषों के पाँव पूजे जाते हैं, लेकिन यह भी सत्य है कि पाँव पुजवाने से दिव्य पुरुष नहीं बनते।

श्रीवर महोदय में विचित्र प्रकृति-प्रदत्त प्रतिभा थी, और उनका जादू भी कमाल का था। सबसे अधिक कमाल की बात तो श्रीवर महोदय में यह थी कि जिस ग्रंथ के विषय में उन्होंने कुछ न सुना हो; और न कभी उसे देखा हो, उस ग्रंथ की भी जमकर समीक्षा कर देते थे और दावे के साथ करते थे। वे तक़रीर के हुनर में ऐसे माहिर थे कि विषय के केन्द्र-बिन्दु और मुद्दे को न छूते हुए भी मज़े से बिना झिझक के एक घंटा बोल लेते थे। **तुलसीदास** पर बोलते समय उनका कमाल का उद्धरण एक यह रहता था—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुवीरगाथा भाषानिबंधमतिमंजुलमातनोति—

(रामच०, बालकाण्ड, श्लोक ७)

रघुवीरगाथा पाठ, न मालूम उन्होंने **मानस** की किस दुर्लभ प्रति से याद किया था ? एक और भी उद्धरण वे सुनाया करते थे—

मुद मंगलमय संत समाजू ।
जिमि जग जंगम तीरथराजू ।। (मानस, बाल०२/७)

उक्त अर्धाली का **जिमि** पाठ भी उन्होंने **मानस** के किसी अद्भुत संस्करण में से ही नोट किया होगा । **जिमि** की अर्थ-संगति भी उन्होंने खूब ही बिठा ली होगी ! वैसे **मानस** की एक चौपाई (पूरी) उनके मुख से कभी सुनी नहीं गयी ।

श्रीवर महोदय के श्रद्धालु एवं परम प्रिय सहयोगी-सेवक ऐसे विषयों के पारंगत पंडित भी माने जाते थे, जिनका वे **क, ख, ग,** भी नहीं जानते थे । उनका आशीर्वाद ही सेवकों को प्रकाण्ड पंडित बना देता था ।

मैंने वहाँ ऐसे महानुभावों के भी दर्शन किये, जिन्होंने एक पुस्तक निरन्तर सात वर्ष तक पढ़ायी, फिर भी उसके एक छन्द का भी पूरा अर्थ वे नहीं कर सकते थे । अनिष्टकारिणी प्रवृत्ति के ही बल पर प्रायः अपना रौब जमाते रहे और शिक्षण-अनुभव के वर्षों की संख्या बढ़ाते रहे । वह संख्या ही उनके महा ज्ञान का प्रमाणपत्र थी ।

वहाँ एक बार मेरे घर के माल की चोरी भी हो गयी थी । तब मेरी हालत ऐसी थी कि पुलिस में रिपोर्ट भी दर्ज न करा सका था । बस, चोरी के वक़्त ज़रा खाँसा था । एक शेर याद आ रहा है, जो श्री कन्हैयालाल जी 'प्रभाकर' ने आचार्य चतुरसेन शास्त्री का संस्मरण सुनाते समय मुझे सुनाया था । ठीक याद नहीं; कुछ इस तरह था—

चोर घर में आ घुसे और माल ले गये ।
बंदा सिवा खाँसने के और करता क्या ?

मैं स्पष्ट रूपेण निवेदन कर सकता हूँ कि मेरे समय में वहाँ हिन्दी-भाषा और हिन्दी-साहित्य का अध्ययन-अध्यापन मुश्किल से २५ प्रतिशत सन्तोषजनक रहा होगा ! मैंने वहाँ ऊपरी दिखावा और घटाटोप ही अधिक पाया, वास्तविकता कम । वर्तमान में स्थिति यह है कि विद्वत्ता पर राजनीति पूरी तरह हावी होती जा रही है । इससे त्राण न मिला, तो निश्चित रूपेण रहा-सहा भी विनष्ट हो जाएगा । देखिए, मुस्तक़बिल कैसा बनेगा ? खुदा हाफ़िज़ है ।

वहाँ से अपने घर को विदा होते समय मेरी ज़बान पर ये लफ़्ज़ थे—

ऐ समंदर ! देख ली हमने तेरी दरियादिली ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर्ष है आप सपरिवार सानंद हैं। बच्चों को आशीर्वाद। सस्नेह,

डा० भगवानसहाय पचौरी
पी-एच० डी०
२५, कृष्णापुरी, मथुरा (उ० प्र०)

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० बाँकेलाल उपाध्याय के नाम

८/७, हरिनगर अलीगढ़ (उ०प्र०) २०२००१
दिनांक २. २. १९७७ ई०

संमान्य बन्धु उपाध्याय जी,

सादर सप्रेम नमस्कार।

आपका मुख्य प्रश्न है कि **काव्य से प्राप्त रसानुभूति को ब्रह्मानंदसहोदर क्यों कहा गया है ?**

काव्यानंद न सांसारिक आनन्द है, और न ब्रह्मानंद है; बल्कि इन दोनों का मध्यवर्ती आनन्द है, जो इसी पृथ्वी पर प्राप्त होनेवाला **अलौकिक दिव्यानंद** है। कविता जो आनन्द प्रदान करती है, वह आनन्द इस धरती से सम्बन्ध रखता हुआ भी सांसारिकता से नितान्त पृथक् और अमृत-तुल्य होता है। धरती के आश्रय, आलम्बन और उनके भाव—वहाँ सब कुछ साधारणीकृत होते हैं। उनमें निजत्व-परत्व कुछ नहीं होता। उनका आनन्द ब्रह्मानंद तो नहीं होता, पर कुछ ब्रह्मानंद-जैसा ही होता है। इसलिए उसे 'ब्रह्मानंदसहोदर' कहा गया है। मम्मट ने इसीलिए कविता को 'नियतिकृत-नियमरहित' कहा; कविता ईश्वर की सृष्टि से भी बढ़कर है।

पं० केशवप्रसाद जी मिश्र (काशी विश्वविद्यालय) ने अपनी पुस्तक **मेघदूत** (कालिदास के मेघदूत का अनुवाद) की भूमिका में काव्यानन्द को **मधुमती भूमिका** के समान बताया है। उसी के आधार पर बाबू श्यामसुन्दरदास जी ने भी काव्यानंद को मधुमती भूमिका के सदृश कहा है। 'मधुमती' वास्तव में योगी की द्वितीय भूमिका है। इसमें योगी संसार में रहते हुए भी संसार में नहीं रहता।

वास्तव में योग की चार भूमियाँ हैं—(१) **प्रणय कल्पित** (२) **मधुमती** (३) **विशोका भूमि** (४) **अतिक्रान्त भावनीय**। द्वितीय भूमि 'मधुमती' में पहुँचकर योगी पुनः संसार में लौट आता है। ब्रह्मानंद की-सी कुछ अनुभूति करके लोक-भूमि पर उतरना पड़ता है। उस मधुमती भूमि में वह कुछ समय ही रह पाता है। चतुर्थ भूमि (अतिक्रान्त भावनीय) अंतिम भूमि है। इसमें योगी ब्रह्मानंद प्राप्त कर लेता है। द्वितीय भूमि (मधुमती) की परमानन्दमयी अनुभूति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्यानन्द के समान होती है। इसलिए काव्यानंद ब्रह्मानंदसहोदर है। महाकवि कालिदास ने संभवतः योग की प्रथम भूमिका की ओर सामासिक शब्द शिथिलसमाधि (मालविकाग्निमित्र २/२) से कुछ संकेत कर दिया है।

जो लौकिक नहीं है, और जो अलौकिक ब्रह्मानंद भी नहीं है, उसे ब्रह्मानंद-सहोदर कहना ही उपयुक्त ठहराया गया।

आपको स्मरण है वह घटना, सन् १६४२ के आंदोलन की, जब हम दोनों नजीबाबाद (बिजनौर) में रेलगाड़ी की पटरी को पार कर रहे थे, सन्ध्या समय। तब कैसी बीती थी हम दोनों पर ? यदि हम दोनों सरकारी महकमों में नौकरी न करते होते, तो निश्चय ही जेल जाते। उपाध्याय जी ! यदि तब जेल हो जाती, तो आज लाभ उठा लेते। आज तो सैकड़ों बिना जेलवाले भी खद्दर का कुर्ता और टोपी पहनकर नेता बने फिरते हैं।

प्रसन्नता है कि आप सानंद हैं। चि० पिंकी आज कल क्या कर रहा है ? वह तो बड़ी अच्छी कविताएँ लिखने लगा है। सस्नेह,

डा० बाँकेलाल उपाध्याय, पी-एच० डी० आपका
डी-८६, विवेक विहार, दिल्ली—११००३२ अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री राजनारायण सोती के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़-२०२००१
दिनांक ३. ३. १६७७ ई०

मान्यवर सोती जी,

सादर नमस्कार !

आपने तो **रामचरितमानस** का बहुत अध्ययन किया है। **श्रोत्रिय** ब्राह्मण आदि से ही ब्राह्मणों में श्रेष्ठ रहे हैं, क्योंकि वे वेद-शास्त्रों के शीर्षस्थ ज्ञाता होते थे। श्रुतियों के ज्ञाता होने के कारण **श्रोत्रिय** कहलाये। आपका मूल निवास-स्थान मेरठ है। प्राचीन काल में मेरठ कुरुजनपद के अन्तर्गत था। कुरु-पांचाल जनपद के ब्राह्मण और कुरु-पांचाल की भाषा उच्चतर रही है। शतपथ ब्राह्मण में कुरुजनपद की भाषा को उच्चतर बताया गया है। सायण ने उसका भाष्य भी किया है—**उदीची दिक् कुरुपांचालाख्येषु जनपदेषु उच्चतरा वाग् वदति** (शतपथ ब्राह्मण, ३. २. ३. १५)। वृहदारण्यक उपनिषद् में उल्लेख है कि राजा जनक द्वारा आयोजित यज्ञ में कुरुपांचाल के ब्राह्मणों का स्थान सबसे आगे था। महाभारतकाल में कुरु-पांचाल के पश्चिम में कुरुजनपद, कुरुक्षेत्र और कुरुजांगल थे। पाण्डवों ने वनवास के दिन कुरु-जांगल में बिताये थे।

आप उन्हीं ब्राह्मणों की परम्परा में हैं। आपका प्रश्न वास्तव में गूढ़ है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपने अपने पत्र में लिखा है कि तुलसीदास के 'रामचरितमानस के किष्किन्धा-काण्ड के प्रारम्भ में लिखा गया है **नर नारायन की तुम्ह दोऊ**—इसमें **नर नारायन** का क्या अर्थ है ? ये नर और नारायण कौन थे ?

आपके द्वारा जो चरण उद्धृत किया गया है, उसकी पूरी अर्धाली इस प्रकार है—

की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ।
नर नारायन की तुम्ह दोऊ ॥ (किष्कि० दो० १/१०)

भगवान् राम से विप्ररूपधारी हनुमान् जी ने पूछा है कि क्या आप ब्रह्मा, विष्णु और महेश नाम के देवों में से कोई दो हैं अर्थात् विष्णु और **शिव** हैं अथवा **विष्णु** और **ब्रह्मा** ? शिव और ब्रह्मा गौर वर्ण हैं; विष्णु नील वर्ण हैं। राम का शरीर नील वर्ण का, और लक्ष्मण का श्वेत वर्ण का था। इसीलिए उपर्युक्त जोड़े की कल्पना की गयी है। फिर हनुमान् जी पूछते हैं कि क्या आप दोनों नर और नारायण हैं ? नर गौर-वर्ण थे और नारायण नील-वर्ण थे। दोनों (नर-नारायण) देवता साथ-साथ रहते हैं; भाई-भाई हैं।

नर और **नारायण** धर्म-पुत्र और **वासुदेव** के अवतार माने जाते हैं। देवासुर-संग्राम में नर ने बहुत पराक्रम दिखाया था। देवों और असुरों ने अमृत-कलश नर के पास रखा था। प्रजापति दक्ष के यज्ञ में शिव का त्रिशूल नर के भाई नारायण की छाती में लगा था। तब नर को क्रोध आ गया और तुरन्त सींक को अस्त्र की भाँति फेंका। वह सींक फरसा बन गयी और शिव पर प्रहार के लिए दौड़ी। तब शंकर ने उस फरसे के टुकड़े कर दिये। तभी से शिव **खंडपरशु** पुकारे जाने लगे।

नर-नारायण ने बदरिकाश्रम में जाकर तपस्या की थी। द्वापर में नर ने अर्जुन के रूप में और नारायण ने श्रीकृष्ण के रूप में अवतार लिया था। नर का वर्ण गौर था। अर्जुन भी एकदम धवल था। 'अर्जुन' शब्द का अर्थ भी 'श्वेत' ही है। नारद का वर्ण भी श्वेत अर्थात् गौर था। 'शिशुपालवध' में महाकवि माघ ने नारद को 'अर्जुनच्छवि' वाला बताया है—

पिशङ्गमौञ्जीयुजमर्जुनच्छविं (शिशु० १/६)

हनुमान् जी रामावतारों में सदा राम के साथ रहे हैं। **जय-विजय, जलंधर,** रुद्रगण तथा **भानुप्रताप-अरिमर्दन** वाले कल्पों में हनुमान् राम जी के साथ ही थे। चतुर्थ कल्प में माया-मोह के कारण हनुमान् जी उन्हें न पहचान सके। द्वितीय और तृतीय कल्प के अवतारों की ओर संकेत करते हुए पूछते हैं कि क्या आप दोनों **नर-नारायण** हैं ?

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे विश्वास है कि आपको **नर-नारायण** के विषय में बात स्पष्ट हो गयी होगी। हर्ष है आप सानन्द हैं। सादर,

श्री राजनारायण सोती, आपका
स्थान—हेतलपुर, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
डा०—जट्टारी, जि०—अलीगढ़

कु० विमलेश शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक ५. ३. १९७७ ई०

बेटी विमलेश

आशीर्वाद !

तुमने **रामचरितमानस** के बालकाण्ड के प्रारंभ में आये हुए **सातवें श्लोक के अन्तर्गत रघुनाथगाथा भाषानिबन्ध के निबन्ध शब्द के अर्थ को स्पष्ट कराने की जिज्ञासा प्रकट की है।** तुमने यह भी शंका उठायी है कि **निबन्ध** तो गद्य की एक विशिष्ट विधा है, जिसे अँग्रेजी में 'Essay' कहते हैं। कविता के ग्रन्थ में तुलसी ने उसे **भाषानिबन्ध** क्यों लिखा ? **निबन्ध** से यहाँ क्या तात्पर्य है ?

जिज्ञासा सहज और वास्तविक है। 'रामचरितमानस' को प्रबन्ध-काव्य तो माना जा सकता है; लेकिन तुलसी **भाषानिबन्ध** लिखते हैं। यहाँ **निबन्ध** शब्द की अर्थात्मक अवधारणा को समझने के बाद ही बात ठीक तरह से स्पष्ट हो सकेगी।

यदि तुम आचार्य हजारीप्रसाद जी द्विवेदी की पुस्तक **साहित्य-सहचर** पढ़ो, तो **निबन्ध** शब्द का प्राचीन अर्थ तुम्हारी समझ में आ जाएगा। 'निबन्ध' संस्कृत में एक विशिष्ट विधा है, जिसमें धर्मशास्त्र के सिद्धान्तों की विवेचना रहती है। इसके पूर्व पक्ष में पहले कुछ विरोधी बातों अथवा प्रश्नों को प्रस्तुत किया जाता है, फिर उत्तर पक्ष में एक-एक करके उनका उत्तर दिया जाता है। उत्तर पक्ष में शंका-समाधान के प्रमाणों का निबंधन होता है। इसलिए उस विधा को **निबन्ध** कहते हैं।

तुलसीदास जी ने भी 'रामचरितमानस' के प्रारंभ में शंकाओं में, प्रश्नों के रूप में पार्वती, भरद्वाज और गरुड़ की विरोधी बातें प्रस्तुत की हैं, और फिर उत्तर पक्ष में शंकर, याज्ञवल्क्य और काकभुशुण्डि के द्वारा उनका उत्तर दिलाया गया है। अतः तुलसीदास उसे 'भाषानिबन्ध' कहते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम दुगड्डा में कब तक रहोगी ? तुम्हारे पिताजी दुगड्डा से यहाँ कब आनेवाले हैं ? सूचित करना।

हर्ष है तुम वहाँ सानन्द हो।

कु० विमलेश शर्मा, एम० ए० शुभैषी
C/o श्री सुरेशचन्द्र शर्मा, प्रमुख लेखाकार, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
सार्वजनिक निर्माण विभाग, दुगड्डा (पौड़ी-गढ़वाल)

डा० कृष्णचन्द्र शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)

बन्धुवर डा० शर्मा जी, दिनांक ३, ८. १९७७ ई०

सादर सप्रेम नमस्कार।

आपने इस संबंध में मेरा मत जानना चाहा है कि आज-कल जनपदीय बोलियों में लोक-गीत आदि रचनेवाले व्यक्तियों को **जनकवि** कह दिया जाता है। क्या 'जनकवि' को कविता की भूमि पर इतनी भूमिका निभाना ही पर्याप्त है ? ऐसे कवि क्या **जनकवि** कहलाये जाने चाहिए ?

बन्धुवर शर्मा जी ! मेरी राय में **जनकवि** और **लोककवि** में अंतर है। लोक-संस्कृति या लोक-समाज की लोकमान्य अंतर्भूत भाव-भावनाओं को जन-बोलियो के माध्यम से सहजरूप में व्यक्त करनेवाला व्यक्ति **लोककवि** है; लेकिन 'जनकवि का क्षेत्र विशाल और विस्तृत है। वह बुद्धि के बल से भाषा-परिष्कार करता है। उसकी कविता का माध्यम बोली नहीं, भाषा होती है; वैसे उसकी भाषा, बोली के व्यापक शब्दों को भी यथासंभव स्वीकारती है।

किसी देश की भाषा के वाक्यों और मुहावरों का निर्माण उस देश की जलवायु पर भी निर्भर है। इँगलेण्ड ठंडा देश है; इसलिए वहाँ अतिथि का Warm Reception (गर्म स्वागत) होता है। भारत गर्म देश है; इसलिए अतिथि के आगमन से यहाँ छाती शीतल होती है।

जनकवि सामान्य जनता के दुख-दर्द को युगानुरूप वाणी प्रदान करता है। जनता के अन्याय और शोषण को जनकवि उद्घाटित करता है। उसके उद्-घाटन से जनता में जागरण और जन-क्रान्ति जन्म लेती है। जनकवि जनता के व्यापक हित के लिए कविता लिखता है; मुट्ठी भर लोगों के लिए नहीं। जनकाव्य में समष्टि की वेदना कराहती है, व्यष्टि का विलास नहीं। जनवादी कविता जनता के अन्तस् की चेतना-धारा को बाहर की धारा से मिला देती है। जनकवि जन-जन के संवेदन को रूप और विस्तार देता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनकवि की कविता का एक ही प्रमुख गुण है, प्रसाद । जनकवि सहजपन, सरलता और स्पष्टता में विश्वास रखता है; कला, अलंकार, वक्रोक्ति और गूढ़ व्यंजना में नहीं । जनकवि का अपना सिद्धान्त इन पंक्तियों में बताया जा सकता है—

अगर अपना कहा, तुम आप ही समझे तो क्या समझे ?
मज़ा कहने का तब है, एक कहे और दूसरा समझे ।

सारांश यह है कि जनकवि सामान्य **आदमी** या **इंसान** का कवि है; पूँजी-पति, सामंत या समाज-शोषक का कवि नहीं । 'जनकवि' से तात्पर्य है जनता का कवि, जनतंत्र का कवि या जनक्रान्ति का कवि ।

आज-कल आपके स्वाध्याय तथा साहित्य-सर्जना की क्या चर्या है ?

आपने वास्तव में कौरवी लोक-संस्कृति एवं कौरवी लोक-साहित्य की सेवा करके हिन्दी-जगत् का कल्याण किया है । माता वीणापाणि से प्रार्थना है कि आपका ब्राह्मसरोवर उत्ताल ऊर्मियों से ऊर्मिल रहे ! आपके सारस्वत निमंत्रण तो मिले; किन्तु सेवा न कर सका । क्षमा ! सस्नेह,

डा० कृष्णचन्द्र शर्मा, पी–एच० डी०
रामवाटिका, आपका
शिवाजी मार्ग, मेरठ (उ० प्र०) अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० फूलविहारी शर्मा के नाम

शिविर, मथुरा (उ० प्र०)
दिनांक ५. १०. १९७७ ई०

प्रियवर फूलविहारी शर्मा,

आशीर्वाद ।

तुम्हारे प्राप्त पत्र से यह जानकर प्रसन्नता हुई कि तुमने **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** के आलोचना-सिद्धान्तों को मनोयोगपूर्वक पढ़ा है ।

तुम्हारी मुख्य जिज्ञासा यह है कि **क्या काव्यानुभूति और प्रत्यक्षानुभूति वास्तव में समान अनुभूति हैं**, जैसा कि शुक्ल जी मानते हैं ?

प्रियवर, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल निश्चितरूपेण हिन्दी में व्याख्यात्मक आलोचना के प्रथम आचार्य हैं, जिन्होंने संस्कृत-काव्यसिद्धान्त और पाश्चात्य काव्यसिद्धान्त में सामंजस्य स्थापित करते हुए रसवाद को मनोवैज्ञानिक विवेचन प्रदान किया । उन्होंने **रसवादी सिद्धान्त** को समीक्षा के लिए इसलिए भी अपनाया था कि इससे सभी युगों की हिन्दी-कविता समीक्षित की जा सकती हैं ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाँ, इतनी बात अवश्य है कि पाश्चात्य समीक्षा के प्रभाव से, अथवा कहिए कि नवीनता के मोह से आचार्य शुक्ल जी भारतीय रसशास्त्र की लीक से दो-एक जगह हटे हुए-से मुझे दिखायी दिये—एक तो रसानुभूति में मध्यम कोटि बताते समय (**साधारणीकरण** और **व्यक्तिवैचित्र्यवाद निबन्ध में**) और दूसरे काव्यानुभूति और प्रत्यक्षानुभूति को समान बताते समय। लौकिक अनुभूति और काव्यानुभूति (काव्यगत रसानुभूति) समान अनुभूतियाँ नहीं हैं। मेरी राय में दोनों भिन्न-भिन्न हैं। काव्यानुभूति में करुण आनन्दप्रद है, लेकिन लौकिक करुण दुःखप्रद है। लौकिक करुण तो प्रत्यक्षानुभूति का करुण है। **प्रत्यक्षानुभूति** और **काव्यानुभूति** समान मानी जाएँगी, तो काव्यानन्द ब्रह्मानंद सहोदर नहीं माना जा सकता। रसशास्त्र में व्याघात आता है।

प्रत्यक्षानुभूति से काव्यानुभूति बहुत उच्च, दिव्य और लोकोत्तर होती है। प्रत्यक्षानुभूति में जगत् का यथार्थ रहता है; किन्तु काव्यानुभूति नितान्त आदर्शमय होती है। तुलसी के 'मानस' की सीता का रूप-सौन्दर्य और प्रसाद की 'कामायनी' की श्रद्धा का रूप-सौन्दर्य इस जगत् में देखने को नहीं मिल सकता। तुलसी **सीताजी** के सौन्दर्य के सम्बन्ध में लिखते हैं—

जौं छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई।।
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू।।
एहि विधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुखमूल।
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल।।

—(रामच०, बाल० २४७/७,८)

प्रसाद 'कामायनी' में श्रद्धा के शरीर-लावण्य और द्युति को बिजली के के फूल से उपमा देते हुए लिखते हैं—

नील परिधान बीच सुकुमार,
खिलरहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघ बन बीच गुलाबी रंग। (कामा०, श्रद्धा सर्ग, छंद ८)

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट—
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

प्रसाद जी ने सीता जी की जिस सरल-बिलोकनि की छवि और भंगिमा को कविता में व्यक्त किया है, वह दिव्यतम छवि इस जगत् में देखने को नहीं मिल सकती। वह तो कवि के मनोराज्य में ही दृष्टिगत हो सकती है। कविवर प्रसाद ने उसे उल्लास अलंकार के माध्यम से व्यक्त किया है—

मृगशावक से साथ मृगी भी खेल रही थी।
सरल बिलोकनि जनकसुता से सीख रही थी।। (जयशंकरप्रसाद)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारांश यह कि **काव्यानुभूति** आदर्शरूप में कलापूर्ण ही होती है। वह आदर्श वस्तुतः लोकोत्तर या अलौकिक ही होता है।

कवि और **कविता** के स्वरूप को कुछ शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि कवि के दिव्यतम अलौकिक मानस-लोक के दिव्यतम अलौकिक मानसरोवर से जो दिव्यतम अलौकिक स्वर्गंगा प्रवाहित होती है, उसी स्वर्गंगा को **कविता** कहते हैं।

प्रत्यक्षानुभूति के मूल में **सौन्दर्य** रहता है। सौन्दर्य ही प्रत्यक्षानुभूति को गहरी बनाता है। सौन्दर्य का ही दूसरा नाम **रमणीयता** है। जो नित्य नवीन है, वही रमणीयता है। महाकवि **माघ** ने शिशुपालवध में रमणीयता का लक्षण इन शब्दों में बताया है—

"**क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः** (शिशु० ४/१७)।

मेरी अपनी राय तुम्हारे प्रश्न के उत्तर में यही है। वैसे **आचार्य हजारी-प्रसाद जी द्विवेदी** और **डा० नगेन्द्र जी** से भी मालूम करो। सस्नेह,

डा० फूलविहारी शर्मा, पी–एच० डी०
हिन्दी विभाग,
अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय, अलीगढ़।

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री महेशचन्द्र शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक ११. १० १९७७ ई०

मान्यवर मामा जी,

सादर नमस्कार।

एक दिन आभा और अलका ने मुझसे **रेखा-चित्र** और **संस्मरण** का अन्तर पूछा था। उनके प्रश्न का उत्तर मैं भेज रहा हूँ। कृपया इस पत्र को उन्हें तुरन्त देने का कष्ट करें, ताकि **परीक्षा** में वे उपयोग भी करलें।

"बेटियो! तुमने मुझसे **रेखाचित्र** और **संस्मरण** की भेदक रेखाएँ जानने की इच्छा प्रकट की थी। उसे ही लिखकर भेज रहा हूँ।

जिस व्यक्ति में कुछ विलक्षणता होती है, लेखक उनके शरीर और मन का शब्द-चित्र खींचता है। चित्र की भाँति लेखक शब्द-चित्र तटस्थ भाव से खींचता है, किन्तु सौन्दर्यपरक दृष्टि से। 'रेखाचित्र' में चित्रांकन की कलाविज्ञता आवश्यक है। लेखक जिसका रेखाचित्र प्रस्तुत कर रहा है, उसके बाह्य व्यक्तित्व को लेखक बहुत बारीकी से व्यक्त करता है। उसके लिए उस व्यक्ति से सम्बद्ध कथा, घटना या प्रसंग की कोई आवश्यकता नहीं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु **संस्मरण** उसी व्यक्ति का लिखा जाता है, जिससे लेखक का भावात्मक संबंध होता है। संस्मरण में निजत्व का भाव प्रमुख होता है। संस्मरण में घटना, प्रसंग आदि अवश्य रहते हैं। यदि कोई अपने किसी श्रद्धेय गुरुवर के सम्बन्ध में घटना-प्रसंग के साथ कुछ विवरणात्मक संस्मरण प्रस्तुत करता है और साथ में उन गुरुवर की मुखाकृति का चित्रांकन भी करता है, तो उस गद्यात्मक लेख को मुख्यतः संस्मरण ही कहेंगे। अधिक बारीकी के साथ कहना चाहें, तो उसे रेखा-चित्रपरक संस्मरण भी कह सकते हैं। **संस्मरण** में लेखक अपने तथा अपने लक्षित व्यक्ति के मनोभावों की अभिव्यक्ति अवश्य करता है। यही एक तत्त्व है जिसके कारण प्रमुख रूप से संस्मरण **रेखाचित्र** से पृथक् माना जाता है।

रेखाचित्र और संस्मरण में मुख्य अंतर यह है—(१)–**रेखाचित्र** वर्तमान और अतीत से, लेकिन **संस्मरण** केवल अतीत से सम्बद्ध होता है। (२) **रेखाचित्र** में लेखक मौन रहता है, लेकिन **संस्मरण** में लेखक अपनी भी कहता है। (३) **रेखाचित्र** (शब्दचित्र) में केवल व्यक्ति रहता है; लेकिन **संस्मरण** में व्यक्ति के साथ समाज और देश-काल भी।

मैंने अपने श्रद्धेय गुरुवर डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल के देहावसान के समय 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में एक लेख उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के सम्बन्ध में लिखा था और प्रथम पैराग्राफ में उनके शरीर और मुख का शब्द-चित्र भी दिया था। भले ही उसमें शब्द-चित्र था, किन्तु वह मुख्यतः **संस्मरण** ही था।"

आपके प्रबन्धकत्व में **गाजीपुर** (बरसाने के पास) में जो ठाकुर जी का मंदिर है, उसमें चार-छह दिन तक ठहरने तथा भोजन आदि का प्रबन्ध भी हो सकता है क्या ? मैं 'बरसाना' गाँव के आस-पास की बोली और कुछ सांस्कृतिक जनपदीय शब्दावली का अध्ययन करना चाहता हूँ।

आज-कल माई जी का स्वास्थ्य कैसा चल रहा है ? मैंने तो उन्हें पिछले चार वर्षों से ऐसा ही देखा है, मानो शरीर है ही नहीं। खाल में हाड़ बँध रहे हैं। उन्हें मेरा नमस्कार कहें। आज-कल मुन्ना कहाँ है ?

श्री महेशचन्द्र शर्मा,
(रिटायर्ड गुड्स क्लर्क)
६२, धौलीप्याऊ, मथुरा (उ० प्र०)

विनीत
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० रमेशचन्द्र शर्मा के नाम

शिविर, नई दिल्ली

प्रियवर रमेशचन्द्र, दिनांक १२. १०. १९७७ ई०

आशीर्वाद।

तुमने पूछा है कि "कुछ आलोचक **रामचरितमानस को सामंतवादी काव्य बताते हैं। आपके मत में यह कथन कहाँ तक ठीक है?**"

सामंत संस्कृत शब्द है। बड़े ज़मींदार या राजा के अर्थ में **सामंत** शब्द प्रचलित है। रौबीली-पूँजीवादी-शोषक-नीति 'सामंतशाही नीति' कहलाती है। तुलसीकृत 'रामचरितमानस' के नायक राम ऐसे राजा नहीं हैं। पहले तो दर्शन और भाव-जगत् में राम ब्रह्म हैं; दूसरे, कर्म-जगत् में वे मनुष्य हैं। ऐसे मनुष्य जो शील, शक्ति और सौन्दर्य के कारण सब के परम प्रिय और श्रद्धेय हैं। उनके हृदय में सदा जनता की सेवा का भाव ही प्रमुख है। प्रजा की बात पर ही राम ने अपनी प्यारी पत्नी सीता को त्यागा था। इसका संकेत बालकाण्ड में तुलसीदास ने किया है। साम्यवाद समाज की विषमता मिटाना चाहता है। राम के राज्य में कोई विषमता थी ही नहीं।

बयरु न कर काहू सन कोई।
राम प्रताप बिषमता खोई॥ (उत्तर० २०/८)

निषाद, गुह, वानर आदि के प्रति जो प्रेम और मैत्री का व्यवहार रामचन्द्र जी का रहा है, उससे उनकी भावनाओं की ऊँचाई स्पष्ट रूपेण अभिव्यक्त है। राम दीन, हीन और दरिद्रों के हमदर्द हैं।

मुगल सम्राटों या सामंतों की सन्तानें कभी प्रजा की सन्तानों के साथ नहीं खेलती थीं। दशरथ-पुत्र राम प्रजा के सामान्य बालकों के साथ खेलते हैं। उस बाल-समाज में राम का मन रमता है। **तुलसी** 'मानस' में लिखते हैं—

भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा॥
(रामचरित, बाल० २०३/६)

रामचन्द्र जी को मातृभूमि से अपार प्रेम है। वह उनके लिए स्वर्ग से भी बढ़कर है। तुलसी भारत के नदी-पर्वतों के लिए श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

राम को प्रजा से इतना प्रेम है कि उनके राज्य में सब सुखी, शिक्षित और सच्चरित्र हैं—

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।
नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥
(रामच० उत्तर० २१/६)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः 'मानस' सामंतवादी काव्य नहीं।

प्रियवर रमेश ! यदि तुम तुलसी की भक्ति के मानसरोवर के तल को गहरी दृष्टि से देखोगे, तो तुम्हें पता लग जाएगा कि तुलसी दीन-दुखियों का कवि है, राष्ट्र का कवि है, जन-जन का कवि है। देश की संस्कृति का रक्षक है।

भारत की संस्कृति की रक्षा विदेशों में भी तुलसीदास आज कर रहे हैं। इँगलैंड, मारीशस, मलाया आदि देशों में रहनेवाले हिन्दू आज भी **हनुमान-चालीसा** और **रामचरितमानस** का पाठ करते हैं; और अपने को हिन्दू-संस्कृति का अनुयायी मानते हैं। वे विदेशों में जीविकोपार्जन करते हुए हिन्दुस्तान को अपना देश मानते हैं।

जीवन के औदात्य का दिग्दर्शन कराते हुए तुलसीदास जी ने सारे विश्व को एक इकाई बना दिया है। अतः वे विश्वकवि भी हैं।

डा० रमेशचन्द्र शर्मा,
हिन्दी विभाग,
धर्म समाज कालेज, अलीगढ़

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री देवेन्द्रप्रसाद सिंह के नाम

हिन्दी-शोध-संस्थान,
हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०) पिन–२०२००१.

प्रिय भाई देवेन्द्रप्रसाद सिंह जी, दिनांक ३. ११. ७७ ई०

सप्रेम नमस्कार।

मैंने आपके पत्र दिनांक ३०. ९. ७७ के उत्तर में एक पत्र तभी प्रेषित कर दिया था; किन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। मैंने यह जानना चाहा था कि श्री शम्भुनारायण चौबे द्वारा सम्पादित **रामचरितमानस** और श्री नन्ददुलारे बाजपेयी द्वारा सम्पादित **रामचरितमानस** (पाठ-भेद और व्याकरण-टिप्पणी सहित) कहाँ से प्राप्त हो सकता है? काशी नागरी प्रचारिणी और गीता प्रेस, गोरखपुर में तो प्रतियाँ समाप्त हो गयीं। चाहता था कि उनके पाठ भी पहले देख लूँ, तब आपको कुछ लिखूँ। उत्तर न मिलने पर विलम्ब होता हुआ जानकर अब आपके लिखित संदर्भों के आधार पर ही अपना मत लिख रहा हूँ। कृपया मेरे द्वारा प्रेषित पाठों को मिलाकर देखिए कि वैसे पाठ किन-किन प्रतियों में मिलते हैं?

मैं भाषा-प्रकृति के आधार पर निम्न पाठ संगत समझता हूँ—'मानस' में **असीस, आसिषा** और **आसिष** शब्द स्त्रीलिंग में प्रयुक्त किये गये हैं। गीताप्रेस गोरखपुरवाले संस्करण में **आसिष** शब्द १२ स्थलों पर ऐसी स्थिति में प्रयुक्त है कि स्त्रीलिंग की सूचना देता है। अतः 'दीन्हि' पाठ उपयुक्त है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निज कर कमल परसि मन सीसा।
हरषित आषिस दीन्हि मुनीसा ।। (उत्तर० ११३/१५)

× × × ×

दोनों संगत हैं—

(१) **सीय बिआहबि राम गरब दूरि करि नृपन्ह के।**
(२) **सीय बिआहबि राम गरबु दूरि करि नृपन्ह कौ।**—
(वाल० २४५/–)

× × × ×

पूजन गौरि सखीं लै आईं। करत प्रकास फिरइ फुलवाईं।
(वाल० २३१/२)

× × × ×

बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं। (वाल० २७१/७)

× × × ×

पठईं जनक अनेक सुसारा (वाल० ३३३/५)

× × × ×

बंदनिवार पताका केतू (उत्तर० ९/२)

('मानस', गीता प्रेस में **बंदनिवार** दो बार; **बंदनवार** एक बार प्रयुक्त है। अतः 'बंदनिवार' पाठ संगत लगता है।)

× × × ×

परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीतीं लिखि लीन्ही।—
(वाल० २३५/३)

'मसि' स्त्रीलिंग एकवचन, 'जानकी' स्त्रीलिंग एकवचन; अतः क्रियाएँ 'कीन्ही' और 'लीन्ही' स्त्रीलिंग एकवचन में होनी चाहिए।

× × × ×

कत सिख देइ हमहिं कोउ माई (अयो० १४/१)

(पंचनामे के दोहे में अनुनासिकता—हिं में मिलती है। अतः 'हमहिं' पाठ संगत तो माना जाना चाहिए; वैसे 'मानस' में 'हि' और 'हिं' दोनों पाठ मिलते हैं।

न त एहि काटि कुठार कठोरें। गुरहि उरिन होतेउँ श्रम थोरें।
—(बालकाण्ड २७५/८)

('कठोरें', 'थोरें' में तृतीया विभक्ति-प्रत्यय—एँ होना चाहिए।)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एहिं भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हियँ हरषीं अलीं ।।
—(बाल० २३६/छंद)

('हरषीं अलीं' पाठ संगत है । क्रिया और कर्ता बहुवचन में होने चाहिए ।)

राम पदारबिंद सिरु, नाएउ आइ सुषेन ।
कहा नाम-गिरि औषधि, जाहु पवनसुत लेन ।। (लंका० ५५/–)

(यह १२, ११ मात्राओं का दोहरा छंद है । 'मानस' में अन्यत्र भी है ।)

कृपया अपने संग्रह की सभी मानस प्रतियों को देखकर बताइए कि किसी प्रति में ऐसे निम्नांकित पाठ मिलते हैं क्या ?

अवसि देखिअइ देखन जोगू । (बाल० २२९/६)
रिषि अगस्ति कें साप भवानीं । (सुंदर० ५६/११)
जनकसुता के चरनन्हि परीं । (सुंदर० ११/८)
जिन्ह पायन्ह कें पादुकन्हि, भरतु रहे मनु लाइ (सुंदर० ४२/–)
मैं पुनि दीन्ह क्रोध करि सापा—(उत्तर० १०९/२)

उक्त पाठ जिन प्रतियों में मिलें, उनका कृपया पूरा संदर्भ लिखें । पत्र-प्राप्ति की सूचना अवश्य दें । अपने पिताजी से मेरा सादर प्रणाम निवेदित करें ।

आशा है मेरा पूर्व प्रेषित पत्र समय पर आपको मिल गया होगा । मैं पत्र-प्राप्ति की सूचना से आश्वस्त हो जाता हूँ; अतः सूचित अवश्य करें । आपने पहले **बहु बिधि क्रीड़हिं पानि पतंगा**—(बाल० १२६/५) का अर्थ जानना चाहा था ।

मैंने पानि पतंगा का अर्थ हाथ-पतंगा अर्थात् कनकौआ लिखा था । 'मानस' में **पानि** शब्द जल के अर्थ में मुझे दो बार मिल गया है । अतः अब मैं यह उचित समझता हूँ कि **पानि पतंगा** का अर्थ 'जल-पक्षी' किया जाए, तो अधिक सुन्दर है । अर्थात् जल-पक्षी अनेक प्रकार से क्रीड़ा कर रहे हैं । इसे काम-जागरण के लिए उद्दीपन विभाव माना जा सकता है ।

श्री विजयानंद त्रिपाठी के उक्त अर्थ को मैं आज से पहले तो ठीक नहीं मानता था, क्योंकि 'पानि' शब्द का प्रयोग 'जल' के अर्थ में अन्यत्र 'मानस' में तब तक मिला नहीं था, अब मिल गया । अतः पानि-पतंगा का अर्थ 'जल-पक्षी' ठीक लगता है ।

क्या आपने उक्त अर्धाली (बाल० १२६/५) पर विचार किया है, अर्थ की दृष्टि से ? शेष सबको यथायोग्य । बच्चों को आशीर्वाद ! पत्रोत्तर की प्रतीक्षा में, सस्नेह,

श्री देवेन्द्रप्रसाद सिंह आपका
९७, अनुग्रहपुरी, गया (बिहार) अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० अजबसिंह के नाम

शिविर, मथुरा (उ० प्र०)

प्रियवर अजबसिंह, दिनांक ११–११–१९७७ ई०

आशीर्वाद ।

तुमने **रसानुभूति और लालित्यानुभूति में अन्तर जानना चाहा है ।**

रसानुभूति एक प्रकार से काव्य के मूल्यांकन का पैमाना रही है । काव्य-शास्त्र के आधार पर रससिद्धान्त या रसचेतना को हम आलोचना के लिए स्वीकारते हैं; किन्तु लालित्यचेतना का क्षेत्र व्यापक है । **लालित्यचेतना** में रचनाकार के संस्कार, पाठक के संस्कार और रचना का स्वरूप—-सभी कुछ होता है । इसमें द्रष्टा, दृश्य और दृष्टि तीनों को समाविष्ट किया जाता है, जबकि रसचेतना में केवल द्रष्टा की मनःस्थिति ही प्रमुख है । **लालित्यानुभूति** को **सौन्दर्यानुभूति** के पर्याय के रूप में समझना चाहिए । **सौन्दर्य**, द्रष्टा और दृश्य की संयोगावस्था में रहता है और रस केवल द्रष्टा (पाठक) के हृदय में । **सौन्दर्य** का दूसरा नाम रमणीयता भी है । क्षण-क्षण पर नवता ग्रहण करनेवाला तत्त्व ही रमणीयता है । माघ ने शिशुपालवध में कहा भी है—

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः (शिशु० ४/१७) ।

महाकवि कालिदास भी विषयी तथा विषय की संयोगावस्था में ही सौन्दर्य मानते हैं । दुष्यन्त के हृदय में शकुन्तला के प्रति सौन्दर्य-भाव है । अर्थात् दुष्यन्त की आँखें शकुन्तला पर रीझी हुई हैं । शकुन्तला स्वयं भी सुन्दर है । उसमें सहज सौन्दर्य है । इसीलिए कालिदास कहते हैं—**किमिव हि मधुराणां मंडनं नाकृतीनाम्** (अभि० शाकु० अंक १/१७) । कालिदास का यह मत भी है कि सुन्दर विषय अपने वातावरण, परिवेश और सहज वेश से ही सुन्दर बना रहता है । परिवेश का उदाहरण **कार्या सैकतलीनहंसमिथुना**—(अभि० शाकु० ६/१७) । सहज सुन्दर अभिव्यक्ति का उदाहरण **कृतं न कर्णार्पितबन्धनं सखे !** (अभि० शाकु० ६/१८) ।

सौदर्य को हम मोटे तौर पर दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—(१) **बाहरी सौन्दर्य** अर्थात् शरीर या वेश-भूषा का सौन्दर्य (२) **आन्तरिक सौन्दर्य** अर्थात् भाव-गुण का सौन्दर्य । द्रष्टा और दृश्य के बीच जो रागात्मकता का सौन्दर्य होता है, वही भाव-सौन्दर्य है । राम ने सीता में, शंकर ने पार्वती में, या दुष्यन्त ने शकुन्तला में जो सौन्दर्य देखा, वह भाव का सौन्दर्य था । यद्यपि कवियों ने **सीता, पार्वती** और **शकुन्तला** में शारीरिक सौन्दर्य भी वर्णित किया है । उस द्विविध सौन्दर्य के आधार पर समीक्षक मूल्यांकन भी करते हैं ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सब कुछ लालित्यचेतना है। **लालित्य** की स्थिति द्रष्टा, दृश्य और दृष्टि—इन तीनों के संयोग में है। अतः **लालित्यचेतना** का आयाम **रसचेतना** से तिगुना है। सस्नेह,

डा० अजबसिंह, शुभैषी

हिन्दी विभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'

अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय अलीगढ़।

प्रो० श्रीरंजन सूरिदेव के नाम

८/७, **हरिनगर, अलीगढ़-२०२००१ (उ०प्र०)**

प्रिय भाई सूरिदेव जी, दिनांक ५. १२. १९७७ ई०

सप्रेम नमस्कार।

आपका दिनांक १. १२. ७७ का कार्ड पाकर प्रसन्नता हुई। आपकी लेखनी से **वसुदेवहिण्डी: एक आलोचनात्मक अध्ययन** के रूप में उत्तम शोध-कार्य हिन्दी जगत् को प्राप्त होगा—ऐसी आशा और विश्वास है।

आलोचना विषय, भाव, और भाषा—सभी दृष्टियों से व्यापक और तलस्पर्शिनी होनी चाहिए।

निर्दिष्ट ग्रन्थ की भाषा **महाराष्ट्री प्राकृत** है या **अर्द्धमागधी** है या अन्य—इसका निर्णय, आप मूल ग्रंथ के स्वरूप का विश्लेषण स्वयं करके, अच्छी तरह छानबीन के बाद करें। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, परसर्ग, अव्यय और क्रियापदों का अध्ययन करके निश्चित करें कि उस ग्रन्थ में भाषिक रूप, अर्थात् व्याकरणिक रूप किस भाषा से अधिक मिलते हैं? क्रिया-पदों तथा संज्ञा-पदों में प्रमुखतः देखिए कि किस भाषा की ओर उनका झुकाव अधिक है? यदि **पिशल** के **प्राकृत-व्याकरण** (इसका अनुवाद आपकी परिषद् से प्रकाशित है; अनुवादक **डा० हेमचन्द्र जोशी** हैं) का अध्ययन आप गहराई से करेंगे और अपने ग्रन्थ के संज्ञा-पदों और क्रिया पदों का मिलान करेंगे, तो तथ्य और सत्य का पता लगेगा—ऐसा मेरा विश्वास है।

आलोचना का आधार आपने भारतीय काव्यशास्त्र माना है; या पाश्चात्त्य काव्यशास्त्र; अथवा दोनों ही? यदि **उपमान-विधान** के साथ-साथ आप **प्रतीक-विधान** और **बिम्ब-विधान**—सहित भी आलोचना पर प्रकाश डाल सकें, तो नूतन तथा मौलिक प्रयास माना जाएगा। अभी तक हिन्दी में जितनी थीसिस प्रतीकों पर लिखी गयी हैं, उनमें से किसी एक में भी **उपमान** और **प्रतीक** को ऐसे ढँग से नहीं समझाया गया कि पाठकों को उनकी आत्मा के स्पष्ट दर्शन हो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकें। आप जैसे सुधी, परिपक्व एवं सुयोग्य शोध-पण्डित से मैं ऐसी आशा अवश्य रखता हूँ कि आलोचना को नयी दिशा मिले !

उपमान और **प्रतीक** के सम्बन्ध में थोड़े-से वाक्यों में ही मैं अपनी बात आपसे यहाँ कहता हूँ। कवि अपने कथ्य को स्पष्ट करने के लिए जिन साम्यों का सहारा लेता है, वे ये हैं—(१) **वर्ण-साम्य** (२) **आकृति-साम्य** (३) **गुण-साम्य** (४) **क्रिया-साम्य** (५) **प्रभाव-साम्य**। **उपमान** का सम्बन्ध **वर्ण-साम्य**, **आकृति-साम्य** और **गुण-साम्य** से है; लेकिन **प्रतीक क्रिया-साम्य** और **प्रभाव-साम्य** से सम्बन्ध रखता है।

एक वैदिक मंत्र में कहा गया है कि एक वृक्ष पर दो सखा-पक्षी बैठे हैं, जिनमें से एक पक्षी उस वृक्ष के फल खाता है, दूसरा नहीं खाता। इस कथन में दोनों पक्षी **प्रतीक** हैं। फल न खानेवाला पक्षी **प्रतीक** है; परमात्मा **प्रतीयमान** है। उसी तरह फल खानेवाला पक्षी **प्रतीक** है, और जीवात्मा **प्रतीयमान** है। एक ब्रज-लोक-गीत है—

सरकै नाहिं बटुआ डोरीं बिना।
सोने को लोटा गंगाजलु पानी।
पीवै नाहिं रसिया गोरी बिना॥

इस गीत में डोरी **प्रतीक** है, गोरी **प्रतीयमान** है।

हिन्दी-शोधकार्य आज-कल बहुत हल्का बनता जा रहा है। श्री सूरिदेव का सूरत्व निर्दिष्ट शोध-कृति से **स्पष्टरूपेण** व्यक्त होना चाहिए। प्रकाशित होने पर विद्वान् सच्चे हृदय से अनुभव करें और मुक्त कण्ठ से कहें कि प्राकृत-ग्रन्थ पर बिहार में एक चमकता हुआ कार्य हुआ। **श्री श्रीरंजनो विजयतेतराम्**.......... **मंगलायतनं हरिः**....... **मंगलायतनं महावीरः।**

परम हर्ष है, आप स्वस्थ और सानन्द हैं। सस्नेह,

प्रो० श्रीरंजन सूरिदेव, एम० ए० आपका
संपादक, परिषद्-पत्रिका, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना–४, (बिहार)

डा० (श्रीमती) शीला शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)

प्रिय बहिन शीला जी, दिनांक १०–१२–१९७७ ई०

सानन्द रहो।

आपने अपने पत्र में लिखा है—**भारतीय साहित्य में काव्यालोचना का बीज कहाँ मिलता है ?** मेरा तात्पर्य संस्कृत-साहित्य या इतर भारतीय भाषाओं के साहित्य से है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिकी भाषा के उपरान्त भारतीय भाषाओं के साहित्य में सबसे पहला काव्य-ग्रंथ **वाल्मीकीय रामायण** है। इसके रचयिता वाल्मीकि मुनि माने जाते हैं। तमसा नदी के किनारे एक निषाद के तीर से निर्दोष एवं निरपराध क्रौंच का वध देखकर मुनि के मुख से शाप-रूप में यह श्लोक निकल पड़ा—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

—(वाल्मी०, बाल०, सर्ग २/श्लोक १५)

वाल्मीकि के शिष्य भरद्वाज हैं। अपने शिष्य भरद्वाज से वाल्मीकि मुनि अपने उक्त श्लोक की आलोचना करते हुए कहते हैं—

पादबद्धोऽक्षरसमस्तंत्रीलयसमन्वितः।
शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा॥

—(वाल्मी०, बाल०, सर्ग २/श्लोक १८)

इस उपर्युक्त श्लोक को काव्य की **समालोचना** ही मानना चाहिए। भारतीय साहित्य में काव्यालोचना का प्रथम बीज मेरी राय में यही है। वाल्मीकीय रामायण की रचना का काल ईसा से पहले का माना जाता है, जो बुद्ध के जन्म से पूर्व का है। बुद्ध जी का जन्म ईसा से ५५७ वर्ष पहले हुआ था।

एक बात आपको **समालोचना** शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में भी यहाँ याद रखनी चाहिए कि **समालोचना** शब्द में **लोच्** धातु है, जिसे पाणिनि ने **लोचृ** रूप में लिखा है। बाबू श्यामसुन्दरदास जी ने अपनी एक पुस्तक में **आलोचना** में **लुच्** धातु लिख दी थी; उससे कुछ लोगों में भ्रान्ति फैल गयी। मेरी भ्रान्ति तो संस्कृत-वैयाकरण अलीगढ़-निवासी पं० रामस्वरूप जी शास्त्री ने दूर की थी।

प्रसन्नता है कि आप सपरिवार सानंद हैं। सस्नेह,

डा० (श्रीमती) शीला शर्मा, पी–एच० डी० शुभैषी
हिन्दी विभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
रघुनाथ गर्ल्स कालेज, मेरठ।

डा० महेन्द्रसागर प्रचंडिया के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' **शिविर, मथुरा**
डी० लिट्० दिनांक २-१-१९७८ ई०

प्रिय भाई प्रचंडिया जी,

आपका पत्र मिला; धन्यवाद। आपने प्रश्न उठाया है कि आज कल बहुत

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से साहित्यकार ऐसे साहित्य की सर्जना कर रहे हैं, जिसमें उस समाज का वास्तविक चित्रण नहीं है। फिर कैसे उसके लिए कहा जा सकता है कि **साहित्य समाज का दर्पण है** ?

साहित्य समाज का ही दर्पण नहीं है, प्रकृति का भी दर्पण है। जो कविताएँ संस्कृत में प्राकृतिक दृश्यों को आलम्बन रूप में मानकर लिखी गयी हैं, वे भी साहित्य हैं। इसलिए केवल यह कहना कि साहित्य समाज का ही दर्पण है, सोलह आने ठीक नहीं। हाँ, साहित्य समाज का भी दर्पण है। व्यक्तिगत मानव-मन का भी, और प्रकृति का भी।

आपका प्रमुख प्रश्न यह है जब किसी साहित्य में समाज का वास्तविक चित्र न होकर उसका उल्टा (विलोम) चित्र चित्रित है, तब भी उसे दर्पण कह सकते हैं क्या ? हाँ, कह सकते हैं, क्योंकि दर्पण में **प्रतिबिम्ब बिम्ब** का उल्टा आता है। बिम्ब का दाहिना हाथ दर्पण के प्रतिबिम्ब में बायाँ होता है।

रीतिकाल का साहित्य विलास, शृंगार और भोग का साहित्य है। जहाँगीर, शाहजहाँ आदि बादशाहों का जीवन पूर्णतः भोग-विलास से परिपूर्ण था। सुरा-सुन्दरियों के बीच रँगरेलियों का जीवन बिताना ही तत्कालीन बादशाहों, राजाओं और नवाबों का लक्ष्य था। **जहाँगीर** एक दिन में बीस-बीस प्याले शराब पी जाता था। **मनूची** की पुस्तक Storia do Moger, Vol II में लिखा है कि औरंगज़ेब की हिन्दू-पत्नी **बेगम उदयपुरी** शराब पीकर होश-हवास खो बैठती थी। उस काल के कवियों के काव्यरूपी दर्पण में विलास-बिम्ब प्रतिबिम्ब बनकर आया था; 'भूषण' की वाणी उस विलास को उलटनेवाली ही मानी जाएगी। समाज को कैसा बनना चाहिए, कवि की कविता इसे भी बताती है।

अब यदि किसी साहित्य में किसी प्रकार का व्यक्तिपरक चित्रण या सामाजिक चित्रण या प्राकृतिक चित्रण प्रदर्शित ही नहीं है, तो उसे साहित्य नहीं माना जा सकता। मनोरमण, मनोरंजन आदि तत्त्व यदि किसी साहित्य में मिलते हैं, तो हम उसमें सामाजिक पुट मान सकते हैं, क्योंकि सामाजिक व्यक्ति उससे आनन्द तो प्राप्त करता ही है। सामाजिक अर्थात् मानक सहृदय सामाजिक।

कल्पनामूलक पात्रों का भी चित्रण यदि समाज को कोई सत् प्रेरणा प्रदान करता है, तो उसे भी समाज का दर्पण माना जाएगा।

यदि आपके देखने में ऐसी कोई पुस्तक आयी है कि उसमें सब कुछ बेतुका, कृत्रिम और ऊल-जलूल है, तो हमें उसे साहित्य-हीन कृति मानने से कौन रोक सकता है ?

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिम्ब दर्पण में प्रतिबिम्बित होकर दिव्य शोभा एवं आभा प्राप्त करता है। व्यक्ति या समाज साहित्य में आकर दिव्य आदर्श रूप ग्रहण करते हैं। इसलिए भी साहित्य को समाज का दर्पण (आदर्श) बताया गया।

महाप्राण कविवर निराला ने अपनी पुस्तक **प्रबन्ध-प्रतिमा** में लिखा है—"साहित्य वह है, जो साथ है और जो संसार की सबसे बड़ी चीज़ है। साहित्य लोक से, सीमा से, प्रान्त से, देश से तथा विश्व से ऊँचा उठा हुआ है। इसीलिए वह लोकोत्तरानन्द दे सकता है। **लोकोत्तर** का अर्थ है—'लोक जो कुछ दे सकता है, उससे और दूर तक पहुँचा हुआ।' ऐसा साहित्य मनुष्यमात्र का साहित्य है भावों से। केवल भाषा का एक देशगत आवरण उस पर रहता है।"

काव्य-साहित्य में तो सब कुछ आदर्श ही होता है, इस जगत् का यथार्थ नहीं। काव्यस्रष्टा कवि के मनोराज्य में वस्तु या व्यक्ति परम उच्च, परम उदात्त एवं दिव्यतम बन जाता है। तुलसी के मानस-लोक में लक्ष्मण राम के सहोदर भाई थे, किन्तु इस भौतिक जगत् में वह विमाता-पुत्र थे। तुलसी राम के शब्दों में कहते हैं—**निज जननी के एक कुमारा**। (रामचरितमानस, लंका० ६१/१४) कवि के मानस-लोक की संपूर्ण सृष्टि आदर्शमय होती है। **आदर्श** का अर्थ 'आईना' है। दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि काव्य-साहित्य समाज का आदर्श है अर्थात् आईना है, दर्पण है।

वास्तव में कवि की महती समाधि के दिव्यतम क्षणों में जो हृदय के विमलतम उच्छ्वास उद्बुद्ध होते हैं, उन्हें पूरी तरह से कविता के शब्द अभिव्यक्त नहीं कर पाते। उस भाषा के शब्दों से कवि के बिम्बात्मक भावोच्छ्वासों का थोड़ा-सा अनुमान ही लगाया जा सकता है। शब्दमयी कविता की सृष्टि तो कवि की शिथिल समाधि में ही हो सकती है, अशिथिल समाधि में नहीं।

महाकवि कालिदास ने **मालविकाग्निमित्र** नाटक में इस उक्त तथ्य को राजा **अग्निमित्र** की वाणी में **मालविका** को लक्ष्य करके व्यक्त कर दिया है—

संप्रति शिथिलसमाधिं मन्ये येनेयमालिखिता।

—(मालविकाग्निमित्र, अंक २/श्लोक २)

साहित्य को जीवन-हेतु उदात्त, मनोरंजक या मंगलमय होना उसकी पहली शर्त है। जीवन के मंगलसूत्रों की ओर से आँखें बन्द करके जो गाली-गलौज बकता है, अथवा नंगा नाचता है, मेरी दृष्टि में वह साहित्य नहीं। वह लेखक साहित्य और समाज का दुश्मन है। साहित्य में कहीं न कहीं **हित** का अस्तित्व अवश्य होना चाहिए। तभी वह साहित्य है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर्ष है आप सानन्द हैं। सस्नेह,

डा० महेन्द्रसागर प्रचंडिया, शुभैषी
डी० लिट्० अम्बाप्रसाद 'सुमन'
जैन-शोध-अकादमी, आगरा रोड, अलीगढ़ (उ० प्र०)

श्री सत्येन्द्र शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक २. २. १९७८ ई०

प्रियवर शर्मा जी,

सप्रेम नमस्कार।

आपने **अप्रस्तुत विधान के अंतर्गत रूपकातिशयोक्ति, प्रतीक और बिम्ब का अंतर जानने की इच्छा पत्र में व्यक्त की है।**

पहले आप **बिम्ब** को समझ लें। काव्य में शब्दों के माध्यम से पाठक के मानस-पटल पर जो वस्तु-चित्र, दृश्य-चित्र या भाव-चित्र बनता है, वह **बिम्ब** कहलाता है। काव्यशास्त्र में उसे **बिम्ब** (Image) नाम दे दिया गया है, वास्तविक बात यह है कि वह मूल वस्तु का मानसिक प्रतिबिम्ब ही होता है। एक पाठक ने **रामचरितमानस** में इस अर्द्धाली को पढ़ा—

हंसगवनि तुम्ह नहिं बन जोगू।
सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू॥ (अयो०६३/५)

रामचन्द्र जी ने सीता जी से उक्त वाक्य कहा है। पाठक के मानस-पटल पर दो चित्र बनेंगे—(१) सीता जी की चाल का चित्र (२) हंस की चाल का चित्र। ये दोनों बिम्ब हैं। सीता जी की **चाल लक्षित-बिम्ब** है और हंस की चाल **प्रतिलक्षित बिम्ब** है। काव्य बिम्बों द्वारा ही प्रभावशाली बनता है।

प्रत्येक सिद्ध कवि अपने संस्कारों तथा रुचि के आधार पर काव्य में बिम्ब-सृष्टि किया करता है। **कालिदास, तुलसीदास** और **जयशंकर प्रसाद** प्रकाशमय चाक्षुष बिम्बों के कवि हैं। कालिदास और तुलसीदास **दीपशिखा-कवि** हैं और प्रसाद **दामिनी-द्युत** के कवि हैं। रघुवंश, रामचरितमानस और कामायनी में उन बिम्बों को देखा जा सकता है। **कालिदास** इन्दुमती की रूप-शोभा को स्वयंवर के समय इन शब्दों में बतलाते हैं—

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा (रघु०६/६७)

तुलसीदास सीताजी के रूप, शोभा और कान्ति का बिम्ब इन **शब्दों** में प्रस्तुत करते हैं—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई।
छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई ।। (रामचरित० बाल०२३०/७)

प्रसाद श्रद्धा की रूप-छवि को बिजली के फूल के माध्यम से व्यक्त करते हैं—

नील परिधान बीच सुकुमार,
खिल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघ-बन बीच गुलाबी रंग ।।

—(कामायनी, सर्ग श्रद्धा, छंद/८)

निराला ने संध्या सुन्दरी की श्यामता का **चल बिम्ब** इन शब्दों में चित्रित किया है—

सखी नीरवता के कंधे पर डाले बाँह, छाँह-सी अंबर-पथ से चली।

अब रही **रूपकातिशयोक्ति** और **प्रतीक** की बात। **अन्योक्ति, समासोक्ति** या **रूपकातिशयोक्ति** में प्रस्तुत के स्थान पर केवल अप्रस्तुत का ही विधान किया जाता है। **रूपकातिशयोक्ति** में प्रतिष्ठित अप्रस्तुत के माध्यम से प्रस्तुत को संकेतित कर दिया जाता है। कमलों के मकरन्द के माध्यम से आँसू को अभिव्यक्त करना **रूपकातिशयोक्ति** है। 'भूषण' ने लिखा है— **झरें अरबिन्दन ते बुंद मकरन्द के।** अर्थ यह है कि आँखों से आँसू के बूँदें गिर रही हैं। कमलों से मकरंद की बूँदें लिखना प्रतिष्ठित अप्रस्तुत को बताना है। साहित्य में आँख के लिए **कमल** उपमान गृहीत भी है।

एक बार अलीगढ़ विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग में भी ऐसा प्रसंग चला था और रूपकातिशयोक्ति के उदाहरण में मैंने उक्त चरण उद्‌धृत किया था। मेरे एक साथी (विभागीय मित्र) कहने लगे कि हम मुख से पसीने की बूँदें गिरती हुई भी मान सकते हैं। मैंने निवेदन किया कि " 'भूषण' ने **अरबिन्दन तें** लिखा है अर्थात् **अरबिन्दन** बहुवचन में है। **मुख** एक ही होता है। इसलिए आपकी सूझ-बूझ युक्तिसंगत नहीं।"

रूप-गुण आदि की दृष्टि से **उपमान** तो उपमेयों के लिए साहित्य में निश्चित से होते हैं। **प्रतीक** उतने निश्चित नहीं होते; और रूप-गुण-साम्य से पृथक् **प्रभाव साम्य** को लेकर भी **प्रतीक** चलते हैं। प्रतीकों का समझना इसलिए मुश्किल होता है। एक प्रतीक प्रतीयमान-पुंज को भी सूचित करता है।

प्रतीक में प्रस्तुत-अप्रस्तुत का आशय और सम्बन्ध भी बदल जाता है। प्रतीक-विधान में प्रस्तुत के स्थान पर अप्रस्तुत का विधान तो रहता है, किन्तु

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत का अर्थ उसमें व्यक्त न होकर व्यंजित होता है। व्यंजना को समझने में देर भी लगती है।

एक बार मेरे एक मित्र ने एक कविता सुनायी, जिसकी प्रथम पंक्ति यह थी—

आज युगों के बाद हिमालय हिलकी भरकर रोया।

इसमें **हिमालय** प्रतीक है और इसका प्रतीयमान **महात्मा गांधी** है। कुछ दिन पूर्व कस्तूरबा गांधी का स्वर्गवास हुआ था। उसी से सम्बद्ध उक्त पंक्ति थी। वास्तव में प्रभाव-साम्य को लेकर चलनेवाला प्रतीक-विधान अपने प्रतीयमान को व्यंजित करता है। अतः जल्दी पकड़ में भी नहीं आता। मेरी समझ में भी उक्त कविता तब आयी थी, जब कवि ने उसकी पृष्ठभूमि बता दी थी।

सारांश यह है कि रूपकाशियोक्ति का उपमान **कमल** जब केवल नेत्र को सूचित करे, तब वह 'कमल' **उपमान** होगा, और जब **कमल** से नेत्रानंद, सुन्दरता, शीतलता सुगंध, निर्लेपता आदि की समन्वयात्मक भाव-समष्टि व्यंजित हो, तब **कमल** वहाँ **प्रतीक** होगा। अर्थात् अनेक प्रतीयमानों के पुंज को सूचित करनेवाला ही **प्रतीक** होता है। **प्रतीक** में क्रिया-साम्य और प्रभाव-साम्य होता है। **उपमान** में वर्ण, आकृति और गुण का साम्य होता है।

प्रसन्नता है कि आप सानन्द हैं।

श्री सत्येन्द्र शर्मा, शुभैषी
लोक संपर्क निदेशालय, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
एलर्ज़ली, शिमला (हिमाचल प्रदेश), शिमला–१७१००२

श्री लक्ष्मणप्रसाद शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक ३. ३. १९७८ ई०

प्रियवर,

आशीर्वाद।

तुम्हारे पत्र को पढ़कर प्रसन्नता हुई कि तुम आज-कल **रामचरितमानस** को बड़े मनोयोग से पढ़ रहे हो। तुमने मुख्य रूप से दो बातें पूछी हैं—(१) **तुलसीदास के मतानुसार कविता का स्वरूप**। (२) **तुलसी के मत से सौन्दर्य का स्वरूप।**

रामचरितमानस के आधार पर कहा जा सकता है कि **कविता** एक मोती के समान है। हृदय के समुद्र में बुद्धि की सीप रहती है। जब सरस्वती रूपी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाति (नक्षत्र) के समय सुन्दर विचार की बूँद उस सीप में पड़ जाती है, तब वह मोती बन जाती है। सरस्वती को कवि की प्रतिभा समझना चाहिए। सारांश यह कि कवि की **प्रतिभा** के कारण एक सुन्दर विचार कवि के भाव-सागर की लहरों के योग से कविता का रूप ग्रहण कर लेता है। बालकाण्ड की निम्नांकित अर्धालियों में इसी बात को इन शब्दों में कहा गया है—

हृदय सिंधु मति सीप समाना। स्वाती सारद कहहिं सुजाना॥
जौं बरसइ बरु बारि बिचारू। होहिं कबित मुक्तामनि चारू॥
—(बाल०, दो० ११/८,९)

तुलसी यह भी मानते हैं कि आनन्द के मनोरम मानसरोवर से कविता रूपी सरिता प्रवाहित होती है—

भयउ हृदयँ आनंद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू॥
चली सुभग कविता सरिता सो। राम बिमल जस जल भरिता सो॥
—(बाल०, दो०३९/१०,११)

तुलसी कविता का शरीर **भाषा** को, प्राण **अर्थ** को और आत्मा **भाव** को मानते हैं। कमल-पुष्प की गंध, कमल-पुष्प का पराग और कमल-पुष्प का मकरन्द—ये ही कमल-पुष्प के तीन तत्त्व हैं। इन्हें ही क्रमशः **भाषा, अर्थ** और **भाव** समझिए और संपूर्ण कमलपुष्प को कविता। तुलसीदास लिखते हैं—

अरथ अनूप सुभाव सुभासा।
सोइ पराग मकरंद सुबासा॥ (बाल० ३७/६)

सीता जी के सौन्दर्य के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए तुलसीदास ने स्पष्ट कर दिया है कि **छवि, रूप, शोभा** और **शृंगार** का समष्टिगत रूप ही **सौन्दर्य** है।

जौं छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥
—(बाल० २४७/७,८)

प्रायः सभी विद्वानों ने **सौन्दर्य** को एक इकाई के रूप में एक तत्त्व माना है; किन्तु तुलसीदास सौन्दर्य को एक मिश्रण मानते हैं, जिसमें चार तत्त्व सम्मिलित हैं—**छवि, रूप, शोभा** और **शृंगार। छवि + रूप + शोभा + शृंगार = सौन्दर्य।**

सौन्दर्य के सम्बन्ध में ऐसी दिव्य अवधारणा मुझे अन्यत्र नहीं मिली। तुलसी ने सौन्दर्य का विश्लेषण सूक्ष्म और गहरा किया है।

इतना ही नहीं, तुलसी काव्य-भाषा के अन्तर्गत **अर्थ** और **भाव** की स्थितियाँ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानते हैं। **भाव** यदि काव्य की आत्मा है, तो **अर्थ** प्राण है। तुलसी **अर्थ** को पराग, **भाव** को मकरंद और **भाषा** को सुगंध की उपमा देते हैं—

अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुबासा॥ (बाल० ३७/६)

प्रायः समालोचक **सौन्दर्य** की स्थिति द्रष्टा और वस्तु के संयोग में मानते हैं; किन्तु तुलसीदास के कथन से लगता है कि **सौन्दर्य** वस्तुगत है। सौन्दर्य, द्रष्टा की आँखों को बरबस खींच लिया करता है। मन को खींचना ही सौन्दर्य का प्रमुख लक्षण है; किन्तु वे आँखें भी रिझवार होती हैं।

शिशुपालवध के रचयिता माघ कवि ने तो रैवतक पर्वत की शोभा के प्रसंग में **सौन्दर्य** (रमणीयता) को प्रतिक्षण नवनूतन बतलाया है—

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः (शिशु० ४/१७)

चाहे माघ कवि हों, चाहे तुलसीदास हों, जिस-जिसने **सौन्दर्य** का लक्षण लिखा है, या व्याख्या की है; वे सभी **सौन्दर्य** पर मुग्ध होनेवाली आँखें रखते थे। काव्य के पात्र स्वयं अपना कोई अस्तित्व यथार्थ में नहीं रखते। वे तो कवि की लेखनी से सुन्दर रूप में चित्रित किये जाते हैं। तात्पर्य यह कि कविता के व्यक्ति कवि की मानसी सृष्टि होते हैं।

सौन्दर्य कहाँ है? किस में स्थित है? अर्थात् विषयी में है, या विषय में? इसके उत्तर में हम तो बिहारी के शब्दों में यही कह सकते हैं कि—

रूप रिझावनहारु वह, ए नैना रिझवार।

—(बिहारी रत्नाकर, दो० ६८१)

आशा है परमेश की दया से तुम सपरिवार सानन्द होगे। सस्नेह,

श्री लक्ष्मणप्रसाद शर्मा, शुभैषी

प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'

धर्म समाज डिग्री कालेज, अलीगढ़

प्रो० गोवर्धननाथ शुक्ल के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़

बन्धुवर, दिनांक ४-४-७८

सप्रेम नमस्कार!

आपकी कविता (ब्रजभाषा में) और लेख मिला। तदर्थ हार्दिक धन्यवाद! कविता में तो भाव ही प्रधान होता है; भाषा और छंद तो गौण ही हैं। सहज-सरस भाव मिले; परम आनंद मिला।

मध्य युगीन मुस्लिम संतों का मराठी में योगदान शीर्षक लेख नूतन है। हिन्दीवालों को पहले-पहल नयी जानकारी मिलेगी इससे। मैं तो पढ़कर दंग रह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। महाराष्ट्र में भाषा और संस्कृति की भूमि पर हिन्दू-मुसलमान कितने अभिन्न बन गये थे ! लगता है यह अभिन्नता उत्तर से दक्षिण की ओर बढ़ती चली गयी है। दक्षिण में मद्रास-वास के समय मैंने भी ऐसा अनुभव किया था। साहित्य के स्तर पर आपके लेख से स्पष्ट भी हो गया ; तबियत बाग़-बाग़ हो गयी। धन्यवाद और वर्धापन ! ऐसे ही बढ़ते चलो, प्रिय भाई शुक्ल जी !

मैंने लेख में **रिबायतों** के स्थान पर **रिवायतों** कर दिया है, ठीक है न ? **आहो** क्रिया समझ में नहीं आयी—**आपण ही नवीन समओवी शंकराचार्य चे भाष्य व श्रीधर स्वामी चे व्याख्यान पाहून लिहित आहो।** —(महा० सार०, पृ० ८३०) महा० सार० ग्रंथ का पूरा नाम क्या है ?

मैं तो अब तक ऐसा समझता था कि **आहे** क्रिया उत्तम पुरुष एकवचन की और **आहो** उत्तम पुरुष बहुवचन की सूचक है। जैसे—

(१) मैं हूँ=मी आहे।
(२) हम हैं=आम्हीं **आहो**।
(३) तू है=तूं **आहेस**
(४) तुम हो=तुम्हीं **आहां**।
(५) वह है=तो **आहे**।
(६) वे हैं=ते **आहेत**।

आपने **आलमखान** के मराठी पदों में अन्तिम पद के उत्तरांश में लिखा है—

"एक मना गुरु चरणी लागवेगी"—यह समझ में नहीं आया। मैं मराठी बहुत ही कम जानता हूँ। ग्रंथ में ग़लत पाठ न छप जाए, इसलिए पूछ रहा हूँ। कष्ट के लिए क्षमा !

मराठी में कर्मवाच्य तो मुझे हिन्दी का-सा ही लगा है। हिन्दी में कर्म-वाच्य परक वाक्य में क्रिया लिंग-वचन में कर्म की अनुगामिनी होती है। जैसे—**मैंने रोटी खायी**—इसमें **रोटी** कर्म है, क्रिया **खायी** इसी के अनुसार है। इसी तरह मराठी में **मी भाकरी खाल्ली**।

मराठी में क्या **हिंडौला** बोलते हैं ? हिन्दी में तो **हिंडोला** बोलते हैं। लेख में **हिंडौला** लिखा गया है। कृपया बताइए, वास्तव में मराठी-उच्चारण की दृष्टि से क्या लिखा जाना चाहिए ?

मेरे पास गो० प० नेने द्वारा संपादित **मराठी-हिन्दी कोश** है। इसमें चक्कर लगाने के अर्थ में **हिंडणें** क्रिया है। इसी कोश में **हिंडोला, झूला, पालना** अर्थ में मराठी शब्द **हिंदोला भी** लिखा गया है। मराठी में तीन लिंग होते हैं,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत की तरह। मेरी पकड़ में यह बात पूरी तरह नहीं आयी है कि मराठी में लिंग-निर्धारण का सिद्धान्त क्या है? **वृक्ष** शब्द मराठी में पुलिंग है; लेकिन **दुकान** नपुंसक लिंग है। **कुत्रा** पुलिंग, **कुत्री** स्त्रीलिंग और **कुत्रें** नपुंसक लिंग है। इसी तरह मराठी **घोड़ा** शब्द को पुलिंग, **घोड़ी** को स्त्रीलिंग और **घोड़ें** को नपुंसक लिंग मानती है। मराठी अपनी लिंग-अवधारणा में संस्कृत की अनुगामिनी लगती है।

संस्कृत में **किनारे** के अर्थ में **तट** शब्द तीनों लिंगों में मिलता है—[१] **तटः** [पु०] [२] **तटी** [स्त्री०] [३] **तटं** [न०]। मराठी में ठीक उसी तरह **कुत्रा** [पु०], **कुत्री** [स्त्री०] और **कुत्रें** [न०]। **आत्मा** शब्द को संस्कृत भाषा पुलिंग और हिन्दी भाषा स्त्रीलिंग मानती है। **कलत्र** शब्द का अर्थ स्त्री है, लेकिन लिंग नपुंसक है संस्कृत में।

लगता है प्रायः सभी भाषाओं में प्राकृतिक लिंग और व्याकरणिक लिंग पृथक्-पृथक् हैं। व्याकरण **शब्द** में लिंग मानता है, **अर्थ** में नहीं।

बंधुवर! शेष सब-बढ़िया; प्रसन्नता सूचक। **वल्लभ-शोध-संस्थान** कुछ कर गुज़रेगा अलीगढ़ में, ऐसा लग रहा है।

मैं गया था विभाग में। आप चले आये, प्रिय भाई विश्वनाथ शुक्ल से पता लगा। खैर, क्या कहूँ? बस इतना ही—

क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः । (मेघदूत, उत्तरमेघ, ४५)

'स्व० पं० रामस्वरूप शास्त्री-स्मृति-ग्रंथ' के लिए मेरा लेख आपको मिल गया होगा। सस्नेह,

प्रो० गोवर्द्धननाथ शुक्ल — आपका

शुक्ल-सदन, खाईढोरा, अलीगढ़ — अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री रामवीर सिंह के नाम

शिविर, नई दिल्ली

प्रियवर रामवीर, — दिनांक ५. ४. १९७८ ई०

आशीर्वाद!

तुम्हारे मुख्य प्रश्न दो हैं—(१) **अनुसंधान में तथ्य और सत्य से क्या तात्पर्य है? (२) शोध प्रबन्ध के प्रणयन में कौन सी प्रणाली अपनानी चाहिए?**

अनुसंधान के प्रमुख क्षेत्र तीन ही हैं—(१) **पाठानुसंधान** (२) **साहित्यानुसंधान** (३) **भाषानुसंधान**। अनुसंधानकर्ता को अपने अनुसंधान के मार्ग में **तथ्यों** के आधार पर **सत्य** पर पहुँचना होता है। **तथ्य** अनेक हो सकते हैं; किन्तु **सत्य** एक ही होता है। न्यायाधीश अनेक तथ्यों के सहारे अपने विवेक से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्लेषण-विवेचन करने के बाद एक निर्णय पर पहुँचता है, वह निर्णय ही न्यायाधीश का सत्य है। न्यायाधीश सत्य को जानना चाहता है—यह बात अलग है कि उसका वह सत्य भविष्य में ऊँची अदालत में सत्य सिद्ध न हो। सत्योन्मुखी न्यायाधीश की भाँति ही अनुसंधित्सु का सारस्वत धर्म **सत्य** तक पहुँचने का होता है।

तुलसीदासजी के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में **अनेक तथ्य** मिलते हैं। **सोरों, राजापुर, गोंडा** आदि में से कोई एक स्थान ही तुलसी का जन्म-स्थान हो सकता है। इनके अतिरिक्त कोई अन्य स्थान भी हो सकता है। उस ठीक जन्म-स्थान का पता लगाना ही **सत्य** का पता लगाना है। इस **सत्य** के लिए शोधार्थी को प्राप्त **तथ्यों** का विवेचन भी करना होता है। यह प्रक्रिया ही तथ्य से सत्य पर पहुँचने की प्रक्रिया है।

तुम्हारा दूसरा प्रश्न प्रणाली से सम्बद्ध है। अरस्तू ने **निगमन-प्रणाली** और बेकन ने **आगमन-प्रणाली** को उचित माना है। **निगमन-प्रणाली** (Deductive Method) में सामान्य से विशेष पर पहुँचना होता है; लेकिन **आगमन-प्रणाली** (Inductive Method) में विशेष से सामान्य पर पहुँचना होता है। जिस पर पहुँचना होता है, वही **सत्य** की खोज है। शोधार्थी को अपने शोध में दोनों प्रणालियाँ आवश्यकतानुसार अपनानी चाहिए। डारविन ने मिश्रित प्रणाली का समर्थन किया है अर्थात् निगमनागमन-प्रणाली।

(क) **निगमन-प्रणाली**—

(१) मनुष्य मरणशील है। [सामान्य]
(२) सोहनलाल मनुष्य है।
(३) सोहनलाल मरणशील है। [विशेष]

(ख) **आगमन-प्रणाली**—

(१) सोहनलाल मरणशील है। [विशेष]
(२) सोहनलाल मनुष्य है।
(३) मनुष्य मरणशील है [सामान्य]

शोधार्थी के मौलिक प्रबन्ध का अर्थ वही है, जो **मौलिक** शब्द का वाच्यार्थ है; अर्थात् उसके प्रत्येक कथन का, या निर्णय का मूल से सम्बन्ध अवश्य होता है। **मूल + ठञ् = मौलिक = मूलोद्भूत**।

अनुसंधित्सु ईश्वर की भाँति नितान्त नूतन सृष्टि नहीं करता—अज्ञात को ज्ञात करता है और प्रस्तुत को नयी व्यवस्था देकर नये ढंग से प्रतिष्ठापित करता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं समझता हूँ कि इतने संकेत से तुम्हें बात स्पष्ट हो जानी चाहिए। सस्नेह,

श्री रामवीर सिंह, एम० ए०, एम०, फिल्० (छात्र) शुभैषी
हिन्दी-विभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय, अलीगढ़–२०२००१

श्री श्रीचन्द शर्मा के नाम

शिविर, नई दिल्ली
दिनांक ६. ४. १९७८ ई०

प्रियवर श्रीचन्द,

आशीर्वाद !

तुम्हारा प्रश्न है कि **स्वच्छन्दतावाद और रहस्यवाद में क्या अन्तर है ?**

तुम्हारे प्रश्न से ऐसा लगता है कि तुम दोनों को बिलकुल भिन्न दो वाद माने हुए हो। ऐसा नहीं है। मूल चेतना और दृष्टिकोण को लेकर यदि कहूँ, तो मैं कह सकता हूँ कि **रहस्यवाद स्वच्छन्दतावाद** के अन्तर्गत ही है। **स्वच्छन्दतावाद** के आध्यात्मिक रूप को 'रहस्यवाद' कह सकते हैं। **रहस्यवाद** एक प्रकार से जीवात्मा का परमात्मा के प्रति प्रणय-निवेदन है। कथन-शैली में सूक्ष्मता के प्रति झुकाव है। इसीलिए सूक्ष्म उपमानों और प्रतीकों के कारण रहस्यवादी कविताएँ कठिनता से बोधगम्य हो पाती हैं।

स्वच्छन्दतावाद नाम उस काव्य के लिए दिया गया, जिसमें नीति या संयम के स्थान पर मुक्त अभिव्यक्ति और स्वच्छन्द स्वभाव को प्रधानता दी गयी। स्वच्छन्दतावाद का काव्य ऐसे सौन्दर्य को लक्ष्य बनाता है, जो अद्भुत भी हो, और रहस्यमय भी हो। **स्वच्छन्दतावाद** में चिन्तन प्रधान नहीं है, अपितु कल्पना और भावना प्रधान है। 'स्वच्छन्तावाद' यह मानता है कि मन की वासना या भावना जब मुक्त विहार करेगी, तब कला भी प्राणवन्त बनेगी; अन्यथा कला मर जाएगी। इसलिए स्वच्छन्दतावाद उन्मुक्त उल्लास का पक्षधर है। जब उसका उल्लास लौकिक न होकर, पारलौकिक बन जाता है, तब उसे ही हम **रहस्यवाद** कह देते हैं। कल्पना और भावना उसमें सब वैसी ही रहती हैं।

स्वच्छन्तावाद की एक विशिष्ट भाषा-शैली जो सूक्ष्म उपमानों या प्रतीकों को लेकर चलती है और प्रकृति को आलम्बन रूप में मानवीकरण प्रदान करती है, **छायावाद** कहलाती है। छाया-रूपा-भाषा-शैली को दृष्टि-पथ में रखकर छायावाद नाम दिया गया (छाया = अशरीरिता)। उपमानों की सूक्ष्मता या

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशरीरिता ने ही **छायावाद** संज्ञा दिलायी। इससे पहले द्विवेदी-युग में उपमान स्थूल थे। इसीलिए छायावाद को स्थूल से सूक्ष्मका विद्रोह बताया गया।

प्रसन्नता है कि तुम सानन्द हो।

श्री श्रीचन्द शर्मा, एम० ए०, एम०फिल्० (छात्र) शुभैषी
नारायण-निकुंज, विष्णुपुरी, अलीगढ़ अम्बाप्रसाद 'सुमन'

सुकवि श्री त्रिभुवननाथ शर्मा 'मधु' के नाम

हिन्दी-शोध-संस्थान,
हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)—२०२००१
दिनांक १०. ४. १९७८ ई०

आपके खंडकाव्य **रावण का विक्षोभ** की एक प्रति रजिस्ट्री डाक से मिली। धन्यवाद! मैं बड़ी रुचि से इसे आदि से अंत तक पढ़ गया हूँ। बहुत आनन्द प्राप्त हुआ।

आप पर वीणापाणि की सहज अनुकम्पा है। आपकी नैसर्गिक प्रतिभा काव्य-सुरसरी के लिए सहज भगीरथ बन गयी है। सरल एवं प्रांजल हिन्दी में आप सरस भाव व्यक्त करना जानते हैं।

खड़ी बोली में **घनाक्षरी** लिखने में **श्री कौशलेन्द्र** और **ठा० गोपालशरण सिंह** ने पर्याप्त ख्याति प्राप्त की थी। उसी श्रृंखला में **श्री सनेही** जी एवं **श्री हितैषी** जी भी अविस्मरणीय हैं।

घनाक्षरी छन्द को **कबित्त** नाम से भी पुकारा जाता है, जो ३१ वर्णों (अक्षरों) का होता है; १६, १५ वर्णों पर यति होती है। प्राचीन आचार्यों ने **घनाक्षरी, सवैया** और **छप्पय**—तीनों—को ही **कबित्त** नाम दिया है। तुलसी की कृति के शीर्षक 'कवितावली' में **कबित्त** (कवित्त) शब्द घनाक्षरी, सवैया और छप्पय—तीनों—का ही सूचक है।

मेरी निश्चित सम्मति है कि **रावण का विक्षोभ** का रचयिता भी अपनी भाषा-प्रांजलता, प्रवाह, सरसता, प्रभावोत्पादकता एवं ओजस्विता के लिए पाठकों का अभिनंदन प्राप्त करेगा।

एतदर्थ हार्दिक बधाई! अवधी का प्रभाव रचनाकार के अचेतन तथा अवचेतन पर है। अतः दो-एक छंद में लिंग और क्रिया-पद-प्रयोग अपने मार्ग से हट गये हैं। आगामी संस्करण में देख लीजिए।

आशा है आप परमेश की दया से सानंद होंगे। बालक-बालिकाओं को आशीर्वाद!

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माता वीणापाणि आपके ब्राह्म सरोवर को सुरम्य ऊर्मियों से ऊर्मिल बनाती रहें। सस्नेह,

श्री त्रिभुवननाथ शर्मा 'मधु'
बाराबंकी, (उ० प्र०)

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० रामअवतार वार्ष्णेय के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१ (भारत)

प्रियवर रामअवतार वार्ष्णेय, दिनांक १४–४–१९७८ ई०

भगवान् राम आपका मंगल करें !

आपका पत्र मिला। प्रसन्नता हुई। तुलसीकृत **रामचरितमानस** में काल (समय) की दृष्टि से जो शंका आपने उठाई है, वह वास्तव में विचारणीय है।

पहले मैं आपके प्रश्न को लिख रहा हूँ, ताकि उसके प्रकाश में लिखा हुआ उत्तर ठीक तरह से बोधगम्य हो सके।

प्रश्न—बालकाण्ड में **सती-मोह की कथा** तुलसीदास जी ने लिखी है। शंकर की पत्नी (दक्षतनया सती जी) ने देखा कि रामचन्द्र जी सीता जी के वियोग में वन में रोते फिरते हैं। सती जी को शंका हुई कि ऐसे पत्नी-विरही राम परब्रह्म नहीं हो सकते। अत: सीताजी का रूप धारण करके परीक्षा लेने चली गई। इस घटना के बाद शंकर ने **सती** को त्याग दिया। वे अपने पिता दक्ष प्रजापति के यहाँ चली गयीं और योगाग्नि से अपने को उन्होंने समाप्त कर दिया। फिर दूसरे जन्म में **हिमांचल** राजा के यहाँ सती ने जन्म लिया और **पार्वती** (गिरिजा) कहलायीं।

लेकिन बालकाण्ड में तुलसीदास पुष्प-वाटिका प्रसंग के अन्तर्गत सीता जी द्वारा गिरिजा का पूजन भी कराते हैं। विवाहित सीता जी तो दक्षतनया सती के समय में समवयस्का थीं। फिर गिरिजा का पूजन कुमारी रूप में किस प्रकार कर सकती हैं? **मानस** के घटना-प्रसंग में यह काल-दोष क्यों? कृपया स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—प्रिय रामअवतार जी ! तुलसीदास जी के मतानुसार रामावतार अनेक बार हुआ है। चार कल्पों की कथा का तो **मानस** में संकेत भी है।

प्रथम कल्प में **जय-विजय रावण-कुम्भकर्ण** बने, तब राम का अवतार हुआ और नर-लीला की। द्वितीय कल्प में **जलंधर** रावण हुआ और राम ने मारा। तृतीय कल्प में **रुद्रगण** रावण-कुम्भकर्ण बने और राम ने मारे। चतुर्थ कल्प में **भानुप्रताप-अरिमर्दन** रावण-कुम्भकर्ण हुए और राम ने मनु-शतरूपा की लालसा पूरी करने के लिए **कौशल्या** (पूर्व जन्म की शतरूपा) के गर्भ से जन्म लिया; तब रावण-संहार हुआ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तरह राम और सीता जी पहले तीन कल्पों में भी नर-लीला कर चुके हैं। राम **ब्रह्म** हैं, सीता जी **ब्रह्म की शक्ति** हैं। प्रत्येक कल्प में भगवान् राम के साथ रही हैं। चार कल्पों में चार रावण मारे गये हैं।

सती-मोह का प्रसंग चतुर्थ कल्प से पहले का है। पुष्पवाटिका की सीता जी से पहले भी गिरिजा **शंकर** की पत्नी थीं। प्रत्येक कल्प में सती और गिरिजा हुई हैं। चतुर्थ कल्प की **सीता** जी पूर्ववर्तिनी **गिरिजा** का पूजन करती हैं। तृतीय कल्प की सती जी तृतीय कल्प के भगवान् राम की परीक्षा लेती हैं।

यदि सती जी राम की परीक्षा लेती हैं, या सीताजी गौरी (गिरिजा) का पूजन करती हैं, तो उन राम को, या गिरिजा को पूर्ववर्ती कल्प की समझना चाहिए। रामचन्द्र जी के अनेक अवतारों की बात तो तुलसीदास जी ने **काकभुशुण्डि** के मुख से उत्तर काण्ड में व्यक्त भी कर दी है—

जब जब अवधपुरी रघुबीरा। धरहिं भगत हित मनुज सरीरा॥
तब तब जाइ रामपुर रहऊँ। सिसु लीला बिलोकि सुख लहऊँ॥

(मानस, उत्तर० ११४/१२–१३)

शंकर जब हिमांचल की पुत्री **गिरिजा** (पार्वती) को व्याहने गये हैं, तब तुलसीदास ने शंकर द्वारा गणेश जी की पूजा की जाने की बात लिखी है। **गणेश** तो गिरिजा-पुत्र हैं। लोग शंका करते हैं कि तब शंकर गणेश-पूजा किस तरह कर सकते हैं? नहीं, काल-दोष नहीं है। **गणेश** तो पहले कल्पों में भी हो चुके हैं। प्रथमपूज्य बन चुके हैं। उन्हीं गणेश जी (प्रथमपूज्य देव) की पूजा शंकर चतुर्थ कल्प के विवाह के समय में कर रहे हैं।

किसी ग्रंथ से सम्बद्ध शंका का समाधान उसी ग्रंथ के रचनाकार के मत और मान्यता के आधार पर करना चाहिए। बात स्पष्ट हो जाएगी।

प्रायः मनुष्य कहते हैं कि रामचन्द्र जी ने बाली से कुछ पूछा-गछा नहीं; एकतरफ़ा डिगरी कर दी। सुग्रीव की बात मानकर बाली को मार दिया। **तुलसीदास जी** का मत है कि भगवान् बाली के पाप-कर्मों को जानते थे। दुष्टों के वध के लिए ही उनका अवतार था। इसलिए वध कर दिया। **रामचन्द्र जी** ने बाली पर जो चार्ज लगाया, वह बाली द्वारा स्वीकार भी किया गया। उत्तर न देना, या मौन रहना स्वीकृति का **लक्षण** है। रामचन्द्र जी ने वध का कारण बताया—

अनुजबधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई॥

(रामचरित०, किष्किं० ९/७,८)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बग़दाद के जीवन में भी आपका **मानस-पाठ** चलता रहता है, प्रसन्नता की बात है। आपके भक्त-हृदय का परिचय इससे मिल जाता है। मुझे विश्वास है कि आपकी शंका का समाधान हो गया होगा। भगवान् राम के अनेक अवतारों में अनेक लीलाओं की बात मान लेने पर शंका नहीं रहती। घटना में काल-दोष भी न आएगा। आपने जो मानस-कथा-प्रवचन यहाँ सुना था, वैसा ओमप्रकाश जी वार्ष्णेय के यहाँ अब भी **प्रति मंगलवार** को चलता है।

हर्ष है आप सानंद हैं। सौभाग्यवती **मीना** को आशीर्वाद। बच्चों को प्यार। अब आप भारत कब आएँगे ?

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० रामअवतार वार्ष्णेय,
गणित-विभाग, विज्ञान-कालेज,
बग़दाद विश्वविद्यालय, अधामिया, बग़दाद (इराक़)

श्री हरिशंकर शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़
दिनांक २०. ४. १९७८ ई०

मान्यवर श्री शर्मा जी,

सादर सप्रेम नमस्कार !

आशा है परमेश की दया से आप सपरिवार सानंद होंगे। **पं० सोनपाल शर्मा-अभिनंदनी** के लिए आपकी रचना **भरत-चरित्र** मिली थी। हार्दिक धन्यवाद !

रचना को पढ़ते समय मेरा मन आपके भावुक-भक्त-हृदय-कमल के रमणीय पराग को मस्तक से लगाने लगा। तुलसीदास ने तो भरत जी के मन को समझा ही है; लेकिन आपने **मानस** के तुलसी के मन को समझा है।

सहृदय पाठक को किसी काव्य-ग्रन्थ का अवलोकन हृदय और बुद्धि की आँखों से किस प्रकार करना चाहिए, यह आप से सीखा जा सकता है।

काव्य के संपूर्ण स्वरूप की पूर्णावगति के लिए उसके दो अंग ही प्रमुख हैं—(१) **कथ्य** (२) **कथन**। **कथन** के अन्तर्गत दो उपांग हैं—**भाषा** और **शिल्प**। **कथ्य** काव्य की भाव-सुरसरी है।

भाषा-शास्त्री की आँख **भाषा** पर, और रीतिवादी एवं वक्रोक्तिवादी आलोचक की आँख **शिल्प** पर रहती है। ये दोनों प्रकार की आँखें काव्य का शरीर ही देख पाती हैं, आत्मा नहीं। भावुक एवं परम सहृदय पाठक तो कवि के काव्य की भाव-सुरसरी में ही स्नान किया करता है; क्योंकि भाव ही काव्यात्मा है। आप तुलसी के **मानस** की भाव-सुरसरी में स्नान करनेवाले मर्मज्ञ एवं रसज्ञ पाठक हैं। आपकी रचना को पढ़कर एवं दिव्यतम लोक के आलोक का दर्शन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके मेरे मन ने महान् आनन्द प्राप्त किया है। मेरे मन के आँगन में एक साथ तीन व्यक्तित्व दृष्टिगत हुए—(१) **भरत** (२) **तुलसी** (३) **हरिशंकर शर्मा।**

सन् १९३५ ई० में, मैं जिन श्री हरिशंकर शर्मा को धर्मसमाज कालेज, अलीगढ़ के प्रांगण में देखा करता था, वे ही हरिशंकर शर्मा मेरे मन के प्रांगण में आ गये, और उन्हें मैं अन्दर की आँखों से अन्दर ही देखने लगा। इस तरह आपकी रचना ने परोक्ष में ही मुझे आपके प्रत्यक्ष दर्शन करा दिये। इसे कहते हैं रचना और रचना का प्रभाव। इसे ही पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों ने **काव्य-बिम्ब** (Poetic Image) नाम दिया है। **बिम्ब-सृष्टि** काव्य-सृष्टि को प्रभावी बनाती है। इस तरह **बिम्ब** रसोद्रेक का भी आधार है।

जिस भरत की महा महिमा के सागर को मनीषी मुनि वशिष्ठ की बुद्धि पार न कर सकी, और एक अबला नारी की भाँति उस समुद्र के किनारे पर ही खड़ी रही; उस भरत के पूर्ण चरित्र को कोई कैसे कह सकता है? भारतीकंठ कवि–शिरोमणि संत तुलसीदास जी भी असमर्थ हो गये और स्पष्ट शब्दों में कह गये—

भरत प्रीति नति विनय बड़ाई।
सुनत सुखद बरनत कठिनाई।। (रामचरितमानस, अयो० ३०३/४)

आपकी लेखनी ने भरत की **प्रीति, नति** और **विनय** को मुझे बताया है; सुख दिया है। इस उपकार के लिए मैं आपका धन्यवादपूर्वक आभारी हूँ।

मान्यवर शर्मा जी! मैं **मानस** के उस प्रसंग को पढ़ते समय गद्गद हो जाता हूँ और मेरे नेत्र अश्रुपात करने लगते हैं, जब भरत जी ने चित्रकूट जाते समय उस स्थल को देखा था, जहाँ शिंशुपा वृक्ष के नीचे भगवान् **राम जी, सीता जी,** और **लक्ष्मण** जी धरती पर सोये थे।

वन की कठोर धरती पर कुशाओं की साथरी बिछाकर भरत के श्रद्धेय राम जी और सीता जी सोएँ; और भरत की आँखें उस स्थल को देखें! जो सीता जी पलँग से कभी नीचे पाँव न रखती हों, वह भरत के कारण कंकड़ों, पत्थरों तथा काँटों की धरती पर नंगे पाँवों चलें और भूखी-प्यासी वन में दिन बिताएँ—यह भावना भरत के मन को कितनी व्यथा देती होगी? मैं इसका अनुमान नहीं लगा सकता। मैं ही क्या, कोई भी भावुक-हृदय इस व्यथा के सागर का पार नहीं पा सकता।

शर्मा जी! आपसे सत्य कहता हूँ कि निम्नांकित अर्द्धालियों को मैंने जितनी बार पढ़ा है, उतनी ही बार मैं रोया हूँ और भरत के महाभाव-सागर में डूबा हूँ—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुस साँथरी निहारि सुहाई ।
कीन्ह प्रनामु प्रदच्छिन जाई ।।
चरन रेख रज आँखिन लाई ।
बनइ न कहत प्रीति अधिकाई ।।
कनक बिंदु दुइ चारिक देखे ।
राखे सीस सीय सम लेखे ।।
सजल बिलोचन हृदयँ गलानी ।
कहत सखा सन बचन सुबानी ।। (मानस, अयो० १९९/१–४)

ऐसा ही परम कारुणिक स्थल जब मैं वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड में सीता-निर्वासन के प्रसंग में पढ़ता हूँ, तब भी मेरे आँसू नहीं रुकते। रामचन्द्र जी के वंश की रक्षा के भाव से निरपराधिनी सती सीता जी ने गंगा पार होने पर करुणार्द्र स्वर में लक्ष्मण से कहा था—

न खल्वद्यैव सौमित्रे जीवितं जाह्नवी-जले ।
त्यजेयं राजवंशस्तु भर्तुर्मे परिह्लास्यते ।।

—(वा०, उत्तर०४८/८)

आपके कृपापात्र प्रियवर **गयाप्रसाद शर्मा** से मुझे आपके कुशल-समाचार मिलते रहते हैं। प्रिय भाई **त्रिलोकीनाथ व्रजबाल** (मथुरा) ने भी एक बार आपका कुशल-क्षेम दिया था। आप जब एक बार माहेश्वरी इंटर कालेज, अलीगढ़ में आये थे, तभी भेंट हुई थी। फिर प्रत्यक्ष भेंट नहीं हुई। मैंने प्रिय शिष्य गयाप्रसाद शर्मा (शिकोहाबाद) से कहा है कि वह कोई ऐसा सुयोग बगाएँ कि आपका सम्मिलन-सुख प्राप्त हो सके। बेटियों को असीस ! सस्नेह,

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री हरिशंकर शर्मा,
अतिरिक्त शिक्षा-निदेशक (सेवानिवृत्त)
२/३१५ ए, चन्द्रलोक, आजादनगर, कानपुर ।

डा० (श्रीमती) शारदामुनीश महर्षि के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन',
डी० लिट्०

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१
दिनांक २४. ४. १९७८ ई०

बेटी शारदा मुनीश महर्षि,

आशीर्वाद !

हिन्दी-साहित्य के सन्दर्भ में तुमने **आधुनिकता-बोध** का अर्थ जानने की जिज्ञासा अपने पत्र में व्यक्त की है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिकता का अर्थ है 'अपटूडेट होना'। भोजन, वेश-भूषा; विचार, कार्य-प्रणाली, समाज, आर्थिक व्यवस्था आदि में जो लीक से हटकर नूतन ढँग से जीवन जीता है, वह **आधुनिक** है। किसी भी काल में जिसने रूढ़ि या पुरातन-वादिता से हटकर नयी चेनना का युग-बोध दिया हो, वही **आधुनिकतावादी** साहित्यकार कहलाएगा। लीक से हटी हुई युगानुकूला मानसिकता का नाम आधुनिकता है। जो विचार और कर्म 'अभी और यहाँ' के लिए उपयुक्त हैं, वे आधुनिक माने जाएँगे। **आधुनिकता** (Modernity) कहती है कि वर्तमान में विचारपूर्वक जागरूक जीवन जीना आधुनिकता का अनुगमन करना है।

हम भूत में क्या थे ? हम भविष्य में क्या बनेंगे ? आधुनिकतावादी इस पर सोचना कालातिपात, काहिली और अकर्मण्यता मानता है। उसका लक्ष्य **वर्तमान** ही होता है—वर्तमान को वर्तमान के सुख के रूप में जीना, समाज को सुखी बनाते हुए जीना आधुनिकता है। बौद्धिकता पर, वैज्ञानिकता पर और वर्तमान के लिए नये मानव-मूल्यों पर आधुनिकतावादी पूर्ण आस्था रखता है।

आधुनिकतावादी बहुत रिलैवेंट होता है। युग की आवश्यकता के लिए ही उसकी वाणी उद्घोष करती है। जागरूकता के साथ वर्तमान में जीने के लिए जो कहता है, वह आधुनिक है। पंद्रहवीं शती के **कबीरदास** आधुनिकतावादी थे; लेकिन सोलहवीं शती के सूरदास **आधुनिकतावादी** नहीं थे। वैसे काल की दृष्टि से कबीर सूरसेपुराने हैं। कबीर भाव, विचार तथा भाषा आदि की दृष्टि से अपने युग में आधुनिक थे।

महर्षि दयानन्द को आधुनिकतावादी कहा जा सकता है। हिन्दी के नाटक-साहित्य और भाषा-प्रयोग में **भारतेन्दु** आधुनिक थे। कृष्ण-विषयक कविता में तथा कविता की भाषा के प्रयोग में हरिऔध को भी हम आधुनिकतावादी कह सकते हैं। **श्री हरिऔध जी** ने प्रियप्रवास, वैदेही-वनवास, चोखे चौपदे, चुभते चौपदे आदि ग्रंथ रचकर अपनी आधुनिकता का परिचय दिया है। भाषा के क्षेत्र में **हरिऔध** जी परम अधुनिक हैं। विचारों और भाषा-प्रयोग की दृष्टि से हिन्दी के उपन्यास और कहानी-साहित्य में **प्रेमचन्द्र** को आधुनिक माना जा सकता है। जो विचार, जीवन-दृष्टि, युग-चेतना, भाषा-प्रयोग आदि हमें प्रेमचन्द जी ने अपने साहित्य द्वारा प्रदान किये हैं, उनकी दृष्टि से प्रेमचन्द आधुनिक माने जाएँगे। **आधुनिकतावादी** वास्तव में रूढ़िवादी या परंपरावादी से पृथक् होता है। वह तर्क में, विवेक में, युग की आवश्यकता में विश्वास रखता है। यदि वर्तमान के लिए भूत की परम्परा या रूढ़ि हितकर है, तो आधुनिकतावादी को वह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीकार होगी; अन्यथा नहीं। किसी को किसी से अधिक आधुनिकतावादी कहना मानसिकता-सापेक्ष्य एवं काल-सापेक्ष्य है।

हिन्दी के छायावदी काल में **निराला** आधुनिक थे। सन् १९३६ के बाद के कवियों में **अज्ञेय** को भी आधुनिक माना जा सकता है।

आदर्श और **यथार्थ** को दो मानकर 'आधुनिकता' भेद नहीं करती। वहाँ तो यथार्थ ही ग्राह्य है। सारांश यह कि वही ग्राह्य है, जो वैज्ञानिक है, यथार्थ है; और वह यथार्थ ही उसके लिए आदर्श-तुल्य है।

आधुनिकतावादी मानता है कि संसार में प्रत्येक वस्तु संसरणशील है; परिवर्तन करती रहती है; इसलिए आधुनिकतावादी जड़ता या ठहराव में विश्वास नहीं रखता। वह क्रान्ति और प्रगति में आस्था रखता है।

बीसवीं सदी के आधुनिकतावादी के लिए आज **धर्म** और **विज्ञान** शब्दों की अथत्मिक अवधारणाएँ भिन्न हैं, नयी हैं। धर्म-ग्रन्थों में **विज्ञान** का अर्थ साक्षात् आत्मानुभूति है। आज का आधुनिकतावादी **विज्ञान** को साइंस के अर्थ में ग्रहण करता है। वह कहता है कि कार्य-कारण संबंध बतानेवाला विशिष्ट ज्ञान ही **विज्ञान** है।

आशा है तुम सपरिवार सानंद होगी। बच्चों को प्यार। बन्धुवर क्षेमचन्द्र जी 'सुमन' से मेरा नमस्कार कहना। सस्नेह,

डा० (श्रीमती) शारदामुनीश महर्षि, शुभैषी
द्वारा–श्री एम० सी० महर्षि, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
लाइब्रेरी सैक्शन, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ पबलिक ऐडमिनिस्ट्रेशन,
इन्द्रप्रस्थ एस्टेट, रिंग रोड, नई दिल्ली–११०००१

डा० सुरेश पाण्डेय के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन', **८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१**
डी० लिट्० दिनांक २५–४–१९७८ ई०

प्रियवर पाण्डेय जी,

आपका पत्र मिला। **ग़ज़ल** के अर्थ को जानने की इच्छा आपने पत्र में व्यक्त की है और साथ में **रदीफ़** और **क़ाफ़िया** भी समझना चाहते हैं। इससे स्पष्ट है कि आप उर्दू की कविता का कला-सौन्दर्य भी जानना चाहते हैं।

ग़ज़ल शब्द के अर्थ लुग़त (कोश) के अनुसार तीन हैं—(१) **जवानी का हाल बयान करना** (२) **औरतों की सोहबत करना तथा उनसे बात-चीत करना** (३) **इश्क का ज़िक्र करना।**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त तीनों अर्थों के मूल में शृंगारपरक-भाव प्रमुख हैं। अतः ग़ज़ल की भाव-भूमि प्रमुख रूप से शृंगारिक होती है।

ग़ज़ल के मूल में **ग़ज़ाल** (=हिरन का बच्चा) शब्द है। **ग़ज़ल** उस कराह को कहते हैं, जिसे एक **ग़ज़ाल** (हिरन का बच्चा) शिकारी का तीर लगने पर अपनी बेबसी में निकालता है। इसलिए **ग़ज़ल** नामक काव्य-रूप में दुनिया की नापायदारी और दर्दमंदी का ज़िकर किया जाता है। इस तरह **ग़ज़ल** में शृंगार, करुण और शान्त रसों की प्रधानता रहनी चाहिए। वैसे अब उर्दू—हिन्दी में ग़ज़ल का दामन भाव और रस की दृष्टि से बहुत वसीअ हो गया है।

उर्दू में **वली** दक्खनी ग़ज़ल के जनक, और **मीरतक़ी मीर** ग़ज़ल के बादशाह माने जाते हैं। हिन्दी में **भारतेन्दु हरिश्चन्द्र** ने **'रसा'** नाम से ग़ज़लें लिखी थीं।

उर्दू की कविता में **ग़ज़ल** एक ऐसी विधा है, जिसमें कम से कम पाँच और अधिक से अधिक ग्यारह शेरें होती हैं। पहली शेर **मतला** और अंतिम शेर **मक़्ता** कहलाती है। मक़्ता में शायर अपना तख़ल्लुस (उपनाम) भी डालता है। ग़ज़ल की पहली शेर के दोनों मिसरों में क़ाफ़िया और रदीफ़ समान रहते हैं। मिसरे के अन्तिम अंश में क़ाफ़िया पहले, और रदीफ़ उसके बाद आती है। निम्नांकित शेर **मतला** है, जिसमें **जाते** 'रदीफ़'; और **नहीं** 'क़ाफ़िया, हैं—

सभी नग़मात ऊँचे कंठ से गाये नहीं जाते।
जिगर के ज़ख्म चौराहे पै दिखलाये नहीं जाते॥

तुम्हारे प्रश्न का उत्तरांश **क़ाफ़िया** और **रदीफ़** की जानकारी से सम्बद्ध है। हिन्दी में जिसे तुकान्त कहते हैं, उसी भाँति उर्दू-काव्य-शैली की छन्दः प्रणाली में **क़ाफ़िया** और **रदीफ़** होते हैं।

मान लीजिए कि एक शेर इस प्रकार है—

हुबाब आसा मैं दम भरता हूँ तेरी आशनाई का।
निहायत ग़म है इस क़तरे को दरिया की जुदाई का॥

उपर्युक्त दोनों मिसरों के अन्त में **आशनाई का** और **जुदाई का** आये हैं। इनमें **'का'** तो रदीफ़ है; और **आई** काफ़िया है। यह **आई** शब्दांश **आशनाई** और **जुदाई** शब्दों में मौजूद है।

क़ाफ़िये के बाद **रदीफ़** आती है; अर्थात् रदीफ़ क़ाफ़िये के पीछे रहती है। **का** रदीफ़ है, जो **आई** के पीछे बोली जाती है।

वास्तव में ऊँट पर जब दो आदमी बैठते हैं, तब पीछे बैठनेवाले को अरबी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा में **रदीफ़** कहते हैं। **रदीफ़** शब्द मूलतः उसी अर्थ को उर्दू-छन्दःशास्त्र में पकड़े हुए हैं। **रदीफ़** = ऊँट पर पीछे बैठनेवाला।

उर्दू-काव्य में ग़ज़ल के साथ रुबाई ने भी प्रसिद्धि और लोकप्रियता प्राप्त की हैं। ये दोनों काव्य-रूप हिन्दी में भी गृहीत हुए।

उर्दू-काव्य का जन्म विलासिता और वैभव के महलों में हुआ था। इसलिए उर्दू में शृंगार रस अधिक है। हिन्दी के भी रीतिकालीन काव्य का जन्म-काल और युवा-काल वही है। शृंगार-वर्णन में उर्दू के शायर सामान्यतः ग़ज़ल लिखते थे; हिन्दी के कवि घनाक्षरी और सवैया। प्रायः सभी शायरों और कवियों के काव्य का प्रयोजन 'यशसे एवं अर्थकृते' ही था। उर्दू-शायरी तो आज भी बहुत कुछ महबूब के तीरेनज़र से ज़ख़्मी है और शराब के प्यालों में डूबी हुई है।

पाण्डेय जी ! उस दिन की **ग़जल-गोष्ठी** में श्री रंग जी भी सौभाग्य से खूब आ गये; बहुत अच्छा रहा। मुझे विश्वास है कि **अतिरेक** आपके संपादकत्व में उन्नति प्राप्त करेगा।

डा० सुरेश पाण्डेय, शुभैषी
सम्पादक 'अतिरेक', अम्बाप्रसाद 'सुमन'
सदर बाज़ार, मथुरा।

कु० रश्मि अग्रवाल के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन', **शिविर, मथुरा**
डी० लिट्० दिनांक २८. ४. ७८ ई०

बेटी रश्मि,

आशीर्वाद !

तुम्हारे तीन प्रश्न हैं—(१) पी–एच० डी० के लिए जो थीसिस लिखी जाती है, उसे **हिन्दी भाषा में शोध-प्रबन्ध कहना चाहिए या शोध-निबन्ध** ? (२) **वैज्ञानिक और साहित्यकार में क्या अंतर है** ? (३) **निबन्धों में व्यास-शैली और समास-शैली किस तरह जानी जा सकती है** ?

हिन्दी के शोधार्थी को अपनी थीसिस को शोध-प्रबन्ध ही कहना चाहिए। शोध नितान्त विषय (वस्तु)-प्रधान रचना है। विवेचन की दृष्टि से प्रबन्ध विषयपरक और निबन्ध विषयिपरक (व्यक्तिपरक) होता है। निबन्ध बहुत-कुछ आलोचना के निकट है। प्रबन्ध (शोध-प्रबन्ध) पूर्णतः वस्तुपरक है, उसमें लेखक अपनी निजी धारणा या रुचि-अरुचि व्यक्त नहीं करता। पूर्णतया तथ्यों पर आश्रित रहता है। निबन्ध या आलोचना में लेखक अपनी इच्छा या निजी मत भी अभिव्यक्त किया करता है। थीसिस शोध-प्रबन्ध है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेटी रश्मि ! तुम्हें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि किसी कृति का विषयिपरक विश्लेषण-विवेचन **आलोचना** है; लेकिन किसी कृति को आधार मानकर वस्तुपरक रूप में सामग्री-संकलन-विवेचन-विश्लेषण तथा निष्कर्षात्मक उपलब्धि प्रस्तुत करना **अनुसंधान** है । अनुसंधान निस्संग परीक्षण है ।

एक वैज्ञानिक पूर्णतया बुद्धि का आश्रय लेकर साकार या ठोस वस्तुओं की निस्संग परीक्षा करता है और परिणाम घोषित करता है । वैज्ञानिक के लिए **पानी** केवल दो तत्त्वों का मिश्रण है अर्थात् **हाइड्रोजिन$_2$ + ऑक्सीजिन = पानी** । इन तत्त्वों या पानी से वैज्ञानिक के हृदय का कोई सम्बन्ध नहीं; किन्तु साहित्यकार पानी को जीवन के धरातल पर देखेगा । प्यासे की प्यास बुझाने में वह कितना प्राणदाता, सुखदाता और आनन्ददाता है, इसकी अनुभूति साहित्यकार का हृदय करेगा । यदि कहीं गंगाजल का वर्णन साहित्यकार पढ़ता है, तो उस वर्णन में जो एक इन्द्रियातीत अलौकिकता है, उसे भी वह अपने हृदय की आँखों से देख लेगा । वह जल उस साहित्यकार के लिए **जीवन** होगा, **अमृत** होगा ।

निबन्धों में भाषा-संरचना के अन्तर्गत निबन्ध-लेखक प्रायः दो प्रकार की शैलियाँ अपनाया करते हैं—(१) **व्यास-शैली** (२) **समास-शैली** ।

व्यास-शैली का लेखक एक विचार को बहुत से शब्दों में तथा लम्बे वाक्यों में व्यक्त करता है; लेकिन समास-शैली का लेखक उसी विचार को बहुत कम शब्दों तथा छोटे वाक्यों में व्यक्त करेगा । **चिन्तामणि** में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मनोविकार सम्बन्धी निबन्धों में अनेक स्थलों पर समास-शैलीवाले वाक्य लिखे हैं । जैसे—**प्रेम स्वप्न और श्रद्धा जागरण है ।, वैर क्रोध का अचार या मुरब्बा है ।**

समास-शैली में सागर रूपी विचार को भाषा रूपी गागर में भरा जाता है । **व्यास-शैली** में लोटे के पानी को परात में उँड़ेला जाता है ।

व्यास-शैली का लेखक प्रतीक्षा की अवधि को इस प्रकार लिखेगा—

प्रातः में भोर के सूरज की पहली किरण के निकलने से लेकर, उसकी यात्रा की अंतिम मंजिल पर पहुँचने की वेला तक, मैं प्यासी आँखों से उनकी प्रतीक्षा करता रहा ।

इस उपर्युक्त विचार को समास-शैली के अंतर्गत इन शब्दों में लिखा जा सकता है—

मैं प्यासा-सा प्रातः से सन्ध्या तक उनकी प्रतीक्षा करता रहा ।

समास-शैली का अर्थ है संक्षिप्त शैली या लघु शैली ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेटी रश्मि ! तुम एक दिन **पं० वेदव्रत जी शास्त्री** आयुर्वेदाचार्य के यहाँ अवश्य जाना और उनकी कुशलता का समाचार लिखना। मुझे किसी ने बताया था कि पिछले दिनों पं० वेदव्रत जी का स्वास्थ्य कुछ गिर गया था। **पं० वेदव्रत जी** से तुम्हें **तुलसीदास जी** के जीवन और निवास-स्थान के सम्बन्ध में भी कुछ नयी सूचनाएँ मिलेंगी।

विश्वास है कि तुम्हारा पठन-पाठन ठीक तरह चल रहा होगा। कासगंज छोटी नगरी अवश्य है; लेकिन अध्ययन-चिन्तन के लिए ऐसे स्थान बड़े नगरों की अपेक्षा अच्छे रहते हैं।

कु० रश्मि अग्रवाल, एम० ए०
द्वारा—श्री शान्तिस्वरूप अग्रवाल,
सूत की मंडी, कासगंज, (एटा)

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री बिशनकुमार शर्मा के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन',
डी० लिट्०

शिविर, मथुरा
दिनांक ३. ५. १९७८ ई०

प्रियवर बिशनकुमार,

आशीर्वाद !

तुम्हारे पत्र में **सौन्दर्य** के अर्थ और उसकी **स्थिति** से सम्बद्ध प्रश्न है।

कविता के क्षेत्र में हमें **सौन्दर्य** को कुछ-कुछ **रस** की भाँति ही समझना चाहिए। जिस प्रकार **रस** की स्थिति प्रमाता में होती है और रसानुभूति भी प्रमाता को ही होती है, उसी प्रकार **सौन्दर्य** भी प्रमुख रूपेण प्रमाता से ही सम्बद्ध है। यद्यपि **हर्बर्ट** आदि ने सौन्दर्य को वस्तुगत माना है और अनुक्रम, अनुपात, सममित, समन्विति, वर्ण-योजना, दीप्ति आदि की समष्टि में उसे स्वीकार किया है; किन्तु मेरा अपना मत वस्तु और प्रमाता (द्रष्टा) के समन्वय से ही सम्बद्ध है। रूप भी रिझावनहार हो और नयन भी रिझवार हों, तभी सौन्दर्य की अनुभूति हो सकती है। सौन्दर्यानुभूति भी एक प्रकार का **आस्वाद** ही है, जो द्रष्टा या पाठक को प्राप्त होता है।

इस प्रसंग में यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि सच्चे सौन्दर्य की अनुभूति धर्मानुकूल **काम** के द्वारा ही हो सकती है। धर्म-विरुद्ध **काम** गर्हित है, लेकिन धर्म-अविरुद्ध **काम** अभिनंदनीय है। गीता में भगवान् ने अपने को मनुष्यों में **धर्म-अविरुद्ध काम** बताया है—

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ (गीता ७/११)–

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी वस्तु के देखने की दो प्रक्रियाएँ होती हैं—(१) **ज्ञान-प्रक्रिया**, जिसमें केवल द्रष्टा को वस्तु मात्र का ज्ञान होता है। (२) **कला-प्रक्रिया**, जिसमें द्रष्टा समझता है कि प्रस्तुत वस्तु सुन्दर है। कला-प्रक्रिया को ही सांख्य दर्शन में **सविकल्प प्रत्यक्ष** की संज्ञा दी गयी है।

प्रथम प्रक्रिया बतलाती है कि यह **मूर्ति है**। द्वितीय प्रक्रिया बतलाती है कि यह **मूर्ति सुन्दर है**। सौन्दर्य की अनुभूति दूसरी प्रक्रिया में होती है। इस अनुभूति का सम्बन्ध द्रष्टा की एक विशिष्ट बोध-दृष्टि से है।

अतः सौन्दर्य की स्थिति वस्तु और द्रष्टा के संयोग में है; अर्थात् **सौन्दर्य** = कला कृति + द्रष्टा का सौन्दर्य-भाव। प्रमुखता द्रष्टा के मन की ही है।

श्री बिशनकुमार शर्मा, एम० ए०,
मकान नं० १३/१४, गली कसेरान, शुभैषी
सराय बारहसेनी, अलीगढ़ अम्बाप्रसाद 'सुमन'

कु० रमादेवी शर्मा के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन', **शिविर, मथुरा**
डी० लिट्० दिनांक ९. ५. ७८ ई०

प्रिय बेटी रमा,

आशीर्वाद !

तुम्हारी प्रमुख जिज्ञासा यही है कि **शोध-प्रबंध में परिष्कृत और प्रांजल भाषा का स्वरूप क्या होता है ? परिष्कृत और प्रांजल में क्या अन्तर है ?**

शोध-प्रबन्ध में भाषा व्याकरणिक दृष्टि से शुद्ध हो और अर्थ के धरातल पर निश्चित और स्पष्ट हो। तभी उसे परिष्कृत और प्रांजल कहा जा सकता है—

मान लीजिए कि किसी शोधार्थी ने अपने शोध-प्रबन्ध में निम्नांकित वाक्य लिखा है—

"श्रीकृष्ण जी ने जब वेणु बजायी, तब उसके नाद से दसों दिशाएँ गुंजायमान हो गयीं।"

उपर्युक्त वाक्य की भाषा परिष्कृत अर्थात् व्याकरणिक दृष्टि से शुद्ध नहीं है, क्योंकि **वेणु** शब्द पुंलिंग है। अतः क्रिया **बजाया** लिखी जानी चाहिए। **मुरली** के साथ तो **बजायी** लिखा जा सकता था। एक कवि ने कविता इस प्रकार लिखी थी—

गगरियाँ रीते लिए चल दीं बदलियाँ म्लान।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें **रीता** विशेषण है। इसका विशेष्य **गगरियाँ** हैं। अतः **रीते** के स्थान पर **रीती** होना चाहिए। यहाँ विशेषण में लिंग-दोष है। 'लिये' होना चाहिए।

कभी-कभी लेखक अपने चेतन मन में किसी शब्द का वास्तविक लिंग न जानते हुए उसके समानार्थी शब्द का लिंग प्रयुक्त कर देता है और भाषा के वाक्य की अन्विति विनष्ट हो जाती है। एक नये कवि ने अपनी एक कविता में यह पंक्ति लिखी थी—

बजती रहे वेणु भावों की—इसमें नये कवि ने **मुरली** या **वंशी** शब्द का स्त्रीलिंगत्व **वेणु** शब्द में लगा दिया। वास्तव में **वेणु** शब्द तो पुलिंग है। लिंग शब्द में हुआ करता है, अर्थ में नहीं।

प्रांजल भाषा का तात्पर्य सुबोध और स्पष्ट भाषा से है। यदि कोई शोधार्थी अपने शोध-प्रबन्ध में निम्नांकित वाक्य लिखता है, तो इन्हें प्रांजल नहीं कहा जाएगा—

"आत्मा अमर है, ऐसा गीता कहती है। वास्तव में **यह** जीवन की अमूल्य थाती है।"

इन उपर्युक्त वाक्यों की भाषा में **यह** पद का प्रयोग अस्पष्ट है। पता नहीं चलता कि 'यह' सर्वनाम आत्मा के लिए है, या गीता के लिए; अथवा अमरत्व के लिए। इसलिए उक्त कथन में प्रांजलता नहीं है।

अपने पिता जी (**डा० गिरिधारीलाल शास्त्री**) से मेरा नमस्कार कहना। बेटी **शीला** का आजकल कैसा अध्ययन चल रहा है? तुम्हारा शोध-कार्य किस स्थिति पर है? सस्नेह,

कु० रमादेवी शर्मा, एम० ए०, एम० फिल्० शुभैषी
शास्त्री-भवन, मैरिस रोड, अलीगढ़ अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री राजबहादुर पाण्डेय के नाम

शिविर, मथुरा
दिनांक १५. ५. ७८ ई०

प्रियवर पाण्डेय जी,

आपका दिनांक १२. ५. ७८ का कार्ड मिला। आपके मन में **रामचरित-मानस** के अरण्य काण्ड की अर्धाली—**पूजिअ बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना**॥ (अरण्य०, दो० ३४/२)—के अर्थ के प्रति शंका है। अर्थात् तुलसी ने **ब्राह्मण** और **शूद्र** के विषय में ऐसा क्यों लिखा है? यह बात खटक रही है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज से ४०० वर्ष पूर्व वर्ण-व्यवस्था के सम्बन्ध में जन्म का आधार ही प्रमुख था। तुलसी की भी अपनी धारणा यही है कि जो जीव ब्राह्मण के घर में जन्म लेता है, वह निश्चित रूप से पहले के जन्मों में उत्तरोत्तर उत्तम और शुभ कर्म ही करता रहा है। उत्तम कार्यों की निरन्तरता के कारण ही उस **जीव** को मनुष्य योनि और ब्राह्मण-शरीर मिला है। इसलिए वर्तमान ब्राह्मण-शरीर से वह कुछ भी गुण प्राप्त न करे, तब भी जन्म के कारण ही वह **जीव** (ब्राह्मण-शरीरधारी मनुष्य) पूज्य है। शील और गुणहीन होने पर भी उसे पूजना चाहिए, क्योंकि एक इस जन्म में शील-गुण-हीन रह गया, तो क्या हुआ, पहले तो अनेक जन्मों में वह गुण-कर्म से उत्तम रह चुका है, तभी तो उसने **ब्राह्मण-शरीर** पाया है।

जो जीव शूद्र के घर में जन्मा है, वह पहले सभी कर्मों में घटिया रहा है, तभी तो शूद्र-शरीर मिला है। इस वर्तमान जन्म में यदि शूद्र गुणों से और ज्ञान से युक्त है भी, तो ब्राह्मण की तुलना में पूजा के योग्य नहीं; क्योंकि अभी वह जीव उतना शुद्ध-पवित्र नहीं बन पाया, जो पूजा की पात्रता पा सके। अभी तो शुद्धता के मार्ग में उसे वैश्य और क्षत्रिय का शरीर भी ग्रहण करना है। तदुपरान्त कहीं ब्राह्मण बने, तब पूजा का पात्र बन सकेगा। ब्राह्मण-शरीर देवताओं से भी उच्च और श्रेष्ठ है। ब्राह्मण पृथ्वी पर शरीरधारी देवता हैं, जो ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का सुख प्राप्त करते हैं। ऐसा सुख देवताओं को दुर्लभ है।

उत्तर काण्ड में काकभुशुण्डि जी के कथन के माध्यम से तुलसी ने अपने मत की पुष्टि कर दी है।

काकभुशण्डि जी ने अनेक जन्मों में अनेक योनियों के शरीर धारण किये। अन्त में ब्रह्मण-शरीर पाया, जो देवताओं को भी दुर्लभ है—ऐसा वेद-पुराण कहते हैं।

चरम देह द्विज कै मैं पाई।
सुर दुर्लभ पुरान श्रुति गाई।। (उत्तर० ११०/३)

तुलसीदास जी प्रायः **वेद** शब्द का प्रयोग धर्मशास्त्र आदि के अर्थ में करते हैं; वैदिक संहिताओं के अर्थ में नहीं।

ब्राह्मण जन्म से ही पूज्य है। उससे जो द्रोह करता है या उसका जो अहित चाहता है, उसका कुल नष्ट हो जाता है—यह तुलसी की अपनी धारणा है, विश्वास है। तुलसी वर्णगत जन्म का कारण पूर्वकृत कर्म मानते हैं। ब्राह्मण वर्ण में जन्म पाने से पहले वह जीवात्मा शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय वर्णों में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म पा चुका है। इस तरह एक समय में उत्पन्न ब्राह्मण शूद्र से तीन डिग्री ऊपर है। एक डिग्री की खराबी हो, तो भी दो डिग्रियों की अच्छाई तो ब्राह्मण में शूद्र की अपेक्षा अधिक है ही।

जन्मजन्मान्तर के कर्म-गुण से योनियाँ और वर्ण जीवात्माको मिलते रहते हैं—इस सिद्धान्त पर तुलसी की उक्त अर्द्धाली को देखिए; समाधान हो जाएगा। स्वदेश-गौरव की भाँति स्वजाति-गौरव भी मनुष्य में होता है।

हर्ष है आप आनन्दपूर्वक हैं।

श्री राजबहादुर पाण्डेय, एम० ए०
वातायन, पटेल नगर,
आगरा रोड, अलीगढ़–२०२००१

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री आदित्य प्रचंडिया 'दीति' के नाम

शिविर, मथुरा
दिनांक २६. ५. ७८ ई०

प्रियवर राम,

आशीर्वाद !

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने पूछा है कि आचार्य आनन्दवर्द्धन **ध्वनि** को **काव्य की आत्मा** मानते हैं। ध्वनि तो अभिव्यक्ति का एक उपकरण है। वह आत्मा का स्थान किस प्रकार ग्रहण कर सकती है ?

प्रियवर दीति ! **ध्वन्यालोक** ग्रंथ के रचयिता आचार्य आनन्दवर्द्धन ईसा की नवीं शताब्दी में हुए थे। इनके 'ध्वनि-सिद्धान्त' का उल्लेख ग्यारहवीं शती के मम्मट ने अपने ग्रंथ 'काव्यप्रकाश' में और चौदहवीं शती के विश्वनाथ कविराज ने अपने ग्रंथ 'साहित्यदर्पण' में भी किया है।

आनन्दवर्द्धन ने 'ध्वन्यालोक' में 'ध्वनि' के लिए लिखा है—

काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्व

आनन्दवर्द्धन की 'ध्वनि' को समझने से पहले, घंटे की टंकार और उसके नाद की झंकार को समझो। जब किसी घंटे में मौंगरी आदि से चोट मारी जाती है, तब उसमें से पहले टंकार निकलती है, फिर उस टंकार में से ही मधुर झंकार निकलती है। वह झंकार शनैः-शनैः मधुर से मधुरतर होती चली जाती है। यही मधुरतर या मधुरतम झंकार 'ध्वनि' है। इसे 'ध्वन्यालोकलोचन' में अनुरणन नाम दिया गया है। इस अनुरणन को व्यंग्यार्थ समझिए—

घंटानादस्थानीयः अनुरणनान्योपलक्षितः व्यंग्योप्यर्थः ध्वनिरिति व्यवहृतः।

मान लीजिए कि कोई व्यक्ति थोड़े-थोड़े समय के अन्तराल से **क्**, **अ**, **म्**,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अ, ल्, अ—इन छह वर्णों को बोलता है, तो इनसे किसी अर्थ की अवगति न होगी। उक्त वर्णों को क्रमशः एक साथ बोलने पर ही **कमल** शब्द बनेगा और उससे अर्थ की भी अवगति होगी। उसी तरह किसी शब्द की पूर्ण अर्थावगति न अकेली अभिधा कर सकती है और न लक्षणा कर सकती है। मार्मिक अर्थ की पूर्ण अवगति व्यंजना ही कर सकती है, जिसे व्यंग्यार्थ कहते हैं। उस व्यंग्यार्थ में वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ तो चिपके रहते ही हैं। अतः अभिधा और लक्षणा के उपरान्त व्यंजना से ध्वनित होनेवाला चमत्कारिक अर्थ ही ध्वनि है, जो घंटे की झंकार के समान है। इसलिए आनन्दवर्द्धन की ध्वनि में घंटे की झंकार का अर्थ समाविष्ट है। यदि हम अपनी शब्दावली में आनन्दवर्द्धन की ध्वनि को बताना चाहें तो कह सकते हैं—

मर्मार्थसूचकः व्यंग्यार्थः ध्वनिः।

ध्वनिकार ने अपनी ध्वनि को शब्द, अर्थ और भाव की दृष्टि से इतने विस्तृत आयाम में बताया है कि उस ध्वनि में रीति, अलंकार, वक्रोक्ति, रस आदि से सम्बद्ध काव्य सिद्धान्तों को समाविष्ट कर लिया गया है। इसीलिए आनन्दवर्द्धन के अनुसार चाहे अलंकार ध्वनित हो, वस्तु ध्वनित हो अथवा भाव (रस) ध्वनित हो—सभी ध्वनि माने जाएँगे। इस तरह आनन्दवर्द्धन का सिद्धान्त निम्नांकित सिद्धान्तों का समन्वयात्मक रूप है—

(१) **रससिद्धान्त**—"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" (विश्वनाथ)
(२) **वक्रोक्तिसिद्धान्त**—"वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्" (कुंतक)
(३) **रीतिसिद्धान्त**—"रीतिरात्मा काव्यस्य" (वामन)
(४) **अलंकारसिद्धान्त**—"काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते" (दण्डी)

ये उपर्युक्त सिद्धान्त काव्य के आस्वाद से सम्बद्ध हैं। इन सिद्धान्तों के माध्यम से आचार्यों ने काव्य के आस्वाद की व्याख्या की है कि उस आस्वाद को आस्वादी किस तरह प्राप्त करता है ?

अतः हम कह सकते हैं कि आनन्दवर्द्धन की ध्वनि अभिव्यक्ति का ऊपरी उपकरण नहीं है, वह अर्थ और भाव के रूप में आन्तरिक सूक्ष्म **आत्मा** के समान है।

तुम जैन धर्म के दार्शनिक सिद्धान्तों को समझते हो। आत्मा और पुद्गल की अवधारणा से तुम अवगत हो। अर्हन्त की आत्मा और पुद्गल दोनों ही अर्हन्तपन की दिव्यता के सूचक हैं; उसी प्रकार आनन्दवर्धन की ध्वनि भी अर्थ तथा शब्द से सम्बद्ध है। अर्थ = आत्मा। शब्द = पुद्गल। यह पुद्गल सामान्य मनुष्य का नहीं है। न साधु का, न उपाध्याय का, न आचार्य का; अपितु अर्हन्त का है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा विश्वास है कि तुम अनंदवर्धन की ध्वनि को कुछ-कुछ समझ गये होगे। विशेष अध्ययन के लिए **ध्वन्यालोकलोचन** पढ़ना चाहिए।

ध्वन्यालोकलोचन (**आचार्य विश्वेश्वर** की हिन्दी-टीका) पठनीय ग्रंथ है। इसमें भूमिका डा० नगेन्द्र जी की है। डा० नगेन्द्र की भूमिका को बहुत ध्यान से पढ़ना; पूरे मनोयोग के साथ। उखड़े मन से पढ़ोगे तो कुछ पल्ले न पड़ेगा। **डा० नगेन्द्र** हिन्दी-गद्य के ऐसे विशिष्ट शैलीकार हैं, जो पंडित पाटकों को लिखते हैं। कविता में कविवर **जयशंकर प्रसाद** और गद्य में **डा० नगेन्द्र** ऐसे उच्च आसन पर हैं कि उन्हें देखने के लिए तुम्हें अपनी बुद्धि के नेत्र बहुत ऊँचे उठाने होंगे। मैंने डा० नगेन्द्र जी को स्वयं अपनी आँखों से लिखते देखा है। वे विचारों को घनीभूत समास-शैली द्वारा गद्य में ऐसा उतारते हैं कि उसमें से एक शब्द भी नहीं हटाया जा सकता। वे लिखते नहीं हैं: रुचि से रचते हैं।

श्री आदित्य प्रचंडिया 'दीति', एम० ए०, रिसर्चस्कालर
पीली कोठी, पुराना हाथरस-अड्डा
आगरा रोड, अलीगढ़।

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री राधेश्याम अग्रवाल के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक २२. ६. १९७८ ई०

प्रिय श्री अग्रवाल जी,

पं० राधेश्याम जी द्विवेदी और भाई **व्रजबाल जी** के सान्निध्य में भारती अनुसंधान भवन, मथुरा के कक्ष में पूछे हुए आपके प्रश्न का उत्तर लिख भेज रहा हूँ।

आपके शोध-विषय के शीर्षक पर मैंने विचार किया है। प्रमुख रूप से इसके दो भाग हैं—प्रथम, **पौराणिक हिन्दी काव्य** और द्वितीय, **आधुनिक बोध**।

आधुनिक बोध से तात्पर्य है, विवेक, तर्क तथा वैज्ञानिक विचार-सम्मत-बोध। रूढ़ि की लीक से हटकर स्वतंत्र चिन्तन का नाम **आधुनिक बोध** है। स्पष्ट और सरल भाषा में विचार व्यक्त करना भाषा का आधुनिक बोध है।

स्वतन्त्रता के उपरान्त हिन्दी में जो मुख्य-मुख्य महाकाव्य, एकार्थकाव्य और खंडकाव्य प्रकाशित हुए हैं, उनकी काल-क्रमानुसार सूची बनाइए और अध्ययन कीजिए। उनके अध्ययन के समग्र भाव-विचार तथा भाषा-अभिव्यंजना की आधुनिकता पर विशेष रूपेण ध्यान रखिए।

पौराणिक हिन्दी-प्रबन्ध-काव्य वे ही माने जाएँगे, जिनके नायक, नायिका या अन्य पात्र पुराणों से सम्बद्ध होंगे। पुराणों का वर्गीकरण मुख्य रूप से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन पर आधृत है—(१) **विष्णु से सम्बद्ध पुराण** (२) **ब्रह्मा से सम्बद्ध पुराण** (३) **शिव या शक्ति से सम्बद्ध पुराण।** विष्णु के अन्तर्गत राम, कृष्ण आदि दशावतार समाविष्ट हैं—राम के नाम से **तीन** प्रमुख अवतार हैं—(१) **परशुराम** (२) **राम** (३) **बलराम**। रामायण और महाभारत के पात्रों से सम्बद्ध प्रबन्ध-काव्य, जो १९४७ ई० के पश्चात् प्रकाशित हुए हैं, तुम्हारे शोध-क्षेत्र में आते हैं।

आधुनिक बोध में भाव-भावना की दृष्टि से ये क्षेत्र हो सकते हैं—(१) अर्थ तथा काम-भावना का क्षेत्र (२) राष्ट्रीय भावना का क्षेत्र (३) वर्ण-भेद तथा वर्ग-भेद-नाशक भावना का क्षेत्र (४) गान्धीवादी भावना का क्षेत्र (५) मानव तथा मानवता की भावना का क्षेत्र (६) समाजवादी भावना का क्षेत्र (७) बुद्धि एवं तर्क-संगत भावना का क्षेत्र (८) व्यक्ति-पूजा-भावना का विरोध (९) विज्ञान का अनुमोदन तथा कथित रूढ़िगत 'धर्म' की भावना का खंडन आदि।

कला-पक्ष अर्थात् भाषाभिव्यंजना में **प्रतीक, विम्ब, उपमान, शब्द-विन्यास** और **वाक्य-संयोजना** को लिया जा सकता है।

इस तरह भाव और भाषा पर आधुनिक बोध से विचार कीजिए। शेष फिर कभी। हर्ष है आप सानन्द हैं।

ब्रज-साहित्य और ब्रज-भाषा की जिस सारस्वत योजना को साकार बनाने के लिए आपके और **डा० त्रिलोकीनाथ ब्रजबाल** के कन्धों पर भार है, उसकी सम्पन्नता दत्तचित्त होकर की जानी चाहिए।

श्री राधेश्याम अग्रवाल, एम० ए०, साहित्यरत्न आपका
संपादक, शिक्षक-संसार, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
घीयामंडी, मथुरा (उ० प्र०)

डा० श्रीनिवास मिश्र के नाम

शिबिर, मथुरा
दिनांक २५. ६. ७८ ई०

प्रिय भाई मिश्र जी,

सप्रेम नमस्कार।

आशा है परमेश की दया से आप सपरिवार सानंद होंगे। आपने **राम-चरितमानस** के **सुन्दरकाण्ड** के **३०वें** दोहे का अन्वय सहित अर्थ जानने की इच्छा उस दिन अपने सदन पर मुझसे व्यक्त की थी और कहा था कि उन रामायणी पंडित जी ने अन्वय के साथ अर्थ स्पष्ट नहीं किया था।

पहले यहाँ मैं सुविधा के लिए अभीष्ट दोहा उद्धृत कर रहा हूँ। तदुपरान्त अन्वय सहित अर्थ लिख रहा हूँ। दोहा इस प्रकार है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज पद जंत्रित, जाहिं प्रान केहिं बाट ।।

—(गीता प्रेस, गोरखपुर, सुन्दर०, दो० ३०/–)

अन्वय—(तुम्हार) दिवस-निसि नाम पाहरू, तुम्हार ध्यान कपाट (अहइ)। (तुम्हार) पद माहिं (सीताक) निज लोचन जंत्रित (अहहिं)। फिर प्रान केहिं बाट जाहिं ?

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी ने हनुमान् जी से पूछा—"हे तात ! सीता जी लंका में किस प्रकार रहती हैं, और किस प्रकार प्राणों की रक्षा करती हैं ?"

इसके उत्तर में हनुमान् जी श्री रामचन्द्र जी से कहते हैं—

आपकी देख-रेख पूरी तरह से है। प्राण प्रायः तीन स्थानों से निकला करते हैं—(१) मुख से (२) सिर के तलवे से (३) नेत्रों से।

सीता जी दिन-रात आपके नाम का जप करती रहती हैं, अतः वह नाम ही पहरेदार है। आपके स्वरूप का ध्यान ही कपाट के सदृश है। आपके चरणों में वे अपनी दृष्टि लगाये रहती हैं, वही ताला है। जब मकान के द्वार की किवाड़ें बन्द हों, उसमें ताला भी लगा हुआ हो और फिर पहरेदार भी हों; तब फिर शरीर-रूपी घर में से प्राण-रूपी व्यक्ति किस प्रकार बाहर जा सकता है ?

बात स्पष्ट हो गयी होगी।

आपकी शिष्या बेटी **मधु शर्मा** आपको प्रणाम निवेदित करती है। आज-कल इसने भारतीय दर्शन का थोड़ा-थोड़ा अध्ययन प्रारम्भ कर दिया है। आशा है आप सपरिवार सानंद होंगे। सस्नेह,

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० श्रीनिवास मिश्र, पी-एच० डी०
अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग,
धर्मसमाज कालेज, अलीगढ़।

श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१
१७–७–७८ ई०

आदरणीय श्री पंडित जी,

सादर नमस्कार।

आशा है परमेश की दया से अब आप स्वस्थ और सानंद होंगे। बेटी वीणा अग्रवाल का पत्र आया था कि आप अस्वस्थ चल रहे हैं। उस समाचार से मेरी चिन्ता बढ़ गयी थी। मैं जब अपनी बड़ी पुत्री शारदा से मिलने सहारनपुर गया था (अप्रैल में), तब आपका स्वास्थ्य कुछ नरम तथा ढीला चल रहा था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपसे वार्तालाप करने पर ही पता चला था कि आप मेरे भाषण की अध्यक्षता-करने के लिए मुन्नालाल-खेमका कन्या महाविद्यालय में क्यों नहीं पहुँच सके थे ? प्राचार्या डा० (श्रीमती) **रमा दुबलिश जी** ने आपके न पधारने का कारण मुझे संकेत में बताया तो था। अब बेटी **बीणा अग्रवाल** के पत्र से सन्तोष-सा है कि आपका स्वास्थ्य ठीक होता जा रहा है। परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना है कि आप पूर्णतः स्वस्थ रहते हुए ऋषियों की आयु प्राप्त करें। मैं बेटी **शारदा शर्मा** से भी आपका कुशल-क्षेम पूछता रहता हूँ।

आपने संस्मरणों तथा लघु कहानियों के माध्यम से देश को सदाचार और सच्चरित्रता का प्रभावी संदेश दिया है। राष्ट्र के नेताओं को 'स्व' तथा स्व-कर्तव्य को पहचानने के लिए आपने समय-समय पर ग़जब के संकेत किये हैं। साहित्य-सर्जना के द्वारा युवा पीढ़ी को कर्तव्य की उदात्त भूमि पर सँभलकर चलने के लिए बड़े लाड़ से, प्यार से, और आवश्यकता पड़ने पर फटकार से भी कस कर कहा है। डा०(कु०) **आ० कमला** के शोध-ग्रंथ से तो हिन्दी-जगत् आपके सारस्वत कृतित्व से बहुत गहरे रूप में परिचित हो जाएगा।

हिन्दी में **रिपोर्ताज** की जिस विधा को शिवदानसिंह **चौहान** ने प्रारंभ किया, उसे आपने बहुत निखारा और सजाया है।

हिन्दी-रिपोर्ताज के अतिरिक्त **संस्मरण** और **रेखाचित्र** जैसी नूतन विधाओं को आपकी लेखनी ने उच्चता और उदात्तता प्रदान की है। आपके साहित्य में **शुद्ध रेखाचित्र** भी पर्याप्त मिल जाते हैं।

हिन्दी समिति, सूचना-विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ से सन् १९६९ ई० में एक पुस्तक प्रकाशित हुई है, जिसका नाम है **हिन्दी-रेखाचित्र**। उस पुस्तक की भूमिका से ऐसा प्रतीत होता है कि उस पुस्तक को वास्तव में अधिकांश में **डा० फूलबिहारी शर्मा** ने लिखा है। पूरी पुस्तक में अधिकतर उदाहरण ऐसे हैं; जिन्हें **रेखाचित्रात्मक संस्मरण, रेखाचित्रात्मक निबन्ध, रेखाचित्रात्मक कहानी** या **रेखाचित्रात्मक जीवन-वृत्त** ही कहा जा सकता है। **रेखाचित्र** प्रमुखतः चित्र-प्रधान होता है। उसमें वस्तु, दृश्य या व्यक्ति की शब्दात्मक फोटोग्राफी होती है। लेखक अपने भावों को उसमें, प्रतिष्ठापित नहीं करता। **रेखाचित्र** शुद्ध विषयगत होता है। **संस्मरण** विवरणप्रधान और विषयिगत होता है। **रेखाचित्र** वर्तमान से, लेकिन **संस्मरण** भूत से प्रमुखतः अधिक सम्बद्ध होता है।

श्री विनोदशंकर व्यास ने एक पुस्तक लिखी है **प्रसाद और उनके समकालीन**। उसमें **प्रसाद** और **निराला** के भी रेखाचित्र हैं। डा० कुमार विमल ने डा० नगेन्द्र

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का रेखाचित्र लिखा है। वह वर्तमान से सम्बद्ध है। अतः वह शुद्ध रेखाचित्र है। रेखाचित्रों के प्रसंग में **हिन्दी-रेखाचित्र** के लेखक महोदय यदि प्रभाकर जी के रेखाचित्रों को अपनी निजी आँखों से ध्यानपूर्वक पढ़ लेते, तो मेरी अपनी राय है कि उन्हें उस पुस्तक के लिए शुद्ध रेखाचित्रों के वास्तविक नमूने अवश्य ही पर्याप्त संख्या में मिल जाते।

पंडित जी ! आपके रेखाचित्रों तथा संस्मरणों में हमारे राष्ट्र का आचरण, नीति, कर्तव्य और निष्ठा मुखरित हुई है। संस्मरण-साहित्य अपने सत्य के बल पर कहानी, उपन्यास से तो अधिक प्रभावी होता ही है; फिर यदि उसे **श्री प्रभाकर जी** जैसे व्यक्तित्व की प्रभा भी प्राप्त हो जाए, तो उसकी चमक का फिर कहना ही क्या ? आपने व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को जीवन जीना बताया है। आपकी प्रतिभा औदात्य के शिखरों को छू चुकी है। **आकाश के तारे धरती के फूल, अनुशासन की राह में** आदि कृतियाँ प्रमाण हैं।

वीरेन्द्र सिन्धु को आपने प्रेरणामयी सहायता देकर जो शहीद भगतसिंह के राष्ट्र-बलिदानी स्वरूप को देश के समक्ष प्रस्तुत कराया है, उसके लिए मैं आपको हार्दिक बधाई अर्पित करता हूँ। **सरदार भगतसिंह : पत्र और दस्तावेज** (१९७७ ई०) पुस्तक निश्चित रूपेण राष्ट्रीय महत्त्व की है और हमारे राष्ट्र की बहुमूल्य धरोहर है।

हिन्दी के रेखाचित्र-साहित्य, संस्मरण-साहित्य और रियोर्ताज़ के पाठक आपको सदा श्रद्धा से स्मरण करते रहेंगे।

जब-जब मैंने आपके दर्शन किये, तब-तब संत तुलसीदास की इस मानस-अर्धाली का द्वितीय चरण मेरे स्मृति-पटल पर आता ही रहा—

बरषहिं जलद भूमि निअराएँ
जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ (किष्कि० १४/३)।

कृपया कुशल-क्षेम लिखते रहा करें। बच्चों को प्यार।

श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' विनीत
विकास लिमि०, सहारनपुर (उ० प्र०) अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्रीमती निर्मलकुमारी वार्ष्णेय के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)

प्रिय शिष्या निर्मल, दिनांक २०. ७. ७८ ई०

आशीर्वाद।

तुम्हारे पत्र में यह समाचार पढ़कर प्रसन्नता हुई कि तुम शीघ्र ही एक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष के अन्दर अपना पी-एच० डी० का शोध-प्रबंध काशी विश्वविद्यालय में प्रस्तुत करनेवाली हो। माता शारदा तुम्हारा मंगल करें !

तुमने आज-कल के **उपन्यासों और कहानियों में अश्लीलता और जीवन-मूल्य-हीनता का जो प्रश्न उठाया है,** उसमें बहुत-कुछ तथ्य है। सन् १९६२ ई० में रोमांस से कुछ हमें मुक्ति मिली थी, क्योंकि चीन-भारत-युद्ध आरंभ हो गया था। श्री निर्मल वर्मा की कहानियाँ तो पश्चिम की रोमानी रुचि से ओत-प्रोत हैं। **महेन्द्र भल्ला** की कृति **एक पति के नोट्स** में नैतिक मूल्यों के लिए कोई स्थान नहीं है। हमारे कुछ कथाकारों और उपन्यासकारों ने प्रगतिशीलता का अर्थ नग्नवासना का उद्घाटन मान लिया है। महिलाओं में **दीप्ति खंडेलवाल** की कथा-कृतियों और उपन्यासों का मैं बहुत आदर करता हूँ। उनमें हमारे सामाजिक एवं पारिवारिक जीवनमूल्यों की रक्षा हुई है। उनके नारी पात्र भी भारतीय संस्कृति की उदात्त गरिमा से मंडित हैं।

पिछले दशक की कहानियों की शैली और शिल्प में मुझे नूतनता और व्यापकता इस रूप में अच्छी लगी है कि कहानी में अब **निबन्ध, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, संस्मरण, डायरी** आदि की विधाएँ भी सम्मिलित हो गयी हैं।

मैंने उपन्यास और कहानियाँ बहुत कम पढ़ी हैं। जो थोड़ा-बहुत पढ़ा है, उसके आधार पर इतना कह सकता हूँ कि हिन्दी-कहानियाँ और उपन्यास अधिक संख्या में सैक्स का ही चक्कर लगा रहे है। संयोग से तीस जनवरी, सन् १९७७ ई० के 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में **दीप्ति खंडेलवाल** की **चंदा की जोत** कहानी पढ़ी थी। उसमें लेखिका ने ग्रामीण अशिक्षित निर्धन नारी के जिस चारित्रिक उदात्त चित्र को पातिव्रत के पटल पर कर्मठता की तूलिका से चित्रित किया गया है, वह निस्संदेह अभिनंदनीय है। उसे पढ़कर मन प्रसन्न हुआ था। अब कहानियों और उपन्यासों में भाषा और अभिव्यंजना का सहज और सबल रूप आने लगा है—यह वास्तव में शुभ लक्षण है।

उपन्यास-साहित्य में अब ऐसे उपन्यासकारों की आवश्यकता है, जो जीवन-अवमूल्यों के अंधकार को अपनी ज्योति से विनष्ट कर सकें। क्या तुमने **श्री अमृतलाल नागर** का **मानस का हंस** और आचार्य **हजारीप्रसाद द्विवेदी** का **अनामदास का पोथा** पढ़ा है ? न पढ़ा हो, तो पढ़िए। **अनामदास का पोथा** पढ़ने पर मुझे बहुत-सी वे बातें मालूम हुईं, जिन्हें मैं नाट्यशास्त्र और उपनिषद् साहित्य को पढ़ने पर भी न जान सका था। **अनामदास का पोथा** में लेखक ने दर्शन को उपन्यास की सरसता प्रदान की है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो उपन्यासकार यथार्थ और प्रगतिशीलता के नाम पर नग्न वासना और जीवन-मूल्य-हीनता की बातें कहते हैं, वे न यथार्थ समझते हैं और न प्रगतिशीलता। हित-सहित प्रगति ही वास्तव में प्रगति है।

हमारे समाज में आज-कल कुछ आध्यात्मिक गुरु तथा मॉडर्न योगी भी अपना बुद्धिपरक मॉडर्न योग दिखाने और बताने में लगे हैं, जिसमें जीवन की मूल्य-हीनता छिपी है। नैतिकता के नाम पर शून्य दृष्टिगोचर होता है। समाज में भ्रष्टता और अनैतिकता बढ़ती जा रही है। साहित्य-जगत् में अपने विकृत विरेचन की कुदाली से कुछ उपन्यासकार भी नैतिकता तथा जीवन की उदात्तता की जड़ खोद रहे हैं। उनसे सावधान रहने की आवश्यकता है। शेष फिर कभी अगले पत्र में।

सबको यथा योग्य। डा० शुकदेवसिंह जी से मेरा नमस्कार कहना। प्रियवर वेदप्रकाश वार्ष्णेय को असीस। सस्नेह,

श्रीमती निर्मलकुमारी वार्ष्णेय, एम० ए०   शुभैषी
द्वारा - श्री वेदप्रकाश वार्ष्णेय,   अम्बाप्रसाद 'सुमन'
डी ४८/७६, मिसिर पोखरा, वाराणसी–२२१००१ (उ० प्र०)

डा० वागीशदत्त पाण्डेय के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक ६. ८. ७८ ई०

प्रिय भाई पाण्डेय जी,

आपका पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। आपने तो तुलसीदास के काव्य से सम्बद्ध **अन्तःकथाओं** का अध्ययन बड़ी बारीकी से किया है। आपका यह प्रश्न बड़ा विस्तृत उत्तर चाहता है कि रामचन्द्र जी ने सीता को वनवास क्यों दिया? उससे संबद्ध मुख्य कारण क्या-क्या हैं? मैं इस प्रश्न का उत्तर संक्षेप में लिख रहा हूँ।

भाई पाण्डेय जी! सीता-वनवास के कारण का सर्व प्रथम उल्लेख हमें **वाल्मीकीय रामायण** (उत्तरकाण्ड, सर्ग ४२,४३) में मिलता है, जिसमें कहा गया है कि गर्भवती सीता जी ने पवित्र तपोवनों को देखने की इच्छा प्रकट की और सीता जी की इच्छा-पूर्ति का वचन राम ने तुरन्त पालन किया। यह उत्तरकाण्ड के ४२ वें सर्ग के ३३वें श्लोक में वर्णित है। फिर उसी काण्ड के ४३ वें सर्ग में श्लोक ४ से २१ तक गुप्तचर 'भद्र' की सूचना से सम्बद्ध एक दूसरा कारण भी बताया गया है। सीता के सम्बन्ध में लोकापवाद की सूचना 'भद्र' देता है। राम तब सब भाइयों से तथ्य पूछते हैं। सब भाई 'भद्र' नाम के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुप्तचर की बात का समर्थन करते हैं। अतः राम लोकापवाद की रक्षा के लिए अग्नि-परीक्षा कर लेने पर भी सीता को वनवास दे देते हैं।

भवभूति ने **उत्तर रामचरितम्** नाटक में सीता के संबंध में एक लोकापवाद **दुर्मुख** नाम के गुप्तचर से राम के कान में कहलवाया है। लोक-स्वर की रक्षा के लिए विवश होकर तथा छाती पर वज्र रखकर राम ने निर्दोष तथा प्राणप्रिया पावनी सीता को वनवास दिया है। संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार महाकवि **भवभूति** का समय सन् ७४० ई० है। सीता वनवास के सम्बन्ध में भवभूति ने बहुत-कुछ वाल्मीकीय रामायण का ही अनुकरण किया है। नूतन उद्भावना नहीं है।

सीता वनवास के सम्बन्ध में **गुजराती रामायण** (१९ वीं शती) के रचयिता **श्री गिरधरदास** ने अपनी कृति (गिरधर रामायण) में तीन कारणों का उल्लेख किया है, जो नये-से हैं—

प्रथम कारण—वाली की पत्नी तारा (मयतनया **मंदोदरी** की बहिन) का राम को शाप। तारा ने रामचन्द्र जी से कहा कि तुमने अपनी पत्नी **जनक-दुलारी** की प्राप्ति के लोभ में मेरे निर्दोष पति को मारा है। मैं शाप देती हूँ कि वह जनकदुलारी तुम्हें प्राप्त न होगी।

द्वितीय कारण—कैकेयी की द्वेषपूर्ण चाल। एक दिन कैकेयी ने सीता से रावण का चित्र बनाने के लिए कहा। सीता जी ने सास से निवेदन किया कि मैं सदा नीचे दृष्टि रखती थी। मैंने **रावण** का केवल पाँव का अँगूठा देखा है। उसे बना सकती हूँ। सीता जी ने पाँव का अँगूठा बना दिया। शेष चित्र कैकेयी ने पूरा करके राम को दिखाया और कहा कि "सीता ने रावण को पूरी तरह देखा है। यह कलंकिनी है; दुष्चरित्रा है। इसने तुम्हारे वंश को कलंकित कर दिया।" राम ने कैकेयी की बातों पर विश्वास कर लिया।

तृतीय कारण—शुकी के वियोग से दुःखी शुक का सीता जी को शाप, जो धोबी के रूप में फलित हुआ।

पद्मपुराण के पाताल खंड में **रामाश्वमेध** से प्राप्त 'शुक-शुकी-संवाद' के आधार पर **श्री गिरधरदास** ने अपनी **गुजराती रामायण** में लिखा है कि बाल्य काल में छह वर्ष की सीता एक पेड़ के नीचे बैठी हुई शुक-शुकी से राम-चरित सुन रही थीं। शुक ने राम की कथा सीता-हरण तक सुनाई और फिर चुप हो हो गया। सीता जी ने आगे के वृत्तान्त के लिए बहुत आग्रह किया। शुक जब फिर भी मौन रहा, तब सीता जी ने शुकी को पिंजड़े में बन्द करा दिया। शुकी उस समय गर्भवती थी। वियोग-जन्य पीड़ा से पीड़ित शुक निराश होकर उड़

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया और प्रयागराज जा पहुँचा। वहाँ गंगा-यमुना-संगम के जल में डुबकी मार कर पवित्र हुआ और सीता जी को शाप दिया। उसी शाप के वशीभूत होकर वही शुक फिर अयोध्या में जाकर धोबी बना और उस धोबी की बात पर ही राम ने सीता जी को वनवास दिया।

मिथिला, बिहार आदि के लोक-जीवन में कुछ **लोक-गीत** और **लोक-कथाएँ** प्रचलित हैं। उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि कैकेयी की एक पुत्री थी जिसका नाम **ककुआ** था। ककुआ ने आग्रह करके सीता से रावण का चित्र बनवाया। सीता जी ने कहा कि मैंने रावण की पृथ्वी पर पड़ी हुई छाया ही देखी है ; उसे ही बना सकती हूँ। सीता जी ने रावण की छाया का चित्र बनाया और बनाते-बनाते वे बेहोश हो गयीं। ककुआ ने रावण का वह छाया-चित्र राम को दिखाया और अन्यथा बातें बनाकर राम को शंकालु बना दिया। राम ने फिर सीता जी को वनवास दे दिया।

लोक के हृदय पर ककुआ (कैकेयी की पुत्री) की करतूत अंकित है, जिसने सीता को वनवास दिया। ग्रंथों में तो कैकेयी की करतूत ही अंकित है, जिसने राम को वनवास दिया।

दशरथ कैकेयी को वरदान देने में प्रतिश्रुत हो चुके हैं। दशरथ कैकेयी को स्वयंवर में से लाते हैं और मार्ग में राजाओं से युद्ध के समय कैकेयी उसके (दशरथ के) प्राण बचा लेती है। यह घटना स्वयंभू के 'पउमचरिउ' में है। वाल्मीकि-रामायण में वर्णित है कि देवासुर-संग्राम में शंबासुर (रावण का साढ़ू) दशरथ को मूर्च्छित कर देता है।

कैकेयी अपने कौशल से दशरथ को स्वस्थ कर लेती है। यह कथा वाल्मीकि द्वारा वर्णित है। ब्रह्मपुराण की यह कथा लोक में बहुत प्रचलित है कि देवासुर संग्राम में दशरथ के रथ की धुरी टूटने पर कैकेयी ने रथ को साधा था, तब दशरथ विजयी हुए थे। तभी राजा दशरथ ने कैकेयी से दो वरों के लिए कहा था।

तुलसी ने 'रामचरितमानस' में इस सीता-वनवास-प्रसंग का स्पर्श किया ही नहीं। अपने मर्यादावादी राम को तुलसी क्यों ऐसी विषम परिस्थिति में डालते ? ठीक ही किया।

हर्ष है आप सानंद हैं। कुशल-क्षेम देते रहा करें।

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० वागीशदत्त पाण्डेय, डी० लिट्०
हिन्दी-विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय,
आगरा (उ० प्र०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री मोरमुकुट शर्मा के नाम

शिविर, नई दिल्ली

दिनांक २५. ८. ७८ ई०

प्रियवर मोरमुकुट शर्मा,

आशीर्वाद ।

तुम्हारे पत्र से विदित हुआ कि तुम हिन्दी के प्राध्यापक नियुक्त हो गये हो; प्रसन्नता हुई । माता वीणापाणि तुम्हारा कल्याण करें । तुम्हारी जिज्ञासा से मुझे इसलिए प्रसन्नता अधिक है कि तुम एक सच्चे निष्ठावान् अध्यापक के स्वरूप की रक्षा करना चाहते हो । इसलिए तुम पढ़ाने से पूर्व सूर के निम्नांकित पद की प्रथम दो पंक्तियों का अर्थ और उनमें अन्तभूर्त अलंकार भी जानना चाहते हो—

चरन-कमल बंदौं हरिराइ ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अंधे कौं सब कछु दरसाइ ।।—(सूरसागर)

प्रियवर शर्मा, उपर्युक्त पद **सूरदास** के **सूरसागर** का मंगलाचरण-सूचक-पद है । इसके माध्यम से महाकवि सूरदास जी भगवान् कृष्ण की वंदना कर रहे हैं । वह कहते हैं—मैं उस भगवान् के कमल के समान चरणों की वंदना करता हूँ, जिस भगवान् की कृपा से पंगा (लूला) पर्वत लाँघता है और अन्धे को सब कुछ दिखाई पड़ता है ।

द्वितीय चरण में आये हुए **पंगु** शब्द के अर्थ को ठीक तरह से समझ लेना चाहिए । **पंगा** लँगड़े से भिन्न होता है । पंगे की दोनों टाँगें बेकार होती हैं । पंगे के दोनों पाँव चलने में असमर्थ होते हैं । पंगे को 'लूला' भी कहते हैं । लँगड़े की एक टाँग ठीक होती है । वह कुछ चल भी सकता है । पंगा नहीं चल सकता ।

चरन-कमल बंदौं हरिराइ में वाचक-धर्म-लुप्तोपमा अलंकार है । कुछ लोग इसमें रूपक अलंकार बताते हैं । वे ग़लती पर हैं । यदि वंदना **उपमान कमल** की कीजाती, तो **रूपक अलंकार** माना जा सकता था । यहाँ वंदना **उपमेय चरन** की है । उपमान 'कमल' और उपमेय 'चरन' ही व्यक्त हैं । न वाचक शब्द, और न धर्म वर्णित है । इस लिए यहाँ **वाचक-धर्म-लुप्तोपमा** अलंकार है ।

तुलसी-रवि ने हिन्द का तम मिटाकर हिन्दुओं को सत् पन्थ दिखाया— इस वाक्य में रूपक अलंकार है, क्योंकि **उपमान रवि** है और वही अंधकार मिटाने का कार्य कर रहा है ।

तुम्हें **वाचक-धर्म-लुप्तोपमा** और **रूपक** के इस सूक्ष्म अन्तर को गाँठ बाँध लेना चाहिए ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी से 'सूरसागर' का हिन्दी-टीका-सहित संस्करण प्रकाशित हुआ है। वह लीलात्मक संपादन है। उसमें "देखौ (माई !) दधि-सुत मैं दधि जात।" का अर्थ लिखा गया है—'हे सखी ! देखो, चन्द्रमा में दही समाया चला जा रहा है—"यह अर्थ संगत नहीं। **दधिजात** एक योगरूढ़ सामासिक शब्द है, जिसका अर्थ है **कमल**। संगत अर्थ यह होना चाहिए—हे सखी ! चन्द्रमा में (उदधिसुत में) कमल (उदधिजात) देखो।

पुस्तक में हुई भूल बहुत-से पाठकों को पथ-भ्रष्ट करती है। कुछ लेखकों की भूल से **चरन-कमल बंदौं हरिराइ** में रूपक बताया जाने लगा।

शेष फिर कभी। सस्नेह,

श्री मोरमुकुट शर्मा, एम० ए०
हिन्दी-प्रवक्ता,
धर्मसमाज इंटर कालेज, अलीगढ़ (उ० प्र०)

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री सेठ जयदयाल डालमिया के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१
दिनांक ३१–८–१९७८ ई०

मान्यवर श्री डालमिया जी,

जय श्रीकृष्ण !

आपके द्वारा प्रेषित (स्व०) **श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार** की कृति **पद-रत्नाकर** कल दिनांक ३०. ८. ७८ की डाक में मिली। आपका पत्र, दिनांक २२. ८. ७८, भी यथासमय मिल गया था। तदर्थ हार्दिक धन्यवाद !

मैंने 'पद-रत्नाकर' को आदि से अन्त तक मनोयोग तथा रुचि से पढ़ा है। आपके परम श्रद्धेय भ्राता जी श्री हनुमानप्रसाद जी पोद्दार (आदि संपादक, 'कल्याण') ने साहित्य के माध्यम से भारतीय संस्कृति, दर्शन, धर्म, भक्ति, मानव-औदात्य का प्रचार, प्रसार तथा उत्कर्ष करते हुए जन-जन में भाव-सुरसरी प्रवाहित की। अध्यात्म के सुधा-सरोवर में सब को स्नान कराया। ब्रज-प्रेम और श्री राधा-कृष्ण-प्रेम के गूढ़ तत्त्व की कवितामयी सरस व्याख्या के रूप में **पद-रत्नाकर** कृति हिन्दी-काव्य-जगत् में आदर प्राप्त करेगी।

पद-रत्नाकर की कविताओं में ब्रजभाषा और खड़ी बोली—दोनों—की ही मिठास मिल जाती है। सूरदास के-से भक्तिपरक पदों और खड़ी बोली की सरस कविताओं को पढ़कर हिन्दी-काव्य के भक्तिकाल से लेकर आधुनिक काल के द्विवेदीयुग तक की-सी कविता-सुधा-माधुरी पाठक को प्राप्त हो जाती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निस्संदेह **पद-रत्नाकर** से हिन्दी के अध्यात्म-प्रेमी एवं भक्तहृदय पाठक परम आनन्द प्राप्त करेंगे।

श्री हनुमानप्रसाद जी पोद्दार ने तो भारत के नैतिक स्तर की रक्षा अपनी साहित्य-सर्जना द्वारा की है। आपने भी उनकी कविताओं को प्रकाशित कराके भारतीय संस्कृति और समाज की सेवा की है। आपके द्वारा यह सारस्वत भ्रातृ-श्राद्ध निश्चित रूप से अभिनंदनीय हुआ है। हार्दिक बधाई!

कृपया इस पत्र की पहुँच लिखें। हर्ष है भगवान् की दया से आप सपरिवार सानंद हैं।

श्री सेठ जयदयाल डालमिया, आपका
४–सिंधिया हाउस, नई दिल्ली—११०००१ अम्बाप्रसाद 'सुमन'

कु० रुबीना नज़ीर के नाम

शिविर, मथुरा
१६. ६. ७८ ई०

प्रिय शिष्या रुबीना नजीर,

आशीर्वाद।

तुम्हारा जिज्ञासात्मक प्रश्न तो अच्छा है; लेकिन इसका उत्तर पत्र में लिखूँ, तो तबियत नहीं भरेगी, मेरी भी और तुम्हारी भी। क्योंकि इस प्रश्न के उत्तर में तो एक पुस्तक लिखी जा सकती है। तुम निष्ठा से अध्ययन करो और दो-तीन साल में अच्छी-सी पुस्तक लिख डालो इस पर। प्रामाणिक ऐतिहासिक जानकारी के लिए डा० रघुवीर सिंह और डा० आनन्दकृष्ण की रचनाओं को तुम अवश्य पढ़ना।

तुम्हारा प्रश्न—"मुसलमानों ने किस रूप में हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि को अपनाया है? विशेष रूप से मुगलशासन-काल में।"

मेरा उत्तर—साहित्य में तो तुम्हें जायसी, रहीम, रसखान, रसलीन आदि अनेक मुसलमानों की हिन्दी-सेवा के ज्वलन्त उदाहरण मिल जाएँगे। अपने पाठ्यक्रम में तुमने उनमें से कुछ की कृतियों को पढ़ा भी होगा।

इतना ही नहीं, मुस्लिम शासकों ने भी हिन्दी-संस्कृत को तथा देवनागरी लिपि को शासन के स्तर पर अपनाया था। महमूद गजनवी के शासन-काल के कुछ सिक्के मिलते हैं, जिनपर एक तरफ़ लक्ष्मी की मूर्ति है और दूसरी तरफ़ क़लमा का संस्कृत-अनुवाद है।

हुमायूँ से **औरंगज़ेब** तक ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि बादशाहों के हाथियों,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घोड़ों, वस्त्रों, अस्त्रों, उपाधियों के नाम संस्कृत-हिन्दी में हुआ करते थे। औरंगज़ेब ने तो आमों के नाम 'रसनाविलास' और 'सुधारस विलास' रखे थे।

अकबर के दरबार के रत्न तथा संगीत-पंडित तानसेन ने ध्रुवपद में रचनाएँ की थीं। संगीत की इस शैली को ब्रजभाषा के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता था। सूर-पूर्व-ब्रजभाषा का रूप संगीत के उन बोलों में देखा जा सकता है।

मुहम्मदशाह के काल में भोजपुरी बोली के संगीत को पर्याप्त सम्मान मिला था। खानदेश और मालवा के शासक अपने शिला-लेखों पर अपने आदेश या सिद्धान्त फ़ारसी लिपि और देवनागरी लिपि—दोनों—में खुदवाया करते थे।

इस प्रकार मुसलमानों के द्वारा हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि अपनायी गयी। वे अपने शासन के लिए हिन्दी और नागरी को अपनाना एक सामाजिक तथा शासकीय धर्म मानते थे। कवियों का तो कहना ही क्या ? **रसखान** की-सी मधुर, सरस, सरल और सहज ब्रजभाषा तो आज तक कोई दूसरा कवि लिख ही नहीं सका।

प्रसन्नता है कि तुम परमेश की दया से सपरिवार सानन्द हो। अपने पिताजी (**डा० नज़ीरमुहम्मद जी**) का कुशल समाचार देना और उनसे मेरा नमस्कार कहना। बच्चों को आशीर्वाद ! सस्नेह,

कु० रुबीना नज़ीर, एम० ए० शुभैषी
हिन्दी विभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ० प्र०)

श्री कैलाशचन्द्र शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१
प्रियवर कैलाशचन्द्र, २२. ६. ७८ ई०

आशीर्वाद।

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने साइंस के एक विद्यार्थी का कथन निम्नांकित शब्दों में लिखकर उसके सम्बन्ध में मेरी राय पूछी है—

"कविता ठल्लू लोगों का ठल्लीपने का कालातिपात है। कविता से मानव-जीवन को कोई लाभ नहीं। साइंस ने तो मानव-जीवन को अनेक सुख-सुविधाएँ प्रदान की हैं।"—इस कथन के सम्बन्ध में आपका क्या मत है ?

जहाँ तक शारीरिक सुख-सुविधाओं का प्रश्न है, साइंस ने निश्चित रूपेण हमें सुख पहुँचाया है और सुविधाएँ प्रदान की हैं; लेकिन विज्ञान के विध्वंस-कारी कुपरिणाम भी मनुष्यों को झेलने पड़े हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान प्रकृति या संसार के पदार्थों का निस्संग रूप से बुद्धि द्वारा तात्त्विक विश्लेषण एवं वर्णन है। विज्ञान जल के सम्बन्ध में इतना कहता है कि दो भाग हाइड्रोजिन और एक भाग ऑक्सीजिन मिलकर पानी बन जाता है; अर्थात् $H_2O = W$

कविता ससंग रूप से हृदय द्वारा अभिव्यक्त प्राणी या वस्तु के प्रति भावात्मक अभिव्यंजना है। 'कविता' 'जल' का वर्णन मानवीय भावों को लेकर करती है। कविता में 'जल' इसलिए वर्णनीय है कि वह शीतल हैं, मनुष्यों की प्यास बुझाता है। जीवित रखता है। जीवन प्रदान करता है—इसलिए उसका नाम जीवन भी है।

कविता से मनुष्य की पाशविक वृत्तियों का विनाश होता है। कविता से मानव ऊपर उठता है, देवत्व को प्राप्त करता है। उसका हृदय विशाल बनता है। कविता उदात्तता की सीढ़ियों पर चढ़ने के लिए प्रेरणा देती है। कविता के माध्यम से सत्य शिव और सुन्दर बनकर कला के रूप में आता है और पूजा जाता है।

कविता भावलोक के दिव्य सौन्दर्य को प्रस्तुत करती है और जीवन को अमृत प्रदान करती है।

ब्रह्मा की सृष्टि कविता के माध्यम से सहस्रगुनी दिव्य और अलौकिक बन जाती है। इसलिए आचार्य मम्मट ने कविता को 'नियतिकृत नियमरहित' कहा है। अगस्त्य मुनि राम के चरित्र का गुण-वैभव वर्णन करते थे, काव्यात्मक वाणी में। सनकादि मुनि अयोध्या के राम को देखने नहीं जाते थे; अगस्त्य की काव्यात्मक वाणी के राम के ही दर्शन करते थे। यह कविता का ही जादू था।

काव्यस्रष्टा कवि सूचना नहीं देता; यह कार्य इतिहासकार का है। कवि कोरा तथ्य-निरूपण नहीं करता; यह काम गणितशास्त्री का है। कवि वस्तु-विश्लेषण नहीं करता; यह काम वैज्ञानिक का है। कवि उपदेश नहीं देता; यह काम धर्मप्रचारक का है। कवि अक्षुण्ण प्रतिकृति नहीं करता; यह काम फोटोग्राफ़र का है। कवि तो कविता के माध्यम से अपनी अनुभूति को सर्वानुभूति बनाता है।

विज्ञान पदार्थ है; **कविता** ऊर्जा है, जीवन है। 'विज्ञान' धरती को दिखाता है, 'कविता' स्वर्ग के दिव्य दर्शन कराती है। 'विज्ञान' रचना करता है, 'कविता' सर्जना करती है। 'विज्ञान' वह आग है, जो भोजन पकाती और इंजन चलाती है; 'कविता' वह दिव्य ज्योति है, जो मन को, बुद्धि को तथा आत्मा को प्रकाशित करती है। 'विज्ञान' को साधन बनाकर जब मानव दानव

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनकर प्रलय पर उतारू होने लगता है, तब 'कविता' ही उसे पुनः दिव्य मानव के रूप में ला सकती है। शेष फिर कभी लिखूँगा।

तुम अपने उस मित्र से साग्रह निवेदन करो कि वह कुछ दिन कविता की पुस्तकें पढ़ें।

श्री कैलाशचन्द्र शर्मा, एम० ए०, शुभैषी
स्थान व पो० अंडला, (अलीगढ़) अम्बाप्रसाद 'सुमन'

सुकवि श्री त्रिभुवननाथ शर्मा 'मधु' के नाम

हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
पिन–२०२००१
दिनांक २३–९–७८ ई०

प्रिय श्री 'मधु' जी,

सप्रेम नमस्कार !

आपके दोनों पत्र (१४–९–७८ तथा १५–९–७८) मुझे यथासमय मिल गये थे। एतदर्थ हार्दिक धन्यवाद !

आपके दिनांक १४–९–७८ के पत्र में जिज्ञासा के रूप में निम्नांकित पंक्तियाँ पढ़ने को मिलीं—"एक स्थान पर आचार्य **क्षेमचन्द्र जी 'सुमन'** (दिल्ली) ने लिखा है:—

पिछले दो दशकों में जो रचनाएँ **नई कविता, गेय कविता अकविता, अगली कविता, मिनी कविता, शून्य कविता, श्मशानी कवित** आदि नामों से हिन्दी पर आरोपित की गयी है, उनसे न तो कोई साहित्य का उपकार हुआ है और न उनसे उनके रचनाकारों का ही हित-सम्मान हुआ है।'

अनेक साहित्यकार ऐसे भी हैं, जिनकी विचारधारा इससे भिन्न है। इस विषय में आपकी क्या मान्यता है ? मेरी जानने की प्रबल इच्छा है।"

मधु जी ! पिछले दो दशकों में 'नयी कविता' आदि तथा अन्य नामों के साथ जो मुक्तक काव्य के रूप में रचनाएँ लिखी गयी हैं, उनका विश्लेषण-विवेचन दो आधारों पर किया जा सकता है—(१) **भाव-विचार-आधार** (२) **भाषा-शैली-परक-अभिव्यक्ति-आधार**। यह तो निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उन कविताओं में विचार-प्रधान्य रहा है; भाव या रस का प्राधान्य नहीं। मेरी दृष्टि में कविता की पहली शर्त भाव-प्रवणता अर्थात् रसमयता होनी चाहिए। जो कविता हमारे हृदय से दूर रहकर केवल बुद्धि को ही झकझोरती रहे, उसे मेरी दृष्टि में कम से कम 'कविता' तो नहीं कहना चाहिए; चाहे किसी अन्य विधा के साथ उसका नाम-करण कर दिया जाए।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता रसमयता का गुण तभी प्राप्त कर सकती है, जब उसके रचयिता की कथन-प्रणाली ऐसी हो, जिसे पाठक समझ सकें और कवि का कथ्य उन्हें सहज रूप में बोधगम्य होकर अन्य सभी पाठकों का, तथा समाज का हित भी कर सके। बिना हित के 'सहित्य' कैसा ? साहित का भाव ही तो **साहित्य** है। "सहितस्य भावः साहित्यम्"।

मैं मानता हूँ कि नयी कविता ने हमारे समाज की परिवर्तित मानसिकता को कुछ चित्रित अवश्य किया है; लेकिन वह उस परिवर्तित समाज की कुंठा, आक्रोश, कुपित काम और नैतिक हीनता को ही व्यक्त करती रही है।

पिछले दशक की अधिकांश कविताओं के प्रतीक इतने गूढ़, क्लिष्ट और वैयक्तिक हैं कि पाठक उन्हें समझ नहीं पाते कि कवि क्या कहना चाहता है ? कवि प्रायः अपना कथ्य अपने तक ही सीमित कर बैठे हैं। अपनी बात में आपसे स्पष्ट कर दूँ कि बहुत-सी कविताएँ मैं स्वयं काफी माथा-पच्ची करने पर भी पूरी तरह नहीं समझ पाता हूँ। दिमाग़ी कसरत कविता के रस को मरुस्थल के रेत में बदल देती है। उन कवियों के प्रतीक प्रायः अपने निजी ही हैं।

प्राचीन भारतीय समाज में जीवन को सुव्यवस्थित और पूर्णाङ्गी बनाने के लिए तीन नीतियों को प्रतिष्ठापित किया गया था—(१) **त्रयीनीति** (२) **दंडनीति** (३) **अर्थनीति**। मनुष्य ने समाज के लिए **धर्म**, **अर्थ** और **काम**—तीनों—को ही आवश्यक बताया था। नयी कविता में केवल **काम** प्रधान है। उसमें कुण्ठा संत्रास, नग्न काम, जीवनमूल्य-भंजन और निजी विक्षुब्ध मानसिकता ही अधिक है।

उपर्युक्त कविताओं के मूल में केन्द्रीय विचार ऐसे ही अधिक रहे हैं, जो जीवन-मूल्यों का भंजन करते हैं। उनमें निराशा, कुण्ठा, वासना, नग्नता आदि ही व्यंजित हैं। चार-छह कवियों को छोड़कर अधिकांश में ऐसे कवियों ने ऊल-जलूल क्लिष्ट प्रतीकात्मक गद्य-सा ही अधिक लिखा है। प्रगतिशीलता, नवीनता तथा यथार्थ के नाम पर विचारों में घटियापन-सा ही मुझे मिला।

गत द्विदशकों की निर्दिष्ट कविताएँ कुछ क्षण के लिए विचार की बिजली को कौंधा तो देती हैं, किन्तु भाव-विभोर नहीं बनातीं। वे कविताएँ गद्य के निकट अधिक हैं। उनमें मेरा हृदय तो रमा नहीं, और मेरी बुद्धि से भी कुछ परे ही रही हैं।

मैं समझता हूँ कि आपको मेरा मंतव्य स्पष्ट हो गया होगा। सारांश यह कि कम से कम वे कविताएँ मेरे भावुक हृदय का संस्पर्श नहीं कर सकी हैं।

हर्ष है आप सपरिवार सानंद हैं। आपकी कृति **श्री शत्रुहन** को देखकर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथासंभव जल्दी ही वापस करने का प्रयत्न करूँगा। बच्चों को प्यार तथा आशीर्वाद ! सस्नेह,

श्री त्रिभुवननाथ शर्मा 'मधु', शुभैषी
बाराबंकी (उ० प्र०) अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री मुरारीलाल शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१
दिनांक ३०. ६. ७८ ई०

प्रियवर मुरारीलाल शर्मा,

आशीर्वाद।

आपके दिनांक २८. ६. ७८ के पत्र में निम्नांकित प्रश्न पढ़ा—

"आज उपन्यास का पाठक साहित्य की गरिमा से हटे हुए उपन्यासों को पढ़ना अधिक पसन्द करता है। वह **मानस का हंस** और **पुनर्नवा** जैसे उच्चस्तरीय साहित्यिक उपन्यासों को नहीं पढ़ता। **साहित्य का स्तर गिरा है, अथवा पाठक का ?**

आपके प्रश्न के उत्तर में हिन्दी-साहित्य की अन्य विधाओं के स्तर की बात भी स्पष्ट हो जाएगी। प्रियवर मुरारीलाल जी ! ऐसी स्थिति केवल उपन्यास के क्षेत्र में ही नहीं है, अपितु कविता, कहानी और शोध के क्षेत्र में भी है। कवि-सम्मेलनों में ऊँची और कवित्वपूर्ण कविताओं को श्रोता पसन्द नहीं करते। उच्च-स्तरीय जीवन-मूल्यों की साहित्यिक कहानियों के पाठक उँगलियों पर गिने जा सकते हैं। साहित्यिक भाषणों में उतने श्रोता नहीं पहुँचते, जितने संगीत-आयोजनों तथा सिनेमाघरों में पहुँचते हैं। कथा-प्रवचन में श्रोताओं की संख्या किसी नर्तकी या गायिका के समारोह की अपेक्षा सौवाँ भाग भी न होगी। संसार में सदाचारी विद्वान् और सात्विकी वृत्ति के मनुष्य बहुत कम हैं। अतः उनसे सम्बद्ध ज्ञान-क्षेत्रों में भी मनुष्य कम संख्या में हो पाये जाएँगे।

पश्चिमी सभ्यता ने हमें वासनामय तथा विलासी जीवन की ओर अधिक बढ़ाया है। नूतनता तथा नयी रोशनी की नग्नता को अपनानेवाले ही आज के युग में यथार्थवादी और मॉडर्न कहलाते हैं। जिन उपन्यासों में वैसी बातें पायी जाती हैं, वे उपन्यास ही अधिक पढ़े जाते हैं। आपको विदित होना चाहिए कि **गुलशन नन्दा** के प्रत्येक उपन्यास को एक लाख की गिनती में छापा जाता है। गुलशन नंदा के पाठक रेलगाड़ी में बीसियों मिल जाएँगे; लेकिन **अमृतलाल नागर** के पाठक रेलगाड़ी में ढूँढ़े भी न मिलेंगे। नागर जी प्रबुद्ध एवं सुरुचिसम्पन्न

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनता के लिए लिखते हैं। नागर जी साहित्य लिखते हैं, नन्दा जी बकवास करते हैं। दुनिया में लाल बहुत कम हैं, कांकड़-पत्थर अनगिनत। कबीर ने कहा भी था—-**लालों की नहिं बोरियाँ ....** ।

आज हिन्दी का पाठक ज्ञान में गिरता जा रहा है। छात्रों की दशा शोचनीय है। बहुसंख्यक छात्र ज्ञानार्जनसाधना नहीं करते। हाईस्कूल, इन्टर या बी० ए० उत्तीर्ण छात्रों में अधिक संख्या उनकी है, जिन्होंने नक़ल करके परीक्षाएँ उत्तीर्ण की हैं। उन छात्रों में साहित्यिक अभिव्यक्तियों के समझने की क्षमता नहीं है। अलंकारों, मुहावरों या व्यंजनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त कथनोपकथनों को वे समझ नहीं पाते। उच्च एवं परिष्कृत शिल्प की भाषा के माध्यम से जो कुछ 'साहित्य' में कहा गया है, उसे हमारा आज का चाकू–लाठी–बन्दूकवाला लापरवाह तथा खुराफ़ाती छात्रवर्ग क्या समझेगा ? शिक्षार्थियों और साहित्य-प्रेमियों में से साधना किनारा कर चुकी है। कालेजों और विश्वविद्यालयों में राजनीति का बोलवाला है। कूटनीति, गुटबाज़ी और मार-धाड़ से ही सफलता प्राप्त की जा रही है। यह पीढ़ी सच्चे साहित्य और उच्च ज्ञान से नितान्त अछूती है। ऐसी स्थिति में वह **पुनर्नवा** को या **मानस** का **हंस** को क्या समझेगी ? **बाण भट्ट की आत्मकथा** में से तो आज का पाठक सौ साल सिर मारने पर भी कुछ नहीं समझ सकेगा।

आपने देखा होगा कि आज का एम० ए० (हिन्दी) उत्तीर्ण छात्र उपन्यास या कहानी के क्षेत्र में ही अधिक शोध करना चाहता है। हर्रा लगे न फिटकरी, रँग चोखा आ जाए। वह अपभ्रंश, आदिकाल, भाषाशास्त्र, व्युत्पत्तिशास्त्र आदि के क्षेत्रों को देखना तो दूर, कानों से सुनना तक पसंद नहीं करता।

जब सच्चे ज्ञान को कोई पूछता नहीं, तब लोहे के चने चबाना नितान्त मूर्खता है। दो-तीन साल तफ़रीबाज़ी के साथ लिखते-लिखाते हुए पी-एच०डी० मिल जाए, तो कितना बढ़िया ? डाक्टर तो वे भी कहे जाएँगे। नौकरी तो उन्हें भी मिल सकती है। राजनीतिक दाव-पेच लगाने सीख लिये, तो सबसे पहले वे ही हाथ मार जाएँगे।

अत: निष्कर्ष रूप में मेरा कहना यह है कि हिन्दी का पाठक घटिया बनता जा रहा है। हम अधिकांश में मानसिक मैथुन की ओर बढ़ रहे हैं। फिर **मानस का हंस** और **पुनर्नवा** क्यों पढ़ेंगे ? सस्नेह,

श्री मुरारीलाल शर्मा, एम० ए० शुभैषी
हिन्दी-प्रवक्ता, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
के० एम० बी० इंटर कालेज, अतरौली (अलीगढ़)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री भगवतीप्रसाद शर्मा के नाम

हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
प्रियवर, दिनांक १. १०. ७८ ई०

आशीर्वाद !

तुमने अपने पत्र में **अनुभूति**, **स्मृति** और **कल्पना** की अवधारणाओं की जिज्ञासा व्यक्त की है। कविता में उनकी स्वरूप-अवगति भी तुम करना चाहते हो।

काव्य-सर्जना के क्षणों में कवि की **अनुभूति** पर **स्मृति** और स्मृति पर **कल्पना** अपने प्रासाद का निर्माण करती है।

जीवन में दुख-सुख आते रहते हैं। उनके सहने तथा भोगने पर संस्कार जन्य जो अनुभव होते हैं, वे **अनुभूति** कहलाते हैं। मानसिक अनुभव का नाम 'अनुभूति' हैं। जीवन में साहित्यिकों को प्रत्यक्षानुभूति, काव्यानुभूति, भावानुभूति रसानुभूति आदि अनुभूतियाँ हुआ करती हैं। अनुभूति की गहराईवाले कवि की कविता में कल्पना और अलंकार-विधान अधिक नहीं होता। महादेवी वर्मा हिन्दी में अनुभूति की कवयित्री हैं।

गत जीवन की अनुभूतियाँ आगत में स्मृतियाँ बनकर आती हैं। **योग-दर्शन** के समाधिपाद में पतंजलि ने कहा है—

अनुभूतिविषयासंप्रमोषः स्मृतिः (योग, समाधिपाद)

साम्य या वैषम्य से भी स्मृतियों का जन्म होता है। **स्मृति** अतीत का अवगाहन करती है और **कल्पना** अनागत का। **स्मृति** के लिए किसी घटित घटना की रेखाएँ मस्तिष्क में अवश्य होती हैं।

वह क्रिया अथवा शक्ति जो पूर्व अनुभूतियों की पुनर्योजना से नव-नूतन सृष्टि करती है **कल्पना** कहलाती है। पूर्वानुभूत पदार्थ 'कल्पना' द्वारा ही मानस-में नूतन रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं।

नारी और पक्षी को मनुष्यों ने देखा है। उनके मानस-चित्र मनुष्यों के स्मृति-पटल पर हैं। उनको मिलाकर **परी** की सर्जना कल्पना ने की है। प्रसाद ने 'लावण्य' देखा था; 'शैल' भी देखा था — इसीलिए 'आँसू' में 'लावण्य-शैल' की कल्पना की गयी है। "लावण्य शैल राई-सा जिस पर वारी बलिहारी"–(प्रसाद, आँसू)। प्रसाद जी 'कल्पना' के कवि हैं। **दशानन, गजानन किन्नर, नृसिंह** आदि के चित्र कल्पना की ही सृष्टि हैं।

काव्य 'कल्पना' को सरस साकार और सुस्पष्ट बनाता है। विज्ञान उसकी सहायता से मानव-समाज को सुख-सुविधा प्रदान करता है। पहले कवि की कल्पना ने आकाश में उड़ान भरी थी, तब विज्ञान ने वायुयान का निर्माण किया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभूतियाँ अचेतन में एकत्र रहती हैं। वे वर्तमान में स्मृतियों के रूप में जाग्रत् बनती हैं, और फिर 'कल्पना' का संसार रचती हैं। अचेतन की अनेक सामग्रियों से **कल्पना** अपना कार्य किया करती है।

कवियों ने **क्षीर** की अनभूति कर ली थी; **सागर** की अनुभूति भी कर ली थी। दोनों की अनुभूतियों को मिलाकर स्मृति ने नव-नूतन सृष्टि की, **क्षीरसागर** की। अतः **क्षीरसागर** कल्पना की सृष्टि है। स्वर्ग या बहिश्त भी कल्पना की सृष्टि है। **स्वर्ग**=सौन्दर्य, आनन्द और वैभव की कल्पना का प्रदेश।

कवि की कल्पना ही कविता में नूतन बिम्बों, प्रतीकों और उपमानों की सृष्टि किया करती है। कल्पना जब अपना आकार बढ़ाती है, तब अनेक उत्प्रेक्षाओं और सांगरूपक अलंकारों की सृष्टि हो जाती है। एक कल्पना न मालूम कितने रूप धारण करती है। **प्रश्नोपनिषद्** में ब्रह्म के सम्बन्ध में कहा गया है—**एकोऽहं बहुः स्याम्**। कल्पना के क्षेत्र में यह उक्ति सटीक बैठती है।

महाभारत संग्राम को एक नदी की उपमा देते हुए कहा गया है कि पाण्डवों की नाव महाभारत रूपी नदी को केवल श्रीकृष्ण के बल पर ही पार कर सकी। सांगरूपक अलंकार की सृष्टि कल्पना द्वारा ही निम्नांकित उपमेयों और उपमानों के साथ की गयी है—

उपमेय	उपमान
(१) भीष्म और द्रोण	=नदी के दोनों तट
(२) जयद्रथ	=नदी का वेगवान् जल
(३) दुर्योधन	=नदी का भीषण भँवर
(४) कृपाचार्य	=नदी की तीव्र धारा
(५) कर्ण	=नदी की हल-चल
(६) अश्वत्थामा, विकर्ण, शल्य आदि	=नदी के ग्राह, मगर, मच्छ आदि।

मैं समझता हूँ उपर्युक्त विवेचन से तुम्हें **अनुभूति**, **स्मृति** और **कल्पना** की अवधारणाएँ स्पष्ट हो गयी होंगी। शेष फिर कभी। सस्नेह,

श्री भगवतीप्रसाद शर्मा, शुभैषी
१३१०, पूर्वी रोहतास नगर, शाहदरा, दिल्ली–११००३२ अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री प्रकाशचन्द्र सनाढ्य के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक २. १०. ७८ ई०

प्रियवर प्रकाशचन्द्र,

आशीर्वाद !

तुम्हारी साहित्यिक संयोजना सफल हुई; हार्दिक बधाई और आशीर्वाद !

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्व० कविवर शंकर जी की जन्मभूमि हरदुआगंज में इसी स्तर का कवि-सम्मेलन होना चाहिए था। लगभग पन्द्रह कवियों ने श्रोताओं को काव्य-रस-पान इतना उत्तम और मधुर कराया कि रात्रि ही पूरी बीत गयी, और श्रोताओं ने उठने का नाम तक न लिया। श्री सोम ठाकुर का मंच-संचालन भी आकर्षक एवं प्रभावी था। दिनांक ३० सितम्बर की रात तो मेरी भी परम आनन्ददायी रही। मान्य बन्धुवर डा० राकेश गुप्त और प्रिय भाई डा० महेन्द्र सागर प्रचंडिया भी आनन्द विभोर बने रहे; किन्तु पहली अक्तूबर ७८ ई० की भोर उस विभोरता को मसलने लगी थी। मैंने अपने जीवन में किसी सम्मेलन की अध्यक्षता इतने लम्बे समय तक नहीं की। मैं समझता था कि हरदुआगंज पावर हाउस की वस्ती के कवि-सम्मेलन में कविता जैसी साहित्यिक विधा में जनता रुचि ही कितनी लेगी ? कोई ढोला, स्वाँग, रसिया या ख्यालों का दंगल थोड़ा है, जो रात भर चलेगा। इसलिए अध्यक्षता के लिए तुम्हारा आग्रह स्वीकार भी कर लिया था; लेकिन वहाँ वैचित्र्य रहा।

तुम्हारे कवि-सम्मेलन के स्वरूप को देखने के बाद मैं अब यह कह सकता हूँ कि हिन्दी की कविता में कस्बों और गाँवों की जनता भी पूरी रुचि लेने लगी है और आनन्दानुभूति में रसमग्न होती है। इससे साहित्यिक हिन्दी की लोक-प्रियता की झलक मिली और मेरा मन प्रसन्न हुआ। उत्तर प्रदेश की जनता में तथा यहाँ के जन-जीवन में हिन्दी का स्तर उठा है और रुचि का परिष्कार भी हुआ है—आपका कवि-सम्मेलन मुझे चुपके से यह बता गया।

मैंने तुमसे यह शर्त रखी थी कि सुरासेवी कवियों को आमंत्रित नहीं करना चाहिए। तुमने उसमें सावधानी तो बरती, किन्तु फिर भी थोड़ी-सी चूक तुमसे हो गयी। भविष्य में जागरूक रहना चाहिए। कवि-सम्मेलन के आयोजन का अर्थ साहित्य का उन्नयन ही समझना चाहिए; दूसरा नहीं।

हमारे मंचीय एवं कवि-सम्मेलनीय कवियों में सुरापान का व्यसन बढ़ता जा रहा है। जब जनता को यह मालूम हो जाता है कि जिस कवि ने अपनी उदात्त एवं ओजस्विनी कविताओं से हमें मंत्रमुग्ध किया था, वह तो मद्यप है, तब सारा गुड़ गोबर हो जाता है। उस कवि के प्रति सारी श्रद्धा समाप्त हो जाती है। हमारे कवि और उनका काव्य जब जनता का हित ही न कर सकेगा, तब वे 'साहित्यकार' कहाँ रहेंगे और कैसे उनका काव्य 'साहित्य' कहा जाएगा ? **साहित्य** तो सहित का भाव है। यदि हित न हुआ, तो **साहित्य** कहाँ ? काव्य-मंचों से इस कुप्रवृत्ति का उन्मूलन होना ही चाहिए। सुरापायी कवियों को हिन्दी-कविसम्मेलनों के मंचों पर कदापि आमंत्रित न किया जाना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए। हिन्दी सन्तों की वाणी है। इसमें कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, रवीन्द्र आदि की पूत-पावनी स्वर-लहरी लहराती है। इसके पंचम स्वर में पूर्णतः सरस औदात्य का मंजु घोष है। इसमें अमृत का स्वाद और गंगा की पवित्रता है—इसे हम हिन्दी-सेवियों तथा हिन्दी-प्रेमियों को कभी नहीं भूलना चाहिए।

दो-एक कवि अपने को वहाँ उत्तरदायित्वहीन-स्वतंत्र भी मान बैठे थे। 'कवि-स्वातंत्र्य' का अर्थ वह नहीं, जो उन्होंने समझा था। अहंपूर्ण **स्वतंत्रता** यदि केवल व्यक्ति में है और व्यक्ति के लिए ही है, तो वह स्वतंत्रता नहीं। **स्वतंत्रता** समाज के लिए होनी चाहिए। कवि जो चाहे, सो लिखे—यह कवि-स्वातंत्र्य नहीं। समाज की हितकारिणी स्वतंत्रता के लिए लिखना कवि-कर्म है।

आगे भविष्य में दो वर्षों के अन्दर एक कवि-सम्मेलन **स्व० श्री नाथूराम शंकर-जयन्ती** पर, दूसरा **स्व० हरिशंकर शर्मा-जयन्ती** पर, और तीसरा **स्व० पं० गोकुलचन्द्र शर्मा-जयन्ती** पर आयोजित किया जाना चाहिए।

अलीगढ़ जिले में उक्त तीनों ही साहित्यिक विभूतियों ने हिन्दी-काव्य की श्रीवृद्धि की है। मेरे श्रद्धेय गुरुवर (स्व०) पं० गोकुलचन्द्र जी शर्मा तो द्विवेदी-युग के बड़े प्रसिद्ध कवि और निबन्धकार थे। **गान्धी गौरव, तपस्वी तिलक** और **प्रणवीर प्रताप** जैसी काव्य-रचनाओं में उनकी राष्ट्रीय भावधारा वेगवती होकर प्रवाहित हुई है। मैं यहाँ प्रयत्न करूँगा कि अलीगढ़ नगर में दिवंगत **पं० गोकुलचन्द्र शर्मा, पं० वज्रदत्त शर्मा यज्ञेश** और **श्री जगनसिंह सेंगर** की जयन्तियाँ भी मनायी जाती रहें।

सिकन्दराराऊ तहसील के सुकवि जगनसिंह सेंगर हमारे जनपद के प्रसिद्ध ब्रजभाषी कवि थे। डा० सत्येन्द्र के 'ब्रज साहित्य का इतिहास' में आगरे के श्री **अमृतलाल चतुर्वेदी** का तो उल्लेख है; लेकिन किसी कारण से अलीगढ़ जनपद के श्री जगनसिंह सेंगर का नाम छूट गया है। ब्रजभाषा और ब्रजसाहित्य-सेवियों और प्रेमियों को सेंगर जी कीं जयन्ती मनानी चाहिए।

शेष सबको यथायोग्य। निकट भविष्य में अलीगढ़ में आना बने, तो मुझसे मिलने का कष्ट करना।

क्या तुमने स्व० **नीरव जी** (अपने पिता जी श्री रविचन्द्र जी शर्मा 'नीरव') की कविताओं का संकलन प्रकाशित कराया है? मेरी प्रबल इच्छा है कि इन चर्मचक्षुओं से मैं उस संकलन के दर्शन करूँ। सस्नेह,

श्री प्रकाशचन्द्र सनाढ्य,
हरदुआगंज, (अलीगढ़)

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० (श्रीमती) आशा व्यास के नाम

शिविर, मथुरा (उ० प्र०)

बहिन आशा जी, दिनांक ३. १०. ७८ ई०

आशीर्वाद ।

आपका मुख्य प्रश्न है, कि **गायत्री क्या है? वेद का गायत्री मंत्र किस कारण इतना अधिक महत्त्वपूर्ण और सर्वमान्य है ?**

वेद के मंत्रों के अर्थ दैविक, दैहिक और भौतिक दृष्टि से किये जाते हैं। **गायत्री** को अच्छी तरह समझने के लिए आप डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल की पुस्तक **वेदरश्मि** को पढ़ें। बहुत कुछ दिशा मिलेगी।

गायत्री छन्द की दृष्टि से त्रिपदा है। इस मंत्र के प्रत्येक पाद में आठ अक्षर होते हैं। मूल गायत्री इस प्रकार है—

"तत् सवितुर्वरेण्यम्। भर्गो देवस्य धीमहि। धियो योनः प्रचोदयात्।"

वरेण्यम् को 'वरेणियम्' उच्चरित किया जाएगा, तभी प्रथम पाद में आठ अक्षर गणना में आ सकेंगे। इस तरह इस त्रिपदा गायत्री छंद में २४ अक्षर हैं।

ओम् प्रणव है। अ उ म्—प्रणव की तीन मात्राएँ सृष्टि के त्रिक् की प्रतीक हैं। मानसिक शक्ति का अवतार प्राण-रूप में होता है। प्राण की प्रतीक तीन व्याहृतियाँ हैं—(१) **भू:** (२) **भुव:** (३) **स्व:**। समष्टि में से व्यष्टि जन्म लेती हैं। समाहृति में से व्याहृति जन्म लेती है। समष्टिगत जो संपूर्ण विश्व हैं, उसमें से ही पृथ्वी, अंतरिक्ष और आकाश का जन्म हुआ है। गायत्री के तीन पादों में से प्रथम पाद मन:-शक्ति का, द्वितीय पाद प्राण (भर्ग)-शक्ति का, और तृतीय पाद (कर्म-शक्ति) का प्रतीक है। मन और प्राण के योग से कर्म महत्त्वपूर्ण बनता है।

इस समष्टि का विस्तृत वर्णन सांगरूपक अलंकार के माध्यम से अध्यात्म रामायण (अरण्यकाण्ड, सर्ग ९ श्लोक ३६ से ४५ तक) में किया गया है। कबन्ध ब्रह्म रूप राम की स्तुति करते हुए भगवान् राम के ब्रह्माण्ड शरीर और विराट् शरीर का वर्णन करता है। कबन्ध कहता है—"हे प्रभो ! आपके विराट् रूप में दो शरीर समाविष्ट हैं—एक सूक्ष्म शरीर और दूसरा स्थूल शरीर। ब्रह्माण्ड शरीर के अन्तर्गत ही विराट् शरीर है। ब्रह्माण्ड शरीर अचिन्त्य एवं अगम्य है।"

सूक्ष्म शरीर के मुख्य अंग मन, बुद्धि और अहंकार हैं। "प्रभो ! आपका मन चंद्रमा है, आपकी बुद्धि बृहस्पति है, और आपका अहंकार रुद्र है।"

सूक्ष्म शरीर का आवरण स्थूल शरीर है। स्थूल शरीर का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
185465
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar
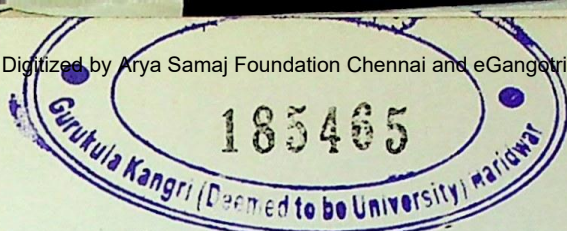
"प्रभो ! आपका शीर्ष सत्यलोक; ललाट तपलोक; वदन जनलोक; भौहें काल; कान दिशाएँ; नेत्र सूर्य; नासिका-रन्ध्र अश्विनीकुमार; मुख अग्नि; दन्तावलि नक्षत्र; दाढ़ें यम; हँसी माया; ग्रीवा महर्लोक; भुजाएँ इन्द्रादि लोकपाल; वक्षःस्थल स्वर्लोक; नाभि भुवर्लोक; कटिप्रदेश पृथ्वी तथा अतल; ऊरु वितल; जंघाएं सुतल; जानु रसातल; एड़ी महातल और चरण-तल (तलुआ) पाताल है।"

इस प्रकार ब्रह्म के विराट् शरीर का वर्णन अध्यात्मरामायण में किया गया है। यह विराट् शरीर-रूपी-समष्टि ब्रह्म के ब्रह्माण्ड शरीर में समाविष्ट है।

'ओ३म्' प्रणव यदि ब्रह्माण्ड शरीर है, तो **भूः भुवः स्वः** विराट् शरीर के अंग हैं। यही व्यष्टि है, जो समष्टि में से उत्पन्न हुई है। **गायत्री मंत्र** इसी व्यष्टि की ओर संकेत करता है।

गायत्री के तीन पाद बाल्य, यौवन और वृद्धावस्था के भी सूचक हैं। तीन पाद तीन अग्नियों की भी सूचना देते हैं—(१) **गार्हपत्य** (२) **आहवनीय** (३) **दाक्षिणात्य**।

इसीलिए गायत्री मंत्र का महत्व अधिक है।

डा० (श्रीमती) आशा व्यास, शुभैषी
८/३६ हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१ अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्रीमती नैनसी के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (भारत)

प्रिय श्रीमती नैनसी जी, **दिनांक २७. १०. ७८ ई०**

आपका प्रश्न है कि **घनानंद** ने भी ब्रजभाषा में पदों की रचना की है; लेकिन भारतवर्ष में संगीतज्ञ उनके पदों को सामान्यता उस रूप में नहीं गाते, जिस सहज व्यापक रूप में **सूर, मीरा** आदि कवियों के पदों को गाते हैं। इसका क्या कारण है?

भारत प्रारंभ से अध्यात्म-प्रेमी रहा है। **हिन्दी** भी सन्तों की भाषा रही है। **सूरदास** और **मीराबाई** भक्त पहले हैं, कवि बाद में। सूरदास और मीराबाई की भक्ति-भावना के आलम्बन सीधे-सीधे श्रीकृष्ण हैं। उनका स्थान ब्रजभाषा के संगीतपरक भक्ति-काव्य में बहुत ऊँचा है। **घनानन्द** (घन आनंद) भक्त कवि नहीं; सांसारिक प्रेम का कवि है।

घनानंद की प्रेयसी **सुजान** वास्तव में मुहम्मदशाह रँगीला के दरबार की सुरीली गायका तथा नर्तकी थी, जो रूप में भी सुन्दर थी। वह घनानंद की बिसासी प्रिया थी, जिसके प्रेम के लिए घनानंद तड़पते रहे और उसके लौकिक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम को कुछ ऐसे ढंग से व्यक्त करते रहे, जिसे कुछ लोगों ने कृष्ण-राधा-प्रेम के रूप में भी बताया; पर यह बात गले नहीं उतरती ।

'सुजान' के लिए घनानंद ने कहीं **जान,** कहीं **जानी** और कहीं **जानराय** लिखा है । जान या जानी का अर्थ 'प्रिया' या 'माशूक़ा' है । 'जानराय' का अर्थ है कि बादशाह (रँगीला) की माशूका ।

रीतिकाल के कवि भले ही कृष्ण, राधा आदि नामों के साथ प्रेम-व्यंजना करें; किन्तु उनका प्रभाव पाठकों पर भक्त-कवियों का-सा नहीं पड़ता । घनानंद ने भी कृष्ण के रूप में तथा राधा के रूप में **सुजान** शब्द का प्रयोग किया है; लेकिन पाठक घनानंद को समझते हैं कि वह 'सुजान' नाम की वेश्या पर आशिक था । वह उसी के लिए लिख रहा है । फ़ारसी शैली में माशूक़ा भी पुलिंग में व्यक्त की जाती है । वैसा ही घनानंद ने भी अधिकांश स्थलों पर किया है । भक्ति में आलंबन अलौकिक ही होता है, शृंगार में लौकिक ।

कुछ स्थल ऐसे भी हैं, जहाँ 'सुजान' शब्द स्त्रीलिंग में स्पष्ट रूप से आया है । घनानंद लिखते हैं—

अलबेली सुजान के कौतुक पै
अति रीझि इकौसी ह्वै लाज थकै ।

× × ×

पौढ़े घनआनंद सुजान प्यारी परजंक
धरे धन अंग तऊ मन रंक-गति है ।

सुजान मुस्लिम वेश्या थी। बहुत संभव है कि उसका असली मुसलमानी नाम कुछ और हो । घनानंद के निन्दक भड़ौआकार ने घनानंद के विषय में जो चार छन्द लिखे हैं, उनमें एक छन्द के अन्तर्गत 'सुजान' को तुरकिनी तथा हुरकिनी बताया गया है—

हुरकिनी सुजान तुरकिनी को सेवक है,
तजि राम-नाम ताको पूजै काम-धाम है ।

वेश्या के प्रेमी की लेखनी से यदि आयु के अन्तिम चरण में कुछ पद रचे भी गये, तो उनकी भक्ति-भावना से कौन प्रभावित होगा ? वह भक्ति-भाव वास्तविक भक्ति-भाव है भी नहीं । ऐसी अवस्था में दुनियावी आशिकी के पदों को कौन गाएगा और कौन सुनेगा ? यदि कोई व्याख्याता उन पदों का अर्थ अध्यात्मपरक करेगा भी, तो उस पर विश्वास न होगा: क्योंकि भक्त या आध्यात्मिक मनुष्य का जीवन ही कुछ भिन्न होता है । कहा भी गया है—

प्रभो हे ! आपके गुण गानेवाले और होते हैं ।
वो साक़ी और होते हैं, वो प्याले और होते हैं ।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यात्म और भक्ति के प्रेमी गायक फिर घनानंद के पद क्यों गाएँगे ? श्रोता भी क्यों सुनेंगे ?

क्या आपके पास आचार्य पंडित विश्वनाथ मिश्र द्वारा संपादित 'घनआनंद ग्रंथावली' है ? घनानंद के पदों को मनोयोग से पढ़िए, अर्थ समझते हुए ।

आशा है मूल कारण आपकी समझ में आ गया होगा । मिस्टर वारेन को मेरा अशीर्वाद कहना ।

आपका घनानंद के पदों पर अध्ययन तो चलता ही होगा । **घनानन्द, बोधा** और **आलम** रीतिकाल के रीतिमुक्त कवि हैं, जिनमें लौकिक स्वच्छन्द प्रेम की सबल अभिव्यक्ति है । उनका प्रेम मानवी है; लौकिक है; अलौकिक नहीं । सस्नेह,

Mrs. Nancy Nalbandian Fusfeld,
c/o Dr. Herbert I fusfeld,
45, Mohawk Trail
Stamford, Connecticut—06903 (U. S. A.)

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० (श्रीमती) प्रेमलता पालीवाल के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक २६. १०. ७८ ई०

प्रिय बहिन प्रेमलता जी,

सप्रेम नमस्कार ।

मैं मथुरा गया था । भारती अनुसंधान भवन, स्वामीघाट, मथुरा के पुस्तकालय-कक्ष में एक सारस्वत-प्रसंग में **श्री पं० राधेश्याम जी द्विवेदी** से आपके सम्बन्ध में कुछ चर्चा चल गयी । वहाँ आपकी एक शिष्या भी बैठी थीं—संभवतः कुछ शोध-कार्य कर रही हैं । नाम भूल गया; शायद **मंजुलता** नाम था । उन्होंने मुझसे पूछा था कि **मिथक का तात्पर्य क्या है** ? आज के यथार्थवादी कवियों के लिए भी क्या **मिथक** कुछ उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं ?

यदि सम्भव हो सके, तो मेरा यह संदेश और अभिमत कृपया उन्हें बतलाने का कष्ट करें ।

"अंग्रेजी में 'Myth' शब्द है, जिसका अर्थ है **पुराकथा** । 'पुराकथाएँ' वैदिक साहित्य से लेकर पुराण, रामायण, महाभारत आदि तक में पायी जाती हैं । ऐतिहासिक यथार्थ घटनाओं से सम्बद्ध विवरण 'मिथ' के अन्तर्गत नहीं आते । **मिथ और मिथक** का एक ही अर्थ है—जैसे **दीप, दीपक**; और **बाल, बालक** । अर्थ की दृष्टि से ये समानार्थी युग्म है । यहाँ कन् प्रत्यय स्वार्थ में प्रयुक्त है । ऐसे शब्द संस्कृत में बहुत हैं । **मिथ** का **मिथक** संस्कृतीकरण है ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी कविता के नये कवि मिथकों के पात्र को प्रतीक रूप में ग्रहण करते हैं। **मिथक** के आधार पर पात्रों के स्वभाव, गुण, कर्म आदि की जानकारी समाज के लोगों को होती ही है। उन पर लिखी गयी कविता आसानी से समझ में आ जाती है। आज का युग जिस यथार्थ की अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करना चाहता है, उसे आज का कवि **मिथक** के सहारे सुगमता से कह देता है। मिथक अनेक फूलों का गुलदस्ता है। वह समष्टि रूप से भावों को उद्‌बुद्ध करता है।

वाल्मीकि-रामायण में दो घटनाएँ ऐसी मिलती हैं, जिन्हें **मिथक** के रूप में ग्रहण करके आज का कवि सामंतवादी मान्यताओं पर अच्छी तरह कुठाराघात कर सकता है—एक राम द्वारा **बालि-वध** और दूसरा **शंबूक-वध**। महाभारत में भी एक उपाख्यान है **एकलव्य और द्रोणाचार्य** का। द्रोणाचार्य ने एकलव्य से गुरुदक्षिणा में दाहिने हाथ का अँगूठा माँग लिया था। ऐसी ही एक घटना **अभिमन्यु-वध** की है।

वाली और शंबूक के मारने में राम का कितना औचित्य था—यह विचारणीय है। द्रोणाचार्य का अँगूठा माँगना भी अनौचित्यपूर्ण लगता है। आज का यथार्थवादी कवि समयगत यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए इन पुराकथाओं का सहारा लेकर अपने **कथ्य** को सुगमता से प्रस्तुत कर देता है। डा० रामकुमार वर्मा तथा डा० जगदीश गुप्त ने अपने काव्यों में इन पुराकथाओं का सहारा लिया है। उनके **एकलव्य** और **शम्बूक** शोषक और शोषित अथवा सामंतवर्ग और सर्वहारा वर्ग के स्वरूप को सुगमता से प्रस्तुत कर देते हैं।

मिथक के पात्रों के सहारे आज का यथार्थवादी कवि थोड़े में बहुत कुछ कह डालता है। पुराकथा के पात्रों की जीवनगाथा स्वयं व्याख्या के रूप में आज के कवि की सहयोगिनी वन जाती है।

पुराकथा (मिथक) के प्राचीन सन्दर्भों के प्रामाणिक अस्तित्व से आज का कवि आज के समाज, राजनीति अथवा धर्म में जो द्वन्द्व, विरोध, अन्याय या शोषण चल रहा है, उसे वाक्यों में ही नहीं, अपितु शब्दों में भी रूपायित कर देता है। पुराकथा का सार्वकालिक तथ्य आज के कवि की मानसिकता के लिए अनुकूल तथा सहयोगी सिद्ध होता है। अनीति और क्रूरता की व्याख्या के लिए दो शब्द पर्याप्त हैं—एक **चक्रव्यूह** और दूसरा **चक्रव्यूह का अभिमन्यु।** आज के कवि की कविता के लिए **शम्बूक, एकलव्य, अभिमन्यु** आदि प्रतीक रूप में भी ग्राह्य हैं। ऐसे प्रतीक मिथकीय प्रतीक कहे जा सकते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए यह निश्चित रूपेण कहा जा सकता है कि आज के यथार्थवादी कवि के लिए भी मिथक (पुराकथा) उपयोगी है।"

स्मरण हो, तुलसी-संगोष्ठी पर रामचन्द्र जी के मंदिर (घीयामंडी) में आपसे भेंट हुई थी। कुछ दिन बाद आपके महाविद्यालय का एक निमंत्रण भी मिला था, जिसका समारोह किसी कारण सम्पन्न न हो सका था। अतः पुनः भेंट न हो सकी। खैर, **दूरस्थोऽपि न दूरस्थः, यो यस्य हृदये स्थितः।**

आशा है आप सपरिवार सानंद होंगी। सस्नेह,

डा० (श्रीमती) प्रेमलता पालीवाल, शुभैषी
प्राचार्या, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
आर० सी० ए० बालिका महाविद्यालय,
गांधी मार्ग, मथुरा (उ० प्र०)

डा० सुरेशचन्द्र सक्सेना के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१
प्रियवर सुरेशचन्द्र जी, दिनांक ६. ११ ७८ ई०

आशीर्वाद !

तुम्हारे दिनांक ४. ११. ७८ के पत्र में निम्नांकित प्रश्न पढ़ा—

"केशव के काव्य में प्रयुक्त लाक्षणिक शब्दों की प्रयोगगत अर्हताएँ" के विषय में आपका क्या मत है ?

प्रियवर सुरेशचन्द्र ! तुम्हारे प्रश्न में **लाक्षणिक** शब्द से दो अर्थों की ज्योति निकलती हैं। प्रथम—**लाक्षणिक शब्द** = लक्षक शब्द, जो वाच्यार्थ से चिपटा होने पर भी लक्ष्यार्थ प्रकट करता है। द्वितीय—**लाक्षणिक शब्द** = वे शब्द जो रीतिशास्त्र से सम्बन्ध रखते हैं। रीतिग्रन्थों को लक्षण-ग्रंक्ष कहते हैं। अतः रीतिशास्त्र से सम्बद्ध शब्द लाक्षणिक शब्द कहे जा सकते हैं। रीति, वृत्ति, रस, अलंकार, दोष आदि से सम्बन्ध रखनेवाले शब्दों को भी लाक्षणिक शब्द कह सकते हैं।

आचार्य **मम्मट** ने **काव्यप्रकाश** के द्वितीय उल्लास में काव्य में तीन प्रकार के शब्दों का उल्लेख किया है—

स्याद् वाचको लाक्षणिकः शब्दोऽत्र व्यञ्जकस्त्रिधा
—(काव्यप्रकाश, सू० ५)

अर्थात् काव्य में वाचक, लाक्षणिक और व्यंजक (भेद से) तीन प्रकार के शब्द होते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाक्षणिक शब्द वाचक शब्द के ऊपर आश्रित रहता है । **गधा** नाम के पशु में बुद्धिमान्द्य है । इसीलिए 'गधा' शब्द का लाक्षणिक अर्थ 'मन्दबुद्धि' या 'मूर्ख' है ।

रूढ़ि और प्रयोजन के आधार पर लक्षणा शक्ति के दो प्रमुख भेद हैं—(१) **रूढ़ि-लक्षणा**, जैसे **एटा बड़ा वीर है**—यहाँ एटा की जनता के लिए **एटा** शब्द रूढ़ है । (२) **प्रयोजनवती लक्षणा** में प्रयोजन व्यक्त होता है, जैसे **आप ही मेरे माता-पिता हैं** । इसमें पालन, कृपा, वात्सल्य आदि भाव का प्रयोजन व्यक्त है ।

शब्दोपाधि का एक भेद जो व्यंजना है, उसका काव्य में प्रमुख स्थान है । कभी-कभी एक ही वाक्य की कई व्यंजनाएँ रहती हैं । इसीलिए काव्य में व्यंजना का बहुत बड़ा महत्त्व है । निराला जी की एक कविता की एक पंक्ति है—

सखी नीरवता के कन्धे पर डाले बाँह, छाँह-सी अम्बर-पथ से चली ।

इसमें सन्ध्या को सुन्दरी के रूप में चित्रित किया गया है । इस पंक्ति से निम्नांकित व्यंजनाएँ निकलती हैं—(१) सन्ध्या-सुन्दरी शान्त प्रकृति की है । (२) सन्ध्या-सुन्दरी कुमारी है (३) सन्ध्या-सुन्दरी मुग्धा नवयौवना और अल्हड़ है (४) संध्या-सुन्दरी शरीर की पतली है । (५) संध्या-सुन्दरी की मित्रता सखी नीरवता से बहुत गहरी है ।

वास्तव में उपर्युक्त तीन भेद शब्द के नहीं हैं, अपितु शब्द की उपाधियों के हैं । एक व्यक्ति एक उपाधि से घर में अपने पुत्र के लिए पिता है । वही पाठशाला में शिष्यों के लिए गुरु है । इस तरह एक ही शब्द उपाधि-भेद से वाचक भी हो सकता है, लक्षक भी और व्यंजक भी । **गधा** शब्द का वाच्यार्थ पशु विशेष है; लेकिन लक्ष्यार्थ 'मूर्ख' है । जब 'मूर्ख' अर्थ प्रमुख होगा, तब वहाँ गधा शब्द लाक्षणिक माना जाएगा ।

मैं समझता हूँ कि तुम्हारा मंतव्य रीतिशास्त्र से सम्बद्ध शब्दों से होगा; क्योंकि **केशवदास** रीतिकाल के प्रवर्तक आचार्य हैं । वह अलंकारवादी और श्रृंगारवादी आचार्य हैं । उन्होंने 'कविप्रिया' में अलंकार तथा दोष का और **रसिकप्रिया** में रस का वर्णन किया है ।

अलंकारों को आचार्य केशव ने संवर्द्धन प्रदान किया है । विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के सम्बन्ध में भी केशव का मूल्यांकन ऊँचा ही सिद्ध होता है ।

आचार्य केशवदास में कुछ बातें ऐसी भी मिलती हैं, जो संस्कृत के प्राचीन आचार्यों से भिन्न, अर्थात् लीक से हटकर हैं । 'रसिकप्रिया' में केशव ने जिन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार वृत्तियों का वर्णन किया है, वे वास्तव में नाट्यवृत्तियाँ हैं, जिन्हें 'रसिकप्रिया' में रसवृत्ति के रूप में वर्णित किया गया है। केशवदास कैशिकी, भारती, आरभटी और सात्वती को रसों से सम्बद्ध मानते हैं। आचार्य अभिनव गुप्त के अनुसार ये चारों कायिक तथा मानसिक चेष्टाएँ हैं; वैसे वाणी से भी इनका सम्बंध रहता है। अभिनव ने कहा भी है—

कायवाङ्मनसां चेष्टा एव सहवैचित्र्येण वृत्तयः।

—(अभिनव गुप्त)

आचार्य केशव 'सात्वती' के लिए लिखते हैं—

सुनतहिं समुझत भाव जिहिं, सो सात्वती सुजान।

—(रसिकप्रिया)

इससे सिद्ध है कि केशव के मतानुसार सात्वती में शृंगार, वीर और अद्भुत रस तो होता ही है, साथ में प्रसाद गुण भी होता है। इसलिए कहा जा सकता है कि प्राचीन आचार्यों ने जिन्हें नाट्यवृत्तियाँ कहा है, वे केशवदास के अनुसार रस-रीतियाँ अर्थात् रसोत्कर्ष की शैलियाँ हैं।

इस तरह केशवदास साहित्यशास्त्र के क्रान्तिकारी आचार्य भी सिद्ध होते हैं। उनके लाक्षणिक शब्दों के अर्थ समझने के लिए उनकी 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' को संस्कृत-आचार्यों के ग्रंथों के साथ मिलान करते हुए पढ़ना चाहिए।

शेष कभी प्रत्यक्ष मिलकर बातें होंगी। तभी विषय की आत्मा के दर्शन हो सकेंगे। सस्नेह,

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० सुरेशचन्द्र सक्सेना,
अध्यक्ष, हिन्दीविभाग,
जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय, एटा (उ० प्र०)

डा० रघुवीरशरण मित्र के नाम

हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)–२०२००१
दिनांक ११. ११. ७८

बन्धुवर 'मित्र' जी,
सादर सप्रेम नमस्कार।

आपका दिनांक १०. ११. ७८ का कृपा-पत्र मिला। परम प्रसन्नता हुई। अलीगढ़ पधारने पर मेरे कुटीर पर भी कृपया आने का कष्ट करें। अभी यहाँ का वातावरण शान्त नहीं हैं। निकट भविष्य में अभी आप न आएँ, तो अच्छा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपने अपने काव्य–**भूमिजा**–में जो पंचवटी की सीता को रावण द्वारा भूमि सहित गुलाब के पौधे की भाँति उठाये जाने की कल्पना की थी; उसके प्रेरक आपने एक सन्यासी (सिद्ध महात्मा) बताये हैं। मेरा अनुमान है कि उन सिद्ध महात्मा जी ने **अध्यात्मरामायण** का निम्नांकित कथा-प्रसंग अवश्य पढ़ा या सुना होगा। 'अध्यात्मरामायण' में लिखा गया है कि सीता जी जिस भूमि पर खड़ी हुई थीं, उस भूमि को रावण ने नखों से खोदकर भूमिसहित सीता जी को उठा लिया और रथ में डालकर आकाश-मार्ग से चला गया—

ततो विदार्य धरणीं नखैरुद्धृत्य बाहुभिः। (५१)
तोलयित्वा रथे क्षिप्त्वा ययौ क्षिप्रं विहायसा ॥ (५२)
—(अध्यात्म०, अरण्य०, सर्ग ७/श्लो० ५१,५२)

तमिल में कम्बन् ने भी रामायण लिखी है। कम्बन् का रावण भी पंचवटी में से सीता जी को अपहृत करते समय, उनके शरीर को नहीं छूता; अपितु कुटी सहित सीताजी को अपने हाथों पर उठा लेता है। कैलाश पर्वत उठानेवाले रावण के लिए कुटी सहित सीता जी को उठा लेना कोई कठिन नहीं था।

काल-क्रम की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि रावण द्वारा धरती सहित सीता जी को उठाकर लंका ले जाने की कल्पना तमिल की **कम्ब-रामायण** (१२वीं शती) और संस्कृत की **अध्यात्मरामायण** (१३ वीं शती) से ली गयी होगी। कम्ब-रामायण से पहले **पउमचरिउ** और **वाल्मीकीय रामायण** की रचना हो चुकी थी। स्वयंभू ने पउमचरिउ लगभग ८–९ वीं शती में रचा था। वाल्मीकीय रामायण ई० पू० ५०० वर्ष के लगभग रची गयी। इन दोनों में धरती सहित सीता को उठाने का उल्लेख नहीं है।

रावण के चरित्र को उदात्त बनाने में **अध्यात्मरामायण** के रचियता श्री रामशर्मन् (१४ वीं शती) और 'तमिल-रामायण' के रचयिता श्री कम्बन् (१२ वीं शती) ने जो मार्ग संकेतित किया था, उसे **भूमिजा** के कवि ने प्रशस्त किया है। **भूमिजा** ने मेरे मन को रमाया है।

अध्यात्मरामायण के अगस्त्य मुनि ने तो रामचन्द्र जी को रावण की ओर से विश्वास दिलाया था कि राम् ! मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि रावण ने लंका में सीता जी का पालन उस तरह किया है, जिस तरह कि कोई सुपुत्र अपनी बूढ़ी माँ की सेवा-शुश्रूषा और पालन करता है।

रामचरितमानस के रचयिता गोसाईं तुलसीदास जी ने अरण्यकाण्ड (दो० २८/१६) में रावण के सम्बन्ध में "मन महुँ चरन बंदि सुख माना।" जो लिखा,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका कारण **अध्यात्मरामायण** का प्रभाव है। यह तुलसी के कवि-मानस पर चिह्न छोड़ चुका है।

मेरठ आना हुआ, तो आपसे मिलकर सारस्वत सुख अवश्य प्राप्त करूँगा। मेरा मोहल्ला परमेश की दया से निरापद-सा है। स्नेह के लिए आभारी हूँ।

आज-कल किस काव्य की सृष्टि की जा रही है? माता वीणापाणि से प्रार्थना है कि आपका ब्राह्म-सरोवर सदा ऊर्मिल बना रहे! बच्चों को आशीर्वाद।

सस्नेह,

डा० रघुवीरशरण 'मित्र', डी० लिट्०
२०४ ए, कला-भवन, पुलिस-स्ट्रीट,
सदर, मेरठ—२५०००१

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री ओम्प्रकाश सारस्वत के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)

प्रिय श्री ओम्प्रकाश जी सारस्वत, दिनांक १८. ११. ७८ ई०

मैं आगरा विश्वविद्यालय की एक मीटिंग में आगरा गया था। हिन्दी-विद्यापीठ ने **ब्रजभाषा-कोश** की योजना बनायी है। उसी में मुझे दो दिन लग गये। वापस आकर देखा कि मेरी मेज़ पर आपके द्वारा लिखा हुआ **स्व० पं० प्रेमलाल जी शर्मा**, इंजीनियर का जीवन-परिचय, रखा हुआ है। पढ़कर परम प्रसन्नता हुई और एक साथ सारी बातें स्मृति-पटल पर उभरकर आ गयीं। निस्संदेह इंजीनियर साहब (आपके पूज्य पिताजी) ब्राह्मणों में एक समाज-सेवी तथा शिक्षाप्रेमी समादृत व्यक्तित्व के रूप में स्मरण किये जाते रहेंगे। पंडित जी मेरे मौसा जी (**पं० श्रीराम शर्मा**) के सहपाठी रहे थे। साहित्य के प्रति उनकी विशेष अभिरुचि थी। इन्हीं दो कारणों से आपके पिता जी के निकट में मैं बहुत जल्दी आ गया था। उनमें सहायतामयी उदारता और उदात्तता उच्च-कोटि की थी।

संभवतः सन् १९५९ की बात होगी—मैंने एक चिट इंजीनियर साहब को पाँच-छह वाक्यों की इस भाव की भेजी थी कि "मैं आपके पुत्र प्रियवर बैजनाथ का गुरु हूँ, मकान की कठिनाई है; आपका हरिनगरवाला मकान खाली सुना गया है। क्या आप मेरी सहायता कर सकेंगे?"

चिट पहुँचने के एक घंटे बाद इंजीनियर साहब का बुलावा आ गया और उन्होंने बड़े स्नेह से मुझसे कहा कि "आप मकान में कल से चले जाइए। बैजू के गुरु जी यदि मकान का कष्ट पाते हैं, तो हमारा मकान बनवाना ही व्यर्थ है।" तब से आज तक मैं उसी मकान में रह रहा हूँ। मेरा साभार धन्यवाद उस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गीय आत्मा के लिए सदैव अर्पित रहेगा। आज की स्वार्थी दुनिया में कुछ ऐसे भी महानुभाव मिल जाते हैं, जो भुलाये जाने पर भी भुलाये नहीं जा सकते।

मैं उस समय बड़े आश्चर्य में पड़ जाता था, जब इंजीनियर साहब महाकवि देव और पं० श्रीधर पाठक के संबंध में अनेक ऐसी बातें सुनाते थे, जिन्हें मैं स्वयं नहीं जानता था। इंजीनियर साहब ने मुझे स्वयं एक दिन बताया था कि "मैं जब कुसुमरा (इटावा) में था, तब वहाँ के तत्कालीन कलक्टर ने देव के 'भावविलास' की एक प्रति देव के वंशजों से प्राप्त की थी। देव कवि जाति से सनाढ्य ब्राह्मण थे। उनका पूरा वास्तविक नाम **देवदत्त** था।"

उन्होंने **पं० श्रीधर पाठक** के संबंध में बताया था कि "वे सारस्वत ब्राह्मण थे और हमारे रिश्तेदार थे। एक बार वे काश्मीर भी गये थे। वहाँ से आकर उन्होंने 'काश्मीर सुषमा' कविता लिखी थी।"

इंजीनियर साहब ने मुझे यह बताया था कि "पं० श्रीधर पाठक का जन्म आगरे ज़िले के जौंधरी गाँव में हुआ था। वे बचपन से ही कुशाग्रबुद्धि थे। वे मिडिल की परीक्षा में सूबे भर में प्रथम आये थे। सरकारी नौकरी करते हुए चाटुकारी, घूस तथा अनुचित व्यवहार से सदा दूर रहे। उनमें मिलनसारी और सहृदयता कूट-कूट कर भरी थी। लखनऊ की 'माधुरी' पत्रिका में पाठक जी ने 'स्वजीवनी' लिखनी प्रारंभ की थी, वह जीवनी १९२८ ई० में उनकी मृत्यु हो जाने से अधूरी रह गयी। पाठक जी ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली—दोनों—में परम प्रांजल एवं सरस कविता करनेवाले सिद्ध कवि थे।"

खड़ीबोली हिन्दी के सिद्धहस्त घनाक्षरी-रचयिता कविवर **कौशलेन्द्र** की कई घनाक्षरियाँ इंजीनियर साहब को कंठस्थ थीं। मैंने उनसे उन्हें कई बार सुना था। खड़ी बोली हिन्दी में जितनी कवित्वपूर्ण करुणामयी उत्तम घनाक्षरियाँ कौशलेन्द्र ने लिखी हैं, वैसी द्विवेदी-युग में कोई अन्य कवि नहीं लिख सका था। **आचार्य पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी** ने कवि **कौशलेन्द्र** की घनाक्षरियों की प्रशंसा लिखी है। कवि कौशलेन्द्र मकान में आग लग जाने के कारण छोटी उम्र में ही संसार से चल बसे थे।

इंजीनियर साहब के स्वाध्याय मंडल का मैं भी एक सदस्य था; लेकिन मैं **श्री रामजीलाल सारस्वत** की भाँति पाबंद न था। उनके स्वाध्याय-मंडल के सदस्यों में **स्व० पं० गंगादत्त गौड़, स्व० डा० उमाशंकर अग्रवाल, डा० गोपालदत्त सारस्वत, श्री बाबूलाल वार्ष्णेय** आदि महानुभाव प्रमुख थे। मैंने यह भी अनुभव किया था कि पं० प्रेमलाल जी इंजीनियर धार्मिक ग्रंथों के प्रति अंध-विश्वासी न थे। बात को विवेक के निकष पर कसते थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन की बात है—वेदाध्ययन के उपरान्त **वाल्मीकीय रामायण** का पारायण चल रहा था। दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ का प्रकरण आया। पुत्र-प्राप्ति के लिए किये गये अश्वमेध यज्ञ के प्रसंग में **बालकाण्ड के १४वें सर्ग के छत्तीस वें तथा सेंतीसवें श्लोकों का** हिन्दी-अर्थ पंडित रामजीलाल ने पढ़ा—"जितेन्द्रिय ऋत्विक् ने विधिपूर्वक अश्वकंद के गूदे को निकालकर शास्त्रोक्त रीति से पकाया। तत्पश्चात् उस गूदे की आहुति दी गयी। राजा दशरथ ने अपने पाप को दूर करने के लिए ठीक समय पर आकर विधिपूर्वक उसके धुएँ की गंध को सूँघा।"

इसे सुनते ही पं० **प्रेमलाल जी** बोल उठे—"भाई, हमारे गले यह बात नहीं उतरती। ऐसा लगता है कि हिन्दू-धर्म के विरोधियों ने ऐसी बातें हमारे ग्रंथों में वाद में भर दी हैं। ये प्रक्षिप्त अंश मालूम पड़ते हैं।"

हिन्दू उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, अलीगढ़ के अध्यक्ष-पद पर जब वे थे, तब मैं भी उसकी कार्यकारिणी समिति में एक सदस्य था और उनकी कार्य-प्रणाली तथा उदार भावनाओं की अनुभूति करता था। वे कार्यकारिणी में अजातशत्रु रहे और जीवन के अन्तिम समय तक अध्यक्ष बने रहे। आज उक्त विद्यालय में जो नव निर्मित कमरे और हॉल है, वह सब आपके पिता जी की सेवाओं का ही प्रतिफल है। उनकी देख-रेख में ही वे सब कमरे बने थे।

पं० प्रेमलाल जी शर्मा के जिन सबल कंधों पर विद्यालय की कार्यकारिणी की अध्यक्षता का भार रहा था, उसे अब पं० भूदेव शर्मा जी के स्नेहमय आदेश से मुझ जैसे दुर्बल व्यक्ति को सँभालना पड़ा। मैं इस समय इसलिए भी घबरा रहा हूँ कि मेरे समक्ष अब उन जैसा महान् व्यक्ति नहीं, जो दिग्दर्शन करा सके।

मैं अधिक कहाँ तक कहूँ, वे वास्तव में चरित्रवान् नक्षत्री जीव थे। उन्होंने सत्कर्म किये थे। उन्हीं सत्कर्मों के सुफल-रूप में आप चारों भाई (सर्वश्री ओम्-प्रकाश सारस्वत, शम्भूदयाल सारस्वत, बैजनाथ सारस्वत और राधेलाल सारस्वत) फूल-फल रहे हैं। वे विश्वकर्मा तो थे ही, साथ में साहित्य-प्रेमी धर्मानुरागी और समाज-सेवी भी थे।

यदि कोई अच्छा रामायणी पंडित अलीगढ़ में आ जाता था, तो पं० प्रेमलाल जी अपने यहाँ उसकी कथा अवश्य कराते थे। साधु-सेवा तथा अतिथि-सत्कार को वे धर्म एवं परम कर्तव्य के रूप में निभाते थे। उनके भवन के बरामदे में मैं प्राय: दो-एक सन्त के दर्शन किया करता था।

बन्धुवर ! आपने पर्याप्त विस्तार से अपने पिताजी का जीवन-चरित लिख दिया है। मैं देखूँगा कि किस रूप में इसका उपयोग किया जा सकेगा ?

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशा है आप सानंद होंगे। सस्नेह,

श्री ओमप्रकाश सारस्वत,
कुमायूँ प्लाई वुड उद्योग,
रामनगर, (नैनीताल)

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री धर्मपाल वार्ष्णेय के नाम

शिविर, मथुरा
दिनांक २०. ११. ७८ ई०

प्रियवर धर्मपाल,

आशीर्वाद !

तुमने अपने पत्र में लिखा है कि व्यापारी, समाज-सेवी, राजनीतिक, क्लर्क आदि जितने लोग हैं, उन्हें साहित्य के ग्रंथ पढ़ने से क्या लाभ है ? उनका विचार है कि साहित्यिक पुस्तकों के पढ़ने के वजाय यदि वे अपना निजी काम अधिक मन लगाकर करते हैं, तो उन्हें अधिक-लाभ है— इस सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं ?

उनका यह कहना कि व्यापारी, समाज-सेवी, राजनीतिक या क्लर्क अपना-अपना निजी काम मन लगाकर अधिक करें, तो उनको अधिक लाभ होगा— स्वार्थ अर्थात् व्यष्टि-हित की दृष्टि से कुछ अंशों में ठीक-सा माना जा सकता है। यदि वे लोग अपने-अपने निजी कामों में ही सारा समय लगाएँगे; कुछ समय साहित्यिक पुस्तकों का अध्ययन न करेंगे, तो निश्चित रूपेण संकीर्ण-हृदय और स्वार्थी ही बने रहेंगे। अपनी ही सीमाओं में आबद्ध अपनी निजी हानि और लाभ में दुख और सुख भोगते रहेंगे। सच्चे जीवन का आनन्द उन्हें कभी मिल न सकेगा। व्यापार या नौकरी के कामों में सुख के साथ दुःख अवश्य आते हैं। देश और काल से जो आबद्ध है, उसमें परिवर्तन अवश्यं-भावी है। वह उत्पत्ति और विनाश के चक्र में भी घूमेगा। सांसारिक वस्तु की प्राप्ति सुख तो थोड़े समय तक ही दे पाती है, लेकिन दुःख अधिक समय तक देती है। उन सांसारिक कार्यों से ईर्ष्या और द्वेष भी लिपटा रहता है।

साहित्य की सृष्टि साहित्यकार के उस मनोब्रह्म के द्वारा की जाती है, जो इस लोक से वहुत ऊँचा है और दिव्यतम है। साहित्य-लोक की सारी वस्तुएँ और सव प्राणी दिव्य और अलौकिक होते हैं। उनके विचार, कर्म और सिद्धान्त दिव्यतम और उदात्ततम होते हैं। साहित्य-संसार के मनुष्य देश-काल के प्रभाव से सदा दूर और पृथक् रहते हैं। विश्व का हितैषी सच्चा साहित्यकार अपने मनो-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य में औदात्य के परम उत्तुङ्ग शृंग पर आसन लगाकर हृदय के जिन विमल उच्छ्वासों को अपनी वाणी के माध्यम से जगती के मानवों के समक्ष प्रस्तुत करता है, वे मानवों के मन का सहज रागात्मक सम्बन्ध सम्पूर्ण सृष्टि के साथ स्थापित कर देते हैं।

साहित्य के भाव-लोक में असंख्य स्वर्गंगाएँ, अमृत धाराएँ और सुरसरिताएँ अजस्र रूप से प्रवाहित होती रहती हैं। साहित्य के नंदन-कानन में स्वर्गीय सुमनों की शाश्वत सुगंध है। वहाँ शीतल, मंद, सुगन्ध-समीर नित्य सुखद संस्पर्श प्रदान करता रहता है। वहाँ व्यक्ति, जाति, देश, काल आदि का कोई दुःख नहीं। ईर्ष्या, द्वेष और भय से सदा मुक्ति है, साहित्य-लोक में। पाठक उस परम रम्य भावलोक में पहुँच कर जिस स्वर्गीय आनंद का लाभ लेता है, उसे दूसरा कभी छीन नहीं सकता। उस आनंद-लाभ से पाठक विचार तथा कर्म में तो उठता ही है, साथ में थोड़ा-बहुत अपने पड़ोसी को भी उठाता है। साहित्य-अधीती के मन की विद्युत्-किरणें चुपके-चुपके पास-पड़ोस को भी प्रभावित करती रहती हैं। सच्चे साहित्य का पठन. केवल पठन नहीं है; सन्तों और ऋषियों के संग में विचार-विनिमय है। साहित्य के राज-दरबार में किसी के लिएरोक-टोक नहीं है।

साहित्य का आनन्द स्वतंत्र आनंद है। संसार का सुख स्वतंत्र नहीं है, परतंत्र है। संसार का सुख पर-व्यक्ति पर या पर-वस्तु पर निर्भर है—इसलिए पराश्रित है, परमुखापेक्षी है। साहित्यानंद अपने पर ही आश्रित है, स्वावलंबी है। संसार के व्यक्ति बड़े भारी गाँठ-गँठीले हैं। वे मित्र के रूप में परम शत्रु भी हो सकते हैं। बहुत से आस्तीन के साँप भी बन जाते हैं। अकारण दाहिने से बाँए हो जाते हैं। क्षण में तुष्ट और क्षण में रुष्ट भी हो जाते हैं। विद्वेष के कारण आपको विष भी दे सकते हैं। किन्तु साहित्य के लोक में ऐसा कुछ नहीं; वहाँ सब कुछ शुक्ल और शुभ्र है; सब कुछ सत्य, शिव और सुन्दर है। सब कुछ निरापद है, सुखद है, शिवप्रद है, कमनीय है और स्वर्गीय है।

इसलिए साहित्य के स्वाध्याय से प्राप्त परम सुख को **आनन्द** कहा जाता है। हमारा यह भौतिक लोक यदि हमें **सुख** देता है, तो साहित्य-लोक हमें **आनन्द** प्रदान करता हैं, जिस पर व्यक्ति, जाति, संप्रदाय, देश, काल आदि का कुछ प्रभाव नहीं पड़ सकता। साहित्यानंद सबसे परे, सबसे निराला और सबसे उच्च है।

आशा है मेरा मंतव्य अर्थात् मेरा विचार-संकेत तुमको स्पष्ट हो गया होगा।

तुम अलंकारों पर एक पुस्तक लिखकर शान्त क्यों हो गये ? साहित्यशास्त्र से सम्बद्ध, अन्य और अच्छी पुस्तक भी लिखो।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौभा० बहू और बच्चों को असीस। हर्ष है तुम सानंद हो।

श्री धर्मपाल वार्ष्णेय, एम० ए०, साहित्यरत्न, शुभैषी
१४/५४, पुराना हाथरस का अड्डा, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
आगरा रोड, अलीगढ़—२०२००१

प्रो० प्रेमस्वरूप गुप्त के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१
दिकांक २२ ११. ७८ ई०

प्रिय वन्धु डा० गुप्त जी,

सप्रेम नमस्कार।

आपके साथ उस दिन तुलसी के सम्बन्ध में कुछ समय जो सारस्वत वार्तालाप हुआ, उसमें वास्तव में मुझे बहुत आनन्द आया।

सच्चे काव्य की उत्कृष्टता और महत्ता इसी में है कि वह अमूर्त को मूर्त बनाते हुए तथा रसविभोर करते हुए हमें मानव-मूल्यों की उच्चतम उदात्त-भूमि पर पहुँचा दे। कवि अपनी कविता में उपमानों और प्रतीकों को इसीलिए तो जुटाते हैं।

तुलसीदास ने **रामचरितमानस** की राम-कथा के माध्यम से मानव को मानवता की परमोच्च कोटि पर पहुँचाने का सफल प्रयास किया है। उनका दिव्यतम संदेश संपूर्ण विश्व के लिए है—इसीलिए तुलसीदास जी **विश्वकवि** हैं।

राजनीति और समाजशास्त्र के पण्डितों ने भी मार्क्सवाद, समाजवाद आदि अनेक वादों के प्रचार, प्रसार और आन्दोलन से व्यक्ति और समाज के विकारों को समाप्त करने का प्रयत्न किया है। **मार्क्सवाद** जहाँ वर्ग-भेद-नाश के लिए प्रयत्नशील है, वहाँ **समाजवाद** तथा **गांधीवाद** वर्ण-भेद मिटाने के लिए भी प्रयास करता है। मानव-जीवन के उदात्त मूल्यों की व्यापकता के लिए **मानवतावाद** अग्रसर हो रहा है।

ये सब प्रयास व्यक्ति और समाज के विकारों के दूरीकरण के लिए हैं। इनके द्वारा समाज के लिए करणीय कर्म बताया गया है। कर्ता का ईप्सिततम ही तो **कर्म** होता है। उस **कर्म** के लिए क्रियाएँ अनेक हो सकती हैं। **कर्म** एक है, अर्थात् विकारों का दूरीकरण। इस एक कर्म के लिए मनीषियों ने क्रियाएँ अनेक बतायीं। तुलसी ने एक क्रिया बतायी—वह है, षट् विकारों को विनष्ट करके 'राम की भक्ति' करना। तुलसी की यह राम-भक्ति समाज और विश्व के विकारों के दूरीकरण के लिए एक मात्र क्रिया है। यही क्रिया तुलसी के **मानस** में अमूर्त को मूर्त बनाते हुए अभिव्यक्त हुई है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी दिन तुलसी की अपनी दार्शनिकता पर भी हम दोनों विचार-विमर्श करेंगे। हर्ष है आप सपरिवार सानन्द हैं। आप कितने दिनों के लिए बाहर जा रहे हैं ? वापस आने पर कृपया सूचित करें। चि० मुन्ना को प्यार।

आशा है परमेश की दया से अब आप स्वस्थ होंगे। कर्फ़्यू तो हमें मिलने भी नहीं देता। कालिदास के यक्ष के शब्दों में यही कहा जा सकता है—

क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः –(उत्तरमेघ, ४५)

प्रो० प्रेमस्वरूप गुप्त, डी० लिट्० आपका
अध्यक्ष, हिन्दीविभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
अलीगढ़ मु० वि० विद्यालय, अलीगढ़

डा० गोवर्धननाथ शुक्ल के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ –२०२००१

प्यारे भइया सुकल जी, दिनांक २५. १२. ७८ ई०

जै स्रीकृस्न !

तुम्हारी तर-ऊपर द्वै चिट्ठी एक संग आजु की डाक मैं मिलीं। एक २२. १२. ७८ की, और दूसरी २३. १२. ७८ की। तुम सूर पै बोलिबे लखनऊ जाइ रहे हौ, तीनि जनवरी कूँ; मैं जाइरह्यौ हूँ मेरठ, तीनि कूँ ही—**तुम पूजौ पूरब सखा ! मैं पूजूँ पछिआँह।**

जा सूर-पंचसती बरस मैं एक सज्जन मिले और बोले, "सूरऐ तौ एम० ए० के कोर्स मैं ते निकारि दैनौ चहिऐ। कोरी किसन-भक्ति की बात कहै; सांप्रदायिक है।" मैंनैं सुनी और माथौ ठोकन लग्यौ—"हाय राम ! सूरु सांप्रदायिक बतायौ जानै, और कोरौ भगतु बताइ दयौ। मानों भगतु हैबौ कोई पापु है।"

मोइ तौ जि लगै कै विस्वविद्यालयन मैं ते कवित्ता की समझदारी और लालित्य की पहचान विदा होति जाइ रही है।

आचार्य हजारीप्रसाद जी द्विवेदी नैं बड़ी बढ़िया बात कही है **ललिता** के विसै मैं

"प्रलय-काल मैं महासिव निरिक्रिय रहै हैं। महा सिव कूँ जब लीला की लालसा होवै है, तब सक्तिरूपा महामाया पार्वती लास्य करै हैं और सृष्टि रचै हैं। सिव की लीला-सखी हैबे के कारन उन्हैं **ललिता** कह्यौ गयौ। जि संकेत **ललिता-सहस्रनाम** मैं मिलै है।" **लालित्य** ललिता कौ भाव-सौन्दर्य है। सूरदास नैं महासिव की महामाया कौ लालित्य देख्यौ और महासिव की महा लीला हू देखी; माथे की आँखिन ते नाहिं, हिये की आँखिन ते।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब कोई जि समझै कै सूर के **स्याम** वे ही महासिव हैं, और सूर की **राधा** वे ही महामाया हैं और रास वा महासिव और महामाया की लीलामयी रस-क्रीड़ा है, तब सूर की कविता कौ रहस्य मालिम है सकै।

सूरदास जी तौ अपने मन के सौन्दर्य कूँ अपनी सरस, मधुर और सहज संगीतमयी ब्रजभाषा मैं चित्रित करि गये। अब वाके स्वाद की बात है। वाकौ स्वादु तौ कोई विरलौ ही चखि सकै, जापै गोवर्धननाथ कृपा करैं। तुम पै उनकी कृपा है गई है; ताते स्वादु मिलि गयौ तुमकूँ; और वाहि कहिवे जाइ रहे हौ, लखनऊ-वासिन ते। कबीर के निर्गुण-फल कौ रसु थोरौ ही है, सूर कौ सगुण-फल-रस है। लखनऊ मैं खूब गाऔ, खूब सुनाऔ। सूर कूँ सांप्रदायिक बतावनवारे मूढ़न कूँ पतौ तौ चलैगौ कै सूरु कौनु हो; का कही वानैं, कैसैं कही और चौं कही ? **जो जानैंगौ, सोई तौ तानैंगौ।**

मैं तौ सूर की इन द्वै पाँतिन पै सौ जान ते निछावर हूँ। संजोग और वियोग कौ एक संग ऐसौ वर्णन मैंनैं दूसरी जगै नाहिं देख्यौ—

बिन माधव राधा तन सजनी सब बिपरीत भई।
कदलीदल-सी पीठि मनोहर सो जनु उलटि गई॥ (सूरसागर)

हमारे सूरदास वात्सल्य भाव मैं तौ कम, परि माधुर्य भाव मैं भौत डूबे भये हैं। आधे ते ज्यादै सूरसागरु माधुर्यभाव ते भरौ भयौ है। सूरदास के हिये के नैन लोक के सहज सौन्दर्य पै रीझे भये हैं, नागरिक सौन्दर्य पै नाहिं। विम्बन की छटा देखनी होइ तौ जा प्रज्ञाचक्षु के पदन मैं कोई देखै। गोपी-भाव तौ अमृत कौ सागरु ही है। अध्यात्मरामायण (१३वीं सती) के रचयिता राम-शर्मन् नैं **जगत्** और **संसार** कूँ मायामय मान्यौ है। सूरदास कौ **जगतु** तौ भगवान कौ लीलामय रूपु है, परि **संसार** मायामय है। सूर कौ जगत् सुभ औरु संसारु असुभ है।

भइया जी ! हम साहित्य-सेवकन पै खूब भाभई आई इन दिनन मैं। तुम्हारे घर कौ जो हालु भयौ मैंनैं सबु देख्यौ। **खूब देख्यौ राजा तेरौ न्याउ, और तेरे करतब**—बस इतनौ ही लिखुंगो जा घड़ी।

अब तौ जनवरी के दूसरे अठवारे मैं ही मिलन-भेट होइगी। सब कूँ राम-राम; बच्चन कूँ असीस। वा दिना **ससीकला** भौतु घबराइ गयी। वाहि धीरज बँधइयौ; कछू बातना है। कोई ग्रह-चक्करु आइ गयौ हो। सब ठीक है जाइगौ।

डा० गोवर्धननाथ शुक्ल,
शुक्ल-सदन
खाई ढोरा, अलीगढ़।

तुम्हारौ एकु मीतु
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री धनीराम शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़-२०२००१

प्रिय श्री धनीराम जी, दिनांक २८. १२. ७८ ई०

मंगलकामना !

आपके प्रश्न से यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप **रामचरितमानस** का अध्ययन केवल भक्ति-भाव से ही नहीं कर रहे, अपितु संस्कृति और साहित्य के आलोक में भी उसके स्वरूप के दर्शन करने में रुचि रखते हैं।

आपका प्रश्न **रामचरितमानस** के **अरण्यकाण्ड** की निम्नांकित अर्धालियों से सम्बद्ध है—

हमहि देखि मृग निकर पराहीं।
मृगीं कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं॥
तुम्ह आनंद करहु मृग जाए।
कंचन मृग खोजन ए आए॥—(अर० ३७(क)/५,६)

भगवान् रामचन्द्र जी सीताजी के वियोग में दुखी हैं। वन में पशु-पक्षियों को अपनी-अपनी पत्नियों-सहित देखकर उन्हें सीताजी की याद आ रही है।

आपका मूल प्रश्न यह है कि "श्रीराम और लक्ष्मण को देखकर हिरन ही डरकर क्यों भागते थे, हिरनियाँ क्यों नहीं भागतीं थीं। हिरनियाँ तो निर्भय हैं और अपने-अपने पतियों को समझा भी रही हैं कि डरिए नहीं; आनन्द से रहिए—ऐसा क्यों है ?"

प्रिय धनीराम जी ! रामचन्द्र जी के समय में, तथा उनसे पहले भी राजा दशरथ के शासन-काल में नर हिरन का ही शिकार किया जाता था, मादा का नहीं। राजाओं की इस नीति और आचरण की अवगति हिरनियों को थी। इसलिए हिरनियाँ नहीं डरीं। हिरनों का शिकार किया जाता था; इसलिए हिरनों का डरना स्वाभाविक है। मारीच-हिरन को रामचन्द्र जी ने मारा था—यह बात उस वन में फैल गयी थी। इसलिए हिरन (नर हिरन) डरकर भाग रहे थे।

क्या आपको यह मालूम है कि राजा दशरथ भी अपनी जवानी में हिरनों का शिकार किया करते थे।

ऐक दिन राजा दशरथ आखेट के लिए निकले। धनुष-वाण लेकर वन में हिरन का पीछा कर रहे थे। राजा दशरथ ने धनुषकी प्रत्यंचा पर बाण चढ़ाकर उसे कान तक खींच लिया। खींचकर हिरन में बाण मारना ही चाहते थे कि तुरन्त उस हिरन की पत्नी सन्धाने हुए बाण और हिरन के बीच में आकर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खड़ी हो गयी। अतः हिरन लक्ष्य न रहा; हिरनी लक्ष्य बन गयी। राजा ने करुणार्द्र होकर बाण प्रत्यंचा से हटाकर तर्कश में रख लिया।

महाकवि कालिदास के ग्रंथ 'रघुवंश' में यह वर्णन मिलता है। कालिदास लिखते हैं—

लक्ष्यीकृतस्य हरिणस्य हरिप्रभावः
प्रेक्ष्य स्थितां सहचरीं व्यवधाय देहम्।
आकर्ण कृष्टमपि कामितया स धन्वी
बाणं कृपामृदुमनाः प्रतिसंजहार ।। (रघुवंश, ९/५७)

आज भी लोग प्रायः हिरन का ही शिकार करते हैं। यदि कोई हिरनी का करता है, तो अपराधी माना जाएगा। उसने आखेट की आचार-संहिता का पालन नहीं किया। राजपूताने के भी बहुत-से राजा शेर का ही शिकार करते थे, शेरनी का नहीं।

आपके उसी प्रश्न में एक उपप्रश्न यह भी है कि "सोने के हिरन के मारने की बात तो उस बन के हिरनों ने भी सुनी होगी। फिर हिरन क्यों डरे ? क्यों भागे ?"

प्रिय शर्मा जी, हिरनों को तो पहले इतना ही मालूम हुआ था कि रामचन्द्र जी ने पंचवटी में एक हिरन मार दिया। उस समाचार को सुनकर हिरन-वर्ग इतना भयभीत हो गया कि बाद में कंचनमृगवाला समाचार सुनने पर भी सब हिरन उसे न सुन सके। भयाक्रान्त व्यक्ति किसी दृश्य को न ठीक से देख सकता है, और न किसी बात को ठीक से सुन सकता है। यही दशा हिरनों की की भी हो गयी थी। इसीलिए भयभीत हिरन भागे जा रहे थे और उनकी हिरनियाँ उन्हें तब समझा रही थीं—

तुम आनंद करहु मृग जाए। कंचन मृग खोज ए आए।—(अर० ३७/६)

आशा है विद्यालय का कार्य सुन्दर ढँग से चल रहा होगा। बच्चों को आशीर्वाद। नव वर्ष मंगलकारी हो ! सस्नेह,

श्री धनीराम शर्मा, शुभैषी
प्रधानाचार्य, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
हिन्दू उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, अचलताल, अलीगढ़

डा० जगदीशचन्द्र 'इन्दु' के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१

प्रियवर जगदीशचन्द्र, दिनांक २९. १२. १९७८ ई०

आशीर्वाद !

मैंने तुम्हारी कुछ प्रकाशित पुस्तकों को सरसरी नज़र से देखा है। प्रसन्नता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि तुम विद्यार्थियों के ज्ञानवर्द्धन की दृष्टि से अच्छा आलोचनात्मक साहित्य शिक्षा-संस्थाओं को दे रहे हो। अब कुछ समय गम्भीर अध्ययन करके एक ग्रंथ ऐसा लिखो, जिसे पंडित जन भी सराहें। मैं आगामी पाँच वर्षों में तुम्हारी लेखनी से एक नितान्त शोधपरक आलोचनात्मक ग्रंथ का प्रणयन देखना चाहता हूँ।

तुम्हारी पुस्तक 'हिन्दी नाटक और एकांकी का इतिहास' देखी थी। पुस्तक परिश्रम से लिखी गयी है। विद्यार्थियों के लिए उपादेय है। आज सन् १९७८ ई० है। वह पुस्तक १९७३ ई० में लिखी गयी थी। यदि नाटक साहित्य में ही रुचि अधिक है, तो हिन्दी-नाटकों के उद्गम के सम्बन्ध में विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ लिखो, जिसमें प्राचीन संस्कृत-नाटकों तथा यूनानी नाटकों के अध्ययन की ही हीर को प्रस्तुत किया गया हो। विद्यार्थियों से तो कह चुके; अब पंडितों से भी कुछ निवेदन करो।

प्रियवर जगदीश ! संस्कृत भाषा में **नाट्य** और **नाटक** दो शब्द अलग-अलग हैं। हिन्दी के लेखक इनका प्रयोग करने में भूल करते हैं। नाटक-ग्रंथों के प्रकार लिखने में प्रायः लिख दिया जाता है कि "**एकांकी नाटक** और **गीति नाट्य** नाटकों के प्रमुख भेद हैं।" **एकांकी नाटक** और **गीति नाटक** लिखना चाहिए।

गीति नाट्य नाटक ग्रंथ का प्रकार नहीं हो सकता। **नाट्य** शब्द का अर्थ है—नट का कार्य अर्थात् नाचना, गाना, बजाना आदि। "**नटानां कार्यं नाट्यम्**" (नट + ञ्य)। **नाटक** शब्द का अर्थ है—अभिनय से सम्बद्ध ग्रंथ।

अतः नाटकों पर ग्रंथ लिखनेवाले लेखक को **नाट्य** और **नाटक** शब्दों का प्रयोग विचारपूर्वक करना चाहिए।

खुर्जा के जीवन के उपरान्त हाथरस में तुम्हारी साहित्य-सर्जना का प्रत्यक्ष परिचय मिला था। उसके बाद तुम जब नजीबाबाद चले गये; तब से तुम्हारी सारस्वत योजनाओं का पूर्ण परिचय प्राप्त नहीं हुआ। अपने नवीन समाचार लिखना।

आशा है सपरिवार सानन्द होगे। सौभा० बहू को असीस। बच्चों को प्यार। सस्नेह,

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० जगदीशचन्द्र 'इन्दु',
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
साहू जैन कालेज, नजीबाबाद (बिजनौर)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० रवीन्द्र 'भ्रमर' के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१

प्रिय भाई भ्रमर जी, दिनांक ३०. १२. ७८ ई०

आपके साथ हुई **रामचरितमानस-चर्चा** के प्रसंग में आपने जिज्ञासा प्रकट की थी कि तुलसीदास के रामचरितमानस के पंचम सोपान का नाम **सुन्दर** क्यों है ? इसके उपरान्त प्रियवर शाण्डिल्य ने यह जानना चाहा था कि आख़िर तुलसी को ऐसी क्या आवश्यकता हुई, जो **रावण** जैसे पात्र को इतना निकृष्ट बनाकर चित्रित किया ? विना निकृष्ट बनाये भी उनका **रामचरितमानस** लिखा जा सकता था।

भाई भ्रमर जी ! मैं पहले आपकी जिज्ञासा के सम्बन्ध में अपनी बात आपसे कहना चाहता हूँ। फिर प्रियवर शाण्डिल्य के प्रश्न का उत्तर दूँगा। आप कृपया उस उत्तर को प्रियवर शाण्डिल्य को बता दें। इधर वह मुझे बहुत दिनों से मिले नहीं हैं। मैं सप्ताह में केवल सोम और मंगल के दिन विभाग में जाता हूँ। उन दिनों में सम्भवतः उनकी कक्षाएँ सन्ध्या में लगती हैं।

तुलसीदास जी ने **रामचरित** लिखा है। यह **रामचरित** सर्वप्रथम **महेश** ने रचा था और रचकर उसे अपने मानस (मन) में रख लिया। जो **रामचरित** शंकर के मानस में समाया हुआ है, उसे तुलसीदास शंकर के कहने से **रामचरितमानस** कहते हैं। बालकाण्ड (प्रथम सोपान) में तुलसी अपने ग्रंथ के नामकरण का कारण भी बता देते हैं—

रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा।।
तातें रामचरितमानस बर। धरेउ नाम हिअँ हेरि हरषि हर।।

(रामच०, बाल० ३५/११,१२)

शंकर के मन में समुपस्थित उस **रामचरितमानस** को तुलसी ने अपने मानस-नेत्रों से देखा है और उसके दर्शनों से तुलसी की बुद्धि विमल बनी है। तब वही **रामचरितमानस** तुलसी की हृदय-भूमि में सुशोभित हुआ और उससे कवितारूपी सरयू नदी प्रवाहित हुई, जो रामभक्ति रूपी गंगा में जाकर मिल गयी (रामचरित०, बाल०, दो० ३८ से ४० तक)।

'रामचरितमानस' नाम शंकर ने रखा है। सर्व प्रथम रामचरित शंकर ने पार्वती को सुनाया। तत्पश्चात् शंकर ने काकभुशुण्डि को, और फिर काकभुशुण्डि ने याज्ञवल्क्य को वही रामचरित सुनाया। याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज को सुनाया और भरद्वाज से लोक में प्रचलित हुआ। लोक-परंपरा से चली

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आती हुई उस कथा को तुलसीदास के गुरु ने तुलसीदास को सुनाया। तुलसीदास ने फिर सब राम-भक्तों को वह कथा सुनायी है।

मानस शब्द में श्लेष है। इसके दो अर्थ हैं—(१) **मानस**=मन (२) **मानस**=मानसरोवर।

तुलसीदास जी का सम्पूर्ण ग्रंथ **मानसरोवर** है। उसकी राम-कथा एक **सरिता** है। उस सरिता ... । नदी-तट की काई ... के सुन्दर घा... सांगरूपक भी ... में प्रस्तुत किय...

... है। इस सरो... हैं। इस सरो... से पाठक को ... **अयोध्या** (३) ...

...कता है। इसी... काण्ड में ज्ञान-... से ऊँचा ठहरा...

म...

...ोक १)

तु... तथा कार्य-स्थ... रख गये हैं।

समयावस्था से सम्बद्ध नाम—(१) **बालकाण्ड** (२) **उत्तरकाण्ड**।

कार्य-स्थल से सम्बद्ध नाम—(१) **अयोध्याकाण्ड** (२) **अरण्यकाण्ड** (३) **किष्किन्धाकाण्ड** (४) **सुन्दरकाण्ड** (५) **लंकाकाण्ड**

आप इस बात पर विचार करते होंगे कि अयोध्या, दण्डकारण्य, किष्किधा और लंका तो स्थानवाची हैं, लेकिन **सुंदर** स्थानवाची कैसे है ?

भ्रमर जी ! लंका त्रिकूट पर्वत पर बसी हुई थी। उसके तीन कूट क्रमशः इस प्रकार थे—(१) **सुबेल** (२) **नील** (३) **सुंदर**। **सुंदर** नाम की **पर्वतश्रेणी** पर ही

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० रवीन्द्र 'भ्रमर' के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१

प्रिय भाई भ्रमर जी, दिनांक ३०. १२. ७८ ई०

आपके साथ हुई **रामचरितमानस-चर्चा** के प्रसंग में आपने जिज्ञासा प्रकट की थी कि तुलसीदास के रामचरितमानस के पंचम सोपान ... सुन्दर

... पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा ।।

तातें रामचरितमानस बर । धरेउ नाम हिअँ हेरि हरषि हर ।।

(रामच०, बाल० ३५/११,१२)

शंकर के मन में समुपस्थित उस **रामचरितमानस** को तुलसी ने अपने मानस-नेत्रों से देखा है और उसके दर्शनों से तुलसी की बुद्धि विमल बनी है । तब वही **रामचरितमानस** तुलसी की हृदय-भूमि में सुशोभित हुआ और उससे कवितारूपी सरयू नदी प्रवाहित हुई, जो रामभक्ति रूपी गंगा में जाकर मिल गयी (रामचरित०, बाल०, दो० ३८ से ४० तक) ।

'रामचरितमानस' नाम शंकर ने रखा है । सर्व प्रथम रामचरित शंकर ने पार्वती को सुनाया । तत्पश्चात् शंकर ने काकभुशुण्डि को, और फिर काकभुशुण्डि ने याज्ञवल्क्य को वही रामचरित सुनाया । याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज को सुनाया और भरद्वाज से लोक में प्रचलित हुआ । लोक-परंपरा से चली

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आती हुई उस कथा को तुलसीदास के गुरु ने तुलसीदास को सुनाया। तुलसीदास ने फिर सब राम-भक्तों को वह कथा सुनायी है।

मानस शब्द में श्लेष है। इसके दो अर्थ हैं—(१) **मानस**=मन (२) **मानस**=मानसरोवर।

तुलसीदास जी का सम्पूर्ण ग्रंथ **मानसरोवर** है। उसकी राम-कथा एक **सरिता** है। उस सरिता की वेगवती प्रबलधारा परशुराम का क्रोध है। नदी-तट की काई कैकेयी है। नदी-तट के जप-यज्ञ भरत हैं। राम-नाम नदी के सुन्दर घाट हैं, जिनपर मुनिगण बैठकर रामचरित सुनते हैं। एक विशिष्ट सांगरूपक भी तुलसीदास जी ने रामचरितरूपी मानसरोवर के लिए बालकाण्ड में प्रस्तुत किया है, जो साहित्यशास्त्र से संबद्ध है।

रामचरित एक सरोवर के रूपक में भी तुलसी ने चित्रित किया है। इस सरोवर में सात सोपान हैं; वे ही काण्डों के नाम से व्यक्त किये गये हैं। इस सरोवर के भक्तिरूपी जल में स्नान करने के लिए जिन सात सीढ़ियों से पाठक को उतरना है, उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—(१) **बाल** (२) **अयोध्या** (३) **अरण्य** (४) **किष्किन्धा** (५) **सुंदर** (६) **लंका** (७) **उत्तर।**

उत्तर नाम की सीढ़ी पर बैठकर सरोवर में स्नान किया जा सकता है। इसीलिए तुलसीदास जी ने **मानस** के सप्तम सोपान अर्थात् उत्तरकाण्ड में ज्ञान-भक्ति की चर्चा चलाकर भक्ति की चिन्तामणि को ज्ञान के दीपक से ऊँचा ठहराया है।

मानस के उत्तरकाण्ड के अन्त में भी तुलसी ने लिख दिया—

यत् पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्री शंभुना दुर्गमम्....।
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्॥

—(उत्तर० १३०/श्लोक १)

तुलसी के सोपानों (काण्डों) के नाम राम की जीवन-समयावस्था तथा कार्य-स्थल के आधार पर रखे गये हैं।

समयावस्था से सम्बद्ध नाम—(१) **बालकाण्ड** (२) **उत्तरकाण्ड।**

कार्य-स्थल से सम्बद्ध नाम—(१) **अयोध्याकाण्ड** (२) **अरण्यकाण्ड** (३) **किष्किन्धाकाण्ड** (४) **सुन्दरकाण्ड** (५) **लंकाकाण्ड**

आप इस बात पर विचार करते होंगे कि अयोध्या, दण्डकारण्य, किष्किंधा और लंका तो स्थानवाची हैं, लेकिन **सुंदर** स्थानवाची कैसे है ?

भ्रमर जी ! लंका त्रिकूट पर्वत पर बसी हुई थी। उसके तीन कूट क्रमशः इस प्रकार थे—(१) **सुवेल** (२) **नील** (३) **सुंदर। सुंदर** नाम की **पर्वतश्रेणी** पर ही

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रावण की अशोकवाटिका थी, जहाँ राम जी की प्राणप्रिया सीता जी को रखा गया था। इसी 'सुंदर' नाम के कूट पर हनुमान् पहुँचे थे। रामचन्द्रजी को शान्तिप्रदान करनेवाला समाचार हनुमान् ने 'सुंदर' पर्वत से ही लाकर दिया था। सुन्दर पर्वत से हनुमान् को जो सुख मिला, वही सुख **मानस** के नायक राम को भी मिला। भगवान् राम का शुभ संदेश महारानी सीता जी को भी 'सुन्दर' पर्वत पर की अशोकवाटिका में ही मिला। इस पंचम सोपान में ही हनुमान् के मन में प्रसन्नता हुई है, सीता जी के मन में मिलन-समाचार की शीतल धारा प्रवाहित हुई और इसी सोपान में रामचन्द्र जी को सीता जी के समाचार से संतोष तथा सुख मिला है। यह सब कुछ **सुन्दर** ही है। इसीलिए सप्तम सोपान का नाम **सुन्दरकाण्ड** रखा गया।

कपीन्द्र मारुतसुत लंका को प्रस्थान करते समय अपनी यात्रा **सुंदर** नाम के पहाड़ से आरंभ करते हैं, जो समुद्र के किनारे पर था। हनुमान् जी ने इसी **सुंदर** नाम के भूधर से छलाँग मारी थी। तुलसीदास जी ने लिखा भी है—

सिंधु तीर एक भूधर सुंदर।
कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर॥ (सुन्दर० १/५)

इसे तो आप तुलसी की भौगोलिक दृष्टि की महिमा, गरिमा और उच्चता समझें।

अब काव्यात्मकता और भाषा-पाण्डित्य की ऊँचाई भी देखें। **सुंदर** के मूल में प्रमुख शब्द **दर** है, जो 'दृ' धातु से निर्मित है। **दर** का अर्थ है विदीर्ण, फटा हुआ (धा०दृ + अप = दर)। सु + दर = न् के आगम से **सुन्दर** शब्द बना है। **सुन्दर** का अर्थ हुआ पूर्णतः विदीर्ण। पंचम सोपान में राम, सीता और हनुमान्—तीनों—का हृदय विदीर्ण हुआ है। तीनों ने ही अश्रुपात किये हैं—

(१) सीता जी के अश्रुपात—

नाथ जुगल लोचन भरि बारी।
बचन कहे कछु जनककुमारी॥ (सुन्दर० ३१/२)

(२) हनुमान् के अश्रुपात—

अस मैं अधम सखा सुनु, मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन, भरे बिलोचन नीर॥ (सुन्दर० ७/–)

(३) राम के अश्रुपात—

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना।
भरि आए जल राजिव नयना॥ (सुन्दर० ३२/१)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

× × ×

पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता।
लोचन नीर पुलक अति गाता॥ (सुन्दर० ३२/८)

व्याकरण के आधार पर **सुन्दर** शब्द की एक और व्युत्पत्ति इस प्रकार भी संभव है—सु + उन्द् + अरन् = **सुन्दर**(= तर करनेवाला)। **उन्द्** धातु भिगाने या तर करने के अर्थ में आती है। सीता जी, हनुमान् जी और रामचन्द्र जी इसी काण्ड में पूरी तरह रोये हैं। तीनों ने अपने-अपने कपोलों को अश्रुधारा से भिगोया है। इसलिए पंचम सोपान का नाम **सुन्दर काण्ड** रखा गया।

सुन्दर शब्द का अर्थ **मनोहर** अथवा **खूबसूरत** भी है। इस पंचम सोपान में सब कुछ सुन्दर है। पर्वत सुन्दर, अशोकवाटिका सुन्दर, हनुमान् का मन सुन्दर, सीता का मन सुन्दर और राम का मन सुन्दर—

सुन्दरे सुन्दरो रामः, सुन्दरे सुन्दरी कथा।
सुन्दरे सुन्दरी सीता, सुन्दरे किन्न सुन्दरम्॥

भाषाविज्ञान के दृष्टिकोण से **सुंदर** शब्द के अर्थ में अर्थ-विस्तार हुआ है। अच्छे तथा मनोहर मनुष्य को ही आदि में 'सुन्दर' कहा जाता था, और उसके लिए शब्द था '**सुनर**'। कालान्तर में **सुनर** शब्द का विकास **सुंदर** रूप में हो गया और फिर ख़ूबसूरत वस्तु, प्राणी आदि को भी सुन्दर कहने लगे जैसे वानर का विकसित रूप **बंदर**। वैसे ही **सुनर** का विकसित रूप **सुंदर**।

अब प्रियवर शाण्डिल्य के प्रश्न के सम्बन्ध में भी कुछ वाक्य लिखना आवश्यक समझता हूँ।

हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार और महाकवि **प्रसाद जी** ने 'स्कंद गुप्त विक्रमादित्य' नाटक के द्वितीय अंक के प्रारम्भ में **देवसेना** के शब्दों में कहा है कि "**पवित्रता** की माप है, **मलिनता**; और **पुण्य** की कसौटी है, **पाप**।"

प्रसाद जी ने यह बहुत पते की बात कही है, जो काव्यगत धीरोदात्त नायक और खलनायक के सम्बन्ध में सटीक बैठती है।

यदि तुलसी खलनायक के रूप में रावण के घोर पाप और मालिन्य को व्यक्त न करते, तो समाज के प्राणियों के मन में पवित्रता और पुण्य के प्रति परम आस्था और श्रद्धामय समर्पण-भाव न जगता। मानवों के मानसों में औदात्त्य की स्थापना न होती। मानवों में सच्चरित्र एवं सदाचरण के प्रति दिव्य आकर्षण भी न होता। इसीलिए महाकाव्य के रचयिता **तुलसी** को **मानस** में खल-नायक **रावण** को निकृष्ट रूप में चित्रित करना पड़ा है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशा है आप सपरिवार सानंद होंगे। सस्नेह,

डा० रवीन्द्र 'भ्रमर', आपका

(रीडर, हिन्दी विभाग, अ० मु० वि०), अम्बाप्रसाद 'सुमन'

शाकुन्तलम्, मैरिसरोड, अलीगढ़।

ठा० नवाबसिंह चौहान 'कंज' के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़

मान्यवर श्री चौहान जी, दिनांक ३१. १२. ७८ ई०

सादर सप्रेम नमस्ते।

आशा है परमेश की दया से आप स्वस्थ और सानंद होंगे। मद्रास से अलीगढ़ को तो कई पत्र लिखे थे। आज यह पत्र अलीगढ़ से नई दिल्ली को भी लिखा जा रहा है।

आपके जीवन की मूल वृत्ति से मैं परिचित हूँ। आपकी और मेरी विद्या-स्थली धर्मसमाज कालेज, अलीगढ़ रही है। मैंने सन् १९३१ ई० में धर्मसमाज में प्रवेश लिया था। तब आप भी वहाँ पढ़ते थे। शिक्षा और अवस्था में मैं आपसे तब भी छोटा था। आप तब मुझे भले ही न जानते हों, किन्तु मैं आपको जानता-पहचानता था।

पंडित गोकुलचन्द्र जी शर्मा आपके श्रद्धेय गुरु थे और मेरे भी। आपको तथा मुझे उनसे ही कविता का आशीर्वाद मिला था। धर्मसमाज कालेज की मैगज़ीन में मैं आपकी कविताएँ पढ़ा करता था। अब तो आपके कविता-संग्रह **बुझा न दीप प्यार का** को भी मनोयोग से आदि से अन्त तक पढ़ गया हूँ। खड़ी बोली हिन्दी और ब्रजभाषा—दोनों—में आपकी अभिव्यक्ति सरस, प्रांजल तथा प्रभावी है। आपकी लेखनी से हमारे राष्ट्र की राष्ट्रीयता, राष्ट्र-गौरव तथा लोक-जीवन का मधुर चित्र मुखरित हुआ है। ब्रजभाषा की कुछ सरस कविताओं पर तो मैं बहुत मुग्ध हूँ और आपको हार्दिक बधाई अर्पित करता हूँ। आपका काव्य-सरोवर ऊर्मिल रहे!

आपकी ब्रजभाषा-कविताओं को पढ़कर मैं यह कह सकता हूँ कि आप यदि ब्रजभाषा में रसिया ही निरंतर लिखते रहते, तो ब्रज का यह काव्य-रूप साहित्य के उच्च स्तर पर भी अपना आसन बिछा लेता। बुन्देली भागा में फागों के रचने में जो ख्याति **बगौरा** (जि० हमीरपुर) के **ईसुरी** (ईसा की १९वीं शती) ने प्राप्त की है. उससे ऊँची ख्याति आप ब्रजभाषा में साहित्यिक रसियों के क्षेत्र में प्राप्त कर लेते। कविवर शंकर जी के रसियों में जो मिठास मुझे मिली, कुछ-कुछ वैसी-ही मिठास आपकी रचनाओं में भी पायी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके राष्ट्र-प्रेम के साकार रूप को भी मैंने देखा है। रेलगाड़ी के डिब्बे में पुलिस के सिपाहियों के बीच मैंने आपके उस देश-भक्त-रूप के भी दर्शन किये हैं, जो बेड़ियाँ पहने हुए जेल की यात्रा कर रहा था। मेरे अंतस् का सुमन आज भी आपके उस बलिदानी रूप को नमस्कार कर लेता है।

यह सब कुछ सही है, चौहान जी !; आप में स्पष्टवादिता और सत्यता भी निवास करती है—यह भी सही बात है। लेकिन **सच्चे साहित्यकार** तथा **सच्चे साहित्यसेवी** को पहचानने में आप कभी-कभी भूल क्यों कर जाते हैं ? आप तो कवि हैं, निर्भीक हैं और स्वाभिमानी हैं। राजनीति में भी सारा जीवन लगाया है, अतः बुद्धि और विवेक भी संयत और पुष्ट हैं। समाज का अनुभव भी है आपको। फिर भी खोखलों और चाटुकारों को आप कभी-कभी साहित्यकार क्यों मान लेते हैं ? आपके हृदय और बुद्धि के नेत्र क्या नहीं देख पाते कि कौन **हिन्दी-सेवी** है और कौन **हिन्दी-ढोंगी** ? चारणत्व या चरण-चुम्बन **साहित्यकार** का कर्म नहीं; वह किसी स्वार्थी तथा आत्महीन व्यक्ति का कुकर्म हो सकता है।

यह पत्र मैं आपको इसलिए लिख रहा हूँ कि आपको मैं शुद्ध राजनीतिज्ञ नहीं मानता। आप **साहित्यिक** पहले हैं, **राजनीतिक** बाद में। घटिया राजनीतिक व्यक्ति तो चाहता है कि बुद्धिजीवी उसकी चाटुकारी करे; उसकी परिक्रमा लगाए और उसका जय-जय-गान गाए; लेकिन आचरणवान् **साहित्यिक राजनीतिज्ञ** इसे अपने व्यक्तित्व का घटियापन समझेगा। साहित्यिक-राजनीतिक-व्यक्ति राष्ट्र और राष्ट्रभाषा के कल्याण की दृष्टि से सच्चे साहित्यकारों को ही स्नेह, आदर तथा प्रोत्साहन दिया करता है। उदात्त विचारणा एवं भावना ही साहित्य को सच्चा उत्कर्ष प्रदान करती है और भविष्य में करेगी। हमारा गत, आगत और अनागत इसका समर्थन कर चुका है; करता है और करेगा।

यदि हमारे राष्ट्र के राजनीतिक स्तम्भ सच्चे साहित्यकारों से यह आशा रखेंगे कि वे साहित्य-सर्जना और स्वाभिमान को त्याग कर केवल राजनीतिज्ञों के आसनों की परिक्रमा लगाएँ, तो साहित्य तथा राष्ट्र की बहुत बड़ी हानि हो जाएगी। ऐसे देश में प्राणवन्त साहित्य की सृष्टि न हो सकेगी। सच्चा प्राणवन्त साहित्य ही देश को प्राणवन्त बनाता है।

कुछ राजनीतिक स्तम्भों में चाटुकारी कराने की तथा झूठा जय-जयकार सुनने की ललक घर कर गयी है। इसका देश पर यह कुप्रभाव पड़ा है कि अर्थ-लोलुप बुद्धि-जीवियों का अच्छा खासा वर्ग भ्रष्ट हो गया है। परिणाम यह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ है कि आज अधिकांश सृष्ट साहित्य हमें प्रेरित नहीं कर पाता। वर्तमान सृष्ट साहित्य के पीछे भ्रष्ट साहित्यकार की काली छाया पाठक को दिखायी दे जाती है। वह छाया कथनी और करनी को साफ़-साफ़ बता देती है।

चापलूस, स्वार्थी एवं आत्महीन व्यक्तियों द्वारा लिखा हुआ या कहा हुआ कथन सारहीन ही रहता है। तुरन्त प्रतिक्रियात्मक चारणत्व **साहित्य** नहीं है। **साहित्य** तो सच्चे साहित्यकार की लेखनी की नोक से ही जन्म लेता है। साहित्यकार रूपी महाविष्णु के अँगूठे से ही पूत-पावनी गंगा प्रवाहित होती है और जन-जन का कल्याण करती है। साहित्य विश्व का हित करता है और राष्ट्र में चेतना जगाता है।

सच्चे **साहित्यकार** का साहित्य भूत, वर्तमान और भविष्य से सम्बन्ध रखता है। साहित्यकार में प्रतिक्रिया तत्काल नहीं जगती। सच्चे साहित्यकार की प्रतिक्रिया समष्टिमूलक भाव-राशि के रूप में तभी बाहर आती है, जब पहले शनैः शनैः हृदय-भूमि में जज़्ब हो लेती है। वह प्रतिक्रिया उसकी स्मृति बनकर निकलती है, राष्ट्रोत्कर्ष के मंगलमय मंजुल स्वर में। **साहित्यकार** का **साहित्य** वर्तमान के साथ भूत और भविष्य को भी समेट लेता है।

शान्त क्षणों में मेरे इस निवेदन पर आप कृपया विचार करेंगे तो आप इस निर्णय पर पहुँचेंगे कि जो सच्चा साहित्यकार होगा, वह चाटुकार नहीं होगा। वह आत्मसम्मानी होगा, स्वाभिमानी होगा। सच्चा साहित्यकार किसी राजनीतिज्ञ का मित्र तो हो सकता है, दास या ग़ुलाम नहीं।

राष्ट्र की नैतिकता और सदाचरण को स्थायित्व और अमरत्व उस राष्ट्र का साहित्य ही प्रदान करता है। वह साहित्य सच्चे और कर्तव्यपरायण साहित्यकार की लेखनी से ही जन्म लेता है। यदि हमारे राष्ट्र के कर्णधार राजनीतिज्ञ सच्चे साहित्यकारों को सम्मान न देंगे और असाहित्यिक की चाटुकारी को स्वीकारेंगे, तो राष्ट्र-प्रासाद की छत एक दिन अवश्य गिर जाएगी।

आप कवि और तुक्कड़ में अन्तर समझते हैं। अब कृपया **साहित्यकार** और **चापलूस** का अन्तर भी समझें। साहित्यकार का साहित्य देखें, चाटुकार का स्वर न सुनें।

शेष कभी सम्मिलन के क्षणों में। सस्नेह, सादर,

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० नवाबसिंह चौहान 'कंज',
संसत्-सदस्य,
पार्लियामेंट हाउस, नई दिल्ली।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
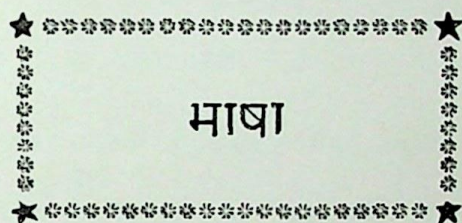
प्रो० आर्येन्द्र शर्मा के नाम

काव्य-कुटीर, कृष्णापुरी, अलीगढ़ (उ० प्र०)

मान्यवर डा० आर्येन्द्र जी शर्मा, दिनांक ४. २. १६५६ ई०

सादर नमस्ते !

कल्पना के गत अंक में आपका संपादकीय पढ़ा। उसमें प्रत्येक स्थल पर **जागृत** शब्द छपा हुआ मिला। यह **जागृत** व्याकरण से कौनसा रूप है ? ऐसा ही **जागृत** छपा हुआ मैंने बा० श्यामसुन्दरदास जी की एक पुस्तक में देखा था, विद्यार्थी-अवस्था में। तब एक पत्र भी मैंने बाबू जी के पास भेजा था।

जागृ धातु से शतृ और क्त प्रत्ययों के योग से अलग-अलग दो शब्द बनते हैं—(१) जागृ + शतृ = **जाग्रत्**। (२) जागृ + क्त = **जागरित**। **जाग्रत्** = जागता हुआ (वर्तमानकालिक कृदन्त)। **जागरित** = जागा हुआ (भूतकालिक कृदन्त)

आपके **जागृत** को मैं नहीं समझा। कृपया समझाकर अनुगृहीत करें। धन्यवाद !

मैंने आपके दोनों वाक्यों पर विचार किया। अपना मत लिख रहा हूँ, पता नहीं कहाँ तक ठीक है ?

(१) "लड़की राग **अलापते हुए** चली गयी"—वाक्य में **'राग अलापते हुए'** क्रियाविशेषण है।

(२) "लड़की राग **अलापती हुई** चली गयी"—वाक्य में **राग 'अलापती हुई'** विशेषण है।

जहाँ तक कर्ता कारकीय परसर्ग **नै** का प्रश्न है; यह कारकीय चिह्न आज-कल की ब्रजभाषा में तो प्रचलित है ही; लेकिन प्राचीन ब्रजभाषा में भी इसका प्रयोग मिलता है। सूरदास के **'सूरसागर'** में **नै** का प्रयोग है—

तहाँ ताहि विषहर नै खाई —(सूरसागर)

× × ×

दियौ सिरपाव नृपराव नै महर कौं,
आपु पहिरावने सब दिखाये। —(सूरसागर, काशी ना० प्र० स०, स्कंध १०/पद ५८७)

आपके उत्तर की प्रतीक्षा में,

डा० आर्येन्द्र जी शर्मा,
संपादक, 'कल्पना' (मासिक)
सुल्तान बाज़ार, हैदराबाद (दक्षिण)

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री यज्ञदत्त शर्मा के नाम

काव्य कुटीर, कृष्णापुरी, अलीगढ़ (उ० प्र०)

प्रियवर यज्ञदत्त, दिनांक १६. १२. १९५७ ई०

आशीर्वाद !

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे पत्र में प्रथम पैराग्राफ में यह लिखा गया है—

"**पं० कामताप्रसाद गुरु** के **हिन्दी व्याकरण** के अनुसार हिन्दी में शब्द-समूह इस प्रकार हैं—(१) तत्सम शब्द (२) तद्भव शब्द (३) अर्द्धतत्सम शब्द (४) देशज शब्द (५) अनुकरणवाचक शब्द (६) विदेशी शब्द।

इनके अतिरिक्त एक भाषाशास्त्री की पुस्तक में मैंने एक प्रकार का शब्द-समूह **तत्समाभास** भी पढ़ा है। ये **तत्समाभास** कैसे शब्द हैं? कृपया उदाहरण देकर बताने का कष्ट करें। उत्तर की प्रतीक्षा है।"

तत्समाभास का अर्थ है, जो वास्तव में तत्सम शब्द (संस्कृत शब्द) नहीं; लेकिन तत्सम के समान आभासित हों। इन्हें पहचानने के लिए संस्कृत भाषा और संस्कृत भाषा के व्याकरण का भी अध्ययन होना चाहिए। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के '**हिन्दी शब्द सागर**' में **जाग्रत** को संस्कृत शब्द लिखा गया है। वास्तव में यह तत्समाभास है। संस्कृत शब्द अर्थात् तत्सम शब्द तो 'जाग्रत्' है। भूतकालिक कृदन्त के रूप में 'जागरित' भी तत्सम है; लेकिन 'जागृत' तत्समाभास है। **वर्चस्व, विद्रूप, जागृति, सृजन, श्राप** और **प्रण** भी हिन्दी में तत्समाभास हैं, तत्सम नहीं। इनके तत्सम शब्द **वर्चस्**; **विरूप, जागर्ति, सर्जन, शाप,** और **पण** हैं। इस बात को हिन्दी के लेखक बहुत कम समझते हैं। किसी भाषा के साहित्य में जो शब्द बहुत प्रचलित हो जाता है, वह बहुप्रयोग से सही बन जाता है। अब हिन्दी में **जागृति** ही 'जागरण' के अर्थ में सही और साधु है; भले वह तत्सम न हो। हिन्दी ने स्वीकार लिया।

व्याकरण के विरुद्ध जो शब्द आज हिन्दी में प्रचलित हो रहे हैं, उनमें चार शब्दों का प्रयोग बहुत ज़्यादा देखा जा रहा है—(१) **जागृति** (तत्सम सं० **जागर्ति**), (२) **कार्यवाही** (फ़ा० **काररवाई**), (३) **सृजन** (तत्सम सं० **सर्जन**)। (४) **अन्तर्कथा** (तत्सम सं० **अन्तःकथा**)।

विद्वान् या बड़े साहित्यकार जब भूल या अज्ञान से किसी शब्द का प्रयोग ग्रन्थ में कर देते हैं, तब उनको प्रमाण तथा आदर्श मानकर अन्य भी वैसा ही करने लगते हैं। **चंद्रमा** के अर्थ में **शशि** और 'ट्रैजडी' के अर्थ में **त्रासदी** के प्रयोग में यही हुआ है। वास्तव में तो **शशी** और **त्रासदा** शब्द बनते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेष फिर कभी। सस्नेह,

यज्ञदत्त शर्मा,
स्थान व पो० कौड़ियागंज, (अलीगढ़)

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० विष्णुदत्त भारद्वाज के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़
दिनांक ११–४–६३

प्रिय श्री भारद्वाज जी,

पत्र मिला। आपके निर्देशक यदि **डॉ० बाबूराम जी सक्सेना** हो जाएँ, तो परम सुन्दर रहे। वे भाषा-जगत् में मूर्द्धन्य विद्वान् हैं। आप विषय-सारणी भी उनके ही परामर्श से बनाएँ। आगरा वि० वि० से अनुमति आने पर अपनी सारणी को उन्हें ही दिखाएँ। वे ठीक और उत्तम सुझाव देंगे। मैं स्वयं उन्हें गुरुजनों में मानता हूँ। निर्देशक के अनुसार ही सारणी बनाना श्रेयस्कर रहता है।

आपको मैं वे कुछ बातें इस पत्र में लिख रहा हूँ, जो पूर्णतया ध्यान देने योग्य हैं।

(१) **बाँगरू** (हरियाणवी) **दिल्ली, करनाल, रोहतक, हिसार** आदि के ज़िलों में बोली जाती है। **पटियाला, नाभा,** और **झींद** के कुछ गाँवों में भी इसका प्रभाव है। यह सारा क्षेत्र जाटू या बाँगरू-क्षेत्र कहलाता है। यदि डा० सक्सेना जी ने आपसे पूरे बाँगरू-क्षेत्र की शब्दावली के संग्रह की बात कही है, तो आपको **दिल्ली, करनाल, रोहतक** और **हिसार** जिलों में घूमकर पूरी शब्दावली एकत्र करनी होगी और यदि हिसार ज़िले की बाँगरू बोली की शब्दावली से उनका आशय है, तो आपको हिसार ज़िले के वे गाँव या परगने छोड़ देने होंगे, जहाँ **राजस्थानी** अथवा **पंजाबी** का प्रभाव स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है। आप उनसे स्पष्ट बातें करलें और अपना क्षेत्र बिल्कुल ठीक तरह समझ लें।

(२) **राजस्थानी** से **बाँगरू** भिन्न बोली है। शब्दों से आप अंतर न जान सकेंगे। आप वाक्यों में पदों के प्रयोगों से जान सकेंगे कि यह गाँव राजस्थानी या पंजाबी से प्रभावित है। ऋजु रूप पुंलिंग कर्ताकारक (एक वचन) राजस्थानी में **ओकारान्त** होता है; लेकिन बाँगरू में **आकारान्त** होता है। राज० **छोरो;** बाँगरू **छोरा।**

बाँगरू की **सै** क्रिया खड़ी बोली के क्षेत्र में **है** हो जाती है। वर्तमान काल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चयार्थ में **पंजाबी में** ऐसा होता है—(१) मुण्डा खेताँ नु **वेखदा ए**। (२) **बाँगरू** में—छोरा खेताँ **नें देखैं सै** (=लड़का खेतों को देखता है)।

चूँकि **बाँगरू** बोली **पंजाबी, राजस्थानी** और **खड़ी बोली** से घिरी हुई है; अतः उस पर उक्त तीनों का प्रभाव कुछ न कुछ अवश्य है। आपको वाक्यों के प्रयोग सुनकर शुद्ध बाँगरू क्षेत्र की शब्दावली एकत्र करनी है। रही सारणी की बात, उसे आप किसी प्रकार बना लें, अपने निर्देशक की सहायता से।

हर्ष है आप सानन्द हैं। अपने शोध-प्रबन्ध में **बाँगरू बोली** के स्थान पर **हरियाणवी बोली** शब्द लिखें। बाँगरू शब्द में हेठा भाव आ गया है।

कुछ भाषाविदों ने आर्येतर भारतीय भाषाओं को **अनार्य भाषाएँ** लिख दिया है। अब **अनार्य** शब्द में अर्थ का अपकर्ष हो गया है। इसलिए **आर्येतर** लिखना ठीक है।

आशा है सपरिवार सानंद होंगे। सस्नेह,

श्री विष्णुदत्त भारद्वाज, एम० ए०,   शुभैषी
२६/१४, शक्तिनगर, दिल्ली   अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० नरेन्द्रकुमार शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ०प्र०)
दिनांक ४. ६. १९६३ ई०

प्रियवर नरेन्द्र,

आशीर्वाद !

बिजनौर की निम्न स्तरीय जातियों की बोलियों में अनेक शब्द ऐसे मिलेंगे, जो हिन्दी के शब्द-भंडार को और अधिक सम्पन्न बना सकते हैं। बोलियों में अनेक शब्द **तद्भव** और **देशज** रूप में धूल में छिपे पड़े रहते हैं। उन्हें प्रेमपूर्वक गले लगाइए और हिन्दी के गले के हार को उनसे सजाइए।

खड़ी बोली अर्थात् **जनपदीय खड़ी बोली** में एक शब्द **टिल्ला** या **टील्ला** प्रचलित है। जब मुझे यह पता चला कि यह संस्कृत में **अष्ठीला** शब्द है, जो लम्बी यात्रा करते-करते **टील्ला** बन गया है। 'अष्ठी' घुटने को कहते हैं। जो भूमि रेत के ढेर के कारण घुटने की तरह ऊपर उठी हुई दिखाई देती है, उसे **टील्ला** या **टीला** कहते हैं। अतः 'टीला' मूलतः **अष्ठीला** ही है। सं० अष्ठीला > अट्ठीला > ठीला > टीला द्वित्वीकरण से टील्ला—यह जानकर मेरी बाछें खिल गयीं। मन-मयूर आनन्द में आकर नाचने लगा। **'अष्ठी'** का अर्थ **घुटना** है। यह संस्कृत शब्द है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम जल्दी से बोली के शब्दों और वाक्यों का संग्रह करके विवेचन-विश्लेषण करना प्रारम्भ कर दो।

मंगलकामना के साथ,

श्री नरेन्द्रकुमार शर्मा, शुभैषी
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
वर्द्धमान डिग्री कालेज, बिजनौर (उ० प्र०)

श्री रघुवरदयाल के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक २. ३. १९६४ ई०

प्रियवर रघुवरदयाल,

आशीर्वाद।

तुम्हारा प्रश्न निम्नांकित अर्धाली की **देखा** क्रिया से विशेष रूप से सम्बद्ध है। तुलसीदास जी ने **रामचरितमानस** मे लिखा है—

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मतिभ्रम मोर कि आन बिसेषा।।
—(रामचरितमानस, बाल०२०१/७)

कौशल्या जी ने यहाँ और वहाँ दो बालक देखे थे; फिर तुलसीदास जी ने 'दुइ बालक देखा' क्यों लिखा ? 'दुइ बालक देखे' लिखना चाहिए था—आपका मूल प्रश्न यही है।

रामचरितमानस में तुलसीदास अर्धाली के चरण के अन्तिम पद के अन्तिम स्वर को आवश्यकता पड़ने पर छन्द के कारण दीर्घ कर देते हैं। इसीलिए **देख** को **देखा** लिख दिया है। मूलतः **देख** का अर्थ है 'देखती है'। यह वर्तमानकाल की क्रिया है।

तुलसीदास जी लिखते हैं कि कौशल्या यहाँ-वहाँ दो बालक देखती है—''इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा'—सोलह मात्राओं की पूर्ति के लिए **देख** को **देखा** लिखा गया है।

देख=देखती है; देखती हैं। इसी प्रकार **बोल**=बोलता है, बोलते हैं। **चह**=चाहता है।

'मानस' में ऐसे अनेक प्रमाण मिल सकते हैं—

भोजन करत बोल जब राजा (बाल० २०३/६)

अर्थात् जब राजा भोजन करते समय बुलाते हैं।

पुरोडास चह रासभ खावा (अर० २९/५)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् गधा यज्ञ का हविष्यान्न खाना चाहता है ।

उपर्युक्त समानान्तर प्रमाणों से सिद्ध है कि तुलसी के मानस का 'देखा' पद वास्तव में 'देख' है, जिसका अर्थ 'देखती है' होता है ।

आशा है बात समझ में आ गयी होगी ! तुम दोनों को, और बच्चों को आशीर्वाद । सस्नेह,

श्री रघुवरदयाल, एम० ए० शुभैषी
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
राजर्षि डिग्री कालेज, अलवर (राजस्थान)

डा० रामरजपाल द्विवेदी के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक ७. ८. १९६४ ई०

प्रियवर द्विवेदी,

आशीर्वाद !

तुम्हारे पत्र से ऐसा प्रतीत हुआ कि तुम हिन्दी-व्याकरण के अन्तर्गत **सर्वनाम के स्वरूप** को ठीक तरह से नहीं समझ पाये हो ।

भाषाविज्ञान में शब्द के भेद तीन दृष्टियों से किये जाते हैं—(१) इतिहास की दृष्टि से—जैसे, तत्सम, तद्भव, देशी, विदेशी, देशज आदि । (२) रचना की दृष्टि से—जैसे, रूढ़, यौगिक और योगरूढ़ (३) व्याकरण की दृष्टि से, जैसे संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और अव्यय ।

प्रायः हिन्दी-व्याकरण की पुस्तकों में लिखा गया है कि सर्वनाम का अर्थ है, संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होनेवाला पद (शब्द-रूप) । जैसे—"मोहन आया और मोहन चला गया", को हम यों कहेंगे—"मोहन आया और **वह** चला गया ।" इस वाक्य में **वह** पद 'मोहन' के स्थान पर प्रयुक्त हुआ है । इसलिए हिन्दी में **वह** सर्वनाम है । **सर्वनाम** = संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होनेवाला । Pronoun = Inplace of a noun.

उन पुस्तकों में बात पुरानी चली आ रही है । लकीर पर लकीर खिंच रही है । वास्तव में बात यह नहीं है । **सर्वनाम** का प्रयोग सदा संज्ञा के ही स्थान पर नहीं होता । सम्बोधन में संज्ञा शब्द का प्रयोग होता है, किन्तु सर्वनाम शब्द उस संज्ञा के स्थान पर नहीं आ सकता ।

"गोपियाँ कहने लगीं—'**हे गोपाल** ! हमारी रक्षा करो' ।"—इस वाक्य में **हे गोपाल** ! के स्थान पर सर्वनाम नहीं आ सकता ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"लड़का आता है" के स्थान पर "वह आता है" प्रयोग हो सकता है; लेकिन "**अच्छा लड़का** आता है" के स्थान पर "**अच्छा वह** आता है" प्रयोग नहीं होगा।

इसलिए यह कहना कि सर्वनाम सदा संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होता है, ठीक नहीं। **वह, वे, उस, उसे, उन, उन्हें** आदि अन्य पुरुषीय पुरुषवाचक सर्वनाम हैं। इनका प्रातिपदिक क्या होगा— यह भी हिन्दी-व्याकरण की एक समस्या है। 'तत्' को प्रातिपदिक माना गया है—यह विचारणीय है। शेष फिर कभी। सर्वनामों पर गहरा विचार करने के बाद आगे बढ़ो। हर्ष है सानंद हो।

श्री रामरजपाल द्विवेदी, शुभैषी
३६८८, रामनगर, गाज़ियाबाद (उ० प्र०) अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० इन्दरराज बैद 'अधीर' के नाम

८/७, हरिनगर, अलगीढ़ (उ०प्र०)
दिनांक २१. १२. १९६४ ई०

प्रियवर इन्दरराज,

आशीर्वाद !

मद्रास से मैं यहाँ उसी दिन आ गया था। तुमने मद्रास हवाई अड्डे पर जिस क्षण विदा किया था, उससे तीन घंटे बाद मैं पालम हवाई अड्डे (दिल्ली) पर आ गया था। फिर दिल्ली से ट्रेन द्वारा अलीगढ़ आ गया। जनवरी, ६५ ई० की दसवीं तारीख को मद्रास पहुँचूँगा।

तुमने **तामिल, तेलुगु,** और **मलयालम** भाषा-भाषियों के हिन्दी-उच्चारण और हिन्दी-भाषा-पठन के सम्बन्ध में जो समस्या रखी है, और अपना स्वयं का जो तर्क प्रस्तुत किया है, उसमें वास्तव में बहुत जान है। तुम्हारा प्रश्न यही है न—

"चंपाराम स्वयं इस काम को नहीं करेगा"—इस वाक्य में तीन शब्दों के अन्तर्गत अनुस्वार हैं—(१) चंपाराम (२) स्वयं (३) नहीं। जिस प्रकार पहले दो शब्दों का अनुस्वार 'म्' की ध्वनि में उच्चरित होता है, उसी प्रकार **नहीं** का अनुस्वार उच्चरित क्यों नहीं होता ? तमिल, तेलुगु, मलयालम भाषी जब 'नहीं' को **नहीम्** बोलते हैं, तब आप उनके उस (नहीम्) उच्चारण को ग़लत क्यों बताते हैं ?

प्रियवर इन्दरराज ! निस्संदेह लिपि की दृष्टि से तमिल आदि दक्षिणी भाषाओं के हिन्दी बोलनेवाले हिन्दी पढ़ने में ग़लती नहीं करते। दोष हिन्दी की लिपि-सूचक-वर्तनी का है; या कहिए कि प्रेस के टाइप की कमी इसका मूल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण है। जब संस्कृत में **बालकानां** को **बालकानाम्** बोला जाता है, तब दक्षिण के छात्र **नहीं** को **नहीम्** पढ़ते हैं, तो उनकी भूल नहीं। भूल है हिन्दी के मुद्रण की। वास्तव में हिन्दी भाषा के मुद्रण में 'अनुस्वार' और 'अनुनासिकता' के लिए अलग-अलग टाइप-चिह्न होने चाहिए। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से जो 'सूरसागर' छपा है, उसमें अनुनासिकता का ध्यान रखा गया है। खड़ी बोली हिन्दी में प्रकाशक और लेखक ऐसा ध्यान नहीं रखते।

वास्तव में उक्त वाक्य के **नहीं** को हमें **नहीँ** (अनुनासिक चिह्न सहित) लिखना चाहिए। फिर ठीक हो जाएगा। बच्चों को असीस। आशा है तुम सपरिवार सानंद हो।

श्री इन्दरराज बैद 'अधीर' एम० ए०,　　　　　　　　शुभैषी
　　हिन्दी विभाग,　　　　　　　　अम्बाप्रसाद 'सुमन'
हिन्दी स्नातकोत्तर अध्ययन एवं अनुसंधान संस्थान,
　दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास।

बाबू वृन्दावनदास के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़

प्रिय श्री बा० वृन्दावनदास जी,　　　　　　दिनांक २३. १. ६७ ई०

सादर सप्रेम नमस्कार।

दिनांक १८–१–६७ का कृपा-पत्र पढ़कर परम प्रसन्नता हुई। आपकी सारस्वत विचारधारा से मैं पूर्णतया सहमत हूँ। निस्संदेह हिन्दी हमारे संपूर्ण भारत की भाषा है। भारत की सभी क्षेत्रीय भाषाएँ समुन्नत बनें और अपनी आदान-प्रदान-भावना से हिन्दी को समृद्ध बनाती चलें; यही तो हम सबका पावन कर्तव्य है।

आपने १०१) का निबंध-प्रतियोगिता-पुरस्कार, मद्रास राज्य में हिन्दी-सेवा की दृष्टि से जो प्रदान किया है, उसका मैं हार्दिक अभिनंन्दन करते हुए आपको बधाई देता हूँ।

जिस समय मद्रास में हिन्दी के सम्बंध में आंदोलन हुआ था, उस समय मैं मद्रास की दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के हिन्दी स्नातकोत्तर अध्ययन एवं अनुसंधान विभाग के अध्यक्ष के रूप में वहीं हिन्दी-सेवा-कार्य कर रहा था। तत्कालीन प्रधानमंत्री (भारत सरकार) श्री लालबहादुर जी शास्त्री हमारे संस्थान के तथा द० भा० हिन्दी प्रचार सभा के कुलाधिपति थे।

कुछ राजनीतिज्ञों ने उस समय भोली जनता को बहकाया था और यह प्रचार किया था कि हिन्दी तमिल के ऊपर आसन जमाना चाहती है; जबकि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी का तमिल से हार्दिक स्नेह है और बहुत सी शब्द-सम्पत्ति तमिल से लेकर हिन्दी और उसकी उपभाषाएँ समृद्ध बन रही हैं। **नीर, धमिल, खोंपा, पिल्ला** आदि हिन्दी में ऐसे शब्द हैं, जो द्रविड़ परिवार की भाषाओं से संस्कृत और हिन्दी ने ग्रहण किये हैं। हिन्दी के भक्ति-साहित्य को तो मूल प्रेरणा दक्षिण से ही मिली थी।

जिस प्रकार गंगा की सहायक नदियाँ बंगाल प्रदेश-प्रवाहिनी-गंगा को विशालता प्रदान करती हैं, ठीक उसी प्रकार भारत की सभी भाषाएँ राष्ट्र-भाषा हिन्दी को विशाल बनाएँगी। ब्रजभाषा की शब्द-संवर्द्धिनी-योजना भी हिन्दी के भांडार को निश्चितरूपेण समृद्ध बनाएगी। आपका अनुष्ठान निश्चित रूप से राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिए कल्याणकारी सिद्ध होगा; किन्तु **योजना** को सच्चे तथा मौलिक रूप में आगे बढ़ाना चाहिए।

डा० धीरेन्द्र वर्मा ने जितना क्षेत्र ब्रजभाषा का माना है, उस सम्पूर्ण क्षेत्र से शब्द-सम्पत्ति का संग्रह योजनाबद्ध रूप में होना चाहिए। शब्दों के साथ लोक-कहानियों, लोकगीतों लोकोक्तियों और मुहावरों का भी संग्रह होना चाहिए ज़िला अलीगढ़, और मथुरा के आस-पास के क्षेत्र का तो मैंने सर्वेक्षण कर लिया है। कृषि, संस्कृति, समाज आदि से सम्बद्ध-शब्दावली पूरे ब्रजभाषा-भाषी क्षेत्र से संकलित करायी जानी चाहिए। यही सच्ची जनपदीय-कल्याणी-योजना होगी।

मेरे प्रकाशित ग्रंथ (कृषक जीवन संबंधी ब्रजभाषा शब्दावली) में **कृषि, व्यवसाय** और **संस्कृति** से सम्बद्ध शब्दावली, लोकोक्तियाँ, पहेलियां संगृहीत हैं। उनके अर्थ भी उसमें दिये गये हैं। साथ-साथ चित्रों और रेखाचित्रों द्वारा शब्द-सूचित वस्तु को स्पष्ट भी किया गया है। शब्द का अर्थ व्यक्त करने में चित्र बड़ा सहायक होता है।

डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, महापंडित राहुल सांकृत्यायन, डा० टर्नर, डा० बाबूराम सक्सेना, डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल आदि ने तो ग्रंथ के सम्बन्ध में अपनी शुभ सम्मतियाँ दी ही हैं, फिर भी आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए मैं यहाँ कुछ पंक्तियाँ उस **समीक्षा** से उद्धृत कर रहा हूँ जो **हिन्दी वार्षिकी**, दिल्ली (सम्पादक डा० नगेन्द्र), सन् १९६१ में प्रकाशित हुई थी—

"डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' का ग्रंथ **कृषक जीवन सम्बन्धी ब्रजभाषा शब्दावली** ब्रजजीवन की अनोखी झाँकी उपस्थित करता है। यह एक प्रकार से ब्रज के जनपदीय जीवन का विश्व-कोश है। क्या सांस्कृतिक, क्या सामाजिक, क्या औद्योगिक—जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रयुक्त शब्द-समूह का हिन्दी में इससे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुंदर एवम् सर्वांगपूर्ण संकलन एवं संपादन नहीं हुआ है। ब्रजप्रदेश, भारतीय साहित्य एवं संस्कृति—दोनों—का ही मुख्य केन्द्र रहा है। × × × × × × इसीलिए वहाँ का जनजीवन भी बड़ा सम्पन्न रहा है। ब्रजभाषा की जो जनपदीय शब्दावली '**सुमन' जी** के इन ग्रंथों के माध्यम से सुरक्षित हो सकी है, उसके लिए भारतीय साहित्य उनका सदा ऋणी रहेगा। भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन का 'सुमन' जी ने द्वार खोल दिया है। वैदिक काल से जो हमारी भाषा-संस्कृति की अटूट धारा प्रवाहित हो रही है, उसकी झाँकी ब्रज-जीवन के माध्यम से—ब्रज शब्दावली के माध्यम से—**डा० सुमन** ने हमें करायी है। क्या **ध्वनिविकास**, क्या **पदविकास**, क्या **अर्थविकास** अर्थात् भाषा-विज्ञान के अंगों-उपांगों के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए, विशेषतः ब्रजभाषा के लिए, यह अद्वितीय कोश है और रहेगा।"

—(हिन्दी वार्षिकी : सन् १९६१, संपादक, डा० नगेन्द्र, भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली, पृष्ठ २६५)

बाबूजी ! ग्रंथ-लेखन में मेरा कुछ नहीं, वस्तुतः यह सब कुछ (स्व०) श्रद्धेय डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल (मेरे पूज्य गुरुवर) के आशीर्वाद का ही फल है। कभी मथुरा आने पर विस्तार से वार्तालाप करूँगा। सादर, सप्रेम,

बाबू वृन्दावनदास जी, आपका
संपादक, 'ब्रजभारती' अम्बाप्रसाद 'सुमन'
प्रकाश-भवन, डोरी बाज़ार, मथुरा (उ० प्र०)

डा० रामेश्वरदयालु अग्रवाल के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़—(उ० प्र०)

प्रिय भाई रामेश्वरदयालु जी, दिनांक २४. ७. १९६९ ई०

सप्रेम नमस्कार।

आशा है परमेश की दया से आप सपरिवार सानंद होंगे। अभीष्ट पुस्तक की प्रकाशन-स्थिति क्या है ? श्री **पी० डी० गुप्त** ने कार्यभार तो सँभाल लिया होगा ? नवीन समाचार लिखिए।

आज संयोगवश मेरी दृष्टि आपकी पुस्तक **मुग्धबोध भाषा-विज्ञान** के पृष्ठ ३८९ पर पड़ी और **बिसासी** शब्द के प्रयोग और अर्थ को भी पढ़ा।

हिन्दी के कुछ कोश और विद्वान् **बिसासी** शब्द का विकास सं० **विश्वास-घाती** अथवा सं० **अविश्वासी** से मानते हैं। मैं एक विचार आपके चिन्तन के लिए प्रस्तुत कर रहा हूँ। अरबी में एक शब्द है **वसवास**, जिसका अर्थ है **भ्रम**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या **धोखा**। इससे धोखेबाज़ के अर्थ में **बसवासी** बना। इसी को जायसी, घनानंद आदि के द्वारा 'बिसासी' लिखा जाने लगा। क़ुरान में **बसवासुल्खन्नास** प्रयोग आया है। इसे संस्कृत **विश्वासघाती** या **अविश्वासी** से विकसित मानने में द्राविड़ी प्राणायाम-सा लगता है।

घनानंद की प्रेमपात्र सुजान कविवर घनानंद को बहुत तड़पाती थी। मिलन के वायदे में धोखा देती थी। अतः कवि ने लिखा—**कबहू वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुआन हू लै ढरकौ।**

विश्वासी का अर्थ विश्वास के योग्य नहीं हो सकता। संस्कृत में विश्वास + इन् = विश्वासिन्। इससे प्रथमा एकवचन में **विश्वासी** = विश्वासवाला। फण + इन् = फणिन्, फणी = फनवाला। सस्नेह,

डा० रामेश्वरदयालु अग्रवाल, पी-एच० डी० शुभैषी

३, मिशन कंपाउंड, देवनगर, मेरठ अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० रामस्वरूप आर्य के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन', **८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१**

डी० लिट्० दिनांक ११. १०. १९६९ ई०

प्रिय भाई आर्य जी,

सप्रेम नमस्कार!

आपके पत्र की प्राप्ति से परम प्रसन्नता हुई।

पदाजि शब्द संस्कृत का है और 'पैदल सिपाही' के अर्थ में है। संस्कृत के 'पद्मचन्द्र कोश' में और ज्ञानमंडल, काशी से प्रकाशित, 'वृहत् हिन्दी कोश' में इसी उक्त अर्थ में **पदाजि** शब्द मिलता है।

फा० **पाजी** = दुष्ट, बदमाश, कमीना (जैसा कि आपने भी लिखा है)।

इसमें कोई संदेह नहीं कि **पदाति** भी संस्कृत शब्द है, जो 'पैदल सिपाही' के अर्थ में ही है।

अब प्रश्न यह है कि 'पदमावत' का **पाजी** शब्द सं० **पदाजि** से विकसित है अथवा सं० **पदाति** से। संस्कृत की 'त्' ध्वनि प्राकृत, अपभ्रंश के माध्यम से हिन्दी की बोलियों में 'ज्' होकर नहीं आयी; अपितु ट, **ड**, **ढ**, **ड़**, **ढ़** होकर आयी है। सं० **पतन > पडन > पड़ना**। **फर्तरी > कटारी**। सं० **गर्त > गड्ढ > गढ़ा**। संस्कृत की **द्य**, **र्य** और **य** ध्वनि ही 'ज' में परिवर्तित हुई—सं० **अद्य >** अज्ज > आज। सं० **आर्यक** > अज्जय > अज्जइ > अजी > जी। सं० **यती >** जती। संस्कृत की 'त्' और 'ज्' ध्वनियाँ क्रमशः भावी विकास में अक्षुण्ण भी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही हैं। संस्कृत की 'त्' ध्वनि 'ज्' में नहीं बदलती। अतः **पदाति** से **पाजी** का विकास ध्वनि-विज्ञान के आधार पर असंगत और अनुपयुक्त है। अतः सं० **पदाजि**>**पआजि**>**पाजी**(=पैदल सिपाही)—यह विकास-क्रम ही उचित और उपयुक्त है।

विदेशी भाषा फ़ारसी का **पाजी** शब्द जो 'बदमाश' के अर्थ में मिलता है, वह पृथक् शब्द है। इसका **पदमावत** के **पाजी** से कोई सम्बन्ध नहीं। जैसे हिन्दी में **कुल** (वंश) और **कुल** (=तमाम) दो भिन्न-भिन्न परम्पराओं से प्राप्त शब्द हैं। सं० **कुल**>हिं० **कुल**=वंश। अ० **कुल**>हिं० **कुल**=तमाम। इन्हें एक स्रोत से नहीं मानना चाहिए।

हर्ष है कि परोक्ष में आप मेरे मन-मस्तिष्क से बात-चीत करते रहते हैं। **समीक्षा** के वे अंक मैं पढ़ना चाहता हूँ, जिनमें आपकी कुछ **समीक्षाएँ** प्रकाशित हुई हैं। क्या **ग्रंथ-निकेतन** उन अंकों को भेज सकेगा? अपने विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में भी उन्हें देखूँगा। धन्यवाद! सस्नेह,

डा० रामस्वरूप आर्य, पी-एच० डी० आपका
अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
वर्धमान डिग्री कालेज, बिजनौर (उ० प्र०)

डा० रामस्वरूप आर्य के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)

प्रिय भाई आर्य जी, दिनांक २५. १०. ७० ई०

सप्रेम नमस्कार!

दिनांक २०. १०. ७० का अन्तर्देशीय पत्र पढ़कर प्रसन्नता हुई। हर्ष है कि आप सपरिवार स्वस्थ और सानंद हैं। आज बाहर से आने पर आपका पत्र पढ़ने को मिला। उत्तर में अपनी बात लिख रहा हूँ।

संभवतः आपकी दृष्टि में **कृषक-जीवन-सम्बन्धी ब्रजभाषा-शब्दावली** भाग २ न आया हो। उसमें पृष्ठ ३४७/११८५; ३५२/११८६; ४२०/१३६० पर 'भात' के सम्बन्ध में लिखा गया है। उत्तर प्रदेश के पश्चिमी ज़िलों में **भात** वही है, जो आपने लिखा है। बहुत संभव है, पूर्वी ज़िलों में विवाह की अन्य कोई एक रस्म **भात** कहाती हो, और उसमें समधी को **भात** खिलाने की प्रणाली बरती जाती हो। किसी पूर्वी ज़िले के व्यक्ति से पता लगाना चाहिए। आप भी पता लगाएँ; इधर मैं भी पूछ-ताछ करूँगा।

वाक्य-रचना में **व्यास-शैली** और **समास-शैली** होती है। संयुक्त **वाक्य**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखनेवाले व्यास-शैली में, और साधारण वाक्य लिखने वाले समास-शैली में प्रायः अपनी बातें कहते हैं। कोश [हिंदी शब्द सागर, खंड ७] का वाक्य संयुक्त वाक्य है, और आपने उसे साधारण वाक्य बना दिया है, जिसमें केवल एक समापिका क्रिया है। कोशगत वाक्य में दो समापिका क्रियाएँ हैं; **बुलाया जाता है; खिलाया जाता है**। आपने प्रथम क्रिया को पूर्वकालिक क्रिया बनाकर द्वितीय को समापिका क्रिया के ही रूप में प्रयुक्त किया है। वाक्य दोनों ही ठीक हैं। प्राचीन वैयाकरणों के विषय में एक उक्ति प्रचलित है—"अर्द्ध मात्रा की कमी से वैयाकरण को उतनी प्रसन्नता होती है, जितनी पुत्र-जन्म से किसी व्यक्ति को हो सकती है।"

इस दृष्टि से आपका वाक्य अधिक ग्राह्य है। पछाँही जिलों में **भात** है, जो आपने लिखा है। मेरे ग्रंथ में भी वैसा ही मिलेगा। कृपया उपर्युक्त पृष्ठ देखें।

बच्चों को आशीर्वाद।

डा० रामस्वरूप आर्य, शुभैषी

नई बस्ती, बिजनौर (उ० प्र०) अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० रघुवरदयाल वार्ष्णेय के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)

प्रियवर, दिनांक २५. ११. ७० ई०

आशीर्वाद।

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारा प्रश्न **दखनी हिन्दी** तथा **दखनी उर्दू** के सम्बन्ध में है।

तुम्हारा प्रश्न—"मुल्ला वजही के 'सबरस' की भाषा को कुछ भाषाशास्त्री 'दखनी हिन्दी' कहते हैं और कुछ 'दकनी उर्दू'। आपकी इस विषय में क्या राय है?"

मेरा उत्तर—**दखनी** शब्द संस्कृत के **दक्षिणी** शब्द से विकसित है। हिन्दी-लेखक **दक्खिनी** या **दखनी** शब्द भाषा के प्रसंग में प्रयुक्त करते हैं। उसी को कुछ उर्दू-लेखक **दकनी** कहते हैं। उर्दू वाले **ख** ध्वनि को प्रायः **क** के रूप में बोलते हैं—हिन्दी का **भूख** शब्द उर्दू में **भूक** लिखा जाता है।

डा० बाबूराम सक्सेना ने जिस भाषा को **दक्खिनी हिन्दी** कहा है, उसे ही डा० मसूदहुसैन खाँ ने **दकनी हिन्दी** बताया है। लेकिन बाद की कुछ किताबों में उसी भाषा को डा० मसूदहुसैन खाँ 'दकनी उर्दू' कहने लगे हैं।'

सन् १९६६ ई० में डा० मसूदहुसैन खाँ उस्मानिया विश्वविद्यालालय, हैदरा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद के उर्दू विभाग के अध्यक्ष और प्रोफ़ेसर थे। बाद में अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय के भाषाविज्ञान विभाग के अध्यक्ष एवं प्रोफ़ेसर होकर आ गये थे; वैसे १९६६ ई० से पहले मसूद साहब उर्दू विभाग (अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय) में उर्दू के रीडर थे।

डा० मसूदहुसैन खाँ मेरे मित्र हैं। अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय के जीवन-काल में मेरी उनसे बातें भी हुआ करती थीं। हैदराबाद से अलीगढ़ विश्वविद्यालय में वापस आने पर वार्तालाप के समय डा० मसूदहुसैन **दक्खिनी भाषा** को **दकनी उर्दू** कहा करते थे।

दखिनी हिन्दी का तात्पर्य है 'दक्षिण की हिन्दी'। इस हिन्दी में अर्थात् दखिनी भाषा में अरबी, फ़ारसी और तुर्की के शब्दों के साथ-साथ संस्कृत, खड़ी बोली, मराठी, कन्नड़, तेलुगु आदि के शब्दों का अपने ढँग से स्वाभाविक संमिश्रण हुआ है। यह माना कि 'दक्खिनी' का साहित्य शब्द-स्तर पर अरबी-फ़ारसी शब्दों को ग्रहण किये हुए है; किन्तु अन्य भारतीय भाषाओं की शब्दावली भी उसमें प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। दक्खिनी भाषा में भारतीय प्रादेशिक भाषाओं का मिश्रण जितने विस्तृत रूप में हुआ है, उतना उर्दू ज़बान में नहीं हुआ। उर्दू ज़बान में अरबी-फ़ारसी के शब्दों के आधिक्य के साथ-साथ उनका व्याकरण भी ग्रहण किया गया है।

उर्दू **मकानात** पसंद करती है; **मकानों** नहीं। उर्दू **वाल्दैन** लिखना चाहती है, **माँ-बाप** या **माता-पिता** नहीं। उर्दू **दर्देदिल** लिखना अधिक अच्छा मानती है, **दिल का दर्द** नहीं। उर्दू ज़बानवाले 'ज्यादती' लिखते हैं; लेकिन दखनी में **ज्यास्ती** प्रयोग मिलता है।

दक्खिनी भाषा ने अरबी-फ़ारसी के शब्द अपने रँग में तो रँग लिये; किन्तु उनके अरबी-फ़ारसी के व्याकरण को नहीं स्वीकारा। 'दक्खिनी' का 'उर्दू' ज़बान से यह खास भेद रहा है।

इतना ही नहीं, भाषा के अर्थ में **हिन्दी** शब्द का प्रयोग सबसे पहले मुसलमानों ने ही किया था। संभवतः रूमी (१२०७—१२७३ ई०) ने अपनी **मसनबी** में सब से पहले भाषा के अर्थ में **हिन्दी** शब्द का प्रयोग किया है—

"असलम् तुर्कस्त अगरचे हिन्दी गोयम्"—(रूमी की मसनवी), अर्थात् मैं दरे अस्ल तुर्क हूँ, अगरचे हिन्दी बोलता हूँ।

'दखनी' भाषा के कवियों में अलंकारों का प्रयोग भारतीय परंपरा के अनुसार है। मुल्ला वज़ही ने हाथ के लिए **कमल** और बालों के लिए **काला-नाग** उपमान ग्रहण किये हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर भारत के लोग दक्खिनी भाषा को **हिन्दी** ही कहते थे। खुसरो (१३वीं शती) ने भी उस बोली को **हिन्दी** कहा था। इसके पश्चात् **वली** की बोली को भी **हिन्दी** कहा गया। उस समय की एक इतिहास-पुस्तक है, 'तज़किरे बेजिगर'। उसमें वली की ज़बान को **हिन्दी** लिखा गया है। १७वीं शती के प्रथम चरण में मुल्ला वज़ही ने अपनी 'सबरस' नामक पुस्तक में उस अपनी भाषा को **हिन्दी** नाम से अभिव्यक्त किया है। इससे सिद्ध है कि तत्कालीन मुसलमान साहित्यकार **दखनी** भाषा को **हिन्दी** नाम से पुकारते थे अर्थात् दक्खिनी भाषा 'हिन्दी' थी। यह बात अलग है कि वह हिन्दी अपने शब्द और व्याकरण में आज की परिनिष्ठित हिन्दी से भिन्न थी। तत्कालीन मुसलमानों द्वारा दक्खिनी को **हिन्दी** कहा जाना राष्ट्रीयता का सूचक है। अब कुछ लेखक उसे उर्दू नाम देकर न्याय नहीं कर रहे। वे समझते हैं कि हिन्दी हिन्दुओं की संस्कृति की भाषा है। इसीलिए कुछ लेखक 'दखनी हिन्दी' को 'दखनी उर्दू' कहने लगे हैं। 'सरबस' की भाषा को स्वयं मुल्ला वज़ही ने 'हिन्दी' कहा है। हमें दखनी भाषा को **दखनी हिन्दी** कहना चाहिए। आपके प्रश्न के सम्बन्ध में यही मेरी राय है।

आशा है सानंद होंगे। सस्नेह,

डा० रघुवरदयाल वार्ष्णेय,
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
डी० ए० वी० पोस्टग्रेजुएट कालेज,
लाजपतनगर, नई दिल्ली—११००२४

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री कृष्णगोपाल पीयूष' के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन'
पी-एच० डी०, डी० लिट्०

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ०प्र०)
दिनांक ७. ७. १९७१ ई०

प्रियवर पीयूष जी,

आपने पंडित विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा संपादित **रामचरितमानस** (काशिराज-संस्करण) में दिये हुए पाठ—

पायस पलिअहिँ अति अनुरागा।
होहिँ निरामिष कबहुँ कि कागा॥ —(बाल० ५/२)

में आये हुए **पायस** शब्द के सम्बन्ध में पूछा है और **बायस** के सम्बन्ध में मेरी राय माँगी है ?

इसमें कोई सन्देह नहीं कि **काशिराज-संस्करण** के सम्पादन में **आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र** ने बहुत बड़ा परिश्रम किया है और सम्पादन की साहित्यिक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रणाली का अच्छा नमूना प्रस्तुत किया है। 'आत्मनिवेदन' में साहित्यिक सम्पादन की सरणि का परित्याग अहितकर भी बताया है। वैज्ञानिक प्रक्रिया को जड़ भी बताया है; परन्तु वास्तविक संपादन वैज्ञानिक प्रक्रिया के साथ भी होना चाहिए। साहित्यिक संपादन और भाषा-वैज्ञानिक संपादन मिलकर ही सच्चे तथा प्रामाणिक संपादन का स्वरूप स्थापित कर सकते हैं।

आचार्य मिश्र जी ने वर्तनी, उच्चारण आदि की दृष्टि से **श्री शंभुनारायण चौबे** द्वारा संपादित 'रामचरितमानस' का अनुसरण किया है। पूर्णतः नहीं, तो पर्याप्त संख्या में तो है ही।

आचार्य मिश्र जी **पायस** पाठ को ठीक मानते हैं। **बायस** और **कागा** में में द्विरुक्ति-दोष होने के कारण मिश्र जी को **'बायस'** पाठ स्वीकार नहीं।

इस सम्बन्ध में मेरा पत्र-व्यवहार श्री देवेन्द्रप्रसाद सिंह, हिन्दी-विभाग, अनुग्रह मेमोरियल कालेज, गया (बिहार) से भी हो चुका है। उनके कथन में मुझे बहुत दम लगता है, यद्यपि मैं अपने ग्रंथ 'रामचरितमानस-भाषा-रहस्य' (प्रकाश्य, बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना) में **पायस** पाठ को समीचीन और संगत मान चुका हूँ। **पायस**(=खीर) वाले पाठ की बात बुद्धि को ग्राह्य तो है; **साहित्यिक संपादन** में समुचित भी है। किन्तु **वैज्ञानिक सम्पादन** पर भी विचार कर लेना चाहिए।

तुलसीकृत 'रामचरितमानस में ऐसी अनेक अर्द्धालियाँ हैं, जिनमें संज्ञा शब्दों की ऐसी द्विरुक्तियाँ मिलती हैं। कामदेव के चरित सुनाने के लिए नारद जी शंकर जी के पास गये। उस समय की बात तुलसीदास जी लिखते है–

मारचरित संकरहि सुनाए।
अति प्रिय जानि महेस सिखाए ॥ —(बाल० १२७/६)

उपर्युक्त अर्धाली में **संकर** और **महेस** में उसी प्रकार की द्विरुक्ति है, जिस प्रकार की द्विरुक्ति **बायस** और **कागा** में है।

भाषावैज्ञानिक दृष्टि से तुलसी के 'मानस' के पाठों का अध्ययन किया जाए, तो तुम्हें पता चलेगा कि तुलसी एक ही अर्धाली में पर्याय तो रखते हैं, जैसे **संकर** और **महेस**; **बायस** और **कागा** आदि; परन्तु वाक्य-रचना में वाच्य-भेद कर देते हैं। प्रथम चरण का **संकरहि** पद कर्म कारक, द्वितीया विभक्ति में है। द्वितीय चरण का **महेस** पद कर्ता कारक, तृतीया विभक्ति में है। ऐसी बात **बायस** और **कागा** में भी है। **बायस** कर्मकारक, प्रथमा विभक्ति में है। **कागा** कर्ताकारक, प्रथमा विभक्ति में है। कारक-भेद के साथ संज्ञा पदों की द्विरुक्ति तुलसी 'मानस' में प्रायः कर देते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मानस' में निम्नांकित दोहे में **ससि** और **बिधु** शब्द आये हैं। यहाँ भी द्विरुक्ति है—

कह हनुमंत सुनहु प्रभु, ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु उर बसति, सोइ स्यामता अभास।। (लंका० १२/–)

ऐसी स्थिति में 'बायस' और 'कागा' वाले पाठ के लिए अभी 'मानस' का और भी मंथन कीजिए। संपूर्ण 'रामचरितमानस' में उपर्युक्त वाक्य-विन्यास-शैली मिलती है, तो **बायस** पाठ को **पायस** मानना तब तक उचित नहीं, जब तक किसी प्रामाणिक पाण्डुलिपि में वैसा पाठ न मिल जाए। केवल अन्दाज़िया पाठ-निर्धारण समीचीन नहीं।

आशा है सपरिवार सानंद होंगे।

श्री कृष्णगोपाल 'पीयूष' शुभैषी
मंत्री, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
श्री ब्रज साहित्य परिषद्, बरसाना, (मथुरा)

प्रो० सरनामसिंह शर्मा 'अरुण' के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)

बन्धुवर डा० अरुण जी, दिनांक ९. ९. १९७१ ई०

सप्रेम नमस्कार।

आपका उल्लास से परिपूर्ण पत्र पढ़कर प्रसन्नता हुई। आपको आपका अभीष्ट मिला। हार्दिक बधाई ! माता वीणापाणि से प्रार्थना है कि वे आपको इस सोपान-पथ से और भी दिव्यतर लोकों के दर्शन कराती रहें।

आप के पत्र की पंक्ति—**भाई भाई की जय बोलो नगराज[1] हमारा अटल रहे**—को पढ़कर मेरे मन को परम प्रसन्नतापूर्ण सन्तोष मिला। आपने अब **नगराज** को और **नगराज के हृदय** की विशालता को समझ लिया होगा।

बन्धुवर ! मैंने नगराज को बहुत निकट से देखा है। सन् १९३३ ई० से मैं नगराज जी के संपर्क में आया हूँ। वे सरस्वती सेवियों की सास्वत साधना को समझते हैं, और उनका प्राप्य प्राप्त कराने के लिए स्वतः ही प्रयत्नशील रहते हैं। वे करते हैं, कहते नहीं हैं। उनके सम्बन्ध में मेरी स्वयं की अनुभूति हैं। उन्होंने मेरे लिए बहुत किया, किन्तु कभी उसे कहा नहीं। नगराज के सम्बन्ध में कुछ लोग कह देते हैं कि वे रूखे और दंभी हैं। ऐसा वे ही कहते हैं, जिन्होंने नगराज को निकट से नहीं देखा। हिन्दी के प्रोफेसरों में अपने साथियों में एक नगराज ही ऐसे हैं, जो प्रोफ़ेसर होने के बाद निरन्तर साहित्य-सृष्टि करते रहे हैं। यदि

१ नगराज = डा० नगेन्द्र (संपादक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे ऊपर से कुछ रूखे न बनें, तो इतनी अधिक साहित्य-सर्जना नहीं कर सकेंगे। सरस्वती सेवा के लिए उन्होंने रूखापन ऊपर से ओढ़ रखा है। उनके मौन से प्रारम्भ में उन्हें पूरी तरह आप न समझ पाये थे। जयपुर रेलवे-स्टेशन पर मैंने आपसे उनके स्वभाव का संकेत भी किया था; संभवत: आपको स्मरण होगा।

क्या आपने डा० हेमचन्द्र जोशी की व्युत्पत्तियों पर विचार किया है?

आपने हिन्दी के तद्भव शब्दों पर जो कार्य किया है, उसे मैं भी देखने का इच्छुक हूँ। एक प्रकाशन-सूची में आपकी पुस्तक 'हिन्दी की तद्भव शब्दावली: व्युत्पत्ति-कोश', कालेज बुक डिपो, जयपुर का विज्ञापन देखा था।

स्त्रियों में एक शब्द **जीया** प्रचलित है। यह हिन्दी का तद्भव शब्द है जो संस्कृत के **आर्यिका** से व्युत्पन्न है। सं० **आर्यिका>अज्जिआ>अजीआ>जीया**—यह विकास-क्रम संभव है। **बिटौरा** सं० विष्ठाकूट से विकसित है।

हिन्दी में भाववाच्य क्रिया को अच्छे-अच्छे भाषाविद् नहीं समझते। हिन्दी क्रिया के कर्मवाच्य और भाववाच्य के रूपों को आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने ही हिन्दीवालों को सबसे पहले बताया है। मेरी उनमें असीम श्रद्धा है।

हर्ष है आप परमेश की दया से सपरिवार सानंद हैं। सस्नेह,

डा० सरनामसिंह शर्मा 'अरुण' आपका

डी० लिट्० अम्बाप्रसाद 'सुमन'

सी—८२, विजयपथ, राजापार्क, जयपुर, (राजस्थान)

डा० विश्वनाथ शुक्ल के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ०प्र०)

प्रिय भाई विश्वनाथ जी, दिनांक ९. ११. ७१ ई०

मैंने आपके 'बालम' और 'खच्चर' शब्दों के मूल स्रोत पर विचार किया और गुजराती भाषा की सकर्मक भूतकालीनक्रि या का रूप भी सोचा। हिन्दी से गुजराती में भिन्नता है।

प्रियवर! **बालम** शब्द सं० वल्लभ से विकसित नहीं है। गुजराती का **वालह** अवश्य सं० वल्लभ से विकसित है। संस्कृत की 'व्' ध्वनि को गुजराती सुरक्षित रखती है, हिन्दी तो उसे 'ब्' में बदल लेती है। सं० वाल (=रोम) =गुज० वाल। सं० वाल=हिं० बाल। हिन्दी में **बालम** अरबी-फ़ारसी के **'बालेमन'** से विकसित है। **बालेमन**=मेरा पति। हिन्दी में 'बालम' पति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ। **खच्चर** का विकास सं० खराश्वापत्य से सम्भव है।

हिन्दी में भूतकालीन सकर्मक क्रिया प्राय: कर्मवाच्य में आती है, अर्थात् क्रिया का लिंग-वचन कर्म के लिंग-वचन के अनुसार आता है। जैसे—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बालक ने **पुरुष देखा**"; "बालक ने **स्त्री देखी**।" इन वाक्यों की क्रियाएँ कर्म के लिंग के अनुसार हैं। अतः ये वाक्य कर्मवाच्य में हैं। लेकिन गुजराती में क्रिया कर्ता के लिंग के अनुसार रहती है। जैसे—(१) **छोकराअे** माणस **जोयो**। (२) **छोकराअे** वैरी **जोयो**। (३) **वैरीअे** माणस **जोई**।

उपर्युक्त गुजराती, वाक्यों में क्रिया का लिंग कर्ता के अनुसार है; अर्थात् ये वाक्य कर्तृवाच्य में ही हैं। हिन्दी में सकर्मक क्रियाएँ भी भाववाच्य में आती हैं, जैसे—**लड़के ने उस ग्रंथ को पढ़ा। लड़की ने उस ग्रंथ को पढ़ा। लड़के ने उस पुस्तक को पढ़ा**। **पढ़ा** क्रिया में कोई परिवर्तन नहीं। यह बात मुझे आचार्य किशोरीदास जी वाजपेयी से मालूम हुई थी।

हर्ष है आप सानंद हैं। भाई शिवशंकर जी शर्मा की पत्नी श्रीमती गायत्री-देवी से मुझे गुजराती की उक्त रूप-प्रक्रिया मालूम हुई थी।

आपने तुलसी के **रामचरितमानस** में आये हुए **निरजोसु** (अयो० २०१/८) शब्द के मूल का पता **रभस कोश** के प्रमाण के साथ ख़ूब लगाया। ज्ञान की भूख ऐसी ही होती है। **अमरकोश** का वह संस्करण मेरे भी पास है। मेरी दृष्टि उन पृष्ठों पर नहीं पड़ी। निश्चित रूप से **निरजोस** शब्द सं० **निर्यूष** से विकसित है। सं० **यूष** ही हिन्दी तथा अंग्रेज़ी में **जूस** बना दिया गया और पिया जा रहा है (सं० **निर्यूष**>**निरजोस**=निचोड़)।

डा० विश्वनाथ शुक्ल,
श्रीवत्स,
भारती नगर, मैरिसरोड, अलीगढ़।

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० किशनप्रसाद के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक १०. ११. १९७२ ई०

संमान्य डाक्टर साहब,

सादर सप्रेम नमस्ते!

आपने उस दिन के वार्तालाप में **चि० मधुकर की जिस-वाणी-दोष-समस्या को मेरे संमुख प्रस्तुत किया था, उस पर मैंने विचार किया है। उस समस्या का समाधान भाषा-विज्ञान के आधार पर किया जा सकता है**।

चि० मधुकर की जिह्वा में जो थोड़ा-सा उच्चारण का दोष या विकार है, उसका निराकरण कुछ शब्दों के बार-बार उच्चारण से दूर किया जा सकता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चि० मधुकर की जीभ में थोड़ा-सा विकार यह है कि वह 'क्' और त् को ट् बोलता है। अर्थात् **कबूतर** को **टबूटर** बोलता है।

प्रियवर राधेश्याम शर्मा निम्नांकित शब्दों को बार-बार उच्चारित कराए—

(१) **काटो** (२) **टोको** (३) **कातो** (४) **तोलो** (५) **लूकटी** (६) **टोकनी** (७) **कटोरी** (८) **ताली** (९) **लोटा** (१०) **टोटल** (११) **कोतल**।

दो या तीन शब्दों के ऐसे वाक्य बुलवाइए, जिनमें उपर्युक्त शब्द आएँ।

इस प्रकार के अभ्यास से आप दो-तीन महीने में निश्चित रूप से देखेंगे कि चि० मधुकर का जिह्वा-दोष बिलकुल समाप्त हो जाएगा। वह **कबूतर** जैसे सभी शब्दों का उच्चारण शुद्ध और स्पष्ट करने लगेगा। लगभग ४ वर्ष हुए एक बालक की जिह्वा में भी ऐसा ही विकार मैंने पाया था। वह भी तीन महीनों में ऐसी ड्रिलिंग से बिलकुल ठीक हो गया था।

ट् ध्वनि हिन्दी में तालव्य-मूर्धन्य है और **त्** दन्त्य है। **त्** को बोलते समय बालक की कोमल जीभ दाँतों की ओर से हटकर ऊपर को तालु तथा मूर्धा की ओर चली जाती है। अतः चि० मधुकर **ताऊ, तोता** आदि शब्दों को **टाऊ टोटा** करके बोलता हैं। बताये हुए अभ्यास से सब ठीक हो जाएगा।

हर्ष है आप सपरिवार सानंद हैं। सस्नेह,

डा० किशनप्रसाद, एम० बी०, बी० एस० आपका
डिस्पेंसरी, दुबे का पड़ाव, अलीगढ़। अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० पी० ए० बारान्निकोव के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (भारत)

प्रिय भाई श्री बारान्निकोव जी, दिनांक २४. १. ७३ ई०

जय हिन्दी-रूसी !

आपकी **हिन्दी भाषा से सम्बद्ध पुस्तक 'प्रोबलेम हिन्दी काक नात्सिनालनवा यज़िका, (राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की समस्या) मिली।** एतदर्थ **हार्दिक धन्यवाद !**

आपने **रूसी भाषा** के माध्यम से रूस के हिन्दी-प्रेमी पाठकों को **हिंदी भाषा** के स्वरूप से अवगति करायी है—इससे निश्चित रूपेण आपकी हिन्दी-निष्ठा का हमें गहरा परिचय मिला। आप अपने पिता जी (श्री ए० पी० बारान्निकोव) के सच्चे सुपुत्र हैं। उन्होंने तुलसी के 'रामचरितमानस' को श्रद्धांजलि अर्पित की और आपने हिन्दी भाषा को। हिन्दी-व्याकरण को गहराई से समझने के लिए आचार्य किशोरीदास वाजपेयी का 'हिन्दी-शब्दानुशासन' अवश्य पढ़ें।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपने पुस्तक पर मेरी सम्मति माँगी है। भाई मैं रूसी भाषा नहीं जानता। क्या करूँ? इस समय अपने भाग्य को कोस रहा हूँ। अपने विचारों को संक्षेप में पृथक् से इसलिए कुछ भेज सकूँगा कि हमारे विश्वविद्यालय (अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय) के इतिहास विभाग में **श्रीमती मंसूरा हैदर** रूसी भाषा जानती हैं। उनसे आपकी पुस्तक के सम्बन्ध में कुछ जानकारी कर सका हूँ। आपकी पुस्तक के सम्बन्ध में मैं जो कुछ भी जान सका हूँ, उसका श्रेय वास्तव में बहिन श्रीमती मंसूरा हैदर जी को ही है। मेरा अपना कुछ नहीं।

आपने मेरी कृतियों का उल्लेख जो ५–६ स्थलों पर किया है, उससे मेरे प्रति आपके स्नेह का पता लगता है, वैसे मैं कोई ऐसा विद्वान् तो नहीं, जो उद्धृत किये जाने की पात्रता रखता होऊँ।

आपकी पुस्तक में परिनिष्ठित हिन्दी के साथ-साथ हिन्दी की जनपदीय भाषाओं का भी विस्तार से वर्णन-विवेचन है। इस गहरे विवेचन के लिए निश्चय ही आप बधाई के पात्र हैं।

श्रीमती बारान्निकोव को नमस्ते। बच्चों को प्यार तथा असीस। नागरी लिपि में आपका हस्तलेख वस्तुतः नयनाभिराम है। सस्नेह,

Dr. P. A. Barannikov, आपका
188.643 Komarovo, Leningrad, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
U. S. S. R.

श्रीमती मालती शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१
२८–१–१९७३ ई०

प्रिय बहिन मालती शर्मा,

जिस दिन पूना के पाखरवाले आपके घर में आप दोनों के साथ मैंने भोजन किया था, तब वार्तालाप की शृंखला में आपने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का संकेत करके **यह जानना चाहा था कि सूर से पहले ब्रजभाषा के अन्तर्गत कौनसी परंपरागत काव्य-भाषा थी, जिसे सूरदास लोक-व्यवहार के मेल में ले आये ?**

आज बहुत दिनों बाद उक्त प्रश्न का उत्तर लिख रहा हूँ।

प्रिय बहिन ! आचार्य **रामचन्द्र शुक्ल** ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' ग्रंथ में निम्नांकित वाक्य लिखा है—

"भक्तवर **सूरदास ब्रज की चलती भाषा को** परंपरा से चली आती हुई काव्य-भाषा के बीच पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित करके साहित्यिक भाषा को लोक-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवहार के मेल में ले आये।"—(हिन्दी साहित्य का इतिहास, काशी ना० प्रचारिणी सभा, सं० २०२५ वि०, पृष्ठ १२६)

सूरदास से पहले **असम**, **बंगाल**, **गुजरात** और **महाराष्ट्र** में ऐसे अनेक कवि थे, जो ब्रजभाषा में काव्य-रचना करते थे।

गुजरात के **भालण** (सन् १४५६—१५१४ ई०) और पाटण निवासी **केशवदास** कायस्थ ने ब्रजभाषा में कृष्णभक्ति-सम्बन्धी पदों की रचना की थी। ये दोनों कवि सूरदास के पूर्ववर्ती थे।

चौदहवीं शती के अन्तिम चरण में महाराष्ट्र के कवि **भानुदास** ने भी ब्रजभाषा में पदों की रचना की थी। वे पद भी कृष्ण-भक्ति से सम्बद्ध हैं।

मराठी सन्त कवि भानुदास ने मराठी में तो अभंग लिखे ही हैं, उनके साथ-साथ ब्रजभाषा में भी कविताएँ लिखीं हैं। सन्त भानुदास ईसवी चौदहवीं-पंद्रहवीं शती के कवि हैं। उनकी ब्रजभाषा का नमूना इस प्रकार है—

उठी तात मात, भये प्रात, तिमिर गई।
मीलत बाल सकल ग्वाल सुंदर कन्हाई॥
जागो गोपाल, लाल, जागो गोबिन्दलाल, जननी बलि जाई॥

(संपादक, काशीनाथ अनंत जोशी, श्री सकल संतगाथा, खंड दूसरा, श्री संत वाङ्मय प्रकाशन मंदिर, १००६, सदा शिव पेठ, पुणें—२, भानुदासांचे अभंग, संख्या ८२, पृ० १०)

भारत में हिमालय की तलहटी के रंगपुर और दीनाजपुर नाम के जिलों में 'धमाली' लोक-गीत गाये जाते थे। वे गीत शृंगारिक थे। चंडीदास ने भी उनसे प्रेरणा ली थी। सूर-पूर्व कृष्णभक्त कवियों की भाव-भूमि को वे गीत बहुत कुछ उर्वरा-शक्ति दे चुके थे। लोक-गीत लोक में भाव-भावनाओं को किस प्रकार प्राणवंत बनाये रहते हैं, यह तो आप जानती हैं, क्योंकि लोक-साहित्य में आपकी विशेष रुचि है।

उन धमाली गीतों को भूमिका के रूप में समझना चाहिए। उस परंपरा में साहित्यिक ब्रजभाषा की काव्य-रचनाएँ पल्लवित हुईं, जो भालण, केशवदास, भानुदास आदि की लेखनी से जन्म ले चुकी थीं। संभवतः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उसी परंपरा की ओर संकेत किया है।

हर्ष है आप दोनों सानंद हैं। बच्चों को प्यार। मुझे वह दिन याद है, जब आपके घर लोकवार्ता पर बहुत देर तक बातें हुई थीं।

श्रीमती मालती शर्मा, शुभैषी
२५/२ पाखर, पूना–बम्बई रोड, पूना ३ (महाराष्ट्र) अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री सोम शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक ७. ६. १९७३ ई०

प्रियवर सोम शर्मा,

आशीर्वाद !

तुमने पूछा है कि यदि **किसी भाषा में अनेक भाषाओं के शब्दों का प्रयोग मिलता हो, तो उसे भाषाविज्ञान की दृष्टि से कौनसी भाषा मानना चाहिए ? क्या उसे खिचड़ी भाषा नाम देना उचित है ?**

प्रियवर सोम ! **भाषा** का निर्णायक तत्त्व **शब्द** नहीं, अपितु **शब्द का रूप अर्थात् व्याकरण** है। व्याकरण में लिंग, वचन, परसर्ग, सर्वनाम, क्रिया-विशेषण अव्यय और क्रिया-रूप प्रमुख हैं। यदि शब्दों को निर्णायक तत्त्व माना जाएगा, तो विश्व की कोई भी भाषा एक विशिष्ट भाषा न रहेगी। अंग्रेज़ी में भी फ्रैंच, लैटिन, ग्रीक आदि के अनेक शब्द हैं। संस्कृत में भी कई भाषाओं के शब्द हैं—**कुक्कुर, घोटक** आदि प्राकृत से, **कदली, कम्बल**, आदि मुण्डा से, **नीर, मीन** आदि द्रविड़ परिवार की भाषाओं से और **उक्षन्, अश्व** आदि वैदिकी भाषा से गृहीत हैं। इस तरह तो संस्कृत भी खिचड़ी भाषा पुकारी जानी चाहिए; लेकिन नहीं पुकारी जाती।

आज हिन्दी में अंग्रेज़ी, तुर्की, पुर्तगाली, अरबी, फ़ारसी आदि अनेक भाषाओं से शब्द गृहीत हैं। ऐसी दशा में हिन्दी भी खिचड़ी कही जाएगी। विश्व की प्रायः सभी भाषाएँ अन्य भाषाओं से शब्द लेकर सम्पन्न बना करती हैं; किन्तु उनका व्याकरण अपना ही रहता है।

यदि कोई बोलता है—"आज मेरी वाइफ़ के हाथों में बड़े ज़ोर से दर्द हो रहा है;" "मेरे फ़ादर टूर पर गये हैं;" "कागज़ों के ढेरों से दोनों मकानों को भर दो।"—तो यह भाषा हिन्दी ही कही जाएगी, क्योंकि इसका व्याकरण हिन्दी का है। क्रियाएँ हिन्दी की हैं और लिंग-वचन भी हिन्दी-व्याकरण के अनुसार हैं। यदि कोई **'कागज़ों'** और **'मकानों'** को **कागज़ात** और **'मकानात'** लिखता है, तो वह हिन्दी का विघ्न है।

इसलिए किसी भाषा में विभिन्न भाषाओं के शब्दों के होने पर भी यदि उसकी वाक्य-रचना उस भाषा के व्याकरण के अनुसार है, तो उस व्याकरण के अनुसार ही उस भाषा का नाम रहेगा; खिचड़ी भाषा नाम न होगा।

"वृषभानुजा राधा राकेन्दुबिम्बानना थी" यह हिन्दी भाषा का वाक्य है,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि इसमें '**थी**' हिन्दी की क्रिया है। भाषा के निर्णय में समापिका क्रिया बहुत महत्त्व रखती है।

क्रियापद से भाषा का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। एक क्रिया पद है '**आनि**'। यह पूर्वककालिक क्रिया है। इसका ब्रजभाषा में अर्थ है '**आकर**', और अवधी में अर्थ है '**लाकर**'। सूरदास लिखते हैं—"मेरे लाल कौं आउ निँदरिया काहैं न **आनि** सुवावै" (सूरसा० १०/४३)। तुलसी लिखते हैं—"बेगि **आनु** जल पाय पखारू" (रामच०, अयो०, दो०१०१/२)। ब्रजभाषा में **आनि** = आकर। अवधी में **आनु** = ला। व्याकरण भाषा का निर्णायक तत्त्व हैं; उसमें भी क्रियापद प्रमुख हैं।

कविता से मानव का हृदय विशाल और उदात्त बनता है। तुम्हारी कविताएँ तुम्हें यह वरदान देंगी—यह निश्चित बात है। अब बुद्धि को भी कुछ भोजन दो। अपने शोध-कार्य को सम्पन्न करके फिर काव्य-रचना में लग जाना।

कविता की सर्जना के क्षणों में काव्य-स्रष्टा कवि जिस दिव्यतम मनोराज्य में विचरण करता है, वह वास्तव में अवर्णनीय है। काव्य के आनन्द या स्वाद को काव्यशास्त्रियों ने **रस** कहा है। मैं उसे रस से भी ऊँचा दर्जा देना चाहता हूँ। वास्तव में वह **लोकोत्तर दिव्य रस** है।

एक बार अकबर बादशाह ने बीरबल से पूछा कि "बीरबल! बताइए, जलों में जल कौनसा उत्तम है?" बीरबल ने कहा—"जहाँपनाह! जलों में जल तो जमना-जल है।" इस पर बादशाह ने कहा—"बीरबल! दुनिया जलों में उत्तम जल गंगाजल बताती है और तुम जमना-जल बताते हो।" इस पर बीरबल ने कहा था—"हुजूर! जलों में जल तो जमुना-जल ही है; गंगाजल जल नहीं हैं, अमृत है। उसे जल कहना सिर पर पाप चढ़ाना है।"

उसी प्रकार कविता का आनन्द रस नहीं है, अपितु अमृत है।

हर्ष है तुम सपरिवार सानंद हो।

श्री सोम शर्मा, एम० ए०   शुभैषी
अध्यापक,   अम्बाप्रसाद 'सुमन'
राजकीय विद्यालय, बंजार (कुल्लू) [हिमाचल प्रदेश]

डा० नरेशकुमार के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़
दिनांक १२–७–७३

प्रियवर,

आशीर्वाद।

१०–७–७३ के पत्र से पता चला, कि आपने उन शब्दों की अकारादि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रम से सूची (संदर्भ सहित) नहीं बनायी, जिनकी व्युत्पत्तियों पर डा० अग्रवाल जी ने अपने ग्रंथों में प्रकाश डाला है। वह सूची बनाइए और साथ में अपना मत भी पक्ष-विपक्ष में दीजिए।

बृहत् हिन्दी कोश से काम न चलेगा। सम्पूर्ण **हिन्दी शब्द सागर** छानिए। डैविड राईस की **पालि-डिक्शनरी** और स्टाइनगास का अरबी-फ़ारसी कोश देखिए। **पाइअसद्द महण्णवो** (प्राकृत शब्द महार्णव) टटोलिए।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा के **हिन्दी शब्द सागर** में व्युत्पत्तियाँ देखी जा सकती हैं; लेकिन उसका सर्वत्र अन्धानुकरण न कीजिए। अपने विवेक से काम लीजिए। **हिन्दी- शब्द सागर** में व्युत्पत्तियों में यत्र-तत्र भ्रान्तियाँ भी हैं। 'उड़ता हुआ' के अर्थ में एक शब्द है **उड्डीयमान**। इसमें 'शानच्' (मान) प्रत्यय है।

हिन्दी शब्द सागर में **उड्डीयमान** का संस्कृत शब्द **उड्डीयमत्** लिखा गया है और इसका स्त्रीलिंग **उड्डीयमती**। ऐसा नहीं होना चाहिए। **उड्डीयमान** संस्कृत शब्द है, जो शानच् (मान) प्रत्यय के योग से बना है। इसका स्त्रीलिंग शब्द **उड्डीयमाना** है। **हिन्दी शब्द सागर** में **नाहर** को सं० **नखरायुध** से व्युत्पन्न माना गया है। वास्तव में सं० **नाखर** से हिन्दी **नाहर** शब्द विकसित है। सं० **नाखर** > प्रा० **णाहर** > **नाहर** (=शेर)।

मेरा ग्रंथ **रामचरितमानस: वाग्वैभव** (विज्ञान भारती, १४६७ वज़ीरनगर, नई दिल्ली—३) भी मनोयोग से पढ़िए। तब डा० अग्रवाल जी की व्युत्पत्तियों का ठीक तरह से खंडन-मंडन हो सकेगा। यह भी ध्यान रखिए कि जिस शब्द की व्युत्पत्ति डा० अग्रवाल जी ने दी है, क्या उनसे पहले कोई अन्य विद्वान् उस पर प्रकाश डाल चुका था? नूतन और मौलिक कथन किस अंश में **डा० अग्रवाल** जी का माना जा सकता है? देन सिद्ध करने के लिए उक्त जानकारी बहुत आवश्यक है।

माताभूमि, पृथिवी-पुत्र, पदमावत-भाष्य, आर्य भाषा और हिन्दी (डा० चटर्जी), **रामचरितमानस: वाग्वैभव** आदि ग्रंथ कुछ दिशा-संकेत कर सकते हैं।

जो शब्द आपसे छूट गये हैं, वे डा० अग्रवाल जी के ग्रंथों में आ चुके हैं। आपने पूरी सूची नहीं बनायी।

हर्ष है आप सानंद हैं। सस्नेह,

श्री नरेशकुमार एम० ए०,
मकान नं० ८५, सुक्खीमल,
डासना गेट, गाज़ियाबाद (उ०प्र०)

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री बाबूराम शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ०प्र०)
दिनांक ४. २. १९७४ ई०

प्रियवर,

आशीर्वाद !

तुमने हिन्दी के कुछ शब्दों की वर्तनी में जो शंका उठाई है, वह ठीक ही है। हिन्दी के प्रामाणिक कोशों में भी एक ही शब्द की दो वर्तनियाँ मिलती हैं।

प्रियवर ! **हिन्दी शब्दसागर** (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी) में सुपुर्द करने के अर्थ में प्रयुक्त होनेवाले शब्द को **सोंपना** और **सौंपना** रूप में लिखा गया है। इन्हीं दो रूपों में यह शब्द वृहत् हिन्दी कोश (ज्ञानमण्डल, लिमि०, बनारस) में भी मिलता है।

संचित करने के अर्थ में **सेंतना** को **सैंतना** रूप में भी हिन्दी शब्द सागर में लिखा गया है। बृहत् हिन्दी कोश में **कोंच** (एक प्रकार की फली) को **कौंच** और **सेंहुड़** (थूहर) को **सैंहुड़** करके भी छापा गया है। इसका कारण यह है कि हिन्दी में अनुनासिक **एँ** और अनुनासिक **ओँ** की उच्चारण-ध्वनियाँ बोलने पर स्पष्ट नहीं हैं। इसलिए शब्द-सागर में सुगंधित या अच्छा के अर्थ में **सोंधा** तो लिखा ही गया, किन्तु **सौंधा** भी लिख दिया गया। देश-भेद से उच्चारण-भेद भी हो जाता है। यह भी एक कारण हो सकता है। अंग्रेज़ी में भी कई शब्द दो भिन्न वर्तनियों से प्रचलित हैं। एक शब्द अंग्रेज़ी में Connection है। यह Connexion भी लिखा जाता है।

मेरा अपना मत ऐसा है कि खड़ी बोली हिन्दी अर्थात् मानक हिन्दी में हमें **सेंतना, सेंहुड़, कोंच** और **सोंधा** और ब्रजभाषा में **सैंतना सैंहुड़, कौंच** और **सौंधा** लिखना चाहिए। हिन्दी में **गेंदा** लिखिए, ब्रजभाषा में **गैंदा**।

हिन्दी के कोशों को भी तुम्हें सावधानी से देखना चाहिए। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के हिन्दीशब्दसागर में ही **उड्डीयमान** शब्द को शतृ प्रत्यय से बना हुआ बताकर उसके आगे कोष्ठक में 'उड्डीयमत्'; स्त्री० उड्डीयमती लिख दिया है। यह ठीक नहीं है। **उड्डीयमान** में शानच् प्रत्यय है। यह तत्सम है।

शेष सबको यथायोग्य।

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री बाबूराम शर्मा,
प्रवक्ता हिन्दी,
राष्ट्रीय गांधी इण्टर कालेज,
स्थान व पो० पुरदिलपुर, (अलीगढ़)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० गयाप्रसाद शर्मा के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' **८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)**
डी० लिट्० दिनांक १५-३-१९७४ ई०

प्रियवर गयाप्रसाद,

आशीर्वाद !

तुम्हारे पत्र से मालूम हुआ कि **रामचरितमानस** का अध्ययन तुम बड़ी गम्भीरता एवं मनोयोग से कर रहे हो। सच्चे शोधार्थी का यही लक्षण है। **'मानस' के शब्द और उनके अर्थों में ऐसा अभिनिवेश होना चाहिए कि अर्थ का पूर्ण प्रकाश दृष्टिगोचर होने लगे। जिस अधीती ने, शब्द को पढ़कर उसका अर्थ नहीं जाना, वह शोचनीय है। ब्राह्मण का धर्म अध्ययन और ज्ञान ही होता है।** सच्चे ज्ञान को सच्चे कर्म में बदलनेवाला ही सच्चा ब्राह्मण है। विश्व में ज्ञान जिसके मस्तिष्क में सर्व प्रथम आया, वही तो **अग्रजन्मा** कहलाया। अग्रजन्मा सदाचारी भी थे। भारतवर्ष के ब्रह्मर्षि देश तथा मध्य-देश के अग्रजन्मा आदर्श थे, सदाचरण में। इसीलिए मनु महाराज ने लिखा—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ (मनु० २/२०)

तुम तुलसी के **रामचरितमानस** में आये हुए शब्दों के अर्थों का अध्ययन पहले तुलसी के दृष्टिकोण से करो; तत्पश्चात् उनका वर्तमान अर्थ भी मालूम करो।

तुलसीदास के **रामचरितमानस** में निम्नांकित शब्द निम्नांकित अर्थों में प्रयुक्त हैं—(१) **खल**=वह दुष्ट जिसका मलिन स्वभाव कभी नहीं मिटता (२) **शठ**=वह दुष्ट जो सत्संग से सुधर सकता हो। (३) **माया**=मैं, मेरा-तेरा का भाव, जो जीव को वश में किये रहता है (४) **जीव**=जो माया के वशीभूत है और अपने स्वरूप को नहीं जानता (५) **परमेश**=माया को वश में रखने वाला है (६) **ज्ञान**=वह आत्मभाव जिसमें मान नहीं और जो सब को ब्रह्म-रूप देखता है। (७) **वैराग्य**=सारी सिद्धियों और तीनों गुणों को त्याग देनेवाली भाव-स्थिति।

तुम्हारा प्रश्न यही है न—"**तुलसीदास** जी ने **'रामचरितमानस' के बालकाण्ड में 'लक्ष्मण-परशुराम-संवाद' के अन्तर्गत परशुराम के मुख से लक्ष्मण के लिए 'पापी' शब्द क्यों कहलवाया है ? लक्ष्मण ने तो कोई पाप किया नहीं था। फिर क्यों लिखा गया—'राम तोर भ्राता बड़ पापी।'**"

प्रियवर गयाप्रसाद ! तुमने शब्द तो अच्छा पकड़ा है। लगता है शब्दों में गहरे पैठने लगे हो। शब्द के अर्थ तीन प्रकार के होते हैं—**(१) अभिधेयार्थ**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् वाच्यार्थ (२) **लक्ष्यार्थ** (३) **व्यंग्यार्थ**। लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ के कार्य-क्षेत्र अनेक हैं और विशाल हैं। लक्ष्य, संदर्भ, प्रसंग, मंतव्य आदि की दृष्टि से लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ अपना अस्तित्व स्थापित किया करते हैं। लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ कहीं न कहीं वाच्यार्थ से अवश्य सम्बद्ध रहते हैं, भले ही गंध रखते हों।

मूल अर्धाली (बाल० २१७/६) इस प्रकार है—

हँसत देखि नख सिख रिस ब्यापी। राम तोर भ्राता बड़ पापी ॥

'**पापी**' का अर्थ यहाँ उद्दण्ड, अमर्यादित, नटखटपन से भरा हुआ, शैतान आदि है। '**पापी**' से परशुराम का तात्पर्य 'बड़ों की अवज्ञा करनेवाला' है। तुलसीदास जी का यह अपना अर्थ है, प्रसंग की दृष्टि से। गोस्वामी जी ने 'मानस' के सुन्दरकाण्ड में '**प्रीति**' शब्द का प्रयोग 'अनुशासन' अर्थात् 'डिस्प्लिन' के अर्थ में किया है। प्रसंग से शब्द का अर्थ बदल जाया करता है।

बिनय न मानत जलधि जड़, गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीति।

—(सुन्दर० दो० ५७|-)

'मानस' के बालकाण्ड में तुलसीदास जी ने '**सादर**' शब्द का प्रयोग 'अभिलाषा और उत्साह के साथ' के अर्थ में किया है। जब बारात जनकपुर से आ गयी; तब माताओं ने अयोध्या में सब पुत्रों को बड़ी अभिलाषा, उत्साह तथा ललक से देखा। तुलसीदास जी ने लिखा—

जननिन्ह सादर बदन निहारे। भूपति संग द्वार पगु धारे ॥

—(बाल० ३५८/८)

'**पापी**' शब्द पर आपकी दृष्टि गयी; बहुत अच्छा है। इसी प्रकार संपूर्ण 'मानस' में ऐसे शब्दों को पकड़िए, जिन्हें गोस्वामी जी ने अपने विशिष्ट अर्थों में प्रयुक्त किया है।

'मानस' में **करन** (बाल० ११७/५), **चार** (अयो० ७१/-), **समन** (अर० २/६) आदि अनेक शब्द ऐसे हैं, जो अपने अर्थ की दृष्टि से हमें पकड़कर बैठ जाते हैं। कुछ शब्दों के लिंग-प्रयोग भी 'मानस' में विचित्र हैं। तुलसी 'प्रस्न' शब्द को स्त्रीलिंग में प्रयुक्त करते हैं। क्यों ? पता लगाइए।

चि० वेदप्रकाश आदि सब बच्चों को प्यार ! सौभाग्यवती शोभारानी को आशीर्वाद ! अब की बार जब अलीगढ़ आओ, तब सामग्री पर अच्छी तरह विचार करके लाना। ग्रन्थों के सन्दर्भ पंचसूत्री के साथ हों।

श्री गयाप्रसाद शर्मा, शुभैषी
५४५ नई बस्ती, शिकोहाबाद (मैनपुरी) अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० रामरजपाल द्विवेदी के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक ३. १२. १९७४ ई०

प्रियवर द्विवेदी,

आशीर्वाद !

आपका पत्र मिला। **आप व्याकरण और व्याकरणिम में अन्तर जानना चाहते हैं।**

प्रियवर ! आधुनिक भाषाविज्ञान के अन्तर्गत 'Tagmeme' एक पारिभाषिक शब्द है। व्याकरणिक रूप की लघुतम इकाई लघुतम वाक्य मानी जाती है। **गोपाल दौड़ा**—यह लघुतम वाक्य Tagmeme है। इसमें दो विन्यासिम Taxeme हैं—(१) **गोपाल** (२) **दौड़ा**। इस तरह एक व्याकरणिम में एक से अधिक विन्यासिम होते हैं।

गोपाल विन्यासिम कर्ताव्यंजक संरचक है, और **दौड़ा** विन्यासिम क्रिया-व्यंजक संरचक है। एक व्याकरणिम में दो प्रतिरूप होते हैं—(१) **उद्देश्य प्रतिरूप** (२) **विधेय प्रतिरूप**।

जो करता है, वह उद्देश्य और जो कुछ किया जाता है, वह विधेय कहलाता है। विधेय के अन्तर्गत लक्ष्य, साधन, स्थान, हेतु, क्रिया नाम के प्रतिरूप होते हैं।

मान लीजिए कि एक वाक्य है—"गोपाल लाठी से सड़क पर साँप मार रहा है।" इसमें शब्द प्रतिरूप अर्थात् विन्यासिम-भेद इस प्रकार हैं—(१) **गोपाल**—कर्ता विन्यासिम (२) **साँप**—लक्ष्य विन्यासिम (३) **लाठी**—साधन विन्यासिम (४) **सड़क**—स्थान विन्यासिम (५) **मार रहा है**—क्रिया विन्यासिम।

'गोपाल' उद्देश्य प्रतिरूप, और 'लाठी से सड़क पर सांप मार रहा है' विधेय प्रतिरूप। प्रतिरूप को विन्यासिम भी कह सकते हैं।

यह उपर्युक्त विश्लेषण व्याकरणिम के अन्तर्गत समाविष्ट है। 'व्याकरण' तो आप समझते ही हैं। किसी भाषा की ध्वनियों, रूपों और वाक्यों के अर्थ-परक विश्लेषण को 'व्याकरण' कहते हैं। यह परंपरागत रूप में आपको पढ़ाया भी गया होगा। व्याकरणिम आपको नयी-सी चीज़ लगती होगी। वास्तव में यह नवीन चीज़ नहीं है। बस, विश्लेषण में शब्दावली का भेद है। एक बार ब्लूमफील्ड की पुस्तक 'लैंग्वेज' पढ़ लीजिए।

आज-कल 'आधुनिक भाषाविज्ञान' हिन्दी भाषा का अध्ययन नये ढंग से प्रस्तुत कर रहा है। वह **ध्वनिम और रूपिम** का भी विश्लेषण करता है। हिन्दी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा में ल् वर्त्स्य ध्वनिम (ध्वनिग्राम या स्वनिम) है; लेकिन अन्य ध्वनियों के साथ जब ल् ध्वनि में स्थान-परिवर्तन हो जाता है, तब ल् की वे स्थितियाँ **संध्वनि** (संस्वन या उपस्वन) कहलाती हैं। **लखमीचन्द माल्टा लाये**—इस वाक्य में **माल्टा** का ल् ट् के योग से कुछ-कुछ मूर्धन्य है। यह ल् उपस्वन है। **लड़कों** रूप है, और **लड़क्** तथा-**ओं** रूपिम हैं।

शेष फिर कभी। सस्नेह,

डा० रामरजपाल द्विवेदी, पी–एच० डी० शुभैषी
के, २६८—रामनगर, गाज़ियाबाद (उ० प्र०) अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० प्रेमवल्लभ शर्मा के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन', ८/७, हरिनगर, **अलीगढ़-२०२००१**
डी० लिट्० दिनांक १२. १२. ७४ ई०

प्रियवर प्रेमवल्लभ जी,

आपका हाथरस में विद्या-व्यासंग ठीक ही चल रहा होगा, ऐसा मुझे विश्वास है।

आपको 'रत्नाकर' की भाषा का शैलीतात्त्विक अध्ययन प्रस्तुत करना है। आपके पत्र को पढ़कर और उसके प्रश्न को देखकर मुझे लगा कि आप अपने विषय के स्वरूप और क्षेत्र से अभी पूर्ण रूपेण अवगत नहीं हैं।

'कविता' की आत्मा 'भाव', और शरीर 'भाषा' है। यदि आपका विषय 'रत्नाकर के काव्य का शैलीवैज्ञानिक अध्ययन' होता, तो आपको काव्य के **भाव-पक्ष** और **भाषा-पक्ष**–दोनों का ही विवेचन-विश्लेषण प्रस्तुत करना अभीष्ट होता। आपको तो केवल **भाषा-पक्ष** का ही विश्लेषण-विवेचन प्रस्तुत करना है। विषय है **'रत्नाकर की भाषा का शैलीतात्त्विक अध्ययन'**। शैलीतात्त्विक अध्ययन = Stylistic Study.

साहित्य का भी एक व्याकरण होता है, जिसमें **शब्द** और **शब्द के अर्थ** की मनोहारिणी व्याख्या की जाती है। इसे **काव्यशास्त्र**, या **साहित्यशास्त्र** या **अलंकार-शास्त्र** कहते हैं। एक **भाषा** का व्याकरण होता है, जिसमें प्रकृति-प्रत्यय का विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है। वाक्य में पद की क्या स्थिति है—इस पर भाषा का व्याकरण विचार करता है। शब्द में कितनी तरह की शक्तियाँ हैं? गुण, रीतियाँ और वृत्तियाँ क्या हैं? अलंकारों से पद-विन्यास में कितना सौन्दर्य आ जाता है? इसे साहित्य का व्याकरण बतलाता है। अतः दो प्रकार के व्याकरण हुए—(१) **साहित्य का व्याकरण** (२) **भाषा का व्याकरण**।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ साहित्य का व्याकरण और भाषा का व्याकरण मिलकर एक हो जाते हैं, वह शास्त्र **'शैलीविज्ञान'** (STYLISTICS) कहलाता है। अभी 'शैलीविज्ञान' ने भाषा के क्षेत्र में ही दक्षता प्राप्त की है। साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश ही कर रहा है। **'भाषा का व्याकरण'** एक प्रकार से 'भाषाविज्ञान' का पर्यायवाची है।

अब शैलीविज्ञान यह प्रयत्न कर रहा है कि काव्यशास्त्र और भाषाविज्ञान मिलकर जो कार्य कर सकते हैं, वह काम वैज्ञानिक ढँग से सांख्यिकी के आधार पर **'शैलीविज्ञान'** करे।

आपका कार्य-क्षेत्र 'रत्नाकर' की भाषा से सम्बद्ध है। अतः भाषा के जितने तत्त्व (ध्वनि, रूप और वाक्य) और अंग-उपांग हो सकते हैं, उनसे सम्बद्ध सांख्यिकी को आधार मानकर परिणाम निकालिए।

'शैलीविज्ञान' (Stylistics) यह कहता है कि काव्यशास्त्र के परिणाम किसी काव्य-ग्रंथ के सम्बन्ध में बहुत कुछ विषयिगत होते हैं, विषयगत नहीं। शोध में नितान्त वस्तुपरक (विषयपरक) दृष्टि होनी चाहिए।

यदि कोई आलोचक यह कहता है कि **'सूरसागर'** में सूरदास ने अनुप्रास अलंकार का प्रयोग अधिक किया है, तो उसकी यह बात तभी मान्य और वैज्ञानिक होगी, जब संपूर्ण 'सूरसागर' में से अनुप्रास अलंकारसूचक पंक्तियों को एकत्र किया जाए, और अन्य शब्दालंकारों की पंक्तियाँ भी एकत्र की जाएँ। यदि संख्या में अनुप्रास के उदाहरण सर्वाधिक बैठते हैं, तो निश्चित रूपेण कहा जा सकता है, कि शब्दालंकारों में सूरदास अनुप्रास के कवि हैं, **'सूरसागर'** के अन्तर्गत। काव्य-शास्त्री-आलोचक ऐसी प्रक्रिया नहीं अपनाता। वह तो दस-पन्द्रह जगह अनुप्रास के उदाहरण देखकर एकदम अपना फतवा दे डालता है। शैलीविज्ञान इसे ठीक नहीं मानता—वैज्ञानिक नहीं कहता।

किसी कृतिकार की किसी कृति विशेष का अध्ययन (शैलीवैज्ञानिक अध्ययन) हमें उस कृतिकार के मनोविज्ञान से भी परिचित करा देता है।

शैलीविज्ञान में किसी कृति की भाषा की ध्वनियों और शब्दों के प्रयोग में **चयन** और **विचलन** का अध्ययन भी विशेष रूप से किया जाता है। **मार्तण्ड, अरुण, रवि, दिनकर, प्रभाकर** आदि **सूर्य** के नाम हैं–इनमें से कोई कवि **मार्तण्ड** शब्द को कब और क्यों चुनता है ? यह पता लगाना शैलीविज्ञान का कार्य है। इसे **चयन** कहते हैं। यदि कोई सूर्य के लिए **विभाकर** शब्द का प्रयोग करता है, तो वह **विचलन** है। विचलन में नूतन प्रयोग होता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचलन की प्रक्रिया कृतिकार अपनी कृति के शब्दों के लिंग-प्रयोग में भी अपनाता है। '**पादुका**' शब्द स्त्रीलिंग है और '**प्रभात**' शब्द पुँल्लिंग है।

उपर्युक्त दोनों शब्दों के ये लिंग सर्व-सामान्य रूप से गृहीत हैं। व्याकरण भी इन्हें स्वीकारता है। लेकिन तुलसीदास जी ने रामचन्द्र जी के प्रतिनिधि के रूप में पादुकाओं को भरत द्वारा समादृत कराया है। इसलिए '**रामचरितमानस**' में '**पादुका**' शब्द पुँल्लिंग में प्रयुक्त है। तुलसीदास जी लिखते हैं—

जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि, भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ; इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥
× × × —(सुन्दर०; ४२/-)

सुनि सिख पाइ असीस बड़ि, गनक बोलि दिनु साधि।
सिंघासन प्रभु पादुका, बैठारे निरुपाधि॥
—(अयो० ३२३/-)

'**प्रभात**' शब्द पुँल्लिंग है। इस शब्द की अर्थानुभूति कविवर पन्त को सुन्दर और कोमल रूप में हुई। इसीलिए **पल्लव** में '**प्रभात**' शब्द का प्रयोग स्त्रीलिंग में किया गया है—

पल्लवों की यह सजल प्रभात (पल्लव, पृ० १३)

यह शैलीविज्ञान में शब्द का **लिंग-विचलन** कहलाता है।

'**अभिनन्दन**' शब्द सामान्यतः **प्रशंसा** या **बधाई** के अर्थ में प्रयुक्त होता है; लेकिन तुलसी ने '**मानस**' (अयो० १७६/७) में अनुमोदन (समर्थन) के अर्थ में प्रयुक्त किया है—"**गुर के बचन सचिव अभिनन्दनु।**" यह **शब्द-विचलन** है।

आपको '**शैलीविज्ञान**' की इस दृष्टि को पकड़ कर अपना शोध-कार्य करना चाहिए। अपने भ्राता जी (**पं० राधावल्लभ वैद्य**) से मेरा नमस्कार कहें। सस्नेह,

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री प्रेमवल्लभ शर्मा,
द्वारा—पं० राधावल्लभ वैद्य,
दीनोपकारक औषधालय, मेंडू दरवाजा, हाथरस (अलीगढ़)

श्री तारकनाथ पाण्डेय के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़
दिनांक २–९–७६ ई०

प्रियवर पाण्डेय जी,

आपके पत्र से विदित हुआ कि आप काशिराज-संस्करणवाले **रामचरितमानस** के बालकाण्ड की निम्नांकित अर्धाली—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूजन गौरि सखीं लै आई ।
करत प्रकास फिरहि फुलवाई ।। (काशि०, बाल० २३१/२)

के सम्बन्ध में **करति** पाठ ठीक मानते हैं और साथ में मेरा मत भी जानना चाहते हैं ।

प्रियवर पाण्डेय जी ! सन् १९६२ ई० के काशिराज-संस्करण में जो पाठ दिया गया है, उससे मैं सहमत नहीं हूँ ।

सखियाँ सीता जी को गौरी का पूजन कराने के लिए लेकर आयी हैं और वह सीता फुलवाड़ी में प्रकाश करती फिरती है—इस भाव और अर्थ को दृष्टिपथ में रखना है ।

सखियाँ कई हैं, इसलिए **सखीं** बहुवचनीय कर्ता है । इसका क्रियापद भी बहुवचन में होना चाहिए अर्थात् **आईं** ।

खड़ी बोली मानक हिन्दी में **'करते हुए'** प्रयोग है । इसके समानान्तर तुलसी के **मानस** की भाषा में **'करत'** होना चाहिए । **करति** का अर्थ है **करती है** ।

काशिराज संस्करण के पाठ में **फिरहि** क्रिया लिखी गयी है । **फिरहि** वर्तमान काल में आज्ञार्थ की क्रिया है, जो मध्यम पुरुष, एकवचन की सूचक है; अर्थात् **फिरहि**=तू फिर । **फिरहि** से यहाँ कोई संगति नहीं बैठती । **फिरती है** के अर्थ में **फिरइ** पाठ समीचीन है और **फुलवाई** के स्थान पर **फुलवाईं** पाठ होना चाहिए । **फुलवाईं**=फुलवाड़ी में । अनुनासिकता **सप्तमी विभक्ति** की सूचक है ।

अतएव निम्नांकित पाठ संगत और समीचीन है—

पूजन गौरि सखीं लै आईं ।
करत प्रकास फिरइ फुलवाईं ।। (बाल० २३१/२)

गीताप्रेस, गोरखपुर के संस्करण में ऐसा पाठ मिलता भी है ।

आईं, **फिरइ** और **फुलवाईं** पर दृष्टि रखनी चाहिए ।

मुझे विश्वास है कि आप जैसा पंडित मेरी स्थापना को पूर्णरूपेण समझ गया होगा । यदि फिर भी कोई शंका हो, तो भविष्य में समाधान करने का प्रयत्न करूँगा ।

आशा है सपरिवार सानंद होंगे । सस्नेह,

श्री तारकनाथ पाण्डेय, एम० ए० शुभैषी
बल्देव (मथुरा) अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० रामदेवप्रसाद के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)

प्रियवर रामदेव प्रसाद जी, दिनांक १४. ६. ७६ ई०

दिनांक ६–६–७६ का पत्र मिला, प्रसन्नता हुई। भगवान् राम और हनुमान् जी की अनुकम्पा से मैं अब स्वस्थ होता जा रहा हूँ। कुछ दिन में शारीरिक दुर्बलता भी दूर हो जाएगी। स्वस्थ हो जाने पर तथा यात्रा की शक्ति आ जाने के बाद ही धनबाद आने पर विचार करूँगा।

आपने 'मानस' में एक शंका उठाई थी—

लछिमन तेहि बहु बिधि समुझायो।
बहुरि बिभीषनु प्रभु पहि आयो।। —(६/१०५/६)

इसमें **लछिमन** को **लछिमनु** होना चाहिए। किन्तु 'लछिमनु' पाठ यहाँ नहीं होगा। **लछिमन** ही रहेगा। कारण यह है कि उक्त अर्धाली में **लछिमन** शब्द का प्रयोग प्रथमा विभक्ति में नहीं है, अपितु तृतीया में है। अर्थ होगा—"**लक्ष्मण द्वारा** उसे अनेक प्रकार से समझाया गया।" जब **प्रथमा** या **द्वितीया** को छोड़कर अन्य विभक्ति होगी, तो अकारांत पुलिंग एक वचन शब्द उकारान्त नहीं होगा। यह बात कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य के क्रियापदों के प्रयोगों को जान लेने पर ही स्पष्ट होगी।

कृपया निम्नांकित वाक्यों पर ध्यान दीजिए—

(१) लड़के ने लड़कियों को **समझाया**, (२) लड़की ने लड़कों को **समझाया**। (३) लड़कों ने लड़कियों को **समझाया**। इनमें कर्ता तृतीया विभक्ति में है। अवधी में **ने** परसर्ग होता नहीं। तृतीया विभक्ति का प्रत्यय अथवा परसर्ग लुप्त समझिए। जहाँ कर्ता प्रथमा विभक्ति में एकव० होगा, वहाँ **लछिमनु** अवश्य हो जाएगा।

कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता। (मानस १/१९२) में **अनंत** पाठ भी हो सकता है, क्योंकि छंद का सामान्य एक नियम यह भी है कि अन्त का ह्रस्व स्वर विकल्प से दीर्घ माना जाता है। (पादान्तस्थं विकल्पेन) **अनंत** शब्द में पाँच मात्राएँ मानी जाएँगी। यदि अंत में 'अनंत' न होता तो कुल चार मात्राएँ ही मानी जातीं। शेष फिर कभी।

अभी आप '**भाषा रहस्य** को और अधिक गहराई तथा मनोयोग से पढ़ें, और तब पाठ पर विचार करते हुए **मानस** का पारायण करें। प्रसन्नता हैं कि आप गहरे उत्तर रहे हैं।

जिन खोजा तिन्ह पाइयाँ गहरे पानी पैठ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर्ष है कि आप सपरिवार सानंद हैं। पत्रोत्तर की प्रतीक्षा में। सस्नेह,

डा० रामदेव प्रसाद शुभैषी
प्रवक्ता, हिन्दी-विभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
पी० के० राय मेमोरियल कालेज, धनबाद (बिहार)

प्रो० गोवर्धननाथ शुक्ल के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)

बंधुवर डॉ० शुक्ल जी, दिनांक १४. १०. ७६ ई०

सादर सप्रेम नमस्कार।

आपके साथ **'मानस'** के जिस **प्रश्न** शब्द के लिंगगत प्रयोग पर चर्चा हुई थी, उसे मैंने देख लिया है। आपने 'भागवत' के आधार पर **प्रश्न** शब्द के स्त्रीलिंग-प्रयोग का समाधान प्रस्तुत किया था, वह भी मुझे संगत और तर्कसम्मत लगता है। **मानस** में **प्रश्न** शब्द चौदह बार प्रयुक्त हुआ है। इन १४ बारों के प्रयोगों में ५ बार के प्रयोग तो ऐसे हैं, जिनसे लिंग का ज्ञान होता ही नहीं। ९ प्रयोग निश्चित रूप से स्त्रीलिंग में ही हैं। इससे लगता है कि तुलसी **'मानस'** की सर्जना के समय **'भागवत'** के **प्रश्न** शब्द की व्याख्या से संभवतः प्रभावित हुए होंगे।

वन्धुवर शुक्ल जी ! मैंने आपके साथ हुई ब्रह्मविषयक-परिकल्पनावाली उस सारस्वत चर्चा के संबंध में भी 'रामचरितमानस' के पूर्वापर सन्दर्भ के साथ विचार कर लिया है। मेरे विचार से दाशरथी राम को तुलसी से पहले ब्रह्मत्व-पद पर सर्वप्रथम वायुपुराण (ई० पू० ५०० वर्ष) में स्थापित किया गया है। वाल्मीकीय रामायण में भी **राम** बालकाण्ड, लंकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड में ईश्वर के रूप में अभिव्यक्त हैं; किन्तु विद्वान् उन अंशों को प्रक्षिप्त मानते हैं।

महाभारत के वन पर्व में **मार्कण्डेय जी** ने युधिष्ठिर को राम की जीवन-गाथा सुनायी है। वहाँ राम को विष्णु का अवतार बताया गया है। श्रीमद्-भागवत में भी राम विष्णु के अवतार हैं।

तुलसीदास अपने **मानस** में मुख्य रूप से राम को निर्गुण ब्रह्म मानते हुए भी भक्ति के वशीभूत उसे सगुण ब्रह्मरूपधारी लीलाकारी मर्यादापुरुषोत्तम के रूप में व्यक्त करते हैं; मनु-शतरूपा का प्रसंग प्रमाण है, कि राम ब्रह्मा, विष्णु और महेश से ऊपर व्यापक, निरंजन, निर्गुण, अज तथा अनादि परात्पर-ब्रह्म हैं; लेकिन मानस के उत्तरकाण्ड में **सनकादि** मुनियों की प्रार्थना में **इन्दिरा-रमन** (उत्तर० ३४/४) और अरण्यकाण्ड (दो० ४/छंद) में अत्रि ऋषि की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना में '**नमामि इन्दिरापतिं**' लिखकर राम को तुलसी ने विष्णु भी माना है। वास्तव में तुलसी के राम ब्रह्म के भावावतार हैं; जो जैसा माने, उसके लिए वैसे ही। सारांश यह है कि तुलसी के राम ज्ञान में **ईश्वर** और इच्छा तथा क्रिया में **पुरुष** हैं। वे स्वरूप में **निर्गुण** और रूप में **सगुण** हैं।

डॉ० गोवर्धननाथ शुक्ल, आपका
प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय, अलीगढ़

प्रो० गोवर्धननाथ शुक्ल के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़
दिनांक २१. १०. ७६

बन्धुवर डॉ० शुक्ल जी,

आपका दिनांक १९. १०. ७६ का कार्ड पढ़कर हृदय उछल पड़ा और 'वाह! वाह!!' कर उठा। कमाल की खोज की है। आप्टे के कोश से आगे आपका यह एक चरणन्यास है। धन्य! धन्य!! धन्य!!!

"पिबन्तोऽक्षैर्मुकुन्दस्य ......"

—(भाग० १०/४५/१९)

यह प्रमाण-सन्दर्भ खूब पकड़ा, आपने यदि भागवत के शब्दों का एक कोश तैयार हो जाए, तो साहित्य के शब्दार्थ-क्षितिज का विस्तार निश्चित रूप से बढ़ जाएगा।

आपने जब भागवत का उदाहरण देकर बताया, तब मुझे भी स्मरण आ रहा है कि न्याय दर्शन के प्रवर्तक **गौतम** को **अक्षपाद** कहा जाता है। **अक्षपाद** शब्द में **अक्ष** का अर्थ **नेत्र** है—**अक्षं नेत्रं दर्शनसाधनतया जातः पादोऽस्य।** बहुत संभव है, **गौतम** (अक्षपाद) सदा नीची नज़र करके ही चलते हों, पृथ्वी का पूरा निरीक्षण करते हुए।

प्रसिद्ध भागवती पंडित **श्री केशवदेव जी** (मथुरा) के शुभागमन का समाचार मुझे श्री पाण्डे जी ने भी दिया था। अब तो उनके मुख से सुधारस-पान करने को मिलेगा ही। सस्नेह,

डॉ० गोवर्धननाथ शुक्ल, आपका
शुक्ल-सदन, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
खाईढोरा, अलीगढ़ (उ०प्र०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री पूरनसिंह भाकुनी के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक १. १२. १९७६ ई०

प्रिय श्री भाकुनी जी,

आशीर्वाद !

आपके पत्र से यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपका **शोध-कार्य** चल रहा है और **आपने अलमोड़ा ज़िले के गाँवों के नामों की व्युत्पत्तियों पर काफ़ी काम कर लिया है** । साधना मंगलकारी हो !

आप ग्रामवाची संज्ञा शब्दों की संगत व्युत्पत्तियों के लिए उस निर्दिष्ट ग्राम की भौगोलिक, ऐतिहासिक तभा सांस्कृतिक स्थिति मे भी परिचय प्राप्त करें । तभी न्याय हो सकेगा ।

आपने **कौसानी** शब्द की व्युत्पत्ति जानने के लिए पत्र में जिज्ञासा प्रकट की है । '**कौसानी**' श्री सुमित्रानन्दन पंत की जन्म-भूमि है । अलमोड़ा ज़िले का यह गाँव इसलिए भी प्रसिद्ध है ।

आपको वहाँ पता लगाना चाहिए कि उस गाँव के आस-पास कहीं कौशिक (विश्वामित्र) ऋषि का आश्रम या वन-खंड तो नहीं है ? कोई मन्दिर या पहाड़ी तो ऋषि के नाम पर वहाँ नहीं है ? व्युत्पत्तियों पर काम करनेवाले को भाषाविज्ञान के समानान्तर भौगोलिक ज्ञान भी परमावश्यक है । **कुशिक** ऋषि की सन्तान **गाधि**, और **गाधि** के पुत्र **विश्वामित्र** थे । अतः विश्वामित्र **कौशिक** भी कहलाये ।

विश्वामित्र की एक बहिन थी, जिसका नाम **सत्यवती** था । गाधि-पुत्री सत्यवती भृगुवंशी **ऋचीक** को ब्याही थी । परशुराम के पिता ब्रह्मर्षि **जमदग्नि** सत्यवती की कोख से उत्पन्न हुए थे । इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रिय **प्रसेनजित्** की दो पुत्रियाँ थीं, जिनमें एक का नाम **रेणुका** था । रेणुका का विवाह ब्रह्मर्षि जमदग्नि से हुआ था । रेणुका के पाँच पुत्र थे, जिनमें बलवान् तथा तेजस्वी **परशुराम** ही थे । **प्रसेनजित्** की दूसरी पुत्री **सहस्रार्जुन** को ब्याही थी, जो हैहय वंशी क्षत्रिय था ।

इस तरह क्षत्रिय **सहस्रार्जुन** परशुराम का मौसा भी लगता था; लेकिन वही सहस्रार्जुन परशुराम के पिता **जमदग्नि** का मारक भी था । इसीलिए परशुराम ने सहस्रार्जुन को युद्ध में परास्त करके उसका प्राणान्त भी कर दिया था ।

परशुराम के पिता जमदग्नि के शरीर पर आघात के २१ निशान थे ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें परशुराम ने देखा; और फिर २१ बार क्षत्रियों को युद्ध में परास्त करके उनसे पृथ्वी छीनी और ब्राह्मणों को दी। **जमदग्नि** विश्वामित्र के भानजे थे। इस तरह विश्वामित्र को परशुराम का बाबा भी कहा जा सकता है। उस समय में अनेक क्षत्रिय-कन्याएँ ब्राह्मणों को ब्याही गयी थीं।

यदि '**कौसानी**' के आस-पास कुशिक के पौत्र कौशिक का आश्रम है, तो तो निश्चित रूप से 'कौसानी' शब्द का विकास कौशिक + अरण्यानी से है—कौशिकारण्यानी > कौसानी।

आपकी जन्म-भूमि का गाँव **खीराकोट** है। यह शब्द भी संभवतः सं० **क्षीरकोट** से विकसित है। इसके उत्तरपद में संस्कृत का मूल शब्द ज्यों का त्यों बना रहा। देखिए आस-पास वहाँ कोई झील या नदी तो नहीं, जिसका पानी एक दम दूध-जैसा सफेद हो। ऐसी बातें व्युत्पत्ति को समर्थन दिया करती हैं। भाषाविज्ञानेतर तत्त्व व्युत्पत्ति में सहायक होते हैं।

हर्ष है आप सपरिवार सानन्द हैं।

श्री पूरनसिंह भाकुनी, शुभैषी
प्रिंसिपल, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
4236/I **दरियागंज, नई दिल्ली**—२

श्री योगेन्द्रप्रसाद सिंह के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़—(उ० प्र०)

प्रिय श्री योगेन्द्रप्रसाद सिंह जी, दिनांक ६. १२. १९७६ ई०

आपका दिनांक ३१. ८. ७६ का पत्र मिला था। आपने मेरी पुस्तक **रामचरितमानस भाषा-रहस्य** को मनोयोग से पढ़ा है। प्रसन्नता हुई। समय मिले तो मेरी एक दूसरी कृति **रामचरितमानस॰ वाग्वैभव** को भी पढ़ जाइए। फिर 'मानस' का प्रामाणिक पाठ की दृष्टि से अध्ययन कीजिए।

काशिराज-संस्करण में पाठ इस प्रकार है—

पूजन गौरि सखीं लै आई।
करत प्रकासु फिरहि फुलवाई॥ (काशि०, बाल० २३१/१)

काशिराज-संस्करण का उक्त पाठ ठीक नहीं है। **सखीं** संज्ञा पद कर्ता है, जो बहुवचन में है, अतः क्रियापद **आईं** होना चाहिए। सीता फुलवाड़ी में प्रकाश करती फिरती है। इसलिए सप्तमी एकवचन में **फुलवाईं** पाठ समीचीन है। फुलवाईं = फुलवाड़ी में। सीता प्रकाश करती फिरती है—इसलिए **फिरइ** पाठ होना चाहिए। **फिरइ** (= फिरती है) वर्तमानकाल में अन्यपुरुषीय एकवचन की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रिया है। व्याकरण और अर्थ की दृष्टि से गीताप्रेस गोरखपुर-संस्करण का निम्न पाठ संगत है—

पूजन गौरि सखीं लै आईं।

करत प्रकास फिरइ फुलवाईं।। (बाल० २३१/१)

काशिराज-संस्करण की **फिरहि** क्रिया तो बिलकुल असंगत है। **फिरहि** क्रिया तो आज्ञार्थ में मध्यमपुरुष एकवचन की क्रिया है अर्थात् **फिरहि**=तू फिर। **फिरहि** का कोई अर्थ यहाँ ठीक नहीं बैठता।

आपने जो **करतिं** पाठ का अनुमान लगाया है, वह भी व्याकरण की दृष्टि से ठीक नहीं। **करतिं**=करती हैं।

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा संपादित **रामचरितमानस** (काशिराज संस्करण) में भूतकालीन क्रिया में ध्वनि की स्पष्टता के लिए चिह्न दिये गये हैं, जो पाठ तथा भाषाविज्ञान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। जब कर्म अन्य पु०, पुंलिंग एक वचन है, तब क्रियापद **परिहरेउ** लिखा गया है—जैसे–**तनु परिहरेउ राम बिरहागी।** (अयो० १७३/४)। '**परिहरेउ**' कर्मवाच्य की क्रिया है।

इस उपर्युक्त चरण की क्रिया में **ह्रस्व ए** ध्वनि ग्रंथ में संकेतित है।

रामचरितमानस के भूतकालीन क्रियापदों के रूपात्मक प्रत्ययों में निम्नांकित प्रत्यय बड़े मार्के के हैं। पहले कर्ता की दृष्टि से देखिए—

जब कर्ता उत्तमपुरुष, पुंलिंग, एकवचन में होता है, तब प्रत्यय–**एउँ** लगता है और जब कर्ता उत्तमपुरुष, स्त्रीलिंग, एक वचन में होता है, तब प्रत्यय–**इउँ** लगता है।

काकभुशुण्डि गरुड़ जी से कहते हैं—

तब मैं भागि चलेउँ उरगारी। (गीताप्रेस, उत्तर० ७६/७)

धा० चल् + —एउँ = चलेउँ = मैं चला (= मैं काक चला)

कौशल्या जी भरत जी से कहती हैं—

गइउँ न संग न प्रान पठाए। (गीताप्रेस, अयो० १६५/५)

धा० ग + इउँ = गइउँ = मैं गई (= मैं कौशल्या गई)

अनसूया जी सीता जी से कहती हैं—

तोहि प्रान प्रिय राम, कहिउँ कथा संसार हित।

—(गीताप्रेस, अर०, दो० ५/–)

धा० कह् + —इउँ = कहिउँ = मैंने कही (= मैंने अर्थात् अनसूया ने कथा कही)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त—एउँ में–ए पुंलिंग का, और–इउँ में–इ स्त्रीलिंग का सूचक है। –उँ उत्तमपुरुष, एक वचन को प्रकट करता है।

अब कर्म की दृष्टि से देखिए—

यदि कर्म अन्यपुरुष, पुंलिंग एक वचन है और कर्ता उत्तमपुरुष, पुंलिंग एक वचन है, तो प्रत्यय —एउँ लगता है। यदि कर्म अन्यपुरुष, स्त्रीलिंग, एकवचन है, और कर्ता उत्तमपुरुष, पुंलिंग, एक वचन है तो प्रत्यय–इउँ लगता है,

जैसे— **कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें** (गीताप्रेस, बाल० २३/५)
सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू। (गीताप्रेस, अयो० २६०/७)
उमा कहिउँ सब कथा सुहाई। (गीताप्रेस, उत्तर० ५२/६)

आपके उस पत्र का उत्तर संभवतः मैंने दे दिया था, जिसमें आपने 'तुलसी शब्द-कोश' के सम्बन्ध में जानना चाहा था। तुलसी-साहित्य के शब्दों पर एक कोश हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है, संपादक श्री भोलानाथ तिवारी हैं। तुलसी के संपूर्ण काव्य-ग्रंथों का एक विशाल शब्द-कोश पंडितों को तैयार करना चाहिए, जिसमें व्युत्पत्तियाँ भी हों। आप शब्द और व्याकरण के प्रेमी हैं—यह जानकर परम हर्ष है।

आप पहले अवधी के व्याकरण की भी पूरी जानकारी करें; तब पाठ-विचार में लगें। हर्ष है, आप सानंद हैं।

श्री योगेन्द्रप्रसाद सिंह शुभैषी
ग्राम—मोरसंड, पो०—मननपुर मोरसंड अम्बाप्रसाद 'सुमन'
(मार्ग रुन्नी सैदपुर), ज़ि० सीतामढ़ी (बिहार)

श्रीमती सरोजबाला के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक १०. १२. १९७६ ई०

प्रिय शिष्या सरोजबाला,

आशीर्वाद।

तुमने 'हुए', 'हुये', **'नई', 'नयी', 'गांठ', 'गाँठ'** आदि के सम्बन्ध में शुद्ध एवं ग्राह्य वर्तनी का प्रश्न उठाया है।

हिन्दी की वर्तनी में हमें उच्चारण और यथासंभव व्याकरण के अनुसार लेखन-कार्य करना चाहिए।

'होना' क्रिया का भूतकाल, एक वचन, पुंलिंग 'हुआ' बनता है। इस 'हुआ' के जितने लिंग-वचनीय रूप-परिवर्तन होंगे, उनमें स्वर अवश्य रहना चाहिए,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि ... लिए हिन्दी में **हुआ, हुई, हुए** आदि
लि... न है, इसलिए **नयी, नये** आदि
लि... बनता है; इसलिए 'लिये' लिखना
ठीक ... ान कारक का परसर्ग-रूप हो तो
'लि... लिए परिश्रम करता है।''

... बना चाहिए, 'स्थाई' अशुद्ध है।
विधि ... को **चाहिए, आइए, खाएगा,**
सोए ... **वाही** ग़लत चल पड़ा है, **कार्रवाई**
लिख...

... है, अत: **गाँठ, फाँस, हँसी, अँगना,**
आँसू ... **ना, संलाप** आदि में अनुस्वार का
प्रयो... **अँगना** = सहन, आँगन, चौक।
हिन्दी ... न्यथा **कीर्तिमान** और **कीर्तिमान्**
का अ... है ... खक हिन्दी में शब्दों को हलन्त
नहीं करते, यह ठीक नहीं है। यदि **सत्कर्म** में या 'सत्शास्त्र में 'त्' के नीचे हल् का चिह्न न लगाया जाएगा, तो अर्थ-बोध में बाधा पड़ेगी। 'भगवत्' से 'भागवत' की व्युत्पत्ति और शब्द-सिद्धि को बताने में भी कठिनाई होगी।

तत्सम शब्दों में हल् का बड़ा महत्त्व हैं। 'हिन्दी शब्द सागर' में 'उड्डीय-मान' (उड्डीय + शानच्) को 'उड्डीयमत् का विकास माना है; ठीक नहीं।

स्त्री बहुवचनीय रूप में **'यें'** वहीं लिखिए, जिनमें मूलत: 'य' है, **जैसे गाय** का बहुवचन **गायें**। यदि आकारान्त शब्द है, तो बहुवचनीय रूप 'एँ' से लिखना चाहिए; जैसे 'रेखा' से **रेखाएँ**; 'लता' से **लताएँ** आदि। **रेखायें, रेखाऐं, लतायें, लताऐं** लिखना अशुद्ध है। दिल्ली की बोली में **'मैंने खाना है'; ''पैन्ट मेरे को दो।''**—इन प्रयोगों से बचती रहना।

हर्ष है तुम सपरिवार सानंद हो। कछुए की भाँति अन्तर्मुखी बनकर शोध-अनुष्ठान को शीघ्र संपन्न कीजिए। तुम्हारी कछुए की-सी चाल निरन्तरता पकड़े रही, तो लक्ष्य पर तो तुम पहुँच लोगी, भले ही देर हो जाए। आशा है प्रसन्न होगी।

(श्रीमती) सरोजबाला, एम० ए०, बी० एड०, शुभैषी
1589, **मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली ११००६** **अम्बाप्रसाद 'सुमन'**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त—**एउँ** में–**ए** पुंलिंग का, और–**इउँ** में–**इ** स्त्रीलिंग का सूचक है। –**उँ** उत्तमपुरुष, एक वचन को प्रकट करता है।

अब कर्म की दृष्टि से देखिए—

यदि कर्म अन्यपुरुष, पुंलिंग एक वचन है और कर्ता उत्तमपुरुष, पुंलिंग एक व[illegible] प्रत्यय —**एउँ** लगता है। यदि कर्म अन्यपुरुष, स्त्रीलिंग, एकव[illegible] वचन है तो प्रत्यय–**इउँ** लगता है, जैसे-[illegible] प्रेस, बाल० २३/५)

[illegible] प्रेस, अयो० २६०/७)

[illegible] ताप्रेस, उत्तर० ५२/६)

[illegible] दया था, जिसमें आपने 'तुलसी शब्द-[illegible] तुलसी-साहित्य के शब्दों पर एक व[illegible] प्रकाशित हुआ है, संपादक श्री भोला[illegible] थों का एक विशाल शब्द-कोश पंडित[illegible] तयाँ भी हों। आप शब्द और व्याक[illegible]।

अ[illegible] पूरी जानकारी करें; तब पाठ-विचार[illegible]

श्री यो[illegible]   शुभैषी

ग्राम—[illegible]   अम्बाप्रसाद 'सुमन'

(मार्ग रुन्नी सैदपुर), ज़ि० सीतामढ़ी (बिहार)

श्रीमती सरोजबाला के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक १०. १२. १९७६ ई०

प्रिय शिष्या सरोजबाला,

आशीर्वाद।

तुमने 'हुए', 'हुये', '**नई**', '**नयी**', '**गांठ**', '**गाँठ**' आदि के सम्बन्ध में शुद्ध एवं ग्राह्य वर्तनी का प्रश्न उठाया है।

हिन्दी की वर्तनी में हमें उच्चारण और यथासंभव व्याकरण के अनुसार लेखन-कार्य करना चाहिए।

'होना' क्रिया का भूतकाल, एक वचन, पुंलिंग 'हुआ' बनता है। इस 'हुआ' के जितने लिंग-वचनीय रूप-परिवर्तन होंगे, उनमें स्वर अवश्य रहना चाहिए,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि 'हुआ' में अंतिम स्वर 'आ' है। इसलिए हिन्दी में **हुआ, हुई, हुए** आदि लिखना समीचीन है। 'नया' में 'य्' व्यंजन है, इसलिए **नयी, नये** आदि लिखना चाहिए। 'लेना' का भूतकाल **लिया** बनता है; इसलिए 'लिये' लिखना ठीक है—"मैंने दस आम **लिये**।" यदि सम्प्रदान कारक का परसर्ग-रूप हो तो '**लिए**' लिखना उचित है; जैसे "वह धन के लिए परिश्रम करता है।"

व्याकरण के अनुसार सदैव '**स्थायी**' लिखना चाहिए, 'स्थाई' अशुद्ध है। विधिलिंग और भविष्यत् काल की क्रियाओं को **चाहिए, आइए, खाएगा, सोएगा** आदि रूपों में लिखना ठीक है। **कार्यवाही** ग़लत चल पड़ा है, **कार्रवाई** लिखना चाहिए।

अनुनासिक पृथक् ध्वनि नहीं—स्वराश्रित है, अतः गाँठ, फाँस, हँसी, अँगना, आँसू आदि लिखिए। **कांत, भ्रांत, कंचन, अंगना, संलाप** आदि में अनुस्वार का प्रयोग किया जाना चाहिए। **अंगना** = स्त्री। **अँगना** = सहन, आँगन, चौक। हिन्दी में हल् का प्रयोग भी करना चाहिए—अन्यथा **कीर्तिमान** और **कीर्तिमान्** का अन्तर स्पष्ट नहीं होगा। कुछ हिन्दी-लेखक हिन्दी में शब्दों को हलन्त नहीं करते, यह ठीक नहीं है। यदि **सत्कर्म** में या 'सत्शास्त्र में 'त्' के नीचे हल् का चिह्न न लगाया जाएगा, तो अर्थ-बोध में बाधा पड़ेगी। 'भगवत्' से 'भागवत' की व्युत्पत्ति और शब्द-सिद्धि को बताने में भी कठिनाई होगी।

तत्सम शब्दों में हल् का बड़ा महत्त्व हैं। 'हिन्दी शब्द सागर' में 'उड्डीय-मान' (उड्डीय + शानच्) को 'उड्डीयमत् का विकास माना है; ठीक नहीं।

स्त्री बहुवचनीय रूप में '**यें**' वहीं लिखिए, जिनमें मूलतः 'य' है, जैसे **गाय** का बहुवचन **गायें**। यदि आकारान्त शब्द है, तो बहुवचनीय रूप 'एँ' से लिखना चाहिए; जैसे 'रेखा' से **रेखाएँ**; 'लता' से **लताएँ** आदि। **रेखायें, रेखाऐं, लतायें, लताऐं** लिखना अशुद्ध है। दिल्ली की बोली में '**मैंने खाना है**'; "**पैन्ट मेरे को दो**।"—इन प्रयोगों से बचती रहना।

हर्ष है तुम सपरिवार सानंद हो। कछुए की भाँति अन्तर्मुखी बनकर शोध-अनुष्ठान को शीघ्र संपन्न कीजिए। तुम्हारी कछुए की-सी चाल निरन्तरता पकड़े रही, तो लक्ष्य पर तो तुम पहुँच लोगी, भले ही देर हो जाए। आशा है प्रसन्न होगी।

(श्रीमती) सरोजबाला, एम० ए०, बी० एड०, शुभैषी
1589, **मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली ११००६** **अम्बाप्रसाद 'सुमन'**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(श्रीमती) माया गुप्ता एवं (श्रीमती) ऊषा गुप्ता के नाम

शिविर सहारनपुर

प्रिय बहिन माया जी एवं ऊषा जी, दिनांक २. २. ७७ ई०

मंगलकामना !

आप दोनों ने उस दिन "**उत्तिष्ठत जाग्रत**" का अर्थ जानना चाहा था।

"**उत्तिष्ठत जाग्रत**" कठोपनिषद् (अ० १/वल्ली ३/१४) का वाक्य है। इस वाक्य में ऋषि ने ज्ञान-प्राप्ति के लिए मानव-मन को प्रेरित करते हुए कहा है— "**तुम उठो और जागो**" उपनिषद् का ऋषि इस मंत्र में कविता की भाषा में बोला है।

पूरा मंत्र इस प्रकार है—

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य बरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया।
दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति। (कठ० १/३/१४)

[अर्थात् हे अविद्याग्रस्त लोगो ! उठो, अज्ञान निद्रा से जागो और ज्ञानश्रेष्ठ पुरुषों से ज्ञान प्राप्त करो। जिस प्रकार छुरे की धार तीक्ष्ण और दुस्तर होती है, तत्त्वज्ञानी उस ज्ञान-मार्ग को वैसा ही बताते हैं।]

'उठना' जागरण के लिए भूमिका रूप में 'तैयार होना' समझिए। 'जागो' का अर्थ बहुत गहरा और विस्तृत है। यदि माया रूप **काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद** और **मत्सर** को हमने जागकर देखना आरम्भ कर दिया, तो समझ लीजिए कि हम उन छह रिपुओं को वश में कर लेंगे।

माया जी ! क्रोध के समय आप क्रोध के आलम्बन को न देखिए, बल्कि अपने क्रोध भाव को देखिए। जागरूक होकर देखिए, अच्छी तरह देखिए। आप क्रोधावेग में देखिए कि आपके होंठ कैसे फड़फड़ा रहे हैं ? आप अपने दाँत कैसे पीस रही हैं ? दर्पण में देखिए कि आपका चेहरा कैसा लाल पड़ गया है ? आपकी आंखें किस तरह आग उगल रही हैं ? आपके शरीर में ख़ून कितनी तेजी से खौल रहा है ? पूरा शरीर किस तरह काँप रहा है ?

ऊषा जी ! यदि हम क्रोध के समय अपने ही क्रोध के प्रति जागरूक बन जाएँगे, तो निश्चित रूप से क्रोध शान्त हो जाएगा। इस **जागरूकता** के निरन्तर अभ्यास से क्रोध पर विजय पायी जा सकती है। क्रोध का निरीक्षण ही क्रोध के नाश का उपाय है। ऐसी जाग्रत् अवस्था ही मनुष्य को देवकोटि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पहुँचाती है। इसीलिए वेद कहता है कि जो जागते हैं, वेदों की ऋचाएँ उनके पास दौड़ी चली आती हैं अर्थात् वे ज्ञानी बन जाते हैं—

यो जागार ऋचः तं कामयन्ते—(वेद)

प्रस्तुत वेद-वाक्य में '**ऋचः**' (ऋचाएँ) प्रतीक हैं; ज्ञान, शुभाचरण एवं दिव्य मंगल की। प्रतीक एक साथ कई भावों की समष्टि का सूचक होता है। अनेक प्रतीयमान एक प्रतीक में समाविष्ट रहते हैं।

वैदिक मंत्रों में 'ॐ' प्रतीक है—सृष्टि, संस्कृति और नाद ब्रह्म का। हमारा स्वास्तिक चिह्न 卐 भारतीय संस्कृति का प्रतीक है।

प्रतिमा और **प्रतीक** में अन्तर है। एक **प्रतिमा में अनेक प्रतीक** समाविष्ट रहते हैं। विष्णु की एक प्रतिमा में निम्नांकित प्रतीक समाविष्ट हैं—(१) हृदय में कौस्तुभमणि (यह निर्मल निर्लेप आत्मा का प्रतीक है) (२) एक हाथ में गदा (यह बुद्धि की प्रतीक है) (३) शंख और शार्ङ्ग धनुष (तामस और राजस अहंकार का प्रतीक है)।

सारांश यह कि एक प्रतिमा में अनेक प्रतीक हो सकते हैं अर्थात् एक प्रतीक के अनेक प्रतीयमान हो सकते हैं।

हमारा तिरंगा झंडा कई भावों को सूचित करता है। वे विभिन्न भाव ही प्रतीयमान हैं। अर्थात् एक प्रतीक = अनेक प्रतीयमान।

प्रिय बहिन माया जी! यदि आप **प्रतीक** को पूरी तरह समझना चाहती हों, तो **प्रतीक-शास्त्र** ग्रंथ (लेखक, **श्री परिपूर्णानन्द वर्मा**) अवश्य पढ़ें। यह ग्रंथ हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ से सन् १९६४ ई० में प्रकाशित हो चुका है। मूल्य दस रुपया हैं। ज्ञान-प्राप्ति की दृष्टि से ग्रंथ का यह मूल्य नगण्य-सा है।

माया जी! क्रोध का उत्पन्न न होना **अक्रोध**, और क्रोध को समाप्त करना **विक्रोध** कहलाता है। महाराष्ट्र के **श्री तुकाराम** अक्रोध-सन्त थे। उन्होंने अपनी कर्कशा तथा क्रोधवती पत्नी पर **प्रेम** तथा **अक्रोध-भाव** से विजय पायी थी।

प्रिय बहिन माया जी! आप इस पत्र को बहिन ऊषा गुप्ता जी को भी दिखा दें। आप दोनों ने मिलकर प्रश्न किया था, इसलिए एक ही पत्र में दोनों के लिए लिख दिया गया हैं।

आशा है आप दोनों सपरिवार सानंद होंगी। ऊषा जी से मेरी ओर से पूछिए कि उनकी काव्य-सर्जना कैसी चल रही है, आज-कल?

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबको यथायोग्य। बच्चों को आशीर्वाद ! प्रो० एच० के० गुप्त और श्री उर्वेशकुमार गुप्त से मेरा नमस्कार कहें।

श्रीमती माया गुप्ता एवं श्रीमती ऊषा गुप्ता, शुभैषी
द्वारा—प्रो० एच० के० गुप्त, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
अध्यक्ष, भूगोल-विभाग,
श्री वार्ष्णेय डिग्री कालेज-स्टाफ-क्वार्टर्स, अलीगढ़ (उ० प्र०)

डा० कृष्णचन्द्र शर्मा के नाम

हिन्दी-शोध-संस्थान
हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१

मान्य बन्धुवर डा० शर्मा जी, दिनांक १७. ५. ७७ ई०

सादर सप्रेम नमस्कार !

आपके सहज स्नेह के फलस्वरूप आपकी **कुरु-भारती** दिनांक २३–३–७७ को और **स्मारिका** (भाषा एवं संस्कृति-संगोष्ठी १९७७) दिनांक ११–५–७७ को प्राप्त हो गयी थीं। एतदर्थ हार्दिक धन्यवाद !

उपर्युक्त दोनों सारस्वत कृतियों को मैंने मनोयोग से पढ़ा है, और अपने को लाभान्वित किया है। परम प्रसन्नता है कि आप **कुरुलोक-संस्थान, मेरठ** के माध्यम से कौरवी भाषा और कुरु-लोक-कला एवं कुरु-संस्कृति की स्मरणीय सेवा कर रहे हैं। माता वीणापाणि से प्रार्थना है कि आपका ब्राह्मसर अमर रहे और अपनी सारस्वत सेवा के सोपान-पथ से आप और भी दिव्यतम लोकों के दर्शन करें। **शिवश्च पन्थाः।**

फरवरी के अंत तक आपका 'संस्थान' **लोक साहित्य-कोष, देशज-खड़ी बोली-कोष** और **कुरुजनपद-ग्रन्थावली** भी प्रकाशित कर देगा—इस समाचार से और भी अधिक प्रसन्नता हुई।

मैं रुग्णता के कारण संगोष्ठी में प्रत्यक्षतः उपस्थित तो न हो सका, लेकिन आपकी **स्मारिका** का अवलोकन करके परोक्षतः लाभ प्राप्त कर लिया है। विवशता के लिए क्षमा माँग चुका था।

आप खड़ी बोली का जो देशज-शब्द-कोश तैयार करा रहे हैं, उसमें किस प्रकार के शब्दों का संकलन है ? **देशज** संज्ञा भाषाशास्त्र में एक विशेष प्रकार के शब्दों के लिए दी गई है, जो **तद्भव** शब्दों से पृथक् हैं। क्या आपके कोश में देशज शब्दों के अन्तर्गत **तद्भव** शब्द भी रहेंगे या मात्र देशज शब्द ? यदि आपने तद्भव और देशज के स्पष्ट भेद-विवेक से संग्रह तैयार कराया है, तब तो **जनपदीय खड़ी बोली-शब्द-कोष** नाम अधिक समीचीन है—ऐसी मेरी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनम्र राय है। शेष जैसा आप उचित समझें। हेमचन्द्र की 'देशी नाम माला' में भी ऐसी भूल हुई है—उसके **देशी** शब्दों में **तद्भव** शब्द भी समाविष्ट हैं, जो पुस्तक के नाम के अनुकूल नहीं हैं। उसमें कुछ शब्द ऐसे भी हैं, जिनका स्रोत अरबी-फ़ारसी से है। मुझे विश्वास है कि आपके तत्वावधान में संपादित कोश ऐसी भूल न करेगा। शब्द के आगे यदि उच्चारण-संकेत भी कोश में रहे, तो परमोत्तम।

दूसरा निवेदन यह है कि यद्यपि हिन्दी में **कोश** और **कोष** दोनों शब्द Dictionary के लिए चलते हैं; किन्तु अब **शब्द-कोश** के लिए **कोश** और **मुद्रा-कोष** के लिए **कोष** शब्दों का ग्रहण कुछ सुविधाजनक माना गया है। 'वृहत् हिन्दी कोश' और 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' में तालव्य **श** का ही प्रयोग है, मूर्धन्य **ष** का नहीं। पुस्तक के नामकरण के समय यदि इसका ध्यान रखा जाए, तो अच्छा रहेगा

स्मारिका के 'भाषा एवं संस्कृति गोष्ठी॰ उद्देश्य' शीर्षक लेख में लिखा गया है कि "संस्थान की दृष्टि में **कौरवी** डा० बाबूराम सक्सेना के अनुसार शौरसेनी प्राकृत और अपभ्रंश की आत्मजा है।" संस्थान की इस दृष्टि को कुछ अधिक शोधपरक बनाना चाहिए। **कौरवी** की जननी-भाषा की बात विवादास्पद है।

भाषा का निर्णय **शब्द** नहीं **पद** करते हैं, जो व्याकरण के क्षेत्र में आसन जमाते हैं। कौरवी में पुंलिंग ऋजु रूप **लौन्डा, लौन्डे, लोट्टा, लोट्टे** और स्त्रीलिंग ऋजु रूप **आँक्खीं, आँक्खें** प्रचलित हैं। बहुवचनीय प्रत्यय क्रमशः-ए और—एँ हैं। इन प्रत्ययों की टटोल मैंने बहुत की। मुझे इनके स्रोत न शौरसेनी प्राकृत में मिले, और न अपभ्रंश में। हेमचन्द्र का व्याकरण, और 'सन्देश-रासक' आदि कई अपभ्रंश के ग्रंथ देख लिये। यदि आपके संस्थान को कुछ मिला हो, तो कृपया सूचित करके अनुगृहीत करें। आभारी होऊँगा। खड़ी बोली हिन्दी की वह मूल अपभ्रंश कोई भिन्न भाषा होनी चाहिए।

यदि संस्थान मेरठ ज़िले की सब जातियों की बोलियों का व्याकरण तैयार करा सके, तो अद्भुत कार्य होगा। आपके लेख **लोक-कला** में यह वाक्य पढ़-कर मैं एक दम फड़क उठा—**यह अजन्ता की कला नहीं, जनता की कला है।** **डा० जयदेव विद्यालंकार** का लेख गम्भीर शोध का सूचक है, किन्तु दो-एक स्थल अशुद्ध छप गये हैं। आप अपनी सहायता के लिए एक अच्छा-सा सहयोगी लें। हर्ष है आप सानंद हैं। क्षमा-याचना सहित उत्तरापेक्षी,

डा० कृष्णचन्द्र शर्मा, आपका
रामवाटिका, शिवाजी मार्ग, मेरठ (उ० प्र०) **अम्बाप्रसाद 'सुमन'**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रो० रामसुरेश त्रिपाठी के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक १०. ६. ७७ ई०

संमान्य बन्धुवर त्रिपाठी जी,

सादर-सप्रेम नमस्कार !

आपका पत्र यथासमय मिल गया था। तदर्थ हार्दिक धन्यवाद !

आपने जो **समवायी** और **असमवायी** कारणों की बात लिखी है, वह तो ठीक ही है। समवायी कारण को ही तो 'उपादान कारण' कहा जा सकता है। सारांश यह हुआ कि वैशेषिक दर्शन जिसे 'उपादान कारण' बतलाता है, वही **'समवायी कारण'** है अर्थात् नित्य सम्बन्धी एवं अविच्छेद्य कारण। जो नित्य सम्बन्धी नहीं; उसे **असमवायी कारण** माना जाएगा। अतएव **निमित्त कारण** को हम असमवायी कारण कह सकते हैं। इस तरह असमवायी कारण अनेक भी हो सकते हैं ? असमवायी कारणों का शास्त्रीय वर्गीकरण मेरे देखने में नहीं आया। मैं अपनी बात इस तरह रखना चाहता हूँ—

कुम्भकार और घट के प्रसंग में समस्या का समाधान इस प्रकार किया जा सकता है—(१) **कुम्भकार**–कर्तृकारण (साधक कारण), (२) **चाक**–असमवायी साधन कारण, (३) चाक का **डंडा** और चाक की **डोरी**–असमवायी साधन कारण (४) **मिट्टी**–समवायी साधन कारण (उपादान कारण), (५) **घट**–कार्य (साध्य)। इनमें सभी साधनभूत कारण **निमित्त कारण** हैं।

सारांश यह कि **'घट'** कार्य है और शेष पूर्ववर्ती अस्तित्व कारण हैं। इन कारणों में चाक, चाक का डंडा और चाक की डोरी निमित्त कारणों में माने जाएँगे। कुम्भकार जो कर्तृ कारण है, वही 'घट' के लिए मुख्य है। अतः 'घट' के निर्माण में दो कारण ही विशेष ठहरते हैं—(१) असमवायी कर्तृकारण कुम्भकार (२) समवायी साधन कारण या उपादान कारण **मिट्टी**। मिट्टी और घट में अविच्छेद्य सम्बन्ध है।

श्रीकृष्ण गीता में युद्ध-पराङ्मुख अर्जुन से कहते हैं—

मयैवैते निहताः पूर्वमेव,
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ! —(गीता ११/३३)

महाभारत युद्ध कार्य है। इस कार्य के कर्तृकारण **श्रीकृष्ण** हैं। **अर्जुन** अपने को साधक-रूप कर्तृकारण समझ रहा है, यही तो उसकी भूल है। इस भूल को दूर करने के लिए श्रीकृष्ण उसे समझाते हैं, और कहते हैं कि "हे अर्जुन !

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तू साधक **कर्तृकारण** नहीं है, साधनभूत **निमित्त** कारण है; जैसे चाक, डंडा, डोरी आदि हैं घट के प्रसंग में। बिना चाक, डंडा और डोरी के भी कुम्भकार घड़ा बना सकता है। घड़े के निर्माण में मुख्य कारण तो कुम्हार ही माना जाएगा। अन्य साधनभूत कारण तो गौण हैं।"

अर्जुन को जो व्यर्थ या **कर्तृत्व अहं** हो गया है, भगवान् श्रीकृष्ण उसे ही मिटाना चाहते हैं, और उसे स्वाभाविक स्वधर्म में लगाना चाहते हैं। स्वधर्म अर्थात् क्षत्रिय का करणीय कर्म।

अर्जुन ने युद्ध करने में और उसके फल को भोगने में अपने को ही कर्तृकारण समझ लिया था। यही उसका अहं था। उसी अहं को मिटाना अभीष्ट था। अहं तब मिटता है, जब अहंभावी व्यक्ति सर्वतोभावेन अपने को परमशक्तिमान् परमेश्वर को अर्पित कर देता है। अर्जुन को निमित्तमात्र बताकर श्रीकृष्ण उसके मिथ्या अहं का नाश करना चाहते हैं।

'निमित्तमात्र' का यही अर्थ मैं समझता हूँ। आप यदि मेरे मत से सहमत न हों, तो कृपया अपनी राय मुझे स्पष्टतः लिखने का कष्ट करें। धन्यवाद!

आशा है परमेश की दया से अब आप स्वस्थ होंगे। उदर-विकार को दूर करने के लिए गेहूँ का दलिया कुछ दिन खाइए। मैं कलेऊ में प्रति दिन दलिया लेता हूँ। शरीर से लाभ अनुभव कर रहा हूँ।

आप दोनों को हम दोनों का नमस्कार। सस्नेह,

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

प्रो० रामसुरेश त्रिपाठी, डी० लिट्०
अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग,
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

श्री श्यौदान सिंह के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ०प्र०)
दिनांक ९. ८. १९७७ ई०

प्रियवर श्यौदानसिंह,

आशीर्वाद।

तुम्हारा पत्र परसों प्रातः की डाक से मिला था। तुमने **डा० वासुदेवशरण अग्रवाल की भाषा में शब्द-संयोजना के स्वरूप को जानने की इच्छा अपने पत्र में व्यक्त की है।**

प्रियवर श्यौदानसिंह! समादरणीयवर **डा० अग्रवाल जी** मेरे पी-एच० डी० शोध-प्रबन्ध के निर्देशक थे। मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूँ कि माता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीणापाणि के आशीर्वाद से मुझे डाक्टर अग्रवाल जी जैसे गुरुवर मिले। वे जन्म और जाति से अग्रवाल वैश्य थे, लेकिन ज्ञान और कर्म से ब्रह्मर्षि थे। विद्या की धरित्री पर उन्हें वेदव्यास की परम्परा का प्रख्यात पुरोधा कहना ही समीचीन है। वैदिक साहित्य से लेकर लोक-साहित्य तक उनके ज्ञान का रथ जिस गति से चलता रहा, उसकी लीकें संस्कृति, साहित्य कला और भाषा की भूमियों पर अमिट रहेंगी। उनकी ज्ञान-गरिमा और विद्वत्ता की ऊँचाई के आगे उनके नाम के साथ डाक्टर शब्द बहुत छोटा और हलका लगता है। वे वास्तव में मनीषी, ज्ञानमूर्ति, वाचस्पति और मेधावी विद्वद्वरेण्य थे। वे कपिल, कणाद जैसे ऋषियों के सच्चे उत्तराधिकारी थे। उनका जन्म ही ज्ञान की तपश्चर्या के लिए हुआ था। मैंने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया था और उनके ज्ञान की ऊँचाई का अनुभव किया था। वे ज्ञान के सचल विश्वकोश थे। वे परम ब्रह्मण्य थे। मैंने अनेक बार उनके चरण-स्पर्श के लिए प्रयत्न किये, किन्तु उन्होंने पाँव नहीं छुलाए। छूते समय वे पाँवों को अपने हाथों से ढक लेते थे। अध्ययन, मनन, चिन्तन और लेखन ही उनका जीवन था। उनका श्वास-प्रश्वास भी वही था। उन्होंने जिस विषय को छू दिया, वही कुन्दन बन गया।

महाभाष्यकार पतंजलि ने लिखा है—**एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति**—इसकी साधना में अग्रवाल जी सदा संलग्न रहे। शब्द-ब्रह्म की उपासना करते-करते शब्द की अर्थ-ज्योति के दर्शन जितनी सूक्ष्मता और स्पष्टता के साथ वे कर सके, संभवतः ऐसा भविष्य में विरला ही कर सके।

संस्कृति, धर्म, आचार आदि के सम्बन्ध में जब वे कुछ लिखते थे, तो लगता था कि कोई वैदिक ऋषि स्वयं अपने मंत्रों की व्याख्या कर रहा है। संस्कृत और हिन्दी में उनका स्थान मीमांसकों की शाखा में आता है। किसी शब्द के जितने पर्यायवाची होते हैं, उन सबको डा० अग्रवाल जी जानते थे; किन्तु प्रसंग के अनुसार कौनसा शब्द कहाँ उपयुक्त रहेगा, इसकी असली पहचान उन्हें थी। **गरुड़** और **वैनतेय** में, **पंकज** और **सरोज** में, **शिव** और **रुद्र** में तथा **प्रणाम** और **नमस्कार** में जो अर्थ-भेदक रेखाएँ हैं, उनको डा० अग्रवाल जी की बुद्धि तुरन्त पकड़ लेती थी। अर्थ और भाव को गहराना तथा प्रभावी बनाना उनकी लेखनी अच्छी तरह जानती थी।

उनकी हिन्दी-वाक्य-रचना वैदिक-**मंत्र** रचना थी। वे जब बोलते थे, लगता था कि वैदिक ऋषि बोल रहा है। उनके मन के अर्थ को उनके शब्द बहुत अधिक बतला देते थे। शब्द और अर्थ के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अर्थ का साक्षात्कार ज्ञान का सार और साहित्य का अंतिम फल है। हे मनीषियो ! मन से इस अर्थ को पूछो और रस के दिव्य स्वाद को प्राप्त करो।"

शब्द के अर्थ पर बहुत गहराई के साथ विचार करके भेदक रेखाओं को को पकड़ना डा० अग्रवाल जी पूरी तरह जानते थे।

जल्दी शब्द अर्थ में गति-सूचक भी है और कालसूचक भी। हमें हिन्दी में गति-सूचक अर्थ में **शीघ्र** और काल-सूचक अर्थ में **अविलम्ब** लिखना चाहिए।

शब्द की व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या और उसके इतिहास को बताते समय तो अग्रवाल जी की वाक्य-रचना इतनी सरस और प्रभावक बन जाती है कि उस शब्द-व्याख्या में काव्य का-सा आनंद आने लगता है। व्याकरण और निरुक्त को ललित साहित्य के रूप में प्रस्तुत करना कोई डा० अग्रवाल जी की भाषा-शैली से सीख ले।

वाक्य-रचना में तत्सम शब्दावली के बीच में जनपदीय शब्द का सहज एवं अर्थवाही प्रयोग किस तरह किया जाता है, इसे तुम जानना और सीखना चाहते हो, तो डा० अग्रवाल जी के **माताभूमि, कला और संस्कृति** और **उरु-ज्योति** नामक निबन्ध-संग्रहों को ध्यानपूर्वक पढ़ो। उनमें उनकी शब्द-संयोजना की कौशलमयी कला का परिचय प्राप्त होगा। शेष कभी मिलन के क्षणों में।

श्री श्यौदानसिंह, एम० ए० शुभैषी
स्थान व पो०—पड़ील अम्बाप्रसाद 'सुमन'
जि०—अलीगढ़ (उ०प्र०)

डा० कृष्णचन्द्र गुप्त के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक १५. १०. १९७७ ई०

प्रियवर कृष्णचन्द्र जी,

आपका पत्र उसी प्रश्न की विस्तृत व्याख्या की जिज्ञासा लिये हुए है, जिससे सम्बद्ध हम दोनों की बातें यहाँ घर पर हुई थीं। आपके पत्र में प्रथम प्रश्न तो यह है कि 'यश' और 'कीर्ति' **शब्दों के अर्थों में क्या अन्तर है ? द्वितीय प्रश्न है कि निम्नांकित दोहे का क्या अर्थ है—**

"गिरा अरथ जल बीचि सम, कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न।।"

(रामचरितमानस, बाल०, दो० १८/-)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) **प्रथम प्रश्न का उत्तर**—एक शब्द 'ऐश्वर्य' या 'वैभव' है। 'वैभव' के लिए वेद में '**राय**' शब्द प्रयुक्त किया गया है। वैदिक ऋषि ने परमेश से प्रार्थना की है कि "हे परमात्मन् ! हमें वैभव के लिए शुभ कर्मों में लगाते हुए सुमार्ग पर ले चलिए"—

"अग्ने ! नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुयानि विद्वान्... ।"
(यजुर्वेद)

'वैभव' (राय) में कीर्ति और यश समाविष्ट रहते हैं। किसी मनुष्य की सुख्याति का नाम '**यश**' है। जब यश विस्तृत और उच्च बनकर चमकता है, तब उस दीप्ति को '**कीर्ति**' कहते हैं। अर्थात् यश की दीप्ति का नाम 'कीर्ति' है।

झण्डे को '**ध्वजा**' भी कहते हैं। ध्वजा में एक दण्ड और एक पताका होती है। झण्डे के ऊपर लगा हुआ वस्त्र-खंड '**पताका**' कहलाता है; जिसे हवा हिलाती रहती है। '**पताका**' दण्ड के ऊपरी सिरे पर लगी रहती है। अर्थात् दण्ड + पताका = **ध्वजा**।

लक्ष्मण के यश को राम की वैभव-ध्वजा का 'दण्ड' और राम-कीर्ति को '**पताका**, समझना चाहिए। तुलसीदास जी ने लिखा भी है—

रघुबर कीरति बिमल पताका।
दंड समान भयउ जस जाका॥
(रामचरित०, बाल० १७/६)

(२) **द्वितीय प्रश्न का उत्तर**—तुलसीदास जी ने परस्पर समाविष्ट एक रूप सीताराम के चरणों की वंदना उक्त प्रस्तुत दोहे में व्यक्त की है—

तुलसीदास जी कहते हैं कि जिस तरह शब्द और अर्थ एक हैं और भिन्न-भिन्न भी; और जिस प्रकार जल और लहर एक हैं और भिन्न-भिन्न भी; उसी प्रकार सीता और राम एक हैं और भिन्न-भिन्न भी। जल और लहर तत्त्वतः एक हैं, लेकिन रूपतः दो हैं। उसी तरह सीताराम तत्त्वतः एक, किन्तु रूपतः दो हैं।

तुलसीदास जी के सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्म 'राम' एक शक्तिमान् हैं और 'सीता' उस ब्रह्म की 'शक्ति' हैं। शक्तिमान् और शक्ति एक ही हैं। शक्ति वास्तव में 'शक्तिमान्' में समाविष्ट रहती है, उससे पृथक् नहीं। अतः 'सीताराम' तत्त्वतः एक ही हैं। उन्हीं एक सीताराम के चरणों की मैं (तुलसी) वंदना करता हूँ।

तुलसी अलग-अलग सीता और राम की वंदना रूपतः दो मानकर भी करते हैं, लेकिन 'सीताराम' की वंदना तत्त्वतः एक मानकर भी करते हैं। सीता-राम = सीता और राम। सीताराम = सीताराम (सीतारूपराम, रामरूपसीता) अर्थात् एक सीताराम। ऐसे सीताराम (एक भी और दो भी) के चरणों की वंदना करता हूँ, जिन्हें (जिन सीताराम को) दुःखी परम प्रिय हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंडित विजयानंद त्रिपाठी ने रामचरितमानस पर एक टीका 'विजया टीका' के नाम से सन् १९५५ ई० में प्रकाशित करायी थी। उसमें उपर्युक्त दोहे के अर्थ पर प्रकाश डाला गया है।

तुलसीदास शब्दों के महान् मर्मज्ञ हैं। कोई शब्द लोक और साहित्य में किन-किन अर्थों में प्रयुक्त होता है, इसे कवि-शिरोमणि तुलसीदास अच्छी तरह समझते हैं। प्रायः सामान्य पाठक यह समझते हैं कि **मधुर** शब्द का अर्थ **मीठा** है। इससे हमारे मानस-पटल पर केवल आस्वाद्य बिम्ब बनता है; किन्तु **मानस** में तुलसी **मधुर** शब्द का प्रयोग **चाक्षुष बिम्ब** और **श्रोतव्य बिम्ब** के रूप में भी करते हैं—

मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेखी॥

(रामचरितमा०, बाल० २१५/८)।

मधुर मधुर गरजइ घन घोरा। (रामच० लंका० १३/२)

प्रियवर गुप्त जी! कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग ने जब शोध-संगोष्ठी करायी थी, तब आपसे तथा डा० विश्वनाथ मिश्र से मेरी भेंट हुई थी। डा० रामेश्वरलाल खंडेलवाल और डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' (अब स्वर्गगत) के साथ वार्तालाप के बीच आपसे भी 'मानस' पर ऐसी ही शब्द-चर्चा चली थी। याद होगा! सस्नेह,

डा० कृष्णचन्द्र गुप्त आपका

१८६/१२ आर्यपुरी, मुजफ्फरनगर (उ०प्र०) अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० शिवकुमार शाण्डिल्य के नाम

शिविर, मथुरा

प्रियवर शाण्डिल्य, **दिनांक १०. ११. १९७७ ई०**

आशीर्वाद!

तुम्हारे पत्र में उल्लेख है कि **भाषा विज्ञान की पुस्तकों में प्रायः अरबी-फ़ारसी के शब्दों को एक साथ लिख दिया गया है। हिन्दी में अनेक विदेशी शब्द हैं, जो मूलतः अरबी के हैं। फिर किस तरह जाना जा सकता है कि अमुक शब्द अरबी का ही है, फ़ारसी का नहीं है?**

प्रियवर शाण्डिल्य! कुछ सामासिक शब्द तो ऐसे होते भी हैं, जो अरबी-फ़ारसी—दोनों भाषाओं से बने होते हैं; जैसे **ग़रीबनवाज़**। इसका पूर्वांश **ग़रीब** अरबी का, और उत्तरांश **नवाज़** फ़ारसी का है। **ग़रीबनवाज़**=दीन-दयालु। तुलसीकृत **'कवितावली'** में **गरीबनिवाज** शब्द का प्रयोग हुआ है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम गरीबनिवाज भए हौं गरीबनिवाज, गरीबनिवाजी ।

(कवितावली, उत्तर०, छंद ६५)

व्रजभाषा में **निवाजी**=फा० **नवाज़िश** (=दयालुता)

तुम पहले **फ़ारसी लिपि** की वर्णमाला सीख लो । उस वर्णमाला में निम्नांकित वर्णों का उच्चारण और लेखन विशेष रूप से सीख लो- से ث; बड़ी हे ح; स्वाद ص; ज़्वाद ض; तोइ ط; ज़ोइ ظ; ऐन ع; ग़ैन غ; क़ाफ़ ق— ये अरबी ध्वनियाँ हैं ।

फ़े ف और ख़े خ ध्वनियाँ फ़ारसी की हैं । एक शब्द फ़राख़ فراخ है । इसमें केवल **फ़े, रे, अलिफ़** और **ख़े** ध्वनियाँ हैं । इसमें अरबी सूचक कोई ध्वनि नहीं; इसलिए **'फ़राख़'** फारसी भाषा का शब्द है । इसका अर्थ है **विशाल** अर्थात् लम्बा-चौड़ा । **'फराक'** रूप में तुलसीदास जी ने 'रामचरितमादस' में इसे प्रयुक्त किया है— **"दूरि फराक रुचिर सो घाटा ।"** (उत्तर० २६/१)

उपर्युक्त ध्वनियाँ जिन शब्दों के आदि में आती हैं, वे मूलतः अरबी भाषा के शब्द हैं । यह बात अलग है कि हिन्दी में उनका उच्चारण अपने ढँग से किया जाता है । यदि तुमसे नस्तालीक़ या फ़ारसी-लिपि में उनका सही लिखना आता है, तो तुम आसानी से समझ लोगे कि वे शब्द जिनमें उपर्युक्त ध्वनियाँ हैं, अरबी के ही होंगे । **समर** ثمر ; **हक़ीक़त** حقیقت ; **हक़** حق ; **हलाल** حلال ; **हलवा** حلوا ; **हाजी** حاجی ; **हाकिम** حاکم ; **हकीम** حکیم ; **हाजत** حاجت ; **हाल** حال; **हालत** حالت; **हमल** حمل आदि शब्दों में बड़ी 'हे' है । अतः ये अरबी के शब्द हैं ।

इसी प्रकार अन्य ध्वनियों से युक्त शब्दों को भी अरबी का मानना चाहिए । **सबक़** صبق ; **सब्र** صبر ; **सलाह** صلاح ; **साबुन** صابن ; **साहब** صاحب ; **सुबह** صبح ; **ज़रूर** ضرور ; **ज़रब** ضرب ; **सतह** سطح ; **तय** طے ; **तरी** طری ; **तूफ़ान** طوفان ; **ज़ालिम** ظالم ; **ज़ाहिर** ظاهر ; **अक़्ल** عقل ; **आलिम** عالم ; **अजीब** عجیب ; **आम** عام ; **ग़रीब** غریب ; **ग़रज़** غرض ; **ग़ाफिल** غافل ; **ग़ुलाम** غلام ; **क़त्ल** قتل ; **क़व्वाल** قوّال ; **क़लम** قلم ; आदि शब्द अरबी भाषा के ही हैं ।

इसी प्रकार शब्द के आदि में उक्त ध्वनियाँ देख लीजिए और फिर अरबी से आगत मानकर उन्हें विदेशी शब्दों में लिख लीजिए ।

हिन्दी भाषा ने तो अरबी-फ़ारसी के शब्दों को ही लिया है । उर्दू ने तो अरबी-फ़ारसी के शब्दों के साथ-साथ अरबी-फ़ारसी का व्याकरण भी स्वीकार कर लिया है और लेखन में फ़ारसी लिपि भी ग्रहण की है । इन्हीं बातों से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी उर्दू से अलग-सी मानी जा रही है, अन्यथा उर्दू तो हिन्दी की एक शैली ही है।

उर्दू अरबी-फ़ारसी के सामासिक शब्दों को खूब अपनाती है। कुछ उर्दू-लेखक **मकानों** न लिखकर **मकानात** और **माँ-बाप** या **माता-पिता** न लिखकर अरबी के व्याकरणानुसार '**वाल्दैन**' लिखना ज्यादा पसन्द करते हैं। सम्बन्ध तत्पुरुष समास में उर्दू या तो फ़ारसी-व्याकरण पर आधारित '**नूरे नबी**' लिखेगी, या अरबी के ढँग पर **नूरुलहसन** लिखेगी। उर्दू के लेखक **मर्दों की हिम्मत** लिखने में घटियापन मानते हैं। प्रायः **हिम्मते मर्दां** ही लिखते हैं। जैसे-जैसे उर्दू अरबी-फ़ारसी के व्याकरण की ओर बढ़ती गयी, यह हिन्दी से धीरे-धीरे अलग होती गयी और प्राणों में अभारतीय पृथक् सांस्कृतिक तत्त्व भी समाविष्ट करने लगी।

अरबी-फ़ारसी-शब्दों के सम्बन्ध में अधिक गहराई से अध्ययन करने की इच्छा हो, तो '**स्टाइनगास**' की अरबी-फ़ारसी-डिक्शनरी की सहायता लीजिए। एक उर्दू-हिन्दी शब्द-कोश, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ से प्रकाशित हुआ है, जिसके संकलनकर्ता एवं संपादक **श्री मुहम्मद मुस्तफ़ा ख़ाँ 'मद्दाह'** हैं। उसे ख़रीद लीजिए। बहुत काम का है; सस्ता भी है। अरबी-फ़ारसी के शब्दों के अध्ययन में ज़बर-ज़ेर-पेश का ख़याल रखना बड़ा ज़रूरी है। **ग़ुसुल** और **ग़ुस्ल** में अर्थ-भेद है। 'ग़ुसुल'=सिर से पाँव तक का पूरा स्नान। 'ग़ुस्ल'=आधा या पूरा सादा स्नान, मामूली स्नान मात्र। **ग़ज़ल**=काव्य-रूप। **ग़ज़ल**=रस्सी। **ज़बान**=जीभ। **ज़ुबान**=भाषा।

प्रियवर शाण्डिल्य! अध्ययन, अध्यापक की संपत्ति है; पूँजी है। अध्ययन के बिना अध्यापक देवालिया है। अध्ययन का व्रत लेकर भी जिसने अध्ययन के महत्त्व और रस को नहीं जाना, उस अधीती के लिए शोक है; वह जीवन्मृत है।

सस्नेह,

डा० शिवकुमार शाण्डिल, पी-एच० डी०
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ० प्र०)

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० दर्शनसिंह के नाम

हिन्दी-शोध-संस्थान,
हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१
दिनांक ३०–११–७७ ई०

प्रिय भाई दर्शनसिंह जी,

आपका दिनांक २८/११/७७ का अन्तर्देशीय पत्र पढ़कर प्रसन्नता हुई। आपकी इच्छा पूरी हुई।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप **पंजाबी भाषा का इतिहास** लिख रहे हैं, प्रसन्नता है। शीघ्रता में विद्यार्थियों की दृष्टि से न लिखिए, पंडितों के लिए भी उसमें प्रामाणिक एवं तर्कपूर्ण सामग्री रहनी चाहिए।

पंजाबीभाषा किस अपभ्रंश से विकसित हुई है, इसकी खोज एवं ग्रंथ-उल्लेख बहुत सोच-समझ के साथ कीजिए। हेमचन्द्रीय अपभ्रंश में कितनी सामग्री मिलती है, इसकी भी छान-बीन करनी होगी। फ़ारसी के प्रभाव को भी देखना होगा। फ़ारसी के व्याकरण की भी जानकारी होनी चाहिए।

मूल दृष्टि इस बात पर रखिए कि भाषा के मूल, विकास और स्वरूप का निर्णय केवल शब्दों के आधार पर ही नहीं, पदरूपाधार पर भी करना चाहिए। ध्वनि-प्रक्रिया एक तत्त्व माना जा सकता है, किन्तु वास्तव में भाषा-स्वरूप का निर्णायक तत्त्व व्याकरण होता है। व्याकरण में क्रियापद, परसर्ग, सर्वनाम, अव्यय और लिंग-वचनीय प्रत्यय की दृष्टि से विवेचन-विश्लेषण कीजिए और निर्णय निकालिए।

पंजाबी में जो—**आँ** प्रत्यय बहुवचन में मिलता है, वह फ़ारसी-प्रभाव है या किसी अपभ्रंश का प्रभाव है—इसे देखना होगा। **मुंडा, मुंडे, मुंडाँ मुंडियाँ, कुड़ी, कुड़ियाँ** आदि संज्ञा शब्दों में बहुवचनीय प्रत्यय किससे प्रभावित है ? स्पष्ट होना चाहिए। विकास और प्रभाव किस पूर्ववर्ती भाषा का हो सकता है ?

अपभ्रंश भाषाओं का काल प्रायः ई० ५०० से १००० ई० तक माना जाता है। फ़ारसी से पंजाबी का सम्पर्क कब हुआ ? इसे इतिहास की दृष्टि से देखिए। तब बात ठीक स्पष्ट होगी। फारसी में **मर्द** مرد का बहुवचन **मर्दाँ** مرداں और **ज़न** زن का **ज़नाँ** زناں होता है। यह प्रवृत्ति **मुंडाँ** और **कुड़ियाँ** में भी पायी जाती है। पंजाबी में संस्कृत की भाँति संज्ञा के अनुसार विशेषण भी लिंग-वचन ग्रहण करता है। जैसे—**चंगियाँ कुड़ियाँ** हन। **चंगियाँ** विशेषण अपने विशेष्य **कुड़ियाँ** के अनुसार है। संस्कृत में भी यही प्रवृत्ति है—**नार्यः सुन्दर्यः सन्ति।** फ़ारसी के अतिरिक्त यदि किसी अपभ्रंश में ऐसी आँकारान्तता और विशेष्यानुगामी संज्ञा-प्रवृत्ति मिलती है, तो निश्चित रूपेण पंजाबी पर अपभ्रंश का प्रभाव मानना पड़ेगा।

अपभ्रंश के लिए तथा प्राकृत के लिए **पिशल** का **प्राकृत-व्याकरण** बहुत ध्यान से पढ़िए। परिणाम निकालिए। मैं तो पंजाबी भाषा की व्याकरणिक आत्मा को नहीं समझता। आप गहरे पानी पैठिए और मोती निकाल कर लाइए।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान्य रूप से भाषा-शास्त्रियों ने **पालि, प्राकृत** और **अपभ्रंश**—तीनों को ही **प्राकृत** कह दिया है। वास्तव में पालि के उपरान्त जिस भाषा का विकास हुआ, उसका नाम **प्राकृत** है। इसे **द्वितीय प्राकृत** भी कहते हैं। पालि में संस्कृत की ध्वनियों में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ। **चाँदी** के अर्थ में सं० **रजत**, पालि में भी **रजत** ही रहा। लेकिन शौरसेनी प्राकृत में **रअद** हो गया था। द्वितीय प्राकृत में स्वरीभवन आरम्भ हो गया था। पालि का **लोक** शब्द शौरसेनी प्राकृत में **लोअ** हो गया था।

हर्ष है सपरिवार सानंद हैं। यदि संभव होगा, तो भविष्य में मैं संस्कृत, अपभ्रंश और पंजाबी के संज्ञा-क्रिया-रूपों पर विचार करूँगा।

बच्चों को आशीर्वाद। सस्नेह,

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० दर्शनसिंह, पी-एच० डी०,
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
गवर्नमेण्ट डिग्री कालेज, होशियारपुर (पंजाब)

डा० गेंदालाल शर्मा के नाम

शिविर, मथुरा
दिनांक १. १. १९७८ ई०

प्रियवर गेंदालाल शर्मा,

आशीर्वाद !

तुम्हारे पत्र से विदित हुआ कि तुम **भाषाविज्ञान में 'श्रुति' और 'अपश्रुति' की अवधारणा स्पष्ट करना चाहते हो।**

मैं जब सन् १९५७ ई० में अलीगढ़ विश्वविद्यालय में आया ही था, तब **'अपश्रुति'** दो-तीन दिन तक विशेष चर्चा का विषय बनी रही थी।

जिन महानुभाव से जो चर्चा चली थी, उसका मूलाधार श्री भोलानाथ जी तिवारी की 'भाषाविज्ञान' पुस्तक थी, जिसमें **'अपिश्रुति'** शब्द छप गया था। तब मैंने श्री भोलानाथ तिवारी को उस सम्बन्ध में एक पत्र भी लिखा था। उनका उत्तर भी आया था।

भाषाविज्ञान का पारिभाषिक **'श्रुति'** शब्द संगीतशास्त्र से गृहीत है। संगीत के स्वरों में जब हम एक स्वर (जैसे **स**) से दूसरे स्वर (जैसे **रे**) पर आते हैं, तब प्रथम स्वर की समाप्ति के बाद और द्वितीय स्वर के प्रारम्भ से पहले जो संसर्पण-ध्वनि (चलध्वनि) होती है, उसे **श्रुति** कहते हैं।

प्रत्येक स्वर में दो श्रुतियाँ अवश्य होती हैं। षड्ज में दो श्रुतियाँ हैं। प्रारंभिक **'स'** की स्वर-स्थिति अन्तिम स्वर-स्थिति से भिन्न होती है। इसी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिन्नता के कारण **'स'** का पूर्वांश **प्रथम श्रुति**, उत्तरांश **द्वितीय श्रुति** है। अतः 'श्रुति' वस्तुतः स्वरांश है।

संगीत में इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति अत्यन्त कठिन है। हिन्दी में **'य्' 'व्' ऐ (अइ)** और **औ (अउ)** के उच्चारण में भाषाविज्ञान की श्रुति को समझा जा सकता है। श्रुति ध्वनि (Gliding Sound) मूल ध्वनि नहीं होती। इसलिए छन्द की मात्रा-गणना में इसकी मात्रा नहीं गिनी जाती। ब्रजभाषा में सामान्य-भूतकाल में **'करौ'** और **'कर्‌यौ'** क्रियाएँ प्रचलित हैं। **'कर्‌यौ'** में 'य्' श्रुति है। **'करौ'** और **'कर्‌यौ'** में मात्राएँ तीन-तीन ही हैं। 'य्' की कोई मात्रा नहीं है। अतः **श्रुति** एक संसर्पण-ध्वनि है।

तुम तो ब्रजभाषा-प्रेमी हो और ब्रजभाषा अपने घर में बोलते भी हो। तुम्हें मालूम होगा कि अलीगढ़ की तहसील कोल में बोला जाता है—**"छोरा नैं कामु करौ है"**। इसे ही तहसील इगलास में और मथुरा की तहसील माट में **"छोरा नैं कामु कर्‌यौ है"**, बोलते हैं। माट श्रुतिप्रिय है।

'अपश्रुति' के लिए अंग्रेज़ी में Vowel Gradation भी कहते हैं। इसे जर्मन भाषा में Ablaut कहा जाता है। किसी शब्द में स्वर-परिवर्तन से जब अर्थ-परिवर्तन हो जाता है, तब उस स्वर-परिवर्तन को 'अपश्रुति' कहते हैं—Run (=दौड़ो), Ran (=दौड़ा) में स्वर के परिवर्तन से अर्थ बदल गया है। हिन्दी में **'मेल'**, **'मेला'** और **मिला'** में व्यंजन तो समान हैं, किन्तु स्वरों में भिन्नता है। इस स्वर-परिवर्तन के कारण ही अर्थ-परिवर्तन हो गया है। अतः **अपश्रुति** का अर्थ हुआ 'स्वर ध्वनि का परिवर्तन' जो अर्थ-परिवर्तन कर देता है।

संस्कृत में **'भक्त'** (=जातिवाचक संज्ञा) और **'भक्ति'** (भाववाचक संज्ञा) में अर्थ-भेद है। अरबी के **'क़त्ल'** (काटना) और **'क़ातिल** (काटनेवाला) में अर्थ-भेद है। हैमेटिक परिवार की एक भाषा में **'गल्'** का अर्थ है **'भीतर जाना'**; लेकिन **'गेलि'** का अर्थ है **'भीतर रखना'**। भारोपीय भाषाओं में तथा सैमेटिक और हैमेटिक भाषाओं में अपश्रुति की प्रवृत्ति मिलती है।

मेरा विश्वास है कि उपर्युक्त विवेचन से तुम्हें **'श्रुति'** और **'अपश्रुति'** की अवधारणाएँ स्पष्ट हो गयी होंगी। सब बच्चों को प्यार। सस्नेह,

डा० गेंदालाल शर्मा,　　　　　　　　　　　　　शुभैषी
प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग,　　　　　　　　अम्बाप्रसाद 'सुमन'
अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय अलीगढ़ (उ०प्र०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री रोशनलाल सुरीरवाला के नाम

हिन्दी-शोध-संस्थान
८/७, हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१

प्रिय भाई सुरीरवाला जी, दिनांक ३. २. १९७८ ई०

आपने पूछा है कि **'मौन'** और **'जल्पना'** में क्या अन्तर है ? **'मौन'** **'जल्पना से ऊँचा क्यों है ? दूसरी जिज्ञासा एक कहावत के सम्बन्ध में हैं ।**

प्रियवर ! **'जल्पना'** का अर्थ है 'ऊल-जलूल बकना', अनर्गल कथन, जिसमें दम्भ की भी दुर्गन्ध आती हो। 'मौन' का अर्थ है चुप रहना, चुप्पी । अतः **'मौन'** सदा **'जल्पना'** से तो ऊँचा ही माना जाएगा ।

ब्रजभाषा की कहावत **'आँधी आई, मेहु आयौ, बड़ी बहू कौ जेठु आयौ ।''** बहुत प्रसिद्ध कहावतों में से एक है । प्रश्न यह है कि बड़ी बहू का कोई जेठ तो होगा नहीं, सब देवर ही होंगे। फिर बड़ी बहू का जेठ कैसे आया ? कहावत में ऐसा असंगत कथन क्यों ?

वास्तव में आँधी के साथ जब मेह आया, तब जंगल में बड़ी बहू बड़ी परेशानी में पड़ गयी। आँधी के कारण उसकी आँखों में रेत के कण भरने लगे। उनसे बचाव करने ने लिए बड़ी बहू ने घूँघट काढ़ लिया। बड़ी बहू कभी घूँघट तो काढ़ती न थी। ऐसी स्थिति में लोकोक्ति बन गयी कि आँधी और मेह क्या आया, यह तो बड़ी बहू का जेठ ही बन गया कि बड़ी बहू को भी घूँघट काढ़ना पड़ा ।

हिन्दी में उच्चकोटि के हास्य साहित्य का अभाव है। मुझे विश्वास और आशा है कि आपकी कर्मठ लेखनी से उस क्षेत्र में पूर्ति होगी। माता वीणापाणि आपका मंगल करें। **'पत्नीशरणं गच्छामि'** पढ़ कर प्रसन्नता हुई। हार्दिक बधाई !

आशा है परमेश की दया से आप सपरिवार सानंद होंगे। सस्नेह,

श्री रोशनलाल सुरीरवाला, एम० ए० शुभैषी
पुस्तकालयाध्यक्ष, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
श्री वार्ष्णेय डिग्री कालेज, अलीगढ़ ।

श्री भजनलाल सोती के नाम

शिविर, मथुरा

मान्यवर श्री सोती जी, दिनांक २. ३. १९७८ ई०

सादर नमस्कार ।

आपने **करण** शब्द का अर्थ जानना चाहा है और तुलसीदास के **रामचरित-**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानस की अर्धाली **विषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता॥** (बाल०११७/५) **पर प्रकाश डालने के लिए भी लिखा है।**

करण शब्द सामान्यतया **साधन** और **इन्द्रिय** के अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'करण कारक' में **करण** शब्द का अर्थ 'साधन' है। जैसे—"हरी **कलम से** लिखता है।" वाक्य में लिखने की क्रिया का **कर्ता** 'हरी' और **साधन** 'कलम' है। अतः 'कलम' करण कारक है।

कुम्हार चाक, डंडे और मिट्टी से घड़ा बनाता है। घड़े के निर्माण में 'कुम्हार' कर्तृ कारण है। चाक और डडा करण कारण है। मिट्टी उपादान कारण है। करण कारण को ही निमित्त कारण भी कह देते हैं। यहाँ भी 'करण' शब्द 'साधन' के ही अर्थ में है। घड़े के निर्माण में चाक और डंडा 'साधन' ही हैं।

अब रही आपकी बात मानस की अर्द्धाली के शब्द **करण** के सम्बन्ध में। **बिषय करन सुर जीव समेता** में आये हुए **करन** शब्द का अर्थ 'इन्द्रियाँ' है।

इन्द्रियाँ मूलतः दो प्रकार की होती हैं—(१) **बाह्य इन्द्रियाँ** (२) **अन्तः इन्द्रियाँ।** बाह्य इन्द्रियों को बाह्य करण और अन्तः इन्द्रियों को अन्तःकरण कहते हैं।

बाह्य करणों में पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। कर्मेन्द्रियों में **मुख, हाथ, पाँव, गुदा** और **उपस्थ** हैं। ज्ञानेन्द्रियों में **आँख, कान, नाक, जिह्वा** और **त्वचा** हैं। ये दसों इन्द्रियाँ बाह्य करण हैं। **मन, बुद्धि, चित्त** और **अहंकार** अन्तःकरण हैं। ये चार अन्तःकरण वेदान्त के अनुसार हैं। सांख्यानुसार तीन अन्तःकरण हैं—(१) **अहङ्कार** (२) **बुद्धि** (३) **मन**। पातंजल योग दर्शन के 'चित्त' में सांख्य के तीनों अन्तःकरणों को समाविष्ट समझना चाहिए।

उक्त चौदहों इन्द्रियों (करणों) के अलग-अलग देवता हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) मुख का देवता **अग्नि** (२) हाथों का देवता **इन्द्र** (३) पाँवों का देवता **उपेन्द्र** (४) गुदा का देवता **प्रजापति** (५) उपस्थ का देवता **मृत्यु** (६) आंखों का देवता **सूर्य** (७) कानों का देवता **दिक्पाल** (८) नाक के देवता **अश्विनी-कुमार** (९) जिह्वा का देवता **वरुण** (१०) त्वचा का देवता **वायु** (११) मन का देवता **चन्द्रमा** (१२) बुद्धि का देवता **ब्रह्मा** (१३) चित्त का देवता **विष्णु** (१४) अहंकार का देवता **रुद्र**।

अन्तःकरणों में अहंकार, बुद्धि, मन और चित्त नाम के करणों के देवताओं का संकेत लंकाकाण्ड में मन्दोदरी की वाणी के माध्यम से तुलसीदास जी ने भी किया है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहंकार सिव बुद्धि अज, मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान ॥ (लंका०१५/–)

सचेत का अर्थ है ऊर्जा एवं चेतना सहित।

विज्ञान बतलाता है कि प्रत्येक पदार्थ में या प्राणी में ऊर्जा है। यह ऊर्जा चेतनामयी होकर बढ़ती जाती है। विषय से अधिक चेतन ऊर्जा इन्द्रियों में, इन्द्रियों से अधिक उनके देवताओं में और उनके देवताओं से अधिक जीवात्मा में है। इस सबको प्रकाशित करने-वाला परम प्रकाशक एक परमात्मा है, वही अवधपति राम हैं। अर्थात् 'राम' सर्वप्रकाशक अनादि ब्रह्म हैं। **बिषय करन सुर जीव समेता** में तुलसीदास यही कहना चाहते हैं। **करन**=इन्द्रियाँ।

प्रारम्भ में उपर्युक्त अर्धाली का स्पष्ट अर्थ मैं नहीं समझता था? इसकी स्पष्ट जानकारी मुझे अपने मित्र डा० गोवर्धननाथ शुक्ल से हुई थी। उनके साथ मानस पर विचार-विनिमय चलता रहता है। मेरे मित्र शुक्ल जी ने **मानस** का अच्छा मंथन किया है।

परम हर्ष है आप परमेश की दया से सानंद हैं। अधिक क्या लिखूँ? आप तो श्रोत्रिय हैं। श्रोत्रिय ब्राह्मण चारों वेदों के ज्ञाता होते थे; अतः सर्वोच्च माने जाते थे।

आपको पत्र लिखते समय वे दृश्य और वे बातें भी याद आ गयीं, जब हम दोनों, आपके जीजा जी (मेरे नाना जी) **पं० लक्ष्मीनारायण जी गौड़** पोस्टमास्टर के साथ, कटरा मोहल्ले में रहा करते थे। हम दोनों धर्मसमाज कालेज के विद्यार्थी थे। आप अपनी बात अपने बारे में जानते ही होंगे। मैं अपनी सच्ची बात बता दूँ; यदि खैरवाले नाना जी (पं० लक्ष्मीनारायण गौड़) मुझे तब प्रश्रय न देते, तो मैं आज डी० लिट्० न हो पाता। यह उनका ही आशीर्वाद है। खैर, अब जब उनके दर्शन करता हूँ, तब वह सब स्मरण हो आता है। सस्नेह,

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री भजनलाल सोती,
आबकारी इंस्पेक्टर,
मोहल्ला बराही, अलीगढ़—२०२००१

डा० गिरिराजकिशोर शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ०प्र०)
दिनांक २. ३. १९७८ ई०

प्रियवर भाई शर्मा जी,

सप्रेम नमस्कार !

आपका पत्र परसों मिला है। आज आपके प्रश्न का उत्तर लिख रहा हूँ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपने **'श्रीरामचरितमानस'** में आये हुए **'उमा'** और **'पार्वती'** शब्दों का अर्थ **तुलसीदास जी के दृष्टिकोण से जानने की इच्छा व्यक्त की है।**

प्रिय बन्धु ! वैसे तो देश और काल का प्रभाव शब्दों के अर्थों में परिवर्तन लाता ही है; फिर भी कवियों की अपनी दृष्टि से भी कुछ शब्दों के विशिष्ट अर्थ उनके काव्य विशेष में रहा करते हैं। उन शब्दों के अर्थों पर ध्यान देना पड़ता है—कवि का मंतव्य प्रसंगानुसार समझना पड़ता है।

भाई गिरिराज जी ! आप तो अर्थशास्त्री होने के साथ-साथ काव्यमर्मी और रसज्ञ भी हैं। **'शब्द'** अपने साथी शब्दों के साथ अर्थ बदल लेता है। अकेला शब्द **'लक्ष्मी'** जो अर्थ देता है, वह अर्थ **'गृह लक्ष्मी'**, **'महादेव लक्ष्मी पार्वती'**, **'लक्ष्मी पूजन'** के **'लक्ष्मी'** शब्दों में बदल गया है। **'औरत औरत** ही तो है।' इस वाक्य के पहले **'औरत'** शब्द का अर्थ दूसरे **'औरत'** शब्द से भिन्न हैं। प्रसंग तो और भी अधिक अर्थ पर प्रभाव डालता है।

यद्यपि **'मौर'** शब्द संस्कृत के **'मुकुट'** शब्द से विकसित है, फिर भी अर्थ में दोनों भिन्न-भिन्न हैं। संस्कृत **'गर्भिणी'** शब्द से **'गाभिन'** का विकास है, लेकिन **'गाभिन'** में हेठा भाव है। निश्चित रूप से **'गाभिन'** के अर्थ में अर्थापकर्ष है। **'मुकुट'** माथे पर और **'मौर'** सिर के ऊपर बाँधा जाता है। दूल्हे के सिर पर आपने मौर देखा होगा। शंकर जी को उनके गण बरात के लिए जब सजाने लगे, तब गणों ने खूब शृङ्गार किया। पहले उनकी जटाओं का **मुकुट** बनाया, फिर जटाओं के ऊपर साँपों का **मौर** सजाया गया।

सिवहि संभु गन करहिँ सिँगारा। जटा मुकुट अहि मौरु सँवारा॥

—(मानस, बाल०, ९२/१)

'उमा' शब्दके व्युत्पत्तिमूलक अर्थ इस प्रकार हैं—(१) **उमा**=उ=शंकर; मा=लक्ष्मी अर्थात् शंकर की गृह-लक्ष्मी। (२) **उमा**=उं माति अर्थात् जो शंकर को मानती है। इसके अतिरिक्त कालिदास ने **'उमा'** का अर्थ किया है 'अरे नहीं।' जब पार्वती शंकर की प्राप्ति के लिए तपस्या करने के लिए तैयार हो गयीं, तब माता ने कहा—"हे पुत्री ! तपस्या मत कर।" इसीलिए उसका 'उमा' नाम पड़ गया—उ=हे, मा=मत=अरे नहीं।

उमेति मात्रा तपसो निषिद्धा पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम।

—(कुमार संभव, सर्ग १/२६)

लेकिन 'रामचरितमानस' के तुलसीदास दक्षतनया सती जी को 'उमा' और हिमाचल-पुत्री को 'पार्वती और 'उमा' कहते हैं। सती के भ्रम को दूर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने के लिए शंकर ने उन्हें राम-कथा सुनायी, पार्वती को भी सुनाते हैं। शंकर कथा सुनाने के समय पार्वती को भी 'उमा' सम्बोधन कर देते हैं। सती जी भी 'उमा' कही गयी हैं। अर्थात् उमा = सती; पार्वती।

सती जी ने जब सीता जी का वेष धारण किया हैं, तब तुलसीदास उस वेष को उमाकृत वेष लिखते हैं—

लछिमन दीख उमाकृत बेषा।
चकित भए भ्रम हृदयँ बिसेखा॥ (बाल० ५३/१)

लेकिन जब वही सती जी हिमाचल के यहाँ जन्म ले लेती है, तब उन्हें तुलसीदास 'पार्वती' नाम देते हैं। उनका एक नाम 'गिरिजा' भी है।

सती जी ने यज्ञ-कुण्ड में आत्मदाह करते समय भगवान् से यह प्रार्थना की थी कि शंकर जी ही मुझे पति रूप में प्राप्त हों। उसी संदर्भ में तुलसीदास जी लिखते हैं—

तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई।
जन्मीं पारबती तनु पाई॥ —(बाल० ६५/६)

हनुमान् के द्वारा लंका जलाई जाने पर शंकर कहते हैं—

ताकर दूत अनल जेहिं सिरजा।
जरा न सो तेहि कारन गिरिजा॥ —(सुन्दर० २६/७)

अतः मेरी राय में तुलसी जहाँ 'उमा' शब्द लिखते हैं, वहाँ तात्पर्य दक्षतनया सती और पार्वती—दोनों से है और पार्वती' या 'गिरिजा' जहाँ लिखते हैं, वहाँ उनका मंतव्य हिमाचल-पुत्री से है। 'पार्वती' को तुलसी 'उमा' भी लिखते हैं—

उमा कहउँ में अनुभव अपना। (रामचरितमानस, अर० ३९/५)
उर धरि उमा प्रानपति चरना।
जाइ बिपिन लागीं तपु करना॥ —(बाल० ७४/१)

भाई! आज-कल क्या 'मानस' के शब्दार्थ-प्रयोग की दृष्टि से अध्ययन चल रहा है? शब्दों के ऐतिहासिक अध्ययन में भी बड़ा आनंद आता है। उस आनंदामृत का अच्छी तरह पान कीजिए। शब्द ब्रह्म है और उसका अर्थानंद ही ब्रह्मानंद है। शेष फिर कभी।

याद है सन् ४८-४९ की, जब हम दोनों खेकड़ा में थे। वे दिन हम पर शनि की दशा के थे। आपका दिल्ली का जीवन जोधपुर के जीवन से अधिक अच्छा नहीं रहा, साहित्य-सर्जना की दृष्टि से। हाँ, पैसा अवश्य अधिक मिल रहा है आपको।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशा है सानंद होंगे । सब पुत्र-पुत्रियों को असीस । सस्नेह,

डा० गिरिराजकिशोर शर्मा, शुभैषी

पी-एच० डी० अम्बाप्रसाद 'सुमन'

49-C इरविन रोड (बाबा खड़गसिंह मार्ग), नई दिल्ली–११०००१

डा० सियाराम उपाध्याय एवं डा० गिरिराजकिशोर अग्रवाल के नाम

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' ८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१

डी० लिट्० दिनांक ३. ३. १९७८ ई०

प्रियवर,

आपने अपने सम्मिलित पत्र में मुझ से **एकाकी समापिका क्रिया और संयुक्त समापिका क्रिया का अन्तर पूछा है।** सियाराम जी ! आपकी ओर से भाषा-शास्त्र विषयक प्रश्न किया जाना तो स्वाभाविक है; किन्तु अग्रवाल जी को ऐसी जिज्ञासा कैसे हुई ?

प्रियवर-द्वय ! एकाकी क्रियापद एक धातु से निर्मित होता है । '**पढ़**', '**खा**' और '**सो**' अलग-अलग एक धातु है । इनसे क्रियाएँ बन सकती हैं—पढ़ा, खाया, सोया आदि । "लड़के ने ग्रंथ पढ़ा"; "गोपाल ने खाना **खाया**"; "वह रात भर सोया"—में क्रमशः **पढ़ा, खाया** और **सोया** एकाकी समापिका क्रियाएँ हैं ।

मान लीजिए एक वाक्य इस प्रकार है—

"कमला के लड़का **हो गया** ।"

इस वाक्य में '**हो गया**' संयुक्त समापिका क्रिया है । इस संयुक्त क्रिया में रूप की दृष्टि से दो क्रियाएँ हैं—(१) होना (२) जाना; लेकिन अर्थ की दृष्टि से पहली क्रिया '**होना**' ही प्रमुख है, '**जाना**' नहीं । तात्पर्य यह है कि '**हो गया**' का अर्थ 'हुआ' ही है; 'होकर गया' अर्थ नहीं है । कमला के लड़का पहले हुआ और वह फिर गया—ऐसा अर्थ कदापि नहीं है ।

इसलिए समझ लेना चाहिए कि संयुक्त क्रिया में देखने में तो रूप की दृष्टि से कई क्रियाएँ हो सकती हैं; लेकिन अर्थ की दृष्टि से पहली क्रिया ही प्रमुख होती है । जैसे "लड़का एक मिनट में उठ पड़ा"—इसमें लड़के ने दो शारीरिक क्रियाएँ नहीं कीं । केवल उठने की क्रिया की है; पड़ने की क्रिया नहीं की । 'पड़ा' तो केवल शीघ्रता का भाव प्रकट करता है । "लड़का **जाग गया**" में भी 'जागना' ही प्रमुख है । अतः '**जाग गया**' संयुक्त समापिका क्रिया है ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक वाक्य इस प्रकार है—

"लड़का मेरे घर **हो गया**, पर मैं तब घर पर न था।"

उपर्युक्त वाक्य में '**गया**' एकाकी समापिका क्रिया है, '**हो**' तो पूर्वकालिक क्रिया है, जो क्रियाविशेषण के रूप में आयी है। '**हो गया**' का अर्थ है 'होकर गया'। अर्थ और प्रयोग की दृष्टि से संयुक्त क्रिया और एकाकी क्रिया का अन्तर मालूम किया जा सकता है।

हिन्दी में दो से अधिक क्रियापदों के योग से भी बनी संयुक्त क्रियाएँ प्रयोग में आती हैं। जैसे—

(१) वह मेरी बात पर **हँस पड़ता है**।

(२) तुम्हारे लिए दर्वाज़ा **खोला जा सकता है**।

(३) दुनिया ऐसा ही **कहती चली आ रही है**।

जब एक मूल क्रिया या धातु से अन्य क्रिया बनायी जाती है, तब वह यौगिक क्रिया कहलाती है। जैसे 'उठना' से **उठाना** या **उठवाना**। **उठाना** और **उठवाना** यौगिक क्रियाएँ हैं।

"मैं कुली से बक्स **उठवाता हूँ**" में '**उठवाना**' क्रिया यौगिक है। इस क्रिया से सम्बद्ध दो प्रकार के कर्ता है—(१) मैं (२) कुली। 'मैं' **प्रेरक कर्ता** और 'कुली' **प्रेरित कर्ता** है। प्रेरणार्थक क्रियाओं में ऐसी स्थिति में दो कर्ता हुआ करते हैं। आचार्य पं० किशोरीदास जी वाजपेयी कनखल में हैं। वहाँ जा सकते हो, ऐसी समस्याओं के समाधान के लिए।

प्रिय उपाध्याय जी ! आप कृपया इस पत्र को प्रिय भाई **गिरिराजकिशोर अग्रवाल** (चित्रकला विभाग, धर्म समाज कालेज, अलीगढ़) को भी दिखा दीजिए तथा विषय-विश्लेषण सुना दीजिए। मैं इस पत्र द्वारा **एक पंथ दो काज कर रहा हूँ**।

आशा है आप दोनों सानंद होंगे। सस्नेह,

डा० सियाराम उपाध्याय,
प्रवक्ता हिन्दी-विभाग,
धर्म समाज डिग्री कालेज, अलीगढ़

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रो० कमल पुंजाणी के नाम

हिन्दी शोध संस्थान,
८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)

प्रिय श्री पुंजाणी, दिनांक २४. ३. ७८ ई०

आपका दिनांक २२–३–७८ का पत्र मिला। आपके पत्र से ऐसा लगा कि आपने संस्कृत भाषा नहीं पढ़ी है। **पुत्र** और **पत्र** पृथक्-पृथक् शब्द हैं।

(१) **पुत्र=पुत्+त्रै+क** (पुत् नाम के नरक में जाने से जो रक्षा करता है, वह पुत्र है।)

(२) **पत्र**=पत्+ष्ट्रन् (जो गिरता है या उड़ता है अर्थात् पत्ता, पाती आदि। **पत्तर, परत, पात** आदि शब्द सं० **पत्र** से ही विकसित हैं।

प्रारम्भ में कोई सन्देश या बात भोजपत्र आदि पत्रों पर ही लिखी जाती थी। इसीलिए कालांतर में कागज़ पर या किसी अन्य वस्तु पर लिखी हुई संदेश-वार्ता, घटना आदि को **पत्र** कहने लगे। कागज़ भी पत्तियों से ही बनता था; इसीलिए वह भी **पत्र** कहलाया।

पन्ना शब्द भी सं० **पर्णक** से विकसित है। हिन्दी में एक शब्द **पन्ना** या **पना** एक पेय पदार्थ के अर्थ में भी है, जो आम के गूदे से बनता है, वह सं० **पानक** से विकसित है।

सं० पर्णक > **प्रा० पण्णअ** > **पण्णा** > **पन्ना। सं० पत्र** > हिन्दी **पत्र। पत्र** हिन्दी में तत्सम शब्द है और **पत्ता** तद्भव। इसका 'पुत्र' से कोई सम्बन्ध नहीं। सं० **पत्रक** > **पत्तअ** > **पत्ता**। कागज़ के बने ताश के पत्ते **पत्ते** ही कहलाते हैं।

इस समय आपके **पत्र-साहित्य**-सम्बंधी विषय पर मैं अधिक नहीं लिख सकता। आप अन्य विद्वानों से विचार-विमर्श करें। प्रिय भाई ब्रजबाल जी ने मुझे आपके विषय में बताया था। हर्ष है कि आप सानन्द हैं।

मैंने आपको लिखा था कि पत्र-साहित्य के सम्बन्ध में आप **श्री पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी** से पत्र-व्यवहार अवश्य करें। उन्होंने इस क्षेत्र में बहुत काम किया है। वे पत्र-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। मेरे गुरुवर डा० **वासुदेवशरण जी अग्रवाल** उनकी बहुत प्रशंसा किया करते थे। हिन्दी में जनपदीय आंदोलन के तो वे जनक ही हैं। वे फीरोज़ाबाद (उ० प्र०) के मोहल्ला चौबान में रहते हैं। आज-कल अपने पुत्र के पास भी हो सकते हैं; पत्र से पता लगा लें।

प्रो० कमल पुंजाणी, शुभैषी
प्राध्यापक, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
बी० एम० महता म्यू० कालेज, जामनगर (गुजरात)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रो० गोवर्धननाथ शुक्ल के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़
दिनांक ५. ४. ७८ ई०

बन्धुवर शुक्ल जी,
सप्रेम नमस्कार !

आपका दिनांक ४-४-७८ का पत्र मिला। धन्यवाद ! आपने लिखा है कि 'आहो' (मराठी) क्रिया हिन्दी 'हूँ' के अर्थ में है।

मैं तो निम्नांकित मराठी वाक्य का अर्थ ऐसा समझता हूँ—"**मी मथुरेला जात आहे**" = मैं मथुरा को जाता हूँ।

आप स्पष्ट करने की कृपा करें। आपके '**आहो**' से मैं कुछ चक्कर में पड़ गया हूँ। क्या निम्नांकित प्रकार से क्रिया-रूप नहीं हैं—

हिन्दी० हूँ = मराठी० **आहे** = गुजराती० छूँ।

मैं तो मराठी **आहो** का हिन्दी-रूपान्तर 'हैं' समझता हूँ। मराठी—**आम्ही आहो** = हिन्दी **हम हैं**।

हाँ, एक बात याद आयी, उस दिन की 'मानस'-चर्चा के सम्बन्ध में। तुलसीदास जी ने '**मानस**' के अरण्य काण्ड में लिखा है—**सूपनखा रावन कै बहिनी**"—(अर० १७/३)।

प्रश्न यह है कि शूर्पणखा रावण की सहोदरा भगिनी थी, अथवा नहीं ? महाभारत में प्रसंग आया है कि विश्रवा के तीन पत्नियाँ थीं—(१) **पुष्पोत्कटा** (२) **राका** (३) **मालिनी**। पुष्पोत्कटा के दो पुत्र थे—**रावण** और **कुम्भकर्ण**। मालिनी का पुत्र **बिभीषण** था। राका के एक पुत्र **खर** और एक पुत्री **शूर्पणखा** थी।

इस तरह शूर्पणखा रावण की विमाता-जनित बहिन थी।

मैंने वाल्मीकि-रामायण (उत्तरकाण्ड; नवम सर्ग में) ऐसा भी पढ़ा है कि **सुमाली** की पुत्री **कैकसी विश्रवा** को ब्याही थी। कैकसी के चार सन्तानें थीं—(१) **रावण** (२) **कुम्भकर्ण** (३) **शूर्पणखा** (४) **बिभीषण**।

वाल्मीकि-रामायण में उक्त वर्णन है। यही बात **अध्यात्म रामायण** में भी है। अतः शूर्पणखा रावण की सहोदरा बहिन भी सिद्ध हो जाती है। अतः तुलसी का कथन सही सिद्ध हो जाता है। तुलसी बहुत-कुछ वाल्मीकि का अनुसरण करते भी हैं।

हर्ष है कि आप सपरिवार सानंद हैं।

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० गोवर्धननाथ शुक्ल,
शुक्ल-सदन,
खाई ढोरा, अलीगढ़ (उ०प्र०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० अशोककुमार शर्मा एवं श्री प्रभाकर शर्मा के नाम

शिविर, दिल्ली

प्रियवर, दिनांक १२. ४. १९७८ ई०

आशीर्वाद !

एक दिन तुम दोनों ने पूछा था कि **शोध-प्रबंध में विचार और भाषा का क्या स्वरूप होना चाहिए ? प्रत्येक अध्याय में निष्कर्ष किस तरह निकालना चाहिए ?**

पहले प्रश्न के उत्तर में प्राचीन विद्वान् कल्हण का यह वाक्य शोधार्थी को स्मरण रखना चाहिए—

रागद्वेषबहिष्कृता सरस्वती श्लाघ्या ।

भाषा शुद्ध स्पष्ट लिखी जानी चाहिए । वाक्य-रचना में न न्यूनपदत्व दोष हो, और न अधिकपदत्व दोष ।

निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए क्रम इस प्रकार होना चाहिए—

(१) **तथ्य संकलन** (२) **विभिन्न विद्वानों के विचारों का संकलन** (३) **तथ्यों के आलोक में विचार-विमर्श** (४) **निर्णय या निष्कर्ष** ।

प्रियवर प्रभाकर ! **अनुसंधान** सत्य को खोजने का एक मार्ग है अर्थात् वह सत्यान्वेषिणी यात्रा है, अंतिम मंजिल नहीं है । शोधार्थी उस यात्रा में जो कुछ प्राप्त करता है, उसे ईमानदारी से कहता है । शोधार्थी पर सरस्वती-पूजन में सच्ची पूजा की बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है ।

प्रियवर अशोक ! तुम्हारी कुछ कविताओं में तो मुझे एक दम नूतन शैली की अभिव्यक्ति मिली । तुम्हारे प्रतीक और उपमान उन मे एक दम नये और नुकीले-से अर्थव्यंजक हैं । समाज के मानव-मन की प्रक्रिया को अभिव्यक्त करने के लिए तुमने जो व्याकरण, विराम छन्द आदि प्रतीक-रूप में प्रस्तुत किये हैं, वे वास्तव में चित्ताकर्षक और प्रभावी हैं ।

प्रियवर प्रभाकर ! **अज्ञेय** के काव्य-बिम्बों पर तुम्हारा कितना कार्य हो गया ? कविता की रसानुभूति में बिम्ब बहुत बड़ा पार्ट अदा करते हैं । जितने सबल और स्पष्ट बिम्ब; कविता उतनी ही रसमयी ।

अज्ञेय अपने जीवन में यायावरी और क्रान्तिकारी रहे हैं । प्रयोगवादी कविता तथा नयी कविता के उत्तुंग स्तम्भ भी हैं । उनकी कविताओं में शहरी तथा ग्रामीण जीवन की तीव्र चेतना बिम्बों द्वारा व्यक्त हुई है । आकाश की चाँदनी, शिशिर-राका, आकाश का विस्तार आदि से नागरिक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन के, और खेत, हवा, चिड़िया आदि से गाँव के जीवन के अनेक चाक्षुष विम्ब अज्ञेय ने अपने काव्य में प्रस्तुत किये हैं। उनकी **साँप** शीर्षक कविता में ऐसा विम्ब-विधान है, जो नागरिक जीवन पर करारा व्यंग्य प्रस्तुत करता है। अज्ञेय में संवेदनशीला अनुभूति तो है. किन्तु यत्र-तत्र बौद्धिकतापूर्ण शुष्क बोध भी पाया जाता है। अज्ञेय में प्रकाशमय सचल चाक्षुष विम्ब पर्याप्त संख्या में पाये जाते हैं।

हर्ष है तुम दोनों सानन्द हो। सस्नेह,

डा० अशोककुमार शर्मा एवं श्री प्रभाकर शर्मा, शुभैषी
हिन्दी-विभाग, अम्वाप्रसाद 'सुमन'
धर्मसमाज डिग्री कालेज, अलीगढ़

कु० मधु शर्मा के नाम

परमार्थ निकेतन, पो० स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश)
दिनांक १७. ४. १९७८ ई०

प्रिय पुत्री मधु,

आशीर्वाद !

तुम्हारा पत्र मुझे सहारनपुर में ही मिल गया था। सहारनपुर के मुन्नालाल एवं जयनारायण खेमका कन्या महाविद्यालय में दो व्याख्यान थे। दिनांक १६-४-७८ के प्रातः में मैं हरिद्वार आ गया था। वहाँ गंगा-स्नान किया और फिर **आचार्य पं० किशोरीदास जी वाजपेयी** से मिलने कनखल गया। लगभग दो घंटे के लिए आचार्य जी के साथ गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय भी गया था।

तुम्हारे पत्र में पाणिनि के माहेश्वर सूत्रों से सम्वद्ध जो प्रश्न पूछा गया है, उसका उत्तर यहाँ मैं लिख रहा हूँ—

तुम्हारे प्रश्न का पूर्वांश तो **दीर्घ स्वरों** से सम्वद्ध है और उत्तरांश '**ह्**' वर्ण से सम्वद्ध है।

माहेश्वर सूत्रों में दीर्घ स्वरों को पृथक् से नहीं लिखा गया, क्योंकि. उनका स्थान भिन्न नहीं है। इसलिए स्वरों में **आ, ई, ऊ, ॠ, ॡ**, को नहीं लिखा गया। बहुत संभव है पाणिनि के काल (ईसवी से ४०० वर्ष पूर्व) में **अ** और **आ** एक स्थान से बोले जाते होंगे। आज तो हिन्दी में **अ** और **आ** के स्थान अलग-अलग हैं। काल के प्रभाव से मानव-जाति की उच्चारण-प्रक्रिया भी बदली है। जिह्वामूलीय और उपध्मानीय ध्वनियाँ तो बहुत पहले समाप्त हो गयी थीं पाणिनि-काल में '**न्**' ध्वनि **दन्त्य थी,** आज हिन्दी में '**न्**' दन्त्य नहीं है, वर्त्स्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। पाणिनि-काल में 'स्' दन्त्य था। आज हिन्दी में 'स्' वर्त्स्य है। संस्कृत की मूर्धन्य ध्वनि 'ष्', अब हिन्दी में समाप्त ही है।

तुम्हारे प्रश्न का उत्तरांश '**हयवरट्**' और 'हल्' के 'ह्' वर्णों से सम्बन्ध रखता है। केवल 'ह्' ही ऐसा व्यंजन है, जो चौदह सूत्रों में दो बार आया है—अन्य कोई व्यंजन दो बार नहीं आया।

बेटी मधु! '**हयवरट्**' का 'ह्' और '**हल्**' का 'ह्' एक नहीं है। दोनों अलग-अलग हैं। पाँचवें सूत्र '**हयवरट्**' का 'ह्' विसर्ग को सूचित करता है, जो स्वर के निकट है। चौदहवें सूत्र 'हल्' का 'ह्' व्यंजन है, जो ऊष्म ध्वनि है। इस भेद के कारण ही माहेश्वर सूत्रों में दो बार 'ह्' का प्रयोग हुआ है।

व्याकरण-विषयक कोई अन्य कठिनाई हो, तो अपने गुरुवर डा० श्रीनिवास मिश्र जी तथा आचार्य सोहनलाल गौड़ जी से भी पूछती रहना। तुम्हारी बीबी तुम सबको असीस लिखा रही हैं। तुम्हारी बीबी इस बात से परम प्रसन्नता का अनुभव कर रही हैं कि जिन देवी-देवताओं, महर्षियों और तीर्थों का वर्णन उन्होंने वाल्मीकि-रामायण, महाभारत और रामचरितमानस में पढ़ा था, यहाँ उनकी साकार भव्य मूर्तियाँ और दृश्य चर्मचक्षुओं से देख लिये। हम एक सप्ताह में अलीगढ़ आ जाएँगे। सस्नेह,

कु० मधु शर्मा, एम० ए० (संस्कृत) शुभैषी
८/७ हरिनगर, अलीगढ़-२०२००१ अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० मनोहरलाल गौड़ के नाम

शिविर, सहारनपुर,
दिनांक ४. ५. १९७८ ई०

बन्धुवर गौड़, जी,

सादर सप्रेम नमस्कार!

उस दिन आपसे **देवनागरी लिपि और हिन्दी भाषा** के सम्बन्ध में पर्याप्त बातें हुई थीं। हिन्दी अपनी लिपि की वैज्ञानिकता के कारण तथा संपूर्ण भारत में सर्वाधिक रूप में बोले जाने और समझे जाने के कारत भारत की राष्ट्रभाषा होने का अधिकार रखती है। यह विश्व में भी तीसरी भाषा है, बोले जाने की दृष्टि से। भारतीय संविधान की धारा ३४३ के अनुसार निर्णीत है कि—"भारत (केन्द्र) की राजभाषा देवनागरी लिपि में हिन्दी ही होगी।" भारत के संविधान के आठवें परिशिष्ट में १५ भाषाएँ क्षेत्रीय मानी गयी हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके नाम ये हैं—(१) **कश्मीरी** (२) **पंजाबी** (३) **सिंधी** (४) **हिन्दी** (५) **गुजराती** (६) **मराठी** (७) **उड़िया** (८) **बंगाली** (९) **आसामी** (१०) **तमिल** (११) **तेलुगु** (१२) **कन्नड़** (१३) **मलयालम** (१४) **संस्कृत** (१५) **उर्दू** ।

गौड़ जी ! आज हिन्दी भाषा वास्तव में शब्द-संपदा की दृष्टि से पर्याप्त सम्पन्न है । देवनागरी लिपि तो सरलता, स्पष्टता और वैज्ञानिकता की दृष्टि से विश्व की सभी लिपियों में शीर्षस्थ है । जिस रोमन लिपि में लिखी जाने-वाली अंग्रेज़ी के हिमायती अंग्रेज़ी का डंका पीट रहे हैं, उस रोमन लिपि के लेखन और उच्चारण में जैसी नियमहीनता है, उसे तो आप जानते ही हैं । किन्तु वे लोग नागरी लिपि के दोषों को खोज-खोजकर तथा तिल को ताड़ बताकर दिखाते हैं और छत पर चढ़कर चिल्ला रहे हैं । वे अपने छोटे-से व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए सारे देश का सत्यानाश करना चाहते हैं । उनकी सत्ता बनी रहे, बस यही स्वार्थ उनके कथनों में निहित है ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावीरप्रसाद द्विवेदी, पं० मदनमोहन मालवीय और पुरुषोत्तमदास टंडन जी ने हिन्दी के लिए बहुत कुछ किया था । सन् १९१० ई० तक भारत के किसी भी विश्वविद्यालय में हाईस्कूल से ऊपर हिन्दी नहीं पढ़ायी जाती थी । सन् १९१० ई० के उपरान्त इलाहाबाद विश्वविद्यालय में जब इण्टर, बी० ए० और एम० ए० में हिन्दी विषय पढ़ाया गया, तब वह अंग्रेज़ी के माध्यम से पढ़ाया जाता था । टंडन जी ने सम्मेलन के सचिव के रूप में हिन्दी को अदालतों में स्थान दिलाया । हम उन्हीं हिन्दी-सेवियों के परिश्रम की रोटियाँ खा रहे हैं ।

अंग्रेजी के मुट्ठी भर स्वार्थी सत्ताधारी कहते हैं कि हिन्दी के माध्यम से स्नातक तथा स्नातकोत्तर कक्षाओं की पढ़ाई नहीं हो सकती । ग्रन्थ नहीं हैं, हिन्दी में ।

सन् १९२५ ई० से ही काशी विद्यापीठ में सारी पढ़ाई हिन्दी के माध्यम से हुआ करती थी । वहाँ भारत के सभी प्रान्तों के छात्र पढ़ते थे । कभी किसी को कुछ शिकायत नहीं हुई ।

महात्मा गांधी गुजराती थे, सुभाषचन्द्र बोस बंगाली थे; राजगोपालाचार्य मद्रासी थे—ये सभी हिन्दी में भाषण दिया करते थे । देश की सारी जनता उन भाषणों को अच्छी तरह समझती थी ।

महात्मा गांधी और सुभाषचन्द्र बोस ने हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया था, यद्यपि उनकी मातृभाषाएँ गुजराती और बंगाली थीं ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी में उसी समय विचारों को व्यक्त करने की पूरी क्षमता आ चुकी थी। अब तो हिन्दी और भी व्यापक और उन्नत बन गयी है।

सन् १९५० से लेकर आज तक हिन्दी भाषा ने अपने भाण्डार को बहुत मात्रा में शब्द-रत्नों से भरा है। मानविकी तथा विज्ञान के सभी क्षेत्रों की पारिभाषिक शब्दावली हिन्दी में मौजूद है। प्रत्येक विषय स्नातकोत्तर कक्षाओं तक हिन्दी भाषा के माध्यम से पढ़ाया जा सकता है। कमी निष्ठा की, और पढ़ानेवालों की है। जिन अध्यापकों ने अपने विद्यार्थी-जीवन में अंग्रेज़ी शब्दावली के माध्यम से विषयों को पढ़ा है, वे परिश्रम करके हिन्दी-शब्दावली के माध्यम से पढ़ाना नहीं चाहते। दुकान के पुराने माल से ही दुकान चलाते रहना चाहते है।

सरकार में महत्त्वपूर्ण पदों पर आसीन कुछ स्वार्थी तत्त्व भी देश के साथ ग़द्दारी कर रहे हैं। कोई विदेशी व्यक्ति यदि भारत में आकर अपनी राष्ट्रभाषा में भाषण करता है, तो वे स्वार्थी उसका अंग्रेज़ी अनुवाद ही भारत की जनता को सुनाते हैं।

आप जानते ही हैं कि अध्यात्म, धर्म, दर्शन और संस्कृति आदि की पारिभाषिक शब्दावली तो हिन्दी ने बहुत पहले संस्कृत से ले ली थी। संस्कृत ने सम्पूर्ण भारत को प्रभावित किया था। अतः वह शब्दावली एक प्रकार से सारे भारत की शब्दावली मानी जानी चाहिए। संस्कृत हमारे ज्ञान का तृतीय शिव-नेत्र है। हिन्दी और भारतीय प्रादेशिक भाषाएँ हमारी दो आँखें हैं।

संस्कृत की अनुगामिनी हिन्दी भाषा में दो शक्तियाँ **प्रमुख हैं**—(१) ग्रहण-शक्ति (२) सर्जना-शक्ति। ग्रहण-शक्ति के कारण हिन्दी अन्य भाषाओं के शब्दों को ग्रहण कर रही है और पचा रही है। सर्जना-शक्ति के कारण सुगमता से शब्दों का निर्माण कर लेती है। उपसर्ग, धातु और प्रत्यय हिन्दी की सर्जना-शक्ति के बीज हैं।

अब रही आधुनिक विज्ञान से सम्बद्ध शब्दावली। उसके समानान्तर अंग्रेज़ी-हिन्दी-शब्द-रूपान्तर-कोश सभी विषयों में शब्दावली-आयोग (भारत सरकार, दिल्ली) ने प्रकाशित करा दिये हैं। हिन्दी-शब्दों के निर्माण में संस्कृत और भारतीय प्रादेशिक भाषाओं को आधार माना गया है, ताकि राष्ट्रीय स्तर पर वे पारिभाषिक शब्द ग्राह्य हो सकें।

जिन भारतीयों के मन में अंग्रेज़ी समायी हुई है, उनका कहना है कि विज्ञान के शब्दों के समानान्तर हिन्दी में शब्द नहीं हैं; ऐसा कहना झूठ है, धोखा है। वे शब्द हिन्दी में इस समय मौजूद हैं। अनेक स्थलों पर हिन्दी ने अंग्रेज़ी की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपेक्षा अधिक स्पष्टता का परिचय दिया है। अंग्रेज़ी शब्द 'Transfer' तो व्यक्ति और वस्तु दोनों के लिए प्रयुक्त होता है; लेकिन हिन्दी में वस्तु के लिए **'हस्तान्तरण'**, और व्यक्ति के लिए **'स्थानान्तरण'** शब्द बनाये गये हैं। इसी तरह 'Head of the Dartment' के लिए 'विभागाध्यक्ष', और Head Post office के लिए 'मुख्य डाकघर' शब्द हैं। Department = **विभाग**। Section = **अनुभाग**। Division = **प्रभाग**।

इतना ही नहीं हिन्दी को संस्कृत की थाती इतनी उत्तम और विशाल मिली है कि उसकी क्षमता की समता अंग्रेज़ी नहीं कर सकती। अंग्रेज़ी में **सूर्य**, **चन्द्र** और **कमल** के लिए केवल एक-एक शब्द है, Sun, Moor और Lotus. हिन्दी में प्रातः के सूर्य के लिए **'अरुण'**, और दो पहर के सूर्य के लिए **'मार्तण्ड'** शब्द हैं। पूर्णिमा के चन्द्र को **'राकेश'** कहते हैं। नील कमल को **'राजीव'** या 'इन्दीवर', और लाल कमल को **'कोकनद'** कहते हैं। ऐसी बारीकी अंग्रेज़ी में नहीं है।

जो राष्ट्र-द्रोही अंग्रेज़ी की सम्पन्नता के गीत गाते हैं, मैं उनसे पूछना चाहता हूँ कि वे मुझे **ब्रह्म, ब्रह्मचर्य, धारणा, समाधि, उत्तरीय, कौपीन, बगलबन्दी, कुरता, जलेबी, बालूशाही** आदि की अंग्रेज़ी बता दें। भारत को तथा भारतीय संस्कृति को हिन्दी के माध्यम से ही व्यक्त किया जा सकता है। अंग्रेज़ी ने हमारी भारतीयता को गिराया है। उसने हमारा चलन, पहनाव- और ज़हनियत बदल दी है।

गत मास में आप दक्षिण की यात्रा करके आये हैं। कृपया अपना अनुभव भी बताएँ कि दक्षिण का मन हिन्दी के प्रति अब कैसा है?

आज-कल चि० विभूति कहाँ है? किस विभाग में? बच्चों को आशीर्वाद।

सस्नेह,

डा० **मनोहरलाल गौड़**, आपका
२/४७, **जनकपुरी, मैरिसरोड, अलीगढ़** अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० (श्रीमती) रमा दुबलिश के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़
दिनांक २८. ४. १९७८ ई०

प्रिय बहिन दुबलिश जी,

आपके कालेज की कन्याओं को व्याख्यान देने के बाद आपसे जो शोध-सम्बन्धी-वार्तालाप हुआ था, उसके विषय में मुझे आप से यही निवेदन करना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि आप किसी वेद के एक विशिष्ट अंश का **शैलीवैज्ञानिक अध्ययन** (Stylistic Study) अपनी शोधार्थिनी शिष्याओं से कराएँ। अच्छा हो, ऋग्वेद का एक-एक मंडल प्रत्येक को निश्चित कर दें।

किसी साहित्यकार की कृति के शैलीवैज्ञानिक अध्ययन से हम उसके मनोवैज्ञानिक जीवन का पता लगा सकते हैं। साहित्यकार अपने साहित्य में अपने मन को अभिव्यक्ति करता है। वह धनात्मक भी हो सकती है और ऋणात्मक भी।

शैली के अध्ययन में शब्द, व्याकरण, वाक्य, अर्थ आदि के अध्ययन के उपरान्त विषय-चयन, पात्र-चयन तथा पात्र-स्वरूप का भी अध्ययन होना चाहिए।

डा० श्यामसुन्दरदास के अनुसार—किसी कवि या लेखक की शब्द-योजना, वाक्यांशों के प्रयोग, वाक्यों की बनावट और उनकी ध्वनि आदि का विवरण ही शैली है।

शैली के इस नूतन ढंग के अध्ययन को **शैलीविज्ञान (स्टाइलिस्टिक्स)** कहते हैं। इसमें सामान्य रूप से दो प्रकार के अध्ययन कराये जा सकते हैं—

(१) **किसी काल विशेष की भाषा का अध्ययन**; इसे हम भाषा का शैली वैज्ञानिक अध्ययन कह सकते हैं।

(२) **किसी लेखक की विशिष्ट-विधा-से सम्बद्ध कृति का शैलीवैज्ञानिक अध्ययन**; इसमें उस लेखक की भाषा-प्रयोग-क्षमता देखी जाती है।

आप प्रथम प्रकार का अध्ययन कराएँ और देखें कि अभीष्ट मंडल के सूक्तों की भाषा का क्या स्वरूप है?

मंत्रों में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के कारण शब्दों के अर्थ किस प्रकार बदल जाते हैं? स्वर-प्रक्रिया का अध्ययन भारत में से उठता जा रहा है। **पाणिनीय शिक्षा** में स्वर-प्रक्रिया के महत्त्व पर बहुत बल दिया गया है। पाणिनि कहते हैं— **स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्**

(पाणिनीय शिक्षा, श्लोक ५२)

यहाँ पाणिनि ने ध्वनिगुण से संबद्ध 'त्वष्टा' के मंत्रोच्चारण **इन्द्रशत्रो**' की ओर लक्ष्य किया है।

निर्दिष्ट मंडल के मंत्रों का पद-विन्यास समान है या भिन्न-भिन्न? उसके मंत्रों की वाक्य-रचना का अध्ययन कराइए। प्रतीकों तथा उपमानों में समानता-असमानता देखिए। एक मंडल छोटा पड़ता हो, तो दो मंडल भी दे सकती हैं। वैसे शैलीवैज्ञानिक अध्ययन में शोध का क्षेत्र छोटा रहे, तो अधिक उत्तम होता है उसमें शोधार्थी गहरा उतर सकता है। परिणाम भी निश्चित निकल सकते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक साहित्य में जल के लिए **सरिर** और **सलिल** दोनों शब्द मिलते हैं। देखिए, कि निर्दिष्ट मंडल में कौनसा संज्ञा शब्द कितनी-कितनी बार आया है ? किसकी आवृत्तियाँ अधिक हुई हैं ? एक संज्ञा शब्द के एक साथ कितने विशेषण प्रयुक्त हैं ? किस प्रकार के विशेषणों के प्रयोग अधिक हैं ? एक शब्द के किस पर्याय का प्रयोग अधिक है ?

व्याकरण की दृष्टि से संज्ञा-वचनों की क्या स्थिति है ? बहुवचनीय रूप **देवासः** अधिक मिलता है, या **देवाः** ? द्विवचन में **द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया** (ऋक्० १/१६४/२०) जैसे रूप अधिक हैं, या **सूर्याचन्द्रमसौ धाता** (ऋक्० १०/१९०/३) जैसे रूपों का आधिक्य है ? क्रियाओं में किस प्रकार का प्रयोग अधिक मिलता है ? किस अर्थ में कौन-सा लकार अधिक है ?

वैदिकी में उपसर्ग क्रियापदों से अलग पाये जाते हैं। जैसे—**प्र नः आयूंषि तारिषत्**—इसमें **प्र** और **तारिषत्** के मध्य में '**नः आयूंषि**' आ गया है। आपकी शोधार्थिनी छात्राएँ पता लगाएँ कि उपसर्ग और क्रियापद में कितने मध्य पदों की दूरी मिलती है ? कम से कम और अधिक से अधिक का पता लगाया जाना चाहिए। सांख्यिकी को आधार मानना ठीक रहेगा। शैलीविज्ञान सांख्यिकी पर अवलम्बित है।

वाक्य-संरचना में उद्देश्यात्मक विशेषण अधिक हैं, या विधेयात्मक विशेषण ? वाक्यों में साधारण, मिश्र और संयुक्त किस अनुपात से आये हैं ? मंत्रों में जिन संज्ञा और विशेषण शब्दों का प्रयोग हुआ है, उनमें किस प्रकार की ध्वनियाँ अधिक हैं ? किस ध्वनि का अभाव है ? इसका पता लगने पर मंत्र के ऋषि का भी ठीक निर्णय हो सकेगा। प्रत्येक ऋषि का अपना एक पृथक् शब्द-विन्यास होगा ही।

अँग्रेजी के कवि **शैली** के काव्य में R वर्ण का अभाव पाया जाता है। यह **शैली** कवि की शब्द-संयोजना की विशेषता है।

इस तरह से आप वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणों और उपनिषदों पर सैकड़ों छात्राओं से शोध-कार्य करा सकती हैं। यदि लौकिक संस्कृत में छात्राओं की अधिक रुचि हो, तो अश्वघोष या कालिदास की कृतियों पर शोध कराया जा सकता है। लगाइए दस-बीस शोधार्थिनियों को। काम की क्या कमी है ?

आपकी रुचि व्याकरण में विशेष है। आप अपनी शोध-छात्राओं को संस्कृत-व्याकरण से सम्बद्ध विषय दे सकती हैं। पतंजलि के महाभाष्य में आये हुए संस्कृतेतर शब्दों का स्रोतपरक अर्थवैज्ञानिक **अध्ययन** कराइए। यास्क की निरुक्तियों का पुनर्मूल्यांकन कराइए। कालिदास के किसी ग्रन्थ के शब्दों का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्युत्पत्तिमूलक कोश तैयार कराइए। विषयों की क्या कमी ? सच्चा शोधार्थी मिलना चाहिए।

शैलीविज्ञान का पंडित कृति के आधार पर कृतिकार की मनोभूमि को भी समझ लेता है।

तुलसी के 'रामचरितमानस' की कथा और वर्णन-शृंखला बतलाती है कि तुलसी पूर्ववर्ती कवि वाल्मीकि, भागवतकार और अध्यात्मरामायणकार से बहुत प्रभावित हैं। कथा-प्रसंगों में जनकपुरी की पुष्पवाटिका में सीता द्वारा गिरिजा-पूजन किया जाना **मानस** का नूतन प्रसंग है। इसे तुलसी ने भागवत के रुक्मिणी-विवाह से लिया है।

रुक्मिणी गिरिजा पूजने बाग़ में गयी थी। लिखा भी है—**पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवियात्रा। यस्यां बहिर्नववधूर्गिरजामुपेयात्** (भागवत, स्कंध १०/अ०५२/श्लोक ४२)—यह संदेश रुक्मिणी ने ब्राह्मण के माध्यम से श्रीकृष्ण को भेजा था। सिद्ध है कि नव वधुएँ पाणिग्रहण से पहले बाहर बाग में गिरजा-पूजन को जाया करती थीं।

आशा है आप सपरिवार सानंद होंगी। पुत्र, पुत्रवधू, पुत्रियों आदि को आशीर्वाद। सस्नेह,

डा० (श्रीमती) रमा दुबलिश, शुभैषी
प्राचार्या, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
मुन्नालाल एवं जयनारायण कन्या महाविद्यालय, सहारनपुर (उ०प्र०)

डा० गेंदालाल शर्मा के नाम

शिविर, सहारनपुर
प्रियवर गेंदालाल शर्मा, दिनांक ११. ५. ७८ ई०

आशीर्वाद !

तुमने, 'स्वरभक्ति' के विषय में जानने की इच्छा प्रकट की है।

'स्वरभक्ति', (Anaptyxis) शब्द का अर्थ है, स्वर के आगम से किसी शब्द की ध्वनियों में विभाजन हो जाना। इसे 'मध्य स्वरागम' भी कहा जा सकता है। शब्द के मध्य में किसी व्यंजन का, अथवा किसी अक्षर का भी **आगम** हुआ करता है, मुख-सुख के लिए।

मध्य अक्षरागम का एक उदाहरण '**खरल**' है। यह मूल शब्द संस्कृत में '**खल**' था। हिन्दी में '**खरल**' बोला जाता है। 'र' अक्षर मध्य में आ गया है।

हिन्दी में '**श्राप**' शब्द मध्य व्यंजनागम का उदाहरण है। संस्कृत में शब्द है '**शाप**'; इसमें **श् + आ + प् + अ** ध्वनियाँ हैं। इनके मध्य में '**र्**' व्यंजन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ गया और हिन्दी में 'श्राप' बोला जाने लगा। संस्कृत का शब्द तो **शाप** है। परशुराम जी ने **सहस्रार्जुन** (परशुराम के मौसा, रिश्ते में) आदि क्षत्रियों को ललकारते हुए शाप और शर की बात कही थी—

अग्रतः चतुरो वेदाः पृष्ठतः सशरं धनुः।
उभयतः सन्नद्धोऽस्मि शापादपि शरादपि ॥

अब **स्वरभक्ति** अर्थात् **मध्य स्वरागम** को समझिए। हिन्दी की बोलियों में मध्य स्वरागम (स्वरभक्ति) के अनेक उदाहरण मिलते हैं। संस्कृत के '**धर्म**' '**कर्म**' '**मग्न**' आदि शब्द हिन्दी की बोलियों में '**धरम**', '**करम**', '**मगन**' आदि रूप में बोले जाते हैं। इनके मध्य में 'अ' स्वर का आगम हुआ है। यही स्वरभक्ति है।

आज हिन्दी में '**करम**', **मगन**' आदि शब्द भिन्न अर्थ में भी प्रचलित हैं। जैसे—'हमारे **करम** फूट गये' (करम=भाग्य)। 'आज बड़े **मगन** हो; क्या मिल गया है ? (मगन=प्रसन्न)। शब्दों के अर्थों का ऐसा अध्ययन **अर्थविज्ञान** का विषय है। आपकी स्वरभक्तिवाली बात **ध्वनिविज्ञान** से संबद्ध है।

पाणिनि के अनुसार स्वरभक्ति को अच्-भक्ति (अज्भक्ति) भी कहते हैं। 'अच्' का तात्पर्य 'स्वर' (**अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ**) है। अतः आज के भाषाविज्ञान का पारिभाषिक शब्द '**स्वरभक्ति**', पाणिनि के '**अज्भक्ति**' का का पर्यायवाची है।

हर्ष है तुम सपरिवार सानन्द हो।

शुभैषी,
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० गेंदालाल शर्मा,
सोमांचल, आदर्श नगर, मैरिस रोड, अलीगढ़

डा० कुँवरपालसिंह के नाम

शिविर मथुरा
दिनांक २२. ५. ७८ ई०

प्रियवर कुँवरपालसिंह,

आशीर्वाद !

तुम्हारा पत्र दिनांक १०-५-७८ का आज मिला। पता नहीं इतना समय कैसे लगा ? अलीगढ़ से तो डाक मुझे दो दिन में अवश्य मिल जानी चाहिए। दूसरी बात यह कि पत्र तुम्हारे हस्त-लेख में नहीं लगता; इससे मन में ऐसी आशंका भी हुई कि कहीं तुम अस्वस्थ तो नहीं हो। प्रभु से तुम्हारी स्वस्थता के लिए प्रार्थना करता हूँ।

तुम्हारी जिज्ञासा तुम्हारे पत्र में इस प्रकार है—"**भाषा का क्या धर्म से**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई सम्बन्ध है ? उर्दू के संदर्भ में आज यह विवाद जोर पकड़ता जा रहा है । प्रश्न इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि यह समस्या दिन पर दिन गंभीर होती जा रही है ।"

प्रियवर कुँवरपाल सिंह ! निश्चित रूप से तुम्हारा प्रश्न आज की प्रमुख समस्याओं में से एक विशिष्ट समस्या से सम्बन्ध रखता है । राष्ट्रभाषा की समस्या के समाधान के समय हमें इस दृष्टि से भी निदान प्रस्तुत करना होगा ।

हमारे भारत में आज हिन्दी के साथ निम्नांकित भाषाएँ भी बोली जाती है—(१) **संस्कृत** (२) **अंग्रेज़ी** (३) **उर्दू**, (४) **कश्मीरी** (५) **पंजाबी** (६) **सिंधी** (७) **मराठी** (८) **गुजराती** (९) **उड़िया** (१०) **बंगला** (११) **असमिया** (१२) **तमिल** (१३) **तेलुगु** (१४) **कन्नड़** (१५) **मलयालम** ।

भारतीय संविधान के ३५१ वें अनुच्छेद में ये १५ भाषाएँ हिन्दी की सहयोगिनी घोषित हैं । हिन्दी इनकी शब्दावली को साथ लेकर चल रही है ।

उत्तर प्रदेश में तो उपभाषाओं की दृष्टि से लगभग आठ बोलियाँ भी बोली जाती हैं ।

यदि भाषाओं का सम्बन्ध विशिष्ट धर्मों से होता, तो हमारे देश में सोलह या सोलह से अधिक धर्म अवश्य होने चाहिए थे । हिन्दू धर्म को ही ले लीजिए । इस धर्म के अनुयायी **पंजाबी, सिंधी, मराठी, बंगला, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम** आदि अनेक भाषाएँ बोलते हैं और लेखनादि में व्यवहार में लाते हैं । उत्तर प्रदेश में तो ऐसे सैकड़ों गाँव हैं, जिनके निवासी मुसलमान लोग ब्रजभाषा, अवधी या भोजपुरी बोलते हैं और वे मुसलमान-धर्म (इस्लाम धर्म) के अनुयायी हैं । उन्हीं भाषाओं को हिन्दू धर्मावलम्बी भी बोलते हैं ।

भारत के बौद्ध, जैन, पारसी, सिक्ख आदि हिन्दी भी बोलते हैं और प्रान्त-निवास के कारण पृथक्-पृथक् भाषाएँ भी बोलते हैं । अर्थात् धर्म भिन्न, भाषा एक; भाषा-भिन्न, धर्म एक ।

मैं मद्रास में लगभग दो वर्ष रहा था । स्व० श्री लालबहादुर शास्त्री (तत्कालीन प्रधान मंत्री, भारत) की कृपा से मुझे सन् १९६४ से १९६६ ई० तक दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास के हिन्दी स्नातकोत्तर अध्ययन एवं अनुसंधान संस्थान के अध्यक्ष-पद पर हिन्दी-सेवा करने का सुयोग मिला था । तब मैं दक्षिण के सभी प्रान्तों में घूमा था । मैंने देखा कि मद्रास, आन्ध्र, केरल आदि प्रान्तों के हिन्दू, मुसलमान और ईसाई समान भाषाएँ बोलते हैं । केरल के निवासियों में तो मुझे तीनों धर्मों के अनुयायी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिले; अर्थात् हिन्दू धर्म के, इस्लाम धर्म के और ईसाई धर्म के; लेकिन वे बोलते **मलयालम** ही थे; और मलयालम भी **'मणिप्रवालम्'** शैली की। मलयालम में जब संस्कृत के प्रातिपदिक या धातु में मलयालम भाषा के प्रत्यय लगा दिये जाते हैं, तब वह भाषा मणिप्रवालम् शैली की मलयालम कही जाती है।

वहाँ धर्म सबके अलग-अलग, लेकिन भाषा एक।

हम भारतीयों में राष्ट्र-भाषा के नाते सच्ची राष्ट्रीयता अभी नहीं जगी है। हमने हिन्दी के **दो विश्व-सम्मेलन** तो कर लिये; किन्तु हम सब भारतीयों ने हिन्दी राष्ट्र-भाषा के रूप में अभी नहीं अपनायी।

हमारे देश में अभी कुछ स्वार्थी तथा अंग्रेज़ी के हिमायती अंग्रेज़ी भाषा के ही पक्षधर हैं। अंग्रेज़ीवालों ने उन्हें अभिभूत भी किया है। ऐसे लोगों को विचारों में उठना चाहिए। विदेशी भाषा के प्रति ऐसी विचार-धारा अराष्ट्रीयतासूचक है।

'भाषा' की लेखन प्रक्रिया के लिए लिपि की आवश्यकता पड़ा करती है। लिपि, भाषा नहीं है। कुछ लोगों ने लिपि को ही भाषा मान लिया है। कुछ लोग समझते हैं कि अगर **"गोपाल बाज़ार जा रहा है"** को नागरी लिपि में लिख दिया गया, तो हिन्दी है और फ़ारसी लिपि में लिख दिया गया तो उर्दू है। इस भ्रान्ति को हमें दूर करना होगा। उक्त वाक्य भाषा की दृष्टि से हिन्दी है, जो उर्दू शैली में है। **"गोपाल हाट जा रहा है"**—यह वाक्य भी हिन्दी है। यदि हम इसे रोमन या फारसी लिपि में लिख भी दें, तो भी भाषा **हिन्दी** ही रहेगी।

"हम पहले नमाज़ पढ़ेंगे; फिर उन तमाम मकानों को देखने जाएँगे। उनसे सम्बन्धित सभी कागज़ों को हमने सँभाल कर रख लिया है"—ये वाक्य हिन्दी के हैं। इनका किसी धर्म से कोई खास संबंध नहीं। कोई **नमाज़** पढ़ता है, कोई **सन्ध्या** करता है; भाषा दोनों को व्यक्त करती है। धर्म से उसका कोई संबंध नहीं।

डा० कुँवरपाल सिंह शुभैषी
(रीडर, हिन्दी-विभाग), अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय, अम्बाप्रसाद **'सुमन'**
१, बैंक कालोनी, मैरिस रोड, अलीगढ़-२०२००१

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० श्रीकृष्ण वार्ष्णेय के नाम

शिविर, मथुरा

प्रिय वन्धुवर, दिनांक २६. ५. १९७८ ई०

आपने उस दिन सामयिक प्रश्न किया था। वह वास्तव में राष्ट्रभाषा हिन्दी के राजनीतिक इतिहास पर भी प्रकाश डालने को बाध्य करता है। आपके प्रश्न में विशेष बल इस पर था कि **इतना प्रयत्न और प्रचार-प्रसार करने पर भी हिन्दी स्वतंत्र भारत में सच्चे अर्थों में राजभाषा स्वीकृत क्यों नहीं हुई ?**

बन्धुवर ! सन् १९४७ ई० में देश तो स्वतंत्र हो गया था। आज स्वतंत्र भारत में पूरी तरह से क्या हम में राष्ट्रीय स्वाभिमान और गौरव जग गया है ? गुलामी की बेड़ियाँ तो कट गयीं, किन्तु बहुत-सों के पाँवों में अभी बेड़ियों के निशान बाकी हैं। राष्ट्रध्वज है, राष्ट्र-गीत है; किन्तु **राष्ट्रभाषा नहीं** है। भारतीय संविधान के चौथे अध्याय में हिन्दी के सम्बन्ध में हमने जो कुछ भी लिखा, वह केवल लिखा भर है। वाणी है, कर्म नहीं है।

१४ सितंबर, १९४९ ई० का वह दिन कितना गौरव और उल्लास से परिपूर्ण एवं पवित्र दिन था, जिस दिन सर्व सम्मति से हिन्दी को राजभाषा के समादृत पद पर अभिषिक्त किया गया था। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी उस यज्ञ के प्रमुख आचार्य थे और तत्कालीन राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद उसके यजमान थे।

भारतीय संविधान के **अनुच्छेद ३४४** से स्पष्ट है कि "संसदीय प्रतिवेदन के आधार पर राष्ट्रपति को अधिकार दिया गया है कि हिन्दी के प्रयोग और अंग्रेज़ी की रोक पर आवश्यक निर्देश निकाले जाएँ।"

यदि हमारे राष्ट्र के भावी राष्ट्रपतियों ने उस अनुच्छेद के आलोक को विस्तार देने में क्रियाशीलता नहीं दिखायी, तो क्या किया जाए ?

अनुच्छेद ३५१ में कहा गया है—"हिन्दी भाषा की प्रसार-वृद्धि करना, ताकि वह भारत की समन्वित संस्कृति के मूल तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके; तथा उसकी स्वाभाविकता में हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी या अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के शब्द, रूप और शैली को आत्मसात् करते हुए तथा जहाँ तक हो सके, और जहाँ तक वांछनीय है वहाँ तक, उसमें शब्द-भण्डार के लिए मुख्यतः संस्कृत से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना, संघ का कर्तव्य होगा।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके बावजूद भी कुछ शिक्षा मंत्रियों ने दबे शब्दों में यह पूरी कोशिश की कि हिन्दी को अंग्रेजी या अरबी-फारसी का जामा पहना दिया जाए और हिन्दी अपने संवैधानिक रूप से हटकर इधर-उधर भटकती रहे। अंग्रेजी के स्वार्थी-हिमायती हिन्दी की लिपि, हिन्दी की शब्दावली और हिन्दी के लिंग-विधान को भी दोषपूर्ण बताते रहे। उन्होंने समझा कि हिन्दी ने अंग्रेज़ी की जगह जिस दिन ले ली, उसी दिन हमारी सत्ता और हमारी कुर्सी समाप्त।

भारतवर्ष में और भारत की शासन-सत्ता के क्षेत्रों में अभी अनेक व्यक्ति ऐसे हैं, जो यह ढिंढोरा पीट रहे हैं कि अंग्रेज़ी विश्व की भाषा है और इसके माध्यम से ज्ञान की अनेक खिड़कियाँ खुलती हैं। उनमें से आयी हुई हवा हमें प्राणवंत और ज्ञानवंत बनाती है।

उनका यह कथन छल है, धोखा है, प्रवंचना है। अंग्रेज़ी केवल इँगलैंड, अमेरिका और आस्ट्रेलिया की भाषा है। जर्मनी में जर्मन, फ्रांस में फ्रेंच, रूस में रूसी, चीन में चीनी, जापान में जापानी, और ईरान में फ़ारसी भाषा बोली जाती है। सभी राष्ट्रों की अपनी-अपनी राष्ट्र-भाषाएँ हैं।

भारतीय संविधान में राजकीय प्रयोजनों में अंग्रेज़ी के प्रयोग की स्वीकृति केवल १५ वर्ष के लिए ही थी। हमारे देश का दुर्भाग्य, या कहूँ, हिन्दी का दुर्भाग्य जो **सन् १९६३ ई०** में संसद में एक काला विधेयक यह प्रस्तुत किया गया—

'हिन्दी के साथ अंग्रेज़ी का प्रयोग उस अनंत काल तक चलता रहेगा, जब तक दक्षिण के लोग हिन्दी को राजभाषा न मान लें।''

संविधान का लोकतंत्रात्मक निर्णय और हिन्दी का भविष्य सन् १९६३ ई० के विधेयक ने दक्षिण के लोगों के हाथों में सौंप दिया। बाद में एक व्यवस्था यह भी दे दी गयी कि संघीय सेवाओं की परीक्षाओं में सोलह भाषाओं में प्रश्नपत्र होंगे और साथ में अंग्रेज़ी में भी होंगे।

इस तरह सोलह भाषाओं के साथ अंग्रेज़ी अवश्य रही। परिणाम यह हुआ कि **राजभाषा** अर्थात् **संघभाषा हिन्दी अंग्रेजी की दासी बन गयी और अंग्रेज़ी राजमहिषी**। सोलह भाषाओं के साथ हिन्दी रहेगी, अर्थात् हिन्दी भी एक प्रादेशिक भाषा की हैसियतवाली हो गयी।

स्वार्थ और प्रान्तीयता के मोह में हिन्दी फँस गयी है। इसे राजभाषा का सच्चा दर्जा शीघ्र मिलनेवाला नहीं है। कारण मैंने संकेत में बता दिये।

हर्ष है आप सानंद होंगे। सस्नेह,

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० श्रीकृष्ण वार्ष्णेय,
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
श्री वार्ष्णेय कालेज, अलीगढ़

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री हरस्वरूप सारस्वत के नाम

शिविर, मथुरा

मित्रवर हरस्वरूप जी, दिनांक २९. ५. ७८ ई०

सप्रेम नमस्कार !

उस दिन के वार्तालाप में आपने तुलसीकृत '**कवितावली**' के बालकाण्ड के प्रथम छन्द की प्रथम पंक्ति में प्रयुक्त '**सकारे**' का मूल संस्कृत '**सद्यःकाल**' माना था और एक विद्वान् द्वारा संपादित कोश का कुछ हवाला भी दिया था।

प्रथम तो '**सद्यः**' शब्द से हिन्दी की बोलियों में विकसित शब्द 'सद' है, जो ब्रजभाषा में आज भी प्रचलित है; जैसे—**सद रोटी**, **सद मठा**, **सद पानी** आदि। '**सद**' का विलोम '**बासी**' है। '**सद्यःकाल**' के पूर्वांश **सद्यः** में गुच्छीय ध्वनि के अंत में विसर्ग सबल ध्वनि है; अतः 'द्' की समाप्ति न होगी। '**सद**' में '**द**' सुरक्षित भी है। '**सद्यः काल**' संस्कृत में 'प्रातः' अर्थ में मिलता भी नहीं। एकाकी 'सद्यः' तो मिलता है।

दूसरी बात यह है कि संस्कृत में '**सकाल**' शब्द 'प्रातःकाल' के अर्थ में प्रचलित है। आप्टे ने संस्कृत-इँगलिश डिक्शनरी में '**सकाल**' का अर्थ लिखा है—Early in the morning. तुलसीदास ने भी '**सकारे**' "अवधेस के द्वारे सकारे गई"—(कवितावली, बाल०, छंद १) का प्रयोग 'प्रातः काल' के अर्थ में ही किया है। ब्रज में भी '**साँझ-सकारे**' प्रयोग प्रचलित है।

इसलिए सं० **सकाल** से '**सकार**' शब्द व्युत्पन्न है। फिर सप्तमी विभक्ति के एक वचन में '**सकारे**' हो गया। **सकारे**=प्रातः काल में। **द्वारे** (द्वार + —ए) =द्वार पर। 'रामचरितमानस' में भी तुलसीदास ने '**द्वार पर**' के अर्थ में '**द्वारे**' पद का प्रयोग किया है—

कंचन कलस बिचित्र सँवारे। सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे॥"

—(मानस; उत्तर० ९/१)

अतः मेरी राय में '**सकारे**' सं० '**सकाले**' से व्युत्पन्न है। आप भी कृपया पुनः विचार करें। मुझे लगता है कि उन विद्वान् के ध्यान में संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त '**सकाल**' शब्द नहीं आया। अतः अनुमान से 'सद्यः काल' को 'सकार' का मूल लिख दिया होगा।

संस्कृत तथा प्राकृत की परंपरा से प्राप्त हिन्दी में ध्वनि-परिवर्तन एवं ध्वनि-रक्षण कुछ नियमों पर आधृत हैं। संस्कृत से आयी हुई महाप्राण ध्वनियों में हिन्दी में आकर केवल **हकार** शेष रह गया है। संस्कृत में '**भ्**' घोष महाप्राण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। हिन्दी में यह 'ह्' में परिवर्तित हुआ है। सं० **प्रत्यभिज्ञान** का परिवर्तन हिन्दी में **पहिचान** या **पहचान** के रूप में हुआ है।

काश्मीरी शैवदर्शन की एक शाखा **प्रत्यभिज्ञादर्शन** है। विश्वमय सत्ता में आने से पहले अर्थात् जीव-जगत् के रूप में रूपान्तरित होने से पहले वह महाशिव **विश्वोत्तीर्ण** सत्ता में रहता है। वही आत्मबोध रूप शिव है। **आत्मरूप का प्रत्यभिज्ञान** अर्थात् **आत्मरूप की पहिचान** जो दर्शन कराता है, वह **प्रत्यभिज्ञान का दर्शन** कहलाया। इसीलिए उसका नाम **प्रत्यभिज्ञादर्शन** है। **'स्पन्द दर्शन'** उसके आगे का दर्शन है, जिसे **विश्वरूपसत्ता-दर्शन** कहा जा सकता है।

हिन्दी **पहिचान** शब्द का विकास सं० **प्रत्यभिज्ञान** शब्द से हुआ है। सं० प्रत्यभिज्ञान > पच्चहिआन > पहिच्चान > पहिचान। संस्कृत की 'भि' ध्वनि हिन्दी 'हि' में परिवर्तित हुई है। इसी प्रकार सं० **शकरी** = हि० सहरी = **मछली**)। ऐसे ही कुछ ध्वनि-परिवर्तन-नियम हैं, जो व्युत्पत्ति में सहायक हैं।

आप और **भाई गोपालदत्त जी** सारस्वत कभी-कभी मेरी कुटिया पर आ जाते हैं, तो पुरानी स्मृतियों में प्राण पड़ जाते है। एक समय था, जब धर्म समाज कालेज, अलीगढ़ के विद्यार्थि-समाज में हम दोनों की चर्चा रहा करती थी। 'ते हि नो दिवसा गताः'।

हर्ष है आप सपरिवार सानंद हैं।

श्री हरस्वरूप सारस्दत,
प्राचार्य (सेवा-निवृत्त)
जे-१, जनकपुरी, मैरिस रोड, अलीगढ़

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० कुन्दनलाल उप्रेती एवं डा० गोपाल मधुकर चतुर्वेदी के नाम

शिविर, नई दिल्ली
दिनांक ४. ६. १९७८ ई०

प्रिय बन्धुवर,

आष दोनों के साथ उस दिन सारस्वत शब्द-चर्चा में बड़ा आनंद आया। लगता है, आज-कल आप दोनों गंभीर स्वाध्याय कर रहे हैं।

स्वाध्याय से आपको **तुष्टि तो** होनी चाहिए, किन्तु **तृप्ति** नहीं। **तृप्ति** से स्वाध्याय की प्यास ही समाप्त हो जाएगी। शिष्य गुरु को अध्ययन की तपस्या से प्रसन्न कर सकता है। अथर्ववेद में कहा गया है— **आचार्यं तपसा पिपर्ति।**

स्वाध्याय से शब्द-ब्रह्म के दर्शन होते हैं। गीता में भगवान् कृष्ण ने शरीर, मन और वाणी से सम्बद्ध तीन प्रकार के तप बताये हैं। उनमें स्वाध्याय को **वाङ्मय तप** कहा है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् । स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मय तप उच्यते (गीता १७/१५)

शारीरिक तप, मानसिक तप और **वाङ्मय तप** ईश्वर-प्राप्ति के प्रमुख साधन भी बताये गये हैं। तीनों से लोक-प्रतिष्ठा तो अवश्य ही मिलती है।

उप्रेती जी ! आपका मूल प्रश्न था कि **मोहाच्छन्न विवेक** का क्या अर्थ है ? क्या **मोहाच्छन्न विवेक** का कोई **उदाहरण** हमारे साहित्य में मिलता है ? 'मोह' की व्याख्या के साथ-साथ '**मति**' का स्वरूप-विवेचन भी प्रस्तुत है।

मोहाच्छन्न विवेक का अर्थ है 'मोह से ढका विवेक'। **मोह** और **संमोह** में अन्तर है। पत्नी, सन्तान, माता, पिता आदि के प्रति लगाव **मोह** कहलाता है। बँदरिया अपने मरे हुए बच्चे को लिये फिरती है—यह सन्तान-मोह है। **मोह** की पराकाष्ठा **विवेक** को पूरी तरह ढक देती है।

मति के कई रूप हैं—(१) **बुद्धि** (२) **पंडा** (३) **प्रज्ञा** (४) **प्रतिभा** (५) **मेधा**।

बुद्धि सामान्य रूप से किसी बात का ज्ञान रखती है। बुद्धि निर्णयात्मक ज्ञान प्रदान करती है। इसके **आठ** अंग हैं—(१) **सुनने की इच्छा** (२) **सुनना** (३) **ग्रहण** (४) **धारणा** (५) **ऊहा** (६) **अपोह** (७) **अर्थविज्ञान** (८) **तत्त्वावगति**।

जो बुद्धि सत् और असत् का ज्ञान रखती है, उसे **पंडा** कहते हैं। 'पंडा नाम की बुद्धिवाले को **पंडित** कहते हैं। विशेषतः सत् में स्थित पंडा **प्रज्ञा** कहलाती है। विशिष्ट प्रज्ञा, जिससे कवि या विज्ञानी अपनी सृष्टि रचते हैं, प्रतिभा कही जाती है। आचार्य मम्मट ने **प्रतिभा** के लिए **शक्ति** शब्द का प्रयोग किया है। अर्थात् काव्य-सृष्टि की प्रमुख शक्ति 'प्रतिभा' है।

आत्मिक प्रतिभा से ही **प्रातिभ ज्ञान** और **सहजानुभूति** का भी सम्बन्ध है।

प्रज्ञाचक्षु सूरदास ने प्रातिभ ज्ञान और सहजानुभूति के आधार पर अपने प्रभु को पहचान लिया था, और मंदिर में शृंगार करनेवाले पुजारियों को परास्त कर दिया था। प्रातिभ ज्ञान के धनी चर्मचक्षुहीन सूर गा उठे थे—

देखे री हरि नंगम नंगा।
जलसुतभूषन अंग बिराजत,
बसनहीन तन उठत तरंगा॥ —(सूरदास)

आत्मिक शक्ति से समन्वित बुद्धि, जिससे लोक-परलोक को जाना जाता है, **मेधा** कहलाती है। देवगण '**मेधा**' के अभिलाषी रहते हैं। यह सर्वोपरि बुद्धि है। वेद में कहा गया है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाग्ने ! मेधाविनं कुरु ॥
—(यजु० ३२/१४)

'पंडा' नाम की बुद्धि की शक्ति को 'विवेक' कहते हैं। विवेक से सत् और असत् का पता चल जाता है। विवेक की ढकी हुई स्थिति का नाम **संमोह** है। 'संमोह' अर्थात् 'अविवेक' सत् से पराङ्मुख कर देता है। **'संमोह' मोह** से उत्पन्न होता है, और क्रोध आदि से भी। गीता में बताया गया है कि विषयों के संग से काम, काम से क्रोध, और क्रोध से संमोह उत्पन्न होता है—

क्रोधाद् भवति संमोहः, संमोहात् स्मृतिविभ्रमः।
—(गीता २/६३)

जब मोह से संमोह उत्पन्न होता है, तब उसे 'मोहाच्छन्न विवेक' भी कह देते हैं। मोहात् संमोहः=मोहाच्छन्न विवेक। इसे ही गीता (२/२) में 'कश्मल' कहा गया है।

महाभारत का एक पात्र 'धृतराष्ट्र' मोहाच्छन्न विवेक का उदाहरण है। राजा धृतराष्ट्र प्रारंभ में विवेकशील मनुष्य थे। अपने परम प्रिय और सबसे बड़े पुत्र दुर्योधन के मोह में सब विवेक खो बैठे थे। हस्तिनापुर के राजा होते हुए भी धृतराष्ट्र अपने भतीजों (पाण्डवों) पर अत्याचार देखते रहे। द्रौपदी की साड़ी खींची गयी, और अकेले निहत्थे अभिमन्यु को चक्रव्यूह में फाँसकर मार दिया गया—यह सह सब कुछ धृतराष्ट्र की उपस्थिति में होता रहा। संजय ने यद्यपि स्पष्ट रूप से बता दिया था कि श्री, विजय और विभूति आत्मशक्ति और शारीरिक शक्ति से मिलती हैं। जिधर योगेश्वर कृष्ण हैं और जहाँ धनुर्धर अर्जुन है, वहाँ विजय निश्चित है, फिर भी धृतराष्ट्र कुछ न समझे। पुत्रों को युद्ध से रोक न सके। इसे हम धृतराष्ट्र का 'मोहाच्छन्न विवेक' ही कहेंगे।

उप्रेती जी ! इस पत्र को डा० गोपाल मधुकर चतुर्वेदी जी को दिखा दीजिए। वह तो कला-पंडित हैं; चित्रकला-मर्मज्ञ हैं। जब कला साहित्य की और साहित्य कला का सहयोगी बनता है, तब तो उसकी ऊँचाई और भी बढ़ जाती है। पाश्चात्य विद्वानों ने तो काव्य को भी कला माना है। सस्नेह,

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० कुंदनलाल उप्रेती
हिन्दी विभाग,
श्री वार्ष्णेय डिग्री कालेज, अलीगढ़।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमती रज़िया सुल्ताना के नाम

हरिनगर, अलीगढ़

प्रिय शिष्या रज़िया सुल्ताना,　　　　दिनांक १०. ६. ७८ ई०

आशीर्वाद ।

तुम्हारे प्रश्न की वाक्यावली लिखने के बाद इसी पत्र में नीचे तुम्हारे प्रश्न का उत्तर लिख रहा हूँ ।

तुम्हारे प्रश्न की वाक्यावली—आपने एक दिन कक्षा में बताया था कि उड़िया, बंगला भाषा और असमिया भाषा आर्य परिवार की भाषाएँ हैं। लेकिन तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम द्रविड़ परिवार की भाषाएँ हैं। **भाषाशास्त्र के आधार पर हम भाषाओं के परिवार किस प्रकार जान सकते हैं ?**

प्रश्न का उत्तर—सारे भारतवर्ष में पाँच परिवारों की भाषाएँ बोली जाती हैं—(१) **आर्य परिवार** में हिन्दी, सिन्धी, पंजाबी, गुजराती, मराठी, उड़िया, बंगला, असमिया आदि। (२) **द्रविड़ परिवार** में ब्राहुई, तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम। (३) **तिब्बत-चीनी परिवार** में गढ़वाली आदि। (४) **आस्ट्रिक परिवार** में संथाली (खेखारी), नीकोवारी आदि। (५) **अफ्रीका परिवार** में अंडमानी।

एक परिवार में जितनी भाषाएँ समाविष्ट मानी जाती हैं, वे सब ध्वनियों तथा व्याकरण में बहुत-कुछ समानता-सी रखती हैं। जिस प्रकार एक माँ की सन्तानें रूप-गुण में मिलती-जुलती-सी पायी जाती हैं, उसी प्रकार एक परिवार में गिनायी जानेवाली भाषाओं की बात है।

हिन्दी भाषा की सत्तरह बोलियाँ हैं। उन सत्तरह बोलियों का भी वही परिवार है, जो हिन्दी भाषा का है, अर्थात् निम्नांकित सत्तरह बोलियाँ भारोपीय पविार की हैं—(१) **हरियाणवी** (२) **खड़ी बोली** (३) **ब्रजभाषा** (४) **कन्नौजी** (५) **बुंदेली** (६) **अवधी** (७) **बघेली** (८) **छत्तीसगढ़ी** (९) **भोजपुरी** (१०) **मगही** (११) **मैथिली** (१२) **गढ़वाली** (१३) **कुमायूँनी** (१४) **मारवाड़ी** (१५) **जयपुरी** (१६) **मेवाती** (१७) **मालवी**। साहित्यिक हिन्दी के रूपों में **हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी** और **दक्खिनी हिन्दी** हैं। ये भारोपीय परिवार के अंतर्गत हैं।

मैं तुम्हारी सुविधा के लिए हिन्दी भाषा का एक वाक्य लिखकर उसके समानान्तर अन्य कुछ आधुनिक भारतीय प्रादेशिक भाषाओं में रूपान्तरित

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाक्य लिख रहा हूँ। उनके **संज्ञा**, **सर्वनाम**, **विशेषण**, और **क्रिया** पदों में साम्य देखकर तुम परिवार का निर्णय कर सकती हो—

(१) **हिन्दी में—वे कपड़े मेरे हैं।**
(२) **सिन्धी में—हू कपड़ा मुँहिंजा आहिन।**
(३) **पंजाबी में—ओ कपड़े मेरे हन।**
(४) **गुजराती में—आ कपड़ा मारा छे।**
(५) **मराठी में—ते कपड़े माझे आहेत।**
(६) **उड़िया में—से लुग्गापटागुड़ा मोर।**
(७) **बंगला में—ओगुलो कापड़ आमार।**
(८) **असमिया में—सेइबिलात कापड़ मोर।**
(९) **तमिल में—इवै तुणिघल् येन्नुडैय।**
(१०) **तेलुगु में—आ वट्टलु नावि।**
(११) **कन्नड़ में—आ वट्टेगलु नन्नवु।**
(१२) **मलयालम में—आ वस्त्रङ् ङल् एण्टेताणु।**

उपर्युक्त तालिका में तुम देखोगी कि संख्या १ से ८ तक की भाषाओं के वाक्यों के पद ध्वनि तथा व्याकरण में कितना साम्य रखते हैं ? इस समानता के कारण ही ये आठ भाषाएँ एक परिवार में अर्थात् **आर्य परिवार** में मानी जाती हैं। आर्य परिवार को **भारोपीय परिवार** या भारोपीय कुल भी कहते हैं।

संख्या ९ से १२ तक की भाषाएँ अपने वाक्यगत पदों में बहुत-कुछ समानता रखती हैं। इसीलिए ये चारों भाषाएँ एक परिवार में अर्थात् **द्रविड़ परिवार** में मानी जाती हैं।

तुम्हारी मातृभाषा उड़िया है और एम० ए० (हिन्दी) में तुम हिन्दी पढ़ती हो। मिलाओ दोनों के वाक्य। हिन्दी में—**वे कपड़े मेरे**; और उड़िया में—**से लुग्गापटागुड़ा मोर**—कितना साम्य है ? इतना ही नहीं परिनिष्ठित हिन्दी में सर्वनाम पद **मेरे**, उड़िया में—**मोर**, ब्रजभाषा में—**मेरे**, अवधी में—**मोर**, बँगला में—**आमार** और असमिया में भी **मोर** है। ये सभी सर्वनाम पद लगभग एक-से ही हैं। अतः समता का आधार ही परिवार का निर्णायक तत्त्व हैं। समान ध्वनियों और समान रूपोंवाली भाषाएँ एक परिवार में गिनायी जातीं हैं–हिन्दी, उड़िया, बँगला, असमिया एक ही परिवार अर्थात् भारोपीय परिवार में हैं।

तुम उड़िया भाषा में एक छोटी कहानी लिखकर और उसका हिन्दी-अनुवाद करके मेरे पास भेजना।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हें यह जानकर प्रसन्नता होगी कि संघ-लोक-सेवा-आयोग की परीक्षाओं के माध्यम में अब काफ़ी परिवर्तन हो गया है। अब परीक्षार्थी संविधान की **आठवीं अनुसूची** में उल्लिखित किसी भी भारतीय भाषा में प्रश्नों के उत्तर लिख सकेंगे। अवस्था भी २८ वर्ष तक कर दी गयी है। एक पर्चा किसी भारतीय भाषा का और एक अंग्रेज़ी का अवश्य होगा। अब अंग्रेज़ी का आधिपत्य काफ़ी समाप्त हो जाएगा। यह व्यवस्था सन् १९७९ ई० से लागू हो जाएगी। अब तुम्हारे लिए रास्ता साफ़ है। प्रयत्न कर सकती हो।

तुम दोनों को असीस। सस्नेह,

श्रीमती रज़िया सुल्ताना, एम० ए० (हिन्दी) शुभैषी
द्वारा—श्री एम० एल० अली, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
गाँव—हल्दी गढ़िया, पो०—कोरई, जि० कटक (उड़ीसा)

ज्यो० पं० राधेश्याम द्विवेदी के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१

मान्यवर श्री द्विवेदी जी, दिनांक २५. ७. ७८

सादर सप्रेम नमस्कार !

आपका कृपा-पत्र (२२. ७. ७८) प्राप्त हुआ। एतदर्थ हार्दिक धन्यवाद। **आचार्य डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी** हिन्दी-संस्थान लखनऊ के उपाध्यक्ष हैं। मैं समझता हूँ कि उन जैसे साहित्कार के तत्त्वावधान में निर्णय सारस्वत ईमानदारी के साथ ही होने चाहिए। अलीगढ़ और मथुरा से कोई साहित्य-सेवी पुरस्कृत किया गया कि नहीं—इसका मुझे अभी पता नहीं चला।

आपके पत्र के अन्तिम भाग में एक सारस्वत जिज्ञासा शब्द-सम्बन्धी भी व्यक्त की गयी है। आपने लिखा है—

"आपको पत्र लिखते समय शब्दों की व्युत्पत्ति की जिज्ञासा हो जाती है। '**सखरी**' और '**निखरी**' (अनसखरी) शब्दों की व्युत्पत्ति कहाँ से है ? ये किस जनपदीय भाषा के शब्द हैं ? वल्लभ-संप्रदाय के प्रसाद दो प्रकार के होते हैं। क्या ये दोनों शब्द ब्रजभाषा या ब्रज-जनपद के ही हैं ?"

शब्द की व्युत्पत्ति के साथ अर्थ जानने पर शब्द की आत्मा के दर्शन हो जाते हैं। वह दर्शन ही शब्द-ब्रह्म का दर्शन है। वैशंपायन ने जनमेजय को '**महाभारत**' की कथा सुनाते समय कहा था कि "**महाभारत** शब्द का व्युत्पत्ति सहित अर्थ जानने पर मनुष्य सारे पापों से छूट जाता है।"—इस कथन से व्युत्पत्ति का महत्त्व प्रकट है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा मैं समझता हूँ, आपकी सेवा में उत्तर लिख रहा हूँ।

'**निखरी**' और '**सखरी**' शब्द ब्रजभाषा के हैं और ब्रज-जनपद में प्रचलित हैं। पक्की रसोई को '**निखरी**' कहते हैं। घी से बने हुए पकवान, पूड़ियाँ आदि '**निखरी**'; और कच्ची रसोई—दाल, रोटी आदि—'**सखरी**' कहलाती हैं।

संस्कृत में 'निक्षरण' शब्द है। 'निक्षरण' उस क्रिया को कहते हैं, जिससे किसी वस्तु को छाँटकर अथवा छानकर साफ़ और शुद्ध किया जाता है। '**निक्षरी**' वस्तु साफ़ और शुद्ध होती है। सं० **निक्षरी** > **निक्खरी** > **निखरी**—यह विकास-क्रम संभव है। '**निखरी**' का विलोम लोक ने '**सखरी**' बना लिया। लोक अपने ढंग से शब्द-निर्माण करता है।

'**निखरी**' में नि' उपसर्ग निषेधवाची नहीं है। संस्कृत में दो उपसर्ग हैं—(१) **नि** (२) **निस्**, **निर्**। '**नि**' धनात्मक है; **निस्**, **निर्** ऋणात्मक हैं। संस्कृत में **निनाद**, **निरत**, **नियोग** आदि में '**नि**' विशेषता या आधिक्य का सूचक है; लेकिन '**निस्संदेह**', '**निराकार**' आदि में '**निस्**', **निर्** निषेधसूचक हैं। '**निखरी**' का '**नि**' विशेषतासूचक है। **निखरी** = विशेष खरी। बहुत संभव है '**सखरी**' मूलतः 'सु + अखरी' (= स्वखरी अर्थात् बहुत अशुद्ध) हो। '**स्वखरी**' शब्द को लोक मुख-सुख के कारण '**सखरी**' बोलने लगा होगा। यह तो मानना ही पड़ेगा कि '**सखरी**' शब्द '**निखरी**' का विलोम है। **निखरी** = अनसखरी। **सखरी** = अननिखरी।

व्युत्पत्ति का सम्बन्ध ध्वनि-शास्त्र, व्याकरण और अर्थविज्ञान से है। ज़रा-सी चूक से बात बिगड़ जाती है। यह वक्र पथ है और कठोर भी। 'हिन्दी शब्द सागर' में '**भोर**' (= प्रातःकाल) का मूल '**विभावरी**' माना है। यह ठीक नहीं है। हिन्दी '**भोर**' संस्कृत '**भावर**' (सं० **भावर** > **भाउर** > **भोर**) से विकसित है।

मैं जैसा समझता हूँ, वैसा निवेदन कर दिया। मैंने कहाँ तक ठीक कहा है, इसके लिए अन्य विद्वानों से भी पूछिए ? आचार्य हजारीप्रसाद जी द्विवेदी, डा० बाबूराम सक्सेना तथा आचार्य किशोरीदास जी वाजपेयी से भी पूछिए। उनके क्या विचार हैं ? "वादे-वादे जायते तत्त्वबोधः।" आज को मेरे गुरुवर डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल होते, तो मैं उन्हें पत्र लिखकर मालूम करता।

हर्ष है परमेश की दया से आप सपरिवार सानंद हैं। '**गाँग**' शब्द के सम्बन्ध में मैंने अपना मत आपसे निवेदन कर दिया था। '**गांग**' और '**गाँग**' पृथक्-पृथक् शब्द हैं। '**गांग**' संस्कृत शब्द है। इसका अर्थ 'नदी-तट' हो सकता है। **गांग** के सम्बन्ध में पं० चतुर्वेदी जी ठीक हो सकते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशा है, मेरा वह पत्र आपकी सेवा में यथासमय पहुँच गया होगा। सादर, सस्नेह,

श्री ज्यो० पं० राधेश्याम जी द्विवेदी, आपका
भारती अनुसंधान भवन, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
स्वामी घाट, मथुरा (उ० प्र०)

श्री टी० पी० पाठक के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ०प्र०)
वन्धुवर पाठक जी, दिनांक ६. ८. १९७८ ई०

सप्रेम नमस्कार !

आपने मुझसे **'शोभा'**, **'कान्ति'** और **'दीप्ति'** शब्दों में अर्थ-भेद पूछा था। अपनी समझ के अनुसार आपको अर्थ-भेद लिख रहा हूँ।

उपर्युक्त शब्दों की अर्थ-भेदक रेखाएँ यहाँ मैं काव्यशास्त्र के आलोक में खींच रहा हूँ।

'शोभा' में रूप के साथ यौवन की झलक पायी जाती है। **'कान्ति'** में रूप और यौवन पूर्णता को प्राप्त करता है अर्थात् मन्मथ का संसर्ग 'कान्ति' में होता है। **'दीप्ति'** में यौवन चरम सीमा पर होता है और उसमें पूरी तरह से रूप-माधुरी भी निवास करती है। रूप-माधुरी सहित अत्यन्त उत्कृष्टता का नाम 'दीप्ति' है।

तुलसीदास जी ने **'मानस'** के वालकाण्ड में सीता जी के लिए लिखा है—

सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई। छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई।

—(वाल०, २३०/७)

दीपशिखा की उपमा देकर तुलसी सीता जी की **दीप्ति** ही बताना चाहते हैं।

साहित्यदर्पणकार **आचार्य विश्वनाथ** ने नायिकाओं के २८ सात्विक अलंकारों का उल्लेख किया है। उनमें **३ यत्नज** (हाव, भाव, हेला) और **७ अयत्नज** अलंकार माने हैं। उन सात अयत्नज अलंकारों मे **शोभा**, **कान्ति** और **दीप्ति** को भी गिनाया गया है। उनकी दृष्टि में 'दीप्ति' परमोच्च सौन्दर्य है। साहित्य दर्पण (परिच्छेद ३/९५, ९६) में लिखा गया है—

रूपयौवनलालित्यंभोगाद्यैरंगभूषणम्। शोभा प्रोक्ता, सैव कान्तिर्मन्म थाप्यायित द्युतिः। कान्तिरेवातिविस्तीर्णा दीप्तिरित्यभिधीयते (सा० ३/९५, ९६)।

आपने **अन्तर्देशीय** और **अन्तरराष्ट्रीय** शब्दों के प्रयोग और अर्थ की बात भी पूछी थी। हिन्दी में **अन्तर्** और **अन्तर** दो शब्द अलग-अलग हैं। हमें **इंटरनेशनल** के अर्थ में हिन्दी में **अन्तरराष्ट्रीय** लिखना चाहिए। **इनलैण्ड** के लिए **अन्तर्देशीय** लिखना ठीक है। Inter=अंतर। In=अंतर्, अन्तः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर्ष है आप सपरिवार सानंद हैं। सस्नेह,

Shri T. P. Pathak, M. Sc., आपका

Scientist (c). P. I. D. अम्बाप्रसाद 'सुमन'

Publications and Information Diretorate, C. S. I. R.

Hillside Road, New Delhi--110012

डा० शुकदेवसिंह के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१

प्रिय भाई शुकदेवसिंह जी, दिनांक १०. ८. ७८ ई०

आपका पत्र मिला। आप आज-कल कुछ अस्वस्थ से चल रहे हैं, इस समाचार से चिन्ता हुई। परम पिता परमात्मा आपको शीघ्र स्वस्थ करें—यही मंगलकामना है।

आपने अपने पत्र में लिखा है कि "मुझे सम्बन्ध कारक के चिह्नों – **का, की, के**—के सम्बन्ध में जिज्ञासा है। **इन्हें कारक या परसर्ग कहना क्या ठीक है ? ये** कारकीय प्रक्रिया तो पूरी करते नहीं।"

आपने जिस प्रश्न का **उत्तर** जानना चाहा है, उसका उत्तर मैं अपनी निम्नांकित प्रकाशित पुस्तकों में दे चुका हूँ—(१) **हिन्दी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप** (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग) (२) **भाषाविज्ञान सिद्धान्त और प्रयोग** (विज्ञान भारती, १४६७, वज़ीरनगर, नई दिल्ली–३)

आपके लिए यहाँ संक्षेप में लिख रहा हूँ। आप जानते ही हैं कि कारक का सम्बन्ध क्रिया से होता है–"**क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्**।" **परसर्ग** परस्थ ऐसे अव्यय शब्द हैं, जिनपर लिंग-वचन का प्रभाव नहीं पड़ता।

(१) मैं उस लड़के **की** किताब पढ़ूँगा।

(२) हम उस लड़की **का** ग्रंथ पढ़ेंगे।

(३) शीला उस लड़की **के** ग्रंथ पढ़ेगी।

(४) मैंने लड़के **की** किताब पढ़ी।

(५) मैंने लड़कों **के** ग्रंथ पढ़े।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि **का, की, के** का सम्बन्ध क्रिया से नहीं है, अपितु संज्ञा 'किताब' और 'ग्रंथ' से है। इसलिए उपर्युक्त वाक्य के **का, की, के** कारक चिह्न नहीं हैं।

अब प्रश्न यह है कि **का, की, के** परसर्ग हैं या नहीं ? परसर्ग का अर्थ है, पीछे स्थिति रखनेवाला अर्थात् Post Position। परसर्ग किसी संज्ञा या सर्वनाम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्द के पीछे आता है। लेकिन वह (परसर्ग) एकरूप ही रहता है। परसर्ग पर लिंग-वचन का प्रभाव नहीं पड़ता। उपर्युक्त उदाहरणों में 'का' परिवर्तित हो गया है। वह लिंग-वचन के अनुसार **का, की, के** हो गया है। किताब से पहले '**की**', और **ग्रंथ** से पहले '**का**' प्रयुक्त हुआ है। अर्थात् स्त्रीलिंग में '**की**', पुंलिंग में '**का**'।

अब निम्नांकित वाक्यों में **ने, को, पर** आदि को देखिए—

(१) लड़के **ने** किताब फाड़ डाली।

(२) लड़कों **ने** किताबें फाड़ डालीं।

(३) लड़की **ने** ग्रन्थ फाड़ डाला।

(४) लड़की **ने** ग्रन्थ फाड़ डाले।

(५) लड़कियों **ने** ग्रन्थ फाड़ डाले।

(६) उस लड़के **को** बुलाओ।

(७) उन लड़कों **को** बुलाओ।

(८) उस लड़की **को** बुलाओ।

(९) उस पेड़ **पर** चढ़ो।

(१०) उन पेड़ों **पर** चढ़ो।

उपर्युक्त दस उदाहरणों से स्पष्ट है कि कारकीय परसर्ग, कारकीय अर्थ को सूचित करने के साथ-साथ नित्य एकरूप रहता है। अतः **ने, को, पर** आदि कारकीय परसर्ग हैं। **का** लिंग-वचन के प्रभाव से परिवर्तनशील है और क्रिया से सम्बद्ध नहीं है। इसलिए **का, की, के** परसर्ग नहीं हैं।

भाई शुकदेवसिंह जी! हिन्दी-भाषाविदों में **विभक्ति** और **परसर्ग** की अवधारणाओं के संबंध में मत-वैभिन्न्य पाया जाता है। मेरी निजी राय यह है कि "**तुम उन लड़कों को बुलाओ**" वाक्य में **लड़कों** का—**ओं** बहुवचनीय विभक्ति-प्रत्यय है, और '**को**' परसर्ग है। विभक्ति-प्रत्यय कारक और वचन को सूचित करता है।'परसर्ग' विभक्ति के बाद आता है, विश्लिष्टावस्था में।

बच्चों को प्यार तथा आशीर्वाद। प्रिय शिष्या (श्रीमती) निर्मल की थीसिस कब पूरी हो रही है? उससे मेरी ओर से कहिए कि वह हिन्दी भाषा के लिखने में वर्तनी पर विशेष ध्यान दिया करे। थीसिस को टंकित कराते समय जागरूक रहे। कृपया काशी के समाचार देते रहा करें। शेष फिर कभी,

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० शुकदेवसिंह,
हिन्दी विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ० प्र०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० कमलसिंह के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१
दिनांक १२. ८. १९७८ ई०

प्रियवर कमलसिंह,

आशीर्वाद !

तुमने '**खड़ी बोली की जननी**' के नाम की जानकारी के लिए पत्र में प्रश्न किया है।

'खड़ी बोली' अपनी प्रकृति में आकारान्त है। जैसे '**लड़का आया**।; **अच्छा लड़का दौड़ा**—संज्ञा, विशेषण, क्रिया पद आकारान्त हैं।

हेमचन्द्र के अपभ्रंश-व्याकरण में कुल तीन उदाहरण आकारान्त के साथ हैं—(१) "**ढोल्ला सामला धण चंपावण्णी**" (हेमचन्द्र व्या० ८/४/३३०/१) (२) "**ढोल्ला मइँ तुहुँ वारिया**" (हेमचन्द्र व्या०, ८/४/३३०/२) (३) **भल्ला हुआ जो मारिया**" (हेमचन्द्र व्या० ८/४/३५१/१)।

शेष उदाहरण उकारान्त-सूचक हैं, जो ब्रजभाषा की प्रकृति के है।

कुछ लोगों ने उपर्युक्त उदाहरणों के आधार पर खड़ी बोली की जननी शौरसेनी अपभ्रंश बता दी है।

मेरा अपना विचार है कि उपर्युक्त तीन उदाहरण हेमचन्द्र को कहीं मिल गये होंगे। उन्होंने अपभ्रंश के व्याकरण में उद्धृत कर दिये। वास्तव में ये तीन उदाहरण शौरसेनी अपभ्रंश के नहीं हैं। मैं इन्हें कौरवी अपभ्रंश के उदाहरण मानता हूँ। कौरवी नाम की अपभ्रंश का कोई ग्रंथ तो नहीं मिलता। शूरसेन जनपद की भाषा जिस तरह शौरसेनी अपभ्रंश थी, उसी तरह कुरु जनपद की भाषा कौरवी अपभ्रंश होगी।

मनुस्मृति में ब्रह्मर्षि देश और मध्य देश की सीमाओं का उल्लेख है।

मनुस्मृति में लिखा गया है—

"ब्रह्मर्षि देश में कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पंचाल, शूरसेन प्रदेश सम्मिलित हैं"
—(मनु० २/१९)

कुरु प्रदेश की अपभ्रंश कौरवी अपभ्रंश कहलाती होगी। मेरे विचार से खड़ी बोली की जननी को 'कौरवी अपभ्रंश' कहना चाहिए। जब तक कोई ग्रंथ नहीं मिलता, तब तक हमें हेमचन्द्र के उपर्युक्त तीन छन्दों पर ही संतोष करना पड़ेगा।

पश्चिमी हिन्दी की उपभाषाओं में खड़ी, ब्रजी; बुंदेली और कन्नौजी प्रसिद्ध हैं। इनकी जननी भाषाओं को क्रमश: कौरवी अपभ्रंश, शौरसेनी अपभ्रंश और,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्स्या अपभ्रंश और पांचाली अपभ्रंश नाम से पुकार सकते हैं। वैसे कौरवी अपभ्रंश को छोड़कर शेष प्रदेश जो बच रहा था, उसमें शौरसेनी अपभ्रंश ही फैली हुई थी।

आभीरों के विशाल राज्यों में शौरसेनी अपभ्रंश अर्थात् आभीरी अपभ्रंश ने हिसार, रोहतक, मेरठ आदि को छोड़कर संपूर्ण मध्यप्रदेश में साम्राज्य स्थापित कर लिया था। इसीलिए ब्रजभाषा और कन्नौजी एवं बुंदेली में व्याकरण की दृष्टि से बहुत कम अन्तर है। ब्रजभाषा औकारबहुला और शेष दो **ओकारबहुला हैं।**

भाषा का पारखी तो एक मात्रा से ही पहचान लेता है कि वह किस भाषा का पद (शब्दरूप) होगा। प्रवीण भाषाविद् तुरन्त बता देगा कि **'सिरजनहारे'** पछाँही बोली का, और **'सिरजनिहारे'** पूर्वी बोली का है। **गयौ** मथुरा जिले में, और **गओ** मैनपुरी जिले में बोला जाता है। सस्नेह !

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० कमलसिंह,
हिन्दी विभाग,
सनातन धर्म कालेज, मुजफ्फरनगर (उ० प्र०)

डा० आर० के० बार्ज़ के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१
दिनांक २५. ८. ७८ ई०

प्रियवर डा० बार्ज़,

आपके प्रश्नों को पढ़कर परम प्रसन्नता हुई और साथ ही कुछ अफसोस भी। प्रसन्नता इसलिए कि आप आस्ट्रेलिया-निवासी होते हुए भी हिन्दी भाषा के स्वरूप को तथा उसकी वर्तनी को इतनी बारीकी से जानने के अभिलाषी हैं; अफ़सोस इसलिए कि हमारे भारतीय हिन्दी-शोध-छात्र हिन्दी भाषा के स्वरूप को जानने के लिए ऐसी निष्ठा नहीं रखते।

भारत के हिन्दी-छात्र समझते हैं कि हिन्दी तो हमारी मातृभाषा है; इसलिए हिन्दी हमें आती हैं। उसे हम क्या पढ़ें ? उसमें जानने के लिए नया तथा बारीक है भी क्या ?

आपके प्रश्न जो क्रिया-रूपों से सम्बद्ध हैं, उन्हें मैं पहले यहाँ लिख रहा हूँ और आपके द्वारा उद्धृत किये हुए वाक्यों को लिखकर फिर उत्तर रूप में अपनी बात कह रहा हूँ।

आपने पत्र में लिखा है कि निम्नांकित वाक्यों में से कौन से वाक्य हिन्दी-व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध हैं ?

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क—{ (१) लड़कियाँ स्कूल जातीं हैं। (अथवा)
लड़कियाँ स्कूल जाती हैं।

× × × ×

ख—{ (१) खातीं-पीतीं लड़कियाँ शरीर से स्वस्थ रहतीं हैं। (अथवा)
(२) खाती-पीती लड़कियाँ शरीर से स्वस्थ रहती हैं।

× × × ×

ग—{ (१) चार महिलाएँ मेरे घर आयीं हैं। (अथवा)
(२) चार महिलाएँ मेरे घर आयी हैं।

× × × ×

घ—{ (१) वे महिलाएँ हमारे यहाँ आती, तो हम भी उनके यहाँ जाती (अथवा)
(२) वे महिलाएँ हमारे यहाँ आतीं, तो हम भी उनके यहाँ जातीं।

× × × ×

ङ—{ हम कल पढ़ने के लिए न जाएँगीं। (अथवा)
हम कल पढ़ने के लिए न जाएँगी।

बन्धुवर बार्ज़! आपके वाक्यों के क्रियापदों के अन्तर्गत जिन प्रत्ययों का समावेश है, उनके सम्बन्ध में मैं लिख रहा हूँ।

(क) का दूसरा वाक्य व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध है। जब कर्ता स्त्रीलिंग-बहुवचन होता है, तब क्रिया भी लिंग-वचन में उसी तरह प्रयुक्त की जाती है। लेकिन संयुक्त क्रिया की स्थिति में बहुवचन-सूचक-प्रत्यय अंतिम क्रिया में रहता है। इसलिए "लड़कियाँ स्कूल जाती हैं।" वाक्य व्याकरणिक दृष्टि से शुद्ध है। पूर्ववर्ती क्रिया 'जाती' का-ई प्रत्यय केवल स्त्रीलिंग सूचक है। यदि हिन्दी में कोई लिखता है—'लड़कियाँ जातीं हैं', तो यह वाक्य व्याकरण से अशुद्ध माना जाएगा।

(ख) का भी दूसरा वाक्य ही शुद्ध है। **'खाती-पीती'** वर्तमान कालिक कृदन्त है। यह यहाँ विशेषण के रूप में प्रयुक्त है। 'लड़कियाँ' स्त्रीलिंग, बहु-वचनीय संज्ञा पद है। इस विशेष्य का विशेषण 'खाती-पीती' है। यह अनुनासिक चिह्न के साथ नहीं लिखा जाएगा।

(ग) के दूसरे वाक्य की समापिका क्रिया 'आयी हैं' संयुक्त क्रिया है। इसमें भी अंतिम क्रिया में बहुवचन सूचक प्रत्यय रहेगा। अतः **'आयीं हैं'** अशुद्ध है, **'आयी हैं'** शुद्ध है।

(घ) संकेतार्थसूचक दूसरा वाक्य ही व्याकरण की दृष्टि से ठीक है। कर्ता स्त्रीलिंग बहुवचन है, इसलिए **आतीं**, **जातीं** जैसे अनुनासिक क्रियापद

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयुक्त किये जाने चाहिए। एकाकी क्रिया की स्थिति में बहुवचनीय प्रत्यय (अनुनासिकता) अवश्य रहना चाहिए। 'हम **जातीं**' में 'जातीं' एकाकी क्रिया हैं। अतः इसमें बहुवचन का प्रत्यय 'अनुनासिकता' सहित मौजूद है।

(ङ) खंड के वाक्यों की क्रियाएँ भविष्यत् काल में स्त्रीलिंग, बहुवचनीय रूप में प्रयुक्त की गयी हैं। इसमें **'गीं'** में बहुवचनत्व-सूचक अनुनासिक प्रत्यय नहीं लगेगा। 'जाएँ' में 'एँ' की अनुनासिकता ही बहुवचन को प्रकट करती है। इसलिए दूसरा वाक्य 'हम कल पढ़ने के लिए न **जाएँगी**' ठीक है।

हिन्दी भाषा की प्रकृति का अध्ययन गम्भीरतापूर्वक करनेवालों को निम्नांकित प्रयोगों को ध्यान में रखना चाहिए—

(१) **आती-जाती** लड़की।

(२) **आती-जाती** लड़कियाँ।

(३) **आता-जाता** लड़का।

(४) **आते-जाते** लड़के।

हिन्दी में वर्तमान कालिक स्त्रीलिंग बहुवचनीय कृदन्त विशेषण पद रूप में एक वचन का-सा ही रहता है। जैसे '**आती-जाती** लड़की' (एक वचन)'

'**आती-जाती**' दोनों स्थितियों में समान है। समान रहना भी चाहिए। इसी तरह '**अच्छी** लड़कियाँ; **अच्छी** लड़की। गुजराती भाषा में भी विशेषण पद एकवचन और बहु वचन में समान ही रहता है—"**न्हानी** छोकरी" (एक व०); "**न्हानी** छोकरीओ" (बहुवचन)।

गुजराती में तो भूतकाल (निर्देशार्थ) में स्त्रीलिंग क्रिया भी एक वचन, बहु वचन में समान रहती है—

(१) **छोकरी** घरे **गई** (=लड़की घर गई)।

(२) **छोकरीओ** घरे गई (=लड़कियाँ घर गईं)।

पंजाबी भाषा में बहुवचनीय स्त्रीलिंग विशेषण में बहुवचन का प्रत्यय लगता है। जैसे—

(१) **चंगी कुड़ी** (=अच्छी लड़की)।

(२) **चंगिआँ कुड़िआँ** (अच्छी लड़कियाँ)।

आप अपने नवीन समाचार और आस्ट्रेलिया के विश्वविद्यालयों के हिन्दी-पठन-पाठन के स्वरूप पर विस्तृत विचार लिखते रहा करें।

आपके प्रिय शिष्य नीमन जी ने श्री हितहरिवंश के 'हितचौरासी' का जो अंग्रेजी-अनुवाद किया है, उसे मैं पहले देखूँगा; तभी उसके विषय में कुछ कह सकूँगा। शेष फिर कभी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रिय बार्ज़ जी ! आपके परिचित सज्जन जो **हितहरिवंश** की **हितचौरासी** पुस्तक का अनुवाद कर रहे हैं; उनसे मेरा मैत्रीमय निवेदन है कि वह कुछ दिन ब्रजभाषा और उसका व्याकरण अवश्य पढ़ें। वे **ब्रजभाषा का व्याकरण (पं० किशोरीदास बाजपेयी)** और **ब्रजभाषा-व्याकरण (डा० धीरेन्द्र वर्मा)** पढ़लें, तो उत्तम रहेगा।

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

Dr. R. K. BARZ,
Hindi Department,
Faculty of Asian Studies,
Australian National University,
GANBERRA, A. C. T. 2600, TEL—49—3377

डा० (श्रीमती) सुमनसिंह के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१
दिनांक १८. ८. ७८ ई०

प्रिय शिष्या सुमनसिंह,

आशीर्वाद !

तुमने मेरी पुस्तक को बड़े ध्यान से पढ़ा है—यह जानकर बहुत प्रसन्नता है। सच्चे विद्यार्थी या सच्चे अध्यापक का यही सच्चा लक्षण है। तुम्हारा मूल प्रश्न यह है—

"बिम्ब आदि का वास्तविक परिचय 'भाषाविज्ञान' से किस प्रकार मिल सकता है ? आपकी पुस्तक 'भाषाविज्ञान: सिद्धान्त और प्रयोग' के मुख पृष्ठ पर लिखा है कि 'भाषाविज्ञान' की अवगति से ही साहित्यगत बिम्ब-सृष्टि का वास्तविक परिचय मिल सकता है।"

बेटी सुमन ! हम जब कोई काव्य-ग्रन्थ पढ़ते हैं, तब हम उसके शब्द, रूपों तथा वाक्यों के माध्यम से उन काव्य-पंक्तियों का अर्थ समझने पर ही आनंद प्राप्त कर सकते हैं। कवि ने जिस वस्तु, स्थान, व्यक्ति, घटना, रूप आदि को शब्द-रूपों (पदों) के माध्यम से व्यक्त किया है, उनका प्रतिबिम्ब जो मानस-पटल पर आता है, उसे ही तो साहित्य-समालोचकों ने **'बिम्ब'** नाम दिया है। अर्थात् काव्यगत बिम्ब की प्रतिच्छाया का नाम **'बिम्ब'** (Image) है। सरल शब्दों में यह कहा जा सकता है कि 'बिम्ब' शब्दों द्वारा गृहीत **मानसिक चित्र** है। सामान्य रूप से बिम्बों को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है—

(१) चाक्षुष बिम्ब (२) श्रोतव्य बिम्ब (३) आस्वाद्य बिम्ब (४) स्पृश्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिम्ब (५) घ्रातव्य बिम्ब। इन पाँचों में से प्रत्येक **एकाकी** या **संकर** भी हो सकता है। **चल** या **अचल** भी हो सकता है।

उपमेय और उपमान के रूप से बननेवाले मानसिक चित्र को क्रमशः लक्षित और उपलक्षित बिम्ब कहा जा सकता है।

ऐसे चित्रों में नेत्रों से ग्राह्य चित्र ही अधिक स्पष्ट हुआ करते हैं। इसीलिए चाक्षुष बिम्बों के द्वारा अभिव्यक्त घटनाएँ सबसे अधिक प्रभावी और बोधगम्य हुआ करती हैं। उन चाक्षुष बिम्बों की स्पष्टता शब्द-रूप तथा वाक्यार्थ पर ही पूर्णतः आधृत है।

कभी-कभी कवि श्लेष के माध्यम से दुहरे चाक्षुष बिम्बों की सृष्टि करता है। वे दुहरी बिम्ब-सृष्टियाँ काव्य-स्थल के आलम्बन-आश्रय की मनोभूमि के अनुसार होती हैं।

वाल्मीकि-रामायण में शूर्पणखा की मनोभूमि के अनुसार निम्नांकित श्लोक का चाक्षुष बिम्ब कुरूप तथा भद्दा बनता है; लेकिन लक्ष्मण की मनोभूमि के अनुसार उसी श्लोक से सुंदर तथा मनोहारी बिम्ब बनता है। लक्ष्मण शूर्पणखा से सीता जी के शरीर का वर्णन करते हुए कहते हैं कि रामचन्द्र जी वैसा अवश्य करेंगे। निम्नांकित श्लोक के वाक्य से दो भिन्न-भिन्न चाक्षुष बिम्ब सुविज्ञ पाठक के मानस-पटल पर बनते हैं—

ऐतां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम्।
भार्यां वृद्धां परित्यज्य त्वामेवैष भजिष्यति ।।

(वाल्मीकि रामायण, अरण्य०, सर्ग १८/श्लोक ११)

शूर्पणखा-पक्ष में—विरूपा = कुरूपा। असती = जो सती न हो। कराला = विकराल। निर्णतोदरी = धँसेहुए पेटवाली। वृद्धा = बुड्ढी। त्वां भजिष्यति = राम तुम्हें (शूर्पणखा को) स्वीकारेंगे।

लक्ष्मण-पक्ष में—विरूपा = विशिष्टरूपा। असती = जिसके समान कोई सती नहीं है। कराला = जिसके शारीरिक अंग उतार-चढ़ाव के साथ हैं। निर्णतोदरी = पतली कमरवाली तथा निम्न पेटवाली। वृद्धा = ज्ञान और रूप में बढ़ी हुई। वृद्धां भजिष्यति = राम सीता को स्वीकारेंगे।

काव्यस्रष्टा कवि उपमानों के द्वारा अथवा प्रतीकों के द्वारा बिम्बों को दिव्य और प्रभावी भी बनाया करते हैं। वे साधन कभी स्थूल होते हैं और कभी सूक्ष्म।

तुलसी ने **रामचरितमानस** में रामचन्द्र जी को **प्रेम** (स्थायीभाव) और भरत को **शृंगार** (रस) बताया है—**जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही**। (उत्तर० ५/छंद १)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामचरितमानस के **अयोध्याकांड** में तुलसीदास जी ने चित्रकूट पर मुनि वशिष्ठ और निषाद गुह के मिलन-व्यापार का वर्णन किया है और लिखा है—

रामसखा रिषँ बरबस भेंटा।
जनु महि लुठत सनेहु समेटा॥ (अयो०२४२/६)

इस उपर्युक्त अर्धाली में **रामसखा, रिषँ,** और **भेंटा** पद (शब्द-रूप) बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। जो पाठक इनके व्याकरणिक अर्थ को नहीं समझता, वह नहीं जान सकता कि कौन किससे भेंटा ? अर्थात् रामसखा (निषाद) ऋषि (वशिष्ठ) से मिला, या ऋषि (वशिष्ठ) रामसखा (निषाद) से मिले।

जो पाठक यह जानता है कि **रिषँ** शब्द अवधी भाषा में तृतीया विभक्ति का एक वचन है; और वाक्य में कर्तृपद है; 'रामसखा' प्रथमा विभक्ति का एक वचन है तथा वाक्य का कर्मपद है, वह समझ जाएगा कि ऋषि वशिष्ठ ने निषाद को छाती से लगाया है; अर्थ है—**ऋषि के द्वारा रामसखा** (निषाद) **भेंटा गया**। तात्पर्य यह कि वशिष्ठ ऋषि जी निषादराज गुह से मिले।

यह सब कुछ व्याकरणिक शब्द-रूप पर ही निर्भर है, जो भाषाविज्ञान का अंग है। इसलिए भाषाविज्ञान की अवगति से ही काव्य-बिम्ब का पूरा परिचय प्राप्त किया जा सकता है। बिम्ब की स्पष्टता अर्थ की स्पष्टता है। व्याकरण का ज्ञान भाषा के सही अर्थ को तथा सही बिम्ब को प्रकट करता है। निम्नांकित दोहे में **बदनु** का **उकार** द्वितीया विभक्ति तथा कर्मकारक का सूचक है। इसे जाननेवाले व्यक्ति के मानस-पटल पर ही सही बिम्ब बन सकता है—

ता तें सुर सीसन्ह चढ़त, जगबल्लभ श्रीखंड।
अनल दाहि पीटत घनन्हि, परस बदनु येह दंड॥ [मानस, उत्तर०३७/-]

काव्यास्वाद का भी मूल आधार भाषा-ज्ञान है। कविता के रस का पान सच्चे अर्थों में वही कर सकता है, जिसे भाषा का पूर्ण बोध है।

तुम्हारे कालेज का पठन-पाठन ठीक चल रहा होगा—ऐसी आशा है। कन्याएँ लड़कों की अपेक्षा अध्ययन के प्रति अधिक निष्ठावती और ईमानदार होती हैं। इसलिए तुम्हें बहुत समस्याए झेलनी न पड़ती होंगी। तुम्हारे कालेज में जब मैं व्याख्यान देने गया था, तब मैंने यह अनुभव भी किया था कि तुम्हारी छात्राएँ जागरूक तथा ज्ञान-पिपासु हैं। माता वीणापाणि उनका मंगल करें।

आशा है तुम सपरिवार सानंद होंगी।

डा० (श्रीमती) सुमनसिंह, पी-एच० डी०,
हिन्दी-विभाग,
आर्य कन्या पाठशाला डिग्री कालेज, खुरजा (बुलन्दशहर)

शुभैषी,
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रो० कैलाशचन्द्र भाटिया के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़
२०२००१ (उ० प्र०)
दिनांक २२. ८. ७८ ई०

प्रिय भाई भाटिया जी,

सप्रेम नमस्कार !

आपके दो पत्र मिले; प्रथम दिनांक १४-८ ७८ का, और द्वितीय दिनांक २१–८–७८ का। इन दोनों पत्रों में **आपने व्याकरण के आधार पर शब्द-निर्माण तथा शब्द-सिद्धि के सम्बन्ध में प्रश्न उठाये हैं।**

आपने लिखा है कि "इधर मैं **संवैधानिक** शब्द का प्रयोग कर रहा था; पर हाल में ही भारत सरकार की 'सचिवालय-हिन्दी-परिषद्' ने **सांविधानिक** का प्रयोग कर डाला। इस तरह तो **लैपविज्ञानिक** जैसा रूप भी शुद्ध है। कृपया हिन्दी की प्रकृति से विचार करें।"

प्रिय भाई भाटिया जी ! शब्द-निर्माण के सम्बन्ध में पहले तो दो प्रकार के शब्दों को दृष्टि-पथ में रख लीजिए—(१) **समस्त शब्द** (सामासिक शब्द) (२) **व्यस्त शब्द** (एकाकी शब्द)।

लिपिविज्ञान या **भाषाविज्ञान** जैसे शब्द सामासिक शब्द हैं। **लिपि** का **विज्ञान** ही सामासिक अवस्था में **लिपिविज्ञान** बनता है। इस समस्त शब्द को विशेषण-रूप देने के लिए उत्तर शब्द में प्रत्यय का योग करते हैं। लिपि + (विज्ञान + ठक्) = वैज्ञानिक = लिपिवैज्ञानिक। इसी तरह भाषा + (विज्ञान + ठक्) = भाषा + वैज्ञानिक = भाषावैज्ञानिक। जो दो संज्ञा शब्दों से बने होते हैं, उन सामासिक शब्दों में उत्तर शब्द में प्रत्यय का योग किया जाता है।

संस्कृत में 'इक' के रूप में ठन् और ठक् प्रत्यय पाणिनि ने बताये हैं। अन्तर इतना है कि ठन् केवल इक के रूप में ही शब्द में योग करता है, जैसे धन् + ठन् = धनिक। लेकिन ठक् इक के साथ आदि स्वर में वृद्धि कर देता है। **अ, इ, उ** का क्रमशः **आ, ऐ, औ** में बदलना वृद्धि कहाता है। **विधान** में ठक् के योग से **वैधानिक** शब्द बनता है। लेकिन 'सम्' उपसर्ग के योग से **संविधान** शब्द एकाकी है, व्यस्त है। 'सम्' उपसर्ग है, पूर्ण शब्द नहीं है। **संविधान** भी एक ही शब्द माना जाएगा। अतः संविधान + ठक् = **सांविधानिक**। विधान + ठक् = **वैधानिक**। विधि विधान + ठक् = **विधिवैधानिक**।

सारांश यह कि सामासिक शब्द में तो उत्तर शब्द में प्रत्यय लगता है, लेकिन एकाकी शब्द में तो उसी में लगता है। इसलिए **लैपविज्ञानिक**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं, अपितु **लिपिवैज्ञानिक** शब्द संगत एवं साधु है और संविधान से बना हुआ **सांविधानिक** शब्द संगत और साधु है।

मनस् से ठक् प्रत्यय के योग से **मानसिक** बनेगा और मनस् + विज्ञान = मनोविज्ञान से ठक् प्रत्यय के योग से **मनोवैज्ञानिक** शब्द बनेगा। इसी तरह **योग** से **यौगिक** और **संयोग** से **सांयोगिक** शब्द बनाने चाहिए; बनते भी हैं; किन्तु **ग्रह-योग** से **ग्रहयौगिक** बनेगा।

शब्द-निर्माण के सम्बन्ध में एक बात अच्छी तरह से समझ लेनी चाहिए कि व्याकरण शास्त्र किसी शब्द को भले ही बना दे; किन्तु जब तक साहित्य और लोक-जीवन में उसका प्रयोग न होगा, तब तक वह ग्राह्य न होगा। **शश** शब्द में इन् के योग से शशिन् शब्द बनता है, जिसका प्रथमा विभक्ति, एक वचन में **शशी** पद बनेगा। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—"नक्षत्राणां अहं शशी"। चन्द्रमा के अर्थ में **शशांक** और **मृगांक** शब्द भी साहित्य में प्रयुक्त होते हैं। शश से जैसे **शशी** बनता है, वैसे ही मृग से **'मृगी'** पद भी व्याकरण बना सकता है। किन्तु **शशी** या **शशांक** की भाँति चन्द्रमा के अर्थ में **मृगी** गृहीत नहीं हुआ। केवल **मृगांक** गृहीत हुआ।

हिन्दी की सामान्य प्रकृति के संबध में व्याकरण कहता है कि संज्ञा में **ई** प्रत्यय के योग से विशेषण शब्द बनता है; ज़ैसे—**अफीम** से **अफीमी** (= अफीम का नशा करनेवाला); लेकिन **भंग** से **भंगी** नही बनता, **भंगड़ी** बनता है। भाषा स्वयं बड़ी सावधान रहती है।

मैं समझता हूँ कि **सांविधानिक** और **लिपिवैज्ञानिक** शब्दों की व्याकरणिक सिद्धि की बात आपको स्पष्ट हो गयी होगी।

इस समस्या के सम्बन्ध में **डा० बाबूराम जी सक्सेना** और **आचार्य पं० किशोरीदास जी वाजपेयी** को भी पत्र लिखिए। उनके विचार भी जानिए—**वादे-वादे जायते तत्त्वबोधः।**

हर्ष है आप स्वस्थ और सानंद हैं। आगरा विश्वविद्यालय के हिन्दी विद्यापीठ से प्रकाशित होनेवाले त्रैमासिक शोध-पत्र **'भारतीय साहित्य'** में मेरा जो पत्र 'उकारबहुला अपभ्रंश एवं ब्रजभाषा' के सम्बन्ध में छपा था, वह अंक मुझे मिल नहीं रहा है।

शेष फिर कभी। सस्नेह,

डा० कैलाशचन्द्र भाटिया, डी० लिट्० आपका

विभाग, हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाएँ अम्बाप्रसाद 'सुमन'

राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी (उ० प्र०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० भोलानाथ तिवारी के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१
दिनांक ६. ६. ७८ ई०

प्रिय बन्धु तिवारी जी,

सप्रेम नमस्कार !

आपका दिनांक २. ६. ७८ का पत्र मिला । आपके परीक्षकत्व-पारिश्रमिक के सम्बन्ध में मैं रजिस्ट्रार (परीक्षा) के कार्यालय से मालूम करूँगा । कृपया आप भी एक अनुस्मारक लिख दें ।

आपने लिखा है—**साहित्य की ब्रजभाषा का क्या व्याकरणीय और शब्दीय आधार कभी भी बोलचाल की ब्रजभाषा रहा है ?**

बन्धुवर ! अष्टछाप के कवियों की ब्रजभाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है । उसका व्याकरणिक और शब्दीय आधार बोलचाल की ब्रजभाषा है । सूरदास के 'सूरसागर' की भाषा तो अधिकांश में एक प्रकार से अलीगढ़ और मथुरा जिलों की बोलचाल की भाषा ही है ।

अलीगढ़ ज़िले की जनपदीय ब्रजभाषा में संज्ञापद प्रायः औकारान्त पाये जाते हैं । सामान्य भूतकाल [निर्देशार्थ] में पुंलिंग, एकवचन का कृदन्त-क्रिया-रूप भी औकारान्तही मिलता है । जैसे—**बानैं पामरौ मारौ; मैंने आँधरौ देखौ** [अलीगढ़ ज़िले में] । 'सूरसागर' में भी क्रियापद **तारौ, मारौ** आदि मिलते हैं—

सुनियत कथा पुराननि गनिका व्याध, अजामिल तारौ

—[सूरसागर ना० प्र० सभा, स्कंध १/१५७]

सुर-नर-मुनि सब सुजस बखानत, दुष्ट दसानन मारौ

—[सूरसागर, ना० प्र० सभा, स्कंध ६/१५६]

तहसील **इगलास, माट, मथुरा** आदि में भूतकाल के पुंलिंग, एकवचन कृदन्त क्रियापदों में य् श्रुति का आगम हो जाता है । य् श्रुति के साथ भी अनेक क्रियापद सूरसागर में पाये जाते हैं । जैसे—

तोर्यौ कोपि प्रबल गढ़, रावन टूक-टूक करि डार्यौ ।

—[सूरसागर, ना० प्र० सभा, स्कंध ६/१५६]

कृपा करी प्रहलाद भक्त पर, खंभ फारि हिरनाकुस मार्यौ ।

—(सूरसागर ना० प्र० सभा, स्कंध १/१४)

अलीगढ़ ज़िले में **मारौ**, और मथुरा ज़िले में **मार्यौ** बोला जाता है ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दों तथा व्याकरणिक रूपों की दृष्टि से 'सूरसागर' के निम्नांकित वाक्य अलीगढ़ और मथुरा जिलों की ब्रजभाषा में आज भी बोले जाते हैं—

करौ, रसोई, मैं बलि जाऊँ (सूरसागर, ना० प्र० सभा, १०/५७)
जसुदा मदन गोपाल सोवावै (सूरसागर, ना० प्र० सभा, १०|६५)
मैया मोहिं बड़ौ करि लै री (सूरसागर, ना० प्र० सभा, १०/१७६)
कहन लागे मोहन मैया-मैया (सूरसागर, ना० प्र० सभा, १०/१५५)
देखि सखी ! यह सुंदरताई (सूरसागर, ना० प्र० सभा, १८१०)

उपर्युक्त उदाहरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि 'सूरसागर' की साहित्यिक ब्रजभाषा का शब्दीय और व्याकरणिक आधार बोलचाल की ब्रजभाषा ही है। हाँ कुछ क्रियापद 'सूरसागर' में ऐसे मिलते हैं, जो आज-कल ब्रज-क्षेत्र में नही बोले जाते; जैसे **सुनियत** (सूर० १/१५७), **मरियत** (सूर० १/१३८)—ये क्रियाएँ भाववाच्य की हैं।

भाववाच्य की क्रिया पर कर्ता या कर्म के लिंग-वचन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। वह सदा एकरूपिणी रहती है। सूरसागर की ये निम्नांकित क्रियाएँ एकरूपिणी हैं; अतः भाववाच्य की हैं—

'सुनियत' कथा पुराननि, गनिका व्याध अजामिल तारौ (सूर०, काशी ना० प्र० स० १/ १५७)
'मरियत' लाज भूर पतितन मैं, मोहूँ तैं को नीकौ (सूर०, १/१३८)
'कहियत' ये बसुदेव-कुमारै (सूर० काशी ना० प्र० स०, १०/३०४४)
'सुनियत' हरिजू मधुबन छाए (सूर०, १०/३९५४)

जिसे सूरदास जी ने **सूर मरियत** लिखा है, उसे आज-कल ब्रजभाषा-क्षेत्र (अलीगढ़, मथुरा आदि ज़िलों) में लोग **सूर मरौ जातवै,, सूर मर्‌यौ जावै** या **सूरु मरौ जातु है** बोलते हैं। सूर की ब्रजभाषा के **'मरियत'** जैसे कुछ व्याकरणिक रूप आज अलीगढ़ तथा मथुरा ज़िलों की ब्रजभाषा में समाप्त हो गये हैं।

हर्ष है, परमेश की दया से आप सपरिवार सानन्द हैं। आज दैनिक **हिन्दुस्तान** में पढ़ा कि मॉडल टाउन में बाढ़ का पानी आ गया है। आप कृपया वास्तविक स्थिति से अवगत कराएँ। हमें चिन्ता है। बच्चों को आशीर्वाद।

सस्नेह,

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० भोलानाथ तिवारी,
ई—४/२३ मॉडल टाउन, दिल्ली—९

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० शिवनारायण सक्सेना के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१

प्रियवर, दिनांक ८. ६. ७८ ई०

आज-कल **भाषाविज्ञान की पुस्तकों में विदेशी शब्दावली के अन्तर्गत फ़ारसी और अरबी भाषाओं के शब्दों को एक जगह लिख दिया जाता है।** कुछ लेखक परिश्रम से बचने ने लिए उन शब्दों को अरबी-फ़ारसी-शब्द लिख देते हैं। उससे यह पता नहीं चलता कि वे शब्द अरबी भाषा के हैं; या फ़ारसी भाषा के?

वास्तव में अरबी भाषा की कुछ विशिष्ट ध्वनियाँ हैं, उन ध्वनियों के कारण अरबी शब्दों की पहचान हो सकती है।

मैं आपसे संक्षेप में यहाँ निवेदन कर दूँ कि अरबी भाषा में काग के पीछे जिह्वामूल के नीचे उपालिजिह्वा को छुवाकर ध्वनियाँ की जाती हैं। अरबी में बड़ी **हे, ऐन, ग़ैन** (ح ع, غ,) आदि ध्वनियाँ उपालिजिह्व हैं। इनमें से कोई एक ध्वनि जिस शब्द में होगी, वह शब्द अरबी भाषा का ही मूलतः माना जाएगा, फ़ारसी भाषा का नहीं।

इसलिए **हाकिम रहीम, आलिम अक़्ल, औरत, ग़ैर, ग़ुलाम, ग़ौर ग़ालिब** आदि शब्द अरबी भाषा के हैं। इनमें उपालिजिह्व ध्वनियाँ हैं। **तोय, ज़ोय, स्वाद, ज़्वाद** वर्णों का उच्चारण भी अरबी ध्वनियों का सूचक है। इन वर्णोंवाले शब्द भी अरबी भाषा के ही होते हैं।

प्रिय भाई! फ़ारसी भाषा ने ब्रजभाषा, अवधी और खड़ीबोली को शब्द के स्तर पर ही नहीं; अपितु व्याकरणिक स्तर पर भी प्रभावित किया है। हिन्दी में स्त्रीलिंग शब्दों के बहुवचन में जो **आँ** प्रत्यय मिलता है, वह मुझे फ़ारसी का प्रभाव लगता है। फ़ारसी में **ज़न** (=औरत) का बहुवचन **ज़नाँ** होता है। उसी तरह हिन्दी में भी **लड़की** शब्द का बहुवचन **लड़कियाँ** होता है। फ़ारसी में विशेष्य पहले और विशेषण बाद में आता है;—**ख़याल शरीफ़**–जैसे प्रयोग तुलसी के **मानस** में भी मिलते हैं; यथा—**मन मलीन, तन सुंदर** (रामचरितमा०, बाल० २७८/८)

शब्द और व्याकरण के स्तर पर **अरबी भाषा** ने भी हिन्दी को कुछ-कुछ प्रभावित किया है। अनेक अरबी शब्द हिन्दी में आये हैं। कुछ उर्दूदाँ हिन्दी-लेखक अ० **मकानात, काग़ज़ात** आदि बहुवचनीय शब्दों का प्रयोग हिन्दी में कर रहे हैं।

अरबी भाषा के **माल, ग़लत** और **सही** शब्द तो हिन्दी में ख़ूब चालू हैं। **सही** (=सच्चा) शब्द का प्रयोग तो तुलसीदास के **रामचरितमानस** में भी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारह बार हुआ है। अरबी शब्द **सहीह** ही हिन्दी में **सही** बोला जाता है।

चाहे **पाकिस्तान** और **हिन्दुस्तान** के दिल सही मानियों में मिले हुए न हों, लेकिन अरबी, फ़ारसी और हिन्दी के दिल ज़रूर मिले हुए हैं और सही रूपों में।

बच्चों को आशीर्वाद। कुशल-क्षेम देते रहा करें। सस्नेह,

डा० शिवनारायण सक्सेना, आपका

एम० ए०, पी–एच० डी० अम्बाप्रसाद 'सुमन'

व्याख्याता,

शा० उ० मा० विद्यालय, जोबट, जि० झाबुआ (म० प्र०)

सुकवि श्री त्रिभुवननाथ शर्मा मधु' के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१

दिनांक ११. ९. ७८ ई०

प्रिय भाई श्री मधु जी,

आपके **श्री शत्रुहन** (महाकाव्य) की पाण्डुलिपि मुझे रजिस्ट्री डाक से मिल गयी है और **श्री मृगेश** जी की प्रकाशित पुस्तक **'बरवै-व्यंजना'** भी। मैं **'बरवै-व्यंजना** पर अपनी संमति लिख भेज रहा हूँ। कृपया उनके पास भिजवा दें। अवधी भाषा के कुछ प्रयोगों के सम्बन्ध में मैंने उनसे कुछ मालूम करना चाहा है।

आपकी कृति **'रावण का विक्षोभ'** और श्री मृगेश जी की **'बरवै-व्यंजना'** भाषा-माधुर्य की दृष्टि से मुझे बहुत भायी है। भाषा कवि की कला के लिए उपादान सामग्री है। जिसके पास प्रांजल, परिष्कृत तथा मधुर भाषा है, उस कवि की कला निश्चित रूप से ग़ज़ब की होगी।

प्रिय भाई मधु जी! हिन्दी के बहुत-से लेखक हिन्दी के शब्दों की वर्तनी में हल् और अनुनासिक चिह्न (चन्द्र बिन्दु) का ध्यान नहीं रखते। यह ठीक नहीं है। हिन्दी में **अनुस्वार** और **अनुनासिकता** दो पृथक्-पृथक् ध्वनिग्राम हैं। इनसे शब्दों में अर्थ बदल जाता है। **हंस** और **हँस** में अर्थ-भेद है। **हंस**=एक विशेष पक्षी। **हँस**=मुख, दाँतों, होठों आदि से की जानेवाली एक क्रिया, जिसे 'मुस्कराना' के समान समझना चाहिए, हँसना कही जाती है। अतः हिन्दी में **अनुस्वार** और **अनुनासिकता** दो पृथक्-पृथक् ध्वनिग्राम हैं।

हल् भी आवश्यक चिह्न है। यह अर्थ की स्पष्टता के लिए आवश्यक है। **कीर्तिमान** और **कीर्तिमान्** में अन्तर है। कीर्तिमान=यश की नाप। कीर्तिमान्=यशस्वी, यशवाला।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुनासिकता वैदिक साहित्य में भी मिलती है। 'महान्' और 'असि' को संधिगत रूप में 'महाँ असि' लिखा गया है। इसी प्रकार 'महान् इन्द्रः' को 'महाँ इन्द्रः' के रूप में व्यक्त किया गया है। हिन्दी की कविता में **अंगना** (=स्त्री) और **अँगना** (=आँगन, सहन) के प्रयोगों से मात्रा-गणना में अन्तर पड़ जाएगा। '**अंगना**' में पाँच मात्राएँ और '**अँगना**' में चार मात्राएँ हैं। अनुनासिकता से मात्रा-संख्या नहीं बढ़ती, अनुस्वार से बढ़ जाती है—इसीलिए 'अंगना' में एक मात्रा बढ़ गयी है।

आपकी पाण्डुलिपि को देखने में समय लग सकता है। हर्ष है आप सानंद हैं।

चि० राकेश से मेरी ओर से कहें कि '**अध्ययन परम तप**' है और **ब्राह्मण** का अर्थ है—वाङ्मय तप का तपस्वी। सबको असीस।

श्री त्रिभुवननाथ शर्मा 'मधु', आपका
बाराबंकी (उ० प्र०) अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री जगवीरकिशोर जैन के नाम

८/७, **हरिनगर, अलीगढ़**–२०२००१
प्रियवर जगवीरकिशोर जी, दिनांक १२. ९. १९७८ ई०

आपके पी-एच० डी०–शोध-विषय-शीर्षक के संबंध में मेरी बातें डा० महेन्द्रसागर जी प्रचंडिया से भी हो चुकी हैं। आप **शतक-साहित्य** पर मनोयोग से कार्य करें। निश्चित रूपेण यह आपका मौलिक योगदान होगा। '**शतक-साहित्य**' और 'सप्तशती-साहित्य 'नाम से दो पृथक्-पृथक् धाराएँ रही हैं। जो दोनों को एक समझते हैं, वे ग़लती पर हैं।

संस्कृत में '**सप्तशती**' शब्द है, जिसका अर्थ है सात सौ का समुदाय। ईसा की बारहवीं शताब्दी में संस्कृत के कवि गोवर्द्धन ने 'आर्यासप्तशती' नाम से एक काव्यग्रंथ रचा था, जिसमें सात सौ छन्द हैं। इसी प्रकार का एक काव्य-ग्रंथ सर्वप्रथम प्राकृत भाषा में कवि हाल अर्थात् शातवाहन ने ईसवी दो सौ पचास (२५० ई०) के लगभग '**सत्तसई**' नाम से रचा था। संस्कृत के '**सप्तशती**' शब्द को ही प्राकृत भाषा में '**सत्तसई**' कहते हैं। उपर्युक्त दोनों ग्रंथ मुक्तक काव्य के अंतर्गत आते हैं। मुक्तक काव्य एक गुलदस्ता होता है, जिसमें विभिन्न भावों के पुष्प-छन्द एक जगह सजाये जाते हैं।

परन्तु संस्कृत में एक काव्य-परंपरा **शतक**-काव्यों की भी चली थी, जिसमें सन् ६३० ई० में **मयूर कवि** ने पहल की थी। उन्होंने **मयूरशतक** नाम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से एक स्तोत्र काव्य-पुस्तक रची थी। फिर बाणभट्ट ने सन् ६४० ई० में **चंडी-शतक** की रचना की। सन् ६५० ई० में कविवर भर्तृहरि ने तीन शतकों की रचना की—(१) **नीतिशतक** (२) **श्रृंगारशतक** (३) **वैराग्यशतक।**

शतक-साहित्य भी मुक्तक काव्य के अन्तर्गत ही माना जाएगा। इनमें सौ छन्द होते हैं। 'शत' या 'शतक' का अर्थ ही 'सौ' है—सं० **शतक** या **शत** > **सअ, सइ, सउ** > **सौ।** एक सौ छन्दों की समुदायवाली पुस्तक को शतक कहते हैं। हिन्दी भाषा में भी 'शतक' मिलते हैं।

सन् १८६६ ई० में महाप्राण निराला ने एक खंडकाव्य की रचना की थी, जिसका नाम है **'तुलसीदास'**। इसे हम **शतक** की संज्ञा दे सकते हैं, क्योंकि इसमें एक सौ (१००) छन्द हैं। पहले छंद की पहली पंक्ति है—**भारत के नभ का प्रभापूर्य,** और सौवें छन्द की अंतिम पंक्ति है—**प्राचीदिगन्त-उर में पुष्कल रवि-रेखा।** जैन ऋषियों ने भी **शतक लिखे हैं।**

प्रियवर! यदि आप अपने जीविका-कर्तव्य-समय में से प्रतिदिन दो घंटे का समय शोध के लिए निकालते रहे, तो तीन वर्षों में शोध-कार्य पूर्ण कर लेंगे। शेष फिर कभी। हर्ष है आप सानंद हैं।

आपके विद्यालय के शिक्षक श्री जगदीश जी से मुझे यह जानकर परम प्रसन्नता हुई कि आपके विद्यालय का एक भी अध्यापक धूमपान नहीं करता। मेरी बधाई और साधुवाद आपको तथा आपके सब सहयोगियों को। सस्नेह,

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री जगवीरकिशोर जैन,
प्रधानाचार्य,
बाबूलाल जैन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय,
कृष्णापुरी, अलीगढ़ (उ० प्र०)

डा० कैलाशचन्द्र अग्रवाल के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़
दिनांक १४. ६. १६७८ ई०

प्रियवर,

आशीर्वाद!

प्रियवर सुरेशचन्द्र शर्मा, और प्रियवर रामकृष्ण शर्मा के प्रसंग में आपका स्मरण हुआ। सहज भी है। आप तीनों एक ही शिक्षा-संस्था में हिन्दी-सेवा कर रहे हैं।

इस क्षण वह दृश्य भी आँखों में आ गया जब हिन्दी-विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा के तत्त्वावधान में यू० जी० सी० के अनुदान से 'हिन्दी भाषा और भाषाविज्ञान' पर एक संगोष्ठी-आयोजना कार्यान्वित हुई थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब मेरे भाषणों में आप भी उपस्थित रहते थे। वहां ही हमारा पारस्परिक प्रथम मिलन हुआ था।

आप अब सोरों के निकट रहते हैं; भाषाविद् भी हैं। अतः भाषा के आधार पर तुलसी की विद्या-भूमि, निवास-भूमि तथा जन्म-स्थान आदि का कृपया पता लगाइए।

जिस कवि ने जिस ज़िले या जनपद में अपना बाल्यकाल बिताया होगा, उसकी भाषा के संज्ञा, सर्वनाम तथा क्रियारूपों का प्रभाव उसकी भाषा पर पड़ना चाहिए। जब-तब अव्यय शब्द भी जनपद की सूचना दे दिया करते हैं। **'धीरे-धीरे'** के लिए अवधी क्षेत्र में **'रस-रस'**, और ब्रजभाषा क्षेत्र में **'हौलैं-हौलैं'** बोलते हैं। सबसे प्रमुख और महत्त्वपूर्ण भाषिक तत्त्व लिंग-प्रयोग है। कुछ विशिष्ट शब्द एक क्षेत्र में यदि पुंलिंग में बोले जाते हैं, तो दूसरे क्षेत्र में स्त्रीलिंग में। **अलीगढ़** ज़िले में **'दही'** शब्द पुंलिंग में बोला जाता है, लेकिन **दिल्ली** के पास के क्षेत्र में स्त्रीलिंग में प्रयुक्त है।

बाल्यकाल तथा युवावस्था में शब्द-प्रयोग में जो लिंग दिमाग़ में बस जाता है, वह आसानी से नहीं हटता। शब्द-लिंग का विस्तृत और गहन अध्ययन हमें किसी कवि के बाल्यकाल के निवास-स्थान का संकेत देने में सहायता कर सकता है।

डा० विद्यानिवास मिश्र का एक निबन्ध-संग्रह है। उसमें एक जगह **'बौर'** शब्द **बहुवचन** में प्रयुक्त है—**"आम पर बौर आ गये"**। ब्रज-क्षेत्र में **'बौर' एकवचन** में ही प्रयुक्त होता है—**आम पै 'बौर' आइ गयौ**"। मैं भी बोलता हूँ—"आम पर बौर आ गया।" मैंने जब डा० मिश्र जी से पूछा कि "क्या भोजपुरी बोली में **'बौर'** का प्रयोग **बहुवनन** में होता है?" तब उत्तर में **'हाँ'** कहा। डा० मिश्र भोजपुरी-क्षेत्र के ही हैं।

तुलसीदास के काव्यों में आप कुछ विशिष्ट शब्दों के लिंग-प्रयोगों पर विस्तार से विचार करें, तो हमें तुलसी की जन्मभूमि तथा विद्याभूमि के विषय में कुछ पता लग सकता है। तुलसीदास जी के 'रामचरितमानस' में निम्नांकित शब्द स्त्रीलिंग में प्रयुक्त किये गये हैं; **प्रस्न, रुख, चौक, इतिहास, उपहास, साप** आदि। ये शब्द जिस क्षेत्र में स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते हैं, उस क्षेत्र में तुलसी का बाल्य-काल तथा युवावस्था अवश्य बीती होगी, ऐसा अनुमान किया जा सकता है।

तुलसीदास के ग्रंथों में ऐसे ही विशिष्ट लिंग-प्रयोगों पर विशेष ध्यान दिया जा सकता है।

यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि कवि की कृति में आये हुए बिम्बों,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीकों, उपमानों, आलंकारिक उत्प्रेक्षाओं आदि से कवि की मानसिकता तथा परिस्थिति का भी कुछ पता लगता है। तुलसी की रंक और स्वर्ण की उत्प्रेक्षाएँ उनके निर्धन होने का संकेत देती हैं—

"कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना॥"

—(रामचरित०, अयो० १३५/२)

तुलसी के "रामचरितमानस में अकारान्त पुंलिंग संज्ञा शब्द प्रथमा और द्वितीया विभक्ति में उकार के साथ मिलते हैं, जो महत्त्वपूर्ण हैं। जैसे—जनकु (बाल० २४४/४), दोसु (अयो०२६३/८)।

जनपदीय शब्दों के प्रयोगों से भी तुलसी की निवास-भूमि का कुछ पता लग सकता है। हिन्दी-जगत् में तुलसी के जन्मस्थान के सम्बन्ध में जो विवाद चल रहा है, उसे कुछ दूर करने मेंआपका उक्त प्रयास कुछ सहायक सिद्ध होगा और कासगंज में आपका प्राचार्यत्व सफल तथा श्रेयस्कर बन जाएगा। आप जैसे भाषाविद् अधीती से मैं ऐसी आशा रखता हूँ।

आशा है आप सपरिवार सानंद होंगे। प्रियवर, रामकृष्ण शर्मा और प्रियवर सुरेशचन्द्र शर्मा से आपका कुशल-क्षेम मिलता रहता है। सस्नेह,

डा० कैलाशचन्द्र अग्रवाल, डी० लिट्० शुभैषी
प्राचार्य, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
कोठीवाला आढ़तिया डिग्री कालेज, कासगंज (एटा)।

डा० गिरिधारीलाल शास्त्री के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ २०२००१

प्रिय भाई गिरिधारीलाल जी, दिनांक १५. ६. ७८ ई०

आपका प्रश्न है कि " **'लाहित्य'** नाम-रूप का एक भव्य एवं प्रभावी वर्णन तो है, किन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि **सृष्टि-रचना के समय पहले 'शब्द' था या 'वस्तु'? कृपया अपना स्पष्ट मत लिख भेजने का कष्ट करें।**" इसका उत्तर जैसा मैं समझता हूँ, लिख रहा हूँ।

प्रियवर शास्त्री जी! आपका प्रश्न वास्तव में महत्त्वपूर्ण है और साहित्य के साथ भाषा के उद्गम से भी सम्बन्ध रखता है।

तैत्तिरीयोपनिषद् की ब्रह्मानन्दवल्ली के सप्तम अनुवाक के प्रारम्भ में ही कहा गया है कि "**असद् वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत**" अर्थात् पहले यह जगत् असत् ही था। उसीसे सत् (नाम-रूपात्मक व्यक्त) की उत्पत्ति हुई। इस उत्पत्ति के क्रम पर प्रश्नोनिषद् (अध्याय ६/मंत्र ४) में बताया गया है कि पहले

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकाश उत्पन्न हुआ। फिर आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी बनी।

"खं वायुर्ज्योतिराप: पृथिवी (प्रश्नोपनिषद् ६/४)

प्रश्नोपनिषद् में ही उल्लेख है कि उस अव्यक्त ब्रह्म ने इच्छा प्रकट की कि मैं एक हूँ, बहुत हो जाऊँ—"**एकोऽहं बहु:स्याम्**" (प्रश्नोपनिषद्)।

'**शब्द**' आकाश का गुण है। गुण गुणी में समाविष्ट रहता है। इसलिए '**शब्द**' सृष्टि रचना में पहले उत्पन्न हुआ। कीट, पतंग, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि तो पृथिवी की रचना के समय अस्तित्व में आये। यहाँ तक कि वायु, अग्नि, जल का अस्तित्व भी आकाश के बाद ही है। हाँ, इतनी बात अवश्य है कि वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी (वृक्षादि) ने उस शब्द को अधिक स्पष्टता एवं इन्द्रिय ग्राह्यता प्रदान की।

मनुष्य के फुप्फुस की वायु उसके मुख से निस्सृत होकर उस शब्द को अनेक भागों में विभक्त करने लगी, तब वह शब्द अनेक प्रकार की विभिन्न मूल ध्वनियों में व्यक्त होने लगा। ध्वनियाँ मिलकर एक इकाई व्यक्त करने लगीं। आदि मानव समुदाय के पास कुछ प्रतीकात्मक ध्वनि-समष्टियाँ थीं। उनमें से किसी एक का प्रयोग किसी एक विशिष्ट वस्तु के लिए निश्चित कर लिया गया। आदि मानव-समुदाय ने सृष्टि के आदि में जब विशाल द्रव पदार्थ देखा, तब उसे '**आप**' (=जल) कहना निश्चित कर लिया। तदनन्तर सभी उसे 'आप' कहने लगे। मंत्रद्रष्टा ऋषि कहने लगा—

"**शन्नोदेवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये**" (यजु० ३६/११)

'आप' शब्द में कोई प्रकृति-प्रत्यय का विचार नहीं था। प्रकृति-प्रत्यय की कल्पना या विचार तो सैकड़ों वर्षों के बाद मानव के मस्तिष्क में आया।

आदि में जिस जल के लिए 'आप' शब्द निश्चित हुआ, उसे कुछ और भी कहा जा सकता था। परन्तु तत्कालीन मानव-समुदाय ने अपनी सुविधा के लिए यह नियम अवश्य स्वीकार किया कि एक बार जिस वस्तु को जो नाम दे दिया गया, फिर भविष्य में प्रत्येक मनुष्य उस वस्तु को उसी नाम से पुकारता रहा। वैदिक काल का जलवाची शब्द '**आप**' और फ़ारस देशवासियों की फ़ारसी भाषा का शब्द '**आब**' हमें आदि मानव-समुदामय की भाषागत आचार-संहिता के पालन की ओर संकेत करता है।

दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि आदि मानव-समुदाय ने शब्द के पीछे वस्तु को अनुगामी बना दिया था। अर्थात् 'नाम' के पीछे 'रूप' को चलाया। हमारे वे मंत्र-द्रष्टा ऋषि आदि मानवों में ही माने जाएँगे। उनकी वाणी के पीछे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ (वस्तु) दौड़ा था। भवभूति ने संकेत भी किया है—

"ऋषीणां पुनराद्यानां वाचं अर्थोनुधावति ।"

—(भवभूति, उत्तरराम० १/१०)

ईश्वर ने वस्तुएँ बनायीं। उन वस्तुओं के लिए अलग-अलग जातिवाचक नाम मानव-समुदाय ने दिये। अतः हम यह कह सकते हैं कि 'रूप' ईश्वर-प्रदत्त है, और 'नाम' मानवप्रदत्त। अर्थात् नामरूपात्मक जगत् की सृष्टि ईश्वर और मनुष्य ने मिलकर की है। 'नाम' शब्द है, 'रूप' वस्तु है। **'नाम'** गिरा है, **'रूप'** अर्थ है। कालान्तर में 'गिरा' और 'अर्थ' ऐसे मिलकर एक हो गये कि दोनों को अलग-अलग अस्तित्व के साथ समाज न देख सका। इसीलिए तुलसी ने 'मानस' में कहा—

"गिरी अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।"

—(रामचरितमानस, बाल० १८/-)

शब्द बोलते ही वस्तु, और वस्तु को देखते ही शब्द हमारे मानस-पटल पर आजाता है। इसीलिए पतंलि ने लिखा—

"प्रतीति पदार्थको लोके ध्वनिः शब्दः।"

पतंजलि ने शब्द और अर्थ को जानने का यह उपयुक्त तर्क दिया है। पतंज़लि ने महाभाष्य में व्याकरण के पाँच प्रयोजन बताये हैं। जिनमें एक **ऊहा** (तर्क) भी है–(१) **रक्षा** (२) **आगम** (३) **ऊहा** (४) **लघु** (५) **असंदेह**।

बहुत गहराई से विचार किया जाए तो यह कहा जा सकता कि शब्द के दो भेद हैं—(१) **अनित्य शब्द** (२) **नित्य शब्द**।

अनित्य शब्द ध्वनि या नाद-तत्त्व है, जो उच्चरित होकर नष्ट हो जाता है। **नित्य शब्द**, शब्द का वह मूल अस्तित्व है, जो न उच्चारणजन्य है और न श्रवणग्राह्य। इसे ही **स्फोट** की संज्ञा दी गयी है। यह **सूक्ष्मरूप शब्द है**। इस रूप में नित्य शब्द बुद्धि में वर्तमान रहता है। वर्णात्मक ध्वनि इसी स्फोट रूप सूक्ष्म शब्द को प्रकट करती है। अनित्य शब्द = नित्य शब्द की साकारता।

दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि **स्फोट** प्रकाश्य है; व्यंग्य है। **ध्वनि** प्रकाशक है; व्यंजक है। किसी वस्तु को नामांकित करना एक प्रकार से ध्वनि के माध्यम से स्फोट की अभिव्यक्ति है। **ध्वनि** उसी अलक्ष्य, अक्रम, अव्यक्त एवं नित्य स्फोट को प्रकट करती है।

ध्वनि में दीर्घ, लघु आदि का परिवर्तन हो सकता है। **स्फोट** में अर्थ परिवर्तन नहीं होता। स्फोट अक्रम और अखंड है। क्रम-विन्यास **ध्वनि** (अनित्य शब्द) में ही होता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए, अन्त में यही कहा जा सकता है कि पहले नित्य 'शब्द' अस्तित्व में आया, तदुपरान्त नामधारी वस्तु या नामधारी प्राणी। प्राणी या वस्तु को '**रूप**' भी कहा जा सकता है।

जैसा समझा, उत्तर दे दिया है। आप शास्त्री हैं; कृपया पुनः विचारें।

हर्ष है आप सपरिवार सानंद हैं। बेटी रमा का भी एक प्रश्न प्राप्त हुआ था। उसका भी उत्तर दिया जा चुका है। सस्नेह,

डा० गिरिधारीलाल शास्त्री, आपका
रीडर, हिन्दी विभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय, अलीगढ़।

डा० जगदीशचन्द्र शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़--२०२००२
दिनांक २०-९-७८ ई०

प्रियवर जगदीश,

आशीर्वाद।

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे निम्नांकित वाक्य में '**सेवा**' शब्द महत्त्वपूर्ण है। वाक्य को उद्धृत करते हुए तुम्हारे प्रश्न को लिखकर उसका उत्तर लिख भेज रहा हूँ—

प्रश्न—"एक अध्यापक ने अपने प्रधानाध्यापक को प्रार्थना-पत्र में लिखा कि **मैंने आपके विद्यालय में १० वर्ष सेवा की है**; लेकिन मेरे वेतन में वृद्धि नहीं की गयी। क्या इस कथन में आये हुए '**सेवा**' शब्द का प्रयोग, अर्थ की दृष्टि से उचित एवं उपयुक्त है?"

उत्तर—'**सेवा**' शब्द अपनी अर्थ-ज्योति में '**नौकरी**' शब्द से बहुत ऊँचा और प्रकाशवान् है। '**सेवा**' के मूल में अहंकार-शून्यता, तपःसाधना और फलाकांक्षा-राहित्य संनिहित है। सेवा विनिमय में कुछ नहीं चाहती। यहाँ तक कि लोक-प्रतिष्ठा की इच्छा होने पर भी '**सेवा**' की भावना समाप्त मानी जाएगी। लोक-प्रतिष्ठा की चाह '**नौकरी**' की परिधि में ही गिनी जाएगी।

जिस काम के बदले में हम कुछ लेते हैं, वह '**नौकरी**' है, '**सेवा**' नहीं। '**सेवा**' तो एक प्रकार से गीता में कथित निष्काम '**कर्मयोग**' है। २४ घंटों में से यदि आधा घंटा भी '**सेवा**' में व्यतीत हो जाए, तो जीवन बहुत उठ सकता है। '**सेवा**' जीवन को उदात्त और उच्चतर बनाती चलती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरीह एवं निर्लेप मनुष्य सेवा के पथ पर चलकर श्रद्धेय बन सकता है। सेवा का बीज आकिञ्चन्य की भूमि में उगता है। विनय, शील, समर्पण-भाव के उर्वरक से आकिञ्चन्य की भूमि सेवा के बीज के लिए तैयार की जा सकती है। काम, लोभ और अहंकार को जलाकर, जब उनकी राख उस भूमि की मिट्टी में मिलायी जाती है, तब वह भूमि और भी अधिक उपजाऊ बन जाती है।

इसलिए तुमने जो वाक्य उद्धृत किया है, उसमें '**सेवा**' शब्द के स्थान पर '**नौकरी**' शब्द का प्रयोग उचित और उपयुक्त है। हिन्दी भाषा लिखते समय हमें शब्दों की अर्थ-भेदक रेखाएँ अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए।

अंग्रेजी की अपेक्षा हिन्दी में शब्दों के क्षेत्र में कुछ अधिक सीमा-रेखाओं के साथ स्पष्टता मिलती है। अंग्रेजी में केवल एक शब्द Age है। हिन्दी में दो शब्द हैं, जो दो भिन्न अर्थ रखते हैं—(१) आयु=जीवन की पूर्ण कालावधि, जन्म से मृत्यु तक। (२) **अवस्था**=जन्म से मृत्यु तक के बीच में कोई भी काल-अवधि।

यदि कोई ६५ वर्ष का होकर मर जाता है, तो कहेंगे कि उसने ६५ वर्ष की आयु पायी। यदि कोई ५० वर्ष का हो गया हो और जीवित हो, तो कहेंगे कि उसकी अवस्था ५० वर्ष की है।

शब्द-प्रयोग से पहले उसका अर्थ समझिए। हर्ष है, तुम स्वस्थ एवं सानंद हो।

डा० जगदीशचन्द्र शर्मा, पी-एच० डी०
रसायनशास्त्र-विभाग,
महाराजसिंह डिग्री कालेज, सहारनपुर (उ० प्र०)

शुभैषी—
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० कृष्णदिवाकर के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१
दिनांक २१-९-७८ ई०

प्रियवर कृष्ण दिवाकर जी,

सप्रेम नमस्कार !

आपके साथ पूना में जो दिन बीते, वे भुलाये नहीं जा सकते। एक दिन आपसे कुछ शब्द-चर्चा चली थी। आज याद आयी। संभवतः आपने पूछा था कि '**मन**' और '**मस्तिष्क**' **में क्या अर्थ-भेद हैं ?** '**मन**' और '**बुद्धि**' वास्तव में पर्यायवाची हैं, या इनमें कोई तात्त्विक अन्तर है ?

मैं पहले '**मस्तिष्क**' के सम्बन्ध में अपना विचार लिख रहा हूँ। इस शब्द

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अर्थबोध सीधा और सरल है। इसके अर्थ के सम्बन्ध में मत-वैभिन्न्य भी नहीं है।

'मस्तिष्क' संस्कृत शब्द है, जिसका अर्थ **'भेजा'** है। इसे अरबी में 'दिमाग़' और अंग्रेज़ी में 'ब्रेन' कहते हैं। सिर की खोपड़ी के अन्दर 'मस्तिष्क' रहता है। यह शरीर का भौतिक पदार्थ है; स्थूल है। इसे आँखों से देखा जा सकता है।

श्री भट्ट नारायण कृत 'वेणीसंहार' नाटक में 'मस्तिष्क' शब्द का प्रयोग हुआ है। पाण्डुपुत्र भीम द्रौपदी से कहते हैं कि "हे क्षत्रियपुत्रि ! तुम डरो मत। हम ऐसी रणभूमि में घूमने में समर्थ हैं, जहाँ हाथियों के रक्त, मांस, चर्बी और मस्तिष्क आदि की कीचड़ में रथ तक फँस जाते हैं"—**अन्योन्यास्फालभिन्न द्विपरुधिरवसामांसमस्तिष्कपङ्के**—(वेणीसंहार, अंक १/ अंतिम श्लोक)।

एक प्रकार से 'मस्तिष्क' पदार्थ है और 'मन' उसकी ऊर्जा है। कभी-कभी साहित्यिक समालोचना में 'मस्तिष्क' शब्द का प्रयोग 'बुद्धि' के अर्थ में भी किया जाता है। जैसे मस्तिष्कपक्ष, हृदयपक्ष आदि।

'मन' का सामान्य अर्थ यों लिखा जा सकता है–'प्राणियों की एक आन्तरिक शक्ति जिससे वेदना, संकल्प, इच्छा, विचार आदि उत्पन्न होते रहते हैं।' इसे अंग्रेज़ी में **'माइंड'** कहते हैं।

हमारे दर्शनों में **'मन' (सं० मनस्)** शब्द का प्रयोग अलग-अलग अर्थों में हुआ है। वेदान्त के अनुसार अन्तःकरण की संकल्प-विकल्प करनेवाली वृत्ति का नाम **'मन'** है। वेदान्त अन्तःकरण की चार प्रमुख वृत्तियाँ मानता है—(१) **मन** (२) **बुद्धि** (३) **चित्त** (४) **अहंकार**—इनमें 'बुद्धि' निश्चयात्मिका वृत्ति है। 'चित्त' चिन्तनाप्रधान अनुसंधानकारिणी वृत्ति है। 'अहंकार' अन्तःकरण की वह वृत्ति है, जिससे अपनी सत्ता का अधिक बोध होता है। इसे अंग्रेज़ी में 'ईगो' कहते हैं।

पातंजल योगशास्त्र में 'चित्त' शब्द का प्रयोग 'मन' के पर्यायवाची के रूप में ही हुआ है। "**योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः**" (योगदर्शन)।

सांख्य दर्शन **मन**, **बुद्धि** और **अहंकार** को ही **अन्तःकरण** के अंग मानता है। लगता है कि सांख्य दर्शन भी 'चित्त' और 'मन' को एक ही मानता है। इसीलिए 'मन' को ही अन्तःकरण में गिनाया है, चित्त को नहीं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'मन' के अर्थबोध के क्षेत्र में सांख्य और योग साथ-साथ हैं।

हमारे शास्त्रों में 'मन' को ग्यारहवीं इन्द्रिय भी माना गया है, यह ग्यारहवीं इन्द्रिय बड़ी बलवान् है, और शेष दसों इन्द्रियों पर अधिकार रखती है। मन की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चंचलता के सम्बन्ध में अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा भी था–"**चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्**"–(गीता ६/३४)।

श्रीकृष्ण ने बताया था कि अभ्यास और वैराग्य से मन को क़ाबू में किया जा सकता है। मन को यदि बुद्धि ने अच्छी तरह पकड़ लिया, तो फिर बुद्धि दसों इन्द्रियों को भी क़ाबू में कर सकती है।

कठोपनिषद् में धर्मराज ने नचिकेता को उपदेश दिया है। उसमें रथ का सांगरूपक प्रस्तुत करते हुए बताया गया है कि आत्मा रथी है, बुद्धि सारथि है; मन लगाम है, इन्द्रियाँ रथ के घोड़े हैं और शरीर रथ है। इन्द्रियों के विषय वे मार्ग (सड़क) हैं, जिन पर रथ के घोड़े चलते हैं।

आप जानते हैं कि अंग्रेज़ी के '**हैड**' शब्द का सामान्य अर्थ 'सिर' है; किन्तु विशिष्ट अर्थ कई हैं और भिन्न-भिन्न हैं; जैसे–(१) **अध्यक्ष** (हैड ऑफ दि डिपार्टमेंट) (२) मद्द (बैंक के रजिस्टर का हैड) (३) **मुख्य** (हैड पोस्ट ऑफिस (४) **मुखिया** (हैड ऑफ फ़ैमिली)।

इसी तरह '**मन**' का सामान्य अर्थ और विभिन्न विशिष्ट अर्थ आपको समझ लेने चाहिए। विशिष्ट अर्थ कई हुआ करते हैं।

आशा है '**मन**' और '**मस्तिष्क**' का अन्तर अब आपको स्पष्ट हो गया होगा। कठोपनिषद् के सांगरूपक से आप 'मन' और 'बुद्धि' का अन्तर भी समझ गये होंगे। शेष फिर कभी।

आज-कल कैसा अध्यापन चल रहा है? पूना के दर्शनीय स्थान तो आपने ही अपने यान पर बिठाकर दिखाये थे। पूना में मराठी का नाट्य-मंच देखकर मन मुग्ध हो गया था। वास्तव में पूना विद्या और कला का केन्द्र हैं। कृपया अपने नवीन समाचार लिखिए। बच्चों को प्यार तथा आशीर्वाद। आशा है सपरिवार सानन्द होंगे।

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट--
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

डा० कृष्णदिवाकर, शुभैषी
हिन्दी विभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
पुणे विद्यापीठ, पूना (महाराष्ट्र)

डा० रमेशचन्द्र मेहरोत्रा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१

प्रिय भाई मेहरोत्रा जी, दिनांक २३. ९. ७८ ई०

सप्रेम नमस्कार !

आपका दिनांक १४. ९. ७८ का कार्ड मिला और उसमें निम्नांकित वाक्य पढ़ा—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"'हिन्दी', 'हिन्दी भाषा', साहित्यिक हिन्दी', 'परिनिष्ठित हिन्दी', मानक हिन्दी और 'खड़ीबोली' नित्य प्रति कान में पड़नेवाली इन विभिन्न अभि-व्यक्तियों की आपके मन पर क्या-क्या भिन्न या समान अर्थसम्बन्धी प्रतिक्रिया होती हैं ?"

उपर्युक्त शब्दों को सुनकर मेरे मन पर जो अर्थ आसन जमाते हैं, उन्हे मैं व्यक्त कर रहा हूँ। इस अर्थाभिव्यक्ति का कारण मेरे संस्कार और मेरा अध्ययन भी है। क्या सही है, क्या ग़लत है—इसे आप जानें।

मैंने विद्यार्थी-जीवन के प्रथम चरण में हिन्दी, संस्कृत और उर्दू पढ़ी थी। 'हिन्दी' शब्द पर, जब मैंने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल) नामक ग्रंथ के परिप्रेक्ष्य में विचारा, तब मैंने समझा कि 'हिन्दी' शब्द से तात्पर्य हिन्दी प्रदेश में बोली जानेवाली अठारह बोलियों से है, जो निम्नांकित नामों से प्रसिद्ध हैं—(१) **हरियाणवी** (२) **खड़ीबोली** (३) **ब्रजभाषा** (४) **कन्नौजी** (५) **बुंदेली** (६) **अवधी** (७) **बघेली** (८) **छत्तीसगड़ी** (९) **गढ़वाली** (१०) **कुमायूँनी** (११) **मारवाड़ी** (१२) **जयपुरी** (१३) **मेवाती** (१४) **मालवी** (१५) **भोजपुरी** (१६) **मगही** (१७) **मैथिली** १८) **दक्खिनी हिन्दी**।

मैथिल कोकिल विद्यापति की 'पदावली' और 'वेलिकृष्ण रुक्मिणी री' नाम की पुस्तकें इसी आधार पर हिन्दी के पाठ्यक्रम में निर्धारित की जाती हैं। वे भी हिन्दी-साहित्य की पुस्तकें हैं।

'हिन्दी' शब्द का दूसरा अर्थ है 'हिन्द का निवासी' अर्थात् हिन्दुस्तान में रहनेवाला व्यक्ति 'हिन्दी' कहलाता है। इक़बाल ने कहा भी है—

मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना।
हिन्दी हैं हम, वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा ॥

—(इक़बाल)

हिन्दी-प्रदेश की अठारह बोलियाँ तो 'हिन्दी-भाषा' के नाम से पुकारी ही जाती हैं। साथ में वह भाषा भी हिन्दी है, जो हिन्दी-प्रदेश में शिक्षा के क्षेत्र या सरकारी कामों में आज-कल प्रयुक्त होती है।

पश्चिमी अपभ्रंश की विकसित अवस्था में जो भाषा पल्लवित हुई है और जिसने संस्कृत, अंग्रेज़ी और भारत की प्रादेशिक भाषाओं की शब्दावली भी ग्रहण की है जिसकी लिपि देवनागरी है, वह भी 'हिन्दी' ही है। वह भारत के संविधान में पूरे राष्ट्र की एक राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत हो चुकी है। उसे ही हम 'मानक हिन्दी' अथवा 'परिनिष्ठित हिन्दी' भी कह देतेहैं। हाँ 'साहित्यिक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी' की अवधारणा मेरे मन में परिनिष्ठित हिन्दी से कुछ ऊँची, परिष्कृत एवं अलंकृत भाषा के रूप में रही है। उदाहरण के लिए ये दो वाक्य हैं—

(१) **मेरा मन आज परेशान हूं।**

(२) **मेरा मन-मानस आज विकृत तरंगों से परिपूर्ण एवं विक्षुब्ध है।**

पहले वाक्य की भाषा **'मानक हिन्दी'** है, और दूसरे वाक्य की भाषा **'साहित्यिक हिन्दी'** है।

'खड़ीबोली' में दो रूप समाविष्ट हैं—(१) **जनपदीय खड़ीबोली** (२) **'परिनिष्ठित खड़ीबोली**। परिनिष्टित खड़ीबोली को ही हम 'परिनिष्ठित हिन्दी' या 'मानक हिन्दी' भी कह सकते हैं। 'लोट्टा ठाला' जनपदीय खड़ी बोली का वाक्य है। इसे यदि परिनिष्टित बोली में बदलें, तो रूप होगा 'लोटा उठा ला'। मुरादाबाद की खड़ीबोली में द्वित्व नहीं है।

कुछ लोग अरबी-फ़ारसी के शब्दों के कारण फ़ारसी लिपि में लिखे वाक्यों को उर्दू भाषा कहने लगते हैं। लिपि से, या शब्दों के आधार पर भाषा नहीं पुकारी जाती। भाषा का निर्णय व्याकरण से होता है। "मैंने उन मकानों में में से अपने सभी कागज निकाल लिये"—वाक्य हिन्दी भाषा का है। यदि इसे हम कहें कि "मैंने उन मकानात में से अपने सभी काग़ज़ात निकाल लिये" तो इसे उर्दू का कहा जा सकता है, क्योंकि इसमें संज्ञा पदों में व्याकरण अरबी भाषा का अपनाया गया है।

यदि संक्षेप में कहें, तो यह कहा जा सकता है कि **'हिन्दी भाषा'** की प्रमुखतः तीन शैलियाँ हैं—(१) **विशुद्ध हिन्दी** (२) **विशुद्ध उर्दू** (३) **सहज हिन्दी** अर्थात् **मिश्रित हिन्दी**। **विशुद्ध हिन्दी**=संस्कृत तत्सम शब्दों के बाहुल्य सहित हिन्दी। **विशुद्ध उर्दू** =अरबी-फ़ारसी के वास्तविक शब्दों से तथा उसके व्याकरण से संयुक्त हिन्दी। **सहज हिन्दी**=तत्सम, तद्भव, देशज तथा घुले-मिले विदेशी शब्दों से संयुक्त हिन्दी।

आशा है आपको मेरा मंतव्य स्पष्ट हो गया होगा। हमें अब विशेष रूप से हिन्दी के 'भाषाविज्ञान' को समुत्कर्ष देने का प्रयत्न करना चाहिए। हिन्दी भाषा विज्ञान पढ़नेवाले बहुत से विद्यार्थी रूपात्मक निषेधवाची वाक्य नहीं बना सकते। उदाहरण—

(१) "मैं जाऊँगा" विधि-वाक्य है—इस विधिपरक का निषेधपरक रूपात्मक परिवर्तन होगा—"यह नहीं कि मैं नहीं जाऊँगा।"

संस्कृत से आये हुए तत्सम शब्द हिन्दी में लगभग ६० प्रतिशत प्रयुक्त होते

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। सामान्य रूप से उपसर्गों के भी अपने निश्चित अर्थ हैं। फिर भी कुछ उपसर्ग अपने निजी अर्थों को छोड़कर उल्टे (विलोम) अर्थ देने लगते हैं। ऐसा क्यों और कैसे हुआ ? विचारणीय है।

'आ' उपसर्ग, जैसा अर्थ 'आमोद', 'आयोग', 'आदान' आदि में रखता है, वैसा 'आहत' में नहीं रखता। 'निर्दलीय शब्द के उपसर्ग 'निर्' का अर्थ 'निर्दलन' में उलट जाता है। 'निनाद' में 'नि' का जो अर्थ है, वह 'निवात' में नहीं।

हर्ष है आप परमेश की दया से सपरिवार सानंद है। बच्चों को प्यार तथा आशीर्वाद।

डा० रमेशचन्द्र मेहरोत्रा, आपका

अध्यक्ष, भाषाविज्ञान-विभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'

रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर (म०प्र०)

श्री जुगतराय रे० दवे के नाम

८/७, हरिनगर अलीगढ़ २०२००१

प्रियवर जुगतराय जी, दिनांक २५. ६. ७८ ई०

आपका दिनांक २२-६-७८ का पत्र मिला। आपने हिन्दी और आधुनिक भारतीय प्रादेशिक भाषाओं की समान शब्दावली के अर्थपरक अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में **पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में** मेरे विचार जानने की इच्छा व्यक्त की है।

शब्द तो आपको ऐसे सैकड़ों मिल जाएँगे, जो हिन्दी और भारत की अन्य प्रादेशिक भाषाओं में समान रूप में हैं, किन्तु उनके अर्थों में भिन्नता भी पायी जाती है। जिस मूल शब्द का जो अर्थ जिस भाषा में है, उससे बननेवाले अन्य शब्दों में उस अर्थ की गन्ध अवश्य रहेगी। उस गन्ध को सूँघते हुए हमें **पारिभाषिक शब्दावली** का निर्माण करना चाहिए।

हिन्दी और **मराठी** में निम्नलिखित तीन शब्द प्रचलित हैं—(१) **गणेश** (२) **राग** (३) **शिक्षा**। ये तीनों शब्द अर्थ की दृष्टि से हिन्दी और मराठी में अलग-अलग हैं। जैसे (१) **गणेश** (हिन्दी में) = **मंगलकारी** एक देव विशेष। **गणेश** (मराठी में) = हमेशा अमंगल बातें कहनेवाला। (२) **राग** (हिन्दी में) = प्रीति, प्रेम। **राग** (मराठी में) = क्रोध। (३) **शिक्षा** (हिन्दी में) = ज्ञान की प्राप्ति। **शिक्षा** (मराठी में) = दंड।

इसी प्रकार **'कल्याण'** शब्द का अर्थ हिन्दी में मंगल, सुख या सौभाग्य है; किन्तु तेलुगु भाषा में **'कल्याण'** का अर्थ 'हजामत' है। हजामत बनानेवाले

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाई को तेलुगु में '**कल्याणकर्त्ता**' कहते हैं। हिन्दी '**बाल**' शब्द कश्मीरी, पंजाबी और गुजराती में '**वाल**' बोला जाता है। संस्कृत का '**वाल**' शब्द उपर्युक्त भाषाओं में प्रचलित हो गया है।

इसी प्रकार की **समान शब्दावली का अर्थपरक अध्ययन** आपको हिन्दी और गुजराती भाषाओं में करना चाहिए। सांस्कृतिक शब्दावली के क्षेत्र में कार्य कीजिए और पहले देखिए कि ऐसा कार्य किसी ने हिन्दी-गुजराती में किया तो नहीं। विषय की मौलिकता पर खोज कीजिए। सस्नेह,

श्री जुगतराय रे० दवे, एम० ए० शुभैषी
३१, **शिक्षक नगर, 'चन्द्रमौलि'** अम्बाप्रसाद 'सुमन'
उपलेटा (गुजरात)

डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी के नाम

८/७, हरिनगर अलीगढ़–२०२००१
बन्धुवर चतुर्वेदी जी, दिनांक २८. ६. ७८ ई०

सप्रेम नमस्कार !

आपका दिनांक २७. ६. ७८ का कृपा-पत्र मिला। एतदर्थ हार्दिक धन्यवाद! आपका प्रश्न और मेरी राय (उत्तर रूप में) निम्नांकित पंक्तियों में आपकी सेवा में प्रेषित है—

आपका प्रश्न—

इतनी विपुल धनराशि व्यय करके सरकार द्वारा तैयार करायी गयी पारिभाषिक शब्दावली लोकप्रिय क्यों नहीं हो सकी है ?

मेरा निवेदन (उत्तर रूप में)—

माननीय राष्ट्रपति के **अप्रैल १९६० ई०** के आदेश के अनुसार शिक्षा मंत्रालय द्वारा अक्तूबर सन् १९६१ ई० में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के लिए स्थायी आयोग की स्थापना हुई थी। उसके अन्तर्गत पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ था। मैंने प्रारंभ से ही उस आयोग की सेवा परामर्श-दात्री-समिति में भाषा-विशेषज्ञ के रूप में निरन्तर १५ वर्ष तक की है, और पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण में यथाशक्ति सहयोग भी करता रहा हूँ।

पारिभाषिक शब्दों के क्षेत्र में **सन् १९६० ई०** से पूर्व डा० रघुवीर का कार्य हमारे समक्ष था, जो संस्कृत शब्दावली का ही पूर्ण समर्थक था। उसकी कठिनाई को देखकर तत्कालीन शासन की नीति के अनुसार यह निर्णय लिया गया कि वैज्ञानिक शब्दावली की रचना करते समय अन्तरराष्ट्रीय शब्दों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को यथासंभव उनके मूल रूप में अपना लिया जाए। इसलिए हमने अंग्रेज़ी शब्द 'FILICALES' आदि को नागरी लिप्यन्तरण के साथ 'फिलिकेलीज़' आदि के रूप में अपनाया है। कुछ शब्द ऐसे हैं, जिनके हिन्दी-रूप तथा अंग्रेज़ी-रूप दोनों ही रख लिये गये हैं। भविष्य में कौनसा शब्द शिक्षा-जगत् में स्वीकार किया जाएगा—यह जनता शिक्षार्थियों तथा शिक्षकों की सुविधा पर छोड़ दिया गया है ? इसलिए कृषिशास्त्र में हमने 'FLAKE' के लिए पारिभाषिक हिन्दी शब्द '**शल्क**' या '**पत्रक**' बनाया है; लेकिन उसके साथ 'FLAKE' भी रख लिया है।

अंगरेज़ी में 'TREE' और 'PLANT' में अर्थ-भेद है। इसलिए हमने हिन्दी में उनके लिए अलग-अलग शब्द रखे हैं। TREE के लिए '**वृक्ष**' और 'PLANT' के लिए '**पादप**' शब्द है।

यदि किसी अंग्रेज़ी पारिभाषिक शब्द के लिए किसी भारतीय प्रादेशिक भाषा में प्रचलित शब्द मिलता है और वैसा सशक्त और उपयुक्त अर्थवाची शब्द हिन्दी में नहीं है; तो हमने हिन्दीतर भाषा से वह प्रचलित शब्द ले लिया है। इससे हमारी हिन्दी की सम्पन्नता हमारे लिए एक गौरव का विषय बनी है। हिन्दी की क्षेत्रीय भाषाओं में से हमने वे शब्द भी कुछ लिये हैं, जो ऐसी संकल्पना को व्यक्त करते हैं, जिसे हमने परिनिष्ठत हिन्दी अथवा प्रादेशिक भाषाओं में नहीं पाया।

एक ही धातु से बननेवाले शब्दों में मूल शब्द से मिलनेवाले शब्दों की मूल धातु को सुरक्षित रखा है। 'Test, के लिए जाँच' या '**परख**' और अंग्रेज़ी Examining के लिए '**परीक्षण**' शब्द रचे गये हैं। लेकिन 'Test' के लिए अवश्यकता के अनुसार 'परीक्षण' भी रख दिया है। 'VOCABULARY TEST' के लिए 'शब्दावली-परीक्षण' शब्द गृहीत है। '**शब्दावली-जाँच**' या '**शब्दावली-परख**' को स्वीकार नहीं किया गया। प्रचलन, प्रयोग और संकल्पना को ही प्रधानता दी है। अवश्यकता के अनुसार संस्कृत को आधार माना गाया है। 'Tested'=परीक्षित। Testing=परीक्षण। Tester =परीक्षक।

शिक्षा के लिए जो पारिभाषिक शब्दावली बनायी गयी है, वह सर्व सामान्य जनता के लिए नहीं है। उसे जो कठिन और अव्यवहारिक बताते हैं, वे हिन्दी के विरोधी हैं। विरोधी लोग हल्ला-गुल्ला मचाकर हिन्दी को बढ़ने देना नहीं चाहते। सरकार में कुछ लोग ऐसे सत्ताधारी भी हैं, जो अंग्रेजी को ही राजमहिषी बनाये रखना चाहते हैं। भारत का केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय आज

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक ऐसे मंत्रियों के हाथ में रहा है, जिन्होंने हिन्दी की समुन्नति में आत्मा से योगदान करना नहीं चाहा। विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के शिक्षक परिश्रम और निष्ठापूर्वक हिन्दी माध्यम से पढ़ाना नहीं चाहते। पारिभाषिक शब्दावली के प्रयोग तथा व्यवहार से वे बचते हैं। विरोधियों की नीति के अनुगामी भी बन जाते हैं। प्रादेशिक भाषाओं के हिमायती अथवा अंग्रेज़ी के हिमायती अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए हिन्दी को सच्चे रूप में लाना भी नहीं चाहते, क्योंकि उनके आसन हिल जाएँगे।

ये ही कारण हैं कि पारिभाषिक शब्दावली अब तक शिक्षा-जगत् में लोकप्रिय नहीं बन सकी।

हर्ष है आप सानंद हैं। सस्नेह,

डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, डी० लिट्०, आपका
प्राचार्य,
ए० के० डिग्री कालेज, शिकोहाबाद (उ०प्र०) अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० पवनकुमार जैन के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१

प्रियवर पवनकुमार जी, दिनांक २९. ९. १९७८ ई०

आपका दिनांक २२-९-७८ का पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। **राष्ट्रभाषा हिन्दी की, भाषा के रूप में देश को जितनी आवश्यकता है, उतनी साहित्य के रूप में नहीं।**

भाषा के रूप में हिन्दी सरकारी, ग़ैरसरकारी तथा घरेलू कार्यों में व्यवहार एवं प्रयोग में लानी पड़ती है। विश्वविद्यालयों तथा हाईस्कूल-बोर्डों में हिन्दी का पाठ्यक्रम साहित्य की दृष्टि से ही प्रायः निर्धारित है। इसके लिए आप जैसे व्यक्तियों को पहल करनी चाहिए। भाषा-दृष्टिकोण को हाई-स्कूल कक्षाओं से लेकर एम० ए० (हिन्दी) तक अपनाया जाना चाहिए। हिन्दी साहित्य में बी० ए० या एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण छात्र वाक्य-रचना और शब्द-लेखन में अनेक अशुद्धियाँ करते हैं। मेरे कई एम०ए० (हिन्दी) उत्तीर्ण विद्यार्थी अपने पत्रों मे मुझे '**पूज्यनीय गुरु जी**' लिखते हैं। एक शिष्य ने पत्र में लिखा-- **"मैं नैपाल से आपके लिए एक रुद्राक्षों की माला लाऊँगा।"**

हिन्दी भाषा तथा **व्याकरण** का व्यवस्थित एवं क्रमिक अध्ययन कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में न होने के कारण ही एम० ए० (हिन्दी) उत्तीर्ण छात्र

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं जान पाते कि **'पूजनीय'** या **'पूज्य'** शुद्ध शब्द है; और **'पूज्यनीय'** अशुद्ध है। उपर्युक्त वाक्य में विशेषण-विशेष्य की स्थिति का ज्ञान व्याकरण ही करा सकता है। शुद्ध वाक्य इस प्रकार होना चाहिए—

"मैं नैपाल से आपके लिए रुद्राक्षों की एक माला लाऊँगा।" विशेषण अपने विशेष्य के निकट रहना चाहिए—इसे बहुत कम विद्यार्थी जानते हैं।

इतना ही नहीं पच्चीस-तीस वर्ष तक विश्वविद्यालयों में हिन्दी साहित्य पढ़ानेवाले कुछ वरिष्ठ शिक्षक भी अपनी पुस्तकों में हिन्दी भाषा का प्रयोग अशुद्ध कर जाते हैं। लिंग-दोष पर उनका ध्यान ही नहीं जाता। एक कविता-पुस्तक में एक पंक्ति यों लिखी गयी थी—"ओस के आशीष पाकर फूल काँटों में मगन हैं"। रचयिता को पता नहीं कि शब्द 'आशीस्' है, और वह भी स्त्रीलिंग में है।

शब्द और वाक्य के अर्थों को जो नहीं जानेगा, वह काव्य को कैसे समझ सकता है? वाच्यार्थ के सहारे ही पाठक लक्ष्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ को जान पाता है। जिसे भाषा-बोध नहीं, वह काव्य-बिम्ब को समझ ही नहीं सकता। काव्यानंद के लिए भाषा-बोध परमावश्यक है।

प्रियवर जैन जी! हिन्दीभाषा-सेवी शिक्षकों को पाठ्यक्रम-समितियों में निष्ठापूर्वक बी० ए० प्रथम वर्ष से ही हिन्दी-रचना तथा हिन्दी-व्याकरण से सम्बद्ध पाठ्यक्रम (कोर्स) निर्धारित कराना चाहिए। एम० ए० हिन्दी में दो प्रकार के अध्ययन चलने चाहिए—(१) **हिन्दी-साहित्य में एम० ए०** (२) **हिन्दी भाषा में एम० ए०**। हिन्दी-साहित्य की एम० ए० में आठ में से दो प्रश्न-पत्र हिन्दी-भाषा से सम्बद्ध हों। हिन्दी-भाषा की एम० ए० में आठ में से दो प्रश्न-पत्र हिन्दी-साहित्य से सम्बद्ध हों।

आपके विचारों से जो हिन्दी-प्रेमी मेल रखते हैं, उनको साथ लेकर आगे बढ़िए। निष्ठामयी सक्रियता आपको सफलता के आँगन में पहुँचा देगी।

मैं समझता हूँ कि आपके प्रश्न के पूर्वार्द्ध का उत्तर उपर्युक्त पंक्तियों में आ गया है। अब रहा उत्तरार्द्ध का उत्तर।

प्रश्न के उत्तरार्द्ध का सम्बन्ध **ऋ, ष्, ण्** और **ञ्** के उच्चारण और लेखन से है। आपका कहना है कि मानक हिन्दी में न बोली जाने पर भी ये उक्त ध्वनियाँ अब क्यों लिखी जाती हैं?

लिपिगत अवस्था भाषा में से आसानी से नहीं निकलती। अवधी और ब्रजभाषा के काव्य-ग्रन्थों में भी 'श्' और 'ष्' ध्वनियाँ आज भी लिखी जाती

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और छापी जाती हैं। कविता में **'श्रीराम'** और **'वर्षा'** शब्द अवधी और ब्रज भाषा में लिखे जाते हैं, जबकि उच्चारण की दृष्टि से **'स्रीराम'** और **'बर्सा'** या 'बरखा' लिखे जाने चाहिए। वैज्ञानिक दृष्टि सभी नहीं रख सकते। हिन्दी में अधिकांश विद्वान् साहित्यिक ज्ञानवाले हैं, भाषिक ज्ञानवाले नहीं। राष्ट्रीय स्तर पर समितियाँ ही ऐसा निर्णय लेकर सरकार से करवा सकती हैं; एक व्यक्ति नहीं।

यदि डा० पवनकुमार जैन अपने छात्रों को **'रिशि'**; **'कश्ट'** **'शोशण'** आदि लिखाने लगें, तो अन्य परीक्षक उन छात्रों के अंक काट लेंगे। एक जन अकेला मार्ग नहीं बना सकता; महाजन (अधिक जन या बड़े जन) ही मार्ग बना सकते हैं—"महाजनो येन गतः स पन्थाः।"

ध्वनिशास्त्र के अनुसार तो बात कुछ ठीक भी बन जाएगी; किन्तु व्युत्पत्ति शास्त्र तथा व्याकरण की परंपरा के मार्ग में प्राचीन प्रणाली को बदला जाएगा, तो संस्कृत और हिन्दी के कोशों तथा व्याकरण ग्रन्थों में विरोध बहुत आ जाएगा। उस विरोध को हटाने के लिए सहायक ग्रन्थों का भी निर्माण होना चाहिए। **'प्राण'**, **'गण्य'**, **'याच्ञा'** आदि संस्कृत-शब्द प्रकृति-प्रत्यय के योग से सिद्ध किये जाते हैं। उनमें **'ण्'** और **'ञ'** ध्वनियाँ रहती हैं। हिन्दी ने ये शब्द अक्षुण्ण रूप में ले लिये हैं। यदि खाई न पटी, तो मामला गड़बड़ रहेगा।

इसलिए व्युत्पत्तिशास्त्र और ध्वनिशास्त्र का ताल-मेल ठीक करने के लिए भी हिन्दी भाषा के विद्वानों तथा भाषाविज्ञानियों को बहुत कार्य करना पड़ेगा; अन्यथा संस्कृत के कोशों में **'कष्ट'** देखकर, और हिन्दी के कोशों में **'कश्ट'** देखकर पाठक कष्ट पाएँगे और चौंकेंगे। यही बात **'ऋषि'** और **'रिशि'** को देखकर पैदा होगी। प्रश्न का क्रियात्मक हल आसान नहीं है। ऋषि = ऋष् + इन् (ऋषति गच्छति संसार-पारम्); 'रिशि' शब्द की व्युत्पत्ति क्या?

इसलिए आपके प्रश्न का उत्तर क्रियात्मक रूप में सब विद्वान् मिलकर ही सरकार से दिलवा सकते हैं।

'भाषा विज्ञान' के पाठ्यक्रमों में आपको विशेष रूप से हिन्दी का भाषा-विज्ञान ही पढ़ाना चाहिए और उसकी पढ़ाई बी० ए० से प्रारंभ कर देना चाहिए।

आप केन्द्रीय सरकार के 'हिन्दी निदेशालय' या 'भाषा-आयोग' का हाल न पूछिए। सच्चे अर्थों में उच्च पदाधिकारी हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद देना नहीं चाहते। केवल हल्ला-गुल्ला चाहते हैं, और अंग्रेज़ी को ही राजमहिषी के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिंहासन पर विराजती हुई देखना चाहते हैं। हिन्दी के साथ जितनी और जैसी कपट-छल-नीति बरती जा रही है, उससे त्राण मिलना मुझे निकटतम भविष्य में असम्भव-सा लगता है। अधिकतर सत्ता के पदों पर वे हैं, जो हिन्दी-विरोधी हैं।

हर्ष है परमेश की दया से आप सपरिवार सानंद हैं। इधर बहुत दिनों से आपका कुशल-क्षेम नहीं मिला था। समाचार देते रहा करें।

मुझे इस समय याद आ रहा है कि **डा० धीरेन्द्र वर्मा** जब सागर विश्व-विद्यालय में भाषाविज्ञान-विभाग में प्रोफ़ेसर और अध्यक्ष थे, तब उन्होंने सागर विश्वविद्यालय से अपने एक शोधार्थी की थीसिस मेरे पास परीक्षण के लिए भिजवायी थी, जो विश्लेषणात्मक तथा विवेचनात्मक दृष्टि से बहुत अच्छी थी। उसकी याद आपके पत्र के साथ आयी। सस्नेह,

डा० पवनकुमार जैन, शुभैषी
अध्यक्ष, भाषाविज्ञान-विभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
सागर विश्वविद्यालय, सागर (म० प्र०)

डा० वेदप्रकाश 'अमिताभ' के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१
दिनांक ३. १०. ७८ ई०

प्रियवर अमिताभ,

आशीर्वाद !

आपका प्रश्न मूलतः व्युत्पत्तिशास्त्र से सम्बंध रखता है। हिन्दी के दो शब्दों का मूल और विकास आप जानना चाहते हैं—(१) **बलैया** (२) **सहदानी** या **सहिदानी**।

उपर्युक्त दोनों शब्दों के सम्बन्ध में मैं अपने विचार आपको लिख भेज रहा हूँ।

अरबी भाषा में **मुसीबत** अर्थात् विपत्ति के अर्थ में एक शब्द **'बला'** है। विशेषण विशेष्य की स्थिति में **'बला'** का रूप 'बलाए' हो जाता है। जैसे **बलाए अज़ीम** =बहुत बड़ी विपत्ति।

इस **'बलाए'** को हिन्दी या ब्रजभाषा में **'बलाय'** के रूप में ग्रहण किया गया। इसी को कोमलता, लघुता तथा कुछ अधिक स्त्रीत्व प्रदान करने की दृष्टि से **'बलैया'** पुकारा गया। किसी की मुसीबत अपने ऊपर लेने के अर्थ में 'बलैया लेना' एक मुहावरा बन गया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसीदासकृत 'कवितावली' में जनकपुर की स्त्रियाँ रामचन्द्र जी को देखकर राजा दशरथ की बलैया लेने के लिए कहती हैं।

"कौसिला की कोखि पर तोषि तन वारिए री !
राय दसरत्थ की **बलैया** **लीजै** आलि री।"

(कवितावली, बाल०, छंद १२)

अतः **'बलैया'** मूलतः अरबी शब्द **'बला'** से विकसित है। यह विदेशी शब्द है।

बात प्रसंग से बाहर चली जाएगी, किन्तु तुम्हारे काम की है। तुलसी की **'कवितावली'** पुस्तक के **'कवितावली'** शब्द का अर्थ बहुत-से अध्यापक नहीं जानते। यह **कवित्त + आवली** की संधि है। घनाक्षरी, सवैया या छप्पय छन्द 'कवित्त' नाम से पुकारे जाते थे। **'कवित'** शब्द **कवित्त** का घिसा हुआ रूप है।

हिन्दी में **सहिदानी** शब्द 'निशानी' के अर्थ में प्रचलित है। तुलसी-दास के 'रामचरितमानस' में इसका प्रयोग किया गया है। हनुमान् जी ने राम की अँगूठी को लक्ष्य करते हुए सीता जी से कहा है कि "हे माता ! इस मुद्रिका को मैं लाया हूँ। रामचन्द्र जी ने यह निशानी मुझे आपके लिए दी थी।"

"यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी।

(रामचरितमानस, सुंदर० १३/१०)

हिन्दी में **सहदानी** या **सहिदानी** का अर्थ 'पहचान', 'चिह्न' या 'निशानी है। सं० सहज्ञानिका से व्युत्पन्न एवं विकसित शब्द **'सहदानी है।** सं० **सहज्ञानिका > सहदानिआ > सहदानी**—यह विकास-क्रम संभव है।

यह महाराष्ट्री प्राकृत के माध्यम से हिन्दी में आया है। मराठी में 'ज्ञ' ध्वनि 'द्न, की तरह उच्चरित होती है। सं० **'विज्ञान'** मराठी में 'विद्नान'-सा बोला जाता है। **'सहिदानी'** हिन्दी में तद्भव शब्द है।

प्रसन्नता है कि आप सपरिवार सानंद है। सस्नेह,

डा० वेदप्रकाश 'अमिताभ', शुभैषी
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, **अम्बाप्रसाद 'सुमन'**
धर्मसमाज कालेज· अलीगढ़-२०२००१

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रो० वीरेन्द्र श्रीवास्तव के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१

संमान्य डा० श्रीवास्तव जी, दिनांक ५-१०-७८ ई०

सादर सप्रेम नमस्कार !

आपका दिनांक ३०-९-७८ का कृपा-पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। प्रिय भाई ब्रजबाल जी के पत्र से प्रेरित होकर आपने सारस्वत-विनोदार्थ निम्नांकित प्रश्न मुझे लिखा—इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ और उत्तर-रूप में अपना अभिमत भी लिख भेज रहा हूँ।

प्रश्न—"परिनिष्ठित हिन्दीं में ब्रजभाषा के कौन-कौन से तत्वों का संरचनात्मक योगदान है ?"

उत्तर रूप में मेरा मत—

परिनिष्ठित हिन्दी के अन्तर्गत शब्द-भाण्डार तो इतना विस्तृत, विशाल और वैविध्यपूर्ण है कि इसमें **संस्कृत**, **अरबी**, **फ़ारसी**, **तुर्की**, **अंग्रेज़ी**, **हरियाणवी** **खड़ीबोली**, **ब्रजभाषा**, **कनउजी**, **बुंदेली**, **अवधी**. **बघेली**, **छत्तीसगढ़ी**, **भोजपुरी** **मैथिली**, **मगही**, **राजस्थानी** आदि सभी विभाषाओं के शब्द मिल जाते हैं। सबकी सम्पन्नता के साथ परिनिष्ठित हिन्दी की सम्पन्नता जुड़ी हुई है। अपने-अपने क्षेत्र में ये विभाषाएँ सम्पन्न बनेंगी, तो संपूर्ण राष्ट्र के अपने केन्द्र में परिनिष्ठित हिन्दी भी संपन्न बनेगी। सब विभाषाओं में जो संस्कृति समाविष्ट है, वही समष्टिगत संस्कृति हिन्दी की संस्कृति रहेगी।

ब्रजभाषा के सहस्रों शब्द हिन्दी (परिनिष्ठित हिन्दी) ने अपनाये हैं। आज इसका पता चलाना बहुत मुश्किल है कि **गधा**, **घोड़ा**, **डंडा**, **कुत्ता**, **कुतिया** **पत्ता** **फूल**, **टोपा**, **टोपी**, **कुरता**, **धोती**, **पाजामा** आदि सहस्रों शब्द ब्रजभाषा के हैं अथवा परिनिष्ठित हिन्दी के ? उपर्युक्त शब्द दोनों भाषाओं में ही प्रयुक्त किये जाते हैं।

डेनमार्क के सुप्रसिद्ध विद्वान् प्रो० **रास्मस रास्क** ने भाषा का निर्णायक तत्व व्याकरण माना है। ब्रजभाषा और परिनिष्ठित हिन्दी का व्याकरण पर्याप्त मिलता है। ब्रजभाषा के संज्ञापदों, विशेषणपदों और क्रियापदों की संरचनात्मकता परिनिष्ठित हिन्दी में समान पायी जाती है—

ब्रजभाषा में कर्ता के बहुवचनीय रूप और क्रिया के बहुवचनीय रूप जैसे पाये जाते हैं, ठीक वैसे ही परिनिष्ठित हिन्दी में भी पाये जाते हैं—

(१) **ब्रजभाषा** में--'भाले चमके।" (पुं०, बहु व०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) **परिनिष्ठित** हिन्दी में–"भाले चमके।" (पुं०, बहु व०)
(३) **ब्रजभाषा** में "मेरे दोनों दादा आएँ" (पुं०, बहु व०)
(४) **परिनिष्ठित** हिन्दी में "मेरे दोनों दादा आएँ (पुं०, बहु व०)

जब विशेष्य बहुवचन में हो, तो ब्रजभाषा में विशेषण भी बहुवचन में आता है। यही बात परिनिष्ठित हिन्दी में है–

(१) **ब्रजभाषा में**–"छोटे भाले; बड़े भाले।"
(२) **परिनिष्ठित हिन्दी** में "छोटे भाले; बड़े भाले।"

स्त्रीलिंग एकवचन में भी समानता है–

(१) **ब्रजभाषा** में–"छोटी साड़ी; बड़ी साड़ी।"
(२) **परिनिष्ठित हिन्दी** में "छोटी साड़ी; बड़ी साड़ी।"

ब्रजभाषा में स्त्रीलिंग एकवचन कर्ता के अनुसार क्रिया भी स्त्रीलिंग एक वचन में ही पायी जाती है। ऐसी कृदन्त क्रियाएँ ब्रजभाषा और परिनिष्ठित हिन्दी में समान रूप में मिलती हैं–

(१) **ब्रजभाषा** में–यह बात कमला नैं कही, तब भगवान् जी बोले।
(२) **परिनिष्ठित हिन्दी** में– यह बात कमला ने कही, तब भगवान् जी बोले।
(१) **ब्रजभाषा** में–कुतिया आई, बँदरिया गई।
(२) **परिनिष्ठित हिन्दी** में–कुतिया आई, बँदरिया गई।

भविष्यत् काल में भी क्रियापद मिले हुए-से ही पाये जाते हैं–

(१) **ब्रजभाषा में**—"मैं चलूँगी, वे चलेंगी।
(२) **परिनिष्ठित हिन्दी में**—मैं चलूँगी, वे चलेंगी।"

वर्तमान आज्ञार्थ के मध्यम पुरुष एक वचन में भी ब्रजभाषा और परिनिष्ठित हिन्दी में साम्य है।

ब्रजभाषा में—'तू जा'। परिनिष्ठित हिन्दी में—'तू जा'।

उपर्युक्त संरचनात्मकता को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि ब्रजभाषा के इन तत्त्वों का योगदान पूरी तरह से परिनिष्ठित हिन्दी के लिए हुआ है।

तुलसीकृत 'कवितावली' की निम्न पंक्ति में 'बूड़त' है। इसे 'बूड़ते' कर दिया जाए, तो परिनिष्ठित हिन्दी बन जाएगी—नाम अजामिल-से खल कोटि-अपार नदी भव बूड़त काढ़े (कवितावली, अयो० छंद ५)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपने आकाशवाणी दिल्ली से श्री सोम ठाकुर की यह ब्रजभाषा–कविता सुनी होगी—"मेरे भारत की माटी है चंदन और अबीर, सौ-सौ नमन करूँ मेरे भैया, सौ-सौ नमन करूँ।"

उपर्युक्त ब्रजभाषा-पंक्ति में प्रयुक्त 'माटी को मिट्टी' और 'भैया' को भाई' कर दें, तो यही पंक्ति परिनिष्ठित हिन्दी की बन जाएगी। ब्रजभाषा का योगदान इससे स्पष्ट है।

आपके प्रश्न पर तो पृथक् से एक लेख भी लिखा जा सकता है। आपकी लेखनी से मुझे स्वयं एक लेख की सामग्री मिल गयी। आभारी हूँ। शेष फिर कभी निवेदन करूँगा।

हर्ष है कि आप परमेश की दया से सपरिवार सानंद हैं। आप भागलपुर से आजाने पर कृपया पत्र लिखें। क्या मेरे तुलसी-भाषा-विषयक लेख का सदुपयोग हो गया? सस्नेह,

प्रो० वीरेन्द्र जी श्रीवास्तव, डी० लिट्०, आपका
इन्द्र निकेतन, रामपुर रोड, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
पटना-६ (बिहार)

आचार्य श्री मुरारीलाल के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१
दिनांक ७. १०. ७८ ई०

संमान्य बन्धुवर,

सादर सप्रेम नमस्ते !

आपका दिनांक ३. १०. ७८ का कृपा-पत्र मिला। हार्दिक धन्यवाद !

आपके पत्र में व्यक्त किये गये इस कथन से मैं सहमत हूँ कि **"हिन्दी के विद्वान् और वक्ता जब बोलने खड़े होते हैं, तब उनकी भाषा में वह प्रवाह, वह शुद्धता और वह सहजपन नहीं पाया जाता, जो जमायत-उल-उलमा के नेताओं की भाषा में पाया जाता है।** संख्या को देखते हुए भाषा की रवानी अर्थात् भाषण की धारावाहिता में वे लोग हमसे आगे हैं। **आधुनिक हिन्दी गद्य में अभी प्रथम श्रेणी की मुहावरेदारी भी वैसी नहीं आयी है, जैसी उर्दू में मिलती है।"**

बन्धुवर! आपने जिस स्थिति की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया है। उसके मूल कारण को खोजने के लिए खड़ीबोली के मूल और विकास को संक्षेप में समझना होगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज हिन्दी और उर्दू में मोटा-सा अन्तर यह है कि जो खड़ीबोली संस्कृत के शब्दों को लेकर अपभ्रंश की विकास-परम्परा में देशी-विदेशी शब्दों के साथ बढ़ी है और देवनागरी लिपि में लिखी जाती है, वह हिन्दी है। जो खड़ीबोली अरबी-फ़ारसी के शब्दों तथा यत्र-तत्र संज्ञा शब्दों के लिंग-वचन में अरबी-फ़ारसी के व्याकरण का अनुसरण करते हुए फ़ारसी लिपि के कलेवर में अपने को व्यक्त करती है, वह उर्दू है। जब हम फ़ारसी लिपि में इस प्रकार वाक्य लिखें—"**मेरे वाल्दैन रोज़ाना अपने मकानात के कागज़ात देखते रहते हैं।**" तब यह वाक्य उर्दू भाषा का माना जाएगा। जब इसी उक्त वाक्य को हम देवनागरी में इस प्रकार लिख दें तब हिन्दी माना जाएगा—

'**मेरे माता-पिता प्रति दिन अपने मकानों के कागज़ों को देखते रहते हैं।**"

प्रायः प्रत्येक भाषा साहित्य के आसन पर समासीन होने से पहले लोक-जीवन में जनपदीय भाषा के रूप में अवश्य रहा करती है। फिर भी लोक-भाषा और साहित्य-भाषा के रूप में वह भाषा समानान्तर स्थिति में भी चलती रहती है।

'खड़ीबोली' पद्य के रूप में हमें सन् १४०० ई० के आस-पास मिल जाती है ? कबीर की कविता में "सुनता है", "राम कहे भला होयगा" जैसे प्रयोग सिद्ध करते हैं कि 'खड़ीबोली' पद्य में आकर अपना आसन जमाने लगी थी। फिर सन् १७५० ई० के आस-पास खड़ीबोली-गद्य अपनी व्यवस्थित दशा में आ गया था। रामप्रसाद निरंजनी का 'भाषायोगवासिष्ठ' इसका प्रमाण है।

औरंगज़ेब के समय से फ़ारसी मिश्रित खड़ीबोली में शायरी शुरू हो गयी थी। उसे '**रेख़ता**' कहते थे। मुसलमान अरबी-फ़ारसी को अपनी मज़हबी ज़ुबान मानते थे। उनके (अरबी-फ़ारसी के) शब्दों का बाहुल्य जब रेख़ता में होता गया, तब वह रेख़ता 'उर्दू-ए-मुअल्ला' का रूप ग्रहण कर गयी। उनकी देखा-देखी कुछ हिन्दू भी 'खड़ीबोली' में संस्कृत शब्दों का आधिक्य करने लगे। भाषा को आधार बनाकर फोर्टविलियम कालेज के प्रिंसिपल **गिल क्राइस्ट** ने ईसा की उन्नीसवीं शती के प्रथम चरण में ही खड़ीबोली को दो धाराओं में बाँट दिया—एक का नाम 'हिन्दी', और दूसरी का नाम 'उर्दू' रख दिया। हिन्दी की पुस्तकें लल्लू जी 'लालकवि', सदलमिश्र आदि लिखने लगे। और उर्दू की पुस्तकें मीरउम्मन लिखने लगे। 'बाग़ोबहार' में मीरउम्मन ने अरबी-फ़ारसी का दामन बुरी तरह से पकड़ा है। यह पट्टी अंग्रेज़ ने पढ़ायी थी।

अब यदि हिन्दी-उर्दू के लेखक और कवि संस्कृत और अरबी-फ़ारसी का मोह छोड़कर सहज भाषा लिखने लगें, तो सच्ची खड़ीबोली हिन्दी का स्वरूप हमारे समक्ष आ सकता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्दू वाले जैसी मुहावरेदार भाषा लिखते हैं, उस तरह की भाषा हिन्दी-वाले भी लिखने लगेंगे और हिन्दीवाले जैसी अलंकृत भाषा लिखते हैं, वैसी भाषा उर्दू वाले लिखने लगेंगे। फिर दोनों भाषाएँ अपने शिल्प और शैली में उत्कर्ष प्राप्त कर लेंगी—ऐसा मैं समझता हूँ।

लफ़्ज़ और मुहावरे के इस्तैमाल के मामले में उर्दू वाले बहुत सावधान हैं। नये उर्दू लेखक इस्लाह कराने में पूरा यक़ीन रखते हैं। हिन्दी का प्रायः प्रत्येक लेखक जन्म से ही महापंडित पैदा होता है। वह भाषा-संशोधन में विश्वास नहीं रखता। संशोधन में अपनी मान-हानि भी समझता है।

उर्दू वाले दाग़ के रास्ते पर चलते हैं और बहुत पहले से चलते आ रहे हैं। दाग़ ने उर्दू के बारे में कहा था—

"नहीं सहल, अय दाग़ ! यारों से कह दो।

कि आती है उर्दू ज़ुबाँ आते-आते।।"

हिन्दी के विद्वान् प्रायः मूलतः संस्कृत-भाषा और संस्कृत-साहित्य के संस्कार रखते हैं। कुछ ऐसे भी हैं, जिन्होंने अंग्रेज़ी साहित्य पढ़ा है। परिवार या समाज के स्तर पर वे अपनी-अपनी क्षेत्रीय बोलियाँ बोलते हैं। कोई घर में ब्रजभाषा बोलता है, तो कोई भोजपुरी। मंच पर उन्हें परिनिष्ठित खड़ीबोली बोलनी पड़ती है। अर्थात् दैनिक घरेलू ज़िंदगी की भाषा और, और मंच पर भाषण की भाषा और। परिणाम यह होता है कि हिन्दी के विद्वान् वक्ता प्रवाहमय वाक्य-विन्यास प्रस्तुत नहीं कर पाते। पंजाबी मातृभाषावाला हिन्दी का वक्ता मंच पर बोलता है—"मैंने समाज को समझाना है।" भोजपुरी भाषी कहता है—"हम पाँच वर्ष तक बहुत काम किये।" इनके स्थान पर परिनिष्ठित हिन्दी में उपर्युक्त वाक्य इस तरह बोले जाने चाहिए—"मुझे समाज को समझाना है।" 'हमने पाँच वर्ष तक बहुत काम किया।"

बनारस के पंडित प्रायः ऐसा बोलते हैं —"कवि सीता को पार्वती की उपमा दिया।"

अब ज़रा जमायत-उल-उलमा के नेताओं की तक़रीर की ज़ुबान और उसकी रवानी पर ग़ौर कीजिए। प्रायः सभी मुसलमान भाई घरों में रोज़मर्रा खड़ी बोली ही बोलते हैं, और वह भी किताबी खड़ीबोली। जब मंच पर तक़रीर का मौक़ा आता है, तब भी उन्हें वही ज़ुबान बोलनी पड़ती है, जिसे उन्होंने जन्म से अपने परिवार में तथा समाज में बोला है।

मैंने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के अरबी, फ़ारसी और उर्दू के विभागों के अध्यापकों के जीवन का अध्ययन किया है। वे जैसी ज़ुबान अपने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घरों में बोलते हैं, वैसी ही कक्षा में या मंच पर तक़रीर करते वक्त भी। ऐसी हालत में उनकी तक़रीर में रवानी क्यों न होगी।

हिन्दी ने मूलतः अपने संस्कार और प्रेरणा-शक्ति-बिन्दु संस्कृत से ग्रहण किये हैं। 'साहित्यिक संस्कृत' अलंकारों की पक्षधर थी। इसलिए हिन्दी में भी आलंकारिकता की प्रधानता है।

हिन्दी ने साहित्य के स्तर पर लोक की बोलियों या विभाषाओं को आदर नहीं दिया। वास्तव में बोलियाँ ही अपनी कोख से मुहावरों को जन्म दिया करती हैं। उर्दू ने खड़ीबोली के बोली रूप का आदर किया है। कस्बों और छोटे शहरों में खड़ीबोली का जो रूप रहा था, उसे उर्दूवाले अपना चुके थे। हिन्दीवालों की तरह उनके मन पर अलंकार-ग्रंथों का प्रभाव न पड़ा था और न वे उन काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के संपर्क में ही आये थे। इसीलिए उर्दू में ग़जब की मुहावरेदारी है।

आचार्य मुरारीलाल जी! हिन्दी के लेखक जब तक लोक-भाषा की संजीवनी शक्ति के महत्त्व और प्राणवत्ता को न समझेंगे, तब तक हिन्दी में प्रभावमयी स्वाभाविकता और मुहावरेदारी न आ पाएगी। नजर डालना, नज़र लगना, नज़र करना, नज़र मारना, नज़र लड़ाना आदि मुहावरों का अर्थ और प्रयोग हमें हमारी लोक-भाषाएँ ही बता सकती हैं। मुहावरे भाषा को चुस्त, फुर्तीली, और तेज़ बना देते हैं। बनावटी अलंकारों से तो भाषा स्थूल और भारी-भरकम हो जाती है। मेरे पूज्य गुरुवर डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल कहा करते थे कि जिस दिन हिन्दी की शैली में कहावतों और मुहावरों का आदर होगा, उस दिन इसका रूप खिल उठेगा।

आपके पत्र से भी संकेत मिलता है कि आपने कारण के मूल बिन्दु को समझ लिया है। शेष फिर कभी।

हर्ष है आप सपरिवार सानंद हैं। सस्नेह,

आचार्य श्री मुरारीलाल जी, आपका

२/१९८ मायालय, विष्णुपुरी, अलीगढ़। **अम्बाप्रसाद 'सुमन'**

(श्रीमती) सत्यभामा सक्सेना के नाम

शिविर, मथुरा (उ० प्र०)

दिनांक १०. १०. १९७८ ई०

प्रिय बहिन सत्यभामा जी!

आपके प्रश्न से मिलता-जुलता प्रश्न ही मेरी एक शिष्या कु० मुबीना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेगम (एम० ए०—हिन्दी-कक्षा, अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय) ने भी पूछा था। आपका मूल प्रश्न **भाषा के शब्दस्वरूप और व्याकरण से संबद्ध है। आप प्रयोगवाद के पश्चात् के (नये खेवे के) नये कवियों की भाषा के सम्बन्ध में जानना चाहती हैं।**

सत्यभामा जी ! सन् १९४७ ई० में देश को स्वतंत्रता मिली। स्वतंत्रता के तीस वर्षों में एक भी कवि हिन्दी में ऐसा दिखायी नहीं पड़ता, जिसे हम **'प्रसाद', 'पन्त', 'निराला'** या **'दिनकर'** के बराबर आसन पर बिठाने के लिए समर्थन दे सकें। हिन्दी की नयी कविता (विशेषतः साठोत्तरी) में नैतिकताहीन मानव की मानसिकता ही अधिक चित्रित है। नया कवि यौनलिप्सा, संत्रास, कुंठा और घुटन की विचार-प्रस्तुति को प्रमुख मानता है। लगता है, आज के नये कवि पश्चिम की ओर इतना अधिक आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे हैं कि उन्हें यह भी ध्यान नहीं रहा कि उनके पाँव भारत की धरती पर ही टिके हुए हैं।

संन्यासी सत्य का, समाजसेवी **शिव** का और कलाकार **सुंदर** का उपासक होता है, लेकिन कवि सत्य, शिव, और सुन्दर—तीनों—का उपासक होता है। नया कवि सच्चे अर्थों में इनमें से ठीक तरह से किसी एक का भी उपासक नहीं है।

समकालीन कविता का नया कवि अपनी नयी कविता में नैतिक मूल्यों को नकारता हुआ चला है। उसमें निराशा, ऊब, संत्रास और कुंठा है। नये कवि की मनोभूमि में ये नये तत्त्व हमारे भारत की राजनीतिक स्थिति ने उत्पन्न किये हैं।

सन् १९४७ से सन् १९७७ ई० के आम चुनावों तक के ३० वर्ष हमारी अनेक भौतिक उपलब्धियों के बावजूद बहुत अनुत्साह और निराशा के वर्ष रहे हैं। इन तीस वर्षों में हमारे राष्ट्र के राजनीतिक जीवन का घोर नैतिक पतन हुआ है। भारत की इस स्थिति ने समकालीन नये कवियों में निराशा और विवशता उत्पन्न की है। ऐसी स्थिति में कवि की खीझ, झूँझल, विवशतापूर्ण आक्रोश आदि ने कवि को नकारवादी तथा उच्छृंखलतामयी दृष्टि दे दी। उसका विद्रोह विवशता के कारण चीख-पुकार बनकर ही रह गया।

ऐसी स्थिति में समकालीन नये कवि में गरिमा के स्थान पर टुच्चापन, स्वस्थ संयम के स्थान पर उच्छृंखल काम-भोग और कान्तासंमित कथन के स्थान पर उपदेशात्मक वक्तृता कविता में उभर कर आयी। अतः कविता भाव-भूमि को त्यागकर विचार और तर्क की भूमि की ओर बढ़ गयी। नयी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता में भाव नहीं, अपितु बोध प्रमुख है। यह यत्र-तत्र तुकान्तवाला टूटा हुआ विचारात्मक गद्य है।

नये कवियों में अधिक संख्या में ऐसे कवि हैं, जो हिन्दी भाषा की प्रकृति तथा स्वरूप की पूरी जानकारी नहीं रखते। वे उसकी आत्मा के दर्शन भी नहीं कर सके, और न करना चाहते हैं। वे अपने **अज्ञान** को **नयापन** कहते हैं। भाषा की **विकृति** को भाषा की **संस्कृति** बताते हैं। वे सब कुछ बातें कविता के नये प्रयोग हैं, उनके लिए। नयेपन की धुन में नये प्रतीक, नये शब्द नया व्याकरण और नये विषय उनके मन में ऐसे समाये कि पाठकगण उन्हें समझ ही न पाये।

जहाँ तक शब्दों का सम्बन्ध है, नये कवि अपनी हिन्दी में **युद्धप्रियी, भीड़-प्रियी, शिवशक्त, रूपमती, सुर्चा, अहज** आदि शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं अर्थात् हिन्दी भाषा को विचित्र नये शब्द दे रहे हैं। नये विलोम शब्द भी बना रहे हैं—'**सहज**' का विलोम '**अहज**' लिखते हैं। वे समझते हैं कि मूल शब्द '**हज**' है।

नये कवि हिन्दी को विचित्र नया व्याकरण भी दे रहे हैं। भूतकालीन क्रियाएँ, जैसे **उदयाये, अस्ताये** आदि, नये कवियों की कविताओं में मिल जाएँगी। एक कवि ने तो '**तलाश**' को भी पुंलिंग बना दिया है और प्रयोग किया है '**सुगन्ध का तलाश**'। एक कवि की कविता की पंक्तियाँ हैं—

"अनपढ़ बच्चों को घास-फूँस-सा बढ़ने दिया"; "कमरी **ओढ़ लिया**।"

'**ओढ़ लिया**' के प्रयोग में क्रिया-वाच्य में लिंग का ध्यान ही नहीं है।

अभी हिन्दी के एक साप्ताहिक पत्र में एक कवि की कविता प्रकाशित हुई है, जिसकी एक पंक्ति इस प्रकार है—

चिड़िये का उड़ना, जलकुंभी का काँपना।

न मालूम इस उपर्युक्त पंक्ति में '**चिड़िये**' हिन्दी में कौनसा संज्ञा-रूप है? नयी कविता में नये कवि को अब हिन्दी का नया व्याकरण भी तो बनाना चाहिए वह इसलिए बना रहा है। अकेली भावना या कल्पना ही नयी रही, तो पूरा नयापन कहाँ आ पाएगा? सब कुछ नया होना चाहिए। कोई उनसे कुछ कहेगा भी तो नयेपन के प्रेमी नये कवि मानेंगे थोड़ा। कोई बात नहीं, काल देवता सब राई-नोंन छाँट देंगे।

अर्थ की दृष्टि से नयी कविता के विषय में अधिक क्या कहूँ? प्रायः 'सुभान अल्लाह है।' यदि कवि-सम्मेलन में लगातार तीन कवि नयी कविताओं का पाठ करें, तो निश्चित रूप से सभी श्रोता उठ खड़े होंगे और हल्ला मचाकर अपने-अपने घरों को चले जाएँगे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी कविता की भाषा, पर शोध कीजिए—तभी पूरा पता लगेगा।

मैं एक दिन अपनी शिष्या कु० मुबीना बेगम को आपके पास जाने को कहूँगा, विचार-विमर्श के लिए। आप कृपया उसे भी मेरा यह पत्र दिखा दें।

आशा है आप सपरिवार सानंद होंगी। डा० जी० के० नारायण जी से मेरा नमस्कार कहें। अपनी सहेली श्रीमती माया गुप्ता एवं श्रीमती ऊषा गुप्ता की भी कुशलता के समाचार दीजिए। बच्चों को आशीर्वाद !

मुझे आशा है कि आप हिन्दी में एक अच्छी-सी पुस्तक आगामी तीन वर्षों में हिन्दी-जगत् को अर्पित करेंगी। माता वीणापाणि आपका मंगल करें।

(श्रीमती) सत्यभामा सक्सेना, एम० ए०,
द्वारा—डा० जी० के० नारायण,
अध्यक्ष, समाजशास्त्र-विभाग,
श्री वार्ष्णेय कालेज-स्टाफ़ क्वाटर्स, अलीगढ़।

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० केशवदत्त रुवाली के नाम

८/७, **हरिनगर, अलीगढ़**–२०२००१ (उ० प्र०)
दिनांक ११. १०. १९७८ ई०

प्रियवर रुवाली जी,

आशीर्वाद !

आपका दिनांक ३.१०.७८ का पत्र मिला। मैं आपको आपके डी० लिट्० विषयक-शोध-शीर्षक के सम्बन्ध में लिख चुका हूँ। आपने अब पूछा है कि **"किसी शब्द की व्याख्या अर्थ, व्युत्पत्ति और प्रयोग की दृष्टि से किस प्रकार लिखी जानी चाहिए—इसका एक नमूना दे सकें तो अनुगृहीत होऊँगा।"**

आपके **विषय का सीधा सम्बन्ध हिन्दी के तद्भव** शब्दों से है। **हिन्दी के तद्भव शब्द वे हैं, जो संस्कृत से प्राकृत की परम्परा में होकर हिन्दी में** आये हैं। हिन्दी का '**जी**' शब्द तद्भव है। इसका मूल संस्कृत का '**आर्य**' शब्द है। यह 'आर्य' शब्द प्राकृत के **अज्ज** में परिवर्तित हो गया था। लेखन-पद्धति का नमूना इस तरह रखिए—

जी (सं० **आर्यक** > प्रा० **अज्जय** > **अज्जइ** > **अज्जी** > **अजी** > **जी**) =

हिन्दी में '**जी**' आदरसूचक शब्द है। यह स्वीकृति का भाव भी प्रकट करता है। बोल-चाल में 'हाँ' के अर्थ में भी प्रयुक्त किया जाता है। संस्कृत के नाटकों में स्त्रियाँ अपने पति के लिए 'आर्य-पुत्र' का सम्बोधन करती पायी जाती हैं; अर्थात् 'आर्य' का अर्थ 'ससुर' है। **अपभ्रंश के पउमचरिउ** (५०/२)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में **अज्जय** शब्द 'माता के पिता' के अर्थ में, और 'भगवतीसूत्र' (६/३३) में 'पिता के पिता' के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।

व्रजभाषा काव्य-ग्रन्थों में सम्बन्धसूचक-संज्ञा शब्द के पीछे और नाम के पीछे भी 'जी' या 'जू' का प्रयोग मिलता है। जैसे **जीजी जी, किसन जी महाराज, राधिका जू** आदि।

तुलसीदासकृत 'कवितावली' में **जी** और **जू** का प्रयोग मिलता है—

"छोटो-सो कठौता भरि आनि पानी गंगा जी को'

—(कवितावली, विक्रम परिषद् काशी, अयोध्या काण्ड, छन्द १०)

"सब परिवार मेरो याही लागि राजा जू।"

(कवितावली, अयो०, छन्द ८)

मैं समझता हूँ, आप इतने संकेत से बात को पूरी तरह समझ लेंगे। हर्ष है सानन्द हैं।

डा० केशवदत्त रुवाली, पी-एच० डी०   शुभैषी
चन्द्रालय, रानीधारा रोड, डा० पोखरखाली,   अम्बाप्रसाद 'सुमन'
जि० अल्मोड़ा (उ० प्र०)

डा० रामप्रकाश 'कर्मयोगी' के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)

प्रियवर कर्मयोगी,   दिनांक १५. १०. १९७८ ई०

आशीर्वाद !

तुमने मेरे एक लेख का सन्दर्भ देते हुए अपने पत्र में लिखा है कि "तुलसी भाषा के नाट्य मंच पर शब्द-पात्रों को उचित पखवाई से निकालकर, जो अभीष्ट होता है, वह उनसे कहलवा लेते हैं। **वाक्य में पद-विन्यास का मूल्य और महत्त्व महाकवि तुलसी अच्छी तरह जानते हैं। वे भाषा के परम मर्मज्ञ एवं मूर्धन्य पंडित हैं।"—इस कथन की प्रामाणिकता के लिए मैं कुछ उदाहरण मालूम करना चाहता हूँ, ताकि बात स्पष्टतः जानी जा सके।"**

प्रियवर कर्मयोगी ! वाक्य में शब्द की प्रयोगावस्था **'पद'** कहलाती है। वाक्य का प्रत्येक पद स्थान विशेष पर विशेष अर्थ रखता है। मान लीजिए ये तीन वाक्य हैं—

(१) तुम पुस्तक पढ़ो, (२) पढ़ो तुम पुस्तक, (३) तुम पढ़ो पुस्तक।

इन उपर्युक्त तीनों वाक्यों में आये हुए **'पढ़ो'** पद के व्यंजित अर्थ भिन्न-भिन्न हैं। प्रथम वाक्य का **'पढ़ो'** पद पढ़ने की क्रिया को बहुत धीरे-धीरे व्यक्त

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है। द्वितीय वाक्य का **'पढ़ो'** पद क्रिया की शीघ्रता और अति आवश्यकता प्रकट करता है। तृतीय वाक्य का 'पढ़ो' पद सामान्य रूप से ही पढ़ने की क्रिया का सूचक है; अर्थात् क्रिया न बहुत धीरे और न बहुत जल्दी।

'रामचरितमानस' के अरण्य काण्ड में प्रसंग है कि अगस्त्य मुनि ने राम से पंचवटी पर जाकर निवास करने के लिए निवेदन किया। तब रामचन्द्र जी मुनि का आदेश पाकर पंचवटी को चल दिये। तुलसीदास जी लिखते हैं—

"चले राम मुनि आयसु पाई। तुरतहिं पंचवटी निअराई॥"
—(अरण्य०, दो० १३/१८)

उपर्युक्त अर्धाली के वाक्य में **'चले'** क्रियापद सर्वप्रथम प्रयुक्त है। अतः व्यंजित अर्थ है कि रामचन्द्र जी बहुत जल्दी-जल्दी चले और पंचवटी स्थान तुरन्त आ गया। यदि शीघ्रता पूर्वक न चलते, तो पंचवटी नाम का स्थान तुरन्त न आता। वाक्य में **'चले'** क्रिया का प्रथम स्थानीय प्रयोग इसको व्यक्त भी कर रहा है। दूसरा उदाहरण देखिए—

शूर्पणखा के नाक-कान कटने पर उसने खर-दूषण को धिक्कारा। तब राक्षस शीघ्रता से राम-लक्ष्मण पर आक्रमण करने दौड़े। राक्षस शीघ्रता से दौड़े हैं; इसीलिए तुलसी निम्नांकित अर्धाली में **'धाए'** क्रियापद का प्रयोग सब से पहले करते हैं—

धाए निसिचर निकर बरूथा। जनु सपच्छ कज्जल गिरिजूथा॥"
—(अरण्य सो० १८/४)

चित्रकूट पर मुनियों की मंडली में रामचन्द्र जी और सीता जी बैठे हुए हैं। **लक्ष्मण जी** ने भारत के आगमन का समाचार श्रीरामचन्द्र जी को दिया। तब रामचन्द्र जी तुरन्त उठे शीघ्रतापूर्वक। उनके वस्त्र, तर्कश, धनुष और बाण कहीं से कहीं गिर पड़े। तुलसी लिखते हैं—

उठे राम सुनि पेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा।
—(अयोध्या० दो० २४०/८)

उपर्युक्त अर्धाली में प्रथम स्थानीय **'उठे'** क्रिया शीघ्रता की व्यंजना तो कर ही रही है; साथ में "कहुँ पट, कहुँ निषंग धनु' के प्रत्येक शब्द में स्वरों की ह्रस्वता भी शीघ्रता की सूचना दे रही है।

रामचन्द्र जी को विवाहित और लक्ष्मण को क्वारा जानकर **शूर्पणखा रामचन्द्र जी** के कहने से लक्ष्मण के पास बहुत जल्दी गयी। तुलसी लिखते हैं—

गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी। प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी॥
—(अरण्य०, दो० १७/१२)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीघ्रता की व्यंजना करने के लिए ही तुलसी 'गइ' क्रिया का प्रयोग वाक्य के प्रारम्भ में उक्त अर्धाली में कर रहे हैं।

लक्ष्मण ने जब अपने को रामचन्द्र जी का सेवक बताया और पराधीनता का जीवन बितानेवाला कहकर अपनी विवशता प्रकट की, तब उन शब्दों को सुनकर शूर्पणखा का उल्लास और उत्साह समाप्त हो गया। चाल मन्द पड़ गयी। रामचन्द्र जी के पास फिर गयी तो सही, किन्तु बहुत निराश-सी, धीरे-धीरे। तुलसी ने लिखा—

पुनि फिरि राम निकट सो आई। (अरण्य०, दो० १७/१७)

वह फिर लौटकर राम के पास बहुत धीमी चाल से आई। इसीलिए तुलसी वाक्य में 'आइ' क्रिया अन्त मे लिखते है।

सारांश यह कि वाक्य के आदि में क्रिया का प्रयोग शीघ्रता तथा अविलम्बता का द्योतक है। वाक्य के अन्त में क्रियापद का प्रयोग कार्य को देरी से, या धीरे-धीरे करने की सूचना देता है।

तुलसीदास जी के **हनूमान्** अतुलित-बलधाम और स्वर्ण-शैलाभ-देह हैं। कुम्भकर्ण भी भूधराकार-शरीर है। सारांश यह कि दोनों का शरीर पर्वताकार है; किन्तु अन्तर यह है कि हनुमान् पर्वताकार के साथ-साथ अतुलित बलधाम भी हैं। कुम्भकर्ण पर्वताकार ही है; वह हनुमान्—जैसा बलधाम नहीं है। इसीलिए युद्ध में हनूमान् जी का मुष्टिक लगते ही कुम्भकर्ण बहुत जल्दी पृथ्वी पर गिर जाता है। तुलसीदास जी लिखते हैं—

"तब मारुतसुत मुठिका हन्यो। पर्‌यो धरनि ब्याकुल सिर धुन्यो॥
(लङ्का० ६५/७)

कुम्भकर्ण तुरन्त गिर पड़ा है। इसलिए '**पर्‌यो**' क्रियापद वाक्य के प्रारम्भ में प्रयुक्त है।

लेकिन जब कुम्भकर्ण ने हनूमान् जी पर घूँसा जमाया, तब नूहमान् जी तुरन्त नहीं गिरे। देर में, धीरे-धीरे गिरे; अतुलित बलधाम जो हैं। इसीलिए तुलसी ने '**परेउ**' क्रिया को प्रारम्भ में प्रयुक्त नहीं किया। तुलसीदास जी लिखते हैं—

'पुनि उठि तेहिं मारेउ हनुमन्ता। घुर्मित भूतल परेउ तुरन्ता॥'
(लङ्का० ६५/८)

इसी संदर्भ में यह भी समझ लेना चाहिए कि तुलसी को जब कार्य की शीघ्रता दिखानी अभीष्ट होती है, तब वे ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं, जिनमें स्वर प्रायः ह्रस्व होते हैं जैसे—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठे राम सुनि पेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा ॥
(अयो० २४०/८)

यहाँ शब्दों में ह्रस्व स्वर हैं, क्योंकि राम भरत को देखकर एक दम उठ पड़े हैं। लेकिन पुष्पवाटिका में सीता जी गौरी पूजने धीरे-धीरे जाती हैं। इसलिए, तब तुलसी ऐसी शब्द-संयोजना करते हैं, जिसमें दीर्घ स्वर ही अधिक हैं।

राम लक्ष्मण से कहते हैं—"**पूजन गौरि सखीं लै आईं।**" (बाल०।२३१।२)

इस उक्त चरण में छह दीर्घ स्वर हैं और "**कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा**" (अयो० २४०।८) में कुल तीन स्वर दीर्घ हैं, शेष सब ह्रस्व।

महाकवि तुलसी भाषा के मर्मज्ञ पंडित हैं। उनकी वाक्य-रचना में शब्द बोलते ही नहीं, इशारे भी करते हैं। उन इशारों को गहरी नज़र से देखिए, तभी तुलसी की भाषा को तुम ठीक तरह से समझ सकते हो। शब्दों की वाणी का अर्थ सामान्य रूप से तो सभी पाठक समझ लेते हैं; किंतु शब्दों के इशारों को सुविज्ञ पाठक ही समझ पाते हैं। इशारों को समझना ही व्यजना अर्थात् व्यंग्यार्थ को समझना है।

इसीलिए मैंने लिखा है कि **तुलसीदास जी** भाषा के परम मर्मज्ञ एवं मूर्धन्य पंडित हैं।

प्रियवर कर्मयोगी! तुम्हें यह समझ लेना चाहिए कि उपर्युक्त ढँग का 'भाषा-विश्लेषण' **शैली-विज्ञान** (Stylistics) के अंतर्गत आता है।

काव्य-स्रष्टा कवि अपनी कविता को सरस और प्रभावी बनाने के लिए अभिव्यक्त भाषा के वाक्यों और पदों पर ही दृष्टि नहीं रखता, अपितु उसके वर्णों (ध्वनियों) पर भी रखता है। वर्ण ही तो मूल इकाई हैं भाषा की। वर्णों से शब्द, शब्दों से पद और पदों से वाक्य बनते हैं। अतः वर्ण ही सरस और अर्थमय बनकर काव्य-संज्ञा प्राप्त करते हैं।

केवल रसात्मक वाक्य ही काव्य नहीं है, रसात्मक वर्ण भी काव्य हैं। इसीलिए कविशिरोमणि तुलसीदास जी ने **रामचरितमानस** के प्रारम्भ में मंगलाचरण करते हुए लिखा—

वर्णानामर्थसंघानां रसानां ......। (मानस, बाल०, श्लोक १)।

इसीलिए शैलीविज्ञान का सुविज्ञ पंडित भाषा में वाक्य से लेकर पद, शब्द और वर्ण तक का परीक्षण-निरीक्षण करता है। यह परीक्षण-निरीक्षण ही '**शैलीविज्ञान**' है।

शैलीविज्ञान का पंडित कवि की भाषा के माध्यम से कवि के मन को, तथा कवि के मनोविज्ञान को भी जान लेता है। मनोविज्ञान के जान लेने पर कवि की कविता का अर्थ भी ठीक-ठीक जान लिया जाता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बार एक सभा में मैंने निवेदन किया था कि **रामचरितमानस** के अंत:साक्ष्य के आधार पर कहा जा सकता है कि तुलसी की माता का नाम हुलसी था । **मानस** के बालकाण्ड में तुलसीदास लिखते हैं—

रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी ।

तुलसिदास हित हियँ हुलसी सी ।। (रामचरितमानस, बाल० ३१/१२)

उस वक़्त उक्त अर्धाली के '**हुलसी**' शब्द को सुनकर एक सज्जन बोले कि यहाँ '**हुलसी**' क्रिया है ।

ऐसी स्थिति में शैलीविज्ञान के पंडित को अपने शास्त्र के सहारे वास्तविकता का पता लगाना पड़ेगा । कथन-शैली से कथ्य को समझना होगा ।

देखना यह है कि उक्त अर्द्धाली से ठीक पहले कवि की वर्णन-प्रक्रिया किस प्रकार चल रही है ? तुलसी राम-कथा के लिए विभिन्न संज्ञा-उपमान प्रस्तुत करते चले आ रहे हैं । जैसे, राम-कथा **लक्ष्मी-सी, पृथ्वी-सी, यमुना-सी, काशी-सी** और **तुलसी-सी** है । उसी उपमान-शृंखला में वह राम-कथा तुलसीदास ने अपने लिए **हुलसी-सी** हितकारिणी बतायी है । इसलिए **हुलसी** संज्ञा ही है, क्रिया नहीं । तुलसीदास लिखते हैं—

संत समाज पयोधि रमा सी । बिस्व भार भर अचल छमा सी ।
जम गन मुहँ मसि जग जमुना सी । जीवन मुकुति हेतु जनु कासी ।।
रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी । तुलसिदास हित हियँ हुलसी सी ।।
—(रामचरितमानस, बाल० दो ३१/१०, ११, १२)

हर्ष है, तुम सपरिवार सानंद हो । सस्नेह,

डा० रामप्रकाश 'कर्मयोगी', एम०ए०, एम०एड०, पी-एच०डी०
प्राध्यापक, शिक्षा विभाग, शुभैषी
आंग्ल भाषा-शिक्षा-संस्थान, मध्यप्रदेश, भोपाल (म०प्र०) । अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० परमानन्द शास्त्री के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ २०२००१
दिनांक २८. १०. ७८ ई०

प्रिय भाई परमानन्द जी,

सप्रेम नमस्कार !

उस दिन की सारस्वत चर्चा बड़े आनन्द की रही । **श्री हनुमत् शास्त्री, डा० विश्वनाथ शुक्ल, डा० सियाराम उपाध्याय, डा० फूलविहारी शर्मा** आदि ने अपने-अपने ज्ञान, सूझ-बूझ तथा तर्क का अच्छा परिचय दिया; किन्तु उन वकील साहब की बात मेरी समझ में नहीं आयी । हमारी शास्त्रीय चर्चा में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे तो कुछ दाल-भात में मूसरचंद-से ही सिद्ध हुए। जो वकील साहब गीता के मर्म को बिना भाषा-ज्ञान के केवल 'इन्ट्यूशन' के आधार पर समझने की बात कह रहे थे, उन्होंने शायद ही एक बार आदि से अन्त तक गीता को अर्थावगति के साथ पढ़ा होगा।

'**दनकौर**' शब्द की व्युत्पत्तियों पर विचार-विमर्श भी उत्तम रहा। श्री हनुमत् शास्त्री ने **धान्यकवल** से, डा० विश्वनाथ शुक्ल ने **दानकवल** से और आपने **द्रोणकूट** से **दनकौर** शब्द का विकास बताया था। सभी मत विचारणीय हैं।

व्युत्पत्ति वही ग्राह्य और मान्य हो सकती है, जो इतिहास, भूगोल, पुराण, किंवदन्ती या लोक आदि से समर्थित तथा प्रमाणित हो। केवल ध्वनि-परिवर्तन के नियमों पर बात पूरी सही नहीं बैठ सकती।

संस्कृत के कई शब्द प्राकृत भाषा में आकर समध्वनिक बन गये थे। सं० **वर्ष**>प्रा० **वास**। सं० **वास**>प्रा० **वास**। सं० **व्यास**>प्रा० **वास**।

स्पष्ट है कि संस्कृत के ये उक्त तीनों भिन्नार्थी शब्द प्राकृत में अर्थात् मध्य-भारतीय आर्य भाषा काल में ध्वनियों की दृष्टि से समध्वनिक बन गये थे।

सं० **भद्र** शब्द का विकास दो सरणियों में हुआ—(१) सं० भद्र>भद्द> भद्दा। (२) सं० **भद्र**>**भल्ल**>**भला**।

हेमचन्द्रकृत व्याकरण में उद्धृत अपभ्रंश के उदाहरणों में '**भल्ला**' (सं० भद्रक भल्लअ>भल्ला) शब्द का प्रयोग 'अच्छा' अर्थ में किया गया है—

भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कंतु।
लज्जेज्जंतु वयंसिअहु जइ भग्गा घर एंतु॥

—(हेमचन्द्र, अप० व्या०, अ० ४/पा०४/सू० ३५१/१)

प्रदेश-भेद से प्राकृतों तथा अपभ्रंशों के भी अनेक भेद थे। सं० **नगर** शब्द प्राकृत में '**णगर**' और **णयर** में विकसित हुआ। प्राकृत शब्द '**णयर**' से ही '**नेर**' शब्द विकसित है, जो **बीकानेर**, **गजनेर** आदि में मौजूद है।

प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं की ध्वनियों का परिवर्तन सर्वत्र एक-सा नहीं हुआ, कहीं कुछ और कहीं कुछ। ब्रजभाषा क्षेत्र की आज्ञार्थ क्रिया **सुनि**, अवधी क्षेत्र में **सुनु** बोली जाती है। अवधी में **करु**; ब्रजी में **करि**। अलीगढ़ जिले में '**बढ़िया**' बोलते हैं, लेकिन बनारस में **बढ़ियाँ**। बनारस में नासिक्यता आ जाती है।

भगवद्गीता के निम्नांकित श्लोक में आये हुए 'शुचः' पद के सम्बन्ध में गहराई से हमें ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिए। श्रीकृष्ण जी का अर्जुन से अन्तिम कथन है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

—(गीता, अध्याय १८/श्लोक ६६)

[श्रीकृष्ण अर्जुन से अपने पिछले कथनों (गीता० अ० १२/६ के सर्वाणि कर्माणि और गीता अ० १८/५७ के **सर्वकर्माणि**) के समर्थन के साथ कहते हैं कि सब करणीय कर्मों को मुझ पर त्याग कर तू मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे संपूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा। तू शोक मत कर।]

मैंने निवेदन किया था कि 'शुचः' यहाँ संज्ञा पद है, जो द्वितीया विभक्ति के बहुवचन का सूचक है (**शुक्, शुचौ, शुचः; शुचं, शुचौ, शुचः**)। 'मा शुचः' का अर्थ है—चिन्ताएँ नहीं, अर्थात् शुचः (शोकान्) मा कुरु।

इस पर आपकी राय थी कि 'शुचः' लुङ् लकार का रूप है। डा० सियाराम उपाध्याय (हिन्दी-विभाग, धर्म समाज कालिज, अलीगढ़) तो तब किसी निर्णय पर पहुँच ही न सके थे।

जिस भाव-धारा तथा जिस वाक्य-पद्धति के दृष्टिकोण से श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है, उस संदर्भ में लुङ् लकार का रूप विचारणीय है। वर्तमान-काल में आज्ञार्थसूचक वाक्यावली के आलोक में लुङ् लकार को कृपया ठीक तरह विचारिए और यथासंभव मुझे सूचित करने का कष्ट कीजिए। मैं प्रतीक्षा में रहूँगा।

अब रही, उन वकील साहब की बात, जो वेदव्यास के विचारों को बिना भाषा-ज्ञान के केवल इंट्यूशन के बल पर समझने का दावा कर रहे थे।

जिस प्रकार पदार्थ और ऊर्जा दो भिन्न-भिन्न अस्तित्व हैं, उसी प्रकार भाषा और भाव भी दो भिन्न अस्तित्त्व है; फिर भी पृथक्-पृथक् रूप में वे देखे नहीं जा सकते। जिस प्रकार ऊर्जा पदार्थ पर आधारित है, उसी प्रकार विचार या भाव भाषा पर आधृत हैं। यही **गिरा** और **अर्थ** का भिन्नत्व और अभिन्नत्व है।

अनित्य ध्वन्याश्रित शब्द, **स्फोट**-रूप-नित्य-शब्द का साकार रूप ही तो है। भाव या अर्थ ही स्फोट है, जो व्यंग्य है। अनित्य शब्द उसका व्यंजक है। वह अनित्य शब्द ही **भाषा** है। महाभाष्यकार प्रमाण है।

भाषा के माध्यम से ही वेदव्यास ने अपने विचारों को मनुष्यों तक पहुँचाया था। कोई यदि **गीता** की भाषा को न जानने पर वेदव्यास के विचारों को को जानना चाहे, तो कैसे संभव है ?

बहुत दिनों के बाद आपके साथ वैसी सारस्वत चर्चा का सुयोग मिला था, उस दिन।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशा है सपरिवार सानंद होंगे। बच्चों को आशीर्वाद !

डा० परमानन्द शास्त्री, शुभैषी
रीडर, संस्कृत विभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय, अलीगढ़।

श्री राधेबिहारीलाल सक्सेना 'राकेश' के नाम

हिन्दी-शोध-संस्थान,
हरिनगर, अलीगढ़-(उ० प्र०)
दिनांक ७. ११. ७८ ई०

प्रिय श्री राकेश जी,

सप्रेम नमस्कार !

आपका दिनांक ४. ११. ७८ का अंतर्देशीय पत्र पढ़कर प्रसन्नता हुई। परोक्ष में साहित्य के माध्यम से जिस प्रकार आप मुझसे परिचित हैं, ठीक उसी प्रकार मैं भी परिचित हूँ।

मैं ६१ वर्ष की अवस्था लगभग पूर्ण हो जाने पर अलीगढ़ विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग से दिनांक १६ अगस्त सन् १९७६ ई० को सेवा-निवृत्त हो गया था; किन्तु माता वीणापाणि की अनुकम्पा से यू० जी० सी० ने अलीगढ़ विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग में पुनः शोध के लिए मुझे नियुक्त कर दिया है। सप्ताह में कुछ दिन विश्वविद्यालय भी जाना पड़ता है।

आपने ब्रजभाषा-साहित्य की सेवा की है; इस नाते आप हमारे साहित्यिक बंधु हैं। गोत्रीय वन्धुओं को कोई भूल सकता है क्या ?

जिस समय सोरों की तुलसी-सामग्री का प्रदर्शन मथुरा के पुरातत्त्व-संग्रहालय में हुआ था, तब मैं वहाँ था और उस समय तुलसी के सम्बन्ध में वहाँ मेरा एक भाषण भी हुआ था।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित **'सूरसागर'** के **दशम स्कंध** के **१८३वें पद** में कुछ मिठाइयों के नामों का उल्लेख है। कृपया उन्हें देखें और उन शब्दों पर एक प्रामाणिक लेख तैयार करें। पता नहीं लगता कि **गालमसूरी, प्यौसर, दहिरौरी, हेसमि** और **बाबर** नामों की मिठाइयाँ कैसी होती हैं ? किस तरह बनती हैं ? ऐसी मिठाइयों के सम्बन्ध में पूर्ण विवरण के साथ प्रामाणिक लेख लिखा जाना चाहिए। छप्पन भोग में मिठाइयों का उल्लेख होगा—पता लगाने का कष्ट करें।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सम्बन्ध में मेरी बातें भारती–अनुसंधान भवन, मथुरा के ज्यो० पं० राधेश्याम जी द्विवेदी से भी हुई थीं। समस्या का समाधान नहीं हुआ था।

भाई राकेश जी ! मेरी ध्रुव धारणा है कि '**सूरसागर**' के शब्दों में ब्रज की संस्कृति पूरी तरह मुखरित हो गयी है। जिसने '**सूरसागर**' के शब्दों की आत्मा के दर्शन कर लिये, उसने ब्रज की संस्कृति के भी दर्शन कर लिये। वस्त्रों के नामों में **चोलना**, **फरिया**; भोजन-सम्बन्धी शब्दों में **छाक**, **सहेरी**; आभूषणों में **कठुला**, **पैंजनी**; विशेषण शब्दों में **ईतरौ**, **लड़बौरी** आदि ऐसे प्राणवन्त शब्द हैं, जो ब्रज के सांस्कृतिक जीवन को प्रत्यक्षतः उपस्थित कर देते हैं।

सूरसागर अभी प्रामाणिक संपादन और प्रामाणिक विस्तृत टीका की भी बाट जोह रहा है। सूर का एक पद है—"**देखौ माई दधिसुत में दधि जात।**"

इसके '**दधि जात**' का अर्थ बहुत से लोग नहीं समझते। कई टीका-लेखकों ने इस पद का अर्थ ग़लत लिखा है।

एक पद में 'हठरी' शब्द आया है—"सुरभी कान जगाइ खरिकहि बल मोहन बैठे हैं हटरी।'—इसके '**हठरी**' का अर्थ ठीक नहीं समझा गया। एक पद है—"**जसोदा हरि पालने झुलावै।**" इसमें आगे की **मल्हावै** क्रिया का अर्थ लोग नहीं समझते।

आपके पत्र से यह जानकर प्रसन्नता हुई कि प्रिय भाई **त्रिलोकीनाथ** '**ब्रजबाल**' आपके शिष्यों में रहे हैं। वह मेरे प्रिय साहित्यिक बन्धु हैं। उनसे मुझे साहित्य-सेवा-क्षेत्र में बहुत आशाएँ हैं।

मथुरा के महानुभावों में से सर्वश्री **पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी**, **पं० राधेश्याम द्विवेदी**, **डा० प्रभुदयाल मीतल** और **साहित्य-वारिधि बा० बृन्दावनदास जी** ने ब्रज की संस्कृति और ब्रजभाषा- साहित्य की बहुत बड़ी सेवा की है।

पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी जी के ब्रजभाषा-ज्ञान की प्रशंसा तो मेरे गुरुवर **डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल भी** बहुत किया करते थे। सर्वप्रथम पंडित जवाहरलाल जी के सूरसागर के ज्ञान का परिचय मुझे खुर्जा में एक बरात में मिला था।

मेरे गुरुवर डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल के द्वितीय पुत्र की बरात खुर्जा गयी थी। उसमें मैं भी गया था और पंडित जवाहरलाल चतुर्वेदी जी भी।

सस्नेह,

श्री राधेबिहारीलाल सक्सेना 'राकेश'
मुकुन्दसिंह का मकान,
सौंख का अड्डा, गोवर्धन, जि० मथुरा (उ० प्र०)

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रो० आनन्दप्रकाश दीक्षित के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१

सम्मान्य बन्धुवर दीक्षित जी, दिनांक ९. ११. ७८ ई०

सप्रेम नमस्कार !

आपका दिनांक ६. ११. ७८ का कृपा-पत्र मिला, परम प्रसन्नता हुई। आपसे प्रत्यक्ष-मिलन और इस पत्र की प्राप्ति में एक सुदीर्घ काल का अन्तराल है।

लगभग ६ वर्ष हो गये, जब मैं व्याख्यानों के लिए जनवरी मास में आपके विश्वविद्यालय में गया था और आपका मिलन-सुख प्राप्त किया था। आपके स्नेह के फलस्वरूप ही मुझे आपके विश्वविद्यालय के कुलपति महोदय की ओर से अतिथि-भवन में सुखद आतिथ्य प्राप्त हुआ था, लगभग आठ दिन तक।

जितने व्याख्यान पूना-विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग में तथा पूना के महा-विद्यालयों में हुए थे, उतने व्याख्यान दक्षिण में एक शृङ्खला में निरन्तर कहीं नहीं हुए। बम्बई विश्वविद्यालय में भाई प्रो० प्रभात जी के स्नेह से लगभग ४ दिन व्याख्यान चले थे। सच्ची बात यह है कि पूना वास्तव में साहित्य और भाषा के लिए निष्ठावान् नगर है। वहाँ के एम० ए० (हिन्दी) के छात्रों में हिन्दी-साहित्य तथा हिन्दी-भाषा की समस्या की गुत्थी को समझने की जैसी दृष्टि और पकड़ पायी गयी, वैसी दक्षिण-हिन्दी-व्याख्यान-यात्रा में मुझे अन्यत्र नहीं मिली।

बम्बई विश्वविद्यालय में संयोजित व्याख्यानों में तो अधिकांश में अध्यापक-बन्धु ही रहते थे; छात्रों की संख्या अपेक्षाकृत कम ही रहा करती थी।

एक दिन **श्री महावीर अधिकारी** (सम्पादक, नवभारत टाइम्स) की अध्यक्षता में मेरा भाषण हुआ था, उस दिन तो छात्रों की संख्या आशातीत थी। उसमें डा० पी० जयरामन ने भी अपने विचार व्यक्त किये थे, तमिल और हिन्दी के सम्बन्ध में।

पूना की वे सारी बातें आपके ६. ११. ७८ के पत्र ने मेरे मानस-पटल पर फिर से उभार दीं। जिस दिन आपके हिन्दी-विभाग में मेरा अन्तिम भाषण चल रहा था; उस दिन आप संभवतः उज्जैन थे। भाषण के समय विदाई देने की हैसियत से श्रीमती दीक्षित जी पधारी थीं।

कैसा शुभ संयोग हुआ कि भाषण के **अन्तिम चरण** की समाप्ति पर आप भी उज्जैन से आ गये और आपने अपनी युक्ति से संयोजक महोदय के मुख से धन्यवाद के मिस मेरे संपूर्ण भाषण को सुन भी लिया और एक प्रकार से श्री संयोजक की मौखिकी भी आपने अपनी चतुराई से ले ली। मौखिकी लेने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ऐसी सुन्दर कला कोई मुझसे पूछेगा, तो मैं उससे कहूँगा कि आप पूना विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभागाध्यक्ष प्रो० आनंदप्रकाश दीक्षित जी को अपना गुरु बनाइए।

हिन्दी भाषा के स्वरूप के सम्बन्ध में आपने मेरा मत जानना चाहा है।

आपने लिखा है—"**मेरी धारणा है कि हिन्दी को अत्यधिक तत्समता और शुद्धतावादी दृष्टिकोण ने छायावाद-काल से ही उसके मौलिक एवं सहज रूप से वंचित कर दिया** और खड़ीबोली को काव्यभाषा या गद्यभाषा के रूप में जिस तरह अपनी तद्भवता में से पनपना चाहिए था; उसी में उसकी शक्ति निहित भी थी, वैसा न हो सका। इसीलिए आज इतर प्रदेशों में कुछ लोग उसे यह कहकर टाल देते हैं कि संस्कृत के शब्द रख दीजिए और कुछ क्रियाएँ लगा दीजिए, बस हिन्दी हो गयी। याद रखें, मराठी में शब्द-निर्माण की अमित शक्ति है और वह तद्भव शब्दों पर आधारित है। हिन्दी की प्रकृति को देखते हुए उसके विकास के लिए आप किस भाषा-रूप को उपयुक्त समझते हैं ?"

बन्धुवर ! हिन्दी एक अपभ्रंश की पुत्री है। ध्वनि और व्याकरण हिन्दी को अपभ्रंश से मिला है।

संस्कृत के पुंलिंग अकारान्त शब्दों में प्रथमा विभक्ति के एक वचन में जो **विसर्ग** हैं, वे द्वितीय प्राकृत में—**ओ** में और अपभ्रंश में—**उ** में बदले हैं—सं० **पुत्रः** >प्रा० **पुत्तो**>अप० **पुत्तु**। यही **पुत्तु** ब्रजभाषा में **पूतु** हो गया है। शौरसेनी अपभ्रंश और ब्रजभाषा उकारबहुला हैं।

हिन्दी में शब्द-संपदा कुछ संस्कृत की अवश्य रहनी चाहिए। काव्यशास्त्र, आलोचनाशास्त्र तथा कुछ विशिष्ट वैज्ञानिक विषयों को समझाने के लिए तो संस्कृत के धातु-प्रत्ययों से निर्मित पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग अवश्य होना चाहिए। संस्कृत में सामासिक शक्ति ग़ज़ब की है। भारत की प्रादेशिक भाषाओं में भी लगभग ६० प्रतिशत शब्द संस्कृत से गृहीत हैं।

मैं दक्षिण (मद्रास) में दो वर्ष रहा था। मैंने स्वयं अनुभव किया था कि दक्षिण के लोग संस्कृतनिष्ठ शब्द का अर्थ जल्दी समझ जाते थे, अरबी-फारसी के शब्द का नहीं।

जहाँ तक ललित साहित्य की सर्जना का प्रश्न है, मैं आपके विचारों से पूर्णतः सहमत हूँ ? हिन्दी के कुछ साहित्यकार संस्कृतनिष्ठ भाषा उस स्तर की लिखते हैं कि वह हिन्दवासियों की हिन्दी नहीं रहती। '**दिग्दर्शन**' हिन्दी नहीं, '**दिशा-दर्शन**' हिन्दी है। '**विद्यार्थि-मंडल**' संस्कृत है; हिन्दी में तो '**विद्यार्थी-मंडल**' है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी ने 'श्' को बहुत कम स्वीकार किया है; उसकी अपनी प्रिय ध्वनि 'स्' है। इसलिए हिन्दी में 'दस', 'सिर', 'दरसाना' आदि लिखना चाहिए। जो हिन्दी-लेखक 'दश' 'शिर', 'दर्शाना' आदि लिखते हैं, वे हिन्दी नहीं लिखते। हिन्दी का विकास इस तरह नहीं होगा। कुछ लेखक तो ऐसे हैं, जो 'सिर' की जगह 'शिर', और 'सकता है' की जगह 'सक्ता है' लिखते हैं।

हिन्दी के सच्चे सेवियों को यह न भूलना चाहिए कि हिन्दी में अपनी शक्ति तब आएगी, जब हम हिन्दी के मुहावरों को लेकर हिन्दी में साहित्य-सर्जना करेंगे। हिन्दी अलंकारों का मोह छोड़कर जब मुहावरेदारी की ओर बढ़ेगी, तब वास्तव में हिन्दी बढ़ेगी, और सहज रूप में उत्कर्ष प्राप्त करेगी। वही भाषा जीवित रहती हुई प्राणवंत बन सकती है, जो अपनी बोली के जीवित और जागते शब्दों को लेती रहती है।

मेरे गुरुवर डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल कहा करते थे कि संस्कृत के भारी-भरकम और तुंदिल शब्द बोलियों के छरैरे और फ़ुर्तीले शब्दों का मुक़ाबला नहीं कर सकते। हिन्दीवाले तो नहीं, लेकिन उर्दू वाले मुहावरों का मूल्य समझते हैं। हमें यह बात उनसे सीखनी चाहिए। हिन्दी में नाम-धातुओं से क्रियापद बनाने की बहुत बड़ी शक्ति छिपी हुई है। हिन्दीवालों को उससे काम लेना चाहिए। **लाठी, तलाश, गर्म, चपत, मोटा** आदि शब्दों से हिन्दी का लोक-जीवन तुरन्त निम्नांकित क्रियापद बना लेता है—

लठियाना, तलाशना, गर्माना, चपतियाना, मुटियाना आदि। **'फ़िल्म'** से **'फ़िल्माना'** क्रिया हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल है। आज-कल **'फ़िल्माना'** का प्रयोग धड़ल्ले से हो रहा है।

कृपया अपने सब सहयोगियों से मेरा नमस्कार कहिए।

प्रिय भाई **जोगलेकर जी** तथा **दिवाकर जी** को विशेष सस्नेह स्मरण। आपके सहयोगियों में ये दोनों बन्धु मुझे स्मरण रहेंगे। भाई दिवाकर जी ने तो पूना के कई दर्शनीय स्थान दिखाये थे। जोगलेकर जी तो व्याखानों में मेरे पथ-प्रदर्शक ही थे। पूना-शिविर सुखद रहा था।

सब कन्याओं को असीस। श्रीमती दीक्षित जी को नमस्कार। सस्नेह,

प्रो० आनन्दप्रकाश दीक्षित, आपका
अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
पुणे विद्यापीठ, पुणे (महाराष्ट्र), पूना–४११००७

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री ज्वालाप्रसाद उपाध्याय के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)

प्रियवर, दिनांक १२. ११. १९७८

आशीर्वाद !

तुम्हारी प्रमुख समस्या मोनियरविलियम्स की **'संस्कृत-इँगलिश डिक्शनरी'** में अर्थ देखने के उपरान्त पैदा हुई है। तुम्हारी जिज्ञासा यह है कि मोनियर विलियम्स के कोश में **'ज्ञान'** और **'विद्या'** दोनों शब्दों का अर्थ 'Knowledge' लिखा गया है। क्या इन दोनों शब्दों का एक ही अर्थ है ? अर्थभेद नहीं है ?

प्रियवर, कोशों में एक शब्द के कई अर्थ लिखे हुए होते हैं; **सामान्य रूप से अर्थ**, और **विशिष्ट रूप से अर्थ**। सामान्य रूप से लिखे हुए अर्थ प्रायः आपस में मिल जाते हैं। इतना ही नहीं समय की गति के साथ-साथ शब्द का अर्थ भी साहित्य और लोक में परिवर्तित होता रहता है। **अर्थादेश, अर्थोत्कर्ष, अर्थापकर्ष, अर्थविस्तार, अर्थसंकोच** आदि देश और समय की गति के कारण होते हैं। काल-देवता शब्द के शरीर में भी परिवर्तन कर देता है। बहुत-से नहीं जानते हैं कि संस्कृत का 'आर्यक' हिन्दी में 'जी' बन गया है ?

जब **'अर्थ'** के सम्बन्ध में कुछ कहा जाए, तब समझ लेना चाहिए कि **शब्द** उसके साथ है। वाक्यपदीयकार ने **शब्द** और **अर्थ** एक ही आत्मा के दो रूप माने हैं।

दूसरे शब्दों में यों कहिए कि **अर्थ** रूपी अव्यक्त ब्रह्म **शब्द** के रूप में व्यक्त ब्रह्म बन गया है। तैत्तिरीय उपनिषद् की ब्रह्मानन्द वल्ली में कहा गया है—"असत् वा इदं अग्रे आसीत्। ततः वै सत् अजायत।" —(तैत्ति० उप० वल्ली २/अनुवाक ७)।

उपनिषद् काल में **'ज्ञान'** और **'विद्या'** शब्दों का प्रयोग अनेक स्थलों पर प्राचीन ग्रन्थों में हुआ है। मनुस्मृति में भी **'ज्ञान'** शब्द आया है—**"बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति"** (मनु० ५/१०९)

ईशावास्योपनिषद् में **'विद्या'** शब्द का उल्लेख मिलता है। उपनिषद् साहित्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आध्यात्मिक बोध का नाम **'ज्ञान'**, और सांसारिक बोध का नाम **'विद्या'** है।

ईशावास्य उपनिषद् का ऋषि कहता है कि जो अविद्या में लगे रहते हैं, वे अंधकार में जाते हैं; लेकिन जो विद्या में संलग्न रहते हैं, वे उससे भी अधिक महा अंधकार (घोर अंधकार) में जाते हैं—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ।" (ईशावास्य उपनिषद्)

प्रथम दृष्टि में ईशावास्य के ऋषि की बात बड़ी विचित्र और उल्टी लग रही है । आश्चर्य है जो विद्यारत हैं, वे भी घोर अन्धकार में जाते हैं; अर्थात् अविद्या से विद्या अधिक खतरनाक साबित हो रही है । एकदम पढ़ने में तो बात उल्टी मालूम पड़ती है; लेकिन ऋषि सही और पते की बात कह रहा है ।

जो अविद्यावाले हैं अर्थात् सांसारिक बोध से दूर हैं, वे अंधकार में जाएँगे ही । न जाएँगे, तो कष्ट तो उठाएँगे ही । लेकिन सांसारिक बोध जिन्हें है, उन्हें बोध का अहंकार होगा और अहंकार में सब कुछ उल्टा कर डालेंगे । किसी के समझाने पर मानेंगे भी नहीं । 'सब कुछ जानता हूँ, सब कुछ ठीक कर रहा हूँ । सब कुछ मेरा है, सब कुछ मैं हूँ' – इसी का नाम अहंकार है । अबोध में अहंकार नहीं होता । अबोध को समझाया जा सकता है । वह मान भी सकता है । बोधवाला समझाने पर मानेगा भी नहीं । क्यों मानेगा ? सब कुछ जानता जो है । इसीलिए ऋषि ने 'विद्यारत' को महा अन्धकार में डूबनेवाला बताया है । इतना ही नहीं जो पढ़ा नहीं, शिक्षित नहीं, दर्जा एक तक भी जानकारी नहीं, वह कितनी बदमाशी करेगा ? लेकिन जो एम० ए० पास है, वह जब अहंकार में बदमाशी पर उतारू होगा, तब बदमाशी की पराकाष्ठा कर देगा— सीमा को पार कर जाएगा । इसीलिए विद्यारत महा अन्धकार में प्रवेश करता है, वह अविद्यारत से बढ़कर अधिक बदबूदार कीचड़ में फँसता है ?

आप आज-कल देखते ही हैं कि बी० ए०, एम० ए० पास लोग किस सफ़ाई और चालाकी से डकैती डालते हैं और हत्याएँ करते हैं ? धोखा देकर काम निकालना तो उनके बाँये हाथ का खेल है ।

"ऋते ज्ञानान् न मुक्तिः" में '**ज्ञान**' शब्द आध्यात्मिक ज्ञान के लिए प्रयुक्त है । इसलिए यह कहा जा सकता है कि '**ज्ञान**' का अर्थ 'आध्यात्मिक बोध' और '**विद्या**' का अर्थ 'सांसारिक बोध' है, उपनिषदों की भाषा में ।

मैं समझता हूँ कि तुम दोनों शब्दों का अर्थ समझ गये होगे । आशा है परमेश की दया से तुम सानन्द होगे । सस्नेह,

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री ज्वालाप्रसाद उपाध्याय,
प्रधानाचार्य,
बिहारीलाल उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, अलीगढ़ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री लक्ष्मणसिंह सेंगर के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१
दिनांक १६. ११. १९७८ ई०

प्रियवर,

आपके पत्र में लिखी हुई जिज्ञासात्मक शब्दावली इस प्रकार है—

"मैं **मानक हिन्दी** (परिनिष्ठित हिन्दी) की तुलना के साथ **ब्रजभाषा** के क्रियारूपों को जानना चाहता हूँ। कृपया उदाहरणों सहित समझाकर अनुगृहीत करें।"

वाक्य में प्रयुक्त क्रियापदों के रूप परिनिष्ठित हिन्दी में **काल** और **अर्थ** की दृष्टि से विभक्त किये जा सकते हैं। अँग्रेज़ी में इन्हें क्रमशः 'TENSE' और 'MOOD' कहते हैं।

हिन्दी में तीन काल हैं :—(१) **वर्तमान काल** (२) **भूत काल** (३) **भविष्यत् काल**। व्याकरण रूप की दृष्टि से वर्तमान काल को मानता है; वैसे इस संसार में वर्तमान कुछ है नहीं, सब कुछ संसरणशील है। लेकिन **व्याकरण** इतनी बारीकी पर नहीं जाता। इतनी सूक्ष्म दृष्टि तो **दर्शन** की ही है।

वर्तमान काल के तीन भेद हैं—(१) **सामान्य वर्तमान काल**, जैसे—"लड़का चलता है।" (२) **अपूर्ण वर्तमान काल**, जैसे—"लड़का चल रहा है।" (३) **पूर्ण वर्तमान काल**, जैसे—"लड़का चला है।"

भूत काल के भी तीन भेद हैं—(१) **सामान्य भूत काल**, जैसे—"लड़का चला।" (२) **अपूर्ण भूत काल**, जैसे—"लड़का चल रहा था।" (३) **पूर्ण भूत काल**, जैसे—"लड़का चला था।"

भविष्यत् काल का एक ही भेद है—(१) **सामान्य भविष्यत् काल**, जैसे—"लड़का चलेगा।"

यहाँ यह भी समझ लेना चाहिए कि क्रिया का काल रूप से निश्चित नहीं होता है, उसके तात्पर्य से होता है। तुम '**आता है**' क्रियापद को सामान्य वर्तमान का बताओगे; लेकिन "लड़का अभी **आता है**" में '**आता है**' क्रियापद आसन्न भविष्यत् काल में है। तुम '**गया**' क्रियापद को सामान्य भूत का बताओगे; किन्तु निम्नांकित वाक्य में '**गया**' क्रिया भविष्य सूचक है—"यदि मैं दिल्ली **गया**, तो तुम्हारे लिए एक घड़ी लाऊँगा।" "मैं अभी आया" में '**आया**' आसन्न भविष्यत् है।

कालसूचक क्रियाएँ किसी न किसी अर्थ (MOOD) को अवश्य प्रकट करती हैं। उपर्युक्त तीनों कालों के सातों वाक्य **निश्चयार्थ** को प्रकट करते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

निश्चयार्थ को **निर्देशार्थ** भी कहते हैं। निश्चयार्थ के अतिरिक्त हिन्दी में निम्नांकित अर्थ और पाये जाते हैं—(१) **सम्भावनार्थ** (२) **संदेहार्थ** (३) **विधि-अर्थ** (आज्ञार्थ, इच्छार्थ और आशीर्वादार्थ) (४) **संकेतार्थ**।

इस तरह हिन्दी में मुख्य अर्थ कुल **पाँच** हैं और काल **तीन** हैं।

इन पाँचों अर्थों और कालों में जो क्रियारूप हिन्दी में प्रचलित हैं, उनके समानान्तर ब्रजभाषा के क्रियारूप तुम्हारी सुविधा के लिए प्रस्तुत किये जा रहे हैं, ताकि तुम तुलनात्मक स्थिति के साथ दोनों भाषाओं के क्रियारूपों से अवगत हो सको।

अर्थ और काल	मानक हिन्दी	ब्रजभाषा
(१) निश्चयार्थ, सामान्य वर्तमान काल	(१) लड़का चलता है।	(१) छोरा चलै (चलतु है)
(२) ,, , अपूर्ण वर्तमान	(२) लड़का चल रहा है।	(२) छोरा चलि रह्यौ है।
(३) ,, , पूर्ण वर्तमान	(३) लड़का चला है।	(३) छोरा चल्यौ है।
(४) ,, , सामान्य भूत	(४) लड़का चला।	(४) छोरा चल्यौ *¹ (चलौ)

*¹ ['सूरसागर' ना. प्र. स. १/१८० में 'मार्‌यौ' और १/१५७ में 'मारौ' रूप मिलते हैं।]

अर्थ और काल	मानक हिन्दी	ब्रजभाषा
(५) ,, , अपूर्ण भूत	(५) लड़का चल रहा था।	(५) छोरा चलि रह्यौ हो (हतो)।
(६) ,, , पूर्णभूत	(६) लड़का चला था।	(६) छोरा चल्यौ हो (हतो)।
(७) ,, , सामान्य भविष्यत्	(७) लड़का चलेगा।	(७) छोरा चलैगो (छोरा चलिहै)।

वास्तव में '**छोरा चलिहै**' कन्नौजी से प्रभावित ब्रजभाषा-रूप है। तुलसीदास कृत 'कवितावली' में ऐसे भविष्यत्कालीन रूप मिलते हैं। '**चलिहै**' तिङन्त क्रियापद है; अर्थात् इस पर लिंग का प्रभाव नहीं पड़ता—(१) छोरा चलिहै (२) छोरी **चलिहै**। '**चलिहै**' दोनों लिंगों में समान है। तुलसी ने भी लिखा है—

"**लघु आनन उत्तर देत बड़ो लरिहै, मरिहै, करिहै कछु साको।**" —(तुलसी, कवितावली, बाल०, छन्द २०)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ और काल	मानक हिन्दी	ब्रजभाषा
(१) संभावनार्थ, वर्तमान काल	(१) शायद लड़का चलता हो।	(१) मति छोरा चलतु होइ।
(२) ,, , भूत	(२) शायद लड़का चला हो।	(२) मति छोरा चल्यौ होइ।
(३) ,, , भविष्यत्	(३) शायद लड़का चले।	(३) मति छोरा चलै।
(१) संदेहार्थ, वर्तमान	(१) क्या लड़का चलता होगा ?	(१) का छोरा चलतु होइगौ ?
(२) ,, , भूत	(२) क्या लड़का चला होगा ?	(२) का छोरा चल्यौ होइगौ ?
(१) विधिअर्थक प्रत्यक्ष आज्ञा, वर्तमान	(१) तू चल, तुम चलो।	(१) तू चलि। तुम चलौ।
(२) ,, परोक्ष आज्ञा, भविष्यत्	(२) तू चलना, तुम चलना।	(२) तू चलियो। तुम चलियौ।
(१) संकेतार्थ, सामान्य वर्तमान	(१) लड़की चलती, तो लड़का चलता।	(१) छोरी चलती, तौ छोरा चलतौ।
(२) ,, , अपूर्ण वर्तमान	(२) लड़की चलती होती, तो लड़का चलता होता।	(२) छोरी चलति होती, तौ छोरा चलतु होतौ।
(३) ,, , पूर्ण वर्तमान	(३) लड़की चली होती, तो लड़का चला होता।	(३) छोरी चली होती, तौ छोरा चल्यौ होतौ।
(२) संकेतार्थ, भूत	(२) मैं चाहता था कि लड़की आती होती तो लड़का भी आता होता।	(२) मैं चाहतो कै छोरी आवति होती, तौ छोरा हू आवतु होतौ।
(३) ,, , भविष्यत्	(३) यदि लड़की कल चलती, तो लड़का भी चलता।	(३) जौ छोरी कल्लि चलती, तौ छोरा हू चलतौ
,, , आसन्न भविष्यत्	यदि लड़की आती हो, तो लड़के को तैयार करूँ।	जौ छोरी आवति होइ, तौ छोरा कूँ तैयार करूँ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष—[-**इयत** प्रत्ययान्त क्रियापद भाववाच्य में साहित्यिक ब्रजभाषा में मिलते हैं—"**सुनियत** कथा पुराननि" (सूर० १/१५७) सुनियत=सुनी जाती है। **मरियत**[1]=मरा जाता है (सूर० १/१३८)। **पैयत**[2]=पाया जाता है (सूर० १/६१)]

मैं समझता हूँ, तुम्हें परिनिष्ठित हिन्दी और ब्रजभाषा के क्रियापदों की कुछ तुलना मालूम हो गयी होगी। व्याकरण में जितना झमेला क्रियापदों का है, उतना अन्य का नहीं। **काल** और **अर्थ** के अतिरिक्त क्रिया के **तिङन्त** और **कृदन्त** रूपों को समझना तथा '**वाच्यों**' को समझना भी अच्छी-खासी दिमागी कसरत है। वाच्यों के मामले में तो हिन्दी के व्याकरण-लेखकों ने बहुत-कुछ गड़बड़ किया है। क्रिया के वाच्यों को बहुत स्पष्टता के साथ हिन्दी में एक ही व्यक्ति ने लिखा है, वह हैं **आचार्य पं० किशोरीदास जी वाजपेयी**। तुम्हें उनका '**हिन्दी शब्दानुशासन**' अवश्य पढ़ना चाहिए।

आचार्य किशोरीदास जी वाजपेयी ने ही सर्व प्रथम बताया है कि "**नेवले ने उस साँप को मारा**", "**नेवली ने उस साँपिन को मारा**"—जैसे वाक्यों में '**मारा**' भाववाच्य की **क्रिया** है जो सदा एकरूप रहती है। हिन्दी में सकर्मक क्रियाएँ भी भाववाच्य में प्रयुक्त होती हैं। हिन्दी में "**लड़के ने खाँसा**" और "**लड़की ने खाँसा**" भाववाच्य के प्रयोग हैं। "**लड़का खाँसा**" और "**लड़की खाँसी**" कर्तृवाच्य के प्रयोग हैं। उपर्युक्त "**साँप को मारा**" में '**को**' कर्मकारकसूचक परसर्ग है; लेकिन "**लड़के को ज्वर है**" में **को** अधिकरणसूचक परसर्ग है।

आचार्य वाजपेयी जी ने "**ब्रजभाषा का व्याकरण**" भी लिखा है। एक व्याकरण-पुस्तक ब्रजभाषा के सम्बन्ध में **डा० धीरेन्द्र वर्मा** ने भी लिखी है—'**ब्रजभाषा-व्याकरण**'। दोनों पुस्तकें रामनारायणलाल, इलाहाबाद ने प्रकाशित की हैं। तुम्हें उक्त दोनों पुस्तकों को अवश्य पढ़ना चाहिए। ब्रजभाषा का व्याकरण जानने पर तुम और तुम्हारे मित्र श्री ब्रजमोहनलाल शर्मा 'मोहन' तथा श्री रामलखन शर्मा 'राम' ब्रज-साहित्य की अच्छी सेवा कर सकोगे।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि ब्रजसाहित्य-परिषद्, गोवर्धन, ब्रजभाषा की अच्छी सेवा कर रही है।

श्री लक्ष्मणसिंह सेंगर बी० ए०, प्रभाकर
स० अध्यापक,
राजकीय आदर्श विद्यालय, गोवर्धन (मथुरा)

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

---

१ "मरियत लाज सूर पतितनि मैं, मोहू तैं को नीकौ।" (सूरसागर' ना. प्र. स, १/१३८)
२ "अब कैसें पैयत सुख माँगे।" (सूरसागर, ना० प्र० स०; १/६१)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रो० विद्यानिवास मिश्र के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१

प्रिय बन्धु डा० मिश्र जी, २१. ११. ७८ ई०

सप्रेम नमस्कार !

दिनांक १८. ११. ७८ के प्रात: में आपसे विदाई लेकर मैं यहाँ लगभग ११ बजे (दिन) आ गया था। अच्छा यह था कि नगर में उस समय **'कर्फ़्यू'** खुला हुआ था।

दिनांक १७. ११. ७८ को हुई हमारी **'ब्रजभाषा-कोश'-सम्बन्धी-बैठक** बहुत आशाप्रद और सफल रही। आपके कुलपति **डा० श्यामनारायण जी मेहरोत्रा** ने भी बड़ी रुचि ली और अपनी सूझ-बूझ का अच्छा परिचय दिया। मुझे वे ब्रजभाषा-प्रेमी लगे। इटावा के निवासी में ब्रजभाषा के प्रति प्रेम होना स्वाभाविक है।

परामर्श-समिति में भैया साहब (पं० श्रीनारायण जी चतुर्वेदी) और श्री अमृतलाल जी चतुर्वेदी को लेकर आपके कुलपति महोदय ने और आपने अपनी पैनी निगाह का परिचय दिया है।

जनपदीय ब्रजभाषा को बोली की दृष्टि से विभाजित करें तो **अलीगढ़, मथुरा और आगरा** के ज़िले केन्द्रीय ब्रजभाषा के अन्तर्गत, और **इटावा** ज़िला पूर्वी ब्रजभाषा के अन्तर्गत आता है। **भैया साहब** तो पूर्वी अंचल को सँभालेंगे ही; केन्द्रीय अंचल के लिए **श्री अमृतलाल जी चतुर्वेदी** बहुत उत्तम हैं।

जब पं० अमृतलाल चतुर्वेदी कहेंगे—**'छोरा जाइगौ''** और उसी अर्थ में **भैया साहब** (पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी) कहेंगे—**''छोरा जइहै''**—तब केन्द्रीय ब्रजभाषा और पूर्वी ब्रजभाषा का व्याकरणिक अन्तर स्पष्ट हो जाएगा।

पं० अमृतलाल चतुर्वेदी के कवि-रूप से ही मैं परिचित था; लेकिन दिनांक १७. ११. ७८ की रात्रि को आपके निवास पर जब भैया साहब के साथ-साथ उनसे भी ब्रजभाषा-शब्दावली पर बातें होने लगीं, तब मुझे विदित हुआ कि पं० अमृतलाल जी ने तो **'बिहारी सतसई'** के शब्दों का बड़ा ही गहरा अध्ययन किया है। उनमें उन शब्दों की अर्थच्छवियों को पहचानने की अद्भुत क्षमता है। आपने अपनी पुस्तक **'हिन्दी की शब्द-संपदा'** की भूमिका में जिस मार्ग की ओर संकेत किया है, पंडित अमृतलाल जी चतुर्वेदी उसी राह के राही हैं।

भैया साहब (पं० श्रीनारायण जी चतुर्वेदी) के सम्बन्ध में मैं कहाँ तक क्या-क्या कहूँ ? उनके साहित्यिक स्वरूप को मैं अपने विद्यार्थि-जीवन से ही

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानता-पहचानता हूँ। मेरे गुरुवर **पं० गोकुलचन्द्र जी शर्मा** (अब दिवंगत) पं० श्रीनारायण जी चतुर्वेदी की बड़ी प्रशंसा किया करते थे। मैंने भी हिन्दी के ऐसे कई कवि-सम्मेलन देखे हैं, जिनकी सफलता का मुख्य श्रेय **पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी 'श्रीवर'** के अध्यक्षत्व को ही था।

कवि-सम्मेलनों के माध्यम से हिन्दी का प्रचार-प्रसार जिस ऊँचाई और उत्तमता से पंडित 'श्रीवर' जी ने किया, उसके लिए हिन्दी की वर्तमान पीढ़ी उनकी ऋणी रहेगी। हिन्दी के प्रसार के लिए जो कार्य सर्व श्री **भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पं० मदनमोहन मालवीय** और **राजर्षि टंडन जी** ने किया, उसी शृङ्खला में **पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी** भी चिरस्मरणीय रहेंगे।

उस दिन रात को, अर्थात् १७. ११. ७८ की रात को आपके निवास पर आदरणीय भैया साहब से लगभग दो-तीन घंटे मेरी बातें होती रही थीं। उन्होंने **आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल** और **पं० बनारसीदास चतुर्वेदी** के सम्बन्ध में बड़े दिलचस्प संस्मरण सुनाये थे। मैंने तभी भैया साहब से प्रार्थना की थी कि आप **'आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास'** की भाँति कृपा करके अपने समय के साहित्यकारों का एक **संस्मरण-इतिहास** भी लिखें। अद्भुत चीज़ बनेगी।

'ब्रजभाषा-कोश' की भूमिका में ब्रजभाषा के व्याकरण पर तो विस्तृत प्रकाश डाला ही जाएगा। **ब्रजभाषा** के व्याकरण के साथ-साथ **कनउजी** और **बुन्देली** के व्याकरण को भी प्रस्तुत करना अच्छा रहेगा।

इन तीनों भाषाओं में मामूली-सा अन्तर है, ब्रजभाषा में **'लरकिन कूँ पुस्तक चहिऐं'** (२) कनउजी में **लरिकन कउँ पुस्तक चहिऐं**। बुन्देली में **लरिकन खौं पुस्तक चहिऐं।**

तुलनात्मक व्याकरण के उपरान्त ही उसके पूर्व खंड में एक अध्याय **शब्द-अर्थ** पर भी रहे, तो बहुत अच्छा होगा। आप उसके लिए सक्षम और अधिकारी भी हैं। महापंडित श्री राहुल जी के साथ आप शब्दकोश की दुनिया देख भी चुके हैं। आपके ललित निबन्धों तथा **'हिन्दी की शब्द-संपदा'** पुस्तक को पढ़ने के उपरान्त कोई भी पाठक यही कहेगा कि **डा० मिश्र** शब्द की अर्थच्छवि की मनमौजी पैमायश नहीं करते, अपितु उसकी विभिन्न विच्छित्तियों को परखने की पूरी-पूरी क्षमता रखते हैं।

हिन्दी-विद्यापीठ से यदि ब्रजभाषा का एक अच्छा-सा कोश पाँच वर्ष में हिन्दी को मिल गया, तो एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति होगी। माता वीणापाणि हिन्दी का कल्याण करें!

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रजभाषा के जनपदीय शब्दों से हिन्दी का भंडार सम्पन्न होगा। बाद में हिन्दी का जो महाकोश बनेगा, उसके लिए ब्रजभाषा-कोश की शब्द-संपदा भी एक प्रमुख योगदान सिद्ध होगी।

जनपदीय बोलियों में ऐसे सैकड़ों शब्द हैं, जिनके समानान्तर परिनिष्ठित हिन्दी में शब्द नहीं हैं। **नरेर, हुड़क, हुड़कचुल्लू हड़कल, हिलंदा, लड़बौरी** आदि ऐसे अनेक विशिष्ट शब्द हैं, जिनके पर्याय मानक हिन्दी में नहीं मिलते।

हर्ष है आप सपरिवार सानंद हैं। बेटी मंजुला को आशीर्वाद है। मुनिया आमोदिनी को प्यार। सस्नेह,

प्रो० विद्यानिवास मिश्र, आपका
निदेशक, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
हिन्दी-विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।

पं० अमृतलाल चतुर्वेदी के नाम

हिन्दी-शोध-संस्थान
हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०) पिन—२०२००१

आदरणीय श्री चतुर्वेदी जी, दिनांक २३. ११. ७८ ई०

सादर नमस्कार !

उस दिन मैं आदरणीय **भैया साहब** और आपसे साहित्यिक वार्तालाप का सुख प्राप्त करके दिनांक १८-११-७८ के प्रातः में आगरा से चलकर यहाँ आगया था।

कल संयोग से आपके **ग़ालिब अमृत'** को पढ़ रहा था। अधिक क्या कहूँ, शायरी के मज़े को ब्रजभाषा की कविता के आनन्द के रूप में ग्रहण किया। ब्रजभाषा की यह सेवा आपकी श्लाध्य है, अमूल्य है; और सिद्ध करती है कि फ़ारसी-शब्दों को ब्रजभाषा में अनूदित करने की क्षमता कविवर श्री अमृतलाल चतुर्वेदी जी में है, ख़ूब है। हार्दिक बधाई और प्रणामांजलि स्वीकार करें !

हिन्दी विद्यापीठ, आगरा का सौभाग्य है कि **'ब्रजभाषा-कोश'** के लिए परा-मर्शदात्री समिति में आप जैसा विद्वान् आगरा विश्वविद्यालय को मिल गया।

आप **'बिहारी'** के काव्य के मर्मज्ञ पंडित हैं। उसे आपने गहराई से पढ़ा भी है। "बिहारी ने **'किसलिए'** के अर्थ में **'कहलाने'** का प्रयोग किया है"— आपके इस कथन से मैं सहमत हूँ। ब्रजभाषा-क्षेत्र में 'कहलाने' इस अर्थ में प्रयुक्त भी होता है (वि० र०, दो० ४८९)।

कृपया कोश के शब्दों में बिहारी के शब्दों के अर्थों पर गहरी दृष्टि रखें,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताकि हिन्दी-जगत् को शब्दार्थ के रूप में सच्ची अर्थ-संपदा प्राप्त हो सके। हिन्दी-जगत् के समक्ष हमें परीक्षा देनी है, इस कार्य के रूप में।

सूर, बिहारी, देव आदि कवियों की कविताओं में ऐसे विचित्र शब्द मिलते हैं, जिनकी आत्मा के दर्शन वही करा सकता है, जिसने ब्रज-प्रदेश के गाँवों में रहकर वहाँ की संस्कृति, रीति-रिवाज, पहनाव-उढ़ाव, चाल-चलन आदि को अच्छी तरह देखा है। **धौल, कहलाने**, छैया, **ठनगन**, ऊकनौ, **हूलौ, सकस, मगर बेंड़ौ, ऐंड़ौ हौलौ**, आदि शब्द स्पष्ट व्याख्या चाहते हैं।

हम लोग तो आगरा से बाहर हैं। कभी-कभी पहुँच सकेंगे; आपके आँगन मे ही हिन्दी-विद्यापीठ है। अतः आपकी सक्रियता 'कोश' के लिए वीणापाणि का प्रसाद सिद्ध होगी।

आशा है परमेश की दया से आप स्वस्थ और सानंद होंगे।

कविवर श्री अमृतलाल जी चतुर्वेदी, विनीत
एडवोकेट, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
सीतलागली, आगरा (उ० प्र०)

एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्द जी महाराज के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१
पूज्यचरण महाराज जी, दिनांक २७. ११. ७८ ई०

सादर प्रणाम!

आपकी आज्ञा से लिखा हुआ श्री भट्टारक चारुकीर्ति जी की लेखनी का पत्र (२५. ११. ७८) मिला। कृपा के लिए आभारी हूँ।

आपको **'एलाचार्य'** पद पर प्रतिष्ठित करके जैन-समाज ने अपनी गुण-ग्राहकता का ही परिचय दिया है। आज का साधु-समाज और विद्वन्मण्डल भी इससे गौरवान्वित होगा। इस महा सारस्वत-समारोह के उपलक्ष्य में मेरी भी प्रणामांजलि आपको सादर समर्पित है। जैन-दर्शन के पंडितों में केवल श्री कुंद-कुंद ही **एलाचार्य** कहलाते थे। आप इस युग के **एलाचार्य** हैं।

दिनांक १. ११. ७८ को आपके द्वारा हस्ताक्षरित एवं आशीर्वाद-समन्वित सद्यः प्रकाशित **'समयसार'**[1] की एक प्रति प्रियभाई महेन्द्रसागर जी प्रचंडिया के माध्यम से मुझे ४-११-७८ को मिली थी। उसकी **(समयसार की) भाषा के स्वरूप-निर्णय के सम्बन्ध में** प्रचंडिया जी द्वारा आपका आदेश भी मिला था।

---

१ कुन्दकुन्द आइरिय, समयसारो, श्री कुन्दकुन्द भारती, ७ ए, राजापुर रोड, दिल्ली-११०००६ मई, सन् १९७८ ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विस्तार से तो कभी समय मिलने पर पूरा अध्ययन करके ही '**भाषा**' पर निवेदन करूँगा; लेकिन इस समय कुछ सरसरी दृष्टि से लिखकर आज्ञा-पालन कर रहा हूँ।

आपके तत्त्वावधान एवं निर्देशन में संपादित एवं प्रकाशित आचार्य कुन्द-कुन्द कृत '**समयसार**' प्राकृत भाषा का अति प्राचीन ग्रंथ है। जब आचार्य कुन्दकुन्द ईसा से १०८ वर्ष पूर्व उत्पन्न हुए थे, तब '**समयसार**' को ईसा पूर्व की रचना तो मानना ही पड़ेगा।

हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण में दो प्रकार की प्राकृत भाषाएँ मानी हैं—(१) **आर्ष प्राकृत** अर्थात् प्राचीन प्राकृत (२) **प्राकृत** अर्थात् परवर्ती प्राकृत या नवीन प्राकृत। उनके व्याकरण में **आर्ष प्राकृत** पर बहुत कम लिखा गया है। **प्राकृत** का विवेचन ही अधिक है।

हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण में सूत्र १४५ से १७३ तक प्राकृत के कृत् और तद्धित प्रत्ययों का निर्देश करते हुए बताया है कि संस्कृत के '**क्त्वा**' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में तुम्, अत्, **तूण** और तुआण आदेश होता है। जैसे **घेत्तुं**, **घेत्तूण**, **घेत्तुआण** आदि।

हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण में—**दूण** प्रत्यय का उल्लेख नहीं है। इससे सिद्ध है कि 'समयसार' की प्राकृत भाषा इतनी अति प्राचीन भाषा है कि हेमचन्द्र उसके सम्बन्ध में स्पष्टतया कुछ न कह सके थे। जब आर्ष प्राकृत के सम्बन्ध में वे अधिक नहीं कहते, तब पूर्वकालिक कृदन्त के रूप में पाये जानेवाले समयसार-गत-**दूण** प्रत्यय के विषय में कहते ही क्या?

'**समयसार**' की भाषा में पूर्वकालिक कृदन्त में—**इत्तु** (१/१/१),—**इत्ता** (१/३१/३१),—**दूण** (१/३४/३४) और—**इदुं** (१/३५/३५) प्रत्यय अधिक पाये जाते हैं। दो-एक स्थल पर—**तूण** (४/१२/१५६; ७/११/२०३) प्रत्यय भी प्रयुक्त किया गया है। —**दूण** प्रत्यय का आधिक्य ग्रंथ की प्राचीनता का सूचक है। यही—**दूण** प्रत्यय अपभ्रंश-भाषा-काल में—**अडुअ** के रूप में प्रयुक्त हुआ है। सं० **गत्वा** के लिए अपभ्रंश में 'गडुअ' और '**कृत्वा**' के लिए 'कडुअ' का प्रयोग होता था। हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण के ८/४/२६० से ८/४/२८६ तक के सूत्रों में एक स्थल पर इसका संकेत किया है।

ईसा-पूर्व की प्राकृत में संस्कृत की 'थ्' ध्वनि 'ध्' में, और फिर 'ह्' में बदल गयी थी। सं० **रथ** को प्राकृत में '**रध**' और 'रह' लिखा जाता था।

कुन्दकुन्दाचार्य के **समयसार**' में पूर्वकालिक क्रियाओं के रूप किस-किस प्रकार से कितनी आवृतियों में मिलते हैं—इस पर भी विचार करना अभीष्ट है,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताकि उसकी भाषा की प्रकृति एवं स्वरूप का कुछ निर्णय किया जा सके—

पूर्वकालिक कृदन्त-प्रत्यय सहित पद	**आवृत्ति**
(१)–**इत्तु**, जहित्तु (१०/१०४/४११), थुणित्तु (१/२८/२८), वंदित्तु (१/१/१)	३
(२)–**इत्ता**, जिणित्ता (१/३१/३१; १/३२/३२)	२
(३)–**तूण**, मोत्तूण (७/११/२०३; ४/१२/१५६), छेत्तूण (६/५/२६२)	३
(४)–**दुं**,–इदुं, णादुं (१०/१०८/४१८), झाणिदुं (१/३५/३५), पस्सिदुं (२/२१/५६)	३
(५)–**दूण**, जाणिदूण (१/१७/१७; १०/७५/३८२) णादूण (१/३४/३४; ३/४/७२; १/३५/३५; ३/६/७४) अज्झाइदूण (१०/१०/३१७), पढिदूण (१०/१०८/४१५) पस्सिदूण (२०/२०/५८)	६

पूर्वकालिक कृदन्त के पाँच प्रत्ययों में से सर्वाधिक आवृतियाँ—**दूण** प्रत्यय की ही हैं, जो जैन-शौरसेनी की प्रकृति को सूचित करता है।—**दूण** प्रत्यय जैन-शौरसेनी का प्रमुख लक्षण है।

प्राचीन प्राकृत में 'संस्कृत' 'त्' के **समानान्तर** ध्वनि 'द्' मिलती है। कालिदास कृत 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' (१/२३/१६) की शौरसेनी प्राकृत में **अणुसरदि** (सं० अनुसरति) रूप मिलता है। कालिदास को अब ई० पू० प्रथम शती का कवि माना जाता है। द्' ध्वनि शौरसेनी प्राकृत की अपनी विशेषता भी है। शौरसेनी प्राकृत में '**पदमचरिय**' (सं० पद्मचरित) शब्द है। इसका अपभ्रंश रूप '**पउमचरिउ**' है। अपभ्रंश में **स्वरीभवन** हुआ है।

सं० **भवति** का प्राकृत-रूप 'समयसार' में **हवदि** (३/३३/१०१) तथा **होदि** (३/३/७१) मिलता है। लेकिन सं० **भ्रमति** का प्राकृत रूप '**भमइ**' (७/४४/२३६) भी पाया जाता है।

वर्तमान काल में अन्य पुरुष बहु वचन रूप **होंति** (२/१६/५७) मिलता है। सं० **कोऽपि** का रूप **कोई** (२/२४/६२) भी मिलता है। कुंदकुंदाचार्य की दृष्टि भाषा के संस्कार पर भी रही है।

जैसा कि कहा जा चुका है कि प्राचीन प्राकृत में सं० '**थ्**' का परिवर्तन '**ह्**' में हुआ था। '**समयसार**' की प्राकृत में **बंधकहा** (१/३/३) रूप मिलता है सं० **बंधकथा**, प्रा० **बंधकहा**।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि '**समयसार**' की भाषा प्राचीन प्राकृत है, अर्थात् प्राचीन जैन-शौरसेनी प्राकृत है, जिसमें सं० **त्** के समानान्तर प्रायः **द्** ही पाया जाता है।

यदि हेमचन्द्र की शब्दावली में कहा जाए, तो यह कहा जा सकता है कि '**समयसार' की भाषा आर्ष जैन-शौरसेनी प्राकृत** है। हेमचन्द्र '**आर्ष**' शब्द का प्रयोग 'प्राचीन' के अर्थ में करते हैं। हेमचन्द्रीय **अपभ्रंश** और **समयसार** की प्राकृत में मूल अन्तर यह है कि समयसार की भाषा में प्रथमा विभक्ति में**—ओ** प्रत्यय पाया जाता है, जो हेमचन्द्र की अपभ्रंश में '**उ**' में बदल गया है। **देहो** (समयसार, १/२७/२७), **देहु** (हेम०)। समयसार (१/२८/२८) में द्वितीया में **देहं** रूप मिलता है; लेकिन हेमचन्द्र की अपभ्रंश में 'देहु' है।

सारांश यह है कि द्वितीया के एक वचन के रूपों में समयसार की भाषा संस्कृत के अति निकट है; लेकिन हेमचन्द्र की अपभ्रंश ब्रजभाषा के निकट आ गयी थी।

('दहमुहु णिग्गउ—हेमव्या० ८/४/३३१/१)=सं० दशमुखः निर्गतः। छंमुहु झाइवि—हेमव्या० ८/४/३३१/१)=सं० षण्मुखं ध्यात्वा।

शेष फिर कभी निवेदन करूँगा। दक्षिण की यात्रा में जाने पर आप कृपया वहाँ के पते की सूचना देकर अनुगृहीत करें।

योग्य सेवा, कृपा-भाव !

सेवा में, विनीत

एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्द जी महाराज, अम्बाप्रसाद 'सुमन'

दिगम्बर जैन धर्मशाला, पहाड़ी धीरज, दिल्ली।

श्री जुगतराय रे० दवे के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१

प्रियवर श्री जुगतराय जी, दिनांक २६. ११. ७८ ई०

आपने **हिन्दी और गुजराती के वाक्यों में कर्मवाच्य का प्रश्न उठाया है।** उसके सम्बन्ध में मैं आपको एक बात स्पष्ट करना चाहता हूँ, जो बहुत महत्त्व-पूर्ण है।

हिन्दी में **अकर्मक क्रियाओं** का प्रयोग तो भाववाच्य में होता ही है, लेकिन **सकर्मक क्रियाएँ** भी हिन्दी में भाववाच्य में प्रयुक्त होती हैं।

"**लड़के से नहीं चला जाता**"; **लड़की से नहीं चला जाता**" जैसे वाक्यों में '**चला जाता**' क्रियापद का प्रयोग भाव वाच्य में है। यहाँ क्रियापद पर कर्ता के लिंग का प्रभाव नहीं पड़ा। '**चलना**' अकर्मक क्रिया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"लड़के ने उस कुत्ते को मारा"; "लड़के ने उस कुतिया को मारा"; "लड़की ने उस कुत्ते को मारा"। इन वाक्यों में भी 'मारा' अपरिवर्तित है। कर्ता या कर्म के लिंग का प्रभाव क्रिया पर नहीं पड़ा। इसलिए हम कह सकते है कि उपर्युक्त वाक्यों में 'मारा' क्रियापद भाववाच्य में है। 'मारना' सकर्मक क्रिया है।

यदि हम कहें कि "पुरुष ने स्त्री पढ़ायी' या स्त्री ने पुरुष पढ़ाया"—तो ये वाक्य और उनके क्रियापद प्रकट करते हैं कि ये कर्मवाच्य में हैं। इनमें क्रियाएँ कर्म के अनुसार हैं। 'पढ़ाना' सकर्मक क्रिया है।

कर्म के साथ 'को' परसर्ग का प्रयोग करें, तो वाक्य इस तरह बनेंगे—

(१) पुरुष ने स्त्री को पढ़ाया।

(२) स्त्री ने पुरुष को पढ़ाया।

उपर्युक्त दोनों वाक्यों की क्रियाएँ भाववाच्य में हैं। इसका कारण है 'को' परसर्ग।

हिन्दी में सकर्मक क्रियाएँ भी भाववाच्य में होती हैं। संस्कृत में ऐसा नहीं है। संस्कृत में अकर्मक क्रियाओं का प्रयोग ही भाववाच्य में पाया जाता है, (बालकेन हसितम्.बालकया हसितम्)। हिन्दी मे भी ऐसी बात है। खाँसना अकर्मक क्रिया है। "लड़के ने खाँसा" और "लड़की ने खाँसा" भाववाच्य के प्रयोग है।

यही स्थिति ब्रजभाषा में भी है—

(१) पुरुस नैं स्त्री कूँ (कौं) पढ़ायौ। (३) छोरा नैं खाँस्यौ।

(२) स्त्री नैं पुरुस कूँ (कौं) पढ़ायौ। (४) छोरी नैं खाँस्यौ।

ऐसी बात गुजराती भाषा में नहीं मिलती। वहाँ 'ने' परसर्ग के प्रयोग से भी क्रियापद वैसा ही बना रहता है; अर्थात् क्रिया कर्मवाच्य की ही बनी रहती है।

(१) पुरुषे स्त्री भणवी (=पुरुष ने स्त्री पढ़ायी)

(२) पुरुषे स्त्री ने भणवी (=पुरुष ने स्त्री को पढ़ाया)

हिन्दी और गुजराती के इस अन्तर को आप अवश्य नोट करें। गुजराती का 'ने' परसर्ग कर्मकारक-सूचक है। हिन्दी का 'ने' परसर्ग कर्ताकारक-सूचक है।

शेष फिर कभी। आशा है सानंद होंगे।

श्री जुगतराय रे० दवे, एम० ए०
३१—शिक्षक नगर, 'चन्द्रमौलि'
उपलेटा, (गुजरात)

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कु० चन्द्रप्रभा सारस्वत के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१
दिनांक २. १२. ७८ ई०

प्रिय बेटी चन्द्रप्रभा,

आशीर्वाद !

तुम्हारे पत्र से विदित हुआ कि तुमने हिन्दी-विद्यापीठ, आगरा विश्व-विद्यालय, आगरा में पी-एच० डी० कक्षा में प्रवेश ले लिया है और **तुम विशेष रूप से लोक-जीवन की ब्रजभाषा और साहित्यिक ब्रजभाषा में अन्तर जानना चाहती हो।**

लोकभाषा और **साहित्यिक भाषा** में शब्द के स्तर पर प्रमुख अन्तर यह होता है कि लोकभाषा में **देशज** और **तद्भव** शब्दों का बाहुल्य होता है; साहित्यिक भाषा में अपेक्षाकृत तद्भव और देशज शब्द कम प्रयुक्त होते हैं। उसमें तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ करता है। संस्कृत से आये हुए अक्षुण्ण शब्द **तत्सम** कहाते हैं, जो बहुत भारी और तुंदिल होते हैं। लोक-शब्द बड़े छरैरे और फुर्तीले होते हैं। उनमें हमारी धरित्री के कण-कण का कंठ बोलता है।

इसी सिद्धान्त के आधार पर तुम्हें समझ लेना चाहिए कि लोक-जीवन की ब्रजभाषा में 'लोक शब्द' (**देशज** और **तद्भव** शब्द) अधिक प्रयुक्त किये जाते हैं। **अलीगढ़, मथुरा, आगरा, एटा, इटावा, मैनपुरी, भरतपुर, ग्वालियर** आदि ज़िलों के गाँवों में अशिक्षित ग्रामीण लोग अपनी बात-चीतों में देशज, ध्वन्यात्मक तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग ही अधिक करते हैं। वे लोग **'टाँग'** न बोलकर **गोड़**, और **दर्द** न बोलकर **'हड़कल'** ही बोलते हैं। साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रयोग करनेवाला साहित्यकार अपनी पुस्तक में लिखेगा—"**कलावती के पुत्र के सिर में पीड़ा है रही है।**" इसे ही लोक-जीवन की ब्रजभाषा में कहा जाएगा—"कलावती के **पूत कौ मूँड़ु पिराइ रह्यौ है।**"

ध्वनि-परिवर्तन के प्रसंग में तुम्हें यह भी याद रखना चाहिए कि लोक-जीवन की ब्रजभाषा में प्रायः 'हकार' का लोप मिलता है। साहित्यिक ब्रज-भाषा का **'मोहि'** सर्वनाम पद जनपदीय ब्रजबोली में **'मोइ'** बोला जाता है। साहित्यिक ब्रजभाषा का वाक्य है—"**मेरौ छोरा कौन नैं मार्‌यौ है।**" इसे लोक-जीवन की ब्रजभाषा में "**मेरौ छोरा कौनैं मार्‌यौ ऐ।**" बोलते हैं।

मथुरा नगर के पास के गाँवों में अकारान्त संज्ञा शब्द का तिर्यक् बहुवचन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रायः-अन प्रत्यय के साथ बोला जाता है। जैसे—**पलक, पलकन**। किन्तु सादाबाद तहसील के गाँवों में **पलकनु** भी बोला जाता है।

लोक-जीवन की भाषा का रूप एक नहीं होता। वह हर आठ कोस पर बदल जाती है। उसके व्याकरण में भी अनेकरूपता पायी जाती है। लोक-भाषा में उपबोलियों की शब्दावली ऐसी विचित्र पायी जाती है कि उसका अर्थ जानना बहुत मुश्किल होता है। अलीगढ़, मथुरा आदि ज़िलों के गाँवों में ऐसे सैकड़ों जनपदीय शब्द प्रचलित हैं, जिनके अर्थ प्रत्येक व्यक्ति नहीं जानता। **हौलौ, हूक, हुड़क, हिलन्दा, लड़ैती, लड़बौरी, हूल-कुतंगो, सखरी, वैया** आदि ऐसे जनपदीय शब्द हैं, जिनके अर्थ वे व्यक्ति ही जान सकते हैं, जो अलीगढ़ तथा मथुरा ज़िले के गाँवों में रहते हैं और ग्रामीण जनों के सम्पर्क में नित्य प्रति आते रहते हैं।

जानपद जनों में शब्द-सृष्टि की अपार शक्ति है। मोटर कार के 'हॉर्न' के लिए 'भौंपू' शब्द उन्होंने ही बनाया है। **खुदबुद, झिकझिक, चिकचिक, हड़बड़, थरथर, चर्रमर्र** जैसे सैकड़ों ध्वन्यात्मक शब्द उन्होंने ही बनाये हैं।

लोक-जीवन की ब्रजभाषा का व्याकरण भी बहुरंगा है। कारकीय परसर्गों के रूप अनेक हैं। खड़ीबोली के कर्मकारकीय परसर्ग '**को**' के लिए लोक-जीवन की ब्रजभाषा में कई तरह के रूप हैं—बुलन्दशहर के गाँवों में '**कू**'; अलीगढ़ के गाँवों में '**कूँ**' और मथुरा के चौबों की बोली में '**कौं**' बोलते हैं।

निम्नांकित वाक्यों के परसर्गों पर ध्यान देने से अनेकरूपता का पता लग सकता है :—

(१) छोरा **कू** बुलाऔ (बुलन्दशहर ज़िले में)

(२) छोरा **कूँ** बुलाऔ (अलीगढ़ ज़िले में)

(३) छोरा कौं बुलाऔ (मथुरा के चौबों में)

इतना ही नहीं अलीगढ़ ज़िले की खैर तहसील में "लड़का आता है" के लिए कहा जाता है—"**छोरा आवै**"। लेकिन अलीगढ़ ज़िले की कोल तहसील के गाँवों में बोलते हैं—"**छोरा आवत्वै**।" तहसील कोल में '**करना**' का भूतकाल '**करौ**'; और तहसील इगलास और माट में '**कर्यौ**' प्रचलित है। इसे ही मैनपुरी के गाँवों में '**करो**' बोलते हैं।

लोक-जीवन की ब्रजभाषा में इतनी अधिक अनेकरूपता पायी जाती है कि अलीगढ़ ज़िले के गाँवों में '**छोरा**' संज्ञा शब्द का तिर्यक् बहुवचन '**छोरन**' भी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोला जाता है और 'छोरनु' भी। यह तिर्यक् बहुवचनीय–नु या–अनु विभक्ति-प्रत्यय 'बिहारी रत्नाकर' में भी मिलता है।

व्याकरण की ऐसी अनेकरूपता साहित्यिक ब्रजभाषा में नहीं पायी जाती। ब्रजभाषा लगभग ३०० वर्ष तक साहित्यिक भाषा के रूप में गृहीत होती रही हैं; इसलिए इसमें शब्द-स्तर पर कन्नौजी, अवधी, भोजपुरी और बुन्देली के शब्दों से भी अपनेपन का नाता रहा है। उन शब्दों को ब्रजभाषा ने अपने व्याकरण में ढालकर साहित्य के आसन पर बिठाया है। **'ढोटा'** वास्तव में अवधी भाषा का शब्द है, लेकिन तुलसी की ब्रजभाषा में इसका प्रयोग हुआ है। केन्द्रीय ब्रजभाषा औकारबहुला है; इसलिए तुलसी ने कवितावली (बाल० छंद २०) में **'ढोटो'** लिखा है। बुन्देली की ओकारान्तता को स्वीकारते हुए तुलसी लिखते हैं—

गोरो गरूर गुमान भरो, कहौ कौसिक छोटो-सो ढोटो है काको।
—(कवितावली, बाल०, छंद २०)

तुम्हें इतना ध्यान रखना चाहिए कि ब्रजभाषा **औकार**बहुला, कनउजी **ओकार**बहुला, अवधी **अकार**बहुला और खड़ीबोली **आकार**बहुला है—**खोटौ** (ब्रजभाषा), **खोटो** (कनउजी), **खोट** (अवधी) और **खोटा** (खड़ी बोली)।

कविवर रत्नाकर ने अपने 'उद्धव शतक' में तिर्यक् पुंलिंग-बहुवचन-संज्ञापद **'कंजनि'** लिखा है; जबकि केन्द्रीय ब्रजभाषा में **'कंजन'** होता है। तहसील सादाबाद (मथुरा) के आस-पास **'कंजनु'** भी बोलते हैं। बहुवचन में **'नि'** का लिखा जाना भोजपुरी का प्रभाव माना जा सकता है।

बिहारी की 'सतसई' की ब्रजभाषा बुन्देली से प्रभावित है। इस तरह साहित्यिक ब्रजभाषा में शब्द और व्याकरण के स्तर पर कन्नौजी, बुन्देली, अवधी और भोजपुरी भाषाओं का प्रभाव प्रतिलक्षित होता है। शब्द के स्तर पर साहित्यिक ब्रजभाषा में संस्कृत, अरबी और फ़ारसी के शब्द भी बहुत मिलते हैं। संस्कृत के शब्दों में ब्रजभाषा के विभक्ति-प्रत्यय जोड़कर कवियों ने उन्हें धड़ल्ले से प्रयुक्त किया है।

बुन्देली में भी ब्रजभाषा की भाँति बहुवचन में—**अन** प्रत्यय ही लगता है। छतरपुर की बुन्देली का एक वाक्य है—

"तुमाए लरकन खों कितेक किताब चहिऐं"

लोक-जीवन की ब्रजभाषा में वाक्य है—**"पूतऐ देखि"** (=पुत्र को देख)। इसे साहित्यिक ब्रजभाषा में लिखा जाएगा—**"पुत्रहि अवलोकि"**।

इस तरह बिहारी, देव, केशव, घनानंद, पद्माकर, भूषण आदि ने भी संस्कृत

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दों में ब्रजभाषा के प्रत्यय जोड़कर साहित्यिक ब्रजभाषा में रचनाएँ की हैं। उन कवियों ने स्थानीय शब्दों का भी यत्र-तत्र प्रयोग किया है। और तो और सूरदास तक ने ब्रजभाषा-शब्द **'चुटिया'** न लिखकर, खड़ीबोली-शब्द **'चोटी'** का प्रयोग किया है—

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी ? (सूरसागर, ना० प्र० १०/१७५)

तुम जानती हो कि ब्रज-क्षेत्र में सब **'चुटिया'** ही बोलते हैं। **'चोटी'** खड़ीबोली का शब्द है। ब्रजभाषा में **'चोटी'** शब्द का प्रयोग 'पहाड़ की चोटी' के लिए किया जाता है; बालक के सिर के 'बालों की चोटी' के लिए नहीं। लेकिन सूरदास ने किया है। साहित्यिक ब्रजभाषा जो है। लोक-जीवन की भाषा में इस अर्थ में **'चोटी'** का प्रयोग न होगा—**'चुटिया'** का ही होगा।

लोक की ब्रजभाषा में बहुत-से शब्द ऐसे भी हैं, जिनके प्रचलन का सीमा-क्षेत्र बड़ा नहीं है। वे चालीस-पचास कोस के बाद सुनायी नहीं पड़ते।

ब्रज की जनपदीय भाषा का एक शब्द है, **धौतायौ**। यह 'प्रातःकाल' के अर्थ में कुछ तहसीलों में ही बोला जाता है। इसका समानार्थी **सबेरौ** शब्द विस्तृत क्षेत्र में प्रचलित है; जीवित है, व्यापक है। इसी कारण साहित्यिक ब्रजभाषा ने **सबेरौ** स्वीकार किया है, 'धौतायौ' नहीं।

मैं समझता हूँ, तुम लोक-जीवन की ब्रजभाषा और साहित्यिक ब्रजभाषा में अंतर समझ गयी होगी। कभी इस प्रसंग को डा० मिश्र जी के समक्ष भी चलाना। वे और अधिक प्रकाश डालकर तुम्हें समझा देंगे। सस्नेह,

कु० चन्द्रप्रभा सारस्वत, शुभैषी

एम० ए०, रिसर्च स्कालर, अम्बाप्रसाद 'सुमन'

क० मु० हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा

डा० (श्रीमती) शारदा शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१

प्रिय पुत्री शारदा, दिनांक ६. १२. ७८ ई०

आशीर्वाद !

तुम्हारा दिनांक ३. १२. ७८ का पत्र मिला। तुमने यह जानना चाहा है कि **प्राकृतिक लिंग और व्याकरणिक लिंग से क्या तात्पर्य है** ?

प्राकृतिक लिंग से तात्पर्य है कि प्रकृति ने किसी मनुष्य, पशु, कीड़े, मकोड़े आदि को नर योनि प्रदान की है या स्त्री योनि। जैसे **बैल** नर योनि में, और **गाय** स्त्री योनि में है। प्रकृति ने **घोड़ा** पुंलिंग में और **घोड़ी** स्त्रीलिंग में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनायी है। लेकिन '**पत्थर**' या 'कंकड़' अथवा 'बालू' या '**मिट्टी**' को भी प्रकृति ने ही बनाया है। इनमें न नरत्व है, न स्त्रीत्व। पत्थर, **कंकड़**, बालू और मिट्टी में से किसी में भी कोई ऐसा लक्षण नहीं पाया जाता, जिससे हम इन्हें प्रकृति की दृष्टि से पुरुष या स्त्री कह सकें। परन्तु व्याकरण **पत्थर** और **कंकड़** को पुरुष; और बालू और मिट्टी को स्त्री बतलाता है; अर्थात् **पत्थर** और **कंकड़** पुंलिग हैं और **बालू** और **मिट्टी** स्त्रीलिंग हैं।

सारांश यह कि व्याकरण शब्द में लिंग मानता है; वस्तु से उसका विशेष सम्बन्ध नहीं है। संस्कृत में स्त्रीवाची 'दारा' शब्द पुंलिंग है।

स्त्री के अर्थ में एक शब्द 'कलत्र' है। यह संस्कृत के व्याकरणानुसार नपुंसक लिंग है। बहुत संभव है, प्रारम्भ में स्त्री वस्तु की भाँति हस्तांतरित की जाती हो।

मूछें पुरुषत्व सूचक होते हुए भी व्याकरण की दृष्टि से स्त्रीलिंग हैं। 'बाल' (रोम) वस्तु निर्जीव है, लेकिन व्याकरण के अनुसार 'बाल' पुंलिंग है।

खाट और **पलंग** में न पुरुषत्व है न स्त्रीत्व। निर्जीव वस्तु मात्र हैं। फिर भी व्याकरण की दृष्टि से **खाट** स्त्रीलिंग, और **पलंग** पुंलिंग है। '**ईश्वर**' न स्त्री है और न पुरुष; लेकिन व्याकरण '**ईश्वर**' को पुंलिंग मानता है।

मछली और **कोयल** व्याकरणिक दृष्टि से सदा स्त्रीलिंग हैं; लेकिन प्रकृति उनमें नर भी पैदा करती है। उस **नर मछली** और **नर कोयल** को भी **मछली** और '**कोयल**' ही कहते हैं। प्रकृति ने उन्हें नर बनाया है, लेकिन व्याकरण उन्हें स्त्रीलिंग ही मानता है।

अर्थात् प्रकृति का लिंग **वस्तु** या **प्राणी** में होता है, और व्याकरण का लिंग शब्द में होता है। इसीलिए कभी-कभी व्याकरणिक लिंग की पहचान मुश्किल हो जाती है। उसकी पहचान का एक मात्र आधार लोक है। व्याकरण का लिंग लोकाश्रित है। लोक में जिस शब्द को जिस लिंग में बोलते हैं, वही उसका लिंग है। पतंजलि ने कहा भी है—"**लोकाश्रयत्वात् लिंगस्य**"

—(पतंजलि, महाभाष्य)

यही **प्राकृतिक लिंग** और **व्याकरणिक लिंग** में अन्तर है। शेष सबको आशीर्वाद।

डा० श्रीमती शारदा शर्मा, शुभैषी
[प्रवक्ता, हिन्दी-विभाग, मु०-जय० कन्या महाविद्यालय] अम्बाप्रसाद 'सुमन'
जैनबाग, चिलकाना रोड, सहारनपुर [उ० प्र०]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० रामेश्वरप्रसाद अग्रवाल के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१

प्रिय भाई अग्रवाल जी, दिनांक ६. १२. ७८ ई०

सप्रेम नमस्कार !

आपका दिनांक २२. ११. ७८ का पत्र आज दिनांक ६. १२. ७८ को प्रातः की डाक में मिला।

आपके पत्र को पढ़ते ही मुझे वे सब बातें याद आ गयीं, जो विद्यापीठ के पाण्डुलिपि-संग्रहालय में दिनांक १७. ११. ७८ को उस समय हुई थीं, जब पं० अमृतलाल चतुर्वेदी, डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, आप और मैं बैठे हुए **ब्रजभाषा-कोश** के निमित्त संगृहीत शब्दों के कार्डों को देख रहे थे। तभी **'पधारना' और 'सिधारना' शब्दों के अर्थों तथा व्युत्पत्तियों पर चर्चा आरम्भ हो गयी थी।** डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी ने **'पधारना'** के प्रयोग और अर्थ पर मेरा विचार जानना चाहा था। संक्षेप में मैंने उस समय व्यक्त भी कर दिया था। आपने भी तब कुछ प्रकाश डाला था।

इस पत्र में कुछ अधिक विस्तार से आपको विचार करने की दृष्टि से लिख रहा हूँ।

'पधारना' का प्रयोग **'आना'** अर्थ में और **'चलना'** अर्थ में होता है। **'पधारिए'** = आइए। **'पधारिए'** = चलिए। वास्तव में **पद + धारना** ही मिलकर और सटकर **'पधारना'** बन गया है। चाहे कोई आए, चाहे जाए; पाँव दोनों क्रियाओं में रखने पड़ेंगे। इसीलिए **'पधारना'** दोनों अर्थों को सँभाले हुए है।

जब कोई स्वर्गवासी हो जाता है, तब उसके लिए **'सिधारना'** का प्रयोग किया जाता है। जैसे—**राम के बन जाने के बाद दशरथ स्वर्ग सिधारे थे।**

वास्तव में **सिर + धारना** मिलकर और सटकर **सिधारना** बना है। प्रश्न यह है कि **सिर धारने** का अर्थ **'जाना'** कैसे हुआ ?

इस शब्द और अर्थ की जन्म-भूमि **'देवाराधना'** है। पहले तो भक्त देव-मंदिर में आराधना के समय देवता को बुलाते हैं। फिर अर्चन, वंदन, पूजन आदि के बाद उस देवता को विदा करते हैं। विदाई के समय भक्त भूमि पर सिर रखते हैं। सिर धरने का अर्थ हुआ 'देवता की विदाई' अर्थात् 'जाना'। इसलिए लक्षणा के आधार पर **सिर धारना** अर्थात् **'सिधारना'** का अर्थ हुआ **जाना, प्रस्थान करना।** देवता स्वर्ग से आते हैं, स्वर्ग को ही चले जाते हैं। उनके जाने के **समय भक्त** लोग ज़मीन पर सिर धरते हैं, **रखने के अर्थ में**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'धरना' व्रजभाषा में प्रचलित है)। इसलिए स्वर्ग को जाने के अर्थ में **'स्वर्ग सिधारना'** का प्रयोग किया जाने लगा।

सिर धारना अर्थात् **सिधारना** के विषय में यह अर्थ मुझे आचार्य पं० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी से मालूम हुआ था।

सन् १९५२-५३ ई० में जब मैं काशी विश्वविद्यालय में **डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल** के निर्देशन में अपना पी-एच० डी० का शोध-कार्य कर रहा था, तब प्रायः मई जून के महीनों में काशी-वास करता था। डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल और **आचार्य पं० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी** काशी विश्वविद्यालय के प्रांगण में ही आमने-सामने रहा करते थे। मैं डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल के आवासीय-बँगले में रहता था और जब-तब आचार्य द्विवेदी जी के साथ सन्ध्या को भ्रमण हेतु जाता था। उस समय अनेक शब्दों की व्युत्पत्तियों पर चर्चा चलती थी। आकाश के नक्षत्रों के सम्बन्ध में भी आचार्य जी बहुत-सी बातें बताया करते थे। उन्हीं चर्चाओं में आचार्य जी ने एक दिन **'सिधारना'** पर भी प्रकाश डाला था। तब सायंकाल में आचार्य जी से और प्रातः में डा० अग्रवाल जी से अनेक शब्दों की व्युत्पत्तियों की आत्मा के दर्शन मुझे मिले थे।

दोनों ही प्रकाण्ड शब्दमर्मियों से मुझे बहुत कुछ प्रसाद मिला है। मैं उनका चिर ऋणी हूँ। दोनों ही विद्वानों के सान्निध्य में आने पर मैंने अनुभव किया था कि वे दोनों ही ज्ञान के सचल विश्वकोश हैं। आचार्य हजारीप्रसाद जी द्विवेदी में पाण्डित्य के साथ-साथ ग़ज़ब की सूझ है, जिसे संस्कृत के आचार्यों ने काव्य-शास्त्र में 'नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा' कहा है। डा० अग्रवाल जी में विशाल बहुमुखी प्रतिभा थी। उन्होंने जिसे अपने कर्मठ करों से छू दिया, उसे कुंदन बना दिया। वे कपिल-कणाद की परम्परा में थे।

मेरे शोधार्थी जीवन-काल में हिन्दी-जगत् में तीन ही भारी भरकम व्यक्तित्व थे—[१] म० पं० **राहुल सांकृत्यायन** [२] **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी** [३] **डा० वासुदेवशरण अग्रवाल**। महापंडित राहुल सांकृत्यायन के निकट संपर्क में मैं न आ सका था; लेकिन मेरा सौभाग्य था कि उस अभाव की पूर्ति **डा० नगेन्द्र जी** के व्यक्तित्व से हो गयी।

किसी विचार को भाषा में किस तरह उतारते हैं, इसे मैंने **डा० नगेन्द्र जी** से सीखा है। वे लिखते नहीं है, रचते हैं।

अग्रवाल जी ! आपके संयोजकत्व में व्रजभाषा-कोश बहुत उत्तम और प्रामाणिक बनेगा—ऐसा हमारा विश्वास है। हम सभी परामर्शदाता उसके लिए पूरा-पूरा प्रयत्न करेंगे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप कृपया अपने कुछ शोध-छात्रों से मथुरा और वृन्दावन के आस-पास के गाँवों की तथा नन्दगाँव और बरसाना की शब्दावली संगृहीत करालें, व्रजभाषा-कोश के लिए। ये चार स्थल महत्त्वपूर्ण हैं। ऐसा प्रसिद्ध भी है—

ब्रज चौरासी कोस मैं चार गाम निज धाम।
वृन्दावन अरु मधुपुरी, बरसानौ नँदगाम ॥

बच्चों को आशीर्वाद। सस्नेह,

डा० रामेश्वरप्रसाद अग्रवाल, आपका
रीडर, भाषा-विज्ञान, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
क० मुं० हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय आगरा

श्री सुशीलकुमार गौड़ के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१
प्रियवर सुशीलकुमार. दिनांक ८. १२. १९७८ ई०

आशीर्वाद !

तुमने यह प्रश्न पूछा है कि **"यदि हिन्दी भाषा लिखने में अर्थात् नागरी लिपि में शब्दों की शिरोरेखाएँ न खींची जाएँ तो क्या हानि है ?** शिरोरेखाएँ खींचने में समय अधिक लगता है। यदि हम शिरोरेखा न खींचें, तो जल्दी तथा कम समय में लिख सकते हैं।"

प्रियवर सुशील ! जहाँ तक हिन्दी भाषा की वाक्य-रचना के क्षणों में देवनागरी लिपि के वर्णों को बिना शिरोरेखाओं के लिखने का प्रश्न है, वहाँ समय की बचतवाली बात तो ठीक है।

देवनागरी लिपि की प्रमातामही **ब्राह्मी लिपि** भी शिरोरेखा रहित ही लिखी जाती थी। ब्राह्मी लिपि में '**एक**' शब्द ऐसे △ + लिखा जाता था। ब्राह्मीलिपि का △ वर्ण सुदीर्घकाल के उपरान्त देवनागरी लिपि में 'ए' के रूप में लिखा जाने लगा, और + को क रूप में लिखने लगे। देवनागरी लिपि में शिरोरेखा वर्ण को सुन्दर तो बनाती ही है, साथ में वाक्य तथा शब्द के पढ़ने और अर्थ के समझने में सुगमता एवं सुविधा भी प्रदान करती है ?

बिना शिरोरेखा के निम्नांकित लेखन ठीक नहीं पढ़ा जा सकता—

"ब ··· ता ··· सा ··· ले"

इस उपर्युक्त वाक्य को एक व्यक्ति पढ़ेगा—

"बतासा / ले", और दूसरा पढ़ेगा—**"बता / साले"**। पढ़ने में पूरी गड़बड़ रहेगी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिरोरेखा के बिना **"एक / सेर / चना"** को **एक / से / रचना"** भी पढ़ा जा सकता है।

तुम्हें **जगत्, विद्वान्, कीर्तिमान्, श्रीमान्, पृथक्, साक्षात्, राजा परीक्षित्, शिक्षाविद्, पुत्रवत्, आत्मसात्** आदि शब्द सदा हलन्त लिखने चाहिए। हिन्दी में जो लेखक हल् का प्रयोग नहीं करते, वे ग़लती पर हैं। वे **'कीर्तिमान'** [=यश की नाप] और **'कीर्तिमान्'** [=यशवाला, यशस्वी] में अर्थ-भेद न कर सकेंगे। लेखन तथा लिपि अर्थ में भी सहायक होने चाहिए।

प्रसन्नता है कि तुम कुशलपूर्वक हो। सब भाई-बहिनों को मेरा आशीर्वाद कहना।

तुम अपने पिताजी को स्मरण दिलाना कि वह पं० राधेश्याम शर्मा (अलीगढ़ डेरी, मालीवाड़ा गली, नई सड़क, दिल्ली) को पत्र लिखने का कष्ट करें।

श्री सुशीलकुमार गौड़, एम० ए० (प्री०) शुभैषी
S/o श्री महावीरसिंह शर्मा (पोस्टमास्टर) अम्बाप्रसाद 'सुमन'
६/८ ज़मीराबाद, अलीगढ़।

डा० (श्रीमती) भगवती शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़-२०२००१

प्रिय बहिन भगवती शर्मा जी, दिनांक १२. १२. ७८ ई०

आपका दिनांक ६. १२. ७८ का पत्र मिला। डा० (श्रीमती) भगवती शर्मा मकान की मरम्मत में व्यस्त रहने पर भी प्रश्न मार्क का कर सकती हैं—इस पत्र से यह पूरी तरह मुझे स्पष्ट हो गया।

आपने हिन्दी में **'श्'** और **'ष्'** ध्वनियों की समस्या का प्रश्न उठाया है। वास्तव में **'ष्'** ध्वनि संस्कृत-काल में तो थी, जिसे पाणिनि ने मूर्धन्य बतलाया है। व्याकरण में लिखा भी है—**"ऋटुरषाणां मूर्धा"** (अष्टा० १/१/६)।

हिन्दी में **'ष्'** ध्वनि नहीं है। हम **'विषय'**, **'संघर्ष'** आदि शब्दों में आज मूर्धन्य **'ष्'** नहीं बोलते, तालव्य **'श्'** बोलते हैं। हिन्दी-ध्वनियों के उच्चारण की दृष्टि से हमें उक्त शब्दों को **'विशय'** और **'संघर्श'** के रूप में ही लिखना चाहिए—भाषाविज्ञान की दृष्टि यही है। लेकिन परम्परा और अभ्यास के वशीभूत हम हिन्दी में भी संस्कृत की भाँति **'विषय'** और **'संघर्ष'** लिखते हैं। प्रायः हिन्दी-ग्रन्थों में भी परंपरा का ही पालन किया जा रहा है। राष्ट्रीय स्तर पर एक 'भाषा-समिति' के द्वारा ग्रन्थों में यदि **'श'** से शब्द लिखाये जाने लगें, तो समस्या का समाधान हो जाएगा। हम **'संघर्ष'** को **'संघर्श'** रूप में और **'स्पर्श'** को **'स्पर्श'** रूप में ही बोलते हैं। **जैसा** बोलते हैं, **वैसा** लिखें भी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रसंग में आप यह बात भी ध्यान में रखें कि यदि हमारे विद्यार्थी **'विषय'**, **'संघर्ष'** आदि शब्दों में 'श्' वर्ण का प्रयोग करते हुए उन्हें **'विशय'**, **'संघर्श'** आदि के रूप में लिखने लगे, तो साहित्य के अध्यापक उन्हें ग़लत मानेंगे, क्योंकि वे भाषाशास्त्र की इस वैज्ञानिकता से अनभिज्ञ हैं। इसलिए पहले राष्ट्रीय स्तर पर सरकार की ओर से सार्वभौमिक मान्यता मिलनी चाहिए।

अब हिन्दी में 'ष्' का उच्चारण मूर्धा से नहीं होता; तालु से होता है। इसलिए हिन्दी में **श्** और **स्** ही हैं; **'ष्'** नहीं। अतः **ष्** के उच्चारण का प्रश्न उठना ही नहीं चाहिए। देश, काल और जलवायु ने जो परिवर्तन कर दिया, स्वीकार कीजिए।

संस्कृत की **'ष्'** ध्वनि प्राकृत काल में ही समाप्त हो गयी थी। प्राचीन भारतीय आर्यभाषा-काल की **जिह्वामूलीय** और **उपध्मानीय** ध्वनियाँ भी प्राकृत-काल में समाप्त हो गयी थीं। पाणिनि के काल में **'न्'** दन्त्य था। हिन्दी में आज **'न्'** दन्त्य नहीं है, वत्स्र्य है। **'स्'** भी वत्स्र्य है। शेष फिर कभी।

कृपया डा० वीरेन्द्र जी शर्मा से मेरा नमस्कार कहें। मैं डा० (कुमारी) सक्सेना के सेवा-सहयोग के लिए शीघ्र आऊँगा।

डा० (श्रीमती) भगवती शर्मा, पी-एच० डी० शुभैषी
(रीडर, हिन्दी विभाग, अ० मु० विश्वविद्यालय) अम्बाप्रसाद 'सुमन'
द्वारा—डा० वीरेन्द्र शर्मा,
दीपिका, (लेखराजनगर के सामने), समद रोड, अलीगढ़-२०२००१

श्री ब्रजमोहनलाल शर्मा 'मोहन' के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़
प्रियवर मोहन जी, **दिनांक १४. १२. ७८ ई०**

आशीर्वाद !

आपका पत्र तथा आपकी कृतियाँ—[१] **श्रीकृष्ण चालीसा** [२] **ब्रज-बिम्ब** [३] **पुरानी गोकुल**—मिलीं। पढ़कर प्रसन्नता हुई।

आपने ब्रजभाषा में कविताएँ लिखकर ब्रज और ब्रजभाषा के प्रति अपना प्रगाढ़ प्रेम व्यक्त किया है। नये छन्दों में तथा नये केन्द्रीय भावों को लेकर भी ब्रज भाषा में नये गीतों की सृष्टि करनी चाहिए। अब ब्रजभाषा-काव्य को दोहा, रोला, सवैया, घनाक्षरी आदि की परिधि से बाहर निकालकर नयी शैली के नये छंद प्रदान कीजिए। हम में से बहुत से नयी रोशनी के जेंटिल मैन ब्रजभाषा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को गँवारू भाषा समझते हैं। जानते हैं, पर बोलते नहीं; इसलिए कि दहकानी समझे जाएँगे। ब्रजभाषा-क्षेत्रजन्मा का ऐसा करना **ब्रज, ब्रजपति, ब्रज साहित्य** और **ब्रजभाषा** को अपमानित करना है। ऐसी कुत्सित भावना हिन्दी के साहित्य को भी कालान्तर में दरिद्र बना देगी। ब्रज की विशाल शब्द-संपदा से परिनिष्ठित हिन्दी भी सम्पन्न बनेगी।

प्रियवर मोहन जी! आप गोवर्धन में रहते हैं, जो मथुरा जिले में है। मथुरा जिले की केन्द्रीय ब्रजभाषा परिष्कृत और मान्य है।

आपकी मातृभाषा है। आप उसे बोलते भी हैं, उसका बोलना माँ-बाप से आपने सीखा है, लेकिन लिपिबद्ध करने के लिए व्याकरण का कुछ ज्ञान अधिक उपादेय सिद्ध होगा। क्रियाओं में जैसे **'उठि जाइगौ', 'दै मार्‌यौ'** आदि में पूर्वकालिक क्रिया की विभक्ति का ध्यान रखिए। **"तू उठ जा"** तो खड़ी बोली है। इसे ब्रजभाषा में लिखेंगे—"**तू उठि जा**"; अर्थात् ब्रजभाषा की पूर्वकालिक क्रिया में—इ विभक्ति-प्रत्यय अवश्य लगाना चाहिए।

संज्ञा पदों और भूतकालीन पुंलिग एक वचन क्रिया पदों में आपकी रचनाओं में एक-सा लेखन रहना चाहिए। गोवर्धन में, यहाँ तक कि संपूर्ण मथुरा ज़िले में **औकारान्तता** है। बुंदेलखंड में **ओकारान्तता** मिलती है। आप संज्ञा-क्रिया के उन रूपों में **औकार** बोलते होंगे; मैं अलीगढ़ का हूँ, मैं भी **औकार** बोलता हूँ; लेकिन मेरे एक शिष्य श्री गयाप्रसाद शर्मा हैं, **ओकार** बोलते हैं। वह मैनपुरी के निवासी हैं। श्री गयाप्रसाद शर्मा बोलते हैं—"अंगूरी नैं **मेरो भरोसो न करो**"; मैं इसे बोलता हूँ—"अंगूरी नैं **मेरौ भरोसौ न कर्‌यौ**।"

जहाँ तह मैं समझता हूँ आप भी मेरी तरह ही बोलते होंगे। ब्रजभाषा की कविताओं में अनेक ग्रंथों में ओकार मिलता तो है। आचार्य पं० किशोरी-दास जी वाजपेयी तो इस ओकार में कोमलता और मिठास अधिक मानते हैं। अपनी 'ब्रजभाषा का व्याकरण' पुस्तक में समर्थन भी करते हैं। मेरी राय में तो यह कनउजी और बुंदेली का प्रभाव है। राष्ट्र कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ओकार बोला करते थे। मैंने आदरणीय दद्दा (श्री मैथिलीशरण गुप्त) को ओकार के साथ बोलते देखा था। आप तो अपनी बोली में ही लिखा करें। सुगम रहेगा, ठीक रहेगा।

मथुरा नगर तथा मथुरा नगर के पश्चिमी परगनों और तहसीलों के गाँवों के कुछ ब्रजभाषी कवि अपनी ब्रजभाषा-कविताओं में पुंलिग संज्ञा शब्दों के बहु-वचनीय रूप—**नि** प्रत्यय से लिखते हैं, जैसे—**कपोलनि, होठनि** आदि। मेरे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार से ऐसा लिखना वर्तमान ब्रजभाषा के रूपों की दृष्टि से समीचीन नहीं। हमें लिखना चाहिए—"**ढर्यौ रंग कुसुम-कपोलन कौ झरिकैं**"।

लगता है, अवधी, भोजपुरी आदि क्षेत्रों के निवासी ब्रजभाषा-कवियों की कविताओं में **कंजनि, पंजनि** जैसे प्रयोगों से संभवतः मथुरावासी कवि भी प्रभावित हुए हैं।

हर्ष है आप साहित्य-सर्जना में संलग्न हैं। माता वीणापाणि आपका मंगल करें।

श्री ब्रजमोहनलाल शर्मा, शुभैषी
बी० ए०, विशारद अम्बाप्रसाद 'सुमन'
राजकीय दीक्षा-विद्यालय, गोवर्धन (मथुरा)

श्री रामलखन शर्मा 'राम' के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़

प्रियवर 'राम' जी, दिनांक १७. १२. ७८ ई०

आशीर्वाद !

आपका १६. १२. ७८ का पत्र मिला। धन्यवाद !

आप **गोवर्धनस्थ प्रवासी कवि, सूरकाव्यांजलि, सूर-सौरभ** और **वल्लभ दिग्दर्शन** के माध्यम से साहित्य की सेवा कर चुके हैं—यह जानकर प्रसन्नता हुई। आप एकांकी नाटक लिखने में भी रुचि रखते हैं, बहुत अच्छा है। आपने अष्टछाप के कवियों पर एकांकी लिखे हैं—इससे मन प्रसन्न हुआ।

जयदेव और विद्यापति ने कृष्ण-चरित को गीतकाव्य में गाया; उसी परंपरा में ब्रज के भक्त कवि गान करने लगे। महाप्रभु वल्लभाचार्य के बाद उनके पुत्र गोसाईं बिट्ठलनाथ जी गद्दी पर बैठे। तब तक अनेक कवि पुष्टिमार्गी-भक्ति-पद्धति पर कृष्णभक्ति के सुन्दर पदों की रचना कर चुके थे। गोसाईं बिट्ठलनाथ जी ने उनमें से सर्वोत्तम आठ कवियों को चुन लिया और '**अष्टछाप**' की प्रतिष्ठा की। उन आठ कवियों में **सूर** के इकतारे की तान सबसे अधिक ऊँची, सरस और सुरीली है। उनके उपरान्त **नंददास, परमानंददास, कुम्भनदास, कृष्णदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी,** और **गोविन्दस्वामी** को स्थान दिया जा सकता है।

आपके एकांकियों की क्रम-संख्या इसी प्रकार होनी चाहिए। पात्रों के संवाद ब्रजभाषा में ही रखिए। एकांकियों में यदि **सूरदास, नंददास** आदि से आपने खड़ी बोली बुलवायी, तो सारा गुड़ गोबर हो जाएगा। यदि कोई धोती,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बगलबन्दी और पगड़ी पहने हुए तथा राम-कृष्ण-नामी-दुपट्टा डाले हुए तिलक-धारी पंडित मेज़-कुर्सी पर बैठकर काँटे-छुरी से मक्खन-डबलरोटी आदि खा रहा हो, तो आपको कैसा लगेगा ? जैसा वह लगेगा, ठीक वैसा ही आपका **एकांकी** लगेगा, यदि आपने सूरदास, नंददास आदि से खड़ी बोली बुलवायी।

ब्रजभाषा-क्षेत्र बहुत विशाल है। **बुलन्दशहर, अलीगढ़, मथुरा, आगरा, भरतपुर, धौलपुर, ग्वालियर, एटा, इटावा, मैनपुरी,** आदि ज़िलों में ब्रजभाषा खूब बोली और समझी जाती है। इन ज़िलों में आपके एकांकी नाटक खूब लोकप्रिय होंगे।

एकांकी नाटकों की रचना के समय आप आकार का ध्यान अवश्य रखें। एकांकी विधा का जन्म साहित्य में जीवन की व्यस्तता को देखकर हुआ है। आज का मनुष्य बहुत व्यस्त है। वह थोड़े समय में ही पूरा मनोरंजन तथा आनन्द प्राप्त करना चाहता है। लगभग १ घण्टे में एकांकी समाप्त हो जाना चाहिए। एकांकी की कथावस्तु बहुत कसीहुई होनी चाहिए।

ब्रज साहित्य परिषद्, गोवर्धन को प्राणवंत बनाइए। सस्नेह,

श्री रामलखन शर्मा 'राम' एम० ए०, बी० एड० शुभैषी
राजकीय दीक्षा विद्यालय गोवर्धन (मथुरा) अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण' के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१

प्रिय भाई अरुण जी, दिनांक १९. १२. ७८ ई०

आपका दिनांक १६. १२. ७८ का अन्तर्देशीय पत्र मिला। धन्यवाद !

आपके प्रिय शोध-पंडित श्री आनन्दप्रकाश शर्मा ने आपके निर्देशन में शब्दों की आत्मा के दर्शन करने का अच्छा प्रयास किया है।

शब्दों का संसार बड़ा विचित्र संसार है। इनकी लीलाएँ सब रसों से परिपूर्ण हैं। **वाक्य** ही रसात्मक नहीं होता, **शब्द** भी रसात्मक हुआ करता है। अपनी रसात्मकता के कारण अकेला शब्द ही **काव्य** कहलाने लगता है। आचार्य भामह का **शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्** और आचार्य पंडितराज जगन्नाथ का **रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्** कथन प्रमाण के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। हमारे गोसाईं जी तो **वर्ण** में ही रसात्मकता मानते हैं—

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छंदसामपि .....

(तुलसीदास, रामचरितमानस, बाल०, श्लो० १)

शब्द के साथ उसके **अर्थ** को, और अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए **शब्द** को

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरी तरह समझना सच्चे साहित्यकार का सारस्वत धर्म है। जिस साहित्यकार ने शब्द की आत्मोद्भूत छवि को और उस छवि के प्रभामंडल को नहीं देखा उसे साहित्यकार संज्ञा देना ही व्यर्थ है। **साहित्यकार = शब्द + अर्थ का पूर्ण ज्ञाता।**

लोक अपनी सुविधा के लिए शब्दों को रच लेता है। हिन्दी का **दार** शब्द लोक में स्त्रीलिंग एक वचन है। अरबी का **तवाइफ़** शब्द भी रंडी के अर्थ में लोक में स्त्रीलिंग एक वचन है। वैसे संस्कृत में **दार** पुंलिंग है और अरबी का **तवाइफ़** बहुवचन है। इसका एक वचन **ताइफः** है।

काव्य-जगत् में कोई दो शब्द उसी प्रकार एक-से नहीं होते, जिस प्रकार कि ईश्वरीय सृष्टि में दो मनुष्यों के चहरे बिल्कुल एक-से नहीं होते।

पानी और **जल** का एक अर्थ नहीं है। **शिव** और **पिनाकपाणि** शब्द अर्थ में अलग-अलग हैं। **सरोज** और **पंकज** में अर्थ-भेद है। गाँधी जी के लिए कविवर पंत ने लिखा—

पशुता का पंकज बना दिया तुमने मानवता का सरोज —(पंत, बापू के प्रति)

शब्द की ध्वनियाँ भी कभी-कभी उसके अर्थ को स्पष्ट करने में सहायक सिद्ध होती हैं। **रुद्र** और **मार्तण्ड** शब्दों की ध्वनियाँ उनके ओज और प्रचण्डता को व्यक्त करती हैं। ब्रजभाषा में मोटे तथा भारी मनुष्य के लिए विशेषण दिया जाता है—**पिपरपोड़**। इस शब्द की ध्वनियाँ अर्थ में सहायक हैं। पीपल के तने-सा मोटा व्यक्ति **पिपरपोड़** कहलाता है।

संदर्भ एवं प्रसंग से एक ही शब्द भिन्न-भिन्न अर्थ देने लगता है। एक **योग** शब्द गीता में प्रसंगानुसार निम्नांकित अर्थों में प्रयुक्त हुआ है—(१) **योग** = प्रकरण, जैसे अर्जुन-विषाद-योग। (२) **योग** = समत्व-भाव [गीता २/४८]। (३) **योग** = परमात्मा से मिलन (गीता २/५३)। (४) **योग** = भक्तिप्रधान कर्म-योग (गीता १२/६)। (५) **योग** = योगशक्ति (गीता ११/८)। (६) **योग** = अप्राप्त की प्राप्ति (गीता ९/२२) जैसे, योग-क्षेम।

गीता के अनुसार किसी व्यक्ति या वस्तु को रमणीय बुद्धि से स्मरण करने को **संकल्प** कहा जाता है। **संकल्प** ही **कामना** या **काम** का कारण है।

किसी वस्तु की प्राप्ति की अभिलाषा **कामना** कहलाती है। इस कामना में जैसे-जैसे प्रबलता तथा स्थूलता बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे उनके नाम बदलते जाते हैं—(१) **वासना** (२) **स्पृहा** (३) **इच्छा** (४) **तृष्णा**।

तृष्णा सर्वोपरि अभिलाषा है। यह परम स्थूल है। निरंतर बढ़ती जाती है। उपर्युक्त चारों प्रकार की कामनाओं का मूल कारण **संकल्प** है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी तरह निम्नांकित शब्दों के अर्थ हमें गीतानुसार समझ लेने चाहिए—
[१] **कर्म**=शास्त्रविहित कर्म। [२] **विकर्म**=शस्त्रा-निषिद्ध त्याज्य कर्म। [३] **अकर्म**=शास्त्रविहित कर्म जो सहज भाव से फलाकांक्षा रहित रूप में हो। [गीता ४/१७, १८/१९]।

जब एक शब्द किसी दूसरे शब्द के साथ प्रेम से मिलकर बैठता है, तब उसके मुख की छवि ही बिलकुल बदल जाती है।

गहरा एक शब्द है। इसे दूसरे शब्दों के साथ बिठाइए और छवि देखिए—**गहरा तालाब, गहरा रंग, गहरा नशा, गहरा मेल** आदि में **गहरा** की छवियाँ ही बदल गयीं। क्या सबकी एक छवि है? नहीं, बिलकुल अलग-अलग हैं; उनके प्रभा-मंडल भी अलग-अलग हैं। उनकी छटाएँ भिन्न-भिन्न हैं।

कुछ शब्द अपना अर्थ दुहरा रखते हैं। उनके प्रयोगाधिक्य के आधार पर मानसिक चित्र बना करते हैं। **मत्सर** शब्द संज्ञा भी है, विशेषण भी। **मत्सर**=डाह। **मत्सर**=डाह करनेवाला।

चलना का सामान्य अर्थ **गतिमान् होना** है। लेकिन इसे निम्नांकित वाक्यों में दूसरे शब्दों के साथ देखिए—

(१) हमारे यहाँ अब यह सिक्का नहीं **चलता**।

(२) वह लड़का बड़ा **चलता** है।

(३) मारकीन से लट्ठा अच्छा **चलता** है।

(४) यह रास्ता रात भर **चलता** है।

(५) हमारे प्रान्त में यह शब्द नहीं **चलता**।

(६) हमारे घर में केवल पिताजी का हुक्म **चलता** है।

(७) ब्रज की बरात में दही-बूरा **चलता** है।

देखा, **चलता** उपर्युक्त वाक्यों में कैसी और कितनी चालें चलता दिखाई पड़ रहा है?

वाक्यों की **संरचना** में शब्द-प्रयोग की **व्यवस्था** भाषा में बहुत महत्त्वपूर्ण है। सामान्यतः **कठिनाई** और **मुश्किल** पर्यायवाची हैं। लेकिन निम्नांकित वाक्य की संरचना ऐसी है कि **मुश्किल** के स्थान पर **कठिनाई** का प्रयोग नहीं हो सकता—"हरी का बड़ा बेटा **मुश्किल** से पाँच साल का होगा।"

इस उपर्युक्त वाक्य में **मुश्किल से** के स्थान पर हम **कठिनाई से** का प्रयोग नहीं कर सकते।

इतना ही नहीं **शब्द** को प्राणवायु का बल (बलाघात) ज्यों ही मिला, त्यों ही उसने अर्थ-छवि बदली। 'तुम **कैसे** जा सकते हो' में 'कैसे' प्राणशक्ति पाकर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नहीं' का अर्थ देने लगता है। **चलो न दिल्ली** में **'न'** बलाघात के कारण आग्रह वाची है।

सच्चा शब्द-मर्मी शब्दों की बारीकी पकड़ लेता है। उसकी आँख की पुतली उस अर्जुन की पुतली के समान होती है, जिसने द्रुपद की सभा में मत्स्य-वेध किया था। दूसरों को जो शब्द पर्यायवाची-से लगते हैं, सच्चा शब्द-मर्मी उनका अन्तर पहचान लेता है। **ख़ता** और **क़ुसूर** में अर्थच्छवियाँ अलग-अलग हैं। एक उर्दू के शायर ने इन शब्दों का अच्छा प्रयोग किया है—

"लिपटा मैं बोसा लेके, तो बोले वो देखिए।
यह दूसरी **ख़ता** है, वो पहला **क़ुसूर** था॥"

साफ़ ज़ाहिर है कि **ख़ता** हर हालत में **क़ुसूर** से भारी होती है। **क़ुसूर** को तो नज़र-अन्दाज़ किया भी जा सकता है; लेकिन **ख़ता** को नहीं किया जा सकता। **ख़ता** करनेवाला सज़ा जरूर पाता है।

भारतीय मनीषा ने शब्दार्थ का चिन्तन बहुत गम्भीरता तथा विस्तार के साथ किया है। कविता के उपवन में शब्द-रूपी पुष्प की सुगंध इतनी विस्तृत और अनन्तव्यापिनी होती है कि उसे पूरी तरह समझना असंभव-सा है।

शब्द सीमित है, **अर्थ** अनन्त है। भाव अर्थ से भी अनन्त है। कविता के शब्द अपने वाच्य या व्यंग्य अर्थ को ही व्यक्त नहीं करते, अपितु भाव को भी करते हैं। भाव में अनेक मनःस्थितियाँ अर्थात् मनोदशाएँ समाविष्ट रहती हैं। उन सभी मनोदशाओं को अभिव्यंजित करना मनीषी कवि का सारस्वत धर्म होता है। उस धर्म का पालन करने के लिए जो तपश्चर्या कवि को करनी पड़ती है, वह अवर्णनीय है। वही तो परम वाङ्मय तप है।

कविता में शब्द-प्रयोग सामान्य अर्थ-बोध के लिए नहीं होता। वहाँ भावात्मक अर्थ-बोध विचित्र चित्रविधान, बिम्ब-निर्माण, अलौकिक आह्लाद तथा दूरगामी सरस संकेत से संवलित होता है।

कवि के मनोराज्य में जो भाव-भावनाएँ एवं चित्र-विधान होते हैं, वे ऐसे दिव्यतम तथा परम अलौकिक होते हैं कि उन्हें वैखरी वाणी के शब्द पूर्णरूपेण व्यक्त करने में प्रायः असमर्थ-से हो जाते हैं। तब कवि अपने भाव-लोक को रूपायित करने के लिए अनेक पर्यायवाची शब्दों में से किसी एक शब्द को स्वीकारता है। फिर भी वैखरी वाणी का वह शब्द अधूरा या अपूर्ण ही ठहरता है। इसीलिए कवि के शब्द कवि की कविता के भाव और अर्थ की व्याख्या नहीं हैं; संकेत मात्र हैं। **कविता** वह है, जिसके ३/४ को कवि नहीं कह सका।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य-बोध या काव्य-समीक्षा के सम्बन्ध में यहाँ यह भी विचारणीय है कि हर कवि की कविता को हर समीक्षक नहीं समझ सकता। विशिष्ट कवि की कविता को देखने-परखने के लिए विशिष्ट समीक्षक की विशिष्ट आँखों की आवश्यकता है। भक्त कवियों की भाव-भूमियों तथा भाव-लोकों को समझने के लिए कुछ वैसे ही संस्कारी समीक्षकों की जरूरत है। कम्यूनिस्ट समीक्षक आचार्य वल्लभ अथवा तुलसीदास की कविताओं के भाव-सौन्दर्य को समझने में असमर्थ रहेगा।

आचार्य वल्लभ ने अपने '**मधुराष्टक**' में मधुराधिपति के **वमित** को मधुर बताते हुए लिखा है—

वमित मधुरं शमितं मधुरं।

मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ (मधुराष्टक, श्लोक ५)

तुलसीदास **मानस** के अयोध्याकाण्ड में केवट-प्रसंग में लिखते हैं—

पद पखारि जलु पान करि,
आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि,
मुदित गयउ लेइ पारि ॥
—(अयो०, दो० १०१/–)

भक्तों के लिए भगवान् की प्रत्येक वस्तु दिव्य है, पावन है, परम सुन्दर है। भगवान् का वमन, भगवान् का चरणोदक आदि सब-कुछ भक्तों के लिए सदैव दिव्यतम है।

शब्दार्थ के लिए व्युत्पत्ति-ज्ञान परमावश्यक है। व्युत्पत्ति अर्थ का पर्दा खोल देती है। व्युत्पत्ति-ज्ञान से अर्थ और भाव के दर्शनों के लिए तीसरा शिव-नेत्र खुल जाता है।

महाभारत के युद्ध में भीष्म पितामह जब रथ से गिर गये, तब प्रधान सेनापति का पद-भार तुरन्त द्रोणाचार्य ने सँभाल लिया। प्रथम-प्रधान-सेनापति भीष्म जब युद्ध के १०वें दिन रणभूमि में गिर गये, तब वह सारा समाचार संजय ने धृतराष्ट्र को सुनाया। उसे सुनकर धृतराष्ट्र ने संजय से प्रश्न किया—

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।

मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥ —(गीता अ० १/श्लोक १)

इस उक्त श्लोक के **समवेताः** का अर्थ सामान्यतया पाठक **एकत्रित** (इकट्ठे हुए) समझते हैं; किन्तु इससे अर्थ की आत्मा के दर्शन नहीं होते। व्युत्पत्ति ही अर्थ का पर्दा खोलती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समवेत = सम् + अव + इत ।

धा० इ + क्त = इत । अव + इत = अवेत । अवेतः = प्राप्तः, आया हुआ । सम् + अवेतः = सम्यक् रूप से आया हुआ । समवेताः = सम्यक् रूप से आये हुए (**समवेतः** का बहुवचनीय रूप) ।

इ धातु का अर्थ 'गमन करना' है । **समवेताः** पद में यही धातु है । इसकी पूर्ण अवगति से ज्ञान का शिव-नेत्र खुल जाता है । तब पाठक कभी **समवेताः** का अर्थ नहीं भूल सकता । अर्थ की पूर्णावगति के लिए व्युत्पत्ति-ज्ञान प्रामाणिक एवं पुष्ट आधार-शिला है ।

काव्यमीमांसाकार राजशेखर ने दो प्रकार की प्रतिभा का उल्लेख किया है—(१) **कारयित्री** (२) **भावयित्री** । व्युत्पत्ति के लिए भावयित्री प्रतिभा की आवश्यकता है ।

प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा ने अपनी पुस्तक '**हिन्दी-भाषा का विकास**' में शब्दों की व्युत्पत्तियों पर अच्छा प्रकाश डाला है । वह भावयित्री-प्रतिभा-सूचक है ।

कभी-कभी कवि कोई एक ही शब्द ऐसा प्रयुक्त करता है कि उस एक शब्द में से भाव और अर्थ की अनेक किरणें निकलती हैं । वह एक शब्द ही भावों का सागर बन जाता है । गीता (अ० ९/२६) और भागवत (१०/८१/४) में एक शब्द—भक्त के विशेषण के रूप में प्रयुक्त किया गया है; वह है **प्रयतात्मा**। शुद्ध-बुद्धि, निष्काम-प्रेमी, पूर्णरूपेण समर्पित तथा श्रद्धा-भक्ति-समन्वित भक्त के लिए गीताकार ने **प्रयतात्मा** शब्द का प्रयोग किया है । ऐसे शब्दों के लिए कवि को कठोर वाङ्मय-तप करना पड़ता है । तदुपरान्त वह शब्द की गागर में भाव का सागर भर पाता है ।

इसीलिए पतंजलि ने महाभाष्य (प्रथम आह्निक) में कहा था कि वाणी अर्थ के लिए अपना शरीर उसी प्रकार समर्पित करती है, जिस प्रकार सुवासा पतिव्रता पत्नी पति के लिए अपना शरीर । इस समर्पण की महत्ता को शब्दार्थ-मर्मी मनीषी कवि ही समझ सकते हैं ।

शब्द वाक्य में प्रयुक्त होकर अर्थ की दृष्टि से अपना व्याकरण अलग बना लेता है—

"अच्छा कल को **देख** क्या **होता है**"—इस वाक्य में '**देख**' और '**होता है**' क्रियाएँ अर्थ की दृष्टि से भविष्य काल को सूचित कर रही हैं, वैसे रूप की दृष्टि से '**देख**' और '**होता है**' क्रियाएँ वर्तमान काल में हैं ।

कहाँ तक लिखूँ शब्द-अर्थ की लीलाओं को ? आप तो शब्द-जगत् का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिभ्रमण अपने शोधार्थियों से करा ही रहे हैं। साहित्य-धर्म का पालन वही कर सकता है, जो शब्द का मर्म जानता है।

शब्दार्थ का क्या और कितना महत्त्व है, इसे जानना चाहें, तो आप कृपया हृदय और बुद्धि की आँखों से आचार्य हजारीप्रसाद जी द्विवेदी की **बाणभट्ट की आत्मकथा** और **पुनर्नवा** कृतियाँ देखें। **ताण्डव** और **लास्य** की अर्थच्छवियों को आचार्य जी ने **पुनर्नवा** में जिस सरस शैली में अभिव्यक्त किया है, मैं उस पर मुग्ध हूँ। उनका **पुनर्नवा** (उपन्यास) शब्द के मर्म को, और **अनामदास का पोथा** (उपन्यास) दर्शन के मर्म को खोल देता है।

इतना ही नहीं, काव्य में कवि द्वारा गृहीत **प्रतीक, उपमान, रूपक, उत्प्रेक्षाएँ** आदि कवि के मन की भूमि को बता देती हैं। कवि का उपचेतन या अचेतन मन उन उपमानों से स्पष्ट हो जाता है। निम्नांकित अर्द्धालियाँ तुलसी की निर्धनता की सूचक हैं—

यह सुधि-कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु नव निधि घर आई।
कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना।।

(मानस, अयो० १३५/१२)

हिन्दी में अनेक स्रोतों से शब्द आये हैं। आपका **धौरे** और हमारा **जौरें** अरबी के **जवार** (جوار) शब्द से विकसित हैं। अ० **जवार**>ब्रजभाषा **जौरें**।

भाई शर्मा जी! आपने मुझे अपने पितृ-स्थान (कनखल) को ले जाने की बात लिखी है। आपकी पितृ-भूमि है, कनखल; मैं उसे अपनी गुरु-भूमि भी कहता हूँ। आचार्य पं० किशोरीदास जी वाजपेयी को मैं गुरु-तुल्य मानता हूँ। हिन्दी-व्याकरण की बहुत-सी बातें मैंने उनके ग्रन्थों से सीखी हैं। व्याकरण में अनेक ऐसी बातें पंडित जी ने बतायी हैं, जिन्हें पं० कामताप्रसाद गुरू भी स्पष्ट न कर सके थे।

पिछले वर्ष मैं ग्रीष्म ऋतु में कनखल गया था और पंडित जी के दर्शन किये थे। निश्चित ही वे प्रकाण्ड पंडित हैं; स्वाभिमानी पंडित हैं, परम स्वाभिमानी और बेलाग। हिन्दी-व्याकरण दो ने ही लिखा है—एक **केलाग** ने, दूसरा **बेलाग ने।**

प्रियवर अरुण जी! आप इस पत्र को प्रियवर आनन्दप्रकाश शर्मा को भी दिखा दें। उन्हें शब्द-ब्रह्म-रूप के दर्शनों की कुछ झलक इससे मिलेगी। उन्हें विदित होगा कि सहारनपुर जनपद की धरती और आकाश में विचरण करने वाले शब्दों का विराट् रूप किस दिव्य आभा और सुषमा से अभिमंडित है?

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर्ष है आप सपरिवार सानंद हैं। सौभा० बहू और बच्चों को आशीर्वाद।

सस्नेह,

डा० योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण',
अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
बी० एस० एम० कालेज, रुड़की–२४७६६७

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री वैकुण्ठनाथ मेहरोत्रा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़
दिनांक २१. १२. ७८ ई०

प्रियवर मेहरोत्रा जी,

आपका दिनांक १६. १२. ७८ का कार्ड मिला। प्रसन्नता है कि सामग्री आपको समय से प्राप्त हो गयी।

भाई मेहरोत्रा जी, **तुलसीदास** जी के **'रामचरितमानस'** की भाषा की रूपात्मकता को दृष्टि-पथ में रखते हुए हम ऐसा भी कह सकते हैं कि हमारे **गोसाईं जी महाराज अपने 'मानस' की भाषाभिव्यक्ति के समय कभी विद्यापति की 'पदावली' की ओर देख लेते हैं, और कभी सूरदास के 'सूरसागर' की ओर।**

आप कहेंगे कि क्या प्रमाण हैं? कृपया निम्नांकित क्रिया-प्रत्ययों का मिलान कीजिए; प्रमाण मिल जाएगा।

सामान्य वर्तमानकाल (निर्देशार्थ)

उत्तम पुरुष, एक वचन—

विद्यापति	सूरदास	तुलसीदास
(१) सुरपति-पाए लोचन **मागओं** (पदा०, प्रेम-प्रसंग ३६/१०)	(१) तातें **देउँ** तुम्हैं मैं **साप** (सूर० ३/५)	(१) जिअत न सुरसरि उतरन **देऊँ** (अयो० १६०/२)
धा० माँग् + अओं-**माँगओं** (मैं माँगता हूँ)	धा० दे + उँ = **देउँ** (मैं देता हूँ)	धा० दे + उँ = **देउँ** (मैं देता हूँ)

सामान्य वर्तमान (आज्ञार्थ)

माध्यम पुरुष, एक वचन—

(२) **चलु** (पदा० दूती ४८/१३)	(२) **आउ** (सूर० १/३१४)	(२) **सुनु** (किष्किं० ३/७)
धा० चल् + उ = **चलु** (= तू चल)	धा०आ + उ = **आउ** (= तू आ)	धा० सुन् + -उ = **सुनु** (= तू सुन)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान्य भविष्यत् काल (निर्देशार्थ)

उत्तम पुरुष, बहुवचन—

(३) करब (पद। ६, बारिव-लास, गंगा-स्तुति. ७७/४) धा० कर् + -अव = **करब** (=हम करेंगे)	(३) करब (सूरसागर, १०/३७१०) धा० कर् + अव = **करब** (=हम करेंगे)	(३) **फिरब** (अयो० ११२/८) धा०फिर् + -अव = **फिरब** (=हम फिरेंगे)

फिर कभी विस्तार से लिखूँगा। हर्ष है आप सानन्द हैं। सस्नेह,

श्री बैकुंठनाथ मेहरोत्रा, आपका

अध्यक्ष, साहित्य-विभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

कु० शीलादेवी शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)

प्रिय शिष्या शीलादेवी, दिनांक २२. १२. ७८ ई०

आशीर्वाद !

हिन्दी-ध्वनियों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में प्रयुक्त होनेवाले **'प्रयत्न'** शब्द का अर्थ जानने के लिए तुमने अपनी इच्छा व्यक्त की है।

बेटी शीला ! **प्रयत्न** से तात्पर्य है 'करण' और स्वरतंत्रियों का प्रयत्न। **करण** अर्थात् मुखाङ्ग। **स्वरतंत्रियाँ** अर्थात् मुख-विवर से बाहर पीछे की ओर श्वास-नली की स्वरतंत्रियाँ। **आभ्यंतर प्रयत्न** को 'आस्य-प्रयत्न' भी कहते हैं। यह मुख के अन्दर होता है। **बाह्य प्रयत्न** श्वास नली में होता है।

मुखाङ्ग में चल और अचल सम्मिलित हैं। चल में जीभ, दाँत और ओठ हैं। अचल में तालु है। जब जीभ, दाँत, ओठ और तालु गतिशील होकर मुख-विवर में प्रयत्न करते हैं, तब जो ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं, वे **आभ्यन्तर प्रयत्न** की ध्वनियाँ कहलाती हैं। इन ध्वनियों के नाम 'करणों' के आधार पर हैं। इनके नाम हैं—(१) **सवृत** (२) **विवृत** (३) **ईषत् विवृत** (४) **स्पृष्ट** (५) **ईषत् स्पृष्ट।**

संवृत, जैसे 'अ'—इसमें मुख-विवर संकीर्ण रहता है। **विवृत**, जैसे आ, औ आदि स्वर। **ईषत् विवृत**; जैसे श्, स्, ह् व्यंजन। इनके उच्चारण में मुख-विवर बहुत कम खुला रहता है। विवृत में सबसे अधिक खुला रहता है। **स्पृष्ट ध्वनियों** में मुखाङ्ग पूर्णतया छूते हैं, जैसे **क्** से **म्** तक। ईषत् स्पृष्ट ध्वनियों में 'करण' थोड़ा छूता है, जैसे य्, र्, ल्, व् में।

स्वरतंत्रियों के प्रयत्न से **घोष, अघोष, अल्पप्राण** और **महाप्राण** ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। उदाहरणार्थ क्, ख् अघोष और ग्, घ् घोष हैं। 'क्' **अल्पप्राण**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, तो 'ख्' **महाप्राण** है। महाप्राण ध्वनि में श्वास की मात्रा अधिक रहती है। अतः बाह्य प्रयत्न की ध्वनियाँ **घोषत्व, अघोषत्व, अल्पप्राणत्व और महाप्राणत्व** को प्रकट करती हैं। हिन्दी में श्, स् ध्वनियाँ अघोष होने के साथ-साथ महाप्राण हैं। मानव वाग्यंत्र में ओठों से लेकर फेफड़ों तक के अंगोपांग समाविष्ट हैं।

भाषाशास्त्र बारीक और पैनी निगाह चाहता है।

तुम्हारे पिताजी ने पाणिनि की अष्टाध्यायी पढ़ी है। उनसे ध्वनियों के स्थानों की बात पूछना। विषय स्पष्ट हो जाएगा।

बेटी शीला ! मनोयोग से किया हुआ तलस्पर्शी अध्ययन ही किसी व्यक्ति को अच्छा लेखक और अच्छा वक्ता बना सकता है। सिद्धहस्त लेखक जिस ग्रंथ को पढ़ते हैं, उसमें से अपने मतलब की बात तुरन्त नोट किया करते हैं।

एक पश्चात्य विद्वान् हुआ है **गिबन**। वह इटालियन इतिहासज्ञ था। वह किसी पुस्तक को पढ़ने से पूर्व उसके शीर्षक को **नोट** करता था और उस निर्दिष्ट ग्रंथ को पढ़ने से पहले उस विषय पर स्वयं लिखता था, तथ्यबिन्दु (Points) नोट करके। उसके बाद उस पुस्तक को पढ़ता था। तब उसमें जो-जो बातें उसे नयी मिलती थीं, उन्हें **नोट** करता जाता था।

इसी प्रकार तुम्हारा अध्ययन भी सक्रिय और साकार बनना चाहिए। अलग-अलग फाइलें बनाकर विषयानुसार नयी-नयी सामग्री तुम्हें नोट करनी चाहिए। तुम्हें अधिक से अधिक भाषाशास्त्र और आलोचनाशास्त्र की पुस्तकें पढ़कर अपना ज्ञान-भांडार और दृष्टिकोण विस्तृत तथा व्यापक बनाना चाहिए।

बेटी शीला ! पत्र को समाप्त करने से पहले एक बात तुमसे विशेष रूप से यह कहना चाहता हूँ कि तुम अपने पिता जी से **श्री रघुवीरशरण मित्र** की कृति **भूमिजा** मँगवाकर अवश्य पढ़ना। **भूमिजा** में सीता-वनवास का वृत्तान्त है। सीता जब बाल्मीकि के आश्रम की ओर जाते हुए अरण्य रोदन कर रही है, तब रावण की आत्मा सीता के विलाप से करुणार्द्र होती हुई रामचन्द्र जी के प्रति कहती है—

राम ! बताओ जग के भ्रम पर, क्यों सीता को त्यागा ?
टूटा करते धनुष, टूटता, नहीं ब्याह का धागा।।
डिगी न सत से सीता, ज्वाला, साक्षी है नारी की।
नभ से ऊँची आज हो गई, सौरभ की बारीकी।।

—(भूमिजा, पृष्ठ १७)

× × × ×

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि मैं धरती पर होता तो, नूतन प्रश्न उठाता।
राम तुम्हारे न्यायालय में, तुमको आज बुलाता॥
—(भूमिजा, पृ० १६)

'**भूमिजा**' पढ़ने पर तुम रावण की आत्मा के वास्तविक स्वरूप को समझोगी। तब तुम्हारी समझ में **रामचरितमानस** की निम्नांकित अर्धाली का भी पूरा अर्थ समझ में आ जाएगा—

सुनत बचन दससीस रिसाना, मन महुँ चरन बंदि सुख माना॥
—(मानस, अर० २८/१६)

तुलसी की उपर्युक्त अर्धाली में सीता जी के प्रति रावण का जो उदात्त और पवित्र भाव व्यंजित है, उसकी प्रेरणा तुलसी को कंबन् की रामायण (तमिल) और रामशर्मन् की अध्यात्मरामायण (संस्कृत) से मिली होगी। इन्हीं ग्रंथों से **श्री रघुवीरशरण मित्र** भी प्रभावित हुए हैं—ऐसा मेरा विचार है। भूमिजा में रावण का चरित्र वर्णित है तथा परम उदात्त स्वरूप चित्रित है।

कु० शीलादेवी शर्मा, एम० ए० (हिन्दी) शुभैषी
हिन्दी-विभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय, अलीगढ़।

प्रो० गिरीशचन्द्र पचौरी के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१

प्रियवर पचौरी, दिनांक २२. १२. ७८ ई०

आशीर्वाद !

तुम्हारा प्रश्न शुद्ध हिन्दी-भाषा-वर्तनी-लेखन के सम्बन्ध में इस प्रकार है— 'जब भाषा लिखित अवस्था ग्रहण करती है, तब उसकी लिपिगत वर्तनी की समस्या उपस्थित हो जाती है। ऐसी स्थिति में हिन्दी भाषा की वर्तनी-समस्या का उत्तम समाधान क्या है ?"

प्रियवर पचौरी ! हिन्दी भाषा देवनागरी लिपि में लिखी जाती है, जिसमें वर्णों पर शिरोरेखाएँ बनायी जाती हैं। इन शिरोरेखाओं से शब्द-लेखन में सुन्दरता तो आती ही है; साथ में कथन में स्पष्टता और निश्चितता भी आती है। यदि वर्ण बिना शिरोरेखा के रहें, तो पदानुबंध का अर्थ स्पष्ट नहीं होता—जैसे—**तीन से/रचना; तीन/सेर/चना** (इनको जब बिना शिरोरेखाओं के पढ़ा जाए)।

वृत् धातु का अर्थ है **रहना**। वृत् + ल्यु + स्त्री प्रत्यय = **वर्तनी**। **वर्तनी** शब्द का धातुमूलक अर्थ है—'रहनेवाली।' किसी शब्द में ध्वनियाँ जिस ढँग

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से रहती है, उस रहनेवाली स्थिति का नाम 'वर्तनी' है। 'वर्तनी' के समानान्तर उर्दू में **हिज्जे** और अँग्रेज़ी में **स्पेलिंग** शब्द हैं।

हिन्दी में वर्तनी की समस्या उतनी नहीं है, जितनी कि अँग्रेज़ी में है। अँग्रेज़ी के शब्दों की वर्तनी (Spelling) घोटते-घोटते तो हमारे विद्यार्थियों के जीवन का बहुत बड़ा समय व्यर्थ नष्ट हो जाता है। वहाँ तो **बट** (But), **पुट** (Put), **डॉटर** (Daughter), **नाइफ़** (Knife) आदि की वर्तनी रटते-रटते दिमाग़ चिन्नी काट जाता है।

हिन्दी में बहुत-कुछ सुविधा है। हिन्दी मे बहुत-कुछ वैसा ही लिखा जाता है, जैसा बोला जाता है। हाँ, शब्दांत **अ** और **हल्** की स्थिति में समस्या खड़ी हो जाती है। **ऋ**, **ष्** और **ज्ञ्** वर्ण भी विषम स्थिति उपस्थिति कर देते हैं। इस विषम स्थिति का कारण यह है कि हिन्दी के अध्यापक इनके लिखने और उच्चारण के भेद को विद्यार्थियों के दिमाग़ों में नहीं भर पाते। **ऋ**, **ष्** और **ज्ञ्** ध्वनियाँ हिन्दी में क्रमशः **रि**, **श्** और **ग्य्** बन गयी हैं। मराठी में **ऋ** का उच्चारण **रु** है।

हम हिन्दी-प्रदेश में रहनेवाले हिन्दी-भाषी शब्दान्त के **अ** स्वर को बोलते नहीं; लेकिन वर्तनी में लिखते अवश्य हैं। शब्दों के मध्य में भी **अ** स्वर लिखते हैं, लेकिन उसका उच्चारण नहीं करते। जैसे—(१) **मोहन्**, **राम्**, **कमल्**, और **मल्मल्** बोलते हैं, लेकिन लिखते हैं—**मोहन**, **राम**, **कमल** और **मलमल**।

(२) **कीर्तिमान** (=यश का मानदण्ड) और **कीर्तिमान्** (=यशवाला) जैसे शब्दों के लिखने में तो भेद करते हैं, लेकिन बोलने में नहीं। बोलते दोनों को व्यंजनांत ही हैं; अर्थात् **कीर्तिमान्**। वर्तनी की भूलों में उच्चारण भी एक कारण है।

यद्यपि हिन्दी भाषा में **ऋ** और **ष्** ध्वनियाँ समाप्त हो गयी हैं, तो भी लेखन में आसन जमाये बैठी हैं। संस्कृत की परंपरा का पालन हिन्दी अपने लेखन में अभी तक कर रही है। बँदरिया मरे बच्चे की खलरिया को महीनों लटकाये फिरती है। हिन्दी भाषा की भी कुछ ऐसी ही दशा है, लेखन में।

हम **ऋषि**, **घर्षण** आदि शब्दों को **ऋ** और **ष्** से लिखते अवश्य हैं, किन्तु बोलते **रिशि** और **घर्शण** ही हैं। **मृग** लिखते हैं, लेकिन **म्रिग** बोलते हैं। **कृपा** लिखते हैं, किन्तु **क्रिपा** बोलते हैं। कुछ तो अज्ञानवश **म्रग** और **क्रपा** भी।

मराठी-भाषी तो **कृपा** को **क्रुपा** और सिंह को **सिम्ह** बोलते ही हैं। मराठी लोगों की भाँति अँग्रेजी में **अहिंसा** शब्द की वर्तनी 'M' सहित (AHIMSA) है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज् + ञ् का गुच्छीय रूप **ज्ञ** है। यह हिन्दी में **ग्य** बोला जाता है। हम हिन्दीवाले **ज्ञान**, **यज्ञ**, **अज्ञान**, संज्ञा आदि में **ज्ञ** लिखते हैं, लेकिन इन्हें ग्यान, **यग्य**, **अग्यान**, **संग्या** आदि के रूप में बोलते हैं। उत्तरप्रदेश का हिन्दी-भाषी अहिंसा को **अहिन्सा** और महाराष्ट्र का मराठी-भाषी **अहिम्सा** बोलता है। '**यज्ञ**' को मराठी भाषी **यद्न** जैसा बोलता है।

यदि उपर्युक्त शब्दों को हम जैसे बोलते हैं, वैसे ही लिखें, तो वर्तनी की समस्या समाप्त हो जाएगी। राष्ट्रीय स्तर पर ऐसा सर्वमान्य नियम बन जाना चाहिए। देश के विद्वान् सरकार से शीघ्र सर्वमान्य नियम बनवाएँ, तब काम चले।

ऐसा ही सर्वमान्य नियम **हुए**, **गये** (क्रिया), **नयी** (वि०), **दिखायी** (क्रिया), **दिखाई** (संज्ञा) आदि के लिए भी बनना चाहिए। फिर कोई **हुये**, **गए**, **नई**, **दिखाई** (क्रिया) आदि न लिखेगा। हिन्दी-वर्तनी में एकरूपता आ जाएगी। **हुए** और **हुये** में से कौन-सा रूप समीचीन है ? इस पर विस्तार से फिर लिखूँगा।

हिन्दी विश्लिष्टावस्था की भाषा है। इसमें कारकीय परसर्ग मूल शब्द से पृथक् ही लिखे जाने चाहिए; जैसे "उस लड़के ही **को** बुलाइए।" कुछ पत्र-पत्रिकाएँ परसर्गों को मूल शब्द से सटाकर लिखती हैं। गीता-प्रेस, गोरखपुर के 'कल्याण पत्र' में परसर्ग सटाकर लिखे जाते हैं। हिन्दी में **मोहन के घर में सजावट की जा रही है** वाक्य के पद पृथक्-पृथक् शिरोरेखाओं के साथ लिखे जाने चाहिए; अर्थात् **मोहन** और **के** अलग-अलग।

अनुस्वार और अनुनासिक चिह्न में भेद अवश्य करना चाहिए। **कादम्बिनी** जैसी पत्रिकाएँ हिन्दी के विद्यार्थियों को गड़बड़ में डाल देती हैं। उसमें **हँसिकाएँ** को **हंसिकाएँ** रूप में छापा जाता है; यह ठीक नहीं है। **हंसी** (=एक पक्षी) और **हँसी** (=मुसकान से बढ़ी हुई एक क्रिया) में अन्तर है।

दीर्घ सामासिक शब्दों में केवल एक योजक चिह्न पर्याप्त है, वह भी अंत में। जैसे—**कोलकिरात-किशोरी**। दो योजक चिह्न—**कोल-किरात-किशोरी**—गड़बड़ पैदा करेंगे। अनेक योजक चिह्न लगाना शक्ति-क्षय का कारण बनेगा।

मैं समझता हूँ इस तरह हिन्दी की वर्तनी-समस्या का समाधान सुगमता से हो सकता है। शेष फिर कभी।

सौभाग्यवती बहू को असीस। बच्चों को प्यार।

श्री गिरीशचन्द्र पचौरी,
प्रवक्ता, शिक्षा-विभाग,
जे० बी० जैन डिग्री कालेज, सहारनपुर (उ० प्र०)

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० (कु०) विदुला के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़
प्रय बेटी विदुला, दिनांक २३. १२. ७८ ई०

आशीर्वाद !

तुम्हारी पुस्तक बेटी शारदा ने मुझे दिखायी। तुमने भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्र को प्रश्नोत्तर-रूप में प्रस्तुत करके हिन्दी के विद्यार्थियों का उपकार किया है। आशा है इस सोपान-पथ से तुम और भी दिव्य सारस्वत लोकों के दर्शन करोगी।

तुम्हें आलोचना-शास्त्र से सम्बद्ध पारिभाषिक शब्दावली का एक कोश भी तैयार करना चाहिए।

पहले तुम्हें **कोशविज्ञान** (Lexicology) और **कोशकला** (Lexicography) पर कुछ पुस्तकें पढ़नी चाहिए। 'कोशकला' पर श्री रामचन्द्र वर्मा (काशी) ने एक पुस्तक लिखी है, जो वाराणसी से प्रकाशित है।

कोशविज्ञान कोश बनाने के सिद्धान्तों का विवेचन प्रस्तुत करता है और **कोशकला** उन सिद्धान्तों का प्रयोग करके भाषा की उपयोगिता बताती है। **वर्णनात्मक**, **तुलनात्मक** और **ऐतिहासिक** कोश भी बनाये जा सकते हैं।

व्यक्तिकोश, **ग्रंथकोश**, **भाषाकोश** आदि अनेक प्रकार के कोश हिन्दी में बन सकते हैं। तुम्हारा काम **भाषाकोश** के अन्तर्गत आता है।

तुम काव्यशास्त्र के शब्दों को अर्थ-सहित ग्रंथ-प्रमाण-सन्दर्भ के साथ कार्डों पर लिख डालो, और फिर अकारादि क्रम से सँजोकर काग़ज़ के पन्नों पर उतार लो।

तुम्हारा कोश तुलनात्मक पद्धति पर लिखा जाना चाहिए। जैसे एक कार्ड पर तुमने **अलंकार** शब्द लिखा और उसकी परिभाषा' लिखी, तो साथ में एक आचार्य का मत भी लिखो—"उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातु चित्' (मम्मट, काव्य० ८/८७/६७)। **काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान्**—(दंडी)। वहीं कोष्ठक में अंगरेज़ी में Figer of Speech भी लिख दीजिए। संस्कृत के आचार्यों ने जिसे '**रीति**' कहा है, उसे अंग्रेज़ी के काव्यशास्त्री Style कहते हैं। साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ कहते हैं—

पदसंघटना रीतिरङ्गसंस्था विशेषवत्। उपकर्त्री रसादीनाम्।

(साहित्य-दर्पण, परिच्छेद ९/१)।

संस्कृत के आचार्यों की '**रीति**' की अवधारणा विशिष्ट-पद रचना से संबद्ध है, जो रसोत्कर्ष करती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मम्मट ने **शक्ति**, **निपुणता** और **अभ्यास** को विशिष्ट अर्थ में ग्रहण किया है। इन्हें तुम अपने कोश में स्पष्ट करोगी।

शब्द में दो प्रकार का अर्थ निवास करता है। एक **सामान्य अर्थ** और दूसरा **विशिष्ट अर्थ**। विशिष्ट अर्थ विषय या शास्त्र की दृष्टि से बदलता रहता है।

साहित्य में सामान्यतया **कोण** का अर्थ है कोना; जैसे दीवाल का कोना; लेकिन ज्यामिति में **कोण** का अर्थ भिन्न है; **कोण**=दो रेखाओं का मिलन-बिन्दु (ज्यामिति)।

इसी प्रकार काव्यशास्त्र में मम्मट ने **शक्ति** शब्द को **प्रतिभा** के अर्थ में प्रयुक्त किया है। वैसे सामान्यतया शक्ति का अर्थ 'ताक़त' है; चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक। गीता में **निष्ठा** शब्द का प्रयोग **साधना-मार्ग** के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। यह दर्शन के क्षेत्र में प्रयुक्त विशिष्ट अर्थवाला शब्द है—

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥ —(गीता ३/३)

इस पद्धति से काम करने पर तुम्हारा **तुलनात्मक पारिभाषिक कोश** जल्दी तैयार हो जाएगा।

यदि तुम अपने कोश को **तुलनात्मक बहुभाषा कोश** बनाना चाहती हो, तो उन्हीं कार्डों पर बंगला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, मलयालम आदि के काव्यशास्त्र-ग्रंथों में **अलंकार** शब्द के लिए जो-जो शब्द हैं, उन्हें भी देवनागरी लिपि में लिखती चलो।

इस तरह तुम्हारा **तुलनात्मक पारिभाषिक बहुभाषा कोश** उत्तम रूप में तैयार हो जाएगा। यह हिन्दी काव्यशास्त्र के लिए तुम्हारा बहुमूल्य योगदान होगा।

भारत में कोश-लेखन परम्परा बहुत प्राचीन है। वैदिक शब्दों के कोश **निघण्टु** कहलाते थे। यास्क (ई० पू० ७०० वर्ष) ने 'निरुक्त' वैदिक निघण्टु के शब्दों पर ही लिखा था। पाणिनीय-संस्कृत-काल के शब्दों पर **अमरकोश** (चतुर्थ शती) प्रसिद्ध है।

पालि शब्दों पर **महाव्युत्पत्तिकोश** और प्राकृत-शब्दों पर **देशीनाममाला** द्रष्टव्य है।

हिन्दी का सबसे पहला कोश सन् १८२९ ई० में पादरी एडम ने तैयार किया था। एकभाषी कोशों में **हिन्दी शब्द सागर** (१९१२–१९२८ ई०) **और मानक हिन्दी कोश** (१९५२–१९६६ ई०) **प्रशंसनीय प्रयास हैं।**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुभाषी कोशों में नरवणे का सोलह भाषाओं का **भारतीय व्यवहार कोश** (सन् १९६१ ई०) अच्छा है।

तुम्हें इस कोश को अवश्य देखना चाहिए। प्राप्ति स्थान है—विश्वनाथ दिनकर नरवणे, त्रिवेणी संगम, सारा मँशन, गोखले रोड (उत्तर) दादर, मुंबई–२८।

कोश-लेखन में शब्दार्थ लिखते समय निम्नांकित बातों का ध्यान रखना पड़ता है—(१) **वर्तनी** (२) **उच्चारण** (३) **अक्षर-विभाजन**, (४) **व्याकरण** (५) **व्युत्पत्ति** (६) **अर्थ**–(प्रचलित एवं प्रमुख अर्थ पहले) (७) **प्रयोग**।

शब्द के प्रयोग के लिए तुम्हें आप्टे के 'संस्कृत-अंग्रेजी कोश' को आदर्श मानना चाहिए।

इन बातों को दृष्टि-पथ में रखने से तुम किसी भी प्रकार का कोश अच्छा तैयार कर सकती हो।

शब्द के अर्थ की बारीकी कैसे पकड़ी जाती है—इसके लिए श्री रामचन्द्र वर्मा की पुस्तक **'शब्द-साधना'** (साहित्यरत्न माला कार्यालय, २० धर्मकूप, बनारस) अवश्य पढ़िए। इससे तुम्हें वह दृष्टि मिलेगी, जो शब्द की अर्थ-छवि को अच्छी तरह देख लेती है।

तुलनात्मक कोश तैयार करने के लिए **टर्नर की** 'नैपाली-डिक्शनरी' भी द्रष्टव्य है।

मुझे तुम्हारी निष्ठा और साधना से ऐसी आशाएँ हैं।

तुम्हें मालूम होना चाहिए कि **विदुला** महाभारत काल की एक विदुषी वीरांगना थी, जिसका पुत्र **संजय** था। उसके उपदेश से पुत्र **संजय** इतना वीर उत्साही पुरुष बन गया था कि सिन्धु देश के राजा **जयद्रथ** के उसने छक्के छुड़ा दिये थे।

मंगल कामना सहित,

डा० (कु०) विदुला, पी-एच० डी०, शुभैषी
प्रवक्ता, हिन्दी-विभाग अम्बाप्रसाद 'सुमन'
जे० बी० जैन डिग्री कालेज, सहारनपुर (उ० प्र०)

डा० (श्रीमती) कमलकुमारी गुप्ता के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
दिनांक २४. १२. ७८ ई०

प्रिय बहिन कमलकुमारी जी,

आपकी प्रमुख जिज्ञासा **रूपशैलीविज्ञान** और **वाक्यशैलीविज्ञान की**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूपावगति के संबंध में हैं। पहले में **रूपशैलीविज्ञान** और **वाक्यशैलीविज्ञान** पर ही अपने विचार आपको लिखूँगा, फिर **ध्वनिशैलीविज्ञान** पर भी।

रूपशैलीविज्ञान और **वाक्यशैलीविज्ञान** वास्तव में शैलीविज्ञान (Stylistics) के ही भेद (प्रकार) हैं।

शैलीविज्ञान वह विज्ञान है जो भाषा की शैली का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करता है। **शैली** वास्तव में भाषागत अभिव्यक्ति ही तो है। प्रसिद्ध विद्वान् मेरी (Merry) ने **शैली** को व्यक्तिगत अनुभूति की स्पष्ट अभिव्यंजना कहा है—"Style is the direct expression of the individual mode of experience."

किसी साहित्यकार की भाषा का शैलीविज्ञानपरक अध्ययन करके हम उसके मनोविज्ञान अर्थात् उसके अनुभवों तथा अनुभूतियों का पता लगा लेते हैं। किसी साहित्यकार की भाषा का अध्ययन चार प्रकार से किया जा सकता है—(१) **ध्वनियों का अध्ययन** (२) **शब्दों का अध्ययन**।

शब्द और अर्थ जल-वीचि की भाँति भिन्न और अभिन्न हैं।

कुछ लेखक कुछ शब्दों का प्रयोग विशिष्ट अर्थों में किया करते हैं।

—आई प्रत्यय से भाववाचक संज्ञा बनती है; लेकिन तुलसी ने '**मनुसाई**' का प्रयोग **मनुष्यता** के अर्थ में न करके, **पौरुष** या **बल** के अर्थ में किया है—**सोउ नहिं नाघेहु असि मनुसाई**॥" (मानस: लंका:; ३६/३)। (३) **व्याकरणिक रूपों का अध्ययन** (४) **वाक्य-रचना का अध्ययन**। इन्हें ही क्रमशः **ध्वनिशैली-विज्ञान, शब्दशैली-विज्ञान, रूपशैली-विज्ञान** और **वाक्यशैली-विज्ञान** कहते हैं।

शब्दशैली-विज्ञान में शब्द-विन्यास का अध्ययन किया जाता है। कोई कवि असमस्त शब्द प्रयुक्त करना अच्छा समझता है और कोई सामासिक शब्दावली में रुचि रखता है। नाद और संगीत में आबद्ध समासान्त शब्दावली निराला की शब्द-शैली में देखी जा सकती है। जैसे—

प्रति पल परिवर्तित व्यूह। भेद-कौशल-समूह॥
राक्षस-विरुद्ध प्रत्यूह। क्रुद्ध कपि विषम हूह॥
—(राम की शक्ति-पूजा)

शब्द-शैली के साथ अर्थ स्वतः अनुस्यूत है। शब्दों के साथ उनके अर्थों का भी अध्ययन करना होता है। **मधुर** शब्द का प्रयोग सामान्यतः **मीठा** अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है अर्थात् **मधुर** शब्द **आस्वाद्य बिम्ब** प्रस्तुत करता है; लेकिन महाप्रभु वल्लभाचार्य ने अपने 'मधुराष्टक' में **मधुर** शब्द का प्रयोग **श्रोतव्य बिम्ब** और **चाक्षुष बिम्ब** के अर्थ में भी किया है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणी मधुरौ पादौ मधुरौ ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।
—(मधुराष्टक, श्लोक ३)

कुछ सिद्ध लेखक विचार को ऐसे उपयुक्त, प्रभावी और संक्षिप्त वाक्य में व्यक्त करते हैं कि पाठकों के मानस-पटल पर वह सदा के लिए अंकित हो जाता है।

छायावाद की प्रमुख भाव-धारा और उपमान-विधान के सम्बन्ध में एक वाक्य डा० नगेन्द्र ने अपनी पुस्तक में लिखा—**छायावाद स्थूल से सूक्ष्म का विद्रोह है।**

द्विवेदीयुगीन स्थूल उपमानों के स्थान पर छायावादी युग में सूक्ष्म उपमान अपनाये गये। इसी बात को डा० नगेन्द्र ने प्रभावी **वाक्य-शैली** में व्यक्त किया है।

रूपशैली-विज्ञान में हम यह देखते हैं कि अभीष्ट लेखक की भाषा में कारकीय परसर्गों का प्रयोग किस प्रकार किया गया है? शब्दों के वचन तथा लिंग किस तरह के अधिक प्रयुक्त किये गये हैं? जैसे—**मैं** सर्वनाम का कर्म-कारकीय एक वचन रूप हिन्दी में **मुझे मुझको** और **मेरे को** बोला जाता है। देखना यह है कि उस लेखक ने उन पुस्तक में किस रूप को अधिक प्रयुक्त किया है? पूरी पुस्तक में किस रूप का प्रतिशत अधिक है, और क्या प्रतिशत है?

कुछ लेखक लिखते हैं—**कमला के लड़का हुआ है।** कुछ लिखते हैं—**कमला को लड़का हुआ है।** अन्य कुछ लिखते हैं—**कमला से लड़का हुआ है।**

कुछ लेखक लिखते हैं—**नौकर के द्वारा साग मँगवाता हूँ।** दूसरे लिखते हैं—**नौकर द्वारा साग मँगवाता हूँ।** अन्य कुछ लिखते है—**नौकर से साग मँगवाता हूँ।**

कुत्ता का स्त्रीलिंग कुछ लेखक **कुतिया** और कुछ **कुत्ती** लिखते हैं। एक लेखक **लोमड़ी** का पुलिंग रूप **नर-लोमड़ी** और दूसरा लेखक पुंलिंग रूप **लोमड़ा** लिखता है। **माली** का स्त्रीलिंग रूप **मालिन** और **मालिनी** हैं। 'गुरु' के स्त्रीलिंग **गुरुआइन** और **गुरुआनी** हैं। **डाक्टर** के स्त्रीलिंग रूप **डाक्टरनी** और **डाक्टरानी** हैं। अभीष्ट लेखक किसे अपना रहा है, यह देखना होता है? यह सब **रूप-शैलीविज्ञान** है। **शब्दशैली-विज्ञान** में भी यह समाविष्ट किया जा सकता है।

कुछ लेखक संज्ञाओं के बहुवचन अरबी-व्याकरण के अनुसार प्रयुक्त किया करते हैं और कुछ हिन्दी-व्याकरण के अनुसार; जैसे—**मकानात, ख़यालात, काग़ज़ात, मामलात** आदि (अरबी व्याकरण के अनुसार) और दूसरे **मकानों, ख़यालों काग़ज़ों, मामलों** आदि।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ लेखक **मंत्रियों** लिखते हैं, तो कुछ लेखक **मंत्रीगण** और कुछ **मंत्रिगण**। एक लेखक **हाकिमों** लिखता है, तो दूसरा **हुक्काम**। एक **पंजाब-केसरी** के रूप में सामासिक पद बनाता है, तो दूसरा अलामते इजाफ़त के साथ **शेरे पंजाब** लिखना अधिक पसंद करता है। एक लेखक **सुन्दरी नारी** लिखता है, तो दूसरा **सुन्दर नारी**। एक **खारा पानी** और **ताज़ा हवा** लिखता है, तो दूसरा **खारी पानी** और **ताज़ी हवा** लिखता है। एक लेखक ने लिखा **स्वदेश का शार्दूल**, दूसरे ने **अपने देश का सिंह** और तीसरे ने **अपने मुल्क का शेर**। यह **रूप-शैली** का ही अन्तर है।

रूपशैली-विज्ञान से हम कृति के पात्रों का चरित्र और मनोभूमि भी जान सकते हैं। यदि एक पात्र किन्हीं अन्य तीन पात्रों में से पहले से कहता है—'**चल**'; दूसरे से कहता है–'**चलो**'; तीसरे से कहता है—'**चलिए**; तो इन क्रियाओं के आधार पर यह पता चल सकता है कि उस पात्र विशेष के सम्बन्ध उन तीनों पात्रों से किस-किस प्रकार के हैं? जिसके लिए '**चलिए**' का प्रयोग है, वह निश्चित रूप से आदरणीय व्यक्ति है।

इस प्रकार का रूपात्मक अध्ययन करके निर्दिष्ट लेखक की भाषा के व्याकरणिक स्वरूप को जानना **रूपशैलीविज्ञान** का काम है।

वाक्यशैलीविज्ञान में विशेष रूप से यह देखा जाता है कि कोई लेखक अपनी भाषा में वाक्य **साधारण**, **मिश्र** और **संयुक्त** में से किस प्रकार के अधिक बनाता है? संयुक्त क्रियाएँ किस-किस तरह की प्रयुक्त करता है? पूर्वकालिक क्रियाओं में **कर** और **के** प्रत्ययों में से किसका प्रयोग अधिक करता है? अर्थात् **उठ**, **उठकर** और **उठके** में से किसका प्रयोग अधिक मिलता है? एक लेखक लिखता है—**मैं आभारी होऊँगा**, और दूसरा लिखता है—**मैं आभारी हूँगा**।

कुछ लेखक लिखते हैं **घूँघट कर लिया**, दूसरे **घूँघट मार लिया**, तीसरे **घूँघट काढ़ लिया** और चौथे लिखते हैं **घूँघट निकाल लिया**। एक लिखता है **चिराग गुल हो गया**, दूसरा लिखता है **दीपक बुझ गया**।

एक ही लोकोक्ति (कहावत) को दो लेखक अलग-अलग शब्दों में लिखते हैं—एक लिखता है, **सौ-सौ चूहे खाकर बिल्ली हज को चली है**; दूसरा लिखता है, **सौ-सौ चूहे खाकर बिल्ली तप पर बैठी है**।

आपका निर्दिष्ट लेखक ऐसी लोकोक्तियाँ, मुहावरे तथा क्रिया-पद-बंध किस तरह के लिखता है, **वाक्यशैलीविज्ञान** यही देखता है? वाक्य रचना किस प्रकार की है? किन मुहावरों, लोकोक्तियों तथा अलंकारों के साथ है?—यही दृष्टि वाक्यशैली के पारखी की रहती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि कोई लेखक वाक्य-रचना परोक्ष-कथन (Indirect Speech) के रूप में लिखता है, तो निश्चित है कि उस पर अंग्रेजी का प्रभाव है; क्योंकि हिन्दी की अपनी प्रकृति 'प्रत्यक्ष कथन' (Direct Speech) की है। **श्रीकृष्ण ने गोपियों से कहा कि वे उनके साथ रास करेंगे**--ऐसे वाक्यों का लेखक अंग्रेजी से प्रभावित होना चाहिए। हिन्दी में तो वाक्य-रचना इस तरह होगी—**श्रीकृष्ण ने गोपियों से कहा कि मैं तुम्हारे साथ रास रचूँगा।**

इस प्रकार का अध्ययन **वाक्यशैलीविज्ञान** के अन्तर्गत आता है।

इसी तरह जब शब्दों में ध्वनियों का (स्वर आदि का) अध्ययन किया जाता है, तब उसे **ध्वनिशैलीविज्ञान** कहते हैं। कोई लेखक **मोटापा** और **सोहाग** लिखता है, कोई **मुटापा** और **सुहाग**। मैं स्वयं **बहिन** लिखता हूँ, निराला जी **बह्न** लिखते थे—**चिन्ता में बह्न गई तू गल**। ('निराला'; तुलसी-दास; छंद ६१)। शुद्धिवादी लेखक **ज़रूर** लिखते हैं और व्यवहारवादी जरूर। ज़ और ज ध्वनियों का अन्तर **ध्वनिशैलीविज्ञान** मालूम करता है। मैं स्वयं **ज़रूर, दिमाग़, ज़ोर, नाज़** आदि शब्दों को बिन्दी से लिखना पसंद करता हूँ। **ध्वनिशैलीविज्ञान** का पारखी हिन्दी-भाषा-शोधार्थी जानता है कि स्वरों में कोमलतम स्वर अ, इ, उ हैं, और व्यंजनों में कोमलतम व्यंजन य्, ल्, ब्, स् हैं।

संस्कृत-निष्ठ-भाषा लिखनेवाले लेखक **रात्रि, जीवन** और **उत्कर्ष** जैसे तत्सम शब्द लिखते हैं, और सरल और सहज भाषा के पक्षधर, **रात, ज़िन्दगी** और **तरक्की** लिखते हैं—इस अन्तर को **शैलीविज्ञान** पकड़ता है। इस पर पहले प्रकाश डाला जा चुका है।

मैं समझता हूँ कि आपको **शैलीविज्ञान** के दोनों भेदों अर्थात् **रूपशैलीविज्ञान** और **वाक्यशैलीविज्ञान** की अवधारणा स्पष्ट हो गयी होगी, साथ में **ध्वनि-शैलीज्ञान** और **शैलीविज्ञान** की बात भी समझ में आ गयी होगी।

यदि इस सम्बन्ध कोई शंका शेष हो, तो कभी पत्र लिखकर पूछ लीजिए।

आशा है आप सपरिवार सानंद होंगी। सस्नेह,

डा० (श्रीमती) कमलकुमारी गुप्ता, शुभैषी

अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, अम्बाप्रसाद 'सुमन'

मुन्नालाल एवं जयनारायण कन्या महाविद्यालय, सहारनपुर (उ०प्र०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रो० कमलकान्त 'बुधकर' के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१
दिनांक २५. १२. ७८ ई०

प्रियवर बुधकर जी,

आपने पूछा है कि **हिन्दी में निषेधात्मक वाक्य और श्लेषात्मक वाक्य किस प्रकार के होते हैं ?**

प्रिय श्री बुधकर जी ! विधिपरक वाक्यों को निषेधात्मक दो प्रकार से बनाया जा सकता है—(१) **रूपपरक निषेधात्मक वाक्य** (२) **अर्थपरक निषेधात्मक वाक्य** ।

अर्थपरक निषेधात्मक वाक्य बनाना बहुत सुगम है। विधिसूचक वाक्य की क्रिया के साथ **'नहीं'** अव्यय लगाने से अर्थपरक निषेधात्मक वाक्य बन जाता है—

(१) मोहन किताब पढ़ता है। [विधि-वाक्य]

(२) मोहन किताब **नहीं** पढ़ता। [निषेधात्मक-वाक्य]

लेकिन रूपपरक निषेधात्मक वाक्य कुछ पेचदार हैं। जैसे—

(१) मोहन किताब पढ़ता है। [रूपपरक विधि-वाक्य]

(२) यह नहीं कि मोहन किताब पढ़ता है। [रूपपरक निषेधात्मक-वाक्य]

आप मराठी-भाषी हैं। मराठी भाषा में **घोड़ा** और **घोड़ी** शब्दों का कर्मकारक-बहुवचनीय रूप एक हीं होता है, अर्थात् **घोड्यांना = घोड़ों को, घोड़ियों को** ।

(१) तुम्हीं त्या **घोड्यांना** पाहा = तुम उन **घोड़ों को** देखो।

(२) तुम्हीं त्या **घोड्यांना** पाहा = तुम उन **घोड़ियों को** देखो।

मराठी की क्रिया 'पाहा' संस्कृत की **पश्य** क्रिया का ही विकसित रूप है।

उपर्युक्त दोनों वाक्यों में समानता है। यदि कोई किसी व्यक्ति को देखने की आज्ञा दे, तो देखनेवाले को नर-मादा का अंतर मालूम न पड़ेगा। **घोड़ा, घोड़ी** समान रूप रखते हैं।

ठीक इसी प्रकार का एक श्लेषात्मक वाक्य हिन्दी में भी है—

(१) तुम उन **भैंसों को** देखो। (भैंसों = नर भैंसों को)

(२) तुम उन **भैंसों को** देखो। (भैंसों = मादा भैंसों को)

भैंसा और **भैंस** शब्दों के कर्मकारक बहुवचनीय तिर्यक् रूप समान हैं। अतः उपर्युक्त दोनों वाक्य हिन्दी में श्लेषात्मक हैं। इनमें नर-मादा का पता नहीं लगता।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी में निम्नांकित वाक्य भी श्लेषात्मक हैं, अर्थात् द्विअर्थी हैं—

(१) **हरी को गोपाल को** दस रुपये देन हैं।

(२) दोनों आदमी **उछलते** हुए बालकों के पास आये।

(३) माँ ने **लेटे हुए** बच्चे को दवा पिलायी।

(४) उसने फर्श इतना रगड़ा कि **पीला** पड़ गया।

(५) मुझे तुम्हारा पत्र दिल्ली से **लौटकर** मिला।

हरियाणा प्रदेश की हरियाणवी में भी एक श्लेषात्मक वाक्य मिलता है—

(१) **गोपाल नैं तन्नैं** मार्‌या = गोपाल ने उसको मारा।

(२) **गोपाल नैं तन्नैं** मारया = गोपाल को उसने मारा।

हरियाणवी में **नैं** परसर्ग कर्ताकारक और कर्मकारक दोनों में ही आता है। इसलिए उपर्युक्त दोनों वाक्य हरियाणवी में श्लेषात्मक हैं।

गुजराती के निम्नांकित वाक्य में जानेवाले व्यक्ति की संख्या और लिंग स्पष्ट नहीं है—

कमरा माँ **कोण जावे छे** ? (गुजराती)

पंजाबी के निम्नांकित वाक्य के दो अर्थ हैं—

(१) उत्थे मोटर **ते** तुसी सन = उधर मोटर पर तुम (आप) थे।

(२) उत्थे मोटर **ते** तुसी सन = उधर मोटर और तुम (आप) थे।

पंजाबी में 'ते' के दो अर्थ हैं। अतः उपर्युक्त दोनों वाक्य श्लेषात्मक हैं।

'अक्षर-अर्पण' का संपादन आपकी सारस्वत निष्ठा और गुरु-श्रद्धा का सूचक है। कविता और लेखों का चयन अच्छा लगा। बधाई !

प्रियवर जगदीशचन्द्र ने मुझसे आपके साहित्यिक स्नेह एवं कविता-सृष्टि की प्रशंसा की थी। उस दिन कविताएँ सुनकर मन बहुत प्रसन्न हुआ। आपकी मुक्तक (छन्दमुक्त) रचनाएँ प्राणवन्त हैं।

माता वीणापाणि से आपके समुज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

शेष फिर कभी। सस्नेह,

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

प्रो० कमलकान्त बुधकर,
प्रवक्ता, हिन्दी-विभाग,
महाराजसिंह डिग्री कालेज, सहारनपुर (उ० प्र०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० श्रीनिवास वर्दन के नाम

८/७ हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१
दिनांक २८. १२. १९७८ ई०

प्रिय भाई वर्दन् जी,

वार्तालाप के समय आपसे शब्द में मध्य प्रत्यय के सम्बन्ध में उस दिन बातें हुई थीं।

भाई! प्रायः ऐसा कह दिया जाता है कि **अरबी** भाषा में मध्य प्रत्यय की स्थिति मिलती है। अरबी में **क़त्ल** से **क़ातिल** शब्द बनता है। **क़ातिल** अरबी मे इस्मफ़ाइल है, अर्थात् कर्तृ-कारक-संज्ञा है।

संस्कृत के **जनपद** शब्द से **जानपद** शब्द बनता है। इसमें भी आ मध्य प्रत्यय है।

कभी-कभी शब्दों में मध्य स्वरागम भी हो जाता है। वह अकारण हो जाता है मात्र मुख-सुख के लिए। संस्कृत में **कमल** के लिए **पद्म** शब्द है। तुलसीकृत 'रामचरितमानस' में 'पद्म' को –उ आगम के साथ **पदुम** लिखा गया है। एक पृथक् शब्द 'पद्म' है। इसे भी **पदुम** लिखा गया है। मध्य स्वरागम के साथ तुलसीदास लिखते हैं—

बंदउँ गुरु पद पदुम परागा। (मानस, बाल० ६/१)
पदुम अठारह जूथप बंदर। (मानस, सुन्दर० ५५/३)

बड़े मज़े की बात है कि आपकी मातृभाषा **तमिळ** में भी मध्यप्रत्यय के उदाहरण मिलते हैं। **वृक्ष** के लिए तमिल में **मरम्** शब्द है। इससे सप्तमी विभक्ति के एक वचन में रूप **मरत्तिल्** बनता है। वास्तव में अधिकरण कारक अर्थात् सप्तमी विभक्ति-प्रत्यय—इल् है, जो हिन्दी के **'पर'** परसर्ग के समानान्तर है। **मरम् + इल्** से **मरमिल्** बनना चाहिए था; लेकिन **मरत्तिल्** बनता है। मकारान्त नपुंसक लिंगीय संज्ञा शब्दों में प्रायः मध्यप्रत्यय—**अत्** आता है।

हिन्दी	तमिळ
(१) **पक्षी वृक्ष पर** है।	(१) **परवै मरत्तिल्** इरुक्किरद
(वृक्ष पर = मरत्तिल्)	**(पक्षी = परवै)**

देखिए, शब्द कितनी लम्बी यात्राएँ किया करते हैं? संस्कृत में **'पारावत'** एक शब्द है, जिसका अर्थ **'फाख्ता'** या **'पंडुक'** पक्षी है। इसी **पारावत** शब्द से हिन्दी में **'परेवा'** शब्द विकसित है। संस्कृत का **'पारावत'** हिन्दी में **'परेवा'** और तमिल में **'परवै'** हो गया। **परेवा** और **परवै** बहुत-कुछ मिलते हैं। अन्तर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना है कि हिन्दी का **'परेवा'** शब्द एक विशेष प्रकार के पक्षी के लिए प्रयुक्त होता है। जायसी ने इसका प्रयोग 'पदमावत' में किया है—

हारिल भई पंथ मैं सेवा।
अब तोहि पठवौं कौन परेवा।। —(पदमावत)

तमिल के **'परवै'** में अर्थ-विस्तार हो गया है। संस्कृत के 'कुशल', **'प्रवीण'** आदि शब्द भी तो हिन्दी में आकर अर्थ-विस्तार की स्थिति ग्रहण कर गये हैं।

परेवा और **परवै** पर विचार करके मैं भावविभोर हो गया। देखिए, शब्द भारतवर्ष में उत्तर-दक्षिण के हृदयों को कितने सुन्दर ढँग से मिला रहे हैं ? हिन्दी किस तरह तमिल से गले मिल रही है ? इस प्रेम को यदि कोई हिये की अँखियों से देखे, तो उसे हमारी राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय भाषाओं की पारस्परिक प्रेममयी गलबाहीं दृष्टिगत हो। आप इन बातों को कृपया द्रविड़-मुनेत्र-कड़गमवालों को भी बताएँ।

तमिल-नाडु के निवासियों को आप यह भी बताएँ कि हिन्दी और तमिल शब्द-जगत् में बहुत दूर तक साथ-साथ भ्रमण करती हैं।

जहाँ तक सरकारी भाषा का सम्बन्ध है, उसके लिए भारतीयसंविधान की धारा ३४७ के अधीन राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह किसी भी राज्य में वहाँ की जनता की भाषा को सरकारी भाषा के रूप में घोषित करे।

आशा है आप सपरिवार सानंद होंगे। बच्चों तथा सौभा० बहू को असीस। इडली, डोशा आदि बनाना कृपया हमें भी बताइए। सस्नेह,

डा० श्रीनिवास वर्दन्,
तमिल-प्राध्यापक,
हिन्दी तथा भारतीय भाषाविभाग,
अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय, अलीगढ़

शुभैषी
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

डा० गोवर्धननाथ शुक्ल के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१
दिनांक २९. १२. ७८ ई०

प्रिय बन्धुवर शुक्ल जी,

सप्रेम नमस्कार !

उस दिन आपके साथ हुई सारस्वत चर्चा के प्रसंग में आपकी प्रश्नात्मक जिज्ञासाएँ दो थीं, जिन पर आपने मेरी राय जाननी चाही थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहला प्रश्न तो **'रामचरितमानस'** के किष्किंधा काण्ड की निम्नांकित अर्धाली के **'गरुड़'** शब्द के अर्थ से सम्बद्ध था—

अस कहि गरुड़ गीध जब गयऊ।
तिन्ह कें मन अति बिसमय भयऊ।। (मानस, किष्कि० २९/५)

दूसरा प्रश्न लंकाकाण्ड की निम्नलिखित अर्धाली के **'नीचा'** शब्द से सम्बद्ध था।

बान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहिं मानेहि नीचा।
—(मानस, लंका० ३६/९)

बन्धुवर शुक्ल जी! पहले प्रश्न के उत्तर में मेरा निवेदन है कि किष्किंधा-काण्ड की निर्दिष्ट अर्धाली (दो० २९/५) में आया हुआ **'गरुड़'** शब्द पक्षिराज भगवद्वाहन के अर्थ में प्रयुक्त है।

काकभुशुण्डि जी ने भगवान् राम की कथा गरुड़ को सुनायी है।

आपको यह तो विदित ही है कि **रामचरित** के आदि रचयिता शंकर जी हैं। उन्होंने ही **रामचरित** रचकर अपने मानस में धारण किया।

रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा।।
(मानस, बाल० ३५/११)

उस परात्पर ब्रह्म रूप राम की कथा शंकर ने अगस्त्य मुनि को सुनायी। फिर अगस्त्य जी के आश्रम में काकभुशुण्डि ने उनसे (अगस्त्य से) सुनी और गरुड़ जी को सुनायी। जिस कथा को काकभुशुण्डि ने गरुड़ को सुनाया था, उसे ही **मानस** के उत्तरकाण्ड में शंकर जी ने पार्वती को सुनाया है। **रामचरितमानस** के उत्तरकाण्ड में प्रमुख वक्ता श्रोता-युग्म दो ही हैं—(१) **काकभुशुण्डि-गरुड़ युग्म** (२) **शंकर-पार्वती युग्म**।

सम्पूर्ण **रामचरितमानस** में काकभुशुण्डि के प्रसंग में चार स्थलों पर पक्षिराज गरुड़ को **'गरुड़'** शब्द से सम्बोधित किया गया है—

(१) **अस कहि गरुड़ गीध जब गयऊ।**
तिन्ह कें मन अति बिसमय भयऊ।। (किष्कि० २९/५)

(२) **गरुड़! सुमेरु मेरु सम ताही।**
राम कृपा करि चितवा जाही।। (सुन्दर० ५/३)

(३) **राम भगति चिंतामनि सुंदर।**
बसइ गरुड़! जाके उर अंतर।। (उत्तर० १२०/२)

(४) **देखु गरुड़! निज हृदय बिचारी।**
मैं रघुबीर भजन अधिकारी? (उत्तर० १२३/७)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः मेरी राय में निर्दिष्ट अर्धाली (किष्कि० २९/५) में आये हुए 'गरुड़' शब्द का अर्थ 'गरुड़ पक्षी' ही है।

अब दूसरे प्रश्न के उत्तर में अपना निवेदन प्रस्तुत कर रहा हूँ।

निर्दिष्ट अर्धाली (लंका० ३६/९) का नीचा' शब्द मन्दोदरी के कथन में प्रयुक्त हुआ है। यह **मंदोदरी-रावण-संवाद** है।

'रामचरितमानस' में तीन प्रकार के संवाद मिलते हैं—

(१) **पौराणिक संवाद**—शंकर-पार्वती, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज, काकभुशुण्डि-गरुड़ और तुलसी-भक्तश्रोता।

(२) **उपदेशात्मक संवाद**—रामचन्द्र जी द्वारा लक्ष्मण को दिया गया उपदेश (अरण्य काण्ड), विभीषण द्वारा रावण को दिया गया उपदेश (सुन्दर-काण्ड), रामचन्द्र जी द्वारा विभीषण को दिया गया उपदेश (लंकाकाण्ड), मंदोदरी द्वारा रावण को दिया गया उपदेश (लंकाकाण्ड) आदि।

(३) **नाटकीय संवाद**—लक्ष्मण-परशुराम संवाद, हनुमान्-रावण संवाद, आदि।

आपके प्रश्न की अर्धाली उपदेशात्मक संवाद से सम्बन्ध रखती है। लंका-काण्ड के इस स्थल (लंका० दो० ३६/९) पर मंदोदरी **चौथी बार** रावण को समझा रही है। इससे पहले तीन बार समझा चुकी है।

पहली बार हनुमान् के लंका जलाकर चले जाने के बाद। **दूसरी बार** राम द्वारा समुद्र पर पुल बाँधने के बाद। **तीसरी बार** राम-बाण से छत्र-मुकुट-ताटंक गिर जाने के बाद। **चौथी बार** अंगद द्वारा पदारोपण तथा अंगद-रावण-संवाद के बाद।

चौथी बार में मंदोदरी बहुत नाराज़ हो गयी है। तब रावण के प्रति कुछ कटु-वचन भी उसके मुख से निकल जाते हैं।

आपका मूल प्रश्न यह है कि "तासु कहा नहिं मानेहि नीचा।" में **नीचा** का प्रयोग किसके लिए किया गया है? **मारीच** के लिए, या **रावण** के लिए?

कुछ टीकाकारों ने **'नीचा'** शब्द को **'मारीच'** का विशेषण माना है। गीताप्रेस गोरखपुर के संस्करण में और आचार्य सीताराम चतुर्वेदी द्वारा संपादित तथा टीकित संस्करण में **'नीचा'** शब्द को **'मारीचा'** का विशेषण मानकर ही अर्थ किया गया है।

उक्त दोनों ग्रंथों के अर्थों में मुझे दूरान्वय दोष लगता है। **'मारीचा'** प्रथम चरण में और **'नीचा'** द्वितीय चरण के अन्त में आया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपका मत है कि '**नीचा**' शब्द का प्रयोग मंदोदरी संबोधन में रावण के लिए कर रही हैं।

बन्धुवर ! मन्दोदरी रावण से सीधे प्रत्यक्ष में '**नीच**' सम्बोधन न करेगी। वह साध्वी है, पतिव्रता है, कुलीना है और शिष्टाचारिणी है। हाँ, क्रोधावेश में रावण की नीचता (नीच कर्म) के प्रति तो कह सकती है।

'**नीचा**' चरणान्त का अन्तिम पद (शब्द-रूप) है। तुलसी की छन्दः-शैली तथा भाषा-शैली में अन्तिम पद का अन्तिम ह्रस्व स्वर दीर्घ स्वर कर दिया जाता है; अर्थात् अ को आ, इ को ई और **उ** को ऊ किया जाता है।

'**समाज**' को तुलसी ने '**समाजा**' लिखा है—

सो बिलगाउ बिहाइ समाजा।
न त मारे जैहहिं सब राजा॥ (बाल० २७१/५)

उसी शैली में '**नीच**' को '**नीचा**' किया गया है। '**मानेहि**' क्रिया भूतकाल में मध्यम पुरुष एक वचन की सूचक है। इसलिए '**नीच**' को भाववाचक संज्ञा शब्द मानना चाहिए। '**ऊँच-नीच**' जैसे प्रयोगों में '**नीच**' शब्द भाववाचक संज्ञा है भी। **नीच = नीचता**।

अतः निर्दिष्ट अर्धाली का अर्थ मेरी राय में इस प्रकार हैं—

(**अर्थ**) "उनके बाण के प्रताप को मारीच तो जानता था। तूने उसका कहा भी न माना। (यह तेरी) नीचता है; अर्थात् यह तेरे विचार तथा कर्म का घटियापन है।"

इस अर्थ में मन्दोदरी के गौरव की रक्षा भी हो जाती है। रावण के प्रति मन्दोदरी से सीधे प्रत्यक्षतः नीच कहलवाना, तो मैं मन्दोदरी के चरित्र के प्रति अन्याय-सा मानता हूँ।

बन्धुवर ! उस दिन '**तुकाराम**' से सम्बद्ध आपका वह लेख सुना। नूतन सूचनाएँ प्राप्त हुईं। बधाई है ; धन्यवाद !

बन्धुवर ! अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी से प्रकाशित '**सूरग्रंथावली**' (चतुर्थ खंड) के ३२३३वें पद में एक पंक्ति इस प्रकार मुद्रित है—

आँसू सलिल सबै भइ काया, पल न जात रस टारे। (पृ० १७४२)

उपर्युक्त पंक्ति में '**रस टारे**' का अर्थ कुछ गोल-मोल-सा है। वास्तव में पाठ '**रिस**' होना चाहिए था। **रिसना** = टपकना।

आशा है, आप सपरिवार सानंद होंगे।

डा० गोवर्धननाथ शुक्ल, आपका
शुक्ल-सदन, खाईढोरा, अलीगढ़। अम्बाप्रसाद '**सुमन**'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री हरप्रसाद 'भैयाजी' के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़

प्रिय बन्धु भैया जी, दिनांक ३०. १२. ७८ ई०

उस दिन की बातों से मेरे मानस-पटल पर आपकी जो भव्य आकृति बनी हुई थी, वह कुछ हिलने-सी लगी।

तब मन विचारने लगा कि उस दिन के भैयाजी क्या वही भैयाजी हैं, जो मेरे सतीर्थ हैं और जो मेरे गुरु-भाई हैं ? क्या **मेरे** और मित्र **हरप्रसाद** के एक ही गुरु थे, जिनका शुभ नाम पं० गोकुलचन्द्र जी शर्मा था ? क्या यह वे ही हरप्रसाद भैयाजी हैं; जिन्हें दर्शक और मनोविज्ञान का प्रवक्ता कहा जाता है ? **मैया** शब्द के बाद यदि किसी में मधुरता और आकर्षण है तो **भैया** शब्द में ही है। वह मिठास, वह मधुरता और आकर्षण आज ह्रास की ओर क्यों है ?

दर्शन शब्द में दृश् धातु है, जिसका अर्थ 'देखना' है। दृश् + ल्युट् = दर्शन। जिससे देखा जाता है, वह **दर्शन** है। दर्शन का अध्येता दर्शन के द्वारा उन दिव्य चक्षुओं को प्राप्त कर लेता है, जिनसे परम दिव्यचेतनतत्त्व के दर्शन हो जाते हैं।

दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्। (गीता० ११/८)

जिस **दर्शन** से परम आत्मा के दर्शन प्राप्त हैं, उस दर्शन के ज्ञाता दार्शनिक **भैया जी** उस दिन सत् और असत् के पहचानने में बहकी-बहकी-सी बातें करने लगे और सतीर्थ तथा अपने गुरु-भाई से भी विचित्र शब्दावली का प्रयोग करने लगे। मूल विषय से हटाने के लिए मेरे भैया जी महर्षि दयानन्द के द्वारा की हुई **'अश्वमेध'** की व्याख्या को दुहराने लगे। क्या उस क्षण आपका मन उस महर्षि की महावाणी को समझने की सामर्थ्य रख रहा था ?

मित्रवर भैया जी ! ऋषि के **दर्शन** को समझने के लिए, महर्षि दयानन्द के 'अश्वमेध' के सार को जानने के लिए तथा सत् को देखने के लिए जिस दिव्य दृष्टि की अपेक्षा है, वह आपको पूर्व जन्मों के सफल स्वरूप मिली तो थी, किन्तु मुझे उस दिन ऐसा लगा कि क्रियमाण कर्म ने संचित और प्रारब्ध को धोने का उपक्रम किया हो। मेरे मन और आत्मा को क्लेश हुआ था, उस दिन। उस क्लेश को कम करने के लिए ही यह पत्र लिखा जा रहा है।

परमपिता परमात्मा से यही प्रार्थना है कि मेरे मानस-पटल पर आपका पूर्ववत् सरसभव्य चित्र फिर से बने ! आप जैसा दर्शनाख्याता **दर्शन** शब्द की दृश् धातु का वास्तविक अर्थ समझे, और उस अर्थ को आत्मा में भी उतारे। मेरा भी चतुर्थ चरण है और आपका भी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या आपने अपने परम प्रिय कवि **प्रसाद** की '**कामायनी**' के सन्देश को अपनी आत्मा में उतारा है ? 'कामायनी' में श्रद्धा की इड़ा पर विजय घोषित है। **श्रद्धा हृदय** का प्रतीक है। **हृदय** अर्थात् **स्नेह, प्रेम, श्रद्धा** आदि भावों की समष्टि का स्थल।

अधिक क्या निवेदन करूँ ? यदि आप मेरे गुरु-भाई न होते, तो मैं ऐसा पत्र न लिखता। क्षमा !

आप जैसे दार्शनिक बन्धु को पत्र लिखते समय मुझे छान्दोग्य उपनिषद् के ऋषि आरुणि का वह वाक्य स्मरण हो आया है, जब उन्होंने अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहा था, बरगुदे के बीज को दिखाते समय—

स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो !— (छान्दोग्य उप० ६/१५/३)

भैया जी ! इस नाम-रूपात्मक जगत् में **रूप** तो ईश्वर-प्रदत्त है, लेकिन **नाम** समाज-प्रदत्त है। **हरप्रसाद** नाम भले ही किसी पंडित ने रखा हो, लेकिन '**भैया जी**' नाम निश्चित रूप से समाज के कुछ सुविज्ञ प्राणियों ने आप में कुछ गुण देखकर ही आपको दिया होगा। नाम और बाने की लाज सभी रखते हैं।

'**भैया जी**' में जो मिठास और प्रभाव है, उसे **नमस्ते** के उत्तर में '**नमस्ते**' कहकर; और फिर **नमस्ते** के उत्तर में "**नमस्ते भैया जी**" कहकर देख लीजिए। '**भैया जी**' शब्द लग जाने पर प्रभाव सौगुना बढ़ जाता है।

मैया और **भैया** जैसे शब्द ब्रजभाषा के परम प्रिय एवं मधुर शब्द हैं। संस्कृत के **मातृ** और **भ्रातृ** शब्दों में वह मिठास नहीं, जो ब्रजभाषा के **मैया** और **भैया** शब्दों में है।

सूरदास ने मधुर-सरस ब्रजभाषा में **मैया** और **भैया** का प्रयोग किया है।

सं० **भ्रातृ आर्य**>हिं० **भाई जी**; ब्रजभाषा में **भैया जी**। 'भाई जी' से अधिक मिठास है, '**भैया जी**' में।

सूरकाव्य में तो '**माई**' और '**मैया**' में भी अर्थ-भेद मिलता है। **माई**= **सखी**। **मैया**=**माता, जननी**।

देखौ माई ! दधिसुत मैं दधिजात। (सूरसागर, १०/१७२)

मीराँबाई ने भी '**माई**' शब्द का प्रयोग **सखी** के अर्थ में किया है—

माई री मैंनैं गोबिंद लीन्हौं मोल। (मीराँबाई)

अलीगढ़ नगर की अधिसंख्यक जनता आपको '**भैया जी**' के नाम से ही अधिक जानती-मानती है। क्या मैं आशा रखूँ कि आप अपने नाम की सच्चे भाव से रक्षा करेंगे ? '**हरप्रसाद**' का पूर्वांश भी **शिव** का पर्याय है। **शिव** कल्याणमय हैं। '**शिव**' शब्द का अर्थ भी '**कल्याण**' या '**शुभ**' है। नैषधकार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री हर्ष से लिखा है—'वर्त्मनि वर्ततां शिवम्'। 'शिव' भावना से ही मैं इस पत्र को सम्पन्न कर रहा हूँ।

आशा है आप सपरिवार सानंद होंगे। बच्चों को आशीर्वाद। 'सर्वे भद्राणि पश्यन्तु।' सस्नेह,

श्री हरप्रसाद भैयाजी, एम० ए० आपका भाई

मैरिस रोड, अलीगढ़ अम्बाप्रसाद 'सुमन'

श्री श्यामसुन्दर शर्मा के नाम

८/७, हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१

प्रिय शर्मा जी, दिनांक ३१. १२. ७८ ई०

सप्रेम नमस्कार !

आपने **भाषा** और **बोली** की अवधारणा के संबंध में जो जिज्ञासात्मक प्रश्न उठाया है, वह वास्तव में महत्त्वपूर्ण है।

भाषा अपनी संस्कृति, शब्द-संपदा तथा व्याकरणिक विराट्‌रूपता के दृष्टि-कोण से बोली को अपने में समाविष्ट किये हुए होती है। इस सैद्धान्तिक निकष पर आपके प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि हिन्दी एक भाषा है और **राजस्थानी** एक बोली है। सर्वनाम, क्रिया, अव्यय, विशेषण आदि के व्याकरणिक रूपों की दृष्टि से विचार किया जाए तो **हिन्दी भाषा** की एक बोली जैसे **ब्रजभाषा** है, ठीक उसी तरह से एक दूसरी बोली **राजस्थानी** है। बोलियों का उत्कर्ष **भाषा** को भी उत्कर्ष प्रदान करता है।

स्व० डा० कन्हैयालाल सहल मेरे साहित्यिक मित्रों में से थे। उनसे मेरा पर्याप्त पत्र-व्यवहार रहता था। एक बार **राजस्थानी** और **ब्रजभाषा** के सम्बन्ध में उनसे मेरा पत्र-व्यवहार एक अव्यय शब्द '**मति**' के ऊपर चला था। **मति** शब्द राजस्थानी और ब्रजभाषा में समान अर्थों में प्रचलित है—[१] **राजस्थानी** में **मति**=नहीं, **मति**=शायद। [१] **ब्रजभाषा** में **मति**=नहीं, **मति**=शायद। **"मति आवतु होइ मेरौ बिरन हजारी"**—(एक ब्रज-लोक-गीत)।

इतना ही नहीं, **राजस्थानी** में अन्य पुरुषीय स्त्रीलिंग तथा पुंल्लिंग एक वचन की भूतकालीन क्रिया के रूप वे ही होते हैं, जो **हिन्दी भाषा** और **ब्रजी** में होते हैं। उदाहरण—

राजस्थानी बोली (मारवाड़ी)	ब्रजी बोली	हिन्दी भाषा
(१) छोरी चली	(१) छोरी चली	(१) लड़की चली
(२) वो चल्यो	(२) बो चल्यो (चल्यौ)	(२) वह चला।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस प्रकार हिन्दी भाषा में लड़की शब्द का ऋजु बहुवचन रूप 'लड़कियाँ' बनता है,—आँ प्रत्यय के योग से; ठीक उसी प्रकार राजस्थानी बोली में भी छोरी का ऋजु बहुवचन रूप छोर्याँ होता है,—आँ प्रत्यय के योग से। राजस्थानी पोथ्याँ = हिन्दी पोथियाँ।

पुंल्लिग तथा स्त्रीलिंग एक वचनीय विशेषणों में तो राजस्थानी ब्रजभाषा के साथ गलबाँही देकर चलती है।

राजस्थानी बोली (मारवाड़ी)	ब्रजी बोली	हिन्दी बोली
(१) भलो छोरो	(१) भलौ छोरौ	(१) भला लड़का
(२) भली छोरी	(२) भली छोरी	(२) भली लड़की।

अतः हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि राजस्थानी, ब्रजी, खड़ी, अवधी आदि बोलियाँ हैं, और हिन्दी एक भाषा है। सम्बन्ध कारकीय परसर्गों में राजस्थानी रो, री, रा रखती है और हिन्दी का, की, के रखती है। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। वे लम्बी यात्राएँ कर चुकी हैं।

मुझे इस पत्र की पंक्तियाँ लिखते समय आपके बाबा पं० झाबरमल्ल जी शर्मा की हिन्दी-सेवाओं का स्मरण हो आया। पूज्य पंडितजी राजस्थान के भीष्म पितामह के रूप में हैं। उनकी साहित्य-समाज-सेवाएँ पत्रकार तथा संपादक के रूप में तो अभिनन्दनीय हैं ही; साथ में परम श्लाघनीय यह है कि पंडित जी (पं० झाबरमल्ल शर्मा) ने **'माधवप्रसाद मिश्र निबन्धावली'** तथा **'गुलेरी गरिमा-ग्रंथ'** के माध्यम से पं० माधवप्रसाद मिश्र एवं श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी को भी अमर बना दिया है।

राष्ट्रीय चेतना की चिनगारी को ज्वाला में परिवर्तित करनेवाले हिन्दी-संपादकों में आपके बाबा जू का नाम श्रद्धा से सदैव स्मरण किया जाता रहेगा। सन् १९४७ ई० में स्वतन्त्रता-दिवस के उपलक्ष्य में पंडितजी ने जो एक पत्र पं० जवाहरलाल जी नेहरू को लिखा था, वह **'बधाई-निवेदन'** के साथ-साथ राष्ट्रीय चेतना के लिए स्फुलिंग भी है **" 'त्याग' त्याग भोगी हुए बन व्यसनों के दास"**—जैसी शब्दावली पं० नेहरू को श्री झाबरमल्ल शर्मा जैसा निर्भीक व्यक्तित्व ही लिख सकता है। यह है एक सच्चे साहित्यकार की निर्भीकता, राष्ट्रीयता और स्वाभिमान-मंडित-साहित्यिकता।

प्रभु से प्रार्थना है कि पंडित जी (आपके बाबा पं० झाबरमल्ल जी शर्मा) नीरोग रहते हुए ऋषियों की आयु प्राप्त करें! **"जीवेम शरदः शतम्।"**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर्ष है आप सपरिवार सानंद हैं। प्रियवर रमेशप्रसाद शर्मा से आपका कुशल-क्षेम मिलता रहता है। बच्चों को आशीर्वाद ! सस्नेह,

श्री श्यामसुन्दर शर्मा, आपका
गली नं० ४, बलबीर नगर, अम्बाप्रसाद 'सुमन'
शाहदरा, दिल्ली-११००३२

प्रो० बैजनाथ तिवारी एवं प्रो० देवेन्द्र शर्मा के नाम

८/७, हरिगर, अलीगढ़–२०२००१
दिनांक ३१. १२. १६७८ ई०

बन्धुवर डा० तिवारी जी एवं डा० शर्मा जी,
सप्रेम नमस्कार।

आपने **पारिभाषिक शब्दावली** के सम्बन्ध में बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया है। ऐसे प्रश्न आपकी उस पंच-दिवसीय-हिन्दी-माध्यम-प्रशिक्षण-संगोष्ठी में भी उठे थे, जिसका आयोजन आपके विश्वविद्यालय ने हिन्दी-ग्रन्थ-अकादमी, मध्यप्रदेश के सहयोग से फरवरी, सन् १६७१ ई० में किया था। आप दोनों विद्वान् तो उस संगोष्ठी में प्रतिदिन रुचि से भाग लेते ही थे, और मेरे वक्तव्यों को सुनते ही थे।

हमने कृषि-शब्दावली का हिन्दी-रूपान्तर करने में यथा-संभव सूक्ष्म-भेदक-रेखाओं का भी ध्यान रखा है। अंग० Belly के लिए हिं० **पेट**, और अंग० Abdomen के लिए हिं० **उदर** शब्द अनुवाद में प्रस्तुत किये गये हैं। अंग्रेजी शब्द के आदि में यदि उपसर्ग है, तो हमने उस उपसर्ग के समानान्तर हिन्दी उपसर्ग प्रस्तुत करते हुए हिन्दी शब्द बनाया है; जैसे—अंग० Abration – हिं० **अपघर्षण**। अंग० Ab = अप। अंग० Ration = घर्षण।

कृषि-शब्दावली में अनेक नाम विश्वव्यापी हैं, जो वनिस्पतिशास्त्रीय हैं, जैसे—**अकेशिया अरेबिका** (Acacia arabica)—इसके लिए हमने हिन्दी-रूपान्तर में दुहरी नीति अपनायी है। प्रथमतः हमने नागरी लिपि में **अकेशिया अरेबिका** ही लिखा है, फिर कोष्ठक में **बबूल, कीकर** भी लिख दिया गया है; ताकि कृषिशास्त्र के विद्यार्थी तथा पाठक को शब्दार्थ की स्पष्ट अवधारणा प्राप्त हो सके।

राष्ट्रपति ने अप्रैल १६६० ई० के आदेशानुसार शिक्षा-मंत्रालय द्वारा **सन् १६६१ ई० में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली** के लिए स्थायी आयोग **की**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थापना हुई थी। उस आयोग के नियमों तथा सिद्धान्तों के अनुसार प्रादेशिक भाषाओं के उपयुक्त शब्दों को अपनाया गया। बुनियादी तथा अन्तरराष्ट्रीय शब्दों का अनुवाद नहीं किया गया, केवल नागरी में लिप्यन्तरण कर दिया गया है।

मैं प्रारम्भ से ही आयोग की सेवा करता रहा हूँ। सन् १९६६ तक की आयोग की विशेषज्ञ परामर्शदात्री समितियों की १५ बैठकों में कृषि-शब्दावली के ६५० शब्दों को अन्तिम रूप दिया जा चुका था। वहाँ के पुस्तकालय में वे प्रकाशित रूप में मौजूद हैं। कृपया आप मँगवा लें।

हिन्दी में दो शब्द हैं—(१) **त्रुटि** (२) **कमी**। **त्रुटि** शब्द के अर्थ-क्षेत्र में बुद्धि का राज्य है। **कमी** के अर्थ-क्षेत्र में वस्तु की मात्रा या संख्या की न्यूनता है। इसलिए Error का अनुवाद '**त्रुटि**' और Searcity का अनुवाद '**कमी**' किया गया है।

किसी विशिष्टि अंग्रेज़ी शब्द के समानान्तर अर्थ-बोध की दृष्टि से संस्कृत शब्द, हिन्दी सरल शब्द और ज्यों का त्यों अंग्रेज़ी शब्द भी रख दिया गया है; जैसे—Acid के लिए हिन्दी में **अम्ल**, **तेज़ाब**, **एसिड**—तीनों ही शब्द लिखे गये हैं।

कुछ अंग्रेज़ी-हिमायतियों का यह कहना है कि **थर्मामीटर** को सब समझते हैं, अनूदित '**तापमापक यन्त्र**' को कोई नहीं समझता।

इसके उत्तर में मेरा निवेदन है कि '**थर्मामीटर**' शब्द के बहुप्रयोग से हिन्दी-भाषी जनता उसे (उस वस्तु को) समझ गयी है। जनता वास्तव में '**थर्मामीटर**' शब्द का अर्थ नहीं जानती। कोई भी सामान्य व्यक्ति यह नहीं बता सकता कि **थर्मामीटर** (Thermometer) शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है? इसमें आये हुए पूर्वांशी Thermo और उत्तरांशी meter शब्द का क्या अर्थ है?

जब अंग्रेजी शब्द Thermometer का अर्थ जनता नहीं जानती और प्रयोग से उस वस्तु को जान गयी है, तब प्रयोग से कुछ दिनों में हिन्दी के '**तापमापक यन्त्र**' को भी समझ जाएगी। भाषा के शब्दों का अर्थ-बोध प्रयोग पर निर्भर है।

बन्धुवर तिवारी जी! आपके संचालन में वह **संगोष्ठी** बहुत सफल रही। पाँच दिन तक सभी प्राध्यापकों ने बड़ी रुचि से भाग लिया था। कृषि-विश्वविद्यालयों की ऐसी सफल संगोष्ठी मैंने प्रथम बार ही देखी थी। मेरे भाषणों के उपरान्त आप विद्वानों के द्वारा जो शंकाएँ एवं समस्याएँ प्रस्तुत की जाती थीं, उनके लिए मुझे भी पूर्वाध्ययन के साथ जाना पड़ता था और जागरूक रहना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ता था। परम प्रसन्नता यह है कि आपके विश्वविद्यालय में हिन्दी के माध्यम से शिक्षण-कार्य आरम्भ हो गया है। यह शुभ लक्षण है।

डा० देवेन्द्र शर्मा से मेरा प्रत्यक्ष परिचय केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, दिल्ली में हुआ था। अलीगढ़ उनका निवास-स्थान है, अतः मेरा और भी नैकट्य स्थापित हो गया। उनके स्नेह से आपसे भी स्नेह-सम्बन्ध जुड़ा। परम हर्ष है। स्नेह के लिए आभारी हूँ।

प्रिय बन्धु डा० शर्मा जी! आपके परिवार के कवितामय साहित्यिक स्वरूप से मुझे जबलपुर के वे पाँच दिन परम आनन्ददायी सिद्ध हुए। तिवारी जी तथा उनकी मित्र-मंडली के साथ नौका-विहार तो कभी भुलाया ही नहीं जा सकता।

तब नर्मदा सरिता के दर्शन करते समय मुझे स्मरण हो आया था कि वह वही पवित्र देवनदी है, जिसमें परम शैव रावण और सहस्रार्जुन स्नान करने जाया करते थे। नर्मदा महिमा में दूसरी गंगा है।

उस संगोष्ठी के ग्रुप-फोटो में आप लोगों के दर्शन कर लिया करता हूँ।

हर्ष है आप दोनों बन्धु सपरिवार सानंद हैं। सस्नेह।

प्रो० बैजनाथ तिवारी, आपका

एवं अम्बाप्रसाद 'सुमन'

प्रो० देवेन्द्र शर्मा,

जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म० प्र०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
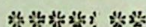
परिशिष्ट

(देश-विदेश के विद्वानों से प्राप्त पत्र)

विद्वानों से प्राप्त पत्रों के संग्रह में मेरे पास एक पत्र बाबू श्यामसुन्दरदास जी (काशी) और एक श्री अयोध्यासिंह जी उपाध्याय 'हरिऔध' (आजमगढ़) का भी था। मुझे बहुत अफ़सोस है कि वे दोनों पत्र मुझ से कहाँ और कैसे खो गये ?

—'सुमन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) संपादक श्री हरिशंकर जी शर्मा का पत्र

हरिशङ्कर शर्मा ॐ लोहा मंडी, आगरा

दिनांक १४. ११. ४१

प्रिय श्री सुमन जी,

आपकी 'कृति' पर अपनी सम्मति भेज रहा हूँ—

"श्रीयुत **सुमन शेखूपुरी**[1] जी की अप्रकाशित पुस्तक **'मेरे उद्गार'** की कुछ कविताएँ मैंने देखीं। कई कविताएँ तो बड़ी सुन्दर प्रतीत हुईं। उनमें प्रगतिवाद का सम्यक् परिपाक किया गया है। कला और उपयोगिता का पूर्ण ध्यान रखा है। कितनी ही जगह तो मानवीय जीवन का स्वाभाविक और हृदय-स्पर्शी चित्रण है। ऐसी सुन्दर रचना के लिए सुमन जी हार्दिक बधाई के पात्र हैं।"

आशा है आप स्वस्थ और प्रसन्न होंगे।

श्री अम्बाप्रसाद 'सुमन', आपका

संपादक 'शिक्षा-सुधा', (मासिक) (ह०) **हरिशंकर शर्मा**

मंडी धनौरा, (मुरादाबाद)

(२) डा० नगेन्द्र जी का पत्र

नई दिल्ली

प्रियवर, ६. ६. ५१

अभीष्ट सम्मति[2] भेज रहा हूँ।

'**प्रो० अम्बाप्रसाद 'सुमन'** उन कृती अध्यापकों में से हैं, **जिनके लिए साहित्य का अध्ययन यांत्रिक कर्म न होकर आत्माभिव्यक्ति की एक जीवंत प्रक्रिया है।** उन्होंने अपने अध्ययन-अध्यापन को लेखन के साथ सम्बद्ध कर उसे सर्जनात्मक रूप प्रदान किया है। उनका अध्ययन विस्तृत और ग्रहणशील है। उसमें विवेक और सुरुचि का मणिकांचन योग है। उस अध्ययन के प्रसाद-रूप ये ग्रंथ निश्चय ही अत्यंत उपादेय हैं। इनमें सरल शब्दों में

---

१ 'मेरे उद्गार' डा० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन' की मुक्तक कविताओं का एक संग्रह है, जिसकी कुछ कविताएँ तत्कालीन हिन्दी-पत्रों में प्रकाशित हुई थीं। यह संग्रह अभी अप्रकाशित हैं। निकटतम भविष्य में इसके प्रकाशित कराने की योजना बन गयी है। अब यह संग्रह 'अंतर्धारा' के नाम से प्रकाशित किया जाएगा। —(संपादक)

२ यह सम्मति डा० नगेन्द्र जी ने श्री अम्बाप्रसाद जी 'सुमन' की पुस्तक 'साहित्य-दिग्दर्शन' पर लिखकर भेजी थी। —(सम्पादक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षार्थियों की आवश्यकता की दृष्टि से अनेक उपयोगी विषयों का स्वच्छ विवेचन किया गया है; और मुझे आशा है कि वे इनसे उचित लाभ उठा सकेंगे।"

आशा है आप प्रसन्न हैं।

प्रो० अम्बाप्रसाद 'सुमन', भवदीय,
२४०, पक्की सराय, अलीगढ़ (उ० प्र०) (ह०) नगेन्द्र

(३) प्रो० नगेन्द्र जी का पत्र

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रियवर, ६. ३. ५६

आपका पत्र दिनांक ५—३—५६ मिला। **'साहित्य कोश'**[1] में शब्दार्थ से काम नहीं चलेगा; उसके लिए परिभाषाएँ और टिप्पणियाँ अनिवार्य हैं। हमारे कोश की भी प्रणाली वही रहेगी, जो कि ज्ञानमंडल के 'साहित्यकोश' की है। कृपया निश्चित अवधि के भीतर अपना कार्य समाप्त कर मुझे इस दायित्व से मुक्त होने में सहायता दीजिए।

आशा है आप प्रसन्न हैं।

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन', शुभैषी
काव्यकुटीर, कृष्णापुरी, अलीगढ़ (उ० प्र०) (ह०) नगेन्द्र

(४) प्रो० नगेन्द्र जी का पत्र

डा० नगेन्द्र, **दिल्ली विश्वविद्यालय**
आचार्य, हिन्दी विभाग, **१६, कैलवरी लाइन्स, दिल्ली-११०००७**
दूरभाष : २२६३४४
दिनांक : १३-२-७६

प्रियवर,

आपने अपने पत्र में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया है। इस विषय में काफ़ी समय से आवाज़ उठ रही है कि विश्वविद्यालयों में विभिन्न उपाधियों के लिए—विशेषकर स्नातकोत्तर उपाधि के लिए—हिन्दी के पाठ्यक्रम पर पुनर्विचार होना चाहिए। बात काफ़ी संगत है, और इस पर अनेक क्षेत्रों में अनेक प्रकार से विचार हो रहा है। इसके मूल में मुख्य तर्क यह है कि पिछले तीन-

---

१ यह कोश डा० नगेन्द्र जी के संपादन में तैयार किया गया था। इसमें डा० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन' ने शब्द-शक्तियों और अलंकारों से सम्बद्ध काव्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों के अर्थ प्रस्तुत किये हैं। —(संपादक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार दशकों में हमारे साहित्यिक परिवेश में बड़ा परिवर्तन हो गया है, जबकि हमारे पाठ्यक्रम प्रायः पूर्ववत् ही चल रहे हैं। प्रस्तुत संदर्भ में मैं कई अवसरों पर अपने विचार मौखिक रूप से व्यक्त कर चुका हूँ, जिनको इस पत्र में लिपिबद्ध करना सम्भव नहीं है। यहाँ मैं कुछ मौलिक तथ्यों का ही संकेत कर रहा हूँ।

सबसे पहले तो हमें साहित्यिक एवं राजनीतिक आन्दोलनों के प्रचार-प्रभाव से मुक्त होकर वास्तविक आवश्यकताओं को रेखांकित कर लेना चाहिए। फिर इस सत्य को ध्यान में रखना चाहिए कि यद्यपि **'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्'** अर्थात् जो प्राचीन या परम्परागत है, वह सभी श्रेष्ठ नहीं है; किन्तु **'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्**—यानी जो कुछ प्राचीन या परम्परागत हैं, वह सभी अकाम्य भी नहीं है।

प्रत्येक साहित्य में अनेक कालजयी कृतियाँ रहती हैं, जिनका गौरव समय-सिद्ध एवं अक्षुण्ण होता है। अतः उस साहित्य का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने के लिए ऐसी कृतियों का अध्ययन-अध्यापन अनिवार्य है। साहित्य के अध्येता के लिए विशेषकर साहित्य के ऐसे विद्यार्थी के लिए, जो उच्चतम उपाधि के लिए प्रत्याशी है, उस साहित्य विशेष के सर्वश्रेष्ठ कवि-कलाकारों के उत्तमांश का अध्ययन निश्चय ही अनिवार्य है। यह तर्क देकर कि वे आरम्भ से ही पाठ्यक्रम में चले आ रहे हैं. अथवा वे वर्तमान पीढ़ी की अभिरुचि और संस्कारों से मेल नहीं खाते—उनका बहिष्कार करना ग़लत होगा।

नये साहित्य का अन्तर्भाव भी आवश्यक है, परन्तु उसका चयन शैक्षिक दृष्टि से ही करना चाहिए; राजनीतिक-साहित्यिक मतवाद की प्रेरणा से अथवा आधुनिकता के जोश में आकर नहीं। शैक्षिक दृष्टि से मेरा अभिप्राय यह है कि किसी कृतिकार या कृति को पाठ्यक्रम का अंग बनाने से पहले दो बातों के प्रति आश्वस्त हो जाना चाहिए। (१) वह कृतिकार और कृतिविशेष साहित्य में स्थापित हो चुके हैं और (२) उसके अध्यापन के लिए अभीष्ट साधन उपलब्ध हैं, या उपलब्ध हो रहे हैं।

इस संदर्भ में और भी कहा या लिखा जा सकता हैं; लेकिन मैंने यहाँ कुछ मूल सूत्रों का उल्लेख कर दिया है।

आशा है आप प्रसन्न हैं।

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन',
८/७ हरिनगर, अलीगढ़-२०२००१

शुभैषी
(ह०) नगेन्द्र

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) प्रो० वासुदेवशरण जी अग्रवाल का पत्र

काशी विश्वविद्यालय
२५-४-५४

प्रिय श्री अम्बाप्रसाद,

२१-४-४५ के पत्र से 'नैनुआं'[1] शब्द का परिचय पा कर प्रसन्नता हुई। जनपदीय साहित्य के महान् भण्डार में इसी प्रकार पूर्व से पश्चिम तक शब्द भरे हुए मिलेंगे। मैंने श्री डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित **'पदमावत'** देखा है। यह पाठों की दृष्टि से बहुत उत्कृष्ट है। हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद से १२) में मिलेगा। अवश्य मँगा लें।

श्री अम्बाप्रसाद 'सुमन', शुभेच्छु
काव्य-कुटीर, कृष्णापुरी, अलीगढ़ (उ०प्र०) (ह०) वासुदेवशरण

(६) प्रो० वासुदेवशरण जी अग्रवाल का पत्र[2]

काशी विश्वविद्यालय,
१६।११।५४

प्रिय श्री अम्बाप्रसाद,

(१) ८।११।५४ का पत्र मिला। 'गात्रिकाग्रन्थि' **'हर्षचरित'** पुस्तक में १५ वें पृष्ठ पर है। अनुक्रमणी में वह शब्द दिया है।

(१) 'अँतरौटा' मथुरा की ओर चालू शब्द है।

·ᘮ· यह बीच का लटकता भाग **'अँतरौटा'** कहलाता है। यह सूचना मुझे श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी से मिली थी।

(३) **'चनिया'** शब्द 'पेटीकोट' जैसे भीतर पहने जानेवाले छोटे घाँघरे के

---

१ डा० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन' के पी-एच० डी०–शोध-प्रबन्ध के निर्देशक डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल (काशी विश्वविद्यालय) थे। उसी निर्देशन से सम्बद्ध विषयों को दृष्टि-पथ में रखते हुए यह पत्र डा० अग्रवाल जी ने डा० सुमन जी को लिखा था। डा० अग्रवाल जी के अन्य पत्र भी प्रायः शोध के सम्बन्ध में ही लिखे गये हैं। उन दिनों डा० अग्रवाल जी 'पदमावत' पर भाष्य भी लिख रहे थे, जो बाद में साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी) से प्रकाशित हुआ। उस समय श्री मैथिलीशरण जी गुप्त जीवित थे। साहित्य-सदन, श्री गुप्त जी की प्रकाशन-सस्था है। —(संपादक)

२ उपर्युक्त पत्र डा० अग्रवाल जी ने श्री सुमन जी को उन दिनों लिखा था, जब सुमन जी उनके निर्देशन में काशी विश्वविद्यालय में अपनी पी-एच० डी० उपाधि के लिए शोध-प्रबन्ध लिख रहे थे। पत्र अलीगढ़ को काशी से लिखा गया था। —(संपादक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए है; सं० चलनिका। जैन-साहित्य में भी यह शब्द आता है (बृहत्कल्प-सूत्र भाष्य)।

(४) 'चौखंडी' चित्रावली १५४/५, २३४/३ में देखिए।

(५) फ़ारसी में स्टाइनगास (Steingass) कृत Persian English Dictionary प्रामाणिक है।

'पदमावत-भाष्य' छप रहा है।

श्री अम्बाप्रसाद 'सुमन', शुभेच्छु
काव्य-कुटीर, कृष्णापुरी, अलीगढ़ (ह०) वासुदेवशरण

(७) प्रो० वासुदेवशरण जी अग्रवाल का पत्र[1]

काशी विश्वविद्यालय
३. ५. ५६

प्रिय श्री सुमन जी,

१–५–५६ का पत्र मिला। दिल्ली में केन्द्रीय सरकार के कार्यालय हिन्दी-सेवी के लिए छलावे हैं। वहाँ साहित्यिकों की समाधि है। उन की कल्पना सच्चे विद्यानुरागी को मन में न लानी चाहिए। व्यक्ति के स्वबिन्दु को—मानव की व्यक्ति-गरिमा को—दिल्ली खा लेती है। वह भयावह स्थान है। विश्वविद्यालय की शीतल छाया में पूरी रुचि से हिन्दी-सेवा करना ही तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिए। मैं तुम्हारे ब्राह्म सरोवर के अमरत्व की मंगल-कामना करता हूँ।

श्री अम्बाप्रसाद 'सुमन', शुभेच्छु
काव्यकुटीर, कृष्णापुरी, अलीगढ़ (उ० प्र०) (ह०) वासुदेवशरण

(८) महापंडित राहुल सांकृत्यायन जी का पत्र

राहुल–प्रकाशन,
हैपीवेली, मसूरी।
ता० २१. ४. ५५ ई०

प्रिय सुमन जी,

कृपया डाक्टर उदयनारायण तिवारी (अलोपी बाग, इलाहाबाद) के पास

---

१ सन् १९५६ ई० में डा० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन' को केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, दिल्ली में एक स्थान मिला था। वहाँ जाने, न जाने के सम्बन्ध में डा० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन' ने डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल से उनकी निजी राय माँगी थी। डा० अग्रवाल जी का यह पत्र उस राय से सम्बद्ध है। —(सम्पादक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी बात की सूचना भेज दें। मैं भी उन्हें लिखूँगा।[1]

प्रो० अम्बाप्रसाद 'सुमन',
काव्य-कुटीर, कृष्णापुरी,
अलीगढ़ (उ० प्र०)

(ह०) राहुल
(राहुल सांकृत्यायन)

(६) डा० उदयनारायण जी तिवारी का पत्र

अलोपी बाग, दारागंज,
इलाहाबाद-६
१६. १. ५७.

प्रियवर सुमन जी,

आपका कार्ड मिला. आप डाक्टर हो गए; इस समाचार से अत्यधिक प्रसन्नता हुई. कृपया मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें. पिछली बार पूज्य राहुल जी मिले थे. गत २७ वर्षों से उनसे मेरा घनिष्ठ सम्पर्क है और एक प्रकार से वे मेरे परिवार के सदस्य हैं. **वे आपकी थीसिस को प्रशंसा कर रहे थे. निश्चित रूप से उसे पूर्ण करने में आपने घोर परिश्रम किया होगा.** ब्रजसाहित्य मंडल[2] के हाथरस अधिवेशन के अवसर पर इस विषय में हम लोगों में बातें हुई थीं. आपने अपने परिश्रम से उसे साकार रूप दिया. ब्रजभाषा में अभी प्रभूत सामग्री है और इसमें अभी तक जो कार्य हुआ है, वह नहीं के बराबर है. आपने डी० लिट्० के लिए जो विषय लिख भेजा है, वह अच्छा रहेगा. कृपया इस कार्य में थोड़ा विश्राम लेकर अभी से डट जाइए. रिचर्स का कार्य एक-दो दिन का नहीं है. इसमें तो जीवन खपाना पड़ता है.

---

१ यह उपर्युक्त पत्र उस पत्र के उत्तर में हैं, जो डा० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन' ने महापंडित राहुल सांकृत्यायन जी को हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (लोक साहित्य खंड), नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के लेखन-संपादन के सम्बन्ध में लिखा था। —(संपादक)

२ ब्रजसाहित्य मंडल, मथुरा का अधिवेशन हाथरस (अलीगढ़) में हुआ था, जिसका सभापतित्व तत्कालीन राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी ने किया था। उस अधिवेशन में सर्वश्री डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, डा० बनारसीदास चतुर्वेदी, पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी, डा० नगेन्द्र, पं० गोकुलचन्द्र शर्मा आदि अनेक मूर्धन्य विद्वान् पधारे थे। उसी में डा० उदयनारायण तिवारी भी पधारे थे। डा० उदयनारायण तिवारी से सुमन जी का वार्तालाप शोध-क्षेत्र तथा शोध-विषय पर हुआ था। पत्र में उसी का संकेत है। —(संपादक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशा है आप सपरिवार सानंद हैं. मैं बनारस एक ही दिन रह सका था. अत एव आपके प्रश्नों का उत्तर बाद में दे सकूँगा.

डा० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन', आपका

एम० ए०, पी-एच० डी० (ह०) उदयनारायण तिवारी

काव्य-कुटीर, कृष्णापुरी, अलीगढ़

(१०) प्रो० धीरेन्द्र जी वर्मा का पत्र

प्रयाग

२-८-५८

प्रिय सुमन जी,

इसी प्रकार का आपका एक पत्र **डा० सक्सेना** ने भी मुझे दिखाया था। आशा है, उन्होंने उत्तर दे दिया होगा। मैंने अपना मत उन्हें बता दिया था।[1]

शेष नमस्कार ! भवदीय

(ह०) **धीरेन्द्र वर्मा**

P. S.

हम लोगों के वर्ग का आपस में जवाबी पोस्ट कार्ड भेजना मेरी समझ में बहुत उचित नहीं है। मुझे स्मरण नहीं कि मैंने आपके किसी पत्र का उत्तर नहीं दिया है।

अलीगढ़ के **श्री लक्ष्मीनारायण शर्मा** मेरी एम० ए० (हिन्दी) कक्षा के विद्यार्थी रहे थे। वह ब्रजभाषा खूब अच्छी तरह सहज रूप में बोल लेते थे। ब्रजभाषा उनकी मातृभाषा थी। उन्हें मेरा आशीर्वाद कहिए।

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन', (ह०) धीरेन्द्र

एम० ए०, पी-एच० डी० (धीरेन्द्र वर्मा)

काव्य-कुटीर, कृष्णापुरी, अलीगढ़

(११) आचार्य किशोरीदास जी वाजपेयी का पत्र

कनखल

७-१०-५८

प्रिय सुमन जी,

आपने 'तुलसी बुरा न मानिए……………….' दोहा याद कर रखा है

---

१ डा० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन' ने डा० धीरेन्द्र जी वर्मा तथा डा० बाबूराम जी सक्सेना को एक-एक पत्र " 'हिन्दी' और 'हिन्दी भाषा की बोलियाँ' " के सम्बन्ध में उनका मत जानने के लिए लिखा था। यह पत्रोत्तर उसी सम्बन्ध में है। —(संपादक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आपने 'सु-मन' का परिचय दिया है, यह भेज कर। परन्तु जवाबी कार्ड भेज कर फिर मुझे चिढ़ा दिया, जिस के लिए कुछ न कहूँगा; क्योंकि आप ने पहले यह भूल मान कर बुरा न मानने को कह दिया है।

शब्दानुशासन[1] अच्छा लगा, तो मुझे क्यों लिखते हैं ? एक लेख लिख-छपा कर हिन्दी-संसार को बताइए। क्रिया-प्रकरण अभी आप ने पूरा नहीं पढ़ा है, इसलिए इस कार्ड में वैसी जिज्ञासा है। क्रिया के **'सिद्ध-साध्य'** भेद देखें। 'भेद्य-भेदक' विचार पढ़ा ? हिन्दी की **'सम्बन्ध विभक्तियाँ'** देख लीं ? **'सानुनासिक'** पर आलोचना पढ़ी ? अवधी के **'उ'** पर परिशिष्ट में पढ़ा ?

इन सब पर आप को लिखना चाहिए। जो क्रिया-रूप आप के जिज्ञासा-विषय हैं, वे **'भावाच्य'** हैं। संस्कृत में सकर्मक क्रिया (कर्म की उपस्थिति में) भाव-वाच्य नहीं होती, पर हिन्दी में होती है खूब—'हमने तुमको बुलाया।' संस्कृत में भाववाच्य क्रिया नपुंसक एक वचन रहती है; हिन्दी में सदा पुं० एकवचन।

डा० अम्बप्रसाद 'सुमन', (ह०) कि० दा० वाजपेयी
एम० ए०, पी-एच० डी० (किशोरीदास वाजपेयी)
काव्यकुटीर, कृष्णापुरी, अलीगढ़ (उ० प्र०)

(१२) आचार्य किशोरीदास जी वाजपेयी का पत्र

हिमालय एजेंसी, कनखल [उ० प्र०]
ता० २०-१२-५८

प्रिय सुमन जी,

कार्ड मिला। आगे से यह पत्र-जिज्ञासा का सिलसिला ठीक नहीं। मैं बहुत बेढब झंझटों में हूँ—रात-दिन चिन्ता में जाते हैं—सवेरे चूल्हा कैसे जलेगा ? इस तरह के कार्डों का ताँता परेशान करता है।

'ऊपर से नीचे आया' में **'ऊपर से'** अपादान है, **नीचे** कर्म कारक है। अव्ययों को कारक बनने से कौन रोकेगा ? किसने रोका है ? संस्कृत में भी

---

1 आचार्य पं० किशोरीदास जी वाजपेयी कृत 'हिन्दी शब्दानुशासन' को पढ़कर डा० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन' ने आचार्य वाजपेयी जी को एक प्रशंसा-पत्र लिखा था। उसके उत्तर में यह पत्र आचार्य वाजपेयी जी ने डा० सुमन जी को लिखा था। पत्र की लिपि से विदित होता है कि आचार्य किशोरीदास वाजपेयी पुरानी नागरी लिपि का अ लिखते हैं और संज्ञा, सर्वनाम तथा क्रिया पदों में परसर्ग या विभक्ति-सूचक अंशों को अलग लिखते हैं। जैसे अवधी के, आप के, भेज कर, कहूँ गा आदि में।
—(संपादक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रामः उपरिष्टात् अधः (या अधस्तात्) आगतः कहें, तो **'उपरिष्टात्'** और 'अधः' (अधस्तात्) अव्यय ही हैं, और अपादान-कर्म हैं। 'राम **यहाँ** पढ़ रहा है' में यहाँ अधिकरण है। 'रामः अत्र पठति' में 'अत्र' अव्यय अधिकरण है।

'आता है' में शतृ-वतृ नहीं है। **'आता है'** क्रिया है, केवल 'है' नहीं है। 'आते लड़के को रोक दिया'' में **'आता, आते'** विशेषण है।[1]

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन', **(ह०) कि० दा० वाजपेयी**
काव्य-कुटीर, **(किशोरीदास वाजपेयी)**
कृष्णापुरी, अलीगढ़ [उ० प्र०]

(१३) आचार्य किशोरीदास जी वाजपेयी का पत्र

ना० प्र० सभा, बाराणसी
१४-२-५६

प्रिय सुमन जी,

नमस्कार।

कार्ड मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप गौड़ ब्राह्मण[2] हैं। पहले मैं ब्राह्मणेतर समझता था और इसलिए 'नमस्कार' न लिखता था। सभी अपने हैं, पर ब्राह्मण में विशेषता है।

आपके यहाँ रोटी-दाल न खाऊँगा, तो कहाँ जाऊँगा ? अलग कमरा इस लिए पूछा था कि बहू आदि को संकोच न हो और मुझे भी स्वतन्त्रता रहे। बहू-बेटियों को रहने-बैठने को अलग जगह चाहिए ही, बड़े-बूढ़ों को चौपाल भली। और कोई बात नहीं। मैं साहबी ठाट-बाट का नहीं हूँ और न एक दम 'पुराण पुरुष' ही हूँ। कुटीर में रहूँगा। कल पटना जा रहा हूँ।

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन', **(ह०) कि० दा० वाजपेयी**
काव्य-कुटीर, **(किशोरीदास वाजपेयी)**
कृष्णापुरी, अलीगढ़ [उ० प्र०]

---

१ यह पत्र तथा कुछ और पत्र भी व्याकरण की समस्याओं से सम्बन्ध रखते हैं। यह पत्र-व्यवहार आचार्य पं० किशोरीदास जी वाजपेयी और डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' के बीच चला था। —[संपादक]

२ वार्तालाप करने पर विदित हुआ कि डा० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन' का पत्र-व्यवहार आचार्य पं० किशोरीदास जी वाजपेयी के साथ बहुत हुआ है। आचार्य वाजपेयी जी के 'हिन्दी शब्दानुशासन' से प्रभावित होकर डा० सुमन जी ने उसकी महनीयता तथा नयी उद्भावनाओं के सम्बन्ध में 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' [नई दिल्ली] में एक लेख भी लिखा था। डा० सुमन जी शुक्ल यजुर्वेदीय गौड़ ब्राह्मण हैं। —[सम्पादक]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१४) आचार्य किशोरीदास जी वाजपेयी का पत्र

हिमालय एजेंसी, कनखल उ० प्र०
दिनांक २-४-५६

प्रिय सुमन जी,

सादर नमस्कार !

'पढ़ने गया' में **'पढ़ने'** क्रियार्थक क्रिया है। इसी में **'के लिए'** जोड़कर पढ़ने के लिए' इतना पद 'क्रियार्थक-क्रिया'। ओढ़नी में हिसार की गूजर स्त्रियाँ घुँघरू टाँक लेती हैं, तो भी वह 'ओढ़नी' ही है, दूसरी कोई चीज नहीं—पाजेब, न पैंजनियाँ। 'राम को दूध' में **'राम को'** सम्प्रदान है—विभक्ति से प्रकट है। वही संप्रदानता विभक्तियुक्त अव्यय से भी—'राम के लिए' 'राम के लएँ' **'राम के लें।'**[1]

अब आगे इस की चर्चा पत्र-कार्ड में न होगी।

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन',
काव्य-कुटीर, कृष्णापुरी
अलीगढ़ (उ० प्र०)

(ह०) कि० दा० वाजपेयी
(किशोरीदास वाजपेयी)

(१५) आचार्य किशोरीदास जी वाजपेयी का पत्र

हिमालय एजेंसी, कनखल उ० प्र०
[पं० किशोरीदास वाजपेयी की लिखी पुस्तकों के प्रकाशक तथा विक्रेता]
तारीख २४-१२-५६

प्रिय सुमन जी,

नमस्कार !

अखबार में पढ़ा कि मथुरा के सूर-सम्पादन-समारोह में आप भी गए थे। और डा० हरवंशलाल जी भी। क्या रंग दिखाई दिया ? मेरा तो ख्याल है **'आए घन, आए घन आय कै उघरि गे।'** भगवान् करें, यह ख्याल गलत निकले और आए हुए घन कुछ 'जीवन' दें। आपका क्या ख्याल है ? कुछ हो जाने की आशा है ?

---

१ आचार्य पं० किशोरीदास जी वाजपेयी कें उपयुँक्त पत्र से प्रकट है कि आचार्य किशोरीदास जी वाजपेयी 'राम को' आदि में 'को' को विभक्ति कहते हैं, जबकि डा० बाबूराम सक्सेना, डा० उदयनारायण तिवारी आदि 'राम को' के 'को' को परसर्ग कहते हैं।
— (संपादक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और क्या हाल-चाल हैं ? डा० हरवंशलाल जी से मेरा नमस्कार कहिए। बच्चों को शुभाशी: ।[1]

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन', (ह०) कि० दा० वाजपेयी
काव्य-कुटीर, (किशोरीदास वाजपेयी)
कृष्णापुरी, अलीगढ़ [उ० प्र०]

(१६) आचार्य किशोरीदास जी वाजपेयी का पत्र

कनखल
४।१।६०

प्रिय सुमन जी,

नमस्कार !

पत्र मिला। प्रकृति-प्रत्यय के बीच में जो आए, वह 'विकरण' संस्कृत वालों ने नहीं कहा, तो हिन्दी वाले कह रहे हैं।

'मोकों' आदि में **'मैं'** प्रातिपदक है।' अहम्' आदि का प्रातिपदिक 'अस्मद्' सर्वत्र कहाँ है ? लम्बा रास्ता भाषा ने तै किया है। लक्षण सबको नहीं बाँध पाता है। इसी लिए 'बहुलम्' कहना पड़ता है। अपवाद होते ही हैं। वैसे प्रतिपद से 'प्रातिपदिक' हम ने माना है। वह जँचता है। यौगिक शब्द जान पड़ता है।

'को', **'कौन'**, **'किस का'**, **'का सों'** आदि में **'क'** प्रातिपदिक है, जो कि पूरब में ज्यों का त्यों चलता है। 'ओ' विभक्ति लग कर **'को'** और 'का' लगकर **'का'**, कहीं **'किस'** आदेश—**'का सों'** 'किस से' **'काहू सौं'** में 'हू' अव्यय है। पर 'अपि' का विकास 'कोऽपि, कोइ, कोई, कोऊ'। विभक्ति सामने आने पर 'ह' का आगम—'काहू सों', सोऊ आदि में समुच्चायक 'ऊ' है। 'हू' का रूप। सोऊ= वह भी। काऊ ने कई=काहू ने कही—अनिश्चय।

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन', (ह०) कि० दा० वाजपेयी
काव्य-कुटीर, (किशोरीदास वाजपेयी)
कृष्णापुरी, अलीगढ़ (उ० प्र०)

---

१ 'सूरसागर' के संपादन के सम्बन्ध में एक गोष्ठी बिड़ला जी के लक्ष्मीनारायण मंदिर [मथुरा-वृन्दावन] में हुई थी। उसमें डा० नगेन्द्र, डा० हरवंशलाल शर्मा, डा० विजयेन्द्र स्नातक, डा० गोवर्धननाथ शुक्ल, डा० प्रेमनारायण टंडन, डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' आदि बिद्वान् सम्मिलित हुए थे। यह पत्र उसी की ओर संकेत करता है।—(संपादक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१७) श्री जवाहरलाल जी चतुर्वेदी का पत्र

कूवावाली गली, मथुरा ।

ता० १६-२-५६

श्रीयुत सुमन जी,

सादर वंदे !

अपरंच '**मानवता**' पत्र में आपका एक लेख 'सूरकाव्य में रँगों की **संयोजना**' प्रकाशित हुआ था । अस्तु, भूल से उस पत्र के प्रकाशन का स्थान तथा पत्र की संख्यादि छूट गया है । अतः कृपया लिखें कि वह कहाँ से प्रकाशित होता था, तथा उसकी संख्यादि तथा समय क्या है ? बड़ी कृपा होगी ।

आगे खुर्जा के मार्ग में और भी बातें हुई थीं, वे भी याद होंगी ।[1] उस सम्बन्ध में आपने हरवंशलाल जी से बात कर ली होगी । जैसा उनका विचार हो, कृपया लिखें ।

अन्यत्र आपका लेख '**सूर**' पर निकला हो, तो उसका भी परिचय दें कि वह किस **पत्र** में, किस अंक में, किस **समय** में प्रकाशित हुआ है ? इति । विशेष क्या ?

प्रत्योत्तर देने की कृपा करना ।

श्रीयुत डा० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन'
हिन्दी विभाग,
अलीगढ़ विश्वविद्यालय अलीगढ़

आपका
(ह०) जवाहरलाल चतुर्वेदी

---

1 डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल के द्वितीय पुत्र की बरात खुर्जा गयी थी । प्रो० गर्ग की पुत्री से डा० अग्रवाल जी के द्वितीय पुत्र का विवाह हुआ था । उस बरात में पं० जवाहरलाल जी चतुर्वेदी (मथुरा) और डा० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन' भी गये थे । दोनों की बातें रेलगाड़ी में हुई थीं, डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल के सान्निध्य में । प्रमुख बातें 'सूरसागर' के पाठों और पदों के अर्थों से सम्बद्ध थीं । तभी पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी ने 'सूरसागर' के पद—

"सुरभी कान जगाइ खरिकहि बल मोहन बैठे हैं हठरी" में 'हठरी' के अर्थ पर भी अपने विचार प्रकट किये थे । —(सम्पादक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१८) डा० सत्येन्द्र जी का पत्र

क० मु० हिन्दी विद्यापीठ
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।
ता० २६-१०-५६

बन्धुवर,

मुझे पूरा भरोसा है कि आप **सूर-सेमिनार**[१] में सम्मिलित होने के लिए ता० २ को मथुरा पहुँच रहे हैं। हम सब लोग आपके दर्शनों के लिए और स्वागत के लिए लालायित हैं। आप के आने से ही सूर-संगोष्ठी का यह यज्ञ सफल हो सकता है। विशेष ता० २ को मिलने पर।

भवदीय :
(ह०) सत्येन्द्र

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन,
हिन्दी विभाग,
मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़

(१९) पं० अम्बिकाप्रसाद जी वाजपेयी का पत्र[२]

श्री:

नजरबाग, लखनऊ।
ता० १९-१२-५६

प्रिय महाशय.

आशीर्वाद।

आपका कार्ड मिला। ये संस्मरण शायद दो महीनेसे अधिक चलें। यथा शक्ति मैं अपनी स्मरण-शक्तिके भरोसेपर लिख रहा हूँ। विभक्ति चिन्होंके मूलपर भी प्रकाश डालनेके लिये लिखा है। यदि आप उसे पढ़कर फिर प्रश्न करेंगे, तो उत्तर देनेका समाधान करनेका यत्न करूँगा।

आपने यह पत्र लिखकर जो उत्सुकता दिखाई है, वह भी विरल ही है। हिन्दीवाले अपने आपमें मस्त हैं। चिन्तन और विचारसे दूर रहते हैं।

'गोविन्द निबन्धावली'के विषयमें खन्नाजीको लिखा था। उसकी एक ही प्रति उनके पास है। वे गत महीने यहाँ लखनऊ आकर मुझसे उसके पुनर्मुद्रणके विषयमें परामर्श करना चाहते थे। पर न जाने क्यों नहीं आये? उनका पता है —

---

१ 'सूरसागर' के सम्पादन तथा प्रामाणिक पाठ के सम्बन्ध में एक सूर-सेमिनार हुई थी, जिसमें डा० सुमन जी ने भी भाग लिया था। उक्त पत्र उसी से सम्बद्ध है। —(संपादक)

२ पं० अम्बिकाप्रसाद जी वाजपेयी से डा० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन' का पत्र-व्यवहार कारक-चिह्नों के स्वरूप तथा विकास के सम्बन्ध में हुआ था। उसी से सम्बद्ध यह पत्र है। पं० वाजपेयी जी प्रथम परसर्ग को मूल पद से सटाकर लिखते हैं। —(संपादक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबू दामोदरदास खन्ना,
१७ नं०, वाराणसी-घोषस्ट्रीट,
कलकत्ता ।

'पर', 'का', और 'के लिये' के विषय में लोगोंमें घोर अज्ञान है। इसका कारण मनन और चिन्तनका अभाव है। 'के लिये' में 'के' तद्धित प्रत्यय है। और 'लिये' अव्यय है। 'लिये' की तरह 'हेतु', 'निमित्त', 'वास्ते' इत्यादि और भी कितने ही अव्यय हैं। उनका क्या होगा ? 'पर' भी अव्यय ही है। 'के' 'कर' का ही सामान्य रूप है।

['केलाग' के ग्रामर पर सोमवार को ब्राडकास्ट सुनियेगा।]

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन',
काव्य-कुटीर,
कृष्णापुरी, अलीगढ़ [उ० प्र०]

भवदीय :
(ह०) अ० वाजपेयी
(अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी)

(२०) प्रो० सुनीतिकुमार जी चाटुर्ज्या का पत्र

16. HINDUTAN PARK,
CALCUTTA.29
Dated 20 10 60

Dear Dr. Suman,

Thank you very much for your ' BRAJ BHĀSHĀ SHABDĀVALĪ". I congratulate you on such a very useful work, which has been produced with so much knowledge and Industry. This book will have as great a value as Grierson's 'Bihār Peasent Life' for the language and rural culture of a Cosiderable part of the Brajbhāshā area. The vocabulary presents a mine of informations for not only Indian Luiguistics (the evolution of New Indo-Aryan from Old Indo-Aryan), but also for Indian Anthropology and Ethnology, as well as Sociology and Culture History.

One special feature in your book which I like very much is that you have frequently illustrated the use of a large number of words which you have collected from earlier Brajbhāshā literature. Besides you have onght to give the derivation of most of these words.

I cousider your work to be admirably thorough too. The illustrations which you have given, particularly the

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

diagrams also have an inestimable value for the study of our village culture. Not only Hindi Literature but Indian literature as a whole can be said to be enriched by your very valuable peoduction.

This will be a book to keep and you can be congratulated on doing what has not been done on such a large scale for any of the Indian langueges. Your work, I am sure, will be a model for those who are trying to study on folk culture and our linguistics through a full appraisement of the actual words which are in the use among the masses of the people, for a long time to come.

I trust you will be able to continue the highly important research which you have undertaken, and give us other equally important or even more important works in this line.[1]

Yours Sincerely

(Sd.) Suniti Kumar Chatterji

(Chairman. West Bengal Legislative Council and Professor Emeritus of Comparative Philology in the University of Calculta)

(२१) प्रो० आर० एल० टर्नर जी का पत्र

HAVERBRACK,
BISHOP'S STORT FORD,
HERTS, ENGLAND.
Dated 11. 11. 60

Dear Dr. Suman,

I was delighted to receive a copy of your 'Krishak Jivan Sambandhi Brajbhāshā Shabdāvali' and I thank you most warmly for the gift. I am running through it hurriedly in the first instance to cull what I can from it for my comparative Dictionary of 'A', the first part of which is rready in the press.

---

१ डा० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन' के पी-एच० डी० शोध-प्रबन्ध की एक प्रकाशित प्रति डा० सुनीतिकुमार जी चादुर्ज्या की सेवा में प्रेषित की गयी थी। डा० चादुर्ज्या का यह उपर्युक्त पत्र उसी शोध-प्रबन्ध 'कृषक जीवन सम्बन्धी ब्रजभाषा शब्दावली' के सम्बन्ध में है। —(संपादक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

I knew old Sir George Grierson very well and for nearly 40 years I have urged scholars to do for other parts of India, what he did for Bihar.

You can imagine then, how pleased I am to see your book.[1]

Yours Sincerely

Dr. A. P. Suman, (Sd.) R. L. Turner
8/7, Hari Nagar, [Director, School of Oriental &
ALIGARH (U. P.) African Studies, University of
LONDAN]

(२२) प्रो० बाबूराम जी सक्सेना का पत्र

भाषाविज्ञान विभाग,
सागर विश्वविद्यालय,
सागर (म०प्र०)
२३-११-६०

प्रिय सुमन जी,

नमस्ते !

आपका पत्र मिला। धन्यवाद। हाँ अब दिल्ली जाना ही पड़ेगा, ऐसा लगता है। वैसे जो आराम और पढ़ने-पढ़ाने की सुविधा यहाँ है वह अन्यत्र विशेषकर केन्द्रीय राजधानी में दुर्लभ है। पर **'यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि'** ही ठीक परिपाटी है।[2]

---

१ डा० आर० एल० टर्नर (लंदन) का यह पत्र डा० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन' के प्रकाशित ग्रंथ 'कृषक जीवन सम्बन्धी ब्रजभाषा शब्दावली' के सम्बन्ध में डा० टर्नर जी की लेखनी से लिखा गया था और इस पत्र के तुरन्त कुछ दिन बाद प्रो० टर्नर जी ने डा० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन' के पास अपने प्रकाश्यमान कोश (आर्य भाषाओं का तुलनात्मक कोश) के कुछ खंडगत प्रकाशित अंश भी प्रेषित किये थे, जिनमें डा० सुमन जी के 'ब्रजभाषा शब्दावली' ग्रंथ को उद्धृत किया गया था। —(संपादक)

२ यह पत्र डा० बाबूराम जी सक्सेना ने डा० सुमन जी को सागर से लिखा था। तब डा० सक्सेना जी सागर विश्वविद्यालय के भाषाविज्ञान विभाग के अध्यक्ष और प्रोफ़ेसर थे। डा० सक्सेना जी के पत्र की भाषा और लिपि से स्पष्ट है कि वे परसर्गों (कारकीय विभक्तियों) को संज्ञा और सर्वनाम शब्दों से पृथक् लिखते हैं।

भारतीय विश्वविद्यालयों में हिन्दी भाषा में सबसे पहले शोध-उपाधि प्राप्त करने-वाले व्यक्ति डा० बाबूराम सक्सेना हैं। आपने सन् १९३१ ई० में प्रयाग विश्वविद्यालय से Evolution of Awdhi शोध-विषय पर डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त की थी।
—(सम्पादक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप की किताब मुझे अप्रेल ही में मिल गयी थी; पर आते ही एक सज्जन माँग ले गये। और जब चीज मेज पर से हट गई तो भूल में पड़ गयी। इस लिए सम्मति भेजने में देर हुई। अब भेज रहा हूँ। किताब बहुत अच्छी है। व्युत्पत्तियाँ भी कहीं-कहीं हैं। व्युत्पत्ति-विज्ञान है भी बड़ा कठोर।

आशा है आप प्रसन्न हैं। काम में लगे हैं। यह प्रसन्नता की बात है। ईश्वर अत्यधिक उन्नति दे। सस्नेह।

..लग्न-'कृषक-जीवन सम्बन्धी ब्रजभाषा शब्दावली' पर सम्मति ।

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन',
८/७ हरिनगर, अलीगढ़ [उ० प्र०]

आपका
(ह०) बाबूराम सक्सेना

(२३) प्रो० बाबूराम जी सक्सेना का पत्र

डा० बाबूराम सक्सेना,
एम. ए. डी. लिट्.

४० ई० मोतीलाल नेहरू रोड,
इलाहाबाद—२११००२
फ़ोन : ५२२०८
दिनांक २१-२-७९

प्रिय सुमन जी,
नमस्ते !

आपका ५ ता० का 'विशेष निवेदन' मिला था। मेरा हाथ अब काँपने लगा है; इसलिए विस्तृत पत्र लिखने में असमर्थ हूँ। कई साल तक प्रशासनिक पदों पर रहने के कारण आशुलिपिक को डिक्टेट कराने की आदत पड़ गयी थी; किन्तु इस प्रकार की कोई सुविधा अब प्राप्त नहीं है।

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के पुनः संगठित होने पर संस्कृत विभाग के लेक्चरर के पद पर मेरी नियुक्ति हुई थी, अक्टूबर, १९२२ में। मैं ने अपने गुरु पूज्य पं० गंगानाथ झा जी को जब इसकी सूचना दी, तब उनका जो उत्तर आया, उस में उन्होंने जहाँ मेरी नियुक्ति पर अपना हर्ष प्रकट किया, वहाँ एक आशा भी प्रकट की—

"मुझे विश्वास है कि तुम अपने पतवार पर आराम नहीं करोगे, बल्कि अध्यापक के जीवन में सतत विद्यार्थी बने रहोगे।"

सफल अध्यापक बनने के लिए यही मूल-मंत्र है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर करे, हिन्दी क्या, किसी भी विषय को पढ़ानेवाला इस मंत्र को ग्रहण करे।[१]

डा० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन, डी० लिट्०, आपका शुभचिन्तक
८/७ हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०) (ह०) बाबूराम सक्सेना

(२४) श्री प्रभुदयाल जी मीतल का पत्र

मीतल निवास,
डेम्पीयर पार्क, मथुरा।

प्रियवर डा० सुमन जी,

सस्नेह नमस्कार।

आपका पत्र प्राप्त हुआ। '**बथान**' शब्द के सम्बन्ध में आपके स्पष्टीकरण के लिए धन्यवाद। मेरा भी यही मत था, किन्तु आपसे उसकी पुष्टि होगई।[२]

मैंने '**साहित्यलहरी**' का संपादन किया है। ग्रन्थ छप चुका है। उसकी विस्तृत भूमिका छपना बाकी है। इसमें मूल पाठ, पाठान्तर, शब्दार्थ, भावार्थ, काव्यांग-विवेचन, काव्यांगों के सम्बन्ध में विशद टिप्पणियाँ और आलोचना आदि का समावेश है। ग्रंथ काफ़ी बड़ा हो गया है। परिश्रम भी बहुत करना पड़ा है; किन्तु बहुत दिनों की इच्छा की पूर्ति हो गई है। आप आज-कल क्या लिख रहे हैं? कभी मिलने का सुयोग नहीं मिलता।

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन', आपका
८/७ हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०) (ह०) प्रभुदयाल मीतल

(२५) पं० रामस्वरूप जी शास्त्री का पत्र

जयगंज, अलीगढ़

असीम वात्सल्यभाजन महोदय डा० श्री सुमन जी, ३-३-६२

कोटिशः शुभाशीर्वाद।

आपके २७-२-के प्रिय पत्र से मुझे असामान्य हर्ष मिला। ना० प्र०

---

१ डा० बाबूराम जी सक्सेना के इस पत्र की भाषा और लिपि-लेखन से विदित होता है कि डा० बाबूराम जी सक्सेना पुरानी लिपि का 'अ' लिखते हैं और 'ने' आदि परसर्गों को संज्ञा और सर्वनाम से अलग रखते हैं। —(संपादक)

२ ब्रज-साहित्य मंडल, मथुरा की स्थापना के समय से ही डा० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन' और श्री प्रभुदयाल जी मीतल में साहित्यिक सम्बन्ध रहे हैं। 'बथान' शब्द के अर्थ और प्रचलन के सम्बन्ध में एक पत्र श्री प्रभुदयाल जी मीतल ने डा० सुमन जी को लिखा था। उसका उत्तर भी मीतल जी को दिया गया था। उसी उत्तर के उपरान्त यह पत्र श्री मीतल जी ने डा० सुमन जी को लिखा था। — (संपादक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रिका में मेरे निबन्ध के प्रकाशन में आप ही प्रधान कारण हैं।[1] इस हेतु विशेष धन्यवाद प्राप्त हो। आपके लिए शुभ कामनाएँ सर्वदा रहेंगी। उनके फल भी मुझे शीघ्र ही महेश शिवेश की कृपा से दीख जाएँगे।

आप मेरे सुख एवं शान्ति के अभीप्सु हैं। महादेव, मेरे इष्टदेव, भली प्रकार जानते हैं। मेरी कामनाओं को सफल बनाते हैं। आपको देखने को प्रायः चित्त उत्कंठित हो जाता है, अधिक समय नहीं दीखने से।

डा० श्री अम्बाप्रसाद जी 'सुमन', विशिष्ट शुभाकांक्षी
एम० ए०, पी-एच० डी०, (ह०) रामस्वरूप शास्त्री
८/७ हरिनगर, अलीगढ़

(२६) प्रो० विश्वनाथप्रसाद जी का पत्र

विश्वनाथ प्रसाद **केन्दीय हिन्दी निदेशालय**
एम० ए०, बी० एल०, पी-एच० डी० (लंदन) **नई दिल्ली**
निदेशक, **निवास स्थान : १०-रकाबगंज,**
नई दिल्ली—१
जनवरी ६, १९६६

प्रिय श्री 'सुमन' जी,

हार्दिक स्नेह तथा नव वर्ष के लिए बधाइयाँ और शुभ कामनाएँ स्वीकार करें, ईश्वर से प्रार्थना है कि यह ईसवी नया वर्ष आपके और आपके परिवार के लिए सभी प्रकार से सुखकर, उन्नतिकारी और आनंदप्रद सिद्ध हो।

आपका **मद्रास** से भेजा हुआ पत्र मिला। आपने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा को छोड़ने का जो निश्चय किया है, उसके विषय में मैं अभी कुछ कहने में असमर्थ हूँ। परन्तु यदि वहाँ की जलवायु आपके अनुकूल नहीं है, तो

---

१ अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय, अलीगढ़ के पूर्व-संस्कृत-हिन्दी-विभागाध्यक्ष पं० रामस्वरूप जी शास्त्री का एक शोधात्मक लेख 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' काशी में प्रकाशित हुआ था। यह पत्र उसी ओर संकेत करता है।

पंडित रामस्वरूप जी शास्त्री ने अलीगढ़ जनपद की प्रदर्शनी में हिन्दी-कवि-सम्मेलन का प्रारम्भ सन् १९३७ ई० में कराया था। उस कवि-सम्मेलन में सभापति पं० रामस्वरूप जी शास्त्री और उद्‌घाटक एवं निर्णायक पं० गोकुलचन्द्र जी शर्मा थे। उस प्रथम हिन्दी-कवि-सम्मेलन में प्रथम पुरस्कार (स्वर्ण-पदक के रूप में) विद्यार्थी अम्बाप्रसाद 'सुमन' ने प्राप्त किया था। तब सुमन जी धर्मसमाज कालेज की इण्टर कक्षा के विद्यार्थी थे।
—(संपादक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर दूसरा उपाय ही क्या है ? आपने इतना समय देकर वहाँ के स्नातकोत्तर विभाग का जो संगठन किया और दक्षिण में जाकर जिस लगन से हिन्दी की की सेवा की, यह हम सबके लिए परम संतोष का विषय है।

आपके पत्र से यह भी मालूम होता है कि आपके परिवार की स्थिति ऐसी नहीं है कि आप घर से बहुत दिनों तक अलग रह सकें। मद्रास में रहने से पुत्री के विवाह में अवश्य ही अड़चन होगी। ऐसी दशा में वहाँ के लोगों से अनुमति लेकर आप अलीगढ़ लौट सकते हैं।

दक्षिण में हिन्दी की आपने बहुमूल्य सेवा की है और उसके लिए आप हम सभी के साधुवाद के पात्र हैं।[1]

आगे का जो भी प्रोग्राम हो, उसकी कृपया सूचना देंगे।

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन', डी० लिट्० — आपका शुभाकांक्षी
अध्यक्ष, — (ह०) विश्वनाथ प्रसाद
हिन्दी स्नातकोत्तर अध्ययन एवं अनुसंधान संस्थान,
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास—१७

(२७) डा० पी० ए० बारान्निकोव जी का पत्र

१७. १०. ७२

प्रिय बन्धु,

आशा है आप सानंद होंगे। आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि १७ अगस्त को मेरा एक लड़का पैदा हुआ और अक्टूबर में मेरी हिन्दी भाषा सम्बन्धी एक पुस्तक प्रकाशित हुई। इसे मैंने अलग समुद्री डाक द्वारा भिजवा दिया। इसमें आपका नाम तथा कार्य प्रस्तुत है। मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि पुस्तक-संबंधी अपनी **सम्मति** भिजवाने की कृपा करें। अलीगढ़ में कोई रूसी जाननेवाला अवश्य मिल जाएगा।

अपने कार्य की तथा जीवनसंबंधी सूचना दें। आज-कल मैं एक अन्य पुस्तक की तैयारी कर रहा हूँ। प्रेषित पुस्तक का रूसी भाषा में नाम है—

१ डा० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन' ने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास में हिन्दी-स्नातकोत्तर अध्यापन एवं अनुसंधान संस्थान के अध्यक्ष के रूप में दो वर्ष तक हिन्दी की सेवा की थी। फिर कुछ पारिवारिक एवं स्वास्थ्य-विषयक कारणों से उन्हें त्याग पत्र देकर पुनः अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय में आना पड़ा था। यह पत्र उसी से संबद्ध है। —(संपादक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"प्रोबलेम हिन्दी काक नात्सिनालनवा यज़िका"[१]
अर्थात् "राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की समस्या"।
कृपया मेरा नया पता नोट कर लें—

Dr. P. A. BARANNIKOV,
188, 643, KOMAROVO,
LENINGRAD, USSR.

शुभ कामनाओं सहित

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन', आपका
८/७ हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०) (ह०) पी० ए० बारान्निकोव

(२८) श्री मंत्री मानस संघ रामवन का पत्र

(श्रीराम) मानस संघ,
रामवन
पो० रामवन (जिला सतना) म० प्र०
पिन कोड नं० ४८५१११

प्रिय डाक्टर साहब, दिनांक १/२/७६

आपके **'रामचरितमानस-भाषा-रहस्य'**[२] में यहाँ से प्रकाशित **'मानस-व्याकरण'** की चर्चा है। पूज्य श्री विजयानन्द जी त्रिपाठी की मुझपर बड़ी कृपा थी। उन्होंने यह रचना मुझे प्रकाशनार्थ दी। उनकी लिपि बहुत स्पष्ट नहीं थी। इससे प्रकाशन में भूलें हो गईं; बहुत भूलें हो गईं। उन्होंने कहा प्रेस से पाण्डुलिपि मँगा दो, तो हम एक प्रति सुधार दें। प्रेसवालों ने वह वापस नहीं की। टालते रहे। संभवतः फेंक दी होगी।

मेरी एक हार्दिक अभिलाषा रही है कि **'रामचरितमानस'** का अधिकृत संस्करण प्रकाशित होना चाहिए—बाइबिल के ओथोराइज्ड वर्ज़न के सदृश। भारतीय विद्वानों को एकत्र करके उनसे यह काम कराया जा सके, इतना धन मेरी संस्था में न था, न है। अन्यत्र उद्योग हुए भी, विफल ही रहे। काशिराज-संस्करण भी लोकप्रिय नहीं हो सका।

---

१. 'राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की समस्या" (रूसी भाषा में पुस्तक का नाम है—'प्रोबलेम हिन्दी काक नात्सिनालनवा यज़िका")।

२ डा० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन' का एक ग्रंथ 'रामचरितमानस-भाषा-रहस्य' बिहार राष्ट्र-भाषा-परिषद्, पटना से प्रकाशित हुआ था। उसमें 'मानस-व्याकरण' (रामवन, सतना) की चर्चा की गयी है। यह पत्र उसी ओर संकेत करता है। —(सम्पादक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके इस ग्रंथ (**रामचरितमानस-भाषा-रहस्य**) से वह अभिलाषा पुनः जाग्रत् हो गयी है। सफलता की आशा तो की ही नहीं जा सकती, और अब तो अन्त निकट है।

श्री डा० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन', भवदीय
एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्० [हस्ताक्षर]
८/७ हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०) (**मंत्री, मानस-संघ**)

(२९) आचार्य पं० सीताराम जी चतुर्वेदी का पत्र

(श्री) **वेदपाठी-भवन**
मुजफ्फरनगर—२
६. ७. ७७

प्रियवर सुमन जी,
सस्नेह नमस्कार !

'**सूरसागर**' के **तीन** खंड निकल चुके हैं। **तीसरा** खंड भी भारत प्रकाशन मन्दिर से ही आपको मिल जायगा या शुक्ल जी से भी मिल सकेगा।

आपने जो सुझाव दिए हैं, वे अवश्य विचारणीय हैं। और भी मित्रों ने इस प्रकार के सुझाव दिए हैं। इन सबका संग्रह करके '**सूरग्रन्थावली**' के अन्त में देने का विचार है। '**हटरी**' वाली बात तो हम लोगों को छपने के पश्चात् सूझी। जहाँ तक व्याकरण-सम्बन्धी पाठ का प्रश्न है; कभी-कभी तो टेक, गति, मात्रा; कभी छन्द की पकड़; कभी यति उसकी शुद्धता में बाधक बन बैठती है। अतः वहाँ कवि-स्वातन्त्र्य मान लिया जाता है। '**सूरसागर**' की एक भी प्रति शुद्ध नहीं मिली। अपनी ओर से भक्त सूर, भावुक सूर, कवि सूर और गायक सूर का ध्यान करके संपादन किया गया है। आप सरसरी वाचन छोड़कर गंभीर वाचन कर डालिए। आपके सुझाव हम कृतज्ञता के साथ स्मरण करेंगे।[1]

सस्नेह,
(ह०) **सीताराम चतुर्वेदी**

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन',
८/७ हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१

१ आचार्य पं० सीताराम जी चतुर्वेदी के प्रधान सम्पादकत्व में 'सूरग्रंथावली' के चार खंड, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी से प्रकाशित हुए हैं। यह पत्र उसी के पाठों तथा अर्थों से सम्बद्ध है।—(संपादक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३०) आचार्य पं० सीताराम जी चतुर्वेदी का पत्र

(श्री) **वेदपाठी-भवन**

मुजफ्फरनगर–२५१००१

प्रियवर सुमन जी, १६. १. ७९

सस्नेह नमस्कार !

१२—१—७९ का पत्र मिला।

काशी में साहित्यकारों के सुप्रथित चंक्रमण-स्थल बेनियाबाग से लगे हुए उत्तरी छोर पर रहने और प्रायः उनके साथ चंक्रमण करने के कारण उस युग के साहित्य-महारथियों से मेरा नित्य सम्बन्ध बन गया था। बाबू प्रेमचन्द जी, जिन्हें अब हिन्दीवाले भ्रमवश मुन्शी प्रेमचन्द कहने-लिखने लगे हैं, मेरे सन्निकट पड़ोसी थे। प्रसाद जी बेनियाबाग के उस पार सराय गोवर्धन में रहते थे। अतः प्रायः प्रतिदिन ही उनकी लच्छेदार, चुहलभरी बातों और चुटकुलों का रस मिलता रहता था।

प्रसाद जी का मूल नाम—**झारखंडेप्रसाद** था, घर पर वे 'खाँड़ेराव' पुकारे जाते थे। साहित्य-रचना में वे जयशंकर प्रसाद बनकर-कविता में केवल '**प्रसाद**' मात्र रह गये थे। '**कामायनी**' महाकाव्य और नाटकों की रचना करके उन्होंने बड़ा यश अर्जित किया; किन्तु उनके मर्म की झाँकी उनके '**आँसू**' में ही मिलती है। उनके 'मस्तक में स्मृति सी छाई' कौनसी घनीभूत पीड़ाएँ थीं, यह रहस्य काशी के कुछ इने-गिने लोग ही जानते हैं, किन्तु वे पीड़ाएँ 'दुर्दिन में' नहीं, सुदिन में ही 'आँसू बनकर बरसीं'।

यों तो प्रसाद जी बड़े सभा-भीरु थे, किन्तु आपस की बात-चीत में वे काशी की मस्ती के साथ उन्मुक्त होकर वातावरण रंगीन बनाए रखते थे।

एकबार एक साहित्यकार मित्र ने उन्हें कटी हुई पतंग लूट थमाई–"लीजिए उड़ाइए" तो प्रसाद जी ने झट बनारसी रंग से कह दिया—'हम उड़ाई हुई नहीं उड़ाते।"

एक बार कानपुर के कृष्णानन्द गुप्त ने **प्रसाद के दो नाटक**' नामक पुस्तक में बड़े कुरुचिपूर्ण ढँग से 'प्रसाद' के नाटकों की आलोचना छापी। प्रसाद जी तो साधु स्वभाव से उसे टाल गए; किन्तु **बेढब जी** को यह भनक लगी कि इस 'हजो' (निन्दात्मक रचना) में **मैथिलीशरण गुप्त जी** का हाथ है, तो वे हाथ धोकर दोनों के पीछे ऐसे पड़े कि गुप्त जी तिलमिला उठे और समझे, यह प्रसाद जी की प्रेरणा से हो रहा है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु इसी बीच गुप्त जी के काशी आने पर राय कृष्णदास जी ने उनके भ्रम का निवारण कर दिया और वह विवाद बन्द हो गया।

अन्तिम दिनों में वे कड़वे बादाम् के विष से क्षय-ग्रस्त हो गये। जब उनसे कहा गया कि भुवाली चले जाइए, तो बोले "सारा संसार काशी में प्राण देने आता है, मैं भुवाली जाऊं ? वाह !"।

ऐसे थे प्रसाद जी। आशा है प्रसन्न होंगे।

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन', सस्नेह,
८/७ हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१ (ह०) सीताराम चतुर्वेदी

(३१) आचार्य पं० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी का पत्र

रवीन्द्रपुरी, वाराणसी
२१-११-७७

प्रिय भाई सुमन जी,

सादर सप्रेम नमस्कार !

आपका ६-११-७७ का कृपा पत्र मिला। बहुत परेशानियों में था। उत्तर नहीं दे पाया। क्षमा करें।

मुझे विश्वास ही नहीं होता कि आप अवकाश प्राप्त करने की अवस्था पार कर गए। समय कितना तेज़ी से बीत रहा है ? '**अनामदास का पोथा**' आपको अच्छा लगा, इससे बड़ी प्रसन्नता हुई।

'**प्रस्तोता**', '**उद्गाता**' आदि शब्द छांदोग्य उपनिषद से ज्यों के त्यों लिए गए हैं। यह सामवेदीय उपनिषद् है। इसलिए ये सामगान के पारिभाषिक शब्द हैं। गान के सन्दर्भ में '**प्रस्तोता**'=कार्य आरंभ करनेवाला, '**उद्गाता**'=गान करनेवाला, और तृतीय उपसंहार करनेवाला है। किसी वैदिक सामवेदीय व्याख्यापरक ग्रंथ में इनके अर्थ मिलेंगे; या छांदोग्य के ही भाष्य में।

परमात्मा आपको दीर्घ जीवन और उत्तम स्वास्थ्य दें। ज़रा जल्दी में हूँ। मेरी पत्नी अस्पताल में पड़ी हुई हैं। मन चंचल है।[1]

डा० श्री अम्बाप्रसाद 'सुमन', (ह०) हजारीप्रसाद द्विवेदी
हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०) पिन २०२००१

---

१ आचार्य हजारीप्रसाद जी द्विवेदी का उपन्यास 'अनामदास का पोथा' पढ़ने के उपरान्त डा० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन' ने अपनी कुछ जिज्ञासाएँ आचार्य द्विवेदी जी को लिखी थीं। उनके ही उत्तर में लिखा हुआ आचार्य जी का यह पत्र है। —(संपादक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौद्गलिक कर्मों का बन्ध होता है। बँधे हुए कर्म अपनी स्थिति पूरी होने पर जब उदय में आकर फल देते हैं तो आत्मा के परिणामों पर उसका प्रभाव पड़ता है। आत्मा के परिणाम जैसे होते हैं, उनके अनुसार कर्मों का पुनः बन्ध होता है। आत्मा के परिणाम भाव कर्म कहलाते हैं और पौद्गलिक कर्म द्रव्य-कर्म कहलाते हैं। अनादिकाल से भावकर्मों और द्रव्यकर्मों की इसी निमित्त-नैमित्तिक प्रक्रिया के कारण आत्मा कर्मों से बँधा हुआ है। इस प्रक्रिया पर गहराई से चिन्तन करने पर यह फलितार्थ निकलता है कि आत्मा को कर्मों (पुद्गल कर्मों) ने नहीं बाँधा, न पुद्गल ने आत्मा पर कोई प्रभाव ही डाला; अपितु आत्मा के परिणामों के लिये पुद्गल कर्म केवल निमित्त मात्र हैं; वस्तुतः तो आत्मा अपने शुभाशुभ परिणामों के कारण बँधा है।

यही स्थिति मन की है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, मन दो प्रकार का होता है—द्रव्य-मन और भाव-मन। द्रव्य-मन अष्टदल-कमलाकार होता है और यह पौद्गलिक है। भाव-मन क्षयोपशमिक ज्ञान होता है। भाव-मन अपने विषय का ग्रहण करता है; द्रव्य-मन उसमें सहायता करता है। भाव-मन भी दो प्रकार का होता है— लब्धि और उपयोग रूप। विषय ग्रहण करने तथा संकल्प करने की शक्ति तो 'लब्धि' कहलाती है, और उसका व्यक्ति 'उपयोग' कहलाता है। कर्मों के उदय के कारण आत्मा के जैसे परिणाम होते हैं, मन में उसी प्रकार के विकल्प आते हैं। वे विकल्प शुभ या अशुभ रूप होते हैं। कर्मों के उदय के अनुरूप ही मन में सम्बद्ध, असम्बद्ध, विरोधी और विकृत विकल्प उठते हैं। चूंकि कर्मों का उदय प्रतिक्षण होता रहता है अतः मन में विकल्प भी निरन्तर आते और उठते रहते हैं। जिस प्रकार एक तालाब में कंकड़ी फेंकने से उसमें तरंगें उठती हैं, उसी प्रकार आत्मा के भाव-कर्मों के कारण द्रव्य-कर्मों के निमित्त से मन में शुभाशुभ भावों के विकल्प निरन्तर उठते रहते हैं।

आर्ष ग्रंथों में मन का विश्लेषण करते हुए इस प्रकार बताया है—

द्रव्यमनो हृत्कमले घनाङ्गुलासख्यभागमात्रं यत्।
अचिदपि च भावमनसः स्वार्थग्रहणे सहायतामेति ॥

— पंचाध्यायी १।७१३

द्रव्य-मन हृदयकमल (अष्टदल कमलाकर) में होता है, जो घनाङ्गुल के असंख्यात वें भाग प्रमाण होता हैं। यह यद्यपि अचेतन है, तो भी अपने विषय के ग्रहण करने में भाव मन की सहायता करता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावमनः परिणामो भवति तदात्मोपयोगमात्रं वा ।
लब्ध्युपयोगविशिष्ट स्वावरणस्य स्यात् क्रमाच्च स्यात् ।।

—पंचाध्यायी १।७१४

भाव-मन आत्मा के ज्ञानगुण का पर्याय है, जो अपने आवरण कर्म के क्षयोपशम से होता है। इसके 'लब्ध' और 'उपयोग' ऐसे दो भेद हैं।

जो मुमुक्षु आत्म-हित अथवा आत्म-कल्याण करना चाहते हैं, उनके लिए यह आवश्यक है कि वे सर्वप्रथम आत्मा और अनात्मा का भेद समझें और तब मन को—जो आत्मा से भिन्न अनात्म पदार्थों की ओर जाता है—आत्म-स्वरूप के चिन्तन और ध्यान में लगावें। इससे मन में निरन्तर उठनेवाले शुभ या अशुभ विकल्प रुक जाएँगे। ध्यान की इस प्रक्रिया का सतत अभ्यास करने से मन आत्मा में लय हो जाएगा। तब न केवल कर्म-बन्ध के समस्त स्रोत रुक जाएँगे, बल्कि पूर्व बद्ध कर्मों का भी क्षय होगा। समस्त कर्मों का क्षय होने पर आत्मा की मुक्ति हो जाएगी। आत्मा की मुक्ति अर्थात् समस्त परद्रव्य और परभावों से मुक्ति और अपने शुद्ध स्वरूप में अवस्थित।

पूज्य मुनिश्री जी ने आपको शुभाशीर्वाद कहा है।

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन', भवदीय
हिन्दी-शोध-संस्थान, (ह०) सतीश जैन
हरिनगर, अलीगढ़ [उ० प्र०]

(३६) श्रीवर प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी महाराज का पत्र

संकीर्तन भवन, झूसी
(प्रतिष्ठानपुर), प्रयाग

परम प्रिय ! आश्विन कृ० ७।२०३५ वि०

आपका पत्र[1] मिला। महाभारत युद्ध के पश्चात् अर्जुन ने श्रीकृष्ण जी से कहा—'आपने जो युद्ध के समय मुझे गीता सुनायी थी, उसे मैं भूल गया, उसे मुझे फिर से सुना दीजिए।' भगवान् ने कहा—'उस समय तो मैंने योग युक्त होकर कही थी, अब मैं उसे वैसा सुना भी सकूँगा या नहीं।' यह कहकर उन्होंने अनुगीता सुनायी। वह अनुगीता महाभारत में है; किन्तु उस भगवद् गीता के सदृश नहीं।

---

१ श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी ने 'चैतन्य-चरितावली' लिखी है। उसी में एक संदर्भ के उल्लेख से सम्बद्ध यह पत्र लिखा गया है। —(सम्पादक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'चैतन्य चरितावली को' लिखे ३५-४० वर्ष हो गये; किसी बँगला ग्रंथ के आधार पर मैंने लिखा होगा। उसका अब स्मरण भी नहीं। आज मैंने 'कूर्म-पुराण' देखी। उसमें यह प्रसंग नहीं है; किन्तु कोई बृहत् कूर्म पुराण होगी, उसमें यह होगा। लेखक निराधार तो लिख नहीं सकता। पुराण असंख्य हैं। ५३ पुराण ही अभी तक उपलब्ध हो सकी हैं।

वैसे यह प्रकरण अध्यात्म रामायण में है—"उवाच सीतामेकान्ते शृणु जानकि मे वचः। अग्नावदृश्यरूपेण वर्ष तिष्ठ ममाज्ञया। रावणस्य वधान्ते मां पूर्ववत् प्राप्स्यसे शुभे॥" (अरण्यकांडे, सर्ग ७) "श्रुत्वा रामोदितं वाक्यं सापि तत्र तथाकरोत्। माया सीतां बहिः स्थाप्य स्वयमन्तर्दधेऽनले॥ लक्ष्मणस्तन्न जानाति मायासीतां मयाकृताम्॥" और भी स्थानों में ऐसा उल्लेख होगा।

आशा है आप प्रसन्न होंगे। जयप्रकाश जी लखनऊ में घर बनाकर रहने लगे हैं। कुछ समय पूर्व वे मेरे पास आये थे। पता मुझे ठीक ज्ञात नहीं। मैं कल देहली जा रहा हूँ। एक सप्ताह वहाँ रहने का विचार है, वहाँ का पता—संकीर्तन भवन, बसन्त गाँव, पालमरोड (राव तुलाराम कालेज के ठीक सामने) नई देहली। आपका आना हो तो मिलें।

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन',
८/७ हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१ (उ० प्र०)

आपका अपना ही
(ह०) **प्रभुदत्त**

(३७) पं० अमृतलाल जी चतुर्वेदी का पत्र[१]

सीतला गली
आगरा
३०—११—७८

प्रिय सुमन जी,
नमस्कार!

आपका कृपा पत्र पाया। मेरा सौभाग्य है कि आपको **'ग़ालिब अमृत'** में आनन्द आया। चलो मेरा परिश्रम सफल हुआ। 'ब्रजभाषा के कोश के विषय में मैं एक दिन गया था; किन्तु भाई विद्यानिवास जी उस दिन विद्यापीठ में नहीं थे. मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि ब्रजभाषा की जो भी सेवा मैं करने के योग्य हूँ; उसे मैं अवश्य करूँगा और अपने को धन्य मानूँगा। **कोश** का संपादन बहुत परिश्रमसाध्य कार्य है; किन्तु जब आप सरीखे महारथी इस कार्य में जुट गये हैं, तो हम लोग इस महान् कार्य में अवश्य सफल होंगे।

हाँ, 'बिहारी सतसई' पर मैंने अवश्य कुछ परिश्रम किया है और कवि की आत्मा तक पहुँचने का भरसक प्रयास किया है, जो अभी प्रेस में है। उस कोश

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में **बिहारी की शब्दावली** पर पूर्ण प्रकाश डाला जाएगा और बिहारी ही क्या अन्य कवियों पर भी पर्याप्त परिश्रम करना होगा। प्रायः कवियों ने तुकबन्दी एवं अनुप्रास के चक्कर में पड़कर शब्दों की हत्या भी की है, और मनगढ़न्त भी। पर खैर, यह तो सब चलता ही है। जब सर ओखली में दिया है, तो चोटों का क्या डर ?[1]

मैं संस्कृत तो नहीं के बराबर ही पढ़ा हूँ; अतः '**नन्हा**' के विषय में यही कह सकता हूँ कि हो न हो यह '**न्यून**' का बिगड़ा हुआ रूप जँचता है। कृपा बनाए रखिये।

बच्चों को प्यार। आशा है आप सानंद होंगे।

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन',   सप्रेम,
८/७ हरिनगर, अलीगढ़   (ह०) अमृतलाल

(३८) डा० श्यामनारायण जी मेहरोत्रा का पत्र

डा० श्यामनारायण मेहरोत्रा,   आगरा विश्वविद्यालय
कुलपति   आगरा (उ० प्र०)

संख्या : वी०सी०/१-३/६६६/७८
दिसम्बर २३, १९७८ ई०

प्रिय डा० सुमन,

आपका १८-१२-१९७८ का कृपा पत्र मिला। अनेकानेक धन्यवाद। मुझे यह जानकर हर्ष हुआ कि आपका ग्रंथ '**संस्कृति, साहित्य और भाषा**' शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है। मुझे विश्वास है कि आपकी इस महान् कृति से न केवल हिन्दी भाषा एवं साहित्य का संवर्द्धन होगा, बल्कि समस्त शिक्षा-क्षेत्र को आपके व्यक्तित्व एवं अनुभव का लाभ प्राप्त होगा।

नव वर्ष के लिए मंगल कामना सहित,

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन',   आपका
हिन्दी-शोध-संस्थान,   (ह०) **श्यामनारायण मेहरोत्रा**
हरिनगर, **अलीगढ़।**

---

१ क० मुं० हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा में 'ब्रजभाषा कोश' का सम्पादन किया जा रहा है। उसकी परामर्शदात्री समिति में सर्वश्री पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी, पं० अमृतलाल चतुर्वेदी, डा० ब्रजेश्वर वर्मा, डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन', डा० विद्यानिवास मिश्र और डा० रामेश्वरप्रसाद अग्रवाल हैं। यह पत्र उसी कोश के सम्बन्ध में है।   —(सम्पादक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३९) पं० श्रीनारायण जी चतुर्वेदी 'श्रीवर' का पत्र

(श्री)

५३ खुर्शेद बाग,
लखनऊ-४
२-२-७९

प्रिय सुमन जी,

प्रायः ११/१२ दिन बाहर रहने और यात्रा के श्रम से लौट कर बीमार पड़ जाने के कारण आपके २५/१ के पत्र का उत्तर अभी तक नहीं दे सका। कल भी तापमान ९९ डिग्री था। किन्तु आज कुछ बेहतर हूँ और आपको पत्र लिखने का साहस कर रहा हूँ।

आपका प्रस्ताव कुछ असाधारण-सा लगा। पत्रों के संग्रह में वास्तविक पत्र होने चाहिए। मेरे पास पिछले बीस-तीस वर्षों के पत्रों का विशाल संग्रह है; किन्तु मेरा अनुभव है कि उनमें से शायद ५ प्रतिशत भी 'छपनीय' नहीं हैं; किन्तु सामान्यतः उनमें या तो ऐसी निजी बातें हैं, जिनका प्रकाशन उचित नहीं; अथवा business letters हैं। उनका एक ही महत्त्व है कि अधिकांश महत्त्वपूर्ण लेखकों के हाथ के लिखे हुए हैं। मुझे इतने अधिक पत्र लिखने पड़ते हैं कि उनमें सामान्यतः तत्कालीन काम की बातें ही होती हैं। केवल पं० बनारसीदास जी को कभी-कभी उनके विचित्र कथनों के कारण कुछ व्यंग्यात्मक पत्र अवश्य लिखे हैं, जो मनोरंजनमात्र की दृष्टि से शायद कुछ लोगों को रुचिकर हों। यदि आपके संबंध में कोई ग्रंथ निकले, तो उसमें किसी साहित्यकार या साहित्यिक विषय पर लेख लिखने में मुझे प्रसन्नता होगी; किन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि पत्रों के संग्रह में से किस प्रकार का पत्र लिखूँ ? आशा है आप प्रसन्न हैं।

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन', डी० लिट्० (ह०) श्री नारायण चतुर्वेदी
हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१

(४०) श्री कन्हैयालाल जी मिश्र 'प्रभाकर' का पत्र

फोन : ३८५३
विकास लिमिटेड,
सहारनपुर, (उ० प्र०)
दिनांक १३. २. ७९ ई०

मान्य श्री पंडित जी,

अभिवादन लें।

आपका पत्र मिल गया था, पर स्वास्थ्य ने खूब मगजरी की। उत्तर में विलम्ब का कारण यही था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री नन्दकिशोर तिवारी पर एक टिप्पणी भेज रहा हूँ। आपके पत्रों का संग्रह प्रकाशित हो रहा है। पत्र-साहित्य की सर्जना में श्री तिवारी जी का प्रमुख एवं अग्रगण्य स्थान है।

सन् १९२५—२६ के **'चाँद'** मासिक (इलाहाबाद) में 'स्मृतिकुंज' उपन्यास धारावाहिक रूप में प्रकाशित होना आरंभ हुआ। लेखक थे, श्री 'निर्वासित'। स्पष्ट है कि यह नाम नकली था। बाद में पता चला कि **श्री नन्दकिशोर तिवारी** ही श्री 'निर्वासित' हैं।

श्री नंदकिशोर तिवारी मई सन् १९२७ ई० में एक धड़ाके की तरह हिन्दी-संसार के परिचय में आये। जब **'चाँद'** के 'अछूतांक' के प्रधान संपादक के स्थान में उनका नाम छपा। धड़ाके का कारण नाम नहीं, 'अछूतांक' के मुख पृष्ठ पर छपा एक चित्र था, जिसमें दो मनुष्य एक थाली में खाना खा रहे थे।

चित्र के नीचे छपा था—"इस अंक के प्रधान संपादक श्री पं० नन्दकिशोर जी तिवारी बी० ए०, जो सरयूपारीण ब्राह्मण हैं, स्वयं बंशीलाल कोरी (चमार) के साथ, जो प्रेस के हिन्दी विभाग का कम्पोज़ीटर है, भोजन कर रहे हैं।"

इस अंक का **सम्पादकीय** बहुत तकड़ा था और पूरा अंक भी हिन्दू समाज के दिल-दिमाग़ को झँझोड़ डालनेवाला था।

इस 'अछूतांक' ने उन्हें पूरे हिन्दी-संसार में पूरी तरह विख्यात कर दिया; पर जिस बात ने उन्हें लेखकों में विशिष्टता दी, वह उनका धारावाही उपन्यास **'स्मृतिकुंज'** था। इस उपन्यास की कथा पत्रों के रूप में गूँथी गयी थी और संभवतः हिन्दी का यही पहला **पत्रात्मक उपन्यास** था।

हिन्दी द्विवेदी-युग के गठन-गौरव को पार कर छायावाद के युग में प्रवेश कर रही थी, और उसकी अभिव्यक्ति सरसता की नयी अँगड़ाई ले रही थी। गद्य में **श्री चण्डीप्रसाद 'हृदयेश'** के **'नन्दननिकुंज'** में यह संस्कृत की इन्द्रधनुषी चुनरी में परिलक्षित हुई थी; पर **'स्मृतिकुंज'** में यह हिन्दी अपनी सादी साड़ी में ही मनोरम झलक दिखा रही थी। आशय यह कि इसकी भाषा-शैली बहुत आकर्षक थी।

मई १९२७ ई० के 'अछूतांक' के बाद नवम्बर १९२९ ई० में **'चाँद'** का **'फाँसी अंक'** निकला। इसकी हर एक रचना पत्र के ही रूप में थी; पर उसके विस्तृत सम्पादकीय में 'विश्व-साहित्य में पत्रों का स्थान' प्रदर्शित करने के लिए इतनी व्यापक, प्रामाणिक, और उद्घोषक सामग्री थी कि **'पत्रांक'** को

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-पत्र-साहित्य का 'संकल्प ग्रंथ' कहें, तो अतिशयोक्ति नहीं। सच तो यह है कि हिन्दी-संसार के पाठकों, लेखकों और (उन थोड़े से लोगों को छोड़कर, जिन्होंने विश्वसाहित्य का अध्ययन किया होगा) विद्वानों ने भी पहली बार यह जाना कि पत्र भी साहित्य का महत्त्वपूर्ण अंग है और लेखों तथा कविताओं की तरह पत्रों का संग्रह भी पुस्तक रूप में प्रकाशित हो सकता है। 'पत्रांक' के सम्पादन और सम्पादकीय लेखक का पूरा काम श्री नन्दकिशोर तिवारी ने किया था। इस तरह श्री नन्दकिशोर तिवारी को हिन्दी-पत्र-साहित्य का प्रवर्तक माना जाना चाहिए।

'चाँद' के बाद वे 'सुधा' (लखनऊ) के संपादक-मंडल में चले गये।

स्वतंत्रता के बाद तिवारी जी बिहार सरकार के सूचना-विभाग में निदेशक के पद पर प्रतिष्ठित हुए थे। सेवा-निवृत्त होने के बाद उनका निधन हो गया। इतनी बड़ी क्षति हुई हिन्दी की, लेकिन हिन्दी के २-४ पत्रों में तीन पंक्तियों का साधारण समाचार बन कर रह गई।

हम उन सपनों को, जिन्होंने हमारी राह बनायी, किस बेदर्दी और बेवफाई से भूलते जा रहे हैं?

श्री नन्दकिशोर जी तिवारी के संबंध में बिहार के लेखकों से पत्र-व्यवहार करूँगा। ज़रूरत है कि संस्मरण-संग्रह के काम में ३–४ आदमी दो वर्ष का समय लगाएँ, जिनमें श्रद्धा हो।

मार्च में अलीगढ़ आने का मन है। आँखों के बारे में सलाह करनी है। गांधी पीढ़ी के संस्मरण-संग्रह का काम भी है। आपके सत्संग का सुख पाना तो मेरे जीवन की नियामत ही बन गयी है। प्रणाम।

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन', विनम्र
डी० लिट्० **(ह०) क० ला० प्रभाकर**
८/७ हरिनगर, अलीगढ़ (उ०प्र०)

(४१) श्री भक्तदर्शन जी (भू.पू. उपशिक्षामंत्री, भारत सरकार एवं भूतपूर्व कुलपति कानपुर विश्वविद्यालय) का पत्र

भक्तदर्शन, **१/३३९, चुक्खूवाला,**
अवकाशप्राप्त संसद् सदस्य, **देहरादून** (उ० प्र०)
दिनांक १७. २. ७९ ई०

प्रिय डा० सुमन जी,

इस बीच लम्बे समय तक बाहर रहा और जब लौटा तो आपका

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२० जनवरी का पत्र देखने को मिला। इसलिए उत्तर भेजने में इतना विलम्ब हुआ। कृपया अन्यथा न समझें।

मुझे यह जानकर के बहुत हर्ष हुआ कि आपके पत्रों का संग्रह **'संस्कृति, साहित्य और भाषा'** शीर्षक से शीघ्र प्रकाशित होनेवाला है। इस उपलक्ष्य में मेरी ओर से हार्दिक मंगलकामनायें स्वीकार कीजिये। मुझे विश्वास है कि प्रकाशित हो जाने पर आपके इस नये ग्रंथ का साहित्य और समाज में अच्छा स्वागत होगा।

आपसे मेरा परिचय तब हुआ था, जब आप दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा (मद्रास) द्वारा संचालित हिन्दी स्नातकोत्तर अध्ययन एवं अनुसंधान संस्थान के अध्यक्ष नियुक्त किये गये थे। उन दिनों मुझे केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय में हिन्दी के विकास एवं प्रसार के कार्य को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उक्त सभा ने दक्षिणी राज्यों में हिन्दी के प्रसार के लिये ऐतिहासिक भूमिका अदा की है, और उस संस्थान ने आपकी अध्यक्षता में उस समय उस सभा की धवल कीर्ति पर चार चाँद लगा दिये थे।

उन वर्षों में मुझे राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा करने का जो अलभ्य अवसर मिला था, वह भी जीवन का स्वर्णिम अध्याय था, और उन दिनों की मधुर स्मृतियाँ मुझे अभी भी अनुप्राणित करती रहती हैं।

आप सरीखे विद्वानों के निकट संपर्क में आने का मुझे उन्हीं दिनों मौक़ा मिला था।

फिर मुझे पाँच वर्षों तक कानपुर विश्वविद्यालय के कुलपति पद से सेवा करने की सुविधा मिली; और अब मैं पूरी तरह से मुक्त होकर के यहाँ अपने अवकाश-काल का सदुपयोग कर रहा हूँ।

उस कार्य-काल ने मेरे इस दृष्टिकोण की पुष्टि की कि जब तक पूर्णतया आवासीय शिक्षा की व्यवस्था नहीं की जाती है, तब तक शैक्षिक स्तर में सुधार होने की आशा करना मृगतृष्णा मात्र है। साथ ही सभी राजनैतिक दलों को मिलकर के राष्ट्र के व्यापक हितों में यह दृढ़ समझौता करना चाहिए कि वे छात्र-छात्राओं की शिक्षा में किसी प्रकार की बाधा नहीं आने देंगे।"

मेरी सम्मति में शुद्ध शिक्षा-शास्त्रियों को इस बारे में पहल करनी चाहिए।

शेष कुशल है। आशा है कि आप भी पूर्णतया स्वस्थ और प्रसन्न हैं।

एक बार शुभकामनाओं के साथ,

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन', डी० लिट्०, आपका

८/७ हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०) (ह०) भक्तदर्शन

****

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति-नाम-अनुक्रमणी

(पृष्ठ-निर्देश सहित)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

****

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट—
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परामर्शदात्री-समिति के सम्मानित सदस्य

[अकारादि क्रम से]

(१) श्री आनन्दपाल सिंह 'एकलव्य',
इनायतपुर बझेड़ा, डा० अहमदपुर, जि० अलीगढ़ [उ० प्र०]

(२) डा० (श्रीमती) आशा व्यास, आयुर्वेदरत्न
८/३६, हरिनगर, अलीगढ़ [उ० प्र०]

(३) डा० इन्दरराज बैद 'अधीर', पी-एच० डी०
कार्यक्रम-अधिशासी, आकाशवाणी, मद्रास

(४) श्री उजियारीलाल सक्सेना 'लाठसाहब',
पटेलनगर, आगरा रोड, अलीगढ़ [उ० प्र०]

(५) श्री ओ३म्प्रकाश वार्ष्णेय, एम० ए०, एल-एल० बी०
मास्टर छोटेलाल एण्ड को०, मदारदरवाज़ा, अलीगढ़

(६) श्रीमती ओम्वती शर्मा गौड़,
बी-८२, विवेक विहार, दिल्ली–११००३२

(७) डा० कमलसिंह, पी-एच० डी०
प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग,
सनातन धर्म महाविद्यालय, मुजफ्फरनगर [उ० प्र०]

(८) डा० केशवदत्त रुवाली, पी-एच० डी०
चन्द्रालय, रानीधारा रोड, पो० पोखरखाली, जि० अलमोड़ा।

(९) डा० गयाप्रसाद शर्मा, पी-एच० डी०
प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग,
नारायण डिग्री कालेज, शिकोहाबाद [उ० प्र०]

(१०) पं० चिरंजीलाल उपाध्याय,
खिरनी दर्वाज़ा, आगरा रोड, अलीगढ़

(११) डा० च्यवन ऋषि झा, आचार्य, पी०-एच० डी०
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
भगतसिंह डिग्री कालिज, गोविन्दपुरी (कालिकाजी), नई दिल्ली

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१२) श्री सेठ छेदीलाल जैन,
स्पेकलाइट इंडस्ट्रीज़,
४४-इण्डस्ट्रियल एस्टेट, आगरा-२८२००६

(१३) श्री सेठ जयदयाल डालमिया,
४–सिंधिया हाउस, नई दिल्ली-११०००१

(१४) श्री जयप्रकाश चन्द्रा, एम० ए०
डिप्टीट्रांस्पोर्ट कमिश्नर (सेवानिवृत्त)
१०, स्टेशन रोड, लखनऊ [उ० प्र०]

(१५) श्री जुगतराय रे० दवे, एम० ए०
३१-शिक्षक नगर, चंद्रमौलि,
उपलेटा, जि० गुजरात।

(१६) श्री सुकवि त्रिभुवननाथ शर्मा 'मधु'
बाराबंकी [उ० प्र०]

(१७) डा० त्रिलोकीनाथ व्रजबाल, पी-एच० डी०
प्रवक्ता,
किशोरीरमण प्रशिक्षण शिक्षक महाविद्यालय, मथुरा [उ० प्र०]

(१८) श्री दुर्गादास, एम० ए०, एम० एड०
प्रधानाचार्य,
आदर्श भारती उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, कलवा [अलीगढ़]

(१९) (श्रीमती) निर्मल कुमारी वार्ष्णेय, एम० ए०, पी-एच० डी० (शोध)
द्वारा-श्री वेदप्रकाश वार्ष्णेय,
डी-४८/७६, मिसिर पोखरा, वाराणसी-२२१००१

(२०) श्री पूरनसिंह भाकुनी, एम० ए०, पी-एच० डी० (शोध),
प्रधानाचार्य,
I सी० सी०, स्टाफ फ्लैट्स, अपर बेला रोड,
सिविल लाइंस, दिल्ली-११००५४

(२१) श्री सेठ प्रकाशचन्द्र लुहाड्या,
खंडेलवाल ग्लास-वर्क्स, सासनी [अलीगढ़]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२२) श्री सेठ बाबूलाल वार्ष्णेय,
श्याम-ग्लास वर्क्स, सासनी [अलीगढ़]

(२३) श्री मुन्शीलाल जैन,
दर्शन-भवन, अचलताल, अलीगढ़ [उ० प्र०]

(२४) श्री रमेशप्रसाद शर्मा, एम० ए०
१/६२१६, पूर्वी रोहतास नगर, शाहदरा, दिल्ली—११००३२

(२५) श्री पं० राधेश्याम शर्मा,
अलीगढ़ डेरी, मालीवाड़ा, दिल्ली

(२६) डा० रामअवतार वार्ष्णेय, पी-एच० डी०
गणित-विभाग, कॉलेज ऑफ एजूकेशन,
बग़दाद विश्वविद्यालय, वज़ीरियाह [बग़दाद]

(२७) डा० रामरजपाल द्विवेदी, पी-एच० डी०
२६८—के, रामनगर, गाज़ियाबाद [उ० प्र०]

(२८) डा० एल० आर० व्यास,
परामर्श-चिकित्सक,
८/३६, हरिनगर, अलीगढ़—२०२००१

(२९) श्री वेदप्रकाश, एम० ए०
१६५४—लक्ष्मीबाई नगर, नई दिल्ली—११००२३

(३०) डा० (श्रीमती) शकुन्तलादेवी सिंह, पी-एच० डी०
W/o श्री धर्मपाल यादव,
C/o श्री शिशुपालसिंह,
देवीदयाल-रवीन्द्रकुमार,
बनारसी साड़ीवाले, नई सड़क दिल्ली—११०००६

(३१) श्री सेठ शान्तिस्वरूप गुप्त,
७ए—क्लाइव रो, कलकत्ता—१

(३२) डा० (श्रीमती) शारदा शर्मा, पी—एच० डी०
प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग,
मुन्नालाल एवं जयनारायण खेमका कन्या महाविद्यालय,
सहारनपुर [उ० प्र०]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३३) डा० शिवकुमार शाण्डिल्य, पी–एच० डी०
प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग,
अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय, अलीगढ़ [उ० प्र०]

(३४) श्री श्यामसुन्दर शर्मा,
गली नं० ४, बलवीरनगर, शाहदरा, दिल्ली–११००३२

(३५) श्री सत्यप्रकाश शर्मा,
विकास-मैटल इन्डस्ट्रीज़,
मानसिंह की सराय, आगरा रोड, अलीगढ़

(३६) (श्रीमती) सरोजबाला, पी–एच० डी० (शोध)
१५८६, मदरसारोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली

(३७) डा० सुरेन्द्रसिंह अत्रीश, पी–एच० डी०
प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग,
जनता डिग्री कालेज, पतला [गाज़ियाबाद]

(३८) श्री हरिशंकर वार्ष्णेय 'मुनीमजी',
विकास कारपोरेशन, हरिनगर, अलीगढ़ [उ० प्र०]

****

Central Library
185465
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा प्रयोग

व्यावहारिक हिन्दी : शुद्ध प्रयोग[1]

लेखक : डॉ. ओम्प्रकाश

समीक्षक : डॉ. सत्येन्द्र चतुर्वेदी

भारतीय संविधानमें हिन्दीको राजभाषा स्वीकार कर लिये जानेके उपरांत उसके व्यावहारिक पक्ष और प्रयोगमें आनेवाली समस्याओं व कठिनाइयोंपर प्रकाश डालने और उनका समुचित निराकरण करनेवाली आधिकारिक तथा व्यावसायिक लेखकों द्वारा प्रणीत अनेक पुस्तकें पिछले वर्षोंमें आयीहैं—यह स्वाभाविक भी था। पर कतिपय कृतियोंको छोड़कर इस दिशामें अधिकांश प्रयास या तो छात्रोंपयोगी कोटिसे बाहर नहीं निकल पाये या सरकारी प्रकाशनोंकी ढर्रा-पद्धतिकी एकरसता व्यूहके ही बन्दी बने रहे। इसीलिए वे विषयमें गहरी पैठ, सम्यक् प्रतिपादन, शैली संयोजन आदि किसीभी रचनाको अभीष्ट प्रभावपूर्ण और सहज संप्रेष्य बनानेवाले निकषपर सही नहीं उतर पायीं। आज स्थिति यह है कि संख्याकी दृष्टिसे राजभाषा हिन्दीके व्यावहारिक स्वरूपका परिचय करानेवाली पुस्तकोंकी भरमार है, पर इतर भाषा-भाषीजन हिन्दी भाषाके अध्येता अथवा शुद्ध हिन्दीको सीखने अथवा समझनेके इच्छुक सामान्य देशवासी जनके लिए स्तरीय पुस्तकोंका अबभी प्रायः अभाव है। ऐसे परिप्रेक्ष्यमें हिन्दी भाषा, साहित्यके अनुभवी प्राध्यापक और विद्वान् डॉ. ओम्प्रकाशकी—"व्यावहारिक हिन्दी : शुद्ध प्रयोग" पुस्तकका प्रकाशन एक सामयिक सराहनीय उपलब्धि स्वीकार कीजानी चाहिये।

समीक्ष्य कृतिकी रचनाके मंतव्यका विश्लेषण करते हुए सुधी लेखकने प्रारम्भमें राजभाषाके रूपमें हिन्दीके प्रयोग मार्गमें आनेवाली चार मुख्य कठिनाइयोंकी ओर हमारा ध्यान विशेष रूपसे आकृष्ट कियाहै—"प्रथमत: यह कि जिस वर्गको अंग्रेजीके कारण वरीयता मिलती रहीहै वही वर्ग अंग्रेजीकी समाप्ति नहीं चाहता; वह खुलकर अंग्रेजीका समर्थन तो नहीं कर सकता, परन्तु हिन्दीका हौवा खड़ा करके भोलेभाले लोगोंको डराता रहताहै। द्वितीय कठिनाई हिन्दीभाषियोंकी ओरसे है, वे लोग हिन्दी साहित्यको इतर भारतीय साहित्यकी अपेक्षा श्रेष्ठ समझतेहैं। उनको यह जानना चाहिये कि हिन्दी भाषा तो 'राजभाषा' है परन्तु हिन्दीका साहित्य 'राज-साहित्य' कभी समझा नहीं गया। अत: केन्द्रीय सरकार हिन्दी साहित्यके प्रति (पुरस्कार प्रदान करना आदि) जो पक्षपात दिखातीहै वह इतर साहित्य-सेवियोंको बहुत खलताहै। तीसरी कठिनाई उन युवकोंने उत्पन्न कीहै जो संस्कृत बिलकुल नहीं जानते और अपनी कमीको अमरीकी भाषाशास्त्रका आयात करके ढकना चाहतेहैं। वे 'भाषा' और 'भाषाविज्ञान' में भेद नहीं समझते और भारतीय भाषाओंकी आधारभूत संस्कृत और व्याकरणके ज्ञानके बिना ही योग्य बने रहतेहैं। ऐसे लोग राजभाषा हिन्दीका बड़ा अहित कर रहेहैं। चतुर्थ कठिनाईका कारण नौकरीकामी सामान्य जनता है। यह सत्य है कि हिन्दी बोली सारे देशके नगरों तथा कस्बोंमें समझी जातीहै, संगीत और सिनेमाका इस प्रसंगमें असाधारण योगदान है तथा हिन्दी बोलीकी व्यापकताके आधारपर हिन्दी भाषाको 'राजभाषा' का पद प्राप्त हुआहै। परन्तु यहभी सत्य है कि प्रत्येक प्रदेशकी "हिन्दी बोली अलग दिखायी दे जातीहै जिसे प्रादेशिक छापके आधारपर हम 'बंबैया हिन्दी', 'कलकतिया हिन्दी' तथा 'मदरासी हिन्दी' जैसी अभि-

---

१. प्रका. : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०००६। पृष्ठ : १६६; क्रा. ६१; मूल्य : ५०.०० रु.।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहत्तर पृष्ठकी विवरणिकाका मूल्य २२६.०० रुपये रखा गयाहै। इस असाधारण मूल्यपर इसे न कोई खरीदेगा, न इसकी उपयोगितासे परिचित होगा। हिन्दी प्रचारके संवैधानिक दायित्व एवं विभिन्न भाषा-भाषियोंमें सौहार्दभाव बनाये रखनेके प्रयत्नों—दोनोंको निष्फल करनेकी इस तत्परता और इस रूपसे देशको ही विखण्डित करनेके लिए क्रियाशील रहनेके भारत सरकारके इस कौशलका अभिनन्दन किया जाना चाहिये। □

हैदराबादके हिन्दी लेखक[1]

सम्पादक : तेजराज जैन
समीक्षक : माधव पंडित

हिन्दी लेखक संघ, हैदराबादके द्विशतक संगोष्ठी समारोहके अवसरपर यह पुस्तक प्रकाशित की गयीहै। इसमें हैदराबाद और सिकन्दराबाद—नगरद्वयके प्रमुख हिन्दी लेखकोंका परिचय प्रस्तुत किया गयाहै। इस तेलुगुभाषी नगरद्वयमें न केवल हिन्दीभाषी पर्याप्त संख्यामें हैं, बल्कि मराठी; गुजराती तथा दक्षिण भारत के अन्य क्षेत्रोंके भी लोग पर्याप्त संख्यामें हैं। हैदराबाद-सिकन्दराबादमें तेलुगुभाषियों और अन्य भाषा-भाषियों के बीच सम्पर्कका माध्यम ही केवल हिन्दी नहीं है, अपितु सृजनात्मक लेखनका भी दक्षिण भारतमें एक प्रमुख केन्द्र है। इसी कारण यहां हिन्दी-लेखन कार्यमें प्रवृत्त प्रबुद्ध वर्गकी ओरसे यह लेखक-परिचय पुस्तक प्रकाशित हुईहै। यह न केवल नगरद्वयके लोगोंके लिए उपयोगी है, अपितु दक्षिणके इस केन्द्र स्थलसे सम्पर्क रखनेवालोंके लिए भी उपयोगी है।

पुस्तकमें अकारादि क्रमसे लेखकोंका विवरण और संक्षिप्त जीवन-परिचय प्रस्तुत किया गयाहै। इनमें वहाँ व्यवहारमें आनेवाली सभी भाषाओंके अधिकतम हिन्दी लेखकोंका परिचय है। यह प्रयत्न न केवल इन सभी लोगोंको एक सूत्रमें बांधनेका साधन है, अपितु देश के अन्य केन्द्र-स्थलोंपर केन्द्रित हिन्दीके सृजन-कार्यमें संलग्न लोगोंके लिएभी प्रेरणा-स्रोत। देशके पूर्वी भागमें कलकत्ता, गुवाहाटी और इम्फाल तथा अन्य भागों और क्षेत्रोंमें ऐसे अनेक स्थल हैं, जिनसे इस प्रकारकी पुस्तकोंके माध्यमसे सरलतासे सम्पर्क स्थापित किया जा सकताहै और सम्पर्क निकटतामें परिवर्तित हो सकताहै। इसलिए ऐसे प्रयासोंका केवल स्वागतही नहीं, उन्हें प्रोत्साहनभी दिया जाना चाहिये।

यह संस्थागत निजी प्रयास है। परन्तु भावनात्मक स्तरपर पूरे क्षेत्र और विभिन्न भाषाभाषियोंमें सम्पर्क-सूत्रका माध्यम प्रदान करने एवं देशके विभिन्न महानगरोंके लिए एक उदाहरण प्रस्तुत करनेकी दृष्टिसे तो यह स्वागत योग्य कार्य हैही, सरकारी और प्रशासनिक कार्योंकी तुलनामें यहां जिस हार्दिकता और उत्साहके दर्शन होते हैं, वह प्रशंसनीय है। □

[1] प्रका. : हिन्दी लेखक संघ हैदराबाद। प्राप्ति-स्थान : मारवाड़ी प्रेस, अफजलगंज, हैदराबाद—५०००१२। पृष्ठ : १०४; प्रकाशन वर्ष १९९१; मूल्य : २०.०० रु.।

'प्रकर' के संग्रहणीय विशेषाँक

"पुरस्कृत भारतीय साहित्य"

प्रतिवर्ष पुरस्कृत होनेवाली सभी भारतीय भाषाओं—हिन्दी सहित—की कृतियोंपर इन विशेषांकोंमें समीक्षा-आलेख संकलित हैं। विशिष्ट पुरस्कार विजेताओंके लेखनपर भी सामग्री दी गयीहै। ये विशेषाँक अलगसे उपलब्ध हैं।

प्रकाशन वर्ष	मूल्य	प्रकाशन वर्ष	मूल्य
१९८३	२०.००	१९८८	३०.००
१९८४	२० ००	१९८९	३५.००
१९८५	२०.००	१९९०	३५.००
१९८६	३०.००	१९९१	३५.००
१९८७	३०.००	१९९२	४०.००

सभी विशेषांक एकसाथ मंगानेपर २३५.०० रु. होंगे। डाक व्यय 'प्रकर' देगा।

राशि ड्राफ्ट अथवा मनीआर्डर से भेजें।

'प्रकर'

ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्तियोंका प्रयोग करतेहैं। जब कोई 'बोली' व्यापक बनकर भाषाका रूप ले लेतीहै तो उसका 'एक' परिनिष्ठित (स्टेण्डर्ड) रूप निकल आताहै। जनता सामान्य व्यवहारमें 'बोली' का प्रयोग करतीहै, परन्तु लिखित साहित्य व्याकरण सम्मत भाषाको मान्यता देताहै। राजभाषा हिन्दीका एक ही रूप है जो परम्परागत व्याकरणमें आबद्ध है, उसके शब्द भण्डारका स्पष्टीकरण संविधानके अनुच्छेद ३५१ में कर दिया गयाहै। प्रस्तुत पुस्तककी रचना इन्हीं परिस्थितियों तथा कठिनाइयोंको ध्यानमें रखकर की गयीहै।''

पुस्तकको १८ अध्यायोंमें विभक्त किया गयाहै। सम्यक् अनुशीलनसे स्पष्ट है कि लेखकने इसमें भाषा-प्रयोग सम्बन्धी सभी पहलुओंपर व्यापक दृष्टिपात कियाहै। प्रारम्भमें ढाई सौ इस प्रकारके शब्द-युग्मोंका चयन कर लेखकने उनका पार्थक्य निर्देशित कियाहै समान प्रतीत होनेके कारण भ्रान्तिवश हम जिनके समीचीन प्रयोगमें कभी-कभी भूल कर जातेहैं। यहां केवल उनका प्रयोगात्मक अन्तर ही नहीं बताया गया अपितु उसको सुस्पष्ट करनेके लिए विषद व्याख्या भी दी गयी है जो पाठकके लिए अन्तरको अधिक संप्रेष्य बना देती है। पुस्तकमें यह प्रवृत्ति आद्यन्त परिलक्षित होतीहै चाहे विशेष शब्दोंकी व्याख्या हो, समानार्थक शब्दोंके व्यवहारमें अन्तरका प्रकरण हो अथवा लोकोक्तियों और मुहावरोंका प्रसंग। लेखकने अपने प्रतिपाद्यको सरल और बोधगम्य बनानेकी ओर समुचित ध्यान सदैव और सर्वत्र रखाहै। द्रष्टव्य हैं ऐसे कतिपय उदाहरण—'अनुकरण'—'अनुसरण'; 'अनुकरण' अथवा 'अनुकृति' शब्दका अर्थ 'नकल' है। यह नकल किसी दूसरे व्यक्ति के व्यवहारकी होती है, उससे प्रभावित होनेपर। 'अनुकरण' में पहले हम प्रभावित होतेहैं फिर उसका-सा व्यवहार करतेहैं। 'अनुसरण' में सोचना, समझना, प्रभावित होना नहीं होता। 'काव्य', 'कविता' दोनों शब्द तत्सम है। दोनों समानार्थक हैं। दोनों 'कवि' शब्दसे भाववाचक संज्ञाएं हैं। 'काव्य' शब्द पुराना है और 'कविता' शब्द अपेक्षाकृत नया। पद्यमयी रचनाको 'कविता' कहतेहैं। गद्यमयी रचना 'कविता' नहीं है, काव्य तो वह हैही। इसी आधारपर यह उक्ति प्रसिद्ध हो गयीहै कि 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति।'' 'कविता' में बाह्यपक्ष प्रधान होताहै और 'काव्य' में आन्तरिक पक्ष। दूसरा अन्तर यह है कि 'कविता' शब्द छोटी रचनाके लिएभी प्रयुक्त होताहै परन्तु काव्य शब्द नहीं।'' 'कृपालु'-'दयालु': दोनों शब्द तत्सम हैं, दोनों ही विशेषण है। 'दया' सामान्य व्यक्तिपर की जातीहै, परन्तु 'कृपा' विशेष व्यक्तिपर। हमारे मित्र हमपर कृपा करतेहैं, जबकि दीन दुःखियोंपर 'दया' दिखायी जातीहै—''भये प्रकट कृपाला दीन दयाला, कौसल्या हितकारी'' (रामचरित मानस)। 'चरित-चरित्र' 'चरित' शब्दका अर्थ आचरित है—जीवन-चरित 'राम चरित' आदि। चरितका सार चरित्र है। 'चरित्र-हीन' 'चरित्र हनन' आदि शब्द। अंग्रेजीमें चरितको कन्डक्ट तथा चरित्रको 'करेक्टर' कहतेहैं। 'चरित' (अथवा कन्डक्ट) आचार-विशेषका नाम है, जबकि चरित्र (अथवा करेक्टर) मनुष्यका स्वभाव है। 'श्रम-परिश्रम', 'श्रम' शारीरिक होताहै। मजदूरोंका नाम श्रमिक है। 'परि + श्रम' = परिश्रम अर्थात् शारीरिक, मानसिक सब प्रकारका श्रम। परीक्षामें सफलता प्राप्त करनेके लिए उसने बहुत परिश्रम कियाथा। 'सृजन-सर्जन', सृष्टिकी प्रक्रियाको सृजन कहतेहैं। 'सर्जन' अंग्रेजी शब्द चिकित्सा शास्त्रसे आयाहै। संस्कृत और हिन्दीमें सर्जन शब्द नहीं बनता, सृजन ही बनताहै। सर्जक कलाकार तो शुद्ध है परन्तु सर्जन नहीं। किन्तु यहां लेखकके कतिपय निष्कर्ष और व्याख्याएं गंभीरता-पूर्वक विचारणीय और यथोचित संशोधन सापेक्ष्य हैं—उदाहरणार्थ—'बूरा' चीनीका चूर्ण करके नहीं बनता, खांडको कूटकर बनाया जाताहै और केवल ब्रजमें ही नहीं पूरे उत्तर भारतमें इसी नामसे इसका प्रयोगहोता है। 'संस्कृति' मात्र विचारोंका भावसमूह नहीं, इसकी अवधारणा अधिक व्यापक है। 'बीर' भाई अर्थके द्योतनके रूपमें ही नहीं, एक मुहावरा भी है—'बीर चढ़ना' अर्थात् उन्माद, आवेशके दौरे पड़ना। 'राग' शब्दके निमित्त अर्थोंमें विभिन्न प्रयोगभी लेखकको यहां बताने चाहियेंथे। संगीतके 'राग' के अतिरिक्त यह 'प्रेम' का पर्याय तो हैही। लोकमें कहीं-कहीं ''क्या राग है'', ''मामला क्या है'' के अर्थमें भी प्रयुक्त होताहै। 'बन्ध'-'बन्धन', ये केवल नियन्त्रणके अर्थमें ही नहीं आते, विरोधस्वरूप कामकाज, व्यवस्था ठप्प करानेके लिए भी आये दिन 'बन्ध' आयोजित किये जातेहैं। अगले संस्करणमें इन सुझावोंके परिप्रेक्ष्यमें जहांतहां परिमार्जन कर लेना चाहिये।

एक व्यावहारिक सुझाव औरभी। इस तथ्यसे हम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी परिचित हैं कि भारतकी अधिकतर भाषाओंकी शब्दावलीका मूल संस्कृत भाषा है। लेखकके मतानुसार शुद्ध हिन्दी लेखनके लिए संस्कृत भाषाका थोड़ा ज्ञान आवश्यक है। संस्कृतके अनेक शब्द हिन्दीमें आकर तत्सम-से इतर रूपमें चल पड़ेहैं। भाषाशास्त्रियोंको इससे परहेज नहीं होना चाहिये, भाषा-सामर्थ्यमें वृद्धि इसी प्रकार होती है जैसे शुद्ध शब्द है 'गृहस्थ' पर बोलचाल और लोकव्यवहारमें 'गृहस्थी' का भी उसी आशयमें धड़ल्लेसे प्रयोग होताहै। शुद्ध 'स्वास्थ्य' शब्द है, पर 'स्वास्थय' भी लिखा बोला जाताहै। भाषामें इन सब प्रयोगोंको पचानेकी अपार क्षमता है, इन्हें अमान्य करार देना उचित नहीं। ऐसाही एक शुद्ध शब्द 'मनःकामना' है पर लोकमें 'मनोकामना' शब्दभी इसी अर्थमें व्यापक रूपसे प्रचलित है। 'राष्ट्रिय' के साथ 'राष्ट्रीय' तथा 'अन्तर्राष्ट्रिय' के साथ 'अन्तर्राष्ट्रीय' शब्द लोकव्यवहार की नहीं, संचार साधनोंमें निस्संकोच प्रयुक्त होतेहैं। हमारे मतमें ऐसे प्रचलित प्रयोगोंको भाषामें ग्रहण कर लेना निरापद है।

हिन्दी शब्दोंकी वर्तनियोंमें हम अज्ञान, असावधानी अथवा भ्रमवश प्रायः भूल कर जातेहैं। फलतः अशुद्ध रूप चलते रहतेहैं। पृथक् दो अध्यायोंमें यहां चार सौ से अधिक ऐसेही शब्दोंकी तालिका दी गयीहै; साथ साथ उनकी व्याकरण सम्मत विशद व्याख्या भी। उदाहरणार्थ—भाववाचक संज्ञा 'ज्ञान' का विलोम 'अज्ञान' है न कि 'अज्ञानता', पर अज्ञतावश लेखन और व्यवहार दोनोंमें यह अशुद्ध रूप सर्वथा मान्य और प्रचलित है। यों 'अनूदित' शब्द शुद्ध है पर 'अनुवादित' रूप भी देखने सुननेको खूब मिलताहै। वस्तुतः लोकव्यवहारमें ऐसे शब्द-रूपोंकी संख्या यहां निर्दिष्टसे भी कहीं ज्यादा है। आगे साठ ऐसे शब्दोंकी तालिका दी हुईहै जिनके दोनों रूप व्याकरणके नियमानुसार शुद्ध हैं, पर इनमें से प्रायः एक रूपका प्रचार अधिक है। लेखकोंको चाहिये कि वे प्रचलित रूपको अधिक 'प्रामाणिक मानें' (यद्यपि दूसरा भी अशुद्ध नहीं)। व्याकरणके नियमोंके पचड़ेमे न पड़ (ऐसे) लोकप्रिय रूपोंको स्वीकार कर लेना चाहिये। उदाहरणके लिए 'अर्द्ध-अर्ध', 'ईर्षा-ईर्ष्या', 'उषा-ऊषा', 'कर्तव्य, कर्त्तव्य', 'प्रकट-प्रगट', 'बहिन-बहन', 'राजनीतिक-राजनैतिक', 'वशिष्ट-वसिष्ठ', 'वेष-वेश', 'पृथ्वी-पृथिवी' आदि इसी कोटिके कतिपय शब्द हैं।

हम अपने कथनपर विशेष बल देने अथवा इसको अधिक स्पष्ट करनेके उद्देश्यसे प्रायः दुहरे शब्दोंका प्रयोग करते रहतेहैं। पुस्तकमें इसकी भी स्वतंत्र रूप से विस्तारपूर्वक व्याख्या की गयीहै। ऐसे शब्द सार्थक भी होतेहैं, निरर्थक भी। 'सच-मुच', 'भीड़-भाड़', 'झूठ-मूठ' आदि। कुछ सार्थक शब्दोंकी आवृत्ति होतीहै—'कभी-कभी', 'कहीं-कहीं', 'कोई-कोई', आदि। कभी-कभी सार्थक विकल्पोंका प्रयोग किया जाताहै—जैसे 'अपना-पराया', 'सुख-दुःख', 'राग-द्वेष', 'आगे-पीछे' आदि। सार्थक शब्दके साथ समान वर्गके सार्थक शब्दों की आवृत्ति भी यहां द्रष्टव्य है—'खोज-खबर', 'फटे-पुराने', 'काम-धन्धा', 'जान-बूझ', 'थका-मांदा' आदि। विपरीतार्थक शब्दोंपर प्रकाश डालते हुए लेखकने उन्हें तीन रूप-प्रकारोंमें वर्गीकृत कियाहै—१. उपसर्गके योग से, २. उपसर्गमें परिवर्तन करके, ३ नवीन शब्दोंको रखकर। 'अ' अथवा 'अन्' उपसर्गके योगसे तथा अन्य उपसर्गोंके योगसे बनाये गये शब्दोंको अनेक उदाहरणों से स्पष्ट कियाहै जैसे—'ज्ञान-अज्ञान'; 'शान्ति-अशान्ति'; 'कीर्ति-अपकीर्ति'; 'अक्षर-निरक्षर'; 'राग-विराग' आदि। उपसर्गमें परिवर्तन करके भी विपरीतार्थक शब्दोंकी रचना होतीहै जैसे मूल शब्द 'दान' है उसमें 'आ' के योगसे आदान बनताहै। इस 'आ' के स्थानपर 'प्र' के योगसे प्रदान शब्द विपरीतार्थक बन जाताहै। उपसर्ग प्रत्ययके योगसे शब्द निर्माणकी प्रक्रियाको विशद रूपसे सोदाहरण समझाया गयाहै। प्रसिद्ध प्रचलित शब्दोंके पर्यायवाची शब्दोंकी संक्षिप्त तालिका भी व्यवहारोपयोगी है। पर विशेष उल्लेखनीय वाक्यांशोंके स्थान पर वैसे ही अर्थका प्रेषण करनेवाली पचास शब्दोंकी सूची है। ऐसे शब्दोंके प्रयोगसे ही किसीभी भाषाकी समास शक्तिका पता चलताहै। कतिपय ऐसे शब्दोंकी विशद व्याख्या आगे की गयीहै जिनके एकसे अधिक अर्थ होतेहैं पर संदर्भसे हम समीचीन आशय ग्रहण कर लेतेहैं जैसे 'पत्र' शब्द 'पत्ता' और 'चिट्ठी' दोनों अर्थों से प्रयुक्त होताहै। 'फल' शब्द संदर्भ-भेदसे 'खानेके फल', 'परीक्षाफल', 'चाकूकी धार' तीन अर्थोंका द्योतक कराताहै। 'विशेष शब्द' प्रकरण वस्तुतः विशेष महत्त्वपूर्ण है। हम इन शब्दोंकी वर्तनी, उच्चारण, प्रयोग भ्रमवश सबमें भूल कर जातेहैं, यथा 'अन्तर्धान'—अन्तर्+धान = 'अन्तर्धान' अर्थात् अदृश्य अथवा लुप्त होजाना। इस शब्दका 'ध्यान' से कोई सम्बन्ध नहीं है

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar